Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास

डा० श्याम मनोहर मिश्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

5805

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दक्षिण भारत

का

राजनैतिक इतिहास

(प्रारम्भ से लेकर 14वीं शताब्दी तक)

डॉ० श्याम मनोहर मिश्र
एम० ए०, पी-एच०डी०, एफ० आर० ए० एस०
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०
अमीनाबाद, लखनऊ-226018

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पहली बार प्रकाशित 1985

© 1985, अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०, लखनऊ

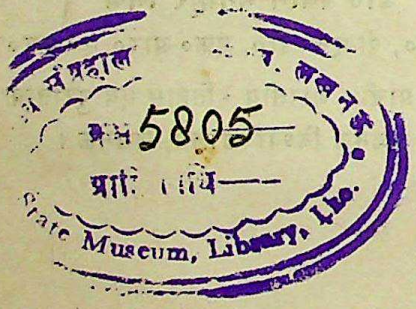

मुद्रक
गर्ग प्रिंटर्स
शंकर दयाल रोड ऐशबाग, लखनऊ फोन : 45201

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्रद्धेय

प्रो० लल्लन जी गोपाल

को

सादर समर्पित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भूमिका

विगत दो दशकों में उत्तर भारत में दक्षिण भारत के इतिहास के अध्ययन-अध्यापन को काफी प्रोत्साहन मिला है और कई विश्वविद्यालयों ने इसे स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में शामिल किया है। अंग्रेजी भाषा में तो दक्षिण भारत के इतिहास पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, किन्तु हिन्दी में इस विषय पर प्रमाणिक पुस्तकों का अभाव है। हिन्दी में उपलब्ध ग्रन्थों में के० ए० नीलकान्त शास्त्री की History of South India तथा जी० याज़दानी द्वारा सम्पादित Early History of the Deccan के हिन्दी-अनुवाद, एवं बलराम श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'दक्षिण भारत' उल्लेखनीय हैं। नीलकान्त शास्त्री की पुस्तक में विषय-प्रतिपादन में प्राय: कई राजवंशों को एक साथ लिया गया है, इसलिए प्रत्येक राजवंश एवं राजा का विवरण न तो क्रमबद्ध है, और न ही विस्तृत। जी० याज़दानी के उपर्युक्त ग्रन्थ में सुदूर दक्षिण के राजवंशों के इतिहास का समावेश नहीं है। अत: ये दोनों कृतियां आंशिक रूप से ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। बलराम श्रीवास्तव की पुस्तक अपेक्षाकृत सन्तोषप्रद है, परन्तु इसमें चूंकि राजनैतिक इतिहास के अतिरिक्त दक्षिण भारत की संस्कृति का भी विवेचन किया गया है, इसीलिए लघु राजवंशों का विवरण अत्यधिक संक्षिप्त है, सांस्कृतिक जीवन की केवल झलकियां ही प्रस्तुत की गईं हैं और बड़े राजवंशों तथा राजाओं का इतिहास भी अपेक्षित विस्तार के साथ नहीं लिखा जा सका है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास' उपर्युक्त कमियों को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है। इसमें प्रारम्भ से लेकर 14वीं शताब्दी तक के दकन एवं सुदूर दक्षिण के समस्त महत्वपूर्ण राजवंशों के **राजनैतिक इतिहास** का सविस्तार विवेचन किया गया है। विवरण को पूर्ण बनाने के उद्देश्य से प्रागैतिहासिक तथा आद्यैतिहासिक संस्कृतियों का भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ को अधिकाधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से नवीन सामग्री का यथासम्भव प्रयोग किया गया है और पुस्तक के अन्त में विस्तृत सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची दी गई है जिससे जिज्ञासु पाठक भी लाभान्वित होंगे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक लिखने के दौरान मुझे अपने गुरुओं–प्रो० बी० एन० श्रीवास्तव, प्रो० के० के० थपल्याल, प्रो० लल्लन जी गोपाल एवं प्रो० उपेन्द्र ठाकुर से निरन्तर मार्ग-दर्शन एवं प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा। प्रो० वी० एन० मिश्र और प्रो० के० के० थपल्याल ने पुस्तक के तृतीय अध्याय–'प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियां'–को आद्योपान्त पढ़कर अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिनके लिए मैं उनका आभारी हूं। मेरे परम मित्र डा० नरेश प्रसाद रस्तोगी ने ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित कराने में अत्यधिक अभिरुचि ली। डा० एस० पी० दुबे, प्रो० रामाश्रय अवस्थी, डा० आर० एन० जायसवाल, डा० शैलेन्द्र नाथ कपूर, डा० सतीश चन्द्र अवस्थी, सर्वश्री बी० बी० सरकार, अनिल कुमार शुक्ल, राजीव नारायण मिश्र, राहुल शुक्ल एवं श्रीमती शीला रानी सिन्हा ने लेखक को विभिन्न प्रकार से सहयोग दिया जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। मैं अपने विद्यार्थियों–सर्वश्री पवन कुमार जैन, वृजकिशोर श्रीवास्तव, दीपक कुमार श्रीवास्तव, अंजनी कुमार मिश्र, (स्वर्गीया) सुषमा श्रीवास्तव, सहधर्मिणी मिथिलेश एवं पुत्री ममता का विशेष रूप से ऋणी हूं जिनके द्वारा विभिन्न प्रकार से दिए गए सक्रिय सहयोग के बिना इस ग्रन्थ का पूरा होना कठिन था। पुस्तक में संलग्न मानचित्र के लिए मैं श्री बलराम कृष्ण एवं राजीव खरे का आभारी हूं।

अन्त में मैं अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लखनऊ के स्वर्गीय मैनेजिंग डायरेक्टर श्री सर्वोत्तम भार्गव, पब्लिकेशन प्रबन्धक श्री अल्ताफ़ मिर्ज़ा तथा मुद्रक श्री प्रमेश गर्ग के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं जिन्होंने पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने के लिए यथा सम्भव प्रयास किए। हार्दिक दुःख है कि अपने आकस्मिक निधन के कारण श्री भार्गव जी इस ग्रन्थ को प्रकाशित नहीं देख सके।

मेरे प्रयासों के बावजूद ग्रन्थ में कुछ अशुद्धियां एवं त्रुटियां रह गई हैं जिनके लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूं। यदि यह कृति स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्र-छात्राओं के लिए उपयोगी सिद्ध होती है, तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

लखनऊ, जनवरी 26, 1985 **श्याम मनोहर मिश्र**

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1.	दक्षिण भारत का भूगोल	1–6
2.	इतिहास के विविध स्रोत	7–24
3.	प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियां	25–43
4.	दक्षिण भारत में नन्दों तथा मौर्यों का प्रभुत्व	44–47
5.	दक्षिण भारत के प्रारम्भिक राजवंश	48–59
6.	आन्ध्र-सातवाहन राजवंश	60–91
7.	इक्ष्वाकु, बृहत्फलायन, आनन्द, शालंकायन एवं विष्णु-कुंडिन राजवंश	92–118
8.	वेंगी का चालुक्य राजवंश	119–143
9.	काकतीय राजवंश	144–158
10.	चेदि शासक खारवेल	159–167
11.	पूर्वी गंग राजवंश	168–179
12.	चुटु एवं आभीर	180–188
13.	वाकाटक राजवंश	189–215
14.	वातापी का चालुक्य राजवंश	216–263
15.	लाट के चालुक्य	264–269
16.	मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजवंश	270–319
17.	कल्याणी का चालुक्य राजवंश	320–353
18.	देवगिरि का यादव राजवंश	354–382
19.	पल्लव राजवंश	383–421
20.	चोल राजवंश	422–479
21.	प्रथम पांड्य साम्राज्य	480–496
22.	द्वितीय पांड्य साम्राज्य	497–512

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

23. बनवासी का कदम्ब राजवंश ... 513–529
24. पश्चिमी गंग राजवंश (तलकाड के गंग) ... 530–541
25. होयसल राजवंश ... 542–567
26. मुस्लिम आक्रमण तथा हिन्दू राज्यों का पतन ... 568–582
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची ... 583–592

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विस्तृत अर्थ में दक्षिणापथ का प्रयोग विन्ध्य और हिन्द महासागर के मध्यवर्ती समस्त भू-भाग के लिए हुआ है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में महानदी की घाटी से लेकर कांची तक का क्षेत्र दक्षिणापथ में शामिल किया गया है। संकुचित अर्थ में दक्षिणापथ (Deccan) का प्रयोग उत्तर में विन्ध्य-नर्मदा से लेकर दक्षिण में कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के मध्यवर्ती भू-भाग के लिए किया जाता है। सूत्रग्रन्थों के पहले के वैदिक साहित्य (वेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्) में दक्षिणापथ की भौगोलिक सीमाओं के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। धर्मसूत्रों में पारियात्र पर्वत (विन्ध्य-पर्वत शृंखला का पश्चिमी भाग) के दक्षिण में स्थित क्षेत्र को दक्षिणापथ कहा गया है।[1] अश्वघोष की सुमंगलविलासिनी में इसे गंगा के दक्षिण में स्थित भूभाग बतलाया गया है। सुत्तनिपात में दक्षिणापथ का प्रयोग उस समस्त क्षेत्र के लिए हुआ है जो गंगा के दक्षिण में तथा गोदावरी के उत्तर में स्थित है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में दक्षिणापथ को माहिमष्ती (मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के तट पर स्थित महेश्वर) के दक्षिण का प्रदेश माना है (माहिष्मत्याः परतः दक्षिणापथः)। कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के दक्षिण में कन्याकुमारी तक का समस्त भू-भाग सुदूर दक्षिण (South India) है। पूर्वी एवं पश्चिमी घाट दक्षिणापथ को सुदूर दक्षिण से पृथक करते हैं।

दक्षिण भारत त्रिभुजाकार पठार है जिसकी चौड़ाई दक्षिण की ओर निरन्तर कम होती गयी है। इसके पूर्व में पूर्वी घाट एवं बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में पश्चिमी घाट तथा अरब सागर हैं। पश्चिमी घाट महाराष्ट्र के खानदेश ज़िले में कुन्दैवाड़ी के दर्रे से प्रारम्भ होकर बम्बई, मैसूर, कुर्ग तथा मद्रास होते हुए अन्त में कर्नाटक के दक्षिण में स्थित नीलगिरि की पहाड़ियों में पूर्वी घाटों से मिलते हैं। पश्चिमी घाटों का विस्तार लगभग 1500 किलोमीटर के क्षेत्र में है और अरब सागर से इनकी दूरी विभिन्न स्थानों पर 30 किलोमीटर से लेकर 120 किलोमीटर तक है। प्राचीन भारतीय साक्ष्यों में इन घाटों के उत्तरी भाग को सह्याद्रि तथा दक्षिणी भाग को मलय पर्वत कहा गया है। पश्चिमी घाटों की कई पर्वत-चोटियाँ गोदावरी, भीमा, कृष्णा तथा अन्य नदियों की घाटियों को एक दूसरे से पृथक करती हैं। इन घाटों के कई पर्वत शिखरों पर दुर्गम एवं दुर्भेद्य दुर्ग बनाये गये थे। सह्याद्रि के शिखरों को स्थान-स्थान पर काटकर अनेक दर्रे, याता-यात के लिए मार्ग

1. बौधायन-धर्मसूत्र 1/2/10.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बनाते हैं। इनमें त्रियम्बक, पालघाट, खन्दला, पिम्प्री, नाना तथा भोरघाट के दर्रे अधिक महत्वपूर्ण हैं। पिम्प्री का दर्रा नासिक, कल्याण तथा सोपारा को जोड़ता है। भोरघाट भी महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग रहा है। नाना का दर्रा जुन्नर से कोंकण के लिए तथा खन्दला का दर्रा बम्बई से पुणे के लिए मार्ग बनाता है।

सह्य पर्वत-शृंखला का क्षेत्र वन-सम्पदा के लिए प्रसिद्ध रहा है। वर्षा की अधिकता के कारण इस भू-भाग में घने जंगल पाये जाते हैं जिनमें टीक, चन्दन तथा बाँस के वृक्षों की बहुतायत है। पश्चिमी घाट पूर्वी घाटों से अधिक ऊँचे हैं और एक विशाल दीवार के समान प्रतीत होते हैं। इनके उत्तरी सिरे की ऊँचाई समुद्रतल से लगभग 600 मीटर है। दक्षिण की ओर यह ऊँचाई निरन्तर बढ़ती हुई अन्त में नीलगिरि में लगभग 2640 मीटर हो गयी है।

पूर्वी घाट उड़ीसा राज्य के गंजाम ज़िले में महेन्द्रगिरि से प्रारम्भ होकर बंगाल की खाड़ी के समानान्तर तथा इससे लगभग 80 किलोमीटर की दूरी रखते हुए तिरुनेलवेलि ज़िले में कुलक्काल तक विस्तृत हैं। कम ऊँचाई तथा जगह-जगह टूटे होने के कारण पूर्वी घाट पश्चिमी घाटों की अपेक्षा यातायात में कम बाधक बने हैं। अधिकांश प्रमुख नदियाँ पश्चिमी घाटों से ही निकलती हैं और नीचे की ओर बहती हुई तथा पूर्वी घाटों को काटती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। कन्याकुमारी के उत्तर-पश्चिम में पश्चिमी घाटों एवं अरब सागर के मध्य में, मलाबार तट तथा कोंकण क्षेत्र हैं और इसके उत्तर-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पूर्वी घाटों के बीच में कोरोमंडल तट है। पश्चिमी समुद्रतट के निचले मैदानों में नारियल, ताड़ तथा सुपाड़ी की पैदावार बहुत अधिक होती है। पूर्वी समुद्र-तट के मैदानी भू-भाग की चौड़ाई पश्चिमी समुद्र-तट के मैदानी क्षेत्र से अधिक है। अरब सागर में सामुद्रिक दस्युओं का आतंक रहता था और पूर्वी-समुद्र में भयंकर तूफ़ान प्रायः साहसिक व्यापारियों के जहाज़ों को भंग कर उन्हें धन-जन की अत्यधिक हानि पहुँचाते थे। प्राचीन काल में प्रतिष्ठान (पैठण), शूर्पारक (सोपारा), भृगुकच्छ (भड़ौच), कल्याणी (कल्याण), वैजयन्ती (वनवासी) कावेरीपट्टिनम् तथा कोरकै दक्षिण भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह थे जिनका, भारत की समृद्धि की अभिवृद्धि में बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा।

दक्षिण भारत की प्रमुख नदियाँ गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा तथा कावेरी हैं। छोटी नदियों में महानदी, भीमा, पेन्नेर, पेन्नार, पलार, वैगई, तथा ताम्रपर्णी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उल्लेखनीय हैं। गोदावरी का उद्गम-स्रोत नासिक ज़िले में त्रियम्बक के निकट ब्रह्मगिरि नामक स्थान है। यहाँ से वह दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 1440 किलोमीटर की लम्बाई में बहती हुई अन्त में बंगाल की खाड़ी में गिरती है। समुद्र में मिलने के पूर्व गोदावरी एक विशाल तथा उर्वर कृषि-योग्य विरल भूमि (delta) का निर्माण करती है।

कृष्णा (कृष्णवर्णा, कृष्णवेणा) सह्य पर्वत-शृंखला में महाबलेश्वर के निकट प्रारम्भ होकर पहले दक्षिण की ओर बहती है। कुरुन्दवाड़ के नीचे यह पूर्व की ओर मोड़ लेती है और दक्षिणी महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्र राज्यों से होकर बहती है। बीजापुर ज़िले में इसमें घटप्रभा और मलप्रभा नदियाँ मिलती हैं। भीमा तथा तुंगभद्रा भी इसी में मिलती हैं। पूर्वी घाटों में प्रवेश करने के उपरान्त कृष्णा आन्ध्र प्रदेश के लगभग 160 किलोमीटर के क्षेत्र में बहती है और करीब 1280 किलोमीटर की लम्बाई पूरी करने के उपरान्त बंगाल की खाड़ी में गिरती है। कृष्णा ने महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा कर्नाटक राज्यों के इतिहास और संस्कृति के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

कावेरी पश्चिमी घाटों के कुर्ग-क्षेत्र में ब्रह्मगिरि की पहाड़ी से निकलती है। यह सम्पूर्ण दक्षिणी कर्नाटक तथा तमिलनाडु में बहती हुई अन्त में पूर्वी-समुद्र में मिल जाती है। इसकी कुल लम्बाई लगभग 760 किलोमीटर है। बहुत प्राचीन काल से ही सिंचाई के लिए इसके पानी का भरपूर उपयोग होता रहा है। करिकाल चोल ने कावेरी के समुद्र में मिलने के स्थान पर पुहार (कावेरी-पट्टिनम्) नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह बनवाया था। यहाँ से भारत का अन्य देशों के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। कावेरी के उत्तर में चोल और दक्षिण में पांड्य राज्य स्थित थे। होयसलों तथा पश्चिमी-गंगों के लिए भी यह नदी काफी उपयोगी सिद्ध हुई। कावेरी बहुत पवित्र नदी मानी जाती है, और इसे दक्षिण गंगा भी कहते हैं। दक्षिण भारत की संस्कृति के विकास में इस नदी का विभिन्न रूपों में बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

महानदी, मध्यप्रदेश के रायपुर ज़िले में सिहवा नामक ग्राम के निकट प्रारम्भ होकर उड़ीसा राज्य में पहुँचती है। इसकी लम्बाई लगभग 850 किलो-मीटर है। भीमा नदी महाराष्ट्र के अहमदनगर, पुणे तथा शोलापुर ज़िलों को सिंचित करती है। तुंगभद्रा, कृष्णा की सर्वप्रमुख सहायक नदी है और यह तुंग तथा भद्र नामक स्रोतों से मिलकर बनी है। ये दोनों स्रोत पश्चिमी घाटों में गंगामूला नामक स्थान से निकलते हैं। तुंगभद्रा कर्नूल (आन्ध्र), रायसलीम, रायचूर तथा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बेल्लारी (कर्नाटक) ज़िलों से होकर गुज़रती है। यह नदी शताब्दियों तक कई राज्यों के बीच राजनैतिक सीमा बनाती रही। इसके उत्तर में बादामी के चालुक्यों, मान्यखेट के राष्ट्रकूटों तथा कल्याणी के चालुक्यों के राज्य स्थित थे और दक्षिण में पल्लवों तथा चोलों के। कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों का मध्यवर्ती रायचूर दोआब कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

ताम्रपर्णी नदी पश्चिमी घाटों में अगस्त्यमलै नामक पहाड़ी से निकलती है और तिरुनेलवेलि ज़िले से होकर गुज़रती है। तिरुनेलवेलि नगर इसी के तट पर स्थित था। ताम्रपर्णी सिंचाई के लिए सदैव बहुत उपयोगी रही है। मन्नार की खाड़ी में ताम्रपर्णी के मुहाने पर स्थित कोरकै पांड्यों की प्राचीनतम राजधानी तथा बहुत महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। यह नदी मोतियों के उत्पादन के लिए प्राचीन-काल से ही प्रसिद्ध रही है।[1] दक्षिण भारत चूंकि एशिया के मुख्य भू-भाग से बहुत अधिक दूरी पर स्थित था और यहाँ की भौगोलिक अवस्था ने उसे काफी हद तक पृथक एवं सुरक्षित बना दिया था, इसीलिए सहस्राब्दियों तक विदेशी आक्रान्ता वहाँ नहीं पहुँच सके। आर्य, ईरानी, यूनानी, शक, कुषाण, हूण तथा आठवीं शताब्दी से लेकर सन् 1292-93 तक के मुस्लिम आक्रान्ता उत्तर भारत को ही अपना लक्ष्य बना सके थे। भौगोलिक विघ्नों तथा आवागमन के साधनों की कठिनाई के कारण ही उत्तर एवं दक्षिण के सर्वाधिक महत्वाकांक्षी एवं शक्ति-शाली शासक भी सम्पूर्ण भारत को कभी भी अपने प्रत्यक्ष प्रभुत्व में नहीं रख सके। यद्यपि ईसा पूर्व चौथी एवं तीसरी शताब्दियों में मगध के नन्दों तथा मौर्यों ने दक्षिण भारत के काफी बड़े भू-भाग को जीतकर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था, परन्तु वे अधिक समय तक इसे अपने अधीन नहीं रख सके। आर० सी० मजूमदार ने ठीक ही कहा है कि यदि मौर्य काल में दक्षिण भारत में कोई विद्रोह हो जाता, तो पाटलिपुत्र तक इसकी सूचना पहुंचने में कम से कम तीन महीने लगते और वहाँ सेना आदि भेज कर इसे दबाने के लिए छः महीने का समय चाहिए था। इसलिए महान सम्राट अशोक ने भी चोल, पांड्य, केरल तथा सत्यपुत्र जैसे सुदूर दक्षिण के छोटे-छोटे राज्यों को अपने साम्राज्य में शामिल करने का प्रयास नहीं किया और समुद्रगुप्त ने दक्षिणा-पथ के 12 शासकों को पराजित करने के उपरान्त उनके राज्य वापस कर अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का ही परिचय दिया। राष्ट्रकूटों तथा चोलों ने यद्यपि

1. ताम्रपर्णी समेतस्य मुक्तासारं महोदधे (रघुवंश, 4/50); बृहत्संहिता (14/16; 80/12–13) से भी इसकी पुष्टि हो जाती है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्तर भारत पर कई बार सफल आक्रमण किये, किन्तु किसी भी विजेता का उद्देश्य उत्तर भारत के विजित भू-भाग को अपने साम्राज्य का अंग बनाना नहीं रहा।

भौगोलिक बाधाओं द्वारा पृथक किये जाने के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत का प्रारम्भिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास काफी हद तक उत्तर भारत से अप्रभावित रहा। कालान्तर में जब आर्यों ने दक्षिण भारत में पहुँचकर वहाँ अपनी संस्कृति को प्रतिष्ठित कर दिया, तो दक्षिण की संस्कृति में आर्यों की अनेक सांस्कृतिक परम्पराओं का समावेश हो गया। इस प्रकार दक्षिण भारत में एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ। परन्तु इसमें कुछ मूलभूत दक्षिणी तत्व सदैव उभार में रहे। इन दोनों भू-भागों की वेशभूषा, आचार-विचार तथा भाषाओं में भी अन्तर रहे हैं।

उपर्युक्त विवरण दक्षिण भारत की प्रमुख भौगोलिक विशिष्टताओं का निरूपण करने के साथ-साथ इस भू-भाग के इतिहास एवं संस्कृति के निर्माण में इन तत्वों के अपरिहार्य योगदान को उजागर करता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

2

इतिहास के विविध स्रोत

दक्षिण भारत का इतिहास जानने के साधनों को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) साहित्यिक ग्रन्थ,

(2) विदेशी स्रोत,

(3) पुरातात्विक सामग्री ।

साहित्यिक ग्रन्थ––भारत का प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ ऋग्वेद है । इसके एक मन्त्र में बतलाया गया है कि जिस व्यक्ति का आर्य-संस्कृति से बहिष्कार कर दिया जाता है वह दक्षिण की ओर चला जाता है । यहाँ पर दक्षिण के लिए प्रयुक्त शब्द को विभिन्न विद्वानों ने **दक्षिणापथ, दक्षिणपदा** तथा **दक्षिणापदा** पढ़ा है । एस० के० आयंगर के अनुसार ऋग्वेद के इस मन्त्र में दक्षिणापथ का स्पष्ट उल्लेख है, किन्तु यह मत निम्नलिखित कारणों से अमान्य है—

1. उपर्युक्त शब्द का पाठ एवं अर्थ अस्पष्ट तथा विवादास्पद है ।
2. ऋग्वेद में अन्यत्र कहीं भी दक्षिण भारत के किसी राजा, राज्य, नदी, पर्वत अथवा जनजाति आदि का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उल्लेख अप्राप्य है ।
3. अन्य तीन वेदों—सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी दक्षिण भारत के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती । इसलिए यही निष्कर्ष निकलता है कि वेदों की रचना के समय तक आर्य लोग दक्षिणापथ से अपरिचित थे ।
4. ऋग्वेद के उपर्युक्त अंश में यह भी स्पष्ट नहीं है कि आर्य-संस्कृति से बहिष्कृत किया गया व्यक्ति दक्षिण-दिशा में किस स्थान को जाता था ।

ऐतरेय ब्राह्मण (लगभग 800 ई० पू०) में विदर्भ राज्य (सम्प्रति महाराष्ट्र में) तथा इसके राजा भीम का उल्लेख हुआ है । इस ग्रन्थ में भोज, आन्ध्र, शबर तथा पुलिन्द नामक जन-जातियां भी वर्णित हैं । इससे प्रमाणित होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना के समय तक आर्य लोग विन्ध्य पर्वत शृंखला के दक्षिण में स्थित विदर्भ राज्य से ही परिचित हो पाये थे । शतपथ ब्राह्मण में रेवोत्तरस चाक्रपाहवस्थपति नामक व्यक्ति का उल्लेख है । यहाँ रेवोत्तरस का अर्थ

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ विद्वानों ने रेवा (नर्मदा नदी) के उत्तरी क्षेत्र का निवासी माना है। परन्तु यह अर्थ बहुत सन्देहपूर्ण है।

ऐतरेय आरण्यक में **चेरपादाः** का उल्लेख है और इनके विषय में बतलाया गया है कि ये उन तीन जन-जातियों में से एक जनजाति के लोग थे, जिन्होंने आर्य-संस्कृति एवं परम्पराओं का उल्लंघन किया था। ऐतरेय आरण्यक का यह विवरण स्पष्ट नहीं है, इसलिए इसके आधार पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि चेरपादाः का सम्बन्ध चेर (अर्थात् केरल) राज्य के लोगों से ही है। बृहदारण्यक उपनिषद् में विदर्भ राज्य के अध्यापकों के लिए कौडिन्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। कौशीतकी-उपनिषद् में वर्णित दक्षिण-पर्वत को कुछ विद्वानों ने विन्ध्य-पर्वत माना है। अन्य ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में दक्षिण भारत के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती। इसके पश्चात् पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी (ई० पू० छठी या पांचवीं शताब्दी) में अश्मक एवं कलिंग जनपदों का उल्लेख है। पाणिनि ने दाक्षिणात्य शब्द का भी प्रयोग किया है जिसका अर्थ 'दक्षिणापथ या दक्षिण भारत से सम्बन्धित' है। अश्मक राज्य (गोदावरी का निकटवर्ती क्षेत्र) को बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय में 16 महाजनपदों में शामिल किया गया है। प्राचीन कलिंग राज्य में मोटे तौर पर महानदी तथा गोदावरी नदियों के बीच का सामुद्रिक क्षेत्र शामिल था।[1]

बौधायन (लगभग चतुर्थ शताब्दी ई० पू०) ने कलिंग[2] राज्य के उल्लेख के अतिरिक्त उन पाँच रीतिरिवाजों[3] का भी वर्णन किया है जिनका प्रचलन दक्षिण के लोगों में था। अष्टाध्यायी के भाष्यकार कात्यायन (ई० पू० चौथी शती) के 'वार्त्तिक' में महाराष्ट्र के नासिक नगर तथा सुदूर दक्षिण के पांड्य, चोल और केरल राज्य वर्णित हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पांड्य राज्य की राजधानी मदुरा के प्रसिद्ध वस्त्रों तथा इस जनपद में उत्पन्न होने वाले

---

1. D. C. Sircar: Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, pp. 84 85.
2. बौधायन-धर्मसूत्र 1/1/2/15-15.
3. यथैतदनुपेतेन सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषित भोजनं मातुलपितृष्व-सृदुहितृगमनमिति (वही, 1/2/3)। ये विशिष्ट आचरण इस प्रकार हैं— जिनका यज्ञोपवीत न हुआ हो उनके साथ भोजन करना, पत्नी के साथ भोजन, बासी अन्न का भोजन तथा मामा एवं बुआ की पुत्री के साथ विवाह करना।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्कृष्ट मोतियों के व्यापार का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में कावेरी नदी तथा मलय पर्वत भी वर्णित हैं। अशोक के शिलालेख दो में चोल, पांड्य, केरल तथा सत्यपुत्र नामक सुदूर दक्षिण के राज्यों का उल्लेख है। पतंजलि के महाभाष्य (द्वितीय शताब्दी ई० पू०) में कांचीपुर नगर एवं केरल राज्य वर्णित हैं।

रामायण में गोदावरी, कृष्णवेणी (कृष्णा), कावेरी तथा ताम्रपर्णी नदियाँ, मलय एवं महेन्द्र पर्वत तथा विदर्भ, दंडकारण्य, जनस्थान (महाराष्ट्र में), कलिंग (उड़ीसा), आन्ध्र, चोल, पांड्य, माहिषक (दक्षिणी कर्नाटक) तथा केरल राज्यों के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में दक्षिण भारत की अधिकांश नदियों, जनपदों, एवं पर्वतों आदि के उल्लेख हैं। इस महाकाव्य में यह भी बतलाया गया है कि कलिंग राज्य शंखों, रत्नों एवं वस्त्रों के लिए, अश्मक राज्य अधिक दूध देने वाली गायों के लिए, पांड्य राज्य चन्दन के लिए और चोल एवं केरल राज्य मुक्ता, वैदूर्य, चन्दन एवं अगुरु आदि के लिए प्रसिद्ध थे। रामायण तथा महाभारत में अगस्त्य ऋषि द्वारा आर्य-संस्कृति को दक्षिण में प्रतिष्ठित करने से सम्बन्धित विवरण एवं कथानक भी प्राप्त होते हैं।

संगम साहित्य—सुदूर अतीत में पांड्य शासकों ने विभिन्न विषयों के विद्वानों की गोष्ठियों या परिषदों का आयोजन किया था जिन्हें **संगम** कहा गया है। इस प्रकार के कुल तीन संगम पांड्य शासकों की संरक्षकता में आयोजित हुए थे। इन गोष्ठियों के अवसर पर पांड्य राज्य में विभिन्न विषयों के विद्वानों का सम्मिलन एवं विचारों का आदान-प्रदान हुआ जिसके परिणामस्वरूप अनेक विषयों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं टीकाएं रची गयीं। परम्परागत विवरण के अनुसार सम्पूर्ण संगम-युग का साहित्य अत्यधिक विशाल था, किन्तु प्रथम दो संगमों के अधिकांश ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं और अब मुख्यतः तृतीय संगम के ही कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

इस सम्पूर्ण साहित्य में 2279 कविताएं शामिल हैं जो 473 कवियों द्वारा विरचित बतलायी गयी हैं। इन कविताओं में से 102 के रचयिताओं के नाम वर्णित नहीं हैं। लगभग प्रत्येक कविता के अन्त में टिप्पणियाँ संलग्न हैं जिनमें उनकी रचना एवं रचयिताओं आदि के विषय में सूचना मिलती है। के० ए० एन० शास्त्री के अनुसार ये टिप्पणियां बाद में सम्पादकों द्वारा जोड़ी गयी होंगी।

इन संगमों के बारे में परवर्ती साक्ष्यों में उपलब्ध परम्परागत विवरण अनैतिहासिक है। इनका सर्वप्रथम उल्लेख इरैयनार अगप्पोरुल (लगभग 750 ई०) की 'प्रस्तावना' में प्राप्त होता है। इसके अनुसार प्रथम दो संगमों की अध्यक्षता

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अगस्त्य ऋषि ने की थी और इनका आयोजन क्रमशः मदुरा एवं कपाटपुरम् में हुआ था। प्रथम संगम 4400 वर्ष तक चला और इसकी संरक्षकता 89 पांड्य शासकों ने की थी। इसमें 4499 कवि शामिल हुए थे। इस संगम के उल्लेखनीय ग्रन्थों में अकत्तियम (अगत्तियम), परिपाडल, मुदुनारै, मुदुकुरुकु तथा कलरियाविरै हैं। द्वितीय संगम 3700 वर्ष तक चला और इसका संरक्षण 59 पांड्य राजाओं ने किया। इसमें 3700 कवियों ने भाग लिया था। इस संगम के अवसर पर 8149 ग्रन्थों की रचना हुई। परन्तु इनमें से केवल प्रसिद्ध तमिल व्याकरण ग्रन्थ तोल्काप्पियम् ही शेष बचा है। द्वितीय संगम के कुछ अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं —अगत्तियम्, व्यालमालै, मापुरानम्, कलि तथा कुरुकु। तृतीय संगम मदुरा नगर में नक्कीरर की अध्यक्षता में आयोजित हुआ था। इसका अधिवेशन 1850 वर्ष तक चलता रहा। इसमें 449 कवियों ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं और इसका संरक्षण 49 पांड्य राजाओं ने किया था। इस संगम के उल्लेखनीय ग्रन्थों में नेद्रुकथोकै, नूत्रैम्बत्थ, परिपाडल, वरि, कूत्थु, नत्रिनै, परिसै एवं पदित्तपत्तु हैं। इस प्रकार इन तीनों संगमों की कुल कालावधि 9,990 वर्ष बतलायी गयी है। इनमें 8,598 कवियों एवं विद्वानों ने भाग लिया और इन्हें 197 पांड्य शासकों ने सरक्षण प्रदान किया।

संगम-साहित्य के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। श्रीनिवास आयंगर ने इसे ई० पू० लगभग 500 तथा 500 ई० के बीच रखा है। कुछ विद्वान इसे प्रथम तथा तीसरी या चौथी शताब्दी के मध्य में रखते हैं। के०ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार संगम-साहित्य की रचना में लगभग 150 वर्ष (100-250 ई०) लगे होंगे। उपर्युक्त मतों में आयंगर महोदय का विचार अग्राह्य है। संगम-साहित्य में वर्णित घटनाओं को ध्यान में रखते हुए इसे 100 तथा 300 ई० के बीच रखना अधिक समीचीन होगा।

इस साहित्य में मुख्य रूप से सुदूर दक्षिण के चेर, चोल एवं पांड्य राज्यों के प्रारम्भिक इतिहास तथा इन राज्यों के कुछ समकालीन शासकों के पारस्परिक सम्बन्धों, विजयों तथा अन्य उपलब्धियों के विषय में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। वस्तुतः ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के सूदूर दक्षिण के इतिहास के लिए आभिलेखिक तथा अन्य साधनों की अपेक्षा संगम-साहित्य अधिक विस्तृत सामग्री प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त यह तमिल-साहित्य की विकसित अवस्था एवं दक्षिण भारत के सांस्कृतिक जीवन के विविध पहलुओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अन्य ग्रन्थ—पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से दक्षिण भारत के अधिकांश राजवंशों के इतिहास के लिए कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होने लगते हैं। पल्लवों के इतिहास के लिए लोकविभाग, मत्तविलासप्रहसन, अवन्तिसुन्दरी-कथासार, महावंश एवं नन्दिक्कलम्बकम् उपयोगी हैं। जैनग्रन्थ लोकविभाग पल्लव शासक सिंहवर्मन के राज्यकाल के विषय में सूचना देता है। श्री लंका का बौद्धग्रन्थ महावंश पल्लवों का तिथिक्रम निर्धारित करने में विशेष रूप से सहायक होने के अतिरिक्त कुछ राजाओं की विजयों तथा अन्य उपलब्धियों पर भी प्रकाश डालता है। दंडी द्वारा विरचित अवन्तिसुन्दरीकथासार सिंह-विष्णु के राज्यकाल के विषय में सूचना देता है। इस ग्रन्थ में सिंहविष्णु के कुछ समकालीन शासकों के भी उल्लेख हैं तथा उस समय की सांस्कृतिक अवस्था का चित्रण है। महेन्द्रवर्मन प्रथम के मत्तविलासप्रहसन में शैवधर्म के कापालिक सम्प्रदाय तथा इसकी बुराइयों का विशेष रूप से विवरण है। इस मुख्य वर्ण्य-विषय के साथ-साथ इसमें छठी शताब्दी के सांस्कृतिक जीवन की कुछ झलकियाँ भी मिलती हैं। तमिल ग्रन्थ नन्दिक्कलम्बकम् के लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें मुख्यतः पल्लव नन्दिवर्मन तृतीय के जीवन एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है और पल्लव राजधानी कांची के ऐश्वर्य का वर्णन है।

पांड्य वंश के इतिहास के लिए स्थानीय-अनुश्रुतियों के संग्रह काफी महत्वपूर्ण हैं। **स्थल-पुराणों** में यद्यपि पांड्यों के विषय में बहुत सामग्री मिलती है, किन्तु इनमें वर्णित पांड्य शासकों के वंशानुक्रम की पुष्टि प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्यों से नहीं होती। स्थल-पुराण वस्तुतः लोकप्रिय कथाओं पर आधारित हैं। तिरुविलैमाडल नामक पुराण में सात पांड्य राजाओं के विषय में सूचना मिलती है। यह ग्रन्थ अन्य स्थल-पुराणों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है। पांडिककोवै में कुछ पांड्य शासकों के युद्धों आदि के विवरण हैं। वेलुजोतिवारिवंशावली भी पांड्यों के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है। गंगादेवी का मधुराविजय काव्य पांड्य राजधानी मदुरा में मुस्लिम सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात् वहाँ की दयनीय अवस्था का चित्रण प्रस्तुत करता है।

चोल वंश के प्रारम्भिक इतिहास के लिए संगम-साहित्य काफी उपयोगी है। साम्राज्यवादी चोलों के इतिहास के लिए चोलवंशचरित् (वृहद्दीश्वर-माहात्म्य), नवचोलचरित, कलिंगत्तुपराणि, पेरियपुराणम्, वीरशोलियम्, कोंगुदेशराजाक्कलचरितम्, दिव्यसूरिचरित एवं गुरुपरापरै नामक ग्रन्थ बहुत

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महत्वपूर्ण हैं। इनमें बुधमित्र की वीरशोलियम् नामक व्याकरण की पुस्तक में व्याकरण के कुछ नियमों को ऐतिहासिक उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार के सन्दर्भ विशेष रूप से उपयोगी हैं।

तमिल ग्रन्थ पेरियपुराणम् की रचना शेक्किलर ने कुलोत्तुंग द्वितीय (1130-1150 ई०) के राज्यकाल में की थी। इसमें 12वीं शताब्दी की सुदूर दक्षिण की सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्था का प्रामाणिक विवरण है। जयनगोंडार के कलिंगत्तुपराणि में मुख्यतः कुलोत्तुंगप्रथम के सेनापति करुणाकर तोंडमान् द्वारा कलिंग राज्य की विजय का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में कुलोत्तुंग प्रथम की वंशतालिका भी वर्णित है। दिव्यसूरिचरित एवं गुरुपरापरै सांस्कृतिक जीवन के लिए उपयोगी हैं। ओट्टकूत्तन द्वारा लिखित तीन उलाएं भी चोल इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। इनमें विक्रमचोल, कुलोत्तुंग द्वितीय तथा राजराज द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन है।

पूर्वी तथा पश्चिमी चालुक्यों के इतिहास के लिए बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित, सोमेश्वर तृतीय का मानसोल्लास (अभिलषितार्थचिन्तामणि), विक्रमांकाभ्युदय[1], रन्न द्वारा रचित कन्नड़ काव्य गदायुद्ध तथा पम्प कवि का पम्पभारत बहुत महत्वपूर्ण हैं। अन्तिम दो ग्रन्थ महाभारत के कथानक पर आधारित हैं और वे राष्ट्रकूटों के इतिहास पर भी प्रकाश डालते हैं। जिनसेन का आदिपुराण तथा उसके शिष्य गुणभद्र का उत्तरपुराण राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष प्रथम तथा कृष्ण द्वितीय के राज्यकाल की कुछ घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं। हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि देवगिरि के यादवों के इतिहास के लिए अत्यधिक उपादेय है। हेमाद्रि, यादव शासक महादेव एवं रामचन्द्र के राज्यकाल में मंत्री था। अतएव उसका विवरण प्रामाणिक है। चतुर्वर्गचिन्तामणि निम्नलिखित चार खंडों में विभाजित है :—

1. व्रतखंड
2. दानखंड
3. तीर्थखंड
4. मोक्षखंड

यादव शासकों के इतिहास के लिए व्रतखंड सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अन्य खंडों में मुख्यतः सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन से सम्बन्धित सूचना मिलती है। जिनप्रभासूरि का नासककल्प, मेरुतंग का प्रबन्धचिन्तामणि, ज्ञानेश्वर

1. यह ग्रन्थ कुछ ही वर्ष पूर्व प्रकाश में आया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(13वीं शताब्दी) द्वारा भगवतगीता पर मराठी में लिखित भाष्य एवं विद्यानाथ के प्रतापरुद्रीय के अतिरिक्त सूक्तिमुक्तावली तथा 'महानुभाव सम्प्रदाय' के ग्रन्थ लीलाचरित्रम्, भानुविलास और रत्नमालास्रोत यादवों के इतिहास एवं उनके काल की सांस्कृतिक अवस्था पर प्रकाश डालते हैं।

होयसल राजवंश के इतिहास के लिए गद्यकर्णामृत, गुरुवंशमहाकाव्य, अरुणाचलपुराण, होयसलराजविजय, होयसलराजकुलवंश, श्रवणबेलगोला एवं तलकाड के 'स्थलपुराण' एवं वेलूर तथा हालेबिद की कैफ़ियत, टिक्कनसोमयाजि तथा कोयिलोलुगु प्रमुख हैं। गद्यकर्णामृत में सोमेश्वर विषयक विवरण है। गुरुवंशमहाकाव्य में बल्लाल तृतीय, हरिहर एवं बुक्का के संघर्षों का वर्णन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कोयिलोलुगु की रचना सम्भवत: 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अथवा 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई थी। इसका विवरण श्रीरंगम् के विष्णु-मन्दिर में उस समय सुरक्षित साक्ष्यों पर आधारित है। अरुणाचलपुराण बल्लाल तृतीय के विषय में सूचना देता है, किन्तु इसका विवरण अधिक विश्वसनीय नहीं है।

मदुरैत्तलवरलारु तथा श्रीरंगकोयिल-ओलुगु में प्रारम्भिक काल के विवरण अप्रामाणिक हैं, किन्तु 1200 ई० तथा इसके बाद के काल के लिए ये ग्रन्थ महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। केरलोत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

5805

विदेशी विवरण––चीनी साक्ष्यों से हमें ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में भारत का चीन के साथ व्यापार होता था, परन्तु इस सन्दर्भ में दक्षिण भारत के विषय में कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। विदेशी लेखकों में सम्भवत: मेगास्थनीज सर्वप्रथम सुदूर दक्षिण के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालता है। वह चन्द्रगुप्त मौर्य के राजदरबार में यूनानी शासक सेल्यूकस के राजदूत की हैसियत से काफी समय तक रहा था। उसने इंडिका नामक ग्रन्थ लिखा जो अब अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। किन्तु मेगास्थनीज के बाद के यूनान एवं रोम आदि देशों के अनेक लेखकों ने इंडिका के अंशों को अपनी पुस्तकों में उद्धृत किया है जिनके माध्यम से ही हमें मेगास्थनीज का विवरण प्राप्त होता है। इंडिका दक्षिण भारत के बारे में बहुत कम सूचना देती है। इसमें सुदूर दक्षिण के केवल पांड्य राज्य के विषय में बतलाया गया है कि हेराक्लीज की पुत्री पांड्या वहां शासन कर रही थी। वह एक कुशल प्रशा-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सिका थी और उसके राज्य में 365 गांव थे जिनके निवासी उसे नियमित रूप से कर एवं भेंट देते थे।

मेगास्थनीज़ के पश्चात् स्ट्रैबो (प्रथम शताब्दी ई० पू०), प्लिनी (प्रथम शताब्दी ई०), Periplus of the Erythrean Sea (इसके लेखक का नाम अज्ञात है) तथा टालमी० उल्लेखनीय हैं। ये लेखक मुख्यत: दक्षिण भारत के मिस्र, यूनान, रोम तथा अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। पेरिप्लस का लेखक मिस्र का एक नाविक था। उसने स्वयं व्यापार के सिलसिले में अनेक देशों की सामुद्रिक यात्राएं की थीं जिनमें भारत भी शामिल था। इस प्रकार उसका विवरण व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित होने के कारण बहुत प्रामाणिक है। Erythrean Sea नाम का प्रयोग यूनान तथा रोम के लेखकों ने हिन्द महासागर के लिए किया है। पेरिप्लस में वर्णित पत्तनों, व्यापारिक मंडियों, राज्यों एवं नगरों में बेरीगज़ा (भृगुकच्छ या भड़ौच), दचिनादेश या दखिनादेश (दक्षिणापथ जिसे बेरीगज़ा के दक्षिण में स्थित बतलाया गया है) सुप्पारा (प्राचीन शूर्पारक जो महाराष्ट्र के ठाणे जिले में स्थित सोपारा है) तथा केल्लिना (आधुनिक कल्याण) महत्वपूर्ण हैं। उसने सुदूर दक्षिण के मसलिया (मसुलिपटनम) दमरिका (तमिल-देश) तथा पंडियन राज्य का भी उल्लेख किया है। पेरिप्लस में पश्चिमी समुद्रतट से पश्चिमी जगत के साथ होने वाले व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। किन्तु दक्षिण भारत के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विषय में इस ग्रन्थ में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती है। पेरिप्लस को विभिन्न विद्वानों ने 100 तथा 150 ई० के बीच रखा है।

टालमी भी मिस्र का रहने वाला था। उसने अपना भूगोल ग्रन्थ An Outline of Geography 150 ई० के आसपास लिखा था। वह भूगोल का प्रकांड विद्वान था और उसने भूगोल विषयक सभी उपलब्ध पुस्तकों का अध्ययन किया था। टालमी स्वयं भारत नहीं आया था। उसका भारत विषयक विवरण व्यापारियों, नाविकों तथा यात्रियों से प्राप्त सूचना एवं पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों पर आधारित था। उसने पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रतटों के अनेक बन्दरगाहों, व्यापारिक केन्द्रों तथा नगरों आदि का वर्णन किया है जिनमें प्रमुख निम्न-लिखित हैं–बेरीगज़ा (भड़ौच), सोपारा, नासिक (महाराष्ट्र), पलौरा मीन-नगर (उड़ीसा), मैसोलिया (आन्ध्र) तथा पांड्योन देश (पांड्य राज्य)। पेरिप्लस तथा टालमी के भूगोल ग्रन्थ की रचना के समय दक्षिण भारत में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सातवाहन राजवंश शासन कर रहा था। ये दोनों ग्रन्थ प्रमाणित करते हैं कि उक्त काल में दक्षिण भारत का पश्चिमी देशों, विशेषरूप से रोम के साथ व्यापार बहुत उन्नत अवस्था में था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में चीनी यात्री फाहियान भारत आया था। उसने तुश्सिन के नाम से दक्षिणापथ का उल्लेख मात्र किया है, किन्तु दक्षिण भारत के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं दी है। कॉसमॉस (Cosmos) की Christian Topography (छठी शताब्दी का पूर्वार्ध) भारत के पश्चिमी समुद्रतट से होने वाले व्यापार के विवरण के लिए उपयोगी है। ह्वेनसांग (सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) ने दक्षिण भारत में कई महीने बिताये थे। उसने महाराष्ट्र के शासक पुलकेशिन द्वितीय तथा पल्लव राजा नरसिंहवर्मन प्रथम (?), उसकी राजधानी कांची तथा महाबलीपुरम् आदि के विषय में महत्वपूर्ण सूचना दी है।

ह्वेनसांग के पश्चात् इत्सिंग 671-72 से 695 ई० तक भारत में रहा। वह यद्यपि दक्षिण भारत नहीं गया था, किन्तु उसने 60 बौद्ध भिक्षुओं के जीवन-चरित लिखे। इसी सन्दर्भ में उसके विवरण में दक्षिण-भारत के विषय में भी कुछ तथ्य मिल जाते हैं। मत्वालिन का विवरण चालुक्य शासक विनयादित्य एवं विजयादित्य के चीन के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। पल्लव नरसिंहवर्मन द्वितीय (लगभग 695 से 722 ई०) के राज्यकाल में चीन के सम्राट ने एक दूत-मंडल पल्लव राज्य में भेजा था जिसके बदले में पल्लव शासक ने भी अपना दूतमंडल चीन भेजा। 11वीं शताब्दी में चोल शासक सम्भवतः कुलोत्तुंग प्रथम का एक दूतमंडल चीन के सम्राट के पास गया था। इन सभी दूतमंडलों के विवरण चीनी साक्ष्यों में मिलते हैं। परवर्ती काल के चीन के लेखकों में चाऊ-जू-कुआ ने, जो विदेशी व्यापार का निरीक्षक था, 1225 ई० के आस-पास Chu Fan-Chi नामक ग्रन्थ लिखा। यह भी दक्षिण भारत के इतिहास के लिए कुछ उपयोगी है। मुस्लिम इतिहासकारों के विवरण 9वी शताब्दी से उपलब्ध होते हैं। इन लेखकों में तबरी, इब्नखुर्दबा (844 ई०), अबूज़ैद (916 ई०), इब्न-अलफकी (10वीं शताब्दी का प्रारम्भ), अबुलफेदा (1273-1331 ई०), इब्न-बतूता (1304-1375-76 ई०), इसामी, ज़ियाउद्दीन बरनी, फ़िरिस्ता, तथा वस्सफ महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त अमीर खुसरो भी बहुत बड़ा विद्वान था। उसे लगातार दिल्ली के छः खिलजी एवं तुगलक सम्राटों का संरक्षण प्राप्त हुआ था। इसामी ने 1350 ई० के लगभग फुतूह-अस-सलातीन नामक ग्रन्थ लिखा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जिसमें यामिनी राजवंश से लेकर मुहम्मद तुगलक तक के इतिहास का विवरण है। वह तुगलक युग का निर्भीक लेखक था और इसीलिए वह मुहम्मद तुगलक की यातनाओं का भी शिकार हुआ। उसके विवरण में निष्पक्षता के साथ-साथ मुहम्मद तुगलक के प्रति कुछ द्वेष-भावना भी झलकती है। बरनी का प्रसिद्ध ग्रन्थ तारीखे-फीरोज़-शाही 1358 ई० के आस-पास पूरा हुआ था। इसमें बलवन से लेकर मुहम्मद तुगलक तक के दिल्ली के सम्राटों के राज्यकालों का विवरण है। इब्न-बतूता 1334 से 1342 ई० तक दिल्ली में रहा था। उसने रेहला (Rehla) नामक ग्रन्थ में राजनैतिक घटनाओं के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, यातायात तथा डाक-सेवा पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। उसका विवरण मुहम्मद तुगलक के शासन काल के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

उपर्युक्त लेखकों के ग्रन्थों में मुख्यरूप से हिन्दू राज्यों के पतन एवं उनमें मुस्लिम सत्ता की स्थापना का ही वर्णन है। किन्तु इनके विवरण प्रायः एकांगी हैं और उन्होंने अपने संरक्षक सम्राटों की हिन्दू राज्यों पर विजय का ब्योरा काफी अतिरंजित ढंग से दिया है। साथ ही दक्षिण भारत के शासकों के विषय में सही सूचना नहीं दी है। परवर्ती काल के यूरोप के लेखकों में मार्को पोलो का नाम उल्लेखनीय है। उसके विवरण में पांड्य राज्य के विषय में सूचना मिलती है।

पुरातात्विक साधन—पुरातात्विक साधनों में अभिलेख, सिक्के तथा स्मारक प्रमुख हैं।

अभिलेख—दक्षिण भारत के इतिहास के निर्माण के लिए अभिलेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन हैं। लगभग 400 तथा 1600 ई० के बीच के दक्षिण भारत के विभिन्न राजवंशों के शासकों ने प्रस्तर-खंडों, स्तम्भों, मन्दिरों, ताम्र-पत्रों, सिक्कों तथा मुद्राओं आदि पर 50 हज़ार से भी अधिक अभिलेख उत्कीर्ण कराये थे।[1] अभिलेखों के प्राप्ति-स्थान तथा दान-परक अभिलेखों में वर्णित दान में प्रदत्त भूमि अथवा ग्राम आदि की भौगोलिक स्थिति सम्बन्धित शासकों के राज्यों के विस्तार एवं सीमाओं पर प्रकाश डालती है। बड़े अभिलेखों में से अधिकांश का प्रारम्भ प्रायः किसी देवता अथवा देवी की वन्दना से होता है। यह स्तुति, अभिलेख उत्कीर्ण कराने वाले शासक के धार्मिक विश्वासों के विषय में सूचना प्रदान करती है। दान-परक अभिलेखों में दान-प्राप्तकर्ता का नाम, उसकी जाति, गोत्र तथा शैक्षिक योग्यताओं का भी प्रायः वर्णन होता है। दान में दी गयी

1. J. D. M. Derrett, The Hoyasalas p. 206.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भूमि या तो पूर्णतया कर-मुक्त होती थी अथवा दान-प्राप्तकर्ता से प्रचलित दर से बहुत कम कर लिया जाता था। इस प्रकार के सन्दर्भों में कुछ करों के नाम तथा उनकी दरों की जानकारी प्राप्त होती है। तिथि-युक्त अभिलेखों में या तो किसी संवत् का उल्लेख है अथवा शासन के वर्ष का। इनसे हमें सम्बन्धित राजाओं की शासनावधि निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

'प्रशस्ति' वर्ग के तथा अन्य बड़े अभिलेखों में राजाओं का वंशानुक्रम, उनकी उपाधियों एवं उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है। 'वीरगलों' (hero stones) पर उत्कीर्ण लेखों में युद्ध में मारे गये वीर योद्धाओं का वर्णन होता है और संकल्पित (votive) तथा अन्य अभिलेखों में प्रशासन की इकाइयों तथा पदाधिकारियों आदि के भी उल्लेख मिलते हैं। संक्षेप में, अभिलेख राजनैतिक इतिहास के अतिरिक्त प्रशासन-व्यवस्था, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के अनेक पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। परन्तु यहाँ स्थानाभाव के कारण केवल महत्वपूर्ण अभिलेखों में से भी कुछ का उल्लेख करना ही सम्भव है। प्राचीनतम अभिलेख मौर्य सम्राट अशोक के राज्यकाल के हैं जो दक्षिण भारत के उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा कर्नाटक राज्यों में कई स्थानों पर पाये गये हैं। ये अभिलेख इन राज्यों का अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित होना प्रमाणित करते हैं। अशोक के शिलालेख संख्या दो में चोल, पांड्य, केरलपुत्र तथा सत्यपुत्र (चोडा, पाडा, सतियपुतो, केरलपुतो) नामक सुदूर दक्षिण के राज्यों का उल्लेख है और इन्हें उसके साम्राज्य की सीमा पर स्थित बतलाया गया है, वे मौर्य साम्राज्य के अंग नहीं थे। इसके अतिरिक्त अशोक के अभिलेखों में दक्षिण भारत के इतिहास के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

दक्षिणापथ में सर्वप्रथम सातवाहनों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। इस वंश के शासकों के अभिलेख मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र राज्यों के विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। सातवाहन-अभिलेखों में गौतमीवलश्री की नासिक प्रशस्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें गौतमीपुत्र शातकर्णि की विजयों के सन्दर्भ में दक्षिणापथ एवं सुदूर दक्षिण के अनेक राज्यों एवं कुछ पर्वतों का उल्लेख हुआ है। सातवाहनों-के अभिलेख मुख्यतः दक्षिणापथ की प्रशासन-व्यवस्था, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विषय में सूचना देते हैं। कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगंफा अभिलेख (प्रथम शताब्दी ई० पू० का उत्तरार्ध) उड़ीसा के इतिहास के लिए बहुत उपादेय है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सातवाहन साम्राज्य के पतन के पश्चात पूर्वी दक्षिणापथ में पल्लवों, इक्ष्वाकुओं, शालंकायनों, विष्णुकुंडिनों एवं पूर्वी चालुक्यों ने राज्य किया। इन राजवंशों का इतिहास भी हमें बहुसंख्यक अभिलेखों से ही ज्ञात होता है। विष्णु-कुंडिन् वंशीय शासकों के इतिहास के निर्माण में निम्नलिखित छः ताम्र-पत्र अभिलेख अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं—पोलमूरु, इपुर ताम्रपत्रों के प्रथम एवं द्वितीय सेट, रामतीर्थ, चिक्कुल्ल, तुंडी तथा बेलपुरु के ताम्र-पत्र अभिलेख। हरिषेण के राज्यकाल का अजन्ता अभिलेख तथा प्रभावती गुप्ता के पूना (पुणे) एवं ऋठपुर ताम्रपत्र वाकाटक राजवंश पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। वातापी के चालुक्यों के इतिहास के लिए मंगलेश, पुलकेशिन द्वितीय तथा विक्रमादित्य द्वितीय के राज्यकाल के क्रमशः महाकूट, ऐहोल एवं कांची के अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम दो प्रशस्ति शैली में लिखे गये हैं। महाकूट अभिलेख वातापी के चालुक्यों के प्रारम्भिक इतिहास के लिए अपरिहार्य है। ऐहोल प्रशस्ति की रचना जैन कवि रविकीर्ति ने की थी। इसमें पुलकेशिन द्वितीय तक के चालुक्य शासकों के वंशानुक्रम एवं उपलब्धियों आदि पर प्रकाश डाला गया है और पुलकेशिन द्वितीय की दिग्विजय का विस्तृत एवं क्रमबद्ध वर्णन है।

राष्ट्रकूटों के इतिहास के लिए दन्तिदुर्ग के समनगढ़ एवं दशावतार अभिलेख, अमोघवर्ष प्रथम का संजन-अभिलेख, गुजरात-शाखा के राष्ट्रकूट शासक कृष्ण एवं इन्द्र तृतीय के राज्यकाल के क्रमशः 888 तथा 914 ई० के बगुम्रा अभिलेख और कृष्ण तृतीय का करहड अभिलेख अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। कल्याणी के चालुक्यों के विषय में सत्याश्रय का होट्टूर अभिलेख, जयसिंह द्वितीय का मीराज अभिलेख, विक्रमादित्य पंचम का कोथेम तथा विक्रमादित्य षष्ठ का हन्दरिके अभिलेख विस्तृत सूचना देते हैं।

कदम्ब शासक काकुस्थवर्मन की तालगुंड प्रशस्ति इस राजवंश के इतिहास के लिए बहत उपयोगी है। पल्लव वंश के प्रारम्भिक इतिहास के लिए प्राकृत में लिखित शिवस्कन्द के राज्यकाल के मैयिडवोलु एवं हीरहडगल्लि अभिलेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साम्राज्यवादी पल्लवों के इतिहास के लिए परमेश्वरवर्मन प्रथम का कूरम अभिलेख, नन्दिवर्मन द्वितीय के कशाकुडी एवं उदयेन्दिरम अभिलेख, नन्दिवर्मन तृतीय का वेलूरपाल्यम् अभिलेख और नृपतुंगवर्मन का बाहूर अभिलेख अधिक महत्वपूर्ण हैं। अन्तिम अभिलेख तमिल क्षेत्र के सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डालता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पांड्यों के प्रारम्भिक इतिहास के लिए अधिक अभिलेख उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु 1000 ई० के बाद के पांड्य शासकों के 1000 से भी अधिक अभिलेख मिले हैं। इनमें तिरूचिरापल्ली, अम्बासमुद्रम्, शिन्नमनूर तथा वेलवीक्कुडि से प्राप्त अभिलेख विस्तृत ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। चोलवंश के इतिहास के लिए विजयालय के बाद के शासकों के अभिलेख मिलते हैं। किन्तु विजयालय के पूर्ववर्ती चोल शासकों के इतिहास के लिए अभिलेख अधिक सहायक नहीं है। परान्तक प्रथम के राज्यकाल के उत्तरमेरुर के अभिलेख उस समय के सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। राजेन्द्र चोल के करंडै तथा तिरुवालंगाडु अभिलेख, राजेन्द्र तृतीय का तिरुवेन्दिपुरम अभिलेख, राजराज प्रथम के तंजौर के शिव-मन्दिर पर उत्कीर्ण अभिलेख तथा वीरराजेन्द्र का तिरुमुक्कूडल अभिलेख विस्तृत सूचना देते हैं। तिरुवेन्दिपुरम् अभिलेख में चोलवंश के उत्कर्ष एवं अपकर्ष तथा राजराज तृतीय को उसके सामन्त होयसल शासकों द्वारा दी गई सहायता का विवरण है। तंजौर के शिव-मन्दिर पर उत्कीर्ण अभिलेख में इस मन्दिर की आर्थिक व्यवस्था का भी ब्यौरा दिया है। तिरुमुक्कूडल अभिलेख में अन्य तथ्यों के विवरण के अतिरिक्त औषधालय में उपलब्ध औषधियों का भी उल्लेख है। काकतीय गणपति के राज्यकाल का मोटुपल्लि अभिलेख सामुद्रिक व्यापार तथा गणपति द्वारा व्यापारियों को दी गयी सुविधाओं पर प्रकाश डालता है। देवगिरि के यादव शासकों के 400 से भी अधिक अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। इनमें संगमनेर, आश्वी, कलसबुद्रुख, कालेगांव तथा मुत्तगे से प्राप्त अभिलेख विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रारम्भिक अभिलेखों में किसी संवत का उल्लेख नहीं है और शक संवत का सर्वप्रथम प्रयोग चालुक्य शासक पुलकेशिन प्रथम के वातापी अभिलेख में हुआ है। कल्याणी के चालुक्य शासकों के कुछ अभिलेखों में विक्रमादित्य षष्ठ (1076–1120 ई०) द्वारा प्रवर्तित विक्रम संवत का प्रयोग हुआ है।

(ख) सिक्के—सिक्कों की धातुएँ, विविधता, डिज़ाइनें, उनके प्राप्ति-स्थान एवं उन पर उत्कीर्ण लेख विभिन्न प्रकार की सूचना प्रदान करते हैं। अधिक मूल्यवान तथा शुद्ध धातुओं के सिक्कों का बड़े पैमाने पर प्रचलन आर्थिक समृद्धि का परिचायक है। किसी राजा के सिक्कों के प्राप्ति-स्थान यद्यपि निःसन्दिग्ध रूप से उन स्थानों का उसके राज्य में शामिल होना नहीं प्रमाणित करते, परन्तु वे अन्य साक्ष्यों की सूचना की पुष्टि करते हैं तथा व्यापार पर प्रकाश डालते हैं। लेख-युक्त सिक्के विशेष रूप से उपादेय हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इनसे हमें राजाओं के नामों, उपाधियों तथा कभी-कभी तिथि की जानकारी प्राप्त हो जाती है। सिक्कों पर अंकित डिज़ाइनें तथा पुनर्चिन्हित (re struck) सिक्के सम्बन्धित शासकों की विजयों आदि पर प्रकाश डालते हैं। कुछ शासकों[1] के नाम केवल सिक्कों से ही ज्ञात हुए हैं।

दक्षिण भारत के इतिहास के निर्माण में सिक्कों से बहुत कम सहायता मिली है। इस भू-भाग के प्रारम्भिक काल के इतिहास के लिए या तो सिक्कों का नितान्त अभाव है, अथवा वे बहुत अल्प संख्या में उपलब्ध हैं। अधिकांश सिक्के लेख-रहित हैं और लेख-युक्त सिक्कों के लेखों को पढ़ना भी प्रायः कठिन है। प्रारम्भिक सिक्कों पर तिथि अंकित नहीं है, केवल राजा का नाम या उपाधि ही प्रायः पाई जाती है।

उत्तर भारत की भाँति दक्षिण भारत के भी सबसे प्राचीन सिक्के 'आहत-सिक्के' (punch-marked coins) हैं जिनका सबसे बड़ा ढेर आन्ध्र राज्य के गुंटूर ज़िले में अमरावती से प्राप्त हुआ था। इस निधि में कुल 7,668 सिक्के थे। परन्तु आहत-सिक्कों में से अधिकांश व्यापार के माध्यम से उत्तर भारत से ही दक्षिण भारत पहुँचे थे। वस्तुतः दक्षिण भारत में अल्प संख्या में आहत-सिक्के तैयार किये गये। 'पुराण' नामक आयताकार चांदी के आहत-सिक्के तथा तांबे के आहत-सिक्के ई० सन् के प्रारम्भ होने के कुछ पूर्व दक्षिण भारत में प्रचलित[2] थे और 200 ई० के आसपास उनका प्रयोग समाप्त हो गया था।

परवर्ती युग में सोने के सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। दक्षिण भारत के प्राचीनतम सोने के सिक्कों पर छोटे-छोटे आहत-चिन्ह अंकित हैं। इन सिक्कों के पश्चात् 'पद्मटंक[3]' नामक सिक्के प्रचलित हुए और अन्त में सांचे से निर्मित सिक्के तैयार किये जाने लगे। कालान्तर में सोने के सिक्कों को दो

---

1. सातवाहन शासक कुम्भशातकर्णि, शकशातकर्णि तथा कर्ण-शातकर्णि के नाम केवल उनके सिक्कों से ही ज्ञात हुए हैं। इनका पुराणों अथवा अभिलेखों मे उल्लेख नहीं मिलता।
2. ए० एस० अल्तेकर के अनुसार दक्षिणापथ तथा सुदूर दक्षिण के आहत-सिक्के सम्भवतः ई० पूर्व 500 के पहले नहीं तैयार किये गये होंगे।
3. इन सिक्कों के मध्य भाग में पद्म या कमलपुष्प की आकृति अंकित की गई है, इसलिए इन्हें पद्मटंक नाम दिया गया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नाम दिये गये : (1) हुन (Hun),[1] 'पगोडा' या 'वराह'[2] (2) फनम या पनम[3]। वराह का वजन 3.25–4 ग्राम तक होता था। इसका दसवाँ भाग फनम कहलाता था जो प्रायः 325 या 400 मिली ग्राम का होता था।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में व्यापार के माध्यम से रोम साम्राज्य से बहुत बड़ी संख्या में सोने तथा चांदी के सिक्के दक्षिण भारत आये[4]। ई० जे० रैप्सन के अनुसार सम्भवतः मुख्यतः इसीलिए इस काल में दक्षिण भारत में बहुत कम सिक्के तैयार किये गये। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है। रोम के सिक्के दक्षिण भारत के सिक्कों को प्रभावित नहीं कर सके और उनके अनुकरण पर वहाँ सोने अथवा चांदी का कोई सिक्का नहीं बनाया गया था।

दक्षिण भारत के राजवंशों में सर्वप्रथम सातवाहनों ने बड़ी संख्या में सीसे, पोटिन (तांबे एवं टिन का मिश्रण) चांदी एवं तांबे के सिक्के चलाए। चांदी के सिक्के केवल गौतमीपुत्र शातकर्णि, वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णि, वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि तथा यज्ञश्रीशातकर्णि ने ही चलाए थे।[5] सातवाहन शासकों के सिक्कों पर अंकित चिन्हों में हाथी, घोड़ा, सिंह, मानव आकृतियाँ, धनुष-बाण, तीन मेहराब वाली पहाड़ी, चैत्य तथा उज्जयिनी-चिन्ह प्रमुख हैं। पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रपों की भाँति सातवाहनों ने सिक्का जारी करने वाले शासक के पिता के नाम का उल्लेख नहीं किया। चूंकि सातवाहन वंश में एक ही नाम के एक से अधिक राजा हुए, इसलिए कभी-कभी उनके समीकरण में कठिनाई होती है। गौतमीपुत्र शातकर्णि ने बड़ी संख्या में सिक्के जारी किये जिनमें

---

1. हुन (Hun) तमिल शब्द पोन का विकृत रूप है जिसका अर्थ 'सोना' है।
2. इन सिक्कों पर विष्णु के वराह अवतार का चित्रण है।
3. यह संस्कृत शब्द पण से बना है। देखिये Journal of the Anthropological Society of Bombay, Vol. 2, pp. 155 ff.
4. रोमन सिक्के कडप्पा, विशाखापटनम, गुंटूर, कर्नूल, नलगोंडा (आन्ध्र) जिलों के अतिरिक्त कोयम्बटूर, मदुरई (तमिलनाडु) तथा अन्य कई स्थानों पर ढेरों में एवं फुटकल रूप में प्राप्त हुए हैं। इनमें ई० पूर्व 19-21 से लेकर 217 ई० तक के रोम के सम्राटों के सिक्के शामिल हैं। अगस्तस के पहले का कोई रोमन सिक्का नहीं मिला है। इससे प्रमाणित होता है कि दक्षिण भारत का रोम साम्राज्य के साथ व्यापार उपर्युक्त काल में ही उन्नत अवस्था में था।
5. जी० याजदानी, दकन का इतिहास, पृष्ठ 757।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से अधिकांश पोटिन के हैं। 1906 ई० में नासिक के निकट जोगलथम्बी नामक स्थान से प्राप्त 13,250 (कुछ विद्वानों के अनुसार 13,270) चांदी के सिक्कों की निधि में नहपान के 9,270 सिक्कों पर गौतमीपुत्र का नाम पुनः अंकित किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि इस सातवाहन शासक ने नहपान को पराजित कर उसके सिक्कों को अपने नाम से चालू किया था। वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने भी बड़े पैमाने पर सिक्के चलाए। यज्ञश्रीशातकर्णि के कुछ सिक्कों के मुख भाग पर दो मस्तूलों वाला जहाज़ एवं पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी-चिन्ह अंकित है। ये सिक्के उसकी नौ सेना एवं उसके राज्य काल में होने वाले सामुद्रिक व्यापार पर प्रकाश डालते हैं।

आन्ध्र देश के इक्ष्वाकु शासकों ने सातवाहनों के सिक्कों का ही मुख्यतः अनुकरण किया। इक्ष्वाकुओं ने अधिकतर सीसे के सिक्के जारी किये, जिनके मुख भाग पर सूंड़ उठाये हाथी एवं पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी-चिन्ह अंकित है। परन्तु यह आश्चर्यजनक लगता है कि वाकाटक तथा राष्ट्रकूट जैसे शक्तिशाली एवं दीर्घ काल तक शासन करने वाले राजवंशों के शासकों ने सिक्के नहीं चलाए। अभी तक प्राप्त सिक्कों में से कोई भी निःसन्दिग्ध रूप से इन राजवंशों के किसी शासक से सम्बन्धित नहीं किया जा सका है। यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रकूट अभिलेखों में द्रम्म, सुवर्ण, गद्याणक, कलंजु एवं कासु नामक सिक्कों के उल्लेख हुए हैं। लेख रहित 2 ग्राम वज़न वाले सोने के चार सिक्कों को एम० एच० कृष्ण ने राष्ट्रकूटों से सम्बन्धित किया है, परन्तु यह मत बहुत सन्देहपूर्ण है।

वातापी के चालुक्यों ने सर्वप्रथम मुख भाग पर अंकित वराह की आकृति वाले सिक्के चलाये थे। बाद में इस वर्ग के सोने के सिक्के 'वराह' नाम से ही प्रसिद्ध हो गये। वेंगी के चालुक्य शासकों में कम से कम छः के लेख-युक्त सिक्के प्राप्त हुए हैं। कुछ सोने के सिक्कों पर 'विषम-सिद्धि' विरुद अंकित है। यह उपाधि इस वंश के संस्थापक कुब्जविष्णुवर्धन ने धारण की थी। इसलिए कुछ विद्वानों ने इसी शासक को इन सिक्कों का प्रवर्तक माना है। शक्तिवर्मन, राज-राज तथा कुलोत्तुंग प्रथम के सिक्कों के मध्य भाग में वराह की आकृति तथा छत्र अंकित है।

कल्याणी के चालुक्य शासकों में जयसिंह, जगदेकमल्ल, सोमेश्वर प्रथम तथा तैलप तृतीय के सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनमें से कुछ सिक्कों पर पांच भिन्न-भिन्न ठप्पों से पांच सिंहों की आकृतियाँ चिन्हित की गई हैं और कुछके मध्य भाग में गुम्बददार शिखरयुक्त मन्दिर एवं उसके ऊपर की ओर चक्र बना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इन पर कन्नड़ भाषा में राजा का नाम अंकित है। देवगिरि के यादव शासकों में सिंहण, महादेव, कृष्ण एवं रामदेव के 'पद्मटंक' सिक्के प्राप्त हुए हैं। पद्मटंक सिक्के सम्भवतः सबसे पहले कदम्ब शासकों ने चलाये थे। इनके मुख भाग के मध्य में सिंह की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर प्रायः राजा का नाम मिलता है। कुछ सिक्कों के मुख भाग के मध्य में गजसिंह की आकृति पाई जाती है। दक्षिण भारत में पद्मटंक सिक्कों का सर्वाधिक प्रचलन था।

पल्लवों के सिक्कों को ई० जे० रैप्सन ने दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया है–(1) दूसरी-तीसरी शताब्दी के तांबे के सिक्के जिनके पृष्ठ भाग पर जहाज की आकृति है। ये सिक्के यज्ञश्रीशातकर्णि के सिक्कों से प्रभावित हैं। (2) परवर्तीकाल के सोने एवं चांदी के सिक्के जिन पर पल्लवों का राजकीय-चिन्ह सिंह और कन्नड़ भाषा में लेख अंकित हैं। परन्तु पल्लव सिक्कों की सर्वप्रमुख विशिष्टता उनके मुखभाग पर उत्कीर्ण बैल की आकृति है जो इस वंश के कई शासकों की मुद्राओं पर भी पाई जाती है।

चोलों ने सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्के चलाये और पीतल का भी प्रयोग किया। मुख भाग की डिज़ाइनों के आधार पर उनके सिक्कों को दो भागों में बांटा जा सकता है––(1) जिन सिक्कों के मुख भाग के मध्य में सिंह तथा उसके दोनों ओर पांड्यों एवं चेरों के राजकीय-चिह्न क्रमशः मत्स्य तथा धनुष हैं। (2) जिनके मुख भाग पर पुरुष की आकृति है। प्रथम वर्ग के सिक्कों में चोलों का चिह्न सिंह पांड्यों एवं चेरों के राजकीय-चिह्नों से कहीं अधिक प्रमुखता के साथ प्रदर्शित किया गया है। इससे चोलों का इन राज्यों पर आधिपत्य प्रमाणित होता है। चोल शासकों में सर्वप्रथम उत्तम चोल ने सोने के सिक्के चलाये थे। राजेन्द्र चोल के सिक्कों पर उसकी गंगैकोंडचोल तथा युद्धमल्ल नामक उपाधियाँ अंकित हैं और कुलोत्तुंग प्रथम के कुछ सिक्कों पर उसे कंटैकोंडचोलन तथा मलयनडुकोंडचोलन के विरुदों से विभूषित किया गया है।

पांड्यों ने तांबे के सबसे अधिक संख्या में सिक्के जारी किए। उनके सोने एवं चाँदी के बहुत कम सिक्के मिले हैं। पांड्यों के प्राचीनतम सिक्कों पर हाथी या बैल की आकृति पाई जाती है। किन्तु बाद वाले अधिकांश सिक्कों पर उनका राजकीय-चिह्न मत्स्य उत्कीर्ण है। चेर राज्य में 9वीं शताब्दी के पहले का कोई सिक्का नहीं मिला है। परवर्ती काल के चेर शासकों के सिक्के मुख्यतः कोंगुदेश एवं केरल में प्राप्त हुए हैं। इन पर उनका राजकीय-चिह्न धनुष अंकित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्मारक एवं अन्य पुरातात्विक साक्ष्य––अभिलेखों एवं सिक्कों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों में स्मारक तथा उत्खनन और सतह से प्राप्त मूर्तियां, विभिन्न प्रकार के बर्तन, औजार, अस्त्र-शस्त्र एवं उपकरण भी शामिल हैं। सातवाहन, इक्ष्वाकु, चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल, होयसल, काकतीय, गंग एवं यादव राजवंशों के अनेक राजाओं ने अपनी राजधानियों तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों को मन्दिरों से सुशोभित किया था। दक्षिणापथ के प्राचीनतम स्मारक ई० पू० तृतीय-द्वितीय शताब्दी के शैलकृत चैत्य एवं बिहार हैं जो मुख्यत: पश्चिमी दक्षिणापथ में पाये जाते हैं, और इनके अन्तिम उदाहरण एलोरा के आठवीं-नवीं शताब्दी के स्मारक हैं। दक्षिण भारत के छठी शताब्दी तक के स्मारकों में से अधिकांश बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। छठी-सातवीं शताब्दी तथा इसके बाद में बने मन्दिरों में से अधिकांश विष्णु एवं शिव के हैं। इनके पश्चात् जैन-स्मारकों का स्थान है। दक्षिण भारत के उल्लेखनीय मन्दिरों में ऐहोल का विष्णु मन्दिर, एलोरा का कैलाश मन्दिर, कोणार्क का सूर्य-मन्दिर, कांची के विरूपाक्ष एवं बैकुंठपेरूमाल मन्दिर, तंजौर का राजराज प्रथम के राज्यकाल का शिव-मन्दिर, राजेन्द्र चोल द्वारा निर्मित गंगैकोंडचोलपुरम का मन्दिर तथा होयसलों के राज्यकाल के वेलूर एवं हालेविद के मन्दिर शामिल हैं। ये स्मारक न केवल दक्षिण भारत के स्थापत्य के क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हैं, वरन् अपने निर्माताओं के धर्म, कला-प्रेम एवं समृद्धि के भी परिचायक हैं। उन पर उत्कीर्ण शिल्प सांस्कृतिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। जिन स्मारकों पर लेख भी अंकित हैं, वे विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

दक्षिण भारत की चित्रकला में अजन्ता के भित्तिचित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अजन्ता की गुफा संख्या 9, 10, 1, 2, 16 तथा 17 के चित्र अन्य गुफाओं की अपेक्षा अधिक सुरक्षित अवस्था में हैं। ये चित्र ई०पू० द्वितीय शताब्दी से लेकर लगभग सातवीं शताब्दी के मध्य तक के दक्षिण भारत के सांस्कृतिक जीवन के विषय में प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं। एलोरा के कैलाश मन्दिर के द्वार-मंडप की छत में भी कुछ चित्र हैं जिनमें युद्ध के दृश्य बहुत प्रभावोत्पादक हैं। प्राग्-इतिहास एवं आद्य-इतिहास काल की संस्कृतियों के विषय में उत्खनन तथा सतह से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष (प्रस्तर उपकरण, मृद्भांड, मनके एवं धातु उपकरण आदि) ही जानकारी के प्रमुख साधन हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

3

प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियां

प्रागैतिहासिक मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न प्रकार के प्रस्तर-उपकरणों/औज़ारों द्वारा ही करता था, इसलिए उस युग की संस्कृतियों को प्रस्तर-युगीन संस्कृतियां (Stone Age Cultures) कहते हैं। इन्हीं प्रस्तर-उपकरणों एवं औज़ारों आदि के अध्ययन के आधार पर इन संस्कृतियों की रूपरेखा बनाई गई है। सम्पूर्ण प्रस्तर-युग मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित है—

1. पुरापाषाण काल (Palaeolithic Age),
2. नूतन पाषाण काल (Neolithic Age)।

पुरापाषाण काल को निम्नलिखित तीन उपविभागों में विभक्त किया गया है—

1. निम्न-पुरापाषाण काल (Lower Palaeolithic Age),
2. मध्य-पुरापाषाण काल (Middle Palaeolithic Age),
3. उच्च-पुरापाषाण काल (Upper Palaeolithic Age)।

1. **निम्न-पुरापाषाण काल**—भारत में निम्न-पुरापाषाण काल की दो पृथक सांस्कृतिक परम्पराएं मिलती हैं–

(क) पंजाब की **सोहान संस्कृति** जिसे प्रायः पेबुल-फलक उद्योग कहा जाता है।

(ख) दक्षिण भारत की **हस्त-परशु** संस्कृति।

भारत में सर्वप्रथम मद्रास के निकट पल्लवरम् में ब्रूसफूट महोदय ने 1863 ई० में निम्न-पुरापाषाण कालीन एक प्रस्तर हस्त-परशु (handaxe) प्राप्त किया था, इसलिए दक्षिण भारत के हस्त-परशु उद्योग को मद्रासी उद्योग कहते हैं। 1864 ई० में ब्रूसफूट को अत्तिरमपक्कम् (मद्रास के समीप) में कुछ पेबुल-उपकरण भी मिले थे। एक दीर्घ अन्तराल के उपरान्त 1935-36 ई० में पैटर्सन को बादामुदुरई तालाब से द्वितीय हिम-प्रत्यावर्तन (Second Interglaciial Period) स्तर से पेबुल-उपकरण प्राप्त हुए थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आदि मानव सबसे पहले प्राकृतिक प्रहारों से भग्न हुए पेबुलों (pebbles) एवं शल्कों (flakes) को ही उपकरण के रूप में इस्तेमाल करता होगा। कालान्तर में उसने शल्क निकालकर पेबुलों को सुडौल बनाना सीख लिया। इसके उपरान्त हस्त-परशु परम्परा का विकास हुआ। हस्त-परशु परम्परा के विकसित हो जाने पर पेबुल-उपकरणों का प्रयोग काफी कम तो हुआ, किन्तु समाप्त नहीं हुआ।

निम्न-पुरापाषाण कालीन हस्त-परशु यद्यपि उत्तर भारत के अनेक स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं, परन्तु उनका मुख्य केन्द्र प्रायद्वीपीय भारत ही था। अफ्रीका में हस्त-परशु परम्परा भारत की अपेक्षा काफी पहले विकसित हो गई थी। चूंकि दक्षिण भारत के हस्त-परशु आकार-प्रकार में अफ्रीकी हस्त-परशुओं से मिलते-जुलते हैं, इसलिए विद्वानों का अनुमान है कि यह परम्परा सम्भवतः अफ्रीका से ही प्रायद्वीपीय भारत में पहुंची होगी।

निम्न-पुरापाषाणकाल के उपकरण-समूह में विभिन्न प्रकार के रुक्ष तथा भारी अबीवीलियन-अश्यूलियन[1] हस्त-परशु, विदारक[2] (cleavers) और चॉपर एवं चॉपिंग[3] प्रमुख हैं। ये सामान्यतया स्फटिक पत्थर (quartzite) के पेबुलों एवं नोड्युलों को तोड़कर बनाये जाते थे। इनमें अंडाकार, बादामाकार या नाशपत्याकार हस्त-परशु सर्वप्रमुख तथा बहुधन्धी उपकरण था। उपर्युक्त उपकरणों/औज़ारों का किन कामों में प्रयोग किया जाता था, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि चॉपर सम्भवतः किसी वस्तु को शक्तिपूर्ण प्रहारों द्वारा तोड़ने अथवा काटने-पीटने में इस्तेमाल होता था और क्लीवर का प्रयोग पशुओं का पेट चीरकर मांस निकालने तथा लकड़ी एवं पेड़-पौधों की जड़े काटने में किया जाता होगा। अन्य उपकरण सम्भवतः खोदने तथा छीलने आदि में प्रयुक्त

---

1. इस प्रकार के हस्त-परशु सर्वप्रथम फ्रांस के सेन्ट-अश्यूल (St. Acheul) तथा अबेविल (Abbeville) नामक स्थानों पर मिले थे, इसीलिए इन्हें अबीवीलियन एवं अश्यूलियन कहा जाता है।
2. पेबुल में से दो बड़े शल्कों को निकालकर बनाये गये उपकरण को क्लीवर कहते हैं। इनका कार्यांग (working-edge) चौड़ा तथा छेनी के आकार का होता था।
3. एकमुखी (unifacial) पेबुल-उपकरणों को चॉपर तथा द्विमुखी (bifacial) को चॉपिंग नाम दिये गये हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होते थे। इस युग के उपकरणों में मूठ नहीं लगाई जाती थी[1]। इसलिए इन्हें हाथ में पकड़कर ही इस्तेमाल किया जाता था।

निम्न-पुरापाषाण-कालीन उपकरण केरल राज्य के अतिरिक्त भारत के लगभग अन्य सभी भागों में प्राप्त हुए हैं। इससे इन क्षेत्रों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण देश में मानव की उपस्थिति प्रमाणित होती है। ये उपकरण प्रायः भूमि की सतह से अथवा नदियों की वेदिकाओं से एकत्र किये गये हैं। परन्तु अनेक स्थानों पर वे स्तरित अनुक्रम (stratified sequence) में भी मिले हैं। उदाहरण के लिए कांडिली (बम्बई के समीप) में क्लेक्टोनी एवं अश्यूली-उपकरण सबसे नीचे के स्तर में, फलक-शल्क उद्योग (blade and flake industry) दूसरे स्तर में और तृतीय एवं चतुर्थ स्तरों में फलक तथा छिद्रक आदि पाये गये। मार्वे (बम्बई के निकट) में भी निम्न-पुरापाषाण कोर-परम्परा से लेकर लघु-पाषाण काल तक की संस्कृतियाँ स्तरित अनुक्रम में प्राप्त हुई हैं। गिद्दालूर, नन्दीकनामादर्रा (आन्ध्र राज्य के कर्नूल जिले में) तथा निचली गोदावरी क्षेत्र में भी निम्न-पुरापाषाणयुगीन हस्त-परशु परम्परा से मध्य-पाषाण काल तक चार संस्कृतियों का स्तरित अनुक्रम मिला है।

उपकरणों के साथ में कुछ स्थलों पर जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र राज्य में पैठण, मधमेश्वर, कालेगांव तथा नेवासा में जंगली हाथी, बैल एवं गैंडे के जीवाश्म मिले हैं। चित्तूर और टेक्कलकोट्टा (कर्नाटक राज्य के बेल्लारी ज़िले में) में पेबुल-उपकरणों के साथ वृषभ की हड्डियां प्राप्त हुईं। नन्दूर में दरियाई घोड़े तथा हाथी के तथा नेवासा के ग्रैवेल स्तर में पांच गोवंशी पशुओं के जीवाश्म प्रकाश में आये। प्रायद्वीपीय भारत में अन्य पशुओं की अपेक्षा हाथी और वृषभ की हड्डियां अधिक मिली हैं।

निम्न-पुरापाषाण काल में मानव नंगा घूमता था और भोजन के लिए बड़े-बड़े पशु-पक्षियों का शिकार कर उनका कच्चा मांस, पेड़-पौधे एवं कन्दमूल आदि खाता था। वह प्रायः ऐसे स्थानों पर रहता था जहाँ उसे अपने औजार/उपकरण बनाने के लिए पत्थर, पीने के लिए पानी तथा शिकार के लिए जंगली

1. कुछ उपकरण काफी नुकीले हैं। अतः एच० डी० सांकलिया का अनुमान है कि उन्हें सम्भवतः लकड़ी आदि में फंसाकर भाले जैसे अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जाता होगा। परन्तु अब तक प्राप्त निम्न-पुरापाषाण उपकरणों में से किसी में भी मूठ लगाने (hafting) का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पशु-पक्षी सरलता से उपलब्ध हो जाते थे। इसलिए वह पहाड़ियों, गुफ़ाओं के आश्रय-स्थलों अथवा उनके निकट तथा नदियों, झीलों एवं जंगलों के समीपवर्ती क्षेत्रों में निवास करता था। परन्तु इन अनुकूल क्षेत्रों में भी वह स्थायी रूप से नहीं रहता था, वरन् शिकारी तथा यायावर के रूप में संचरण करता हुआ केवल अपना भोजन संचित करता था। निम्न-पुरापाषाण कालीन स्तरों से अभी तक चूल्हे, कोयले, राख तथा पालतू पशुओं की हड्डियों के अवशेष नहीं मिले हैं। परन्तु धीरे-धीरे नवीन सामग्री के प्रकाश में आने के परिणामस्वरूप अब इस विचार को बल मिलता जा रहा है कि इस काल में ही मनुष्य बड़े-बड़े जंगली पशुओं, पक्षियों तथा पेड़-पौधों को भोजन के लिए कहीं-कहीं पर संचित भी करता था। नेवासा तथा चित्तूर के निकटवर्ती स्थानों से प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात हुआ है कि अनुकूल स्थलों पर वह यदा-कदा डेरा डालकर कुछ समय तक रहता भी था। इस युग का कोई नरकंकाल नहीं मिला है। अतः हमें निम्न-पुरापाषाण संस्कृतियों के निर्माताओं की प्रजाति/प्रजातियों के विषय में जानकारी नहीं प्राप्त वर्ष तक हो सकी है।

इस सांस्कृतिक युग की अवधि निश्चित रूप से बताना सम्भव नहीं, परन्तु अफ्रीका एवं यूरोप की समकक्ष संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से तथा भूगर्भीय प्रयोगों के आधार पर हम इसका काल ई० पूर्व पांच लाख से लेकर 50 हजार मान सकते हैं।[1]

मध्य-पुरापाषाण काल––भारत में मध्य-पुरापाषाण काल यूरोप तथा अफ्रीका के देशों के मध्य-पुरापाषाण काल की भाँति सुस्पष्ट नहीं है। परन्तु गत दो-तीन दशकों में अनेक स्थलों से नवीन सामग्री के प्रकाश में आने के परिणामस्वरूप इस काल के विषय में हमारी जानकारी में काफी वृद्धि हुई है और इसके कई महत्वपूर्ण तत्व उजागर हो गये हैं। सर्वप्रथम नेवासा में मध्य-पुरापाषाण उद्योग के उपकरण प्राप्त हुए थे। इसके बाद भारत के अनेक स्थलों से इस संस्कृति के उपकरण प्रकाश में आ चुके हैं और अब तक प्राप्त सामग्री से यह स्पष्ट हो गया है कि मध्य-पुरापाषाण संस्कृति भारत के अधिकांश भागों में व्याप्त थी। इस संस्कृति की निम्नलिखित उल्लेखनीय विशिष्टताएं हैं—

1. इस काल में उपकरण पेबुलों एवं नोडुलों के स्थान पर चपटी सतह

---

1. डी० टेरा एवं टी० टी० पैटर्सन के अनुसार मानव सम्भवतः सर्वप्रथम 4,35,000 वर्ष पूर्व (द्वितीय हिमप्रत्यावर्तन काल के अन्तिम भाग में) पंजाब में सोहान नदी की घाटी में प्रकट हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाले त्रिभुजाकार अथवा अंडाकार शल्कों तथा फलकों पर बनाये जाते थे।

2 ये उपकरण निम्न-पुरापाषाण कालीन उपकरणों की अपेक्षा काफी सुडौल, आकार में छोटे तथा तकनीकी दृष्टि से अधिक विकसित हैं।

3. इनके निर्माण में मुख्यतः चकमक पत्थर (chert) का ही प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट किस्म के बसाल्ट (basalt), सुलेमानी पत्थर (agate), सिक्थ-स्फटिक (chalcedony) तथा अग्नि-प्रस्तर (flint) भी इस्तेमाल हुए हैं। जहाँ अच्छे किस्म का स्फटिक पत्थर (quartzite) उपलब्ध होता था, वहां उसका भी प्रयोग किया गया है। आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ मध्य-पुरापाषाण स्थलों से स्फटिक पत्थर के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

4. इस युग के उपकरण-समूह में विभिन्न आकार-प्रकार के स्क्रेपर, छिद्रक, छोटे आकार के चॉपर तथा चॉपिंग प्रमुख हैं। कुछ स्थानों पर लघु आकार के हस्त-परशु तथा विदारक भी मिले हैं। इन उपकरणों में मूठ लगाने का भी प्राविधान था जो इस युग की बहुत महत्वपूर्ण तकनीकी उपलब्धि थी।

मध्य-पुरापाषाण युगीन उपकरण उड़ीसा के कुछ भागों से, महाराष्ट्र के अधिकांश भागों से, आन्ध्र राज्य के नलगोंडा, चित्तूर, कर्नूल एवं कडप्पा जिलों से, कर्नाटक में शोरापुर-दोआब एवं समुद्रतटीय क्षेत्र के अतिरिक्त बेलगांव, बीजापुर, बेल्लारी गुलबर्गा तथा धारवाड़ जिलों से और तमिलनाडु के कई स्थलों से प्राप्त हुए हैं। सर्वप्रथम प्रवरा नदी के तटवर्ती क्षेत्र में मध्य-पुरापाषाण उपकरण स्तरित जमावों (stratified deposits) में मिले थे। दक्षिण भारत के उन महत्वपूर्ण स्थलों में जहां ये उपकरण स्तरित अनुक्रम में (निम्न-पुरापाषाण उपकरण-समूह के ऊपर तथा उच्च-पुरापाषाण युगीन उपकरणों के नीचे) प्राप्त हुए हैं, नागपुर के निकट वैणगंगा के समीप के इलाके, बम्बई के निकट कांडिली, मधमेश्वर, कालेगांव, नन्दूर (सभी महाराष्ट्र में), चित्तूर (आन्ध्र), अत्तिरमपक्कम् एवं गुडियम् (तमिलनाडु) तथा कर्नाटक राज्य के तमिलहल (Tamilhal) एव अलमत्ति (Alamatti) हैं।

उत्तर भारत में आदमगढ़, भीमवेडका (मध्य प्रदेश में), लंघनाज (गुजरात में), बेलन की घाटी, पंजाब तथा पश्चिमी राजस्थान के कुछ स्थानों पर मध्य-पुरापाषाण कालीन उपकरण स्तरित अनुक्रम में मिले हैं।

सबसे पहले कालेगांव में इस काल के उपकरणों के साथ जंगली वृषभ का सींगयुक्त सिर मिला था। भीमा नदी के तटवर्ती क्षेत्र में जंगली वृषभ तथा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जंगली हाथी के जीवाश्म प्राप्त हुए। वर्मनघाट, नेवासा (महाराष्ट्र), गुलबर्गा तथा बेल्लारी ज़िलों (कर्नाटक) में भी उपर्युक्त पशुओं के जीवाश्म प्रकाश में आए हैं।

कार्बन–14 तिथि-गणना के आधार पर भारत के मध्य-पुरापाषाण काल को ई०पू० 37,000 तथा 10,000 वर्ष के मध्य रखा गया है।[1] इस काल में भी मानव प्रायः पहाड़ियों, नदियों, झीलों एवं जंगलों के निकटवर्ती स्थानों में रहता था जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुकूल थे।

उच्च-पुरापाषाण काल—मध्य-पुरापाषाण काल के उपरान्त उच्च-पुरापाषाण युग प्रारम्भ हुआ। कई स्थलों पर इन दोनों कालों के बीच स्पष्ट स्तरित अनुक्रम के प्रमाण नहीं मिले हैं। इस युग में प्रस्तर-उपकरणों को बनाने की तकनीक तथा उनके प्रयोग में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। उच्च-पुरापाषाण काल में हड्डी, लकड़ी, बांस तथा चमड़े का भी प्रयोग होने लगा था। इस काल का सर्वप्रमुख तकनीकी आविष्कार पहले से भली-भांति तैयार किये गये कोरों (cores) से समन्त अन्त वाले फलकों का निर्माण करना था। इस प्रकार के फलक सभी उच्च-पुरापाषाण युगीन उद्योगों के प्रमुख अंग थे। इनके अतिरिक्त इस युग के उपकरण-समूह में फलक-चाकू, छिद्रक, विविध प्रकार के स्क्रेपर तथा अर्धचन्द्राकार प्रमुख हैं। उपकरणों का निर्माण मुख्यतः चकमक, सिक्थ-स्फटिक, सूर्यकान्तमणि तथा कहीं-कहीं स्फटिक पत्थर से किया जाता था।

निम्न तथा मध्य-पुरापाषाण संस्कृतियों की अपेक्षा उच्च-पुरापाषाण युग-की संस्कृतियाँ अधिक विस्तृत भू-भाग में व्याप्त थीं और इसके उपकरण भारत के लगभग सभी भागों में प्राप्त हुए हैं। पैठण, कांडिली, मार्वे (महाराष्ट्र), गिद्दालूर, नन्दीकनामादर्रा, रेनीगुंटा, कडप्पा, प्रकाशम् (आन्ध्र), शोरापुर-दोआब (कर्नाटक), अत्तिरमपक्कम् तथा गुडियम् (तमिलनाडु) के अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत के अन्य बहुत से स्थलों पर भी उच्च-पुरापाषाण उपकरण स्तरित अनुक्रम में मिले हैं। आन्ध्र राज्य के कर्नूल जिले की उच्च-पुरापाषाण-युगीन गुफ़ाओं में एम० एल० के० मूर्ति महोदय ने बारहसिंगा, गैंडा, कुरंग तथा कुछ अन्य वन्य पशुओं के अंश प्राप्त किये।

विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में उच्च-पुरापाषाण काल काफी कम समय तक रहा। इस युग की संस्कृतियाँ अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु में पनपी थीं। उच्च-पुरापाषाण-युगीन मानव नदियों के तटों एवं पहाड़ियों के निकट, खुले

1. कुछ विद्वान इसे 40,000 बी० पी० से 17,000 बी०पी० तक मानते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चट्टानी इलाकों, गुहाश्रयों, समुद्रतटीय क्षेत्रों एवं मैदानों में रहता था। वह मुख्यतः शिकारी और अर्धयायावर का जीवन व्यतीत करता था।

इस युग के मानव की प्रजाति/प्रजातियों के विषय में निश्चित जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है। अभी तक बहुत कम नरकंकालों का ही परीक्षण हुआ है जिनमें भूमध्यसागरीय तथा कुछ अन्य प्रजातियों के तत्व मिले हैं।

भारत में उच्च-पुरापाषाण काल लगभग 17,000 ई० पूर्व से 8000 ई० पूर्व तक रहा।

मध्य-पाषाण काल—उच्च-पुरापाषाण तथा नूतन पाषाण कालों के बीच के अन्तराल को मध्य-पाषाण काल कहा जाता है। इसे विभिन्न विद्वानों द्वारा मध्य पाषाण काल (Mesolithic Age), लघु पाषाणकाल (Microlithic Age), तथा उत्तर पाषाण काल (Late Stone Age) नाम दिये गये हैं। पहले अनेक पुराविद भारत में मध्य-पाषाण काल की स्वतंत्र स्थिति नहीं मानते थे। परन्तु अनेक स्थलों से नवीन सामग्री के प्रकाश में आने के कारण अब इसे स्वीकार कर लिया गया है। लघु पाषाण उपकरण सर्वप्रथम (Carlleyle) ने 1867 ई० में विन्ध्य-पर्वतमाला के चट्टानी आश्रय-स्थल में प्राप्त किया था।

उच्च-पुरापाषाण काल के अन्तिम भाग में भारत की जलवायु में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अनेक हिमाच्छादित स्थल हरे-भरे घास के मैदानों में बदलने लगे और अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कम वर्षा होने लगी। इन परिवर्तनों के परिणाम-स्वरूप घने जंगलों का उदय हुआ, पृथ्वी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हुई, गैंडे एवं हाथी आदि विशालकाय पशुओं की संख्या कम होने लगी और भेड़-बकरी तथा हिरण जैसे पशु प्रकट हुए।[1] इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों का मनुष्य के जीवन-यापन तथा रहन-सहन पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस युग में अत्यधिक लघु आकार के प्रस्तर-उपकरणों का प्रयोग होने लगा था, इसीलिए इसे लघु-पाषाण काल भी कहते हैं। इन लघु-अश्मों की लम्बाई 1 से 8 से० मी० तक और चौड़ाई एवं मोटाई बहुत ही कम है। ये सूर्यकान्त मणि, सुलेमानी पत्थर, तामड़ा पत्थर चकमक पत्थर सिक्थ-स्फटिक तथा चर्ट के शल्कों पर निपीड-प्रविधि (pressure technique) द्वारा बनाए जाते थे। लघु पाषाण उपकरण-समूह में पार्श्वगढ़ित एवं दन्तुरित (backed and serrated) फलक, छिद्रक, उत्कीर्णक, विभिन्न आकार के स्क्रेपर, चन्द्राकार, अर्धचन्द्राकार, त्रिभुजाकार, त्रिकोणाकार तथा समलम्ब-चतुर्भुजाकार प्रमुख हैं। आकार-प्रकारों के आधार

1. आर० के० वर्मा, भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ, पृ० 241।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पर इन्हें अज्यामितीय (समन्त धार वाले फलक, छिद्रक एवं दन्तुरित फलक आदि) तथा ज्यामितीय (त्रिभुजाकार, अर्ध-चन्द्राकार, समलम्ब चतुर्भुजाकार आदि) वर्गों में विभक्त किया गया है। ज्यामितीय उपकरण प्रायः अज्यामितीय लघु-अश्मों के ऊपर के स्तरों से प्राप्त हुए हैं, इसलिए वे अज्यामितीय उपकरणों के बाद के हैं। मध्य-पाषाण काल के कई स्थलों पर लघु अश्मों के साथ-साथ हड्डी के स्क्रेपर, चाकू तथा छिद्रक भी मिले हैं।

ये उपकरण आकार में इतने छोटे होते थे कि उन्हें स्वतंत्र रुप से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। अतएव उन्हें लकड़ी, बांस अथवा हड्डी की मूठ में फंसाकर संग्रथित उपकरण (composite tools) बनाये जाते थे। मूठ लगाने की तकनीक का आविष्कार मध्य-पुरापाषाण काल में ही हो गया था, परन्तु मध्य-पाषाण काल में इसका बहुत अधिक विकास एवं प्रचलन हुआ। आकार में अत्यधिक लघु होते हुए भी ये उपकरण बहुत उपयोगी तथा प्रभावी थे और उन्हें दूर से शक्ति के साथ इस्तेमाल किया जाता था।

मध्य-पाषाण संस्कृति के उपकरण बंगाल, असम, नेपाल, पंजाब एवं केरल के मैदानी क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत के लगभग अन्य सभी भागों में पाये गए हैं। अधिकांश स्थानों पर वे सतह से एकत्र किये गए हैं, परन्तु अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के साथ स्तरित अनुक्रम में भी मिले हैं। दक्षिण-भारत के इस प्रकार के स्थानों में कुचई (उड़ीसा), नागार्जुनकोंड (आन्ध्र), मार्वे, कांडिली, पटणे (महाराष्ट्र), संगनकल्लु, जलहल्लि (कर्नाटक) तथा तमिलनाडु के अत्तिरम-पक्कम् एवं टेरी-टीले प्रमुख हैं। कुचई में लघु-अश्म उद्योग नूतन-पाषाण संस्कृति के ठीक नीचे वाले स्तर में मिला है। नागार्जुनकोंड में ये उपकरण बौद्ध-विहार के सबसे ऊपरी भाग में प्राप्त हुए हैं और प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के हैं। मार्वे में कुछ लघु अश्म मृद्भांडों के साथ में मिले। अत्तिरमपक्कम् में सबसे नीचे के स्तर में अश्यूलियन-उपकरण, इसके ऊपर शल्क-उद्योग और सबसे ऊपर की सतह में लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए। तमिलनाडु के तिरुनेलवेलि जिले के टेरी-टीले, मध्य-पाषाण युग के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। उत्तर भारत में लघु-पाषाण उद्योग मिर्जापुर-रीवा-बुन्देलखंड, बीरभानपुर, आदमगढ़ तथा लंघनाज आदि स्थानों पर स्तरित अनुक्रम में मिले हैं।

कालक्रम की दृष्टि से लघुपाषाण उपकरणों को दो वर्गों में रखा गया है—

1. जो लघु अश्म मृद्भांडों के पहले वाली सतह में मिले हैं।
2. जो मृद्भांडों के साथ प्राप्त हुए हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर्नाटक तथा कुछ अन्य क्षेत्रों के लघु पाषाण-उपकरण धातु उपकरणों के समकालीन हैं।

इस युग में भी मानव सामान्यतया नदियों, झीलों, पहाड़ियों, चट्टानी आश्रय-स्थलों, एवं छोटे जंगलों के निकट, तथा खुले समुद्रतटीय क्षेत्रों में रहता था और पशुओं, पक्षियों एवं मछलियों का शिकार कर जीवन निर्वाह करता था। लघु अश्मों का मृद्भांडों तथा पालतू पशुओं की हड्डियों के साथ मिलना स्थायी जीवन को संकेतित करता है। संगनकल्लु में भोजन-संकलन तथा भोजन-उत्पादन के बीच के अन्तराल का लघु-पाषाण उद्योग मिला है।

भारत की अपेक्षा पश्चिमी एशिया के देशों के मध्य-पाषाण युगीन उद्योग कुछ हज़ार वर्ष पहले के हैं, अतएव इस बात की काफी सम्भावना है कि भारत की लघु-पाषाण संस्कृति के निर्माताओं ने पश्चिमी एशिया से प्रेरणा प्राप्त की होगी। मोटे तौर पर भारत के मध्य-पाषाणकाल को 8,000 ई० पूर्व से 2,000 ई० पूर्व के बीच रखा गया है।

नूतन-पाषाण काल—नूतन-पाषाण काल वस्तुतः पाषाण संस्कृतियों का अन्तिम और सर्वाधिक विकसित स्वरूप प्रस्तुत करता है। आर्थिक तथा तकनीकी विकास की दृष्टि से यह क्रान्तिकारी युग सिद्ध हुआ। इस काल में भोजन संचय करने के स्थान पर मनुष्य उसका उत्पादन करने लगा था। सर्वप्रथम 1842 ई० में लिंगसुगर (कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में) नामक स्थान पर एक घर्षित एवं ओपयुक्त नवाश्म उपकरण (ground and polished neolith) मिला था। इसके बाद इस संस्कृति के उपकरण तथा अन्य पुरावशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु इनमें से अधिकांश सतह से एकत्र किये गये हैं। नूतन-पाषाण कालीन स्थलों में पुरातात्विक उत्खनन अभी तक सीमित रूप में ही हुए हैं, इसलिए इस युग की संस्कृतियों के सभी पहलुओं की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

नूतन पाषाण संस्कृतियों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. घृष्ट तथा ओपयुक्त प्रस्तर-उपकरणों का प्रयोग
2. प्रारम्भिक रूप में खेती करना
3. इन संस्कृतियों के निर्माता मुख्यतः पशुपालक थे और वे गाय, बैल, भेंड़ तथा बकरी आदि पालते थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

4. झोपड़ियों[1] में स्थायी[2] रूप से रहना

5. लघु-पाषाण उपकरणों एवं मृद्भाण्डों[3] का प्रयोग

6. पुरुषों के शवाधान प्रायः गर्तों में तथा बच्चों के मृतक-कलशों में किए जाते थे। विस्तीर्ण तथा आंशिक दोनों प्रकार के शवाधान प्राप्त हुए हैं।

7. इस काल में लोग ग्रेनाइट की पहाड़ियों अथवा इनके निकटवर्ती क्षेत्रों में रहना पसन्द करते थे।

8. नूतन-पाषाण संस्कृति के अन्तिम भाग में तांबे तथा कांसे का सीमित रूप में प्रयोग प्रारम्भ हो गया था।

9. हड्डी के बने उपकरणों का भी प्रयोग किया जाता था।

नूतन-पाषाण संस्कृतियों के उपकरण-समूह में विभिन्न आकार-प्रकार के प्रस्तर-कुठार सर्वाधिक विशिष्ट, उपयोगी एवं लोकप्रिय थे। सामान्यतया ये कुठार घृष्ट एवं ओपयुक्त होते थे। परन्तु इस युग के सभी उपकरणों पर तथा उपकरण के सम्पूर्ण भाग पर हमेशा पालिश नहीं पायी जाती। कभी-कभी केवल कार्यांग (working edge) पर ही पालिश की जाती थी।

---

1. ये झापड़ियां गोलाकार, चौकोर अथवा वर्गाकार होती थीं। वे 2.5 मीटर से 6 मीटर तक के क्षेत्र में बनाई जाती थीं। इनकी दीवारें मिट्टी की होती थीं जिनकी ऊँचाई सामान्यतया 1.25 मीटर के आस-पास होती थी। दीवारों के ऊपर बांसों या लकड़ी के स्तम्भों पर आधारित छप्पर डाला जाता था। फर्श को मिट्टी या चूने से पोत दिया जाता था। छत बांस की खपच्चों या नरकुलों का चौखटा तैयार कर तथा उस पर मिट्टी एवं सूखी पत्तियां आदि डालकर बनाई जाती थी और चपटी या त्रिज्याकार होती थी।

2. कुछ झोपड़ियों में चूल्हे के आकार के राखी-युक्त गर्त, संचयन-कलश तथा चक्की के अवशेष मिले हैं। ये पुरावशेष स्थाई जीवन का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

3. क्वेटा के निकटवर्ती किलीगुलमुहम्मद के द्वितीय तथा तृतीय प्रकालों में अन्य उपकरणों के साथ मृद्भांड भी मिले। द्वितीय प्रकाल के मृद्भांड हस्त-निर्मित तथा भद्दे और तृतीय प्रकाल में हस्त-निर्मित के अतिरिक्त चाक पर बने बर्तन भी प्राप्त हुए जिन पर काले अथवा लाल रंग से ज्यामितीय डिजायनें अंकित की गई हैं। बलूचिस्तान के अन्य समकालीन स्तरों से भी मृद्भांड प्राप्त हुए हैं। देखिए—

D. P. Agarwal, Rise of Civilization in India and Pakistan, 1982, pp. 101–103.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

क्षेत्रीय विशिष्टताओं के आधार पर नूतन-पाषाण संस्कृतियों को निम्नलिखित तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है—

1. पूर्वी भारत की नूतन-पाषाण संस्कृतियां
2. उत्तरी भारत की नूतन-पाषाण संस्कृतियां
3. दक्षिण भारत की नूतन-पाषाण संस्कृतियां

दक्षिण भारत की नूतन-पाषाण संस्कृतियों के अधिकांश केन्द्र ताप्ती, तुंगभद्रा तथा कृष्णा नदियों की घाटी में स्थित हैं। इनमें आन्ध्र राज्य के उतनूर एवं नागार्जुनकोंड, कर्नाटक राज्य के ब्रह्मगिरि, मास्की, पिकलीहाल, संगनकल्लु, टी० नरसीपुर, टेक्कलकोटा, हल्लूर एवं हेम्मिगे और तमिलनाडु के पैय्यमपल्ली क्षेत्र प्रमुख हैं। इन स्थलों पर उत्खनन में प्राप्त सामग्री के आधार पर दक्षिण-भारत की नूतन-पाषाण संस्कृतियों के निम्नलिखित तीन प्रकाल (phases) माने गये हैं—

प्रथम प्रकाल (लगभग ई० पूर्व 2300–1800) के प्रमाण उतनूर, पिकलीहाल के निम्नतम स्तर में, मास्की, ब्रह्मगिरि तथा नागार्जुनकोंड में प्राप्त हुए हैं। इस चरण में कृषि-कर्म सम्बन्धी साक्ष्यों के अतिरिक्त भेंड़, बकरी, बैल एवं गाय की हड्डियों, घृष्ट प्रस्तर-उपकरण, सिल-बट्टे, लघु प्रस्तर-उपकरण तथा हस्त-निर्मित भूरे एवं पांडु रंग के मृद्भांड प्राप्त हुए हैं। कुछ पात्रों पर काले तथा लाल रंग का लेप भी है। कार्बन 14 तिथि–गणना के आधार पर इस प्रकाल को ई० पूर्व 2300 तथा 1800 के मध्य रखा गया है।[1]

द्वितीय प्रकाल (लगभग 1800–1500 ई० पू०) : द्वितीय प्रकाल का प्रतिनिधित्व ब्रह्मगिरि, संगनकल्लु, टेक्कोटा, हल्लूर तथा टी० नरसीपुर आदि करते हैं। इस प्रकाल में पहली बार ग्रेनाइट की पहाड़ियों पर अथवा इनके निकट समतल पहाड़ियों की वेदिकाओं पर घर बनाए गए। इस प्रकाल के उपकरणों में बसूले, कुल्हाड़ी, फन्नी, गैंती, छेनी, पाउंडर, ग्राइंडिंग उपकरण तथा भूरे रंग के मृद्भांड प्रमुख हैं। मृद्भांडों में छिद्रित (perforated) तथा टोटीदार (spouted) पात्र उल्लेखनीय हैं। इस काल में तांबे तथा कांसे का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया था। टेक्कलकोटा में सोने के प्रयोग के भी प्रमाण मिले हैं। विस्तीर्ण, आंशिक एवं कलश-शवाधान भी प्रकाश में आए हैं।

तृतीय प्रकाल (लगभग ई० पूर्व 1500, 1400–1050)–यह प्रकाल

1. कार्बन-14 तिथि-गणना के आधार पर उत्तरी कर्नाटक में नूतन-पाषाण संस्कृति का प्रादुर्भाव ई० पूर्व 2500 के आस-पास माना गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

टेक्कलकोटा, हल्लूर, संगनकल्लु, ब्रह्मगिरि, पिकलीहाल तथा पैय्यमपल्ली द्वारा प्रदर्शित है। इसमें प्रथम दो प्रकालों की विशिष्टताओं के अतिरिक्त चाक पर निर्मित धूसर तथा पीले रंग के मृद्भांड भी प्राप्त हुए हैं जिन पर जोर्वे प्रकार की डिज़ाइनें अंकित हैं। मृद्भांड-समूह में सपाद सकोरे एवं मूठ लगे बर्तनों के अतिरिक्त आजकल की केतली तथा लोटे के आकार के बर्तन उल्लेखनीय हैं।

टेक्कलकोटा से प्राप्त एक प्रस्तर-खंड पर हथेली की आकृति उत्कीर्ण है। एच० डी० सांकलिया के अनुसार दक्षिण भारत में नूतन-पाषाण संस्कृति के लोग ही प्राचीनतम चित्रकार एवं मूर्तिकार प्रतीत होते हैं और सर्वप्रथम उन्होंने ही रागी तथा कुलथ का उत्पादन प्रारम्भ किया।

नूतन पाषाण काल के आर्थिक-जीवन में पशुपालन का सर्वप्रमुख स्थान था। इस संस्कृति के सभी स्थानों पर उपर्युक्त तीनों प्रकालों में कूबड़दार पशुओं की हड्डियां सबसे अधिक मिली हैं। इसके बाद भेंड़ तथा बकरी का स्थान है। टेक्कलकोटा, पिकलीहाल कोदेकल तथा टी० नरसीपुर से प्राप्त पशुओं की हड्डियों से अनुमान किया गया है कि इन क्षेत्रों में नूतन-पाषाण संस्कृति के लोग दूध एवं इससे बनने वाले पदार्थों के लिए बकरियों आदि को और मांस एवं चर्बी खाने के लिए सुअर, भैंसे तथा कुत्ते पालते थे। हल्लूर में घोड़े की हड्डियां भी मिली हैं। हिरण, बारहसिंहा, कछुआ, मछली तथा घोंघे का भी भोजन के लिए शिकार किया जाता था।

ब्रह्मगिरि, पिकलीहाल, टेक्कलकोटा, टी० नरसीपुर तथा नागार्जुनकोंड से प्राप्त नरकंकालों में भू-मध्य सागरीय एवं प्रोटोआस्ट्रलायड प्रजातियों के तत्व पाये गए हैं। परन्तु नूतन-पाषाण संस्कृति के निर्माताओं की प्रजाति/प्रजातियों के विषय में सुनिश्चित जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक नरकंकालों की प्राप्ति एवं उनके परीक्षण की आवश्यकता है।

दक्षिण भारत की नूतन-पाषाण संस्कृति की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। अल्चिन के अनुसार इसका जन्म ईरान में हुआ। वहां से यह बलूचिस्तान तथा सिंध में पहुंची और बाद में स्थल-मार्ग द्वारा उत्तरी कर्नाटक में। एच०डी० सांकलिया का भी अनुमान है कि यह दक्षिणी बलूचिस्तान, सीस्तान, अथवा कंदहार के मार्ग से सिन्धु की घाटी में पहुंची होगी और वहां से इसका दक्षिण की ओर प्रसार हुआ। वी० एन० मिश्र के अनुसार भारत की नूतन-पाषाण संस्कृति को पश्चिमी एशिया की नूतन-पाषाण संस्कृति से प्रेरणा मिली होगी जिसका उद्भव ई० पूर्व 700 वर्ष के आस-पास हुआ था। के० पद्दैय्या

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा नागराजाराव का भी लगभग यही मत है। इसके विपरीत वी० डी० कृष्ण-स्वामी तथा वी० के० थापड़ की धारणा है कि दक्षिण की नूतन-पाषाण संस्कृति की उत्पत्ति दक्षिण भारत में ही हुई।

चूंकि पश्चिमी एशिया में भारत की अपेक्षा इस संस्कृति का जन्म काफी पहले हो गया था और भारत के मृद्भांडों तथा कुछ अन्य वस्तुओं में कतिपय विदेशी तत्व मिलते हैं, इसलिए प्रायद्वीपीय भारत की नूतन-पाषाण संस्कृति को विदेशी प्रभाव से रहित मानना कठिन है।

ताम्रश्मीय संस्कृतियां (Chalcolithic Cultures)—नूतन-पाषाण काल के अंतिम भाग में प्रस्तर के साथ-साथ तांबे एवं कांसे का भी प्रयोग होने लगा था। इस प्रकार ताम्रश्मीय संस्कृतियों के युग का समारम्भ हुआ। दक्षिण में ये संस्कृतियां मुख्यतः महाराष्ट्र में तथा कर्नाटक के कुछ भागों में विकसित हुईं। इनके प्रमुख केन्द्र नासिक, टेकवाड़ा (ताप्ती के तट पर) प्रकाश, बहाल (खानदेश ज़िला), दैमाबाद (अहमदनगर ज़िला), चंदौली, सोनगांव, इनाम-गांव (पुणे जिला), टेक्कलकोटा, हल्लूर तथा पिकलीहाल (कर्नाटक) हैं। दक्षिणापथ की ताम्रश्मीय संस्कृतियों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार है—लघु अश्मों, प्रस्तर-कुठारों, फलक-उपकरणों तथा काले एवं लाल रंग के चित्रित और चमकीले मृद्भांडों का प्रयोग, झोपड़ियों में रहना, तांबे एवं कांसे का सीमित रूप में प्रयोग तथा मृतक-कलशों एवं गर्तों में शवाधान।

इन संस्कृतियों को निम्नलिखित तीन प्रकालों में विभाजित किया गया है—

प्रथम प्रकाल के प्रमाण मुख्यतः दैमाबाद में प्रकाश में आये जहां प्रस्तर-फलक उद्योग तथा धूसर एवं काले रंग के मृद्भांड मिले हैं। कुछ मृद्भांडों को गेरुआ रंग से अलंकृत किया गया है। इनके साथ ताम्र-उपकरण भी प्राप्त हुए।

द्वितीय प्रकाल का प्रतिनिधित्व दैमाबाद, इनामगांव तथा प्रकाश करते हैं। दैमाबाद से प्राप्त वस्तुओं में सोने का लटकन विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकाल में प्रथम प्रकाल की अपेक्षा ताम्र-उपकरण अधिक मिले हैं। धूसर मृद्भांडों के अतिरिक्त लाल एवं भूरे रंग के बर्तनों का अधिक प्रयोग होने लगा था। कुछ मृद्भांडों पर बैलों तथा मोरों की आकृतियां, सीढ़ी एवं कटी-पिटी रेखाएं (graffiti marks) अंकित हैं। मालवा प्रकार के नालीदार एवं टोंटीदार पात्र भी प्राप्त हुए हैं। इनामगांव में गेहूं, जौ, मसूर तथा मटर के अवशेष भी मिले हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तृतीय प्रकाल के प्रमाण जोर्वे में प्राप्त हुए। इस प्रकाल के प्रस्तर-उपकरण प्रायः चाल्सेडनी पत्थर के बने हैं। लघु पाषाण उपकरण अज्यामितीय एवं ज्यामितीय दोनों ही प्रकार के हैं। तांबे के भी कई उपकरण प्राप्त हुए। पालतू पशुओं में भेंड़, बकरी, गाय, बैल और वन्य पशुओं में सुअर, हिरण तथा नील-गाय की हड्डियां मिली हैं। मृद्भांड पूर्ववर्ती प्रकालों के ही समान हैं, किन्तु इनमें अलंकरण अपेक्षाकृत अधिक है। तृतीय प्रकाल की उल्लेखनीय वस्तुओं में इनामगांव से प्राप्त एक प्रस्तर पर अंकित बैलगाड़ी का चित्र तथा नेवासा से प्राप्त कपास एवं रेशमी धागे में पिरोये गए मनके हैं। इस से महाराष्ट्र में उस काल में कपास की पैदावार का प्रमाण मिलता है।

एच० डी० सांकलिया ने आर्यों को मध्य भारत एवं उत्तरी दक्षिणापथ की ताम्रश्मीय संस्कृतियों का जन्मदाता माना है। वी० के० थापड़ के अनुसार पुराणों में वर्णित हैहयों, अश्मकों तथा यादवों आदि में कौन इन संस्कृतियों के जनक थे, निश्चितरूप से कहना कठिन है। दक्षिणापथ की ताम्रश्मीय संस्कृतियों की सामान्य काल अवधि ई० पूर्व 1700 से 1000 के आस-पास तक मानी गई है।

महाश्मीय संस्कृति (Megalithic Culture[1])—दक्षिण भारत के लौह-युग की जानकारी मुख्यतः वहां की महाश्मीय संस्कृति से ही प्राप्त होती है। महाश्मीय स्मारक एवं कब्रें मृत व्यक्तियों की स्मृति तथा सम्मान में बनाई जाती थीं। इनका निर्माण अनगढ़ या तराशे गये विशाल प्रस्तर-फलकों द्वारा होता था जिन्हें परस्पर जोड़ने में गारे आदि का प्रयोग नहीं किया जाता था। ये मकबरे एवं स्मारक एक विशिष्ट संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं और अन्त्येष्टि क्रियाओं तथा मृत्योपरान्त के जीवन-सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठानों एवं विश्वासों पर महत्व-पूर्ण प्रकाश डालते हैं।

ये महाश्म मुख्यतः प्रायद्वीपीय भारत में केन्द्रित थे। इनका विवरण सुदूर दक्षिण में आदिचनल्लूर (तिरुनेलवेलि ज़िला, तमिलनाडु) से लेकर उत्तर में महाराष्ट्र राज्य के नागपुर ज़िले तक था। विदर्भ (महाराष्ट्र का बरार क्षेत्र), आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा केरल राज्यों के विभिन्न स्थानों पर वे अब तक हजारों की संख्या में प्राप्त हो चुके हैं। उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में भी

1. Megalith यूनानी भाषा के Megas तथा Lithos शब्दों से मिलकर बना है जिनके अर्थ क्रमशः 'विशाल' तथा 'पाषाण' हैं। इस प्रकार यह नाम उन स्मारकों/कब्रों को दिया गया है जो प्रायः बड़े-बड़े पत्थर-खंडों द्वारा बनाए जाते थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महाश्म मिले हैं।[1] प्रायद्वीपीय भारत की महाश्मीय संस्कृति की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. लोहे के विभिन्न उपकरणों का बड़े पैमाने पर प्रयोग।
2. चाक पर बने काले तथा लाल रंग के मृद्भांडों (Black and Red ware) की प्रचुरता।
3. ये स्मारक प्रायः चट्टानी क्षेत्रों में बनाये जाते थे जहां उनके निर्माण के लिये पत्थर सरलता से उपलब्ध हो जाते थे।
4. महाश्म जोतने-बोने योग्य भूमि एवं तालाबों के निकट प्राप्त हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि इनके निर्माता कम से कम सीमित रूप में कृषि भी करते थे।
5. अभी तक इन स्मारकों में लिखित सामग्री नहीं मिली है।

इनमें प्राप्त लौह-उपकरणों/औजारों में गैंती, वसूले, कुदाली, छेनी, चाकू, हंसिये, तलवार, कटार, छल्ले तथा दीपक आदि शामिल हैं। कांसे एवं पत्थर की वस्तुएं तथा पकी मिट्टी की चूड़ियां भी मिली हैं। मृद्भांड-समूह में विभिन्न आकार के सकोरे, ढक्कन, सुराहियां, तश्तरियां, थालियां तथा पायेदार बर्तन उल्लेखनीय हैं। मदुरई के दक्षिण में पेरुमाल की पहाड़ियों में अयप्पन महोदय ने दो महाश्मों का उत्खनन कराया और वहाँ अन्य वस्तुओं के साथ नालीदार टोंटी-युक्त कटोरे (channel spouted bowls) तथा तनेदार कटोरे (bowl-on-stand) भी प्राप्त किए। कुछ स्मारकों में लोहे के त्रिशूल मिले हैं जिनमें से एक में महिष-शीर्ष संलग्न है। इन त्रिशूलों का धार्मिक महत्व था। त्रिशूल शिव का आयुध है और दुर्गा को महिष-मर्दिनी माना गया है। इन स्मारकों से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट वस्तुओं में उत्तरी अर्काट जिले में मोत्तूर के महाश्म से प्राप्त एक मानवाकृति, आदिचनल्लूर से प्राप्त मुकुट, खापा तथा महुरझरी (नागपुर के निकट) से प्राप्त सोने के शीर्ष-आभूषण हैं। हल्लूर में चावल एवं रागी के अवशेष मिले हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार दक्षिण भारत में चावल की खेती का प्रारंभ संभवतः महाश्मीय-संस्कृति के निर्माताओं ने ही किया था।

---

1. उत्तर भारत में महाश्म पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा असम राज्यों के कुछ स्थानों पर, राजस्थान के जयपुर जिले में तथा उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा, वाराणसी एवं इलाहाबाद जिलों में प्राप्त हुए हैं (डी०पी० अग्रवाल तथा पन्नालाल अग्रवाल, भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्व, पृ० १४३)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हीरेवेंकल (Hirevenkal) में चट्टानों पर उत्कीर्ण कुछ चित्र इस संस्कृति के लोगों के मृगया-प्रेम को इगित करते हैं।

दक्षिण भारत के महाश्मों के प्रमुख प्रकार–महाश्मों के कई प्रकार एवं उप-प्रकार हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. **डालमेन् प्रकार के वयिन** (Dolmenoid Cists)–

ये महाश्म तमिलनाडु में बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं और उनका मुख्य केन्द्र धर्मपुरी ज़िला था। इसके अतिरिक्त वे कर्नाटक के कुर्ग, बंगलौर तथा कोलार ज़िलों में भी मिले हैं। इस प्रकार के स्मारकों को बनाने में सर्वप्रथम भूमि में एक गर्त खोदा जाता था जिसके फर्श के चारों ओर चार या अधिक उर्ध्वस्थ (vertical) ग्रेनाइट के रुक्ष शिला-फलकों को खड़ा कर उनके ऊपर एक क्षैतिज (horizontal) शीर्ष-फलक रखा जाता था। पूर्व की ओर रखे गये उर्ध्वस्थ शिला-फलक में कभी-कभी प्रवेश के लिये एक छिद्र काट दिया जाता था। केरल में एक प्रस्तर-वृत्त से घिरे 19 डालमेन-स्मारक प्राप्त हुए हैं।

वयिन-वृत्त (Cist Circles)–

वयिन-वृत्त कई प्रकार के हैं। कुछ वयिनों में चार प्रस्तर-फलकों को खड़ा कर उन्हें स्वस्तिक जैसा आकार दिया गया था और उनके ऊपर एक या अधिक शीर्ष-पत्थर (cap-stone) रखकर वयिन को ग्रेनाइट की शिलाओं के एक, दो अथवा तीन वृत्तों से घेर दिया जाता था। इनमें एक या अधिक शवाधान प्राप्त हुए हैं।

गर्त-वृत्त (Pit Circles)–ये महाश्म तमिलनाडु तथा कर्नाटक में अधिक संख्या में ज़िले हैं। इनमें एक गर्त खोदकर उसके चारों ओर पाषाण-वृत्त बनाया जाता था जिसके अन्दर मृत-शरीर की अस्थियों को गाड़ दिया जाता था। ब्रह्मगिरि में इस प्रकार की कई कब्रों की खुदाई की गई है और इनमें शव को काष्ठ-निर्मित एक अरथी में रखा पाया गया।

नडुकल (Mehnirs)–केरल राज्य के कोचीन क्षेत्र के लैटराइट-मैदानों में एकाश्मक महाश्म पाये गये हैं जिन्हें नडुकल कहा जाता है। नडुकल मृतक-कलशों पर उर्ध्वस्व शिला-फलक रखकर बनाए जाते थे। इस प्रकार के स्मारक तमिलनाडु में बहुत कम मिले हैं, किन्तु बंगलौर एवं कोलार ज़िलों (कर्नाटक राज्य में) में वे अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं।

नडुकल-पंक्ति (Stone Alignments)–कर्नाटक के गुलबर्गा, महबूबनगर, रायचूर एवं अन्य ज़िलों में वर्गों अथवा विकर्णरेखा (diognal) में खड़े किये गए

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रस्तर-फलक मिले हैं जिनकी सामान्य ऊंचाई 1.5 मीटर से 2.5 मीटर तक है, यद्यपि कुछ छः मीटर ऊंचे भी हैं। इन्हें 'नडुकल-पंक्ति' नाम दिया गया है।

शवपेटिकायें (Sarcophagus)—इस प्रकार के स्मारकों का मुख्य केन्द्र तमिलनाडु का चिंगलेपुट ज़िला था। चित्तूर (आन्ध्र) तथा बंगलौर (कर्नाटक) में वे कम संख्या में मिले हैं। कडप्पा जिले के संकवरम् नामक स्थान पर मेंढ़े के आकार जसी तथा पल्लवरम् (चिंगलेपुट ज़िला) में हाथी के आकार की शवपेटिकायें प्राप्त हुई हैं। शवपेटिकाओं में से अधिकांश में पायेदार और कुछ में पाद रहित मृद्भांड मिले हैं।

विभक्त प्रवेश छिद्रवयिन (Transcepted cist with Passage)—ये स्मारक तमिलनाडु तथा कर्नाटक में कई स्थानों पर पाये गए हैं। इनमें वयिन को पूर्व-पश्चिम की ओर रखे गये एक उर्ध्वस्थ शिलाखंड द्वारा विभाजित किया गया है। वयिन का अर्द्ध भाग पुनः दो उपविभागों में विभक्त है। शेष अर्द्ध भाग के पूर्व में एक सम्बद्ध कक्ष बनाया जाता था और दोनों उपविभागों से सम्बन्धित विभाजक शिला-फलकों में प्रवेश के लिए एक छिद्र काटा जाता था।

अस्थि-कलश शवाधान (Urn Burials)—अस्थियों को मृतक-कलशों में रख कर गर्त में गाड़ने की प्रथा काफी लोकप्रिय प्रतीत होती है। इन गर्तों को खोदने के पश्चात् कभी-कभी उनके ऊपर पत्थर के वृत्त बना दिए जाते थे। इस प्रकार के शवाधान पूर्वी समुद्रतटीय क्षेत्र में आमतौर पर प्रचलित थे। कुछ सपाद अस्थि-कलश और कुछ पशुओं के सिर-युक्त मृतक-कलश भी मिले हैं।

उपर्युक्त प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त महाश्मों के कुछ अन्य प्रकार तथा उपप्रकार भी हैं जो मुख्यतः क्षेत्रीय हैं—यथा केरल के कोचीन क्षेत्र में छत्राकार तथा फणाकार महाश्म प्रकाश में आये हैं। महाश्मों की खुदाई में ताकलघाट (नागपुर ज़िला) के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर घरों के अवशेष नहीं मिले हैं। ताकलघाट में प्राप्त घरों के फर्श भूरी मिट्टी के बने थे और उन्हें चूने से पोता गया था। उनकी मिट्टी की दीवारों को लकड़ी के खम्भों अथवा बांसों की सहायता से बनाया गया था। ताकलघाट, हल्लूर तथा पैय्यमपल्ली में नूतन-पाषाण एवं महाश्मीय संस्कृतियां परस्पर व्यापी हैं।

उद्भव एवं प्रसारः—महाश्मीय संस्कृति के उद्भव-क्षेत्र, संचरण एवं प्रसार तथा इसके निर्माताओं के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मत-भिन्नता है। मीडोज-टेलर ने कुछ यायावर आर्य-प्रजातियों को इस संस्कृति का जनक माना है। सर इलियट स्मिथ के अनुसार महाश्मीय संस्कृति का उद्भव मिस्र देश में, एच०

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गेल्डर्न के अनुसार मध्य एशिया में और एस० पी० गुप्ता के अनुसार फारस या ओमन की खाड़ी में हुआ। गुरुराजाराव ने इसकी उत्पत्ति दक्षिणी रूस एवं उत्तरी ईरान में मानी है और एन० आर० बनर्जी ने बलूचिस्तान में। ए० सुन्दरा का अनुमान है कि महाश्मों के निर्माता भूमध्य-सागरीय क्षेत्र से सामुद्रिक मार्ग द्वारा दक्षिण भारत पहुंचे होंगे। एन०आर० बनर्जी के अनुसार वे बलूचिस्तान से भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश से होकर स्थल-मार्ग द्वारा वहां पहुंचे। मार्टिमर व्हीलर ने भारत में इस संस्कृति का प्रवेश कराची-क्षेत्र के मार्ग से माना है। अल्चिन के अनुसार महाश्मीय संस्कृति मध्य-पूर्वी देशों से प्रथम सहस्राब्दी ई० पूर्व में व्यापार के माध्यम से दक्षिण भारत में प्रविष्ट हुई।

हैमेन्डॉर्फ, मार्टिमर व्हीलर, सुब्बाराव, गुरुराजाराव तथा एन० आर० बनर्जी ने द्रविण प्रजाति के लोगों को महाश्मों का मूल-निर्माता माना है जिन्हें भारत में काले तथा लाल मृद्भांडों और लोहे के प्रयोग को सर्वप्रथम प्रारम्भ करने का भी श्रेय दिया गया है। इन स्मारकों/कब्रों से प्राप्त नर-कंकालों के परीक्षण से अभी तक इनके निर्माताओं की प्रजाति/प्रजातियों के विषय में सुनिश्चित जानकारी नहीं हासिल की जा सकी है।

तिथिः—विश्व के विभिन्न देशों के महाश्मों का निर्माण भिन्न-भिन्न कालों में हुआ। यूरोपीय देशों में इन स्मारकों को ई० पूर्व 3200 तथा 1500 और भूमध्य-सागर एवं ईरान के महाश्मों को ई०पूर्व 2000 और 1500 के मध्य रखा गया है। दक्षिण भारत में इस संस्कृति का प्रादुर्भाव उपर्युक्त तिथियों के काफी बाद में हुआ। डी० एच० गार्डेन की मान्यता है कि लौह-युगीन संस्कृतियां ई० पूर्व 700 तथा 500 के बीच दक्षिण भारत पहुंची, अल्चिन के अनुसार भारत में इन स्मारकों का उद्भव ई० पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के अन्तिम भाग में हुआ और उनकी परम्परा कम से कम एक हजार वर्ष तक कायम रही।

दक्षिण भारत के प्राचीनतम महापाषाण-स्मारक उत्तरी कर्नाटक क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। बी० नरसिम्हैया के अनुसार ई० पूर्व 1200 के आस-पास इस क्षेत्र में यह संस्कृति अपने प्रारम्भिक रूप में प्रकट हुई और धीरे-धीरे इसका विकास हुआ। डी० पी० अग्रवाल ने हल्लूर के महाश्मों को कार्बन-14 तिथि-गणना के आधार पर ई० पूर्व 1000 के आस-पास रखा है। ए० सुन्दरा के अनुसार कोन्नूर तथा कलादगि के महाश्म ई० पूर्व 1200 एवं 700 के मध्य के हैं। कार्बन-14 तिथि-प्रविधि द्वारा नागपुर के निकटवर्ती क्षेत्रों के स्मारकों को ई० पूर्व आठवीं शताब्दी में, ताकलघाट के स्मारकों को ई० पूर्व 600 में तथा कोटिया (इलाहा-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बाद जिले में) के महाश्मों को ई० पूर्व 300 के आस-पास रखा गया है। मार्टिमर व्हीलर ने प्रायद्वीपीय भारत के महाश्मों को ईसा पूर्व 300 तथा प्रथम शताब्दी ई० के मध्य का माना है। दक्षिण भारत के अधिकांश महाश्म ई० पूर्व 600 तथा 200 के बीच के हैं।

यूरोप तथा मध्य-पूर्वी देशों के महाश्म नूतन-पाषाण तथा कांस्य काल के हैं। वहाँ के लौह-युगीन स्मारकों की संख्या बहुत कम है। परन्तु दक्षिण-पूर्वी एशिया एवं भारत के महापाषाण स्मारक मुख्यतः लौह-काल के ही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि पश्चिमी एशियाई देशों के महाश्म समुद्रतटीय क्षेत्रों में ही मिले हैं जब कि दक्षिण भारत में वे तटीय भू-भागों के अतिरिक्त काफी भीतरी क्षेत्रों में भी प्राप्त हुए हैं।

विभिन्न देशों और क्षेत्रों के महाश्मीय स्मारकों एवं मकबरों के आकार-प्रकार तथा उनमें प्राप्त सामग्री तथा उपकरण-समूह में एकरूपता नहीं है। इसके प्रमुख कारण इन देशों एवं स्थानों की भौगोलिक अवस्था, पारिस्थितिकी तथा धार्मिक परम्पराएं आदि में भिन्नता हैं। यह भी निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि विश्व की समस्त महापाषाण संस्कृतियों का मूलस्रोत एक ही था। चूंकि भारत के महाश्म अन्य देशों के महाश्मों की अपेक्षा काफी बाद के हैं और उनमें कुछ विदेशी तत्वों का समावेश भी है, इसलिये भारत इनका मूल उद्भव-क्षेत्र नहीं रहा होगा। भारत में यह संस्कृति सम्भवतः दो रास्तों से पहुंची होगी। एक स्थल-मार्ग तो बलूचिस्तान से सिन्ध एवं राजस्थान तथा कदाचित उत्तर-पूर्वी विन्ध्य-क्षेत्र होकर दक्षिण भारत पहुंचता था। दूसरा पश्चिमी एशिया से समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र से होता हुआ दक्षिण भारत तक जाता था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

4

दक्षिण भारत में नन्दों तथा मौर्यों का प्रभुत्व

ऐतिहासिक काल में सर्वप्रथम मगध के नन्दों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसमें उत्तर भारत के अधिकांश भाग के अतिरिक्त दक्षिणापथ एवं सुदूर दक्षिण के बड़े भू-भाग भी शामिल थे। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार नन्द सम्राट (सम्भवतः महापद्मनन्द) ने कलिंग में एक प्रणाली (नहर) का निर्माण कराया और इस नगर से वह जिन[1] की एक प्रतिमा अपने साथ ले गया था। पुराणों में भी महापद्मनन्द की विजयों में कलिंग तथा अश्मक राज्यों को शामिल किया गया है। महाराष्ट्र के निजामाबाद जिले के पश्चिम में स्थित नौनन्ददेहरा जिसका समीकरण वर्तमान नान्देर से किया गया है, सम्भवतः नौ नन्द शासकों से सम्बन्धित है। संगम-युग के प्रसिद्ध कवि मामूलनार (लगभग दूसरी शताब्दी ई०) को नन्दों की असीम धन-सम्पत्ति के विषय में जानकारी थी। 10वीं तथा 11वीं शताब्दियों के कर्नाटक से प्राप्त कुछ कन्नड़ अभिलेखों में कुन्तल[2] प्रदेश में नन्दों के प्रभुत्व का उल्लेख हुआ है। इसकी पुष्टि 12वीं तथा 13वीं शताब्दियों के शिमोगा जिले से प्राप्त कन्नड़ अभिलेखों से भी होती है।

उपर्युक्त सभी साक्ष्य यद्यपि नन्दों के राज्यकाल के काफी बाद के हैं,

---

1. यहां **जिन** का अर्थ जैन-तीर्थंकर की प्रतिमा है। परन्तु कुछ ने इसका अर्थ 'कलिंग की जनता' माना है।
2. फ्लीट के अनुसार प्राचीन कुन्तल राज्य में वर्तमान महाराष्ट्र का दक्षिणी भाग तथा कर्नाटक का उत्तरी भाग शामिल था। नन्द-मौर्य युग में कुन्तल शब्द कर्नाटक के लिए प्रयुक्त हुआ है 12वीं शताब्दी तक कुन्तल समस्त कर्नाटक क्षेत्र का प्रतीक बन गया था। बिल्हण ने कर्नाटक के पर्याय के रुप में कुन्तल का प्रयोग किया है। वस्तुतः कुन्तल में कर्नाटक राज्य का अधिकांश भाग शामिल था (Yazdani, Early History of the Deccan, vol. I, p. 43; Karnataka through the Ages, p. 99.).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किन्तु उनके विवरण प्रामाणिक प्रतीत होते हैं और वे कलिंग, अश्मक एवं कुन्तल राज्यों पर नन्दों की अधिसत्ता सिद्ध करते हैं। उस समय दक्षिणापथ अथवा सुदूर दक्षिण में महापद्मनन्द जैसे शक्तिशाली सम्राट को चुनौती देने के लिए कोई भी राज्य अथवा राजा सक्षम नहीं था।

नन्दों के पश्चात् मौर्य सम्राटों ने भी सुदूर दक्षिण के राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। मामूलनार के अनुसार **बम्बमोरियर** ने दक्षिण में अपनी सेना भेजकर **कोसर** लोगों की सहायता की थी। मौर्य-वाहिनी **बडुकर** एवं **कोसर** नामक जनजातियों के प्रमुखों के नेतृत्व में सुदूर दक्षिण में मदुरई के पूर्व में स्थित पोदियिल पर्वत तक पहुंची थी। इस विवरण की पुष्टि संगम-युग के परुत्कोइनार तथा कल्लिल अत्तिरैयनार नामक कवियों ने भी की है। **बम्ब** का अर्थ नवोदित और **मोरियर** का अर्थ मौर्यवंशीय (शासक) है। मौर्य-शासकों में यह उपाधि चन्द्रगुप्त के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

जैन-ग्रन्थों के अनुसार भद्रबाहु ने मगध राज्य में 12 वर्षीय दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की थी। इस से भयभीत होकर चन्द्रगुप्त अपना राजसिंहासन त्यागकर भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत चला गया और श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में रहकर उसने 12 वर्ष से भी अधिक समय तक जैन सन्तों के लिए निर्धारित दिनचर्या का पालन किया। अन्त में सल्लेखन (उपवास) द्वारा उसने अपने जीवन का अन्त कर दिया। इन घटनाओं के उल्लेख और संकेत पाँचवी-छठी शताब्दियों तथा इसके बहुत बाद तक के अभिलेखों एवं साहित्यिक ग्रन्थों में मिलते हैं। श्रीरंगम् (सेरिंगपतम्) के निकटवर्ती क्षेत्र से प्राप्त लगभग 900 ई० के दो अभिलेखों में बतलाया गया है कि श्रवणबेलगोला की चन्द्रगिरि नामक पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त मुनि (चन्द्रगुप्त मौर्य) तथा भद्रबाहु के पद-चिह्न अंकित थे। इसी पहाड़ी पर स्थित एक वसादि (मन्दिर) पर भी चन्द्रगुप्त का नाम अंकित है। यह देवालय इस पहाड़ी पर विद्यमान प्राचीनतम स्मारकों में से एक है। हरिषेण के बृहत्कथाकोष (931 ई०), रत्ननंदि के भद्रबाहुचरित (1450 ई०) तथा १२वीं शताब्दी एवं इसके बाद के श्रवणबेलगोला के कुछ अभिलेखों में भी उपर्युक्त तथ्यों के उल्लेख मिलते हैं।[1]

1. जे० एफ० फ्लीट तथा शाम शास्त्री ने चन्द्रगुप्त मौर्य के श्रवणबेलगोला जाने तथा वहां निवास करने से सम्बन्धित उपर्युक्त साक्ष्यों की प्रामाणिकता में संदेह किया है जो अग्राह्य है (Karnataka through the Ages, p. 99)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इन साक्ष्यों में मामूलनार का विवरण सूदूर दक्षिण की राजनीति में मौर्यों की अभिरुचि एवं हस्तक्षेप को प्रमाणित करता है और अन्य स्रोत चन्द्रगुप्त का एक जैन सन्त के रूप में श्रवणबेलगोला क्षेत्र से सम्बन्ध बतलाते हैं। चन्द्रगुप्त ने सुदूर दक्षिण के उपर्युक्त प्रदेशों को या तो नन्दों पर विजय प्राप्त करने के परिणामस्वरूप प्राप्त किया होगा अथवा उन्हें स्वयं जीता होगा। कुछ विद्वानों के अनुसार तमिल साहित्य में वर्णित मौर्य कोंकण के मौर्य थे, मगध के नहीं। परन्तु यह सुझाव नितान्त असम्भावित एवं निराधार है क्योंकि चन्द्रगुप्त को स्पष्टतः मगध से सम्बन्धित किया गया है।

चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र बिन्दुसार (लगभग 299-273 ई० पू०) ने उत्तराधिकार में प्राप्त विशाल साम्राज्य को सुरक्षित रखा। तिब्बती इतिहासकार तारनाथ के अनुसार बिन्दुसार एक महान विजेता था और चाणक्य की सहायता से 16 राज्यों (नगरों) के शासकों की शक्ति को नष्ट कर वह पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रों के बीच के सम्पूर्ण भू-भाग का अधिपति हो गया था। जी० वेंकटराव, एस० के० आयंगर तथा एम० सेशाद्रि की मान्यता है कि बिन्दुसार के राज्यकाल में ही मौर्यों ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किए होंगे जिनका उल्लेख उपर्युक्त तमिल साक्ष्यों में मिलता है। सेशाद्रि के अनुसार महिषमंडल (कर्नाटक) भी सम्भवतः उसके साम्राज्य में शामिल रहा होगा। यद्यपि इन मतों के खंडन के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, किन्तु बिन्दुसार के व्यक्तित्व एवं स्वभाव के विषय में प्राप्त जानकारी से प्रतीत होता है कि उसमें चन्द्रगुप्त जैसी सामरिक प्रतिभा एवं महत्वाकांक्षा का अभाव था। इसलिए अधिक सम्भावित यही है कि सुदूर दक्षिण की विजय चन्द्रगुप्त ने ही की होगी और बिन्दुसार ने उस भू-भाग पर अपनी अधिसत्ता को कायम रखा।

बिन्दुसार के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अशोक (लगभग 273 से 232 ई०पू०) के अभिलेख उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा कर्नाटक राज्यों के कई स्थानों पर प्राप्त हुए हैं जो इन राज्यों पर उसका राजनैतिक प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। अशोक के शिलालेख दो में बतलाया गया है कि चोल, पांड्य, केरलपुत्र (केरल) तथा सत्यपुत्र (कर्नाटक के दक्षिणी कनारा ज़िले में स्थित) उसके साम्राज्य के अंग न होकर इसकी दक्षिणी सीमा पर स्थित थे। दक्षिणापथ अशोक के साम्राज्य का महत्वपूर्ण भू-भाग था, इसलिए उसकी चार प्रान्तीय राजधानियों में से दो-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तोसलि (उड़ीसा में) और सुवर्णगिरि[1] (आन्ध्र प्रदेश में हाम्पी तथा मास्की के बीच के क्षेत्र में स्थित कनकगिरि) दक्षिण में ही स्थित थीं। इसके अतिरिक्त उसने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए महाराष्ट्र में धर्मरक्षित को, महिषमंडल (कर्नाटक) में महादेव को तथा बनवासी में एक अन्य बौद्ध-भिक्षु को भेजा था। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रह्मगिरि के महाश्मीय स्मारकों को स्थानीय लोग **मौर्यर** या **मोरेरमने** कहते हैं[2]।

इस प्रकार नन्द-मौर्य काल में पहली बार दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत के सम्पर्क में भलीभांति आए जिससे न केवल आर्यों की प्रशासन-व्यस्वथा, संस्कृति एवं धार्मिक विचारधारा ने उन्हें प्रभावित किया, बल्कि उत्तरापथ एवं दक्षिण भारत के बीच व्यापार को भी काफी प्रोत्साहन मिला। कौटिल्य ने लिखा कि पांड्य देश के मोती बहुत प्रसिद्ध थे और उनका निर्यात किया जाता था। मेगस्थनीज़ ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि पांड्य जनपद के लोगों के मुख्य आभूषण समुद्री मुक्ताओं से बनाए जाते थे। कौटिल्य ने पांड्य राज्य की राजधानी मधुरा (मदुरई) के बारीक सूती वस्त्रों की ख्याति का भी उल्लेख किया है। उसने यह भी बतलाया है कि कम्बलों, घोड़ों तथा चमड़ों की दक्षिण भारत में कमी थी, किन्तु वहां शंखों, मणियों, मूंगों एवं स्वर्ण की अधिकता थी। नन्द एवं मौर्य शासकों की दक्षिण भारत की विजय के परिणामस्वरूप उनका उस प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग पर नियन्त्रण हो गया जो अवन्ति से प्रतिष्ठान तक जाता था। कलिंग विजय के पश्चात् पूर्वी समुद्र तट के व्यापारिक-पथ पर भी मौर्यों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। अर्थशास्त्र के विवरण से स्पष्ट है कि मौर्यों ने सड़कों के निर्माण एवं संचार-व्यवस्था पर काफी ध्यान दिया था जिसके परिणामस्वरूप उत्तर एवं दक्षिण भारत का पृथकत्व काफी कम हुआ होगा। परन्तु अशोक के दुर्बल उत्तराधिकारी दक्षिण भारत को अधिक समय तक अपने अधीन नहीं रख सके। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् पुष्यमित्र शुंग ने महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में अपनी अधिसत्ता कायम रखी। इसके बाद कुछ समय तक उत्तर तथा दक्षिण के राजवंशों के पारस्परिक राजनैतिक तथा अन्य सम्बन्धों के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती।

---

1. सुवर्णगिरि (स्वर्णगिरि) का समीकरण विवादास्पद है। कुछ विद्वानों ने इसे मास्की के निकट कनकगिरि और कुछ ने आन्ध्र प्रदेश का जोन्नगिरि नामक स्थान माना है। अन्य विद्वानों के अनुसार यह ब्रह्मगिरि का ही नाम था (History of Karnataka, p. 46)।
2. Karnataka through the Ages, p. 100.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

5

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक राजवंश (चेर, चोल एवं पांड्य)

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक राजवंशों में चेर, चोल एवं पांड्य प्रमुख थे। उन्होंने **संगम-युग** में शासन किया। इन राजवंशों के इतिहास पर मुख्यतः संगम साहित्य ही प्रकाश डालता है। चेर, चोल तथा पांड्य जनपदों की सीमाएं एक दूसरे को स्पर्श करती थीं, इसलिए उनमें प्रायः युद्ध होते रहते थे। सगम-युग का राजनैतिक इतिहास वस्तुतः इन्हीं राज्यों के वीच समय-समय पर हुए संघर्षों का विवरण है। इन राजवंशों में कौन अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन था, कहना कठिन है। मेगास्थनीज़ तथा कौटिल्य ने सुदूर दक्षिण के केवल पांड्य राज्य के विषय में कुछ सूचना दी है। परन्तु मौर्य सम्राट अशोक के शिला लेख संख्या दो में चोल, पांड्य तथा केरल (चेर) राज्यों के साथ सतियपुतों (सत्यपुत्रों) का भी उल्लेख हुआ है। तमिल व्याकरण ग्रन्थ तोल्काप्पियम् में चेरों का विवरण चोलों के पहले दिया गया है। इन राजवंशों के केवल कुछ ही शासकों का तिथि-क्रम निश्चितता के साथ निर्धारित किया जा सका है। सत्यपुत्रों के विषय में बहुत ही कम सूचना मिलती है। अतः उनके इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

चेर (केरल)—चेरों का सर्वप्रथम उल्लेख सम्भवतः ऐतरेय आरण्यक[1] में हुआ है। परवर्ती काल में चेर राज्य केरल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चेरों को 'वान-वन' तथा 'मलैयर' भी कहा गया है। कात्यायन (ई० पूर्व चौथी शताब्दी) के **वार्त्तिक** तथा अशोक के शिला लेख दो में पांड्यों एवं चोलों के साथ केरलों का भी उल्लेख हुआ है। रामायण एवं महाभारत में भी इसका वर्णन है। प्राचीन चेर

1. इस ग्रन्थ में **चेरपादाः** शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इसका अर्थ सुस्पष्ट नहीं है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्य का विस्तार पश्चिमी समुद्र-तटवर्ती क्षेत्र में कोंकण तथा दक्षिणी मलावार तट तक था और इसमें उत्तरी ट्रावन्कोर, कोचीन तथा दक्षिणी मलाबार क्षेत्र शामिल थे। इस प्रकार चेर, पांड्य राज्य के उत्तर में पश्चिमी घाटों की पर्वत-श्रृंखला तथा समुद्र के मध्यवर्ती भूभाग के शासक थे। परन्तु ये सीमायें समय-समय पर घटती-बढ़ती रहीं। प्राचीन चेर राज्य की दो राजधानियां थीं–

1. वंजि (तिरुचिरापल्ली जिले में करवूर या करूर[1]।
2. तोंडी (पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित)।

वंजि चेरों की शक्ति का अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र था। परन्तु इसके समीकरण के सम्बन्ध में काफी मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों ने इसे तिरुचिरापल्ली जिले का करूर नामक स्थान और कुछ ने कोचीन के समुद्र तट पर स्थित तिरुवंजिकुलम् (तिरुवाजैक्कलम्) माना है। अन्य विद्वान इसका समीकरण पेरियार नदी के मुहाने के निकटवर्ती क्रांगनोर नामक स्थान से करते हैं जिसे यूनानी लेखको ने सम्भवतः मुजरिस कहा है। मुजरिस महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। टालमी ने करौरा (Karoura) को चेरों की राजधानी बतलाया है। इस स्थान के निकट काफी संख्या में रोम के सम्राटों के सिक्के प्राप्त हुए हैं।

चेर राजवंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक उदयंजीरल (लगभग 130 ई०) था। उसके विषय में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र की दोनों (कौरव एवं पांडव) सेनाओं का भक्षण करने के उपरान्त उसने उदयंजीरल की उपाधि धारण की थी। उसने द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शासन किया।

उदयंजीरल के पश्चात् उसका पुत्र नेदुंजीरल (नेदुंजेराल) 155 ई० के आस-पास राजा हुआ। वह वेलीर (Velir) वंशीय राजकुमारी वेलियानवेनिमालनल्लिनी से उत्पन्न था। उसे महान विजेता तथा चक्रवर्ती सम्राट के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसकी विजयों में कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक के समस्त राज्यों को शामिल कर दिया गया है। नेदुंजीरल ने इमयवरम्बन् का विरुद धारण किया जिसका अर्थ विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार किया है–

1. जिसने अपने राजकीय चिह्न को हिमालय पर्वत पर उत्कीर्ण कराया हो।

---

1. यह कावेरी अथवा पोन्नी नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित नगर था (South Indian Inscriptions, Vol. III, p 444.)। कुछ विद्वानों ने इसकी पहचान कोचीन के निकट पेरियार नदी के तट पर स्थित तिरुकरूर से की है (Cambridge History of India, Vol. I, p. 595)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

2. हिमालय जिसके राज्य की सीमा हो।

3. जिसका यश हिमालय तक पहुँच गया हो।

4. देवानांप्रिय (इमइ-अनवन) अर्थात देवताओं का प्रिय जिसका प्रयोग मौर्य सम्राट अशोक ने किया था।

नेदुंजीरल के पास शक्तिशाली नौ सेना थी। उसकी निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण उपलब्धियां तथ्य पर आधारित प्रतीत होती हैं–

1. उसने मलावार तट के यवनों को बन्दी बनाकर उनके हाथ पीछे की ओर बन्धवा दिये, उनके सिर पर तेल डलवाया और उन्हें अन्य प्रकार से भी अपमानित एवं प्रताड़ित किया। इसके उपरान्त उसने यवनों से हीरे, मोती, बहुमूल्य मणियां तथा बर्तन आदि प्राप्त कर उन्हें मुक्त कर दिया।

प्राचीन भारतीय साक्ष्यों में पहले यवन शब्द का प्रयोग यूनान के लोगों के लिए किया गया और बाद में विदेशी के सामान्य अर्थ में। नेदुंजीरल के सन्दर्भ में यवनों का तात्पर्य सम्भवतः यूनान, रोम या अरब के व्यापारियों अथवा सामुद्रिक-दस्युओं से हो सकता है।

२. नेदुंजीरल की दूसरी महान उपलब्धि थी 'कड़म्बु' नामक जनजाति का दमन। प्राचीन तमिल साहित्य में कारवाड़ से मंगलौर तक के सामुद्रिक-दस्युओं के क्षेत्र को कड़म्बु कहा गया है। इस भू-भाग में सम्भवतः कड़म्बु नामक वृक्ष भी पैदा होता था। नेदुंजीरल के राज्यकाल में पश्चिमी समुद्र के इस क्षेत्र का पाश्चात्य जगत के साथ व्यापार उन्नत अवस्था में था और कड़म्बु डाकू लूट-पाट द्वारा इसमें सम्भवतः विघ्न उपस्थित करते थे। इसलिए नेदुंजीरल ने इन दस्युओं का पूर्णरूप से दमन कर सामुद्रिक व्यापार को उनके खतरे से मुक्त कर दिया।

एस० कृष्णस्वामी आयंगर की मान्यता है कि इसी कड़म्बु जनजाति के लोग परवर्ती काल में कदम्ब कहलाने लगे। परन्तु यह मत किसी पुष्ट ऐतिहासिक साक्ष्य द्वारा समर्थित न होकर केवल कुछ वाह्य नाम-साम्य पर ही आधारित है।

नेदुंजीरल ने सात शत्रु-शासकों को पराजित करने के उपरान्त 'अधिराज' की उपाधि धारण की। उसका चोल शासक उरुवप्पहरेर् इलैयन् से भी युद्ध हुआ जिसमें दोनों ही मारे गये और उनकी पत्नियां सती हो गईं। यदि यह विवरण तथ्य पर आधारित है तो इसे प्राचीन भारतीय इतिहास के अद्भुत उदाहरणों में से एक मानना चाहिए। कुछ विद्वानों के अनुसार नेदुंजीरल ने 55 वर्ष तक शासन

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया और कुछ के अनुसार 58 वर्ष तक।

नेदुंजीरल की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई पल्यानैशेल्केलुकुट्टुवन चेर राजसिंहासन पर बैठा। उसे कोंगु जनपद तथा अगप्पा के दुर्ग का विजेता कहा गया है। उसके विषय में अधिक सूचना नहीं मिलती नेदुंजीरल के तीन पुत्रों के नाम मिलते हैं–

1. कलंगायक्कणिनाडमुडिच्छच्छीरल–जो 175 ई० के आस-पास शासन कर रहा था। उसका नारमुडि नामक शासक से युद्ध हुआ था।
2. चोल राजकुमारी से उत्पन्न सेंगुट्टुवन
3. इलंगोअदिगल

इनमें सेंगुटटुवन (लगभग 180 ई०) सबसे शक्तिशाली था। उसकी उपलब्धियों तथा महानता का प्रशंसात्मक विवरण संगम-युग के कवि परणर ने किया है। सेंगुटटुवन को पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों के बीच के समस्त भू-भाग का विजेता बतलाया गया है। उसने उत्तर भारत के आर्यों को पराजित किया, कोडुगूर को जीता, पलययान के धार्मिक वृक्ष को नष्ट किया, वयिलपुरम् के युद्ध में नौ चोल शासकों को पराजित किया और कड़म्बुओं का विनाश करने के उपरान्त कदलपिरक्कोत्तिय (Kadalapirakkottiya अर्थात् समुद्र को पीछे हटाने वाला) की उपाधि धारण की। परणर के अनुसार उसके पास सुदृढ़ नौ-सेना थी, जिसके द्वारा उसने पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र तटों के द्वीपों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। उसने मुहुर तथा वियालूर के शासकों पर भी विजयें प्राप्त कीं। के० ए० नीलकांत शास्त्री के अनुसार मुहुर पांड्य राज्य का ही एक भाग था।

परणर के अनुसार सेंगुटटुवन कुशल अश्वारोही तथा गजारोही, हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के अनेक शासकों का विजेता, सात राजमुकुटों की माला धारण करने वाला, शत्रुओं के दुर्गों में घेरा डालने में चतुर, युद्ध-प्रिय तथा सुरापान में अनुरक्त था। उसने इलंगोवेनिमाल नाम की वेलीर वंशीय राजकुमारी के साथ विवाह किया। वह विद्या एवं धर्म का भी उत्साही संरक्षक था। उसी के शासन काल में पातिव्रत-धर्म की अधिष्ठात्री देवी कण्णगी की पूजा का प्रारम्भ हुआ। उसने इस देवी का एक मन्दिर बनवाया और उसमें कण्णगी की प्रतिमा स्थापित की। शिलप्पदिकारम् में यह वर्णित है कि इस मूर्ति के निर्माण हेतु पत्थर लाने के लिए सेंगुटटुवन ने हिमालय पर्वत की साहसिक यात्रा की थी। प्रतिमा की स्थापना के अवसर पर जिन अनेक शासकों को उसने

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आमन्त्रित किया था, उनमें लंका का राजा गजबाहु प्रथम भी शामिल था। गजबाहु से समकालीनता के आधार पर उसका राज्यकाल द्वितीय शताब्दी के तृतीय चरण में रखा गया है। सेंगुट्टुवन ने 55 वर्ष तक शासन किया।

सेंगुट्टुवन के पश्चात् उसका पुत्र पेरुंजीरलइरुमपोरय (लगभग 190 ई०) राजा हुआ। उसने पोत्ति के चोल शासक तथा वलैयनमारन को पराजित किया और प्रस्तर से निर्मित पांच दुर्गों को अधिकृत किया। उसने विच्चि तथा पांड्य शासक के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की और इन युद्धों में प्राप्त बहुत सी धन-सम्पत्ति सहित अपनी राजधानी वंजि वापस आया। इरमपोरय को कलुवूल एवं अडिगयमान नामक सामन्तों को भी पराजित करने का श्रेय दिया गया है। उसने तगडूर (सलेम जिले में धर्मपुरी) में स्थित अडिगयमान के एक दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। परन्तु बाद में इन दोनों राजाओं में मित्रता हो गई। इरमपोरय के उत्तराधिकारियों में सेइयै (210 ई० के लगभग) का नाम उल्लेखनीय है। उसने पांड्यों तथा चोलों से युद्ध किया था। अटुकोत-पुत्तुचेरलआदन नामक एक अन्य राजा ने चेर राज्य के कुछ प्रदेश पर 38 वर्ष तक शासन किया। उसे दंडकारण्य की कुछ जनजातियों द्वारा चुराए गए पहाड़ी बकरे-बकरियों को पुनः प्राप्त कर उन्हें तोंडी में लाने का श्रेय दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि उसकी राजधानी वंजि न होकर सम्भवतः तोन्डी थी। अदुकोतपुत्तचेरलआदन ने कुडनाडु में एक नगर ब्राह्मणों को दान में दिया, मलवारों पर विजय प्राप्त की और वानवरम्बन की उपाधि धारण की।

उपर्युक्त चेर शासकों के अतिरिक्त अन्दुवन, शेलवक्कुडगोन, वालिआदन, ऐ तथा पारि आदि के नाम भी मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने इन्हें शाखा-राजवंशों से सम्बन्धित किया है। ये राजा ब्राह्मण धर्म के संरक्षक थे। परन्तु उनके राज्य-काल के विषय में कोई महत्वपूर्ण सूचना नहीं मिलती।

चोल—संगम-युग में चोल मुख्यतः कोरोमंडल-समुद्रतट, तिरुचिरापल्ली, तंजोर तथा कावेरी नदी से घिरे भूभाग के शासक थे। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार प्राचीन चोल राज्य पूर्वी समुद्र तट पर पेन्नार नदी से लेकर वेल्लार तक और पश्चिम में कुर्ग की सीमा तक विस्तृत था। इसके अन्तर्गत तोंडमंडलम क्षेत्र भी शामिल था। चोलों का उल्लेख करने वाले प्राचीन साक्ष्यों में पाणिनि की अष्टाध्यायी, संगम-साहित्य, महाभारत तथा अशोक का शिला-लेख संख्या दो हैं। चोलों ने अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय माना और पुराणों में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्णित शिवि एवं मनु से सम्बन्धित किया।[1]

टालमी के अनुसार उसके समय में दो चोल राज्य थे। दक्षिण के चोलों की राजधानी उरगपुर या उरैयूर (Orathoura) थी और उत्तर के चोलों की शक्ति का केन्द्र अर्काट (Arkatos) था। टी०वी० महालिंगम ने अर्काट का समीकरण तंजौर जिले के आरक्काडु नामक स्थान से किया है। चोलों की प्राचीनतम राजधानी उरैयूर कावेरी नदी[2] के तट पर स्थित थी। प्राचीन चोल वंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक उरुवप्पहरेंइलमसेतसेन्नि था। उसकी राजधानी उरैयूर थी। उसने वेलीर (Velir) वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसके राज्य में तोंडमंडलम क्षेत्र नहीं शामिल था। संगम-साहित्य में वस्तुतः करिकाल के पूर्ववर्ती कई चोल शासकों के नाम वर्णित हैं, परन्तु स्पष्ट प्रमाणाभाव के कारण उनके वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम के सम्बन्ध में काफी मत-भिन्नता तथा अनिश्चितता है।

उरुवप्पहरे का पुत्र एवं उत्तराधिकारी करिकाल बहुत शक्तिशाली तथा महान शासक था। उसकी उपलब्धियों का भावी पीढ़ियों के मानस-पटल पर गहरा प्रभाव पड़ा और परवर्ती काल में उससे सम्बन्धित अनेक कथानक गढ़े गये जिनके विवरण शिलप्पदिकारम् के अतिरिक्त 11-12वीं शती तक के साहित्यक ग्रन्थों एवं अभिलेखों में मिलते हैं। करिकाल का पितामह पेरुननिकिल्लि चेर शासक कुदक्को का समकालीन था और दोनों परस्पर युद्ध करते हुए एक साथ मारे गये थे। करिकाल के पिता की मृत्यु राज्यारोहण के पहले ही हो गई थी। इसलिए वह (करिकाल) बचपन में ही विषम परिस्थितियों से घिर गया था और उसे अपने राज्य से भागकर करुर में शरण लेनी पड़ी। वहीं से वह चोल-राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किए जाने के लिए लाया गया था। करिकाल बचपन में अग्नि से बुरी तरह जल जाने के कारण लंगड़ा हो गया था। विभिन्न विद्वानों द्वारा सुझाये गये उसके नाम के विभिन्न शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हैं—

1. जिसकी टांग जल गई हो।
2. जो करि अर्थात शत्रुरूपी हाथियों के लिए काल के समान हो।
3. कलि को समाप्त करने वाला।

---

1. बी० सी० लॉ, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ० 230।
2. ई० हुल्ट्श ने इसकी पहचान नेगपतम से की है जो कावेरी के मुहाने से लगभग 60 किलो मीटर की दूरी पर स्थित नगर है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

4. काली टांग वाला।

इनमें द्वितीय अर्थ अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

करिकाल के सम्मान में रची गई पट्टिनप्पलै में उसकी विजयों तथा अन्य उपलब्धियों का विस्तृत एवं अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण प्राप्त होता है। इस साक्ष्य से हमें ज्ञात होता है कि शासन के प्रारम्भिक भाग में करिकाल को अनेक राजनैतिक झंझावातों का सामना करना पड़ा। उसके शत्रुओं ने चोल राज्य को अधिकृत कर उसे जेल में डाल दिया था। परन्तु वह किसी प्रकार जेल से मुक्ति पाकर पुनः राजसिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ। राज्य एवं राजधानी में राजनैतिक स्थिरता स्थापित करने के उपरान्त उसने महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी योजना को कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया। उसे अनेक राज्यों एवं राजाओं पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

करिकाल ने **वेण्णि** (तंजोर से लगभग 24 किलो मीटर पूर्व में स्थित) में दो महत्वपूर्ण युद्ध किए थे। प्रथम संघर्ष में उसने अपने प्रमुख प्रतिद्वन्दी पांड्यों, चेरों तथा उनके मित्र 11 सामन्त शासकों की सम्मिलित सेनाओं को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया। इस युद्ध में चेर राजा की पीठ पर घाव लग गया था जिससे अपमानित होकर उसने युद्ध-स्थल पर ही दम तोड़ दिया। करिकाल की यह शानदार विजय न केवल उसके लिए बल्कि, दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीति में दिशा परिवर्तक सिद्ध हुई।

करिकाल का दूसरा महत्वपूर्ण युद्ध वाहैप्परन्दलै नामक स्थान पर हुआ था। इसमें उसने नौ छोटे शासकों को पराजित कर उनके राजकीय छत्र आदि अपहृत कर लिए और उन पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर दी। उसने पेन्नार नदी के निचले कांठे में निवास करने वाले अरुवालर लोगों पर भी आक्रमण किया। इनके अतिरिक्त करिकाल को पश्चिमी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है और बतलाया गया है कि उसने नागवंश से सम्बन्धित ओलियन नामक एक असभ्य जनजाति को सभ्य बना दिया था। पट्टिनप्पालै में करिकाल की विजयों में एयिनार (Eyinar), ओलियार (Oliyar), अरुवालर तथा वडवर को भी शामिल किया गया है। टी० वी० महालिंगम के अनुसार इनमें से प्रथम तीन तोंडमंडलम की जनजातियां थीं और वडवर तमिल देश की सीमा के बाहर स्थित क्षेत्र के शासक थे।

करिकाल को उत्तर में हिमालय पर्वत तक के क्षेत्र का विजेता बतलाया

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गया है। इस कथन में कहां तक सत्यता है, कहना कठिन है। शिलप्पदिकारम् के अनुसार करिकाल ने मगध, वज्र तथा अवन्ति राज्यों के शासकों से कूट-नीतिक सम्बन्ध बनाए। एस० के० आयंगर ने इस विवरण को प्रामाणिक माना है और वज्र का समीकरण बुन्देलखंड से किया है।

करिकाल के राज्य-काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना उसके द्वारा श्रीलंका की विजय थी। श्रीलंका के शासक को पूर्णरूपेण पराजित कर वह वहां से 12,000 व्यक्तियों को बन्दी बनाकर अपने साथ लाया था। बाद में उसने इन कैदियों तथा कुछ अन्य पराजित शासकों की सहायता से कावेरी नदी के मुहाने पर पुहार नामक पत्तन का निर्माण कराया। उसकी सिंहल-विजय प्रमाणित करती है कि उसके पास शक्तिशाली नौ-सेना भी थी। पुहारपत्तन के निर्माण-कार्य में उसने जिन शासकों का सहयोग लिया था, उनमें त्रिनेत्रपल्लव[1] भी शामिल था।

एक महान शासक तथा विजेता होने के साथ-साथ करिकाल तमिल साहित्य एवं ब्राह्मण धर्म का उदार संरक्षक था। उसने आर्थिक सुधारों पर भी ध्यान दिया और कृषि तथा व्यापार को काफी प्रोत्साहन प्रदान किया। उसने जंगली भूमि को अधिकृत कर उसे साफ कराया और सिंचाई के लिए तालाबों आदि का निर्माण कराया। उसने चोल राज्य से अन्य क्षेत्रों को स्थानांतरण करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। करिकाल एक न्याय-प्रिय शासक था और प्रीतिभोजों, सुरापान एवं स्त्रियों में अभिरुचि रखता था। पट्टिनप्पलै कविता के रचयिता अपने संरक्षित कवि को उसने 1,60000 सोने के सिक्के पुरस्कार के रूप में दिए थे। उसने परणर तथा कलत्तलैयर नामक कवियों को भी संरक्षण प्रदान किया। करिकाल ने कावेरीपट्टिनम् नगर का निर्माण करा कर उसे अपनी राजधानी बनाया।

चेर शासक सेंगुटटुवन तथा सिंहल के राजा गजबाहु से समकालीनता के आधार पर मुख्यतः करिकाल का राज्यकाल निर्धारित किया गया है। टी० वी० महालिंगम के अनुसार उसने 140 तथा 190 ई० के बीच के अन्तराल में शासन किया। वह संगम-युग का सबसे महान शासक था और तेलुगू क्षेत्र के कई परवर्ती राजवंशों एवं राजाओं ने उसे अपना पूर्वज माना।

1. यह करिकाल का अधीनस्थ कोई पल्लव शासक रहा होगा। परम्परागत विवरण के अनुसार करिकाल की आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण त्रिनेत्र का तीसरा नेत्र निकलवा दिया गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करिकाल के उत्तराधिकारी–करिकाल की मृत्यु के उपरान्त चोल राज्य विघटित होकर अराजकता का शिकार हो गया। उसके दो पुत्र थे–मनक्किल्लि तथा पेरुविर्रकिरल्लि। मनक्किलल्लि की राजधानी उरैयूर थी। उसका पुत्र नेन्दुकिल्लि तथा पौत्र पेरवरनरकिल्लि था। पेरचरनरकिल्लि के तीन पुत्र थे– 1. किल्लिवलवन 2. नलनकिल्लि, 3. मवलत्तन। एस० के० आयंगर के अनुसार करिकाल की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र या पौत्र नेडमुडिकिल्लि राजा हुआ। उसने कारियारु नामक स्थान पर चेरों तथा पांड्यों को पराजित किया। उसी के शासनकाल में कावेरीपट्टिनम का विनाश हो गया था। करिकाल के उपर्युक्त उत्तराधिकारियों के विषय में बहुत कम सूचना मिलती है। चेरों के अभ्युदय काल में चोल राज्य की सीमायें काफी संकुचित हो गईं थीं, किन्तु वे अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में प्रायः सफल रहे। पांड्यों तथा पल्लवों के उत्कर्ष के परिणामस्वरूप प्राचीन चोल राजवंशों की अवशिष्ट शक्ति तथा गरिमा समाप्त हो गई और नवीं शताब्दी के मध्य के लगभग विजयालय चोल के अभ्युदय तक उनका इतिहास अस्पष्ट, अन्धकारमय तथा अनिश्चित है।

पांड्य–सुदूर दक्षिण के प्रारम्भिक राजवंशों में पांड्यों का महत्वपूर्ण स्थान था और वे संगम-युग में चोलों के प्रमुख प्रतिद्वन्दी थे। पांड्य राजवंश के इतिहास के तीन प्रमुख चरण हैं–

1. संगम-युग के पांड्य, 2. कडुंगोन द्वारा स्थापित प्रथम पांड्य साम्राज्य 3. मारवर्मन सुन्दर पांड्य प्रथम द्वारा स्थापित द्वितीय पांड्य साम्राज्य।

पांड्यों के प्राचीनतम उल्लेख हमें कात्यायन के **वार्तिक** (ईसा पू० चौथी शताब्दी) तथा मेगास्थनीज की इंडिका में प्राप्त होते हैं। मेगास्थनीज ने लिखा है कि पांड्य राज्य में स्त्रियां शासन करती थीं और उस समय वहां की शासिका हेराक्लीज की पुत्री पंडिया थी। वह कुशल प्रशासिका थी। उसके राज्य में 365 ग्राम थे जो नियमित रूप से कर एवं भेंटे देते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बतलाया गया है कि पांड्य जनपद की राजधानी मदु ा (मदुरई) नगर उत्तम वस्त्रों तथा बहुमूल्य मोतियों के उत्पादन एवं व्यापार के लिए प्रसिद्ध था[1]। अशोक के शिलालेख दो में पांड्य राज्य को मौर्य साम्राज्य की दक्षिणी सीमा पर स्थित जनपदों में शामिल किया गया है।

रामायण तथा महाभारत में भी पांड्य राज्य के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में बतलाया गया है कि यह राज्य चन्दन के लिये प्रसिद्ध था। हाथी-

1. प्रचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ० 303-304.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गुम्फा अभिलेख के अनुसार पांड्यों को पराजित करने के उपरान्त कलिंगराज खारवेल पांड्य राज्य से हाथी, घोड़े तथा बहुमूल्य मुक्ता-मणि ले गया था[1]। परन्तु इस युद्ध का ब्योरा नहीं दिया गया है। Periplus of the Erythrean Sea से हमें ज्ञात होता है कि दक्षिण में कोमारी (Comari = कन्याकुमारी) से लेकर कारकै तक का क्षेत्र पांड्य राज्य में सम्मिलित था[2]। इस जनपद में प्रवाहित होने वाली ताम्रपर्णी नदी उत्कृष्ट मुक्ताओं के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थी[3]। टालमी (लगभग 150 ई०) ने भी पांड्य राज्य (Pandae) तथ इसकी राजधानी मदुरा (Madoura) का उल्लेख किया है।[4] स्ट्रैबो ने लिखा है कि पांड्य शासक (Pandion) ने रोम के सम्राट अगस्तस के राजदरबार में अपना दूतमंडल भेजा था।[5]

पांड्य राज्य चोल राज्य के दक्षिण में स्थित था और इसके अन्तर्गत मोटे तौर पर वर्तमान मदुरई, तिरुनेनेलवेलि, रामनाथपुरम तथा तिरुचिरापल्ली ज़िलों के अतिरिक्त भूतपूर्व ट्रावनकोर राज्य का कुछ भू-भाग भी शामिल था। इसकी सबसे प्राचीन राजधानी कोरकाई[6] (कोलकाई) थी। प्रथम शताब्दी में वैगई नदी के तट पर स्थित मदुरा (मदुरई) पांड्यों की शक्ति का केन्द्र बना।

प्राचीन अनुश्रुतियों तथा साहित्यिक साक्ष्यों में पांड्य शासक वदिमबलनबनिन्र (Vadimbalanbaninra) का उल्लेख मिलता है जिसे मदुरई का शासक कहा गया है। पी० एन० चोपड़ा, एन० सुब्रमण्यम तथा टी० के० रवीन्द्रन के अनुसार व्याकरण ग्रन्थ तोल्काप्पियम् की एक टीका में इसी राजा का मर्किति (Markithi) के नाम से उल्लेख हुआ है। मदुरा के प्रारम्भिक पांड्य शासकों में मुदुकुडुमिपेरुवलुदि Mudukudumiperuvaludi) उल्लेखनीय है। उसे महान विजेता, कवियों का आश्रयदाता तथा अनेक वैदिक-यज्ञों

1. .....हय हथि रतन (मानिकं) पडराजा.....(मु) त मानि रतनानि आहारापयति।
2. R C. Majumdar, Classical Accounts of India, pp. 456-57.
3. ताम्रपर्णी समेतस्य मुक्तासारं महोदधेः (रघुवंश, 4. 50.)।
4. K. A. N. Sastri, Foreign Notices of South India, p. 41.
5. कुछ विद्वानों ने Pandion के स्थान पर पोरस पढ़ा है। देखिए Journal of Royal Asiatic Society, 1860 p. 321.
6. तमिलनाडु के तिरुनेलवेलि ज़िले में स्थित कोरगार (South Indian Inscriptions, Vol. I. p, 168)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को सम्पन्न करने वाला बतलाया गया है। उसके बाद के पांड्य राजाओं में मदिवननपोरकै (Madivananporkai) तथा इलमपेरुव के नाम मिलते हैं।

मागुडिमरुदन के मदुरैक्कंजि तथा कुछ अन्य साक्ष्यों में नेडियोन, पलशालै-मुदुकुडुमि एवं नेडुंजेलियन के उल्लेख हुए हैं। इनमें नेडियोन अर्थात् लम्बे कद वाला) के विषय में प्रामाणिक सूचना का अभाव है। वेलविक्कुडि तथा शिन्न-मनूर-ताम्रपत्रों में उसकी कुछ उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है। उसे पहरुलि (Pahruli) नदी को उत्पन्न करने तथा समुद्र-पूजा को व्यवस्थित स्वरूप देने का श्रेय दिया गया है। वेलविक्कुडि-ताम्रपत्रों में पालशालैमुदुकुडुमि का प्रथम पांड्य शासक के रूप में उल्लेख हुआ है। उसने बहुत से यज्ञ सम्पन्न किये और इसीलिए पलशालै का विरुद धारण किया।

संगम-युग के पांड्य शासकों में नेडुंजेलियन सर्वाधिक शक्तिशाली था। वह अल्पायु में ही राजा बन गया था। सम्भवतः इसीलिए उसके शासन के प्रारम्भ में चेरों तथा चोलों ने पांच अन्य छोटे शासकों के साथ पांड्य राज्य पर आक्रमण कर दिया। नेडुंजेलियन ने तलैयालंगानम (तिरुवालूर से लगभग 20 किलो मीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित) नामक स्थान पर इस शत्रु-संघ का वीरता पूर्वक सामना किया, उन्हें पराजित कर मदुरा से खदेड़ दिया तथा तंजौर तक उनका पीछा किया। इस निर्णायक संघर्ष के प्रारम्भ होने के पहले ही नेडुंजेलियन ने चेर शासक शेय को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा की थी जिसे उसने पूरा भी किया। पांड्य साक्ष्यों में इस युद्ध को काफी महत्व दिया गया और कम से कम 10वीं शती तक के अभिलेखों में गर्व के साथ इसका वर्णन किया गया। नेडुंजेलियन ने कोंगु प्रदेश के शासक अलियन तथा निडूर के राजा एव्वि के विरुद्ध भी सफलताएं प्राप्त कीं। एव्वि को पराजित करने के उपरान्त उसने मिललय एवं मुत्तूर क्षेत्र अधिकृत कर लिए थे।

नेडुंजेलियन स्वयं कवि था और मागुंडिमरुदन, कल्लादनार तथा नक्कीरर उसके संरक्षित कवि थे। इन दरबारी कवियों ने पारम्परिक अतिशयोक्ति के साथ उसकी उपलब्धियों तथा महानता का वर्णन किया है। वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था और उसने कई वैदिक-यज्ञ सम्पन्न किए। उसने व्यापार को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। मदुरैक्कांजि में नेडुंजेलियन के शासन काल में पांड्यों की राजधानी मदुरा के वैभव एवं गरिमा का विस्तृत विवरण है।

नेडुंजेलियन ने चोल करिकाल तथा कांची के शासक इलन्दिरैयन के राज्य काल के बाद में शासन किया। नेडुंजेलियन नाम के एक से अधिक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पांडय शासक थे। इसलिये इस नेडुंजेलियन को तलैयालंगनातुच्चेरुवेन (तलैयालंगानम के युद्ध का विजेता) कहा गया है। उसी के शासन काल में कण्णगी के निर्दोष पति कोवलान को मृत्यु दंड दिया गया था जिसका विस्तृत तथा रोमांचकारी विवरण शिलप्पदिकारम् काव्य में मिलता है। जब उसे अपने इस अक्षम्य अपराध की जानकारी प्राप्त हुई तो उसने शोक संतप्त होकर दम तोड़ दिया।

नेडुंजेलियन का छोटा भाई वेरिवरशेलिय कोरकै में शासन कर रहा था। नेडुंजेलियन की मृत्यु के पश्चात् वह मदुरा का भी राजा बन गया और उसने कोवलान की पतिव्रता पत्नी कण्णगी के सम्मान में एक उत्सव का समारम्भ किया। वह चेर शासक सेंगुटटुवन का समकालीन था। चूंकि भित्ति-चित्रों को देखने के दौरान उसकी मृत्यु हुई थी, इसलिए वह चित्तिरमरदत्तुनुंजियवरमरन के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। ननभरन की उपाधि उसने सम्भवतः मदुरा का शासक होने के उपरान्त धारण की थी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में पांड्य, चोल तथा चेर राज्यों के महत्वाकांक्षी शासक सुदूर दक्षिण की प्रभुसत्ता के लिए आपस में संघर्ष करते रहे और बारी-बारी से एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

6

आन्ध्र-सातवाहन राजवंश

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् मगध में क्रमशः शुंग एवं कण्व राजवंशों ने शासन किया। तदुपरान्त आन्ध्र-सातवाहन राज्य की स्थापना हुई। यह दक्षिणापथ का प्रथम महान राजवंश था। इस राजवंश के इतिहास जानने के प्रमुख स्रोत सातवाहन राजाओं के अभिलेख एवं सिक्के, कुछ समकालीन राजवंशों के अभिलेख, पुराण, गार्गीसंहिता, लीलावती, हाल की गाथासत्तसई (सप्तशती) गुणाढ्य की बृहत्कथा एवं सोमदेव द्वारा रचित कथासरित्सागर हैं।

पुराणों के अनुसार कण्व वंश के अन्तिम शासक सुशर्मन को मारकर तथा शुंगों की अवशिष्ट शक्ति का विनाश कर आन्ध्र-जातीय सिमुक (शिशुक या सिन्धुक) ने (मगध का) राजसिंहासन प्राप्त किया था।[1] पुराणों में जिन शासकों को अन्ध्र, आन्ध्र अथवा अन्ध्रभृत्य कहा गया है, उन्हीं के लिए अभिलेखों में सातवाहन[2] शब्द का प्रयोग हुआ है। **सातवाहन** शब्द की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है–

कथासरित्सागर के अनुसार सातवाहन की उत्पत्ति **सात** शब्द से हुई। सात एक यक्ष का नाम था और राजा उस पर सवारी करता था।

अभिधानचिन्तामणि में सातवाहन का अर्थ सुखद वाहन रखने वाला बतलाया गया है[3]। के० गोपालाचारी के अनुसार यहां वाहन का अर्थ मौर्य सम्राटों

---

1. काण्वायनास्ततो भूपाः सुशमणिः प्रसह्यताम्।
   शुंजानां चैव यच्छेषं क्षत्वायिवात्तु वलीयसः (मत्स्य पुराण 272/1)..।
   हत्वा काण्वं सुशर्मणि तद्भृत्यो वृषलो बली (भागवतपुराण 1-2/1/22)।
2. वात्स्यायन के कामसूत्र में **शातवाहन** शब्द प्रयुक्त हुआ है और बाण के हर्षचरित तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में **सातवाहन**।
3. सातदत्त सुखद वाहनमस्य इति।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के अधीन उच्च सैनिक अधिकारी थे। उन्होंने महाभारत के उस अंश को उद्धृत किया है जिसमें विष्णु के एक हजार नामों में **सप्तवाहन** को भी शामिल किया गया है। गोपालाचारी की मान्यता है कि सातवाहन चूंकि **सप्तवाहन** शब्द से बना है और विष्णु सूर्य से सम्बन्धित हैं, इसलिए सातवाहनों को सूर्य वंशी क्षत्रिय मानना चाहिए। जोगलेकर महोदय के अनुसार सातवाहन का अर्थ सात-वाण अथवा सूर्य की सातकिरणें हैं। एन० सुब्रमण्यम, पी० एन० चोपड़ा तथा टी० के० रवीन्द्रन का अनुमान है कि सात या सत का अर्थ सार्थ (caravan) है। प्रारम्भ में सातवाहन व्यापारी रहे होंगे और बाद में वे शक्ति बढ़ाकर शासक हो गये। जिनप्रभासूरी (14वीं शताब्दी) के अनुसार वाहनों को दान देने वाला सातवाहन होता है। एल० डी० बार्नेट तथा बी० एस० बारवले ने सातवाहनों का सम्बन्ध अशोक के अभिलेखों में वर्णित सतियपुत्रों से जोड़ा है और कुछ विद्वानों ने उनका समीकरण प्लिनी द्वारा उल्लिखित **सत्ताइसे** से किया है।

आन्ध्र-भृत्य शब्द के निम्नलिखित अर्थ माने गए हैं–

1. आन्ध्र लोग जो मूलतः स्वयं मौर्यों अथवा शुंगों के भृत्य (सामन्त या अधिकारी) थे।

2. सातवाहन, आन्ध्र-शासकों के भृत्य थे, क्योंकि सिमुक को कण्व वंशीय सुशर्मन् का भृत्य कहा गया है।

3. आन्ध्र-सातवाहनों के भृत्य इक्ष्वाकु तथा आभीर आदि राजवंश जिन्होने सातवाहन साम्राज्य के पतन के पश्चात् क्रमशः पूर्वी एवं पश्चिमी दक्षिणापथ में शासन किया।

जोगलेकर के अनुसार महाराष्ट्र के पुणे जिले में प्रवाहित होने वाली आन्ध्र नदी की घाटी के निवासी होने के कारण सातवाहनों को आन्ध्र कहा गया है।

डी० आर० भंडारकर तथा हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार सातवाहन वंशीय शासकों को आन्ध्र राज्य का निवासी मान लेने पर पुराणों एवं अभिलेखों की सूचना में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। दिनेश चन्द्र सरकार का भी लगभग यही मत है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री की मान्यता है कि सातवाहनों को ही पुराणों में अन्ध्र, आन्ध्र या आन्ध्र-भृत्य कहा गया है। पुराणों के उन अध्यायों का संकलन जिनमें उन्हें उपर्युक्त संज्ञाएं दी गयी हैं, सम्भवतः उस काल में हुआ जब सातवाहनों का आधिपत्य पश्चिमी क्षेत्रों पर समाप्त हो गया

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था और उनका राज्य मुख्यत: आन्ध्र देश तक ही सीमित रह गया। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि न तो पुराणों में सातवाहन शब्द प्रयुक्त हुआ है और न ही सातवाहनों ने स्वयं कभी अपने को आन्ध्र कहा। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन दोनों के एक होने में संदेह किया है। पी० वी० देसाई के अनुसार, पुराणों में सातवाहनों को भ्रमवश आन्ध्र कहा गया है। ओ० सी० गांगुली ने **बृहद्देशी** के साक्ष्य को उद्धृत करते हुए बतलाया है कि आन्ध्रों एवं सातवाहनों ने संगीत में पृथक-पृथक राग जोड़े थे जिन्हें क्रमश: **आन्ध्री** एवं **सातवाहनी** नाम दिये गये। इस आधार पर गांगुली महोदय की मान्यता है कि आन्ध्र एवं सातवाहन सम्भवत: दो पृथक जनजातियां थीं।[1] परन्तु यह मत भी किसी समकालीन व प्रामाणिक साक्ष्य पर आधारित नही है और अन्य स्रोतों से इसका खंडन हो जाता है।

वी० वी० मिराशी, डी० सी० सरकार तथा सुधाकर चट्टोपाध्याय की धारणा है कि सातवाहन इस राजवंश का आदिपुरुष एवं सिमुक का पूर्वज था। मिराशी के अनुसार इसी सातवाहन नामक राजा के तांबे तथा सीसे के सिक्के कुछ वर्ष पूर्व औरंगाबाद, हैदराबाद तथा अकोला में प्राप्त हुए जिन पर अंकित लेख इस प्रकार है–**रञो सिरि सादवाहनस**[2]। परन्तु कुछ विद्वानों ने सातवाहन नाम के बाद के एक शासक को इन सिक्कों का प्रवर्तक माना है। गौतमीबलश्री की नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र शातकर्णि को सातवाहन कुल के यश का प्रतिष्ठापक (सातवाहन-कुलयसपतिथापनकरस) और सिमुक के छोटे भाई कृष्ण को सातवाहन कुल का राजा (सातवाहनकुलेकन्हे-राजनि) कहा गया है। पुराणों में सिमुक या सिन्धुक को अन्ध्रजातीय बतलाया गया है।[3] इस प्रकार आन्ध्र एक जनजाति का नाम था और सातवाहन 'कुल'

---

1. Journal of the Andhra Historical Research Society, Vol. XI, pp. 1, 2, 14-15; Raichaudhuri, H. C. Political History of Ancient India, p. 412, fn 1.
2. वी० वी० मिराशी, सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, पृ० 6।
3. शिशुको (सिमुको) आन्ध्रसजातीय: प्राप्स्यतीमां बसुन्धराम् (मत्स्य पुराण, 272/2)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का नाम जो इस राजवंश के आदिपुरुष के नाम पर रखा गया था।[1]

आन्ध्र-सातवाहनों की जाति—आन्ध्रों का प्राचीनतम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है। इस ग्रन्थ में उन्हें दस्यु कहा गया है। मनु ने आन्ध्रों को वैदेहक पुरुष एवं निषाद स्त्री से उत्पन्न मिश्रित जाति का तथा भागवत पुराण में वृषल बतलाया गया है। वृषल शब्द का विभिन्न साक्ष्यों एवं सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है और कुछ स्रोतों में यह शब्द शूद्र के लिए भी आया है। आन्ध्र जनजाति के लोग प्रारम्भ में आर्य-संस्कृति की परम्पराओं का पालन नहीं करते थे। सम्भवतः इसीलिए उन्हें उपर्युक्त साक्ष्यों में शूद्र बतलाया गया है।

जैन-ग्रन्थ द्वात्रिंशतपुत्तलिका के विवरण के आधार पर हेमचन्द्र राय-चौधरी तथा वी० वी० मिराशी ने शालिवाहन (सातवाहन शब्द का प्राकृत रूप) को ब्राह्मण एवं नाग जातियों का सम्मिश्रण माना है। उनके अनुसार नागनिका जैसे नामों से भी सातवाहनों के नागवंश से सम्बन्धित होने का संकेत मिलता है। परन्तु गौतमीबलश्री की नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र शातकर्णि को **एकबम्हण** एवं **खतियदपमानमदनस** कहा गया है। विभिन्न विद्वानों ने इन शब्दों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। आर० जी० भंडारकर तथा डी० आर० भंडारकर के अनुसार एकबम्हण का अर्थ ब्राह्मणों का अद्वितीय संरक्षक है। ये दोनों विद्वान तथा के० गोपालाचारी सातवाहनों को क्षत्रिय मानते हैं। पी० एन० चोपड़ा तथा एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार एकबम्हण का अभिप्राय केवल यह है कि गौतमीपुत्र ब्राह्मण-परम्पराओं का निष्ठापूर्वक पालन करता था न कि वह स्वयं ब्राह्मण था। अमरकोश में भी उपर्युक्त शब्द का अर्थ 'ब्राह्मण धर्म का अनुयायी' बतलाया गया है। परन्तु ई० सेनार्ट, के० पी० जायसवाल तथा वी० एस० बारवले ने सातवाहनों को ब्राह्मण माना है और यही मत सही प्रतीत होता है क्योंकि गौतमीपुत्र शातकर्णि को एकबम्हण के अतिरिक्त क्षत्रियों के मान का मर्दन करने वाला भी कहा गया है और किसी साक्ष्य में इस राजवंश को ब्राह्मणेत्तर नहीं बतलाया गया है। एकबम्हण शब्द का सीधा अर्थ 'अद्वितीय ब्राह्मण' ही है।

मूल निवास—पुराणों में आन्ध्रों (सातवाहनों) का मौर्यों, शुंगों तथा कण्वों के बाद मगध के शासक के रूप में वर्णन है। परन्तु अन्य सभी साक्ष्यों से इसका खंडन हो जाता है। सातवाहनों ने मगध में कभी शासन नहीं किया। इस राज-

1. जी० वेंकटराव, डी० सी० सरकार तथा के० गोपालाचारी का भी यही मत है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंश के मूल निवास के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मत-भिन्नता है। वी०एस० सुकठंकर के अनुसार कर्नाटक राज्य के बेल्लारी ज़िले में स्थित म्याकदोनी नामक स्थान से प्राप्त श्रीपुलुमावि के एक अभिलेख में वर्णित **सातवाहनिहार** और पल्लव शासक शिवस्कन्दवर्मन के हीरहडगल्लि ताम्रपत्रों में उल्लिखित **सातवाहनिरट्ठ** सातवाहनों का मूल देश था। परन्तु इस क्षेत्र में किसी भी प्रारम्भिक सातवाहन शासक के अभिलेख अथवा सिक्के नहीं मिले हैं। इसलिये उपर्युक्त मत से सहमत होना कठिन है।

चूंकि सातवाहनों को पुराणों में अन्ध्र, आन्ध्र या आन्ध्रभृत्य कहा गया है, इसलिए जी० व्यूलर, वी० ए० स्मिथ तथा ई० जे० रैप्सन ने आन्ध्र देश को ही उनका मूलनिवास-क्षेत्र मान लिया। एल०डी० बार्नेट के अनुसार आन्ध्र राज्य का तेलगाना क्षेत्र सातवाहनों का मूलदेश रहा होगा। एम०रामाराव ने इस मत के समर्थन में यह भी कहा है कि सातवाहन शासक शातकर्णि प्रथम के सिक्के आन्ध्र राज्य के वारंगल ज़िले में कोंडापुर नामक स्थान पर और गौतमीपुत्र शातकर्णि के सिक्के इसी राज्य के गुंटूर ज़िले के अतिरिक्त कोंडापुर तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। 'महानुभाव-सम्प्रदाय' के ग्रन्थ लीलावती में हाल को गोदावरी जिले के सप्तगोदावरीभीमम् (द्राक्षारामम्) क्षेत्र से सम्बन्धित किया गया है और गार्गीसंहिता के युग-पुराण अध्याय से हमें ज्ञात होता है कि शातकर्णि द्वितीय ने कलिंग को अपने राज्य में शामिल कर लिया था।

प्लिनी (प्रथम शताब्दी ई०) ने एक शक्तिशाली आन्ध्र राजा का वर्णन किया है कि जिसकी सेना में एक लाख पैदल सैनिक, दो हजार घुड़सवार, एक हजार हाथी तथा 30 चहार दीवारी-युक्त नगर थे। इस विवरण के आधार पर भी कुछ विद्वानों ने सातवाहनों को आन्ध्र देश का मूल निवासी माना है।

उपर्युक्त मतों में से कोई भी समीचीन नहीं है। प्रारम्भिक सातवाहनों के अभिलेख तथा सिक्के आन्ध्र अथवा कर्नाटक में नहीं मिले हैं और न ही आन्ध्रों ने द्रविण परिवार की किसी भाषा का प्रयोग किया। केवल सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर किसी क्षेत्र को किसी राज्य का अंग नहीं माना जा सकता क्योंकि वे व्यापार आदि के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता से पहुंच जाते हैं। सातवाहनों द्वारा कलिंग अथवा पूर्वी दक्षिणापथ के किसी भी जनपद की विजय उनके मूल निवास की समस्या को सुलझाने में सहायक नहीं हो सकती और लीलावती के साक्ष्य की प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है।

श्रीनिवास आयंगर के अनुसार आन्ध्र या अन्ध्र, विन्ध्य-मेकला क्षेत्र की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एक जनजाति थी। प्रारम्भ में ये लोग पश्चिमी भारत में राज्य कर रहे थे और बाद में उनकी शक्ति का विस्तार पश्चिम से पूर्व की ओर हुआ। आन्ध्र पहले एक जनजाति का नाम था। बाद में यह शब्द राजवंश तथा भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। पी० बी० देसाई की भी धारणा है कि आन्ध्र लोग प्रारम्भ में उत्तर-पश्चिमी दक्षिणापथ में बसे हुए थे और कालान्तर में उन्होंने पूर्व की ओर अपने राज्य का प्रसार किया।

वी० वी० मिराशी ने महाराष्ट्र में बरार अथवा वैणगंगा के दोनों तटों के निकटवर्ती क्षेत्र को निम्नलिखित साक्ष्यों के आधार पर आन्ध्रों का मूल देश माना है—

1. सातवाहन शासकों के सिक्कों की निधियां बरार क्षेत्र में ही प्राप्त हुई हैं।

2. नासिक अभिलेख संख्या चार में गौतमीपुत्र शातकर्णि को **वेणा-कटकस्वामी** कहा गया है।

3. सातवाहन राजाओं के अधिकांश अभिलेख पश्चिमी दक्षिणापथ में प्राप्त हुए हैं और हाल ही में पौनी (महाराष्ट्र के भांडारा ज़िले में) नामक स्थान पर हुए उत्खनन में शातकर्णि प्रथम का एक सिक्का मिला है।

4. कुछ जैन साक्ष्यों के अनुसार सातवाहन शासक शक्तिकुमार की राजधानी प्रतिष्ठान (पैठण) थी। टालमी ने भी लिखा है कि पुलमावि पैठण (बैठण) नगर में शासन कर रहा था।

मिराशी महोदय का उपर्युक्त मत सर्वाधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि—

1. प्रारम्भिक सातवाहन राजाओं के अभिलेख एवं बहुत से सिक्के मालवा, नासिक तथा नानाघाट में प्राप्त हुए हैं।

2. सातवाहन शासक हाल ने गाथासप्तशती की रचना महाराष्ट्री प्राकृत में की।

3. खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार सातवाहनों का राज्य कलिंग के पश्चिम में स्थित था। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि शातकर्णि की परवाह न करते हुए खारवेल ने अपनी सेना पश्चिम दिशा में भेज दी जिसने कन्हवेणा पहुंच कर असिकनगर के लोगों को भयभीत किया।[1] वी० वी० मिराशी

1. अचितयिता सातकर्नि पछिमदिसं हयगजनररथ बहुलं दंडं पठापयति। कन्हवेणागताय च सेनायं वितासिति असिकनगरं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने असिकनगर (ऋषिकनगर) को खानदेश माना है।[1]

4. कतिपय सातवाहन राजाओं के नाम के अन्त में **कर्णि** शब्द आता है। इससे भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है क्योंकि आजकल भी महाराष्ट्र में कर्णि (नामान्त वाले कुलकर्णी तथा नाडकर्णी आदि) कुल-नाम पाए जाते हैं।

इन तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि सातवाहनों का मूल निवास-क्षेत्र बरार, प्रतिष्ठान अथवा आन्ध्र नदी की घाटी में स्थित रहा होगा इस राजवंश के प्रारम्भिक राजाओं के अधिकार में मालवा का कुछ भाग भी था। शातकर्णि प्रथम को **दक्षिणापथपति** कहा गया है। परन्तु इस काल के साक्ष्यों में उल्लिखित दक्षिणापथ की भौगोलिक सीमाएं स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए इस उपाधि से हमें सातवाहनों का आदि देश निर्धारित करने में अधिक सहायता नहीं मिलती।

आन्ध्र-सातवाहनों की राजधानी—डी० आर० भंडारकर के अनुसार प्रारम्भिक सातवाहन राजाओं की राजधानी धान्यकटक (आन्ध्र राज्य में कृष्णा नदी के तट के निकट स्थित धरणीकोट) थी और स्मिथ तथा बर्गेस के अनुसार श्रीकाकुलम (आन्ध्र राज्य में)। कालकाचार्य-कथानक में उनकी राजधानी प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र के औरंगाबाद ज़िले में गोदावरी के तट पर स्थित वर्तमान पैठण) बतलाई गई है। इसका समर्थन टालमी ने भी किया है।

इस राजवंश के शासकों के प्राचीनतम लेख नासिक तथा नानाघाट में मिले हैं। नानाघाट के निकट जुन्नर, सातवाहनों पर विजय प्राप्त करने वाले शक-क्षत्रप नहपान की राजधानी थी। मिराशी के अनुसार,यही पहले सातवाहनों की राजनगरी रही होगी और शकों से पराजित होने के उपरान्त सातवाहनों ने प्रतिष्ठान को राजधानी बनाया।

चूंकि सातवाहनों का मूल देश महाराष्ट्र में था आन्ध्र में नहीं, इसलिए उनकी राजधानी भी इसी क्षेत्र में स्थित रही होगी। पौनी की खुदाई में प्राप्त शातकर्णि प्रथम के सिक्कों से भी वैणगंगा के निकटवर्ती क्षेत्र से सातवाहनों के सम्बन्ध की कुछ हद तक पुष्टि होती है।

प्रारम्भिक स्थिति—मौर्य-युग में सातवाहन सम्भवतः पश्चिमी दक्षिणापथ में मौर्यों के आधीन सामंत शासक या पदाधिकारी रहे होंगे। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् मगध मे क्रमशः शुंगों एवं कण्वों ने राज्य किया। इन राजवंशों

1. सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, पृ० 78।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के शासन काल में भी सातवाहन उनके सामंत अथवा उच्च पदाधिकारी रहे होंगे। अपने अधिपति सम्राटों के पतन के दिनों में सिमुक सातवाहन काफी शक्तिशाली हो गया। उसने शुंगों की अवशिष्ट शक्ति को समाप्त कर तथा कण्व वंश के अन्तिम शासक सुशर्मन का वध करने के उपरान्त राजसिंहासन प्राप्त कर लिया।

कुछ साहित्यिक साक्ष्यों में वर्णित एक अनुश्रुति के अनुसार, इस राजवंश के किसी राजा ने शालिवाहन नामक संवत् का प्रवर्तन किया था। परन्तु यह अग्राह्य है क्योंकि सातवाहन राजाओं के अभिलेखों में किसी संवत् का प्रयोग नहीं किया गया है और समस्त तिथियां शासन के वर्षों में ही वर्णित हैं[1]।

तिथि-क्रम–आन्ध्र-सातवाहनों का तिथि-क्रम निर्धारित करने के लिए निम्न-लिखित प्रमुख आधार हैं–

1. पुराणों में वर्णित इस वंश के राजाओं की शासनावधि एवं संख्या।
2. लिपि-सम्बन्धी साक्ष्य।
3. कुछ सातवाहन राजाओं की अन्य राजवंशों के शासकों से समकालीनता।

सातवाहन शासकों की संख्या तथा उनके राज्यकाल के विषय में हमें केवल पुराणों में ही सूचना मिलती है। किन्तु विभिन्न पुराणों के विवरणों में विसंगतियां हैं। उदाहरण के लिए वायु पुराण की अधिकांश पांडुलिपियों में 17, 18 या 19 आन्ध्र राजाओं के नाम वर्णित हैं, जिन्होंने कुल 300 वर्ष तक राज्य किया। परन्तु इस पुराण की कुछ पांडुलिपियों में इन राजाओं की संख्या 30 तथा उनकी शासनावधि 411 वर्ष बतलाई गई है।

वायु, ब्रह्मांड, भागवत तथा विष्णु पुराणों में इन राजाओं की संख्या 30 बतलाई गई है, किन्तु नाम केवल 17, 18, 19, 22, 23, 24, अथवा 28 शासकों के ही वर्णित हैं। दूसरी ओर मत्स्य पुराण में आन्ध्र राजाओं की संख्या तो 29 दी गई है जबकि नाम 30 राजाओं के प्राप्त होते हैं। ब्रह्मांड, विष्णु तथा भागवत पुराणों में आन्ध्र शासकों की कुल शासनावधि 456 वर्ष बतलाई गई है। मत्स्यपुराण के अनुसार 30 आन्ध्र नृपों ने 460 वर्ष तक शासन किया। उपर्युक्त साक्ष्यों में इस राजवंश के शासकों की न्यूनतम संख्या 17 तथा राज्य-

1. Desai, History of Karnataka, pp. 51-52.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

काल 271½ वर्ष[1] और अधिकतम संख्या 30 एवं शासनकाल 460 वर्ष है।

जिन पुराणों में आन्ध्र राजाओं की संख्या 17 से 19 तक दी है, उनमें उनकी कुल शासनावधि 300 वर्ष बतलाई गई है। आर० जी० भंडारकर के अनुसार 17, 18 या 19 तो मुख्य सातवाहन शाखा के शासक थे। 30 की संख्या में मुख्य राजवंश के अतिरिक्त कुछ शाखा-राजवंशों के नृप भी शामिल हैं। आर० जी० भंडारकर तथा वी० वी० पिराशी की मान्यता है कि सभी शाखाओं के सातवाहन शासकों ने कुल 460 वर्ष तक शासन किया। हेमचन्द्र रायचौधरी, आर० जी० भंडारकर के इन विचारों से मोटे तौर पर सहमत हैं।

पौराणिक विवरणों की उपर्युक्त विसंगतियों के कारण ही मुख्यतः सातवाहन राजवंश की संस्थापना की तिथि काफी विवादास्पद है और विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तावित तिथियों में बहुत अधिक अन्तर है। वी० एस० बाखले, वी० ए० स्मिथ तथा के० पी० जायसवाल ने इस राजवंश की स्थापना की तिथि ईसा पूर्व 240 या 235, के० गोपालाचारी ने 232, के० ए० नीलकांत शास्त्री तथा वी० वी० मिराशी ने 230 और ई० जे० रैप्सन ने 200 ई० पूर्व के आस-पास मानी है। इसके विपरीत हेमचन्द्र रायचौधरी, डी० सी० सरकार तथा रमा शंकर त्रिपाठी के अनुसार सातवाहनों का अभ्युदय ईसा पूर्व 30–28 में हुआ।

प्रथम सातवाहन शासक सिमुक का उल्लेख करने वाले नासिक एवं नानाघाट के अभिलेखों को, और कन्ह (कृष्ण) के नासिक अभिलेख को जी० ब्यूलर ने लिपि-शास्त्र के आधार पर ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में रखा था। परन्तु उपर्युक्त अभिलेखों की अपेक्षा प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के हेलियोदोरस के बेसनगर स्तम्भ-लेख के अक्षर अधिक विकसित होने के कारण, बाद के हैं। अतएव नानाघाट एवं नासिक अभिलेखों को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में रखना चाहिए।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में शातकर्णि नाम के एक सातवाहन शासक का उल्लेख हुआ है, जिसे शातकर्णि प्रथम मानना चाहिए। हाथीगुम्फा अभिलेख ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध का है। जी० वेंकटराव के अनुसार

---

1. आर० जी० भंडारकर के अनुसार वायु पुराण की कुछ पांडुलिपियों में आन्ध्र राजाओं का शासन काल 272½ वर्ष बतलाया गया है, देखिए Raichaudhuri, Political History of Ancient India, p 406.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शक-क्षत्रप रुद्रदामन प्रथम का समकालीन सातवाहन राजा यज्ञश्री शातकर्णि था जिसने 128-157 ई० तक राज्य किया। अंधाऊ अभिलेख के प्रमाण के आधार पर वेंकटराव ने दूसरे शक-क्षत्रप चष्टन को पुलुमावि का समकालीन माना है।

लिपि सम्बन्धी साक्ष्य से हमें बिल्कुल सही तिथि नहीं मालूम हो सकती और इसमें 50 से 100 वर्ष तक की अवधि दोनों ओर जोड़ी जा सकती है। इसी प्रकार उपर्युक्त सातवाहन शासकों की अन्य राजवंशों के राजाओं से समकालीनता के आधार पर केवल मोटे तौर पर ही उनकी तिथि निर्धारित की जा सकती है।

चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण 322 ई० पूर्व के आस-पास हुआ। पुराणों के अनुसार मौर्यों ने कुल 137 वर्ष तक राज्य किया। इसके उपरान्त मगध में शुंग शासन का समारम्भ 322-137 = 185 ई० पू० के लगभग हुआ। शुंग वंश के दस शासकों ने कुल 112 वर्ष अर्थात् ई०पूर्व 185-112 = 73 ई० पूर्व तक शासन किया। शुंगों के पतन के पश्चात् कण्व वंशीय चार राजाओं ने 45 वर्ष तक राज्य किया और अंतिम कण्व शासक सुशर्मन का वध करने के बाद सातवाहन सिमुक 73-45 = 28 ई० पूर्व के आस-पास राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ[1]। यह तिथि सर्वाधिक समीचीन प्रतीत होती है और मोटे तौर पर इसका समर्थन एवं पुष्टिकरण नासिक तथा कार्ले से प्राप्त प्रारम्भिक सातवाहन राजाओं के अभिलेखों की तिथि के साक्ष्य से हो जाता है। इस प्रकार सातवाहन शासन का प्रारम्भ ई० पूर्व 28-29 के आस-पास मानना चाहिए[2]। मुख्य सातवाहन वंश के 17–19 शासकों ने 300 वर्ष तक राज्य किया होगा। परन्तु पुराणों का यह कथन कि सातवाहनों ने मगध में राज्य किया, अग्राह्य है।

सातवाहन साम्राज्य के अंत की तिथि भी स्थूल रूप से ही निर्धारित की जा सकती है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित प्रमाण नहीं उपलब्ध है और न ही सातवाहनों के पतन के तुरन्त बाद में शासन करने वाले इक्ष्वाकु एवं

---

1. Sudhakar Chattopadhyaya, Some Early Dynasties of South India, p. 28.
2. विभिन्न मतों के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए–G. Yazdani (editor), Early History of the Deccan, Vol. I, pp. 83 ff; K. A. N. Sastri, History of South India, pp. 92 ff; सी० बी० पांडेय, आन्ध्र-सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० 26-39.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पल्लव राजवंशों की स्थापना की सही तिथि ज्ञात है। सी०वी०वैद्य ने सातवाहन शासन का अंत 200 ई० के लगभग, के० गोपालाचारी ने 225 तथा वी० वी० मिराशी ने 230 ई० के आसपास रखा है। इनमें वैद्य की की अपेक्षा अन्य दोनों तिथियां अधिक समीचीन हैं।

सिमुक–आन्ध्र-सातवाहन वंश के प्रथम शासक को पुराणों में सिमुक, शिशुक, सिसुक तथा सिन्धुक कहा गया है[1] और बतलाया गया है कि वह शुंगों की शेष शक्ति को नष्ट कर तथा अन्तिम कण्व-शासक सुशर्मन को मारकर राजा हुआ था[2]। पुराणों में सिमुक को कण्वों का भृत्य भी कहा गया है। प्रारम्भ में सिमुक कण्व-शासकों का सामन्त रहा होगा। डी० सी० सरकार के अनुसार उसने विदिशा के आस-पास का भू-भाग शुंग एवं कण्व-शासकों से अपहृत किया होगा। नानाघाट अभिलेख में उसे राजा की उपाधि दी गई है। जैन-परम्परा के अनुसार सिमुक ने 23 वर्ष तक राज्य किया। शासन के अन्तिम दिनों में वह दुराचारी हो गया था। इसलिए उसे राजसिंहासन से अपदस्थ कर मार डाला गया। डी० आर० भंडारकर के अनुसार वह 73 या 72 ई० पूर्व में राजा हुआ। हेमचन्द्र रायचौधरी, रमाशंकर त्रिपाठी तथा डी० सी० सरकार उसके शासन का प्रारम्भ 30 या 29 ई० पूर्व के आस-पास मानते हैं। इस ग्रन्थ में यही तिथि स्वीकार की गई है। एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार उसने सम्पूर्ण महाराष्ट्र, मालवा तथा मध्य-प्रदेश के बड़े भू-भाग पर शासन किया। परन्तु वास्तव में सिमुक के राज्य में मध्य प्रदेश एवं मालवा का कुछ ही क्षेत्र शामिल रहा होगा।

कण्ह (कृष्ण)–सिमुक की मृत्यु के समय उसका पुत्र सम्भवतः नाबालिग था। इसलिए उसके छोटे भाई कृष्ण को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसने कम से कम 18 वर्ष तक राज्य किया। नासिक अभिलेख में उसे 'सातवाहन कुल का राजा' कहा गया है और बतलाया गया है कि उसके राज्य काल में नासिक में एक श्रमण-महामात्र ने दरीगृह का निर्माण कराया था। कृष्ण ने स्वयं नानाघाट में

---

1. वी०वी० मिराशी के अनुसार इस शासक का सही नाम सिमुक (श्रीमुख) ही था जो कि सातवाहन अभिलेखों में आया है।
2. काण्वायनस्ततो भृत्यः सुशर्माणं प्रसह्यतम्।
शुंगानां, चैव यच्छेषं क्षपयित्वा तु बलीमशः।
सिन्धुको अन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम्।
देखिए, Dynasties of the Kali Age, p. 38.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गुफाओं का निर्माण कराया। नासिक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि पश्चिम में नासिक क्षेत्र तक उसके राज्य का विस्तार था। ए०एस० अल्तेकर के अनुसार सिमुक तथा कृष्ण, सातवाहन नामक राजा के पुत्र थे।

शातकर्णि प्रथम–पुराणों के अनुसार कृष्ण के पश्चात् उसका पुत्र[1] शातकर्णि प्रथम राजा हुआ। उसकी पहचान विभन्न विद्वानों ने निम्नलिखित शासकों से की है–

1. नायनिका के नानाघाट अभिलेख में वर्णित दक्षिणापथपति शातकर्णि
2. खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख का शातकर्णि
3. सांची अभिलेख का राजन सिरि सातकर्णि
4. कुछ प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित शक्तिकुमार का पिता तथा प्रतिष्ठान का शासक शातकर्णि
5. सिक्कों से ज्ञात राजा सिरि सात

शातकर्णि इस वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक था। उसकी पत्नी नायनिका (नागनिका) अंगीयकुल के महारथी त्रणकयिरो की पुत्री थी। नागनिका के नानाघाट अभिलेख में शातकर्णि को दक्षिणापथपति, अपप्रतिहतचक्र, शूरवीर, धनदस, कामदस, वरदस तथा पुत्रदस की उपाधियां दी गईं हैं। सांची-स्तूप के दक्षिणी तोरण-द्वार पर उत्कीर्ण एक अभिलेख में, राजा शातकर्णि के राज्यकाल में शिल्पियों के प्रधान वाशिष्ठीपुत्र आनंद द्वारा दिए गए दान का उल्लेख है। किन्तु इस अभिलेख के आधार पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सांची का निकटवर्ती मालवा-क्षेत्र शातकर्णि के आधिपत्य में था और यह भी सम्भव है कि वाशिष्ठीपुत्र आनन्द सम्भवतः वहां तीर्थयात्री के रूप में बौद्ध-स्तूप एवं विहार के दर्शन के लिए गया हो। परन्तु पुराणों में वर्णित सिमुक की शुंग एवं कण्व-शासकों के विरुद्ध सफलता और 'सात' नाम-धारी राजा के मालवा-शैली के सिक्के संभवतः प्रारम्भिक सातवाहनों का मध्य प्रदेश के इस भू-भाग पर अधिकार प्रमाणित करते हैं।

हाथी-गुम्फा अभिलेख के अनुसार शातकर्णि का राज्य कलिंग के पश्चिम में स्थित था और खारवेल ने शातकर्णि के विषय में विचार न करते हुए अपनी सेना उस दिशा में भेज दी। यह सेना कन्हवेणा तक गई और असिकनगर के

1. के० गोपालाचारी ने शासकर्णि प्रथम को सिमुक का पुत्र माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

निवासियों को संत्रस्त किया[1]। इस शातकर्णि को सातवाहन वंशीय शातकर्णि प्रथम ही मानना चाहिए। परन्तु उपर्युक्त अभियान के परिणाम के विषय में हाथी-गुम्फा अभिलेख में कुछ भी नहीं कहा गया है। इस से ऐसा लगता है कि खारवेल को सातवाहन शासक के विरुद्ध कोई सफलता नहीं मिली और सम्भवतः उसकी सेना को पीछे खदेड़ दिया गया। पी० बी० देसाई का यह मत कि रठिकों तथा भोजकों ने शातकर्णि प्रथम को उसके सामरिक अभियानों में सक्रिय सहयोग दिया था, किसी स्पष्ट साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

शातकर्णि प्रथम के राज्य में ऊपरी दक्षिणापथ तथा सम्भवतः मध्य एवं पश्चिमी भारत के कुछ भू-भाग शमिल थे। उत्तरी कोंकण तथा सौराष्ट्र प्रांत भी उसके राजनीतिक प्रभाव में रहे होंगे।

नागनिका के नानाघाट अभिलेख के अनुसार शातकर्णि ने कुछ श्रौतयज्ञों[2] के अतिरिक्त राजसूय एवं दो अश्वमेघ यज्ञ भी सम्पन्न किए थे[3]। ब्यूलर महोदय के अनुसार ये समस्त यज्ञ, शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के पश्चात् नागनिका ने किए थे। डी० आर० भंडारकर तथा कुछ अन्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं और अधिक सम्भावित यही है कि शातकर्णि प्रथम ने अपनी विजयों एवं शक्ति की वृद्धि के उपलक्ष में ये यज्ञ स्वयं सम्पन्न किए होंगे। डी० सी० सरकार का अनुमान है कि उसने प्रथम अश्वमेध यज्ञ राजपद प्राप्त करने पर तथा दूसरा राज्यकाल के अन्तिम दिनों में अपनी उपलब्धियों का उत्सव मनाने के लिए किया होगा। इन यज्ञों के अवसर पर उसने 4,270 गायें, 1,000 अश्व, चांदी के बर्तन, रथ तथा 68,000 कार्षापण सिक्के दान में दिए थे। पुराणों के अनुसार उसने दस वर्ष तक राज्य किया।

शातकर्णि प्रथम के उत्तराधिकारी—पुराणों में वर्णित वंशानुक्रम के अनुसार शातकर्णि का उत्तराधिकारी पूर्णोत्संग था जिसने 18 वर्ष तक शासन किया। परन्तु नागनिका के नानाघाट अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर रैप्सन तथा ब्यूलर ने यह मत प्रतिपादित किया कि शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के समय

1. अचितयिता स तकर्णिपछिमदिसमहयगजरथ बहुल दंडं पठापयति। कन्हवेणागताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं।
2. इन यज्ञों के नाम इस प्रकार है—अग्नाधेय, अग्वारंभनीय, गुवामयन, भगल-दशरात्र, अप्तोर्याम, आरससामयन, गार्गात्रिरात्र, आंगिरसत्रिरात्र, चन्द्रा-गपवमानत्रिरात्र, त्रयोदशरात्र एवं दशरात्र आदि।
3. असमेधो यज्ञो वितियो (नागनिका का नानाघाट अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके पुत्र वेदिश्री एवं शक्तिश्री नाबालिग थे। इसलिए उसकी रानी नागनिका ने इन राजकुमारों की संरक्षिका के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। परन्तु वी० वी० मिराशी इस से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि ब्यूलर आदि की उपर्युक्त मान्यता का आधार नानाघाट अभिलेख की प्रथम पंक्ति का निम्नलिखित विवरण है–**नमो कुमारवरस वेदिसिरिसरञो**। मिराशी के अनुसार यहां 'कुमारवरस' का अर्थ श्रेष्ठ कुमार कार्तिकेय है। इसके अतिरिक्त वेदिश्री को राजा तथा देव भी कहा गया है। पुराणों में वेदिश्री का उल्लेख नहीं हुआ है और शातकर्णि के बाद पूर्णोत्संग का नाम आता है। ए० एस० अल्तेकर का यह सुझाव कि वेदिश्री पूर्णोत्संग की उपाधि रही होगी, मात्र अनुमान पर आधारित है। तथ्य जो भी हो, वेदिश्री के शासनकाल में उसका छोटा भाई शक्तिश्री युवराज के रूप में प्रशासन-व्यवस्था से सम्बद्ध रहा होगा। सम्भवतः शक्तिश्री को ही जैन-साक्ष्यों में शक्तिकुमार कहा गया है और बतलाया गया है कि वह अपनी कामुकता के कारण मार डाला गया। मिराशी के अनुसार रजसरसतस (रञो सिरि सतिस) लेख-युक्त मालवा-शैली के सिक्के शक्तिश्री ने ही चलाए होंगे। परन्तु यह मत भी सन्देहपूर्ण है और अन्य विद्वानों ने राजा सात (शातकर्णि प्रथम) को इन सिक्कों का प्रवर्तक माना है।

नागनिका के शासन के अन्त से लेकर गौतमीपुत्र शातकर्णि के राज्यारोहण के बीच के अन्तराल का सातवाहन राजवंश का इतिहास अस्पष्ट एवं अन्धकारमय है। इस अवधि में अनेक शासकों ने राज्य किया जिनकी संख्या विभिन्न पुराणों में 10, 12 ।3 14 तथा 19 तक बतलाई गई है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें से कुछ शाखा-राजवंशों के शासक रहे होंगे और उन्होंने मुख्य सातवाहन वंश के राजाओं के राज्यकाल में ही दक्षिणापथ के विभिन्न भागों में शासन किया। इस काल में सम्भवतः पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रपों ने सातवाहनों को काफी क्षति पहुंचाई थी। पश्चिमी भारत, राजपूताना, गुजरात तथा काठियावाड़ में अपनी सत्ता सुदृढ़ बनाने के पश्चात् शकों ने सातवाहन-साम्राज्य के पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा के कुछ प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया था। इन सफलताओं के बाद शक दक्षिण की ओर बढ़े और उन्होंने अपरान्त (उत्तरी कोंकण), उत्तरी महाराष्ट्र तथा बनवासी पर आक्रमण किए। ये प्रदेश भी सातवाहन साम्राज्य के अंग थे। इस अन्तराल के उल्लेखनीय सातवाहन शासक निम्नलिखित हैं–

शातकर्णि द्वितीय–खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख तथा भिलसा के एक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभिलेख में वर्णित शातकर्णि नामक शासक को एन० सुब्रमण्यम, टी० के० रवीन्द्रन तथा के० गोपालाचारी ने शातकर्णि द्वितीय माना है। ब्यूलर तथा कनिंघम ने भिलसा स्तूप-लेख के शातकर्णि का समीकरण नानाघाट अभिलेख के शातकर्णि से किया है। भिलसा-स्तूप के उक्त अभिलेख में श्रीशातकर्णि के राज्यकाल में शिल्पियों के प्रधान वाशिष्ठीपुत्र आनन्द द्वारा दिए गए दान का उल्लेख है। पूर्वी मालवा तथा पश्चिमी दक्षिणापथ से प्राप्त कुछ सिक्कों पर सिंह एवं कुछ पर सूंड़ उठाए हाथी की आकृति अंकित है और राजा शातकर्णि (रञोसातकणिस) नाम उत्कीर्ण है। लिपि के आधार पर कुछ विद्वानों ने इन सिक्कों को शातकर्णि द्वितीय से सम्बन्धित किया है, परन्तु यह मत सन्देहपूर्ण तथा विवादास्पद है।

लम्बोदर–पुराणों में लम्बोदर को शातकर्णि द्वितीय का उत्तराधिकारी बतलाया गया है। वर्गाकार तांबे के कुछ सिक्कों के मुख भाग पर सूंड़ उठाए हाथी का चित्र तथा 'सिरिसादवाह (नस)' लेख अंकित है। पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी चिह्न है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये सिक्के लम्बोदर ने चलाए होंगे। इन पर उत्कीर्ण लेख के आधार पर यही कहा जा सकता है कि ये किसी सातवाहन राजा के सिक्के थे। राजा के नाम का उल्लेख न होने के कारण यह कहना कठिन है कि इन्हें लम्बोदर ने चलाया था अथवा किसी अन्य सातवाहन शासक ने।

आपीलक–आपीलक लम्बोदर का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। पुराणों के अनुसार उसने 12 वर्ष तक शासन किया। दिनेशचन्द्र सरकार का अनुमान है कि आपीलक सम्भवतः सातवाहनों की उस शाखा से सम्बन्धित था जो मध्य-प्रदेश में शासन कर रही थी।

कुन्तलशातकर्णि–नाम के आधार पर इसे सातवाहनों की उस शाखा से सम्बन्धित माना गया है जो कुन्तल[1] में राज्य करती थी। इस शासक का उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र में भी हुआ है। पुराणों में उसका राज्यकाल आठ वर्ष बतलाया गया है।

हाल–सातवाहन वंश का अग्रिम उल्लेखनीय शासक हाल था। राजशेखर एवं मेरुतुंग ने हाल को 'सातवाहन' का पर्याय माना है। उसका उल्लेख लीला-

---

1. पी० वी० काणे के अनुसार कुन्तल में आधुनिक उत्तरी कनारा, मीरज, वेलगांव तथा धारवाड़ जिले और कर्नाटक का कुछ भाग शामिल था। इसका विस्तार भीमा तथा कृष्णा के आगे तुंगभद्रा तक था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वती, अभिधानचिन्तामणि तथा देशीनाममाला में भी हुआ है।

'लीलावती' के अनुसार हाल के प्रमुख सेनानायक विजयानन्द ने लंका पर विजय प्राप्त की और वहां से वापस आते समय वह सप्तगोदावरीभीमम् (गोदावरी ज़िले का वर्तमान द्राक्षारामम्) नामक स्थान पर रुका था। वहां उसे बतलाया गया कि लंका के शासक शीलमेघ की गंधर्व पत्नी से उत्पन्न पुत्री लीलावती सप्तगोदावरीभीमम् में ही निवास करती है। सातवाहन-राजधानी में पहुंच कर विजयानन्द ने हाल से लीलावती के सौन्दर्य आदि की प्रशंसा की और उसके निवास-स्थान के विषय में भी सूचना दी। यह जानकर हाल ने सप्तगोदावरीभीमम् पर आक्रमण कर भीषाणन नामक राक्षस को मार दिया और लीलावती को व्याह कर प्रतिष्ठान लौट गया। इस कथानक की प्रामाणिकता संदिग्ध है, परन्तु इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हाल ने सम्भवतः पूर्वी-दक्षिणापथ के किसी क्षेत्र पर विजय प्राप्त की होगी।

हाल ने महाराष्ट्री प्राकृत को संरक्षण प्रदान किया। परम्परागत विवरण के अनुसार उसने गाथासप्तशती (गाथासत्तसई)[1] नामक ग्रन्थ की रचना की। कुछ विद्वान वत्सल कवि को इस ग्रन्थ का लेखक और सातवाहन शासक को केवल इसका संशोधक मानते हैं। यह **परम्परा** कि बृहत्कथा का लेखक गुणाढ्य उसका मंत्री था, अप्रामाणिक प्रतीत होती है[2]। वायु पुराण के अनुसार उसने एक वर्ष तक तथा मत्स्य पुराण के अनुसार पांच वर्ष तक शासन किया। हाल के विषय में इसके अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती।

गौतमीपुत्र शातकर्णि—दीर्घकालीन राजनैतिक संकट एवं अव्यवस्था की स्थिति को समाप्त कर गौतमीपुत्र शातकर्णि ने सातवाहन राजवंश की विचलित राजलक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठित किया। वह इस वंश का सबसे महान शासक था। सातवाहन राजाओं में सर्वप्रथम उसी ने मातृ-परक नाम धारण किया। राज्यारोहण के पश्चात् गौतमीपुत्र ने प्रथम 16 वर्षों में क्षहरातों का दमन करने के

1. मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि में बतलाया गया है कि हाल ने बहुत परिश्रम से गाथाओं का संकलन किया था और चार गाथाओं के लिए चार करोड़ (या 40 हज़ारी) सोने के सिक्के दिए। यह ग्रन्थ सात अध्यायों में विभाजित है और इसमें कुल 700 श्लोक हैं।
2. Chattopadhya, Some Early Dynasties of South India, p. 73.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिए तैयारियां कीं। 17वें वर्ष में उसने मामाल-आहार पर तथा 18वें वर्ष में दक्षिणी महाराष्ट्र पर आक्रमण किए।

विजयें–गौतमीपुत्र शातकर्णि की विजयों का विवरण नासिक अभिलेख संख्या चार एवं 19 में मिलता है। उसकी मां गौतमी बलश्री की नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र को शकों[1], यवनों[2] तथा पल्हवों[3] का विनाशक (सकयवनपल्हव-

1. शक मध्य एशिया की एक यायावर तथा असभ्य जनजाति थी। शकों का प्राचीनतम उल्लेख सम्भवतः ईरान के हख़मनी सम्राट डैरियस प्रथम (ई० पू० 522-486) के कुछ अभिलेखों में मिलता है। ई० पू० दूसरी शताब्दी के मध्य के लगभग पश्चिमी एशिया में काफी उथल-पुथल हुई और वहां की शक तथा अन्य जनजातियों ने विभिन्न दिशाओं में संचरण किया। भारत में शकों ने पहले तक्षशिला को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया और बाद में मथुरा तथा उज्जैन को। रामायण में शकों को यवनों तथा काम्बोजों के साथ उत्तर दिशा का निवासी और महाभारत में उनकी निवास भूमि शाकल को उत्तर-पश्चिम में स्थित बतलाया गया है। उज्जैन के शक-क्षत्रप सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए और उन्होंने पश्चिमी भारत में लगभग 300 वर्ष तक शासन किया। इन्हीं शकों के साथ सातवाहनों का दीर्घकाल तक संघर्ष चलता रहा।
2. पाणिनि की अष्टाध्यायी में यवन-देश का उल्लेख है। गौतम-धर्मसूत्र में यवनों को क्षत्रिय पुरुष द्वारा शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सन्तान बतलाया गया है। कात्यायन ने यवनानी शब्द का प्रयोग सम्भवतः यवनलिपि के लिए किया है। अशोक के अभिलेखों में यवनों का काम्बोजों एवं गान्धारों के साथ वर्णन किया गया है। अशोक ने यवनराज तुषाष्प को सौराष्ट्र प्रान्त का गवर्नर नियुक्त किया था। पतंजलि के महाभाष्य में यवनों को अनिर्वासित शूद्र तथा मनुस्मृति में व्रात्य क्षत्रिय कहा गया है। इस प्रकार यवनों का भारत से काफी प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है और कालान्तर में उन्हें भारतीय सामाजिक संगठन में शामिल कर लिया गया। यवनों ने ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ही भारत पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिए थे।
3. यह पार्थिया (पूर्वी ईरान) के निवासियों के लिए भारतीय शब्द पार्थव का बिगड़ा रूप है। पल्हवों की राजनैतिक गतिविधियां मुख्यतः कन्दहार, सिन्धु-घाटी तथा पश्चिमी पंजाब तक ही सीमित रहीं। पल्हव शासकों में गोंडोफर्नीज सर्वाधिक शक्तिशाली था जिसने प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में शासन किया। रुद्रदामन प्रथम के 150 ई० के जूनागढ़ अभिलेख में सुविशाख नामक पल्हव-मंत्री का उल्लेख हुआ है। किन्तु पल्हव भारत के भीतरी भागों में अपनी शक्ति का प्रसार नहीं कर सके थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

निसूदनस), क्षहरात वंश का अन्त करने वाला और सातवाहन-कुल की गरिमा एवं यश का प्रतिष्ठापक (खखरातवसनिरवसेसकरस-सातवाहनकुलयसपतिथापन-करस) कहा गया है। क्षहरात वंशीय शक उसके प्रमुख शत्रु थे। गौतमीपुत्र के राज्यकाल के 18वें वर्ष के नासिक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि इस वर्ष उसने उस भू-खंड को दान में दिया था जो पहले क्षहरात वंशीय नहपान के दामाद उसवदात (ऋषभदत्त) के अधिकार में था। ऋषभदत्त पुणे, नासिक एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्र का प्रान्तीय शासक था। उक्त नासिक अभिलेख नासिक जिले में सम्भवत: वेणा नदी के निकट वेणाकटक नामक स्थान पर विद्यमान गौतमीपुत्र के विजय स्कन्धावार से प्रसारित हुआ था। गौतमीपुत्र ने **वेणाकटक-स्वामी** का विरुद भी धारण किया। वेणाकटक वैणगंगा का निकटवर्ती क्षेत्र था। इससे प्रमाणित होता है कि शकों पर आक्रमण करने के लिए गौतमीपुत्र अपनी सेना के साथ वहां उपस्थित था और उसने उनके विरुद्ध पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। यह युद्ध गोवर्धन के निकट हुआ होगा। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि ऋषभदत्त ने पुणे जिले के मामाल-आहार में स्थित करजिक नामक जिस ग्राम को दान में दिया था, उसी को बाद में गौतमीपुत्र ने भिक्षु-संघ को दे दिया। इन साक्ष्यों से स्पष्ट हो जाता है कि उसने यह क्षेत्र शकों से अपहृत कर लिया था। इसका पुष्टिकरण जोगलथम्बी से प्राप्त 13,250 (या 13,270) चांदी के सिक्कों की निधि से भी हो गया है। इस निधि में 9,270 सिक्के नह-पान के हैं जिन पर गौतमीपुत्र शातकर्णि ने अपनी राज मुद्रा अकित कराई थी। इन सिक्कों को शकों के विजित भूभाग में जारी किया गया होगा।

अपरान्त, अनूप, सौराष्ट्र, कुकुर, आकर एवं अवन्ति नहपान के आधिपत्य में थे जिन्हें गौतमीपुत्र ने अपने साम्राज्य में मिला लिया था। जैन-ग्रन्थ आवश्यकसूत्र की टीका निरुक्ति के अनुसार नहपान की राजधानी भृगुकच्छ (भड़ौच) थी। प्रतिष्ठान में शासन करने वाले उसके शत्रु सातवाहन राजा ने नहपान के विरुद्ध एक विशाल सेना एकत्रित कर भृगुकच्छ पर आक्रमण कर दिया और इस नगर में दो वर्ष तक घेरा डाले रहा। फिर भी नहपान को पराजित नहीं कर सका। इसके पश्चात् सातवाहन शासक ने नहपान के मंत्री को अपने पक्ष में कर लिया और उसी के माध्यम से नहपान को सलाह दिलवाई कि वह अपने राजकोष के धन का उदारता पूर्वक दान करे। उसकी यह योजना सफल हुई और जब नहपान का सम्पूर्ण राजकोष रिक्त हो गया तो सातवाहनों ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उसे पराजित कर मार डाला

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और उसकी राजधानी भृगुकच्छ को ध्वस्त कर दिया। इस विवरण में कहां तक सत्यांश है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु इससे गौतमीपुत्र की शकों पर विजय की पुष्टि अवश्य होती है।

उपर्युक्त सामरिक सफलताओं के अतिरिक्त नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र शातकर्णि की विजयों में निम्नलिखित राज्यों, जनजातियों एवं पर्वतों को भी शामिल किया गया है–

असिक–ई० सेनार्ट तथा जी० वेंकटराव ने असिकों का समीकरण ऋषिकों से किया है। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में असिकनगर (ऋषिकनगर) को कृष्णा नदी के तट पर स्थित बतलाया गया है। हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार असिक कृष्णा नदी की घाटी के मध्य भाग के निवासी रहे होंगे।

असक–सुत्तनिपात में अस्सक (अश्मक अर्थात पथरीला क्षेत्र) प्रदेश को प्रतिष्ठान के दक्षिण में गोदावरी नदी का तटवर्ती बतलाया गया है। इस जनपद का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी, अस्सक-जातक तथा महाभारत आदि ग्रन्थों में हुआ है। कुछ विद्वानों ने इसका समीकरण ग्रीक लेखकों के अस्पेसियस (Aspasias) या अश्वकों से किया है। हेमचन्द्र रायचौधरी ने इसकी स्थिति गोदावरी नदी की घाटी के मध्यवर्ती क्षेत्र में मानी है। इस जनपद के उत्तर में निर्मल की पहाडियां तथा दक्षिण में बालाघाट का पहाड़ी क्षेत्र था। जी० वेंकटराव ने इसमें भूतपूर्व हैदराबाद राज्य का दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र एवं आन्ध्र राज्य का आधुनिक गोदावरी ज़िला शामिल किया है।

मुलक (मूलक)–प्लीट ने मूलक का समीकरण मूलिक से किया है जो उत्तर-पश्चिमी भारत की एक जनजाति थी। जी० वेंकटराव के अनुसार यह महाराष्ट्र में पैठण के आस-पास का क्षेत्र था।

सुरठ (सौराष्ट्र)–सौराष्ट्र दक्षिणी काठियावाड़ का प्राचीन नाम था।

कुकुर: इसे उत्तरी काठियावाड़ में आनर्त के समीप का प्रदेश अथवा पूर्वी राजस्थान का एक भाग माना गया है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता में इसे पश्चिमी भारत में स्थित बतलाया गया है। सुधाकर चट्टोपाध्याय ने कुकुर को मध्य प्रदेश में पश्चिमी विन्ध्य का निकटवर्ती क्षेत्र माना है।

अपरान्त–इस जनपद में उत्तरी कोंकण एवं उत्तरी महाराष्ट्र के नासिक तथा कालें ज़िले सम्मिलित थे। वात्स्यायन के कामसूत्र की टीका के आधार पर भगवानलाल इन्द्रजी ने इसे पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित माना है। (अपरान्तिका

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इति पश्चिम-समुद्रतीरे अपरान्त देशस्तत्रभवाः)। महाभारत में भी इसकी लगभग यही भौगोलिक स्थिति बतलाई गई है।

अनूप—यह नर्मदा नदी का ऊपरी भाग था जिसकी राजधानी माहिष्मती थी। वी०वी० मिराशी ने इसे माहेश्वर के आस-पास का क्षेत्र माना है। रघुवंश (6/37–43) के विवरण से प्रतीत होता है कि सुराष्ट्र, अनूप तथा आनर्त निकटवर्ती जनपद थे और अनूप सम्भवतः आनर्त के दक्षिण में स्थित था।

विदर्भ—कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक (5/20) के अनुसार महाराष्ट्र के बरार क्षेत्र का पश्चिमी भाग विदर्भ कहलाता था। इसमें पयोष्णी नदी की घाटी तथा ताप्ती की घाटी का मध्य भाग शामिल था। विदर्भ के निवासी भोज कहलाते थे।

आकर—इसका समीकरण पूर्वी मालवा से किया गया है जिसकी राजधानी विदिशा (भिलसा, मध्य प्रदेश) थी।

अवन्ति—इसमें पश्चिमी मालवा शामिल था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। महाभारत में अवन्तिका को नर्मदा नदी के तट पर स्थित बतलाया गया है। श्रीमती रीस डैविड्स ((Rhys Davids) के अनुसार अवन्ति विन्ध्य के उत्तर में तथा बम्बई के उत्तर-पूर्व में स्थित था। सातवीं-आठवीं शताब्दी में यही क्षेत्र मालवा कहलाने लगा।

विन्ध्य—विस्तृत अर्थ में विन्ध्य का प्रयोग गुजरात के पूर्व की पर्वत-माला के लिए तथा सीमित अर्थ में पूर्व की पर्वत-शृंखला के उस भाग के लिए हुआ है जो भोपाल के पूर्व की ओर स्थित था और जिसमें बरार की निकटवर्ती पहाड़ियां भी सम्मिलित थीं। गौतमीपुत्र की विजयों के संदर्भ में विन्ध्य का संकुचित अर्थ लेना अधिक समीचीन प्रतीत होता है और यह यहां विन्ध्य-पर्वतमाला के पश्चिमी भाग एवं अरावली की पर्वत-शृंखला का प्रतीक है।

अछवत (ऋक्षवत)—बी० सी० लॉ ने टालमी के विवरण के आधार पर इसे विन्ध्य-मेकला का प्राचीन नाम माना है। ऋक्षवत का तात्पर्य यहाँ विन्ध्य-मेकला के मध्य-वर्ती भाग से है जो नर्मदा नदी के उत्तर में स्थित है। पार्जिटर महोदय ने इसका समीकरण सतपुड़ा की पहाड़ियों से किया है।

पारियात्र—पार्जिटर के अनुसार वेदवती, सिन्धु, सदानीरा, माही, चर्मणवती, क्षिप्रा तथा अवर्णी नदियां विन्ध्य पर्वत-शृंखला के जिस भाग से निकलती हैं, वही पारियात्र कहलाता था। इसका विस्तार चर्मणवती (चम्बल) के उद्गम स्थान से लेकर बम्बई की खाड़ी तक था। कुछ विद्वानों ने इसे अरावली एवं

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विन्ध्य का पश्चिमी भाग माना है।

सह्य–पश्चिमी घाटों के उत्तरी भाग को प्राचीन साक्ष्यों में सह्य कहा गया है। इसका विस्तार नीलगिरि की पहाड़ियों के उत्तर में है।

कन्हगिरि–इसका उल्लेख कन्हेरी के एक अभिलेख में कृष्णशैल के नाम से हुआ है। इसी को कराकोरम की पहाड़ी कहते हैं। वी० वी० मिराशी ने इसकी पहचान कन्हेरी (बम्बई के निकट) से की है।

मच–इसका समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। कुछ विद्वानों ने इसे पश्चिमी घाटों का दक्षिणी भाग माना है।

सिरिटन–जी० वेंकटराव ने इसे आन्ध्र राज्य का श्रीशैल माना है।

मलय (ट्रावनकोर की पहाड़ियां)–यह पश्चिमी घाटों के दक्षिणी भाग का प्राचीन नाम था जो ताम्रपर्णी नदी की घाटी में स्थित है।

महेन्द्र–पार्जिटर के अनुसार महेन्द्र महानदी एवं गोदावरी नदियों के बीच के पूर्वी घाटों का नाम था। कुछ विद्वानों ने महेन्द्र की पहाड़ियों को गंजाम जिले में स्थित माना है। रघुवंश[1] में महेन्द्र को कलिंग राज्य में स्थित बतलाया गया है।

सेतगिरि–सेतगिरि का समीकरण अनिश्चित है।

चकोर–इसकी सही पहचान नहीं की जा सकी है। कुछ विद्वानों ने सेतगिरि एवं चकोर को पूर्वी घाटों का दक्षिणी भाग माना है।

साम्राज्य विस्तार–नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र शातकर्णि को उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण में मलय तथा सह्य पर्वतों के मध्य-वर्ती विशाल भू-भाग के अनेक राज्यों, जनजातियों तथा पर्वतीय क्षेत्रों का विजेता बतलाया गया है। रैप्सन के अनुसार उपर्युक्त समस्त प्रदेश उसके साम्राज्य के अंग नहीं थे, वरन् इनके शासकों ने गौतमीपुत्र के समक्ष समर्पण किया था। नासिक प्रशस्ति में यह भी वर्णित है कि गौतमीपुत्र की सेना के अश्वों ने तीन समुद्रों (बंगाल की खाड़ी, अरब सागर तथा हिन्द महासागर) का पानी पिया था (**तिसमुदतोयपीतवाहन**)। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका साम्राज्य बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक विस्तृत था। एम०रामाराव के अनुसार, गौतमीपुत्र के साम्राज्य में सम्पूर्ण पश्चिमी एवं पूर्वी दक्षिणापथ शामिल थे। डी०सी०सरकार तथा पी०एन०चोपड़ा आदि की मान्यता है कि

---

१. स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।
प्रतिजग्राह कलिंगस्तमस्त्रैर्गज साधनः (4/39–40)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आन्ध्र राज्य पर सर्वप्रथम गौतमीपुत्र के पुत्र वाशिष्ठीपुत्र ने अधिकार किया था। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार, वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि को चूंकि किसी साक्ष्य में आन्ध्र राज्य की विजय का श्रेय नहीं दिया गया है, इसलिये सम्भव है कि गौतमीपुत्र ने ही इस प्रदेश को जीता हो। परन्तु उसे कलिंग तथा सुदूर दक्षिण के चोल एवं पांड्य राज्यों का विजेता मानना समीचीन नहीं है। के० गोपालाचारी ने नासिक प्रशस्ति के विवरण को अक्षरशः सत्य मानते हुए, गौतमीपुत्र के साम्राज्य में कलिंग तथा आन्ध्र को भी शामिल किया है और सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर एम० रामाराव ने आन्ध्र प्रदेश पर उसका प्रभुत्व स्वीकार किया है।

अपनी दिग्विजय के परिणामस्वरूप गौतमीपुत्र सम्भवतः उत्तर में मालवा तथा सौराष्ट्र से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक और पूरब में बरार से लेकर पश्चिम में कोंकण तक के समस्त भू-भाग का अधिपति हो गया था। परन्तु बाद में उसी के राज्यकाल में अथवा उसके उत्तराधिकारियों के समय में सातवाहनों ने उन प्रदेशों को खो दिया जिन्हें गौतमीपुत्र ने, क्षहरात शकों को पराजित करने के उपरान्त अपने अधीन किया था। ये जनपद कार्दमिक राजवंश के शकों के आधिपत्य में पुनः चले गये। टालमी ने लिखा है कि बैठन (पैठण या प्रतिष्ठान जो कि श्रीपुलुमावि की राजधानी थी) तथा ओजोने (उज्जयिनी) पर चष्टन का प्रभुत्व था।

के० पी० जायसवाल ने गौतमीपुत्र शातकर्णि का समीकरण निम्नलिखित तर्कों के आधार पर विक्रम सवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य से किया है—

1. जैन आचार्य कालक के एक कथानक में वर्णित है कि विक्रमादित्य (सातवाहनों की राजधानी) प्रतिष्ठान से आया था।

2. गौतमीपुत्र को **वरवाणविक्रम** एवं **चारुविक्रम** (श्रेष्ठ हाथी के समान आकर्षक गति वाला) कहा गया है। यहां गौतमीपुत्र के लिए प्रयुक्त विक्रम शब्द के आधार पर जायसवाल आदि ने उसका विक्रमादित्य से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

के०पी० जायसवाल का उपर्युक्त मत निराधार एवं काल्पनिक है। गौतमीपुत्र शातकर्णि किसी संवत् का प्रवर्तक नहीं था और किसी भी सातवाहन शासक ने विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं किया। इस राजवंश के राजाओं के अभिलेखों में उनके शासन के वर्षों का ही उल्लेख हुआ है। विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी थी, जबकि गौतमीपुत्र की राजधानी प्रतिष्ठान थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यह मानने के लिए भी कोई आधार नहीं है कि गौतमीपुत्र का दूसरा नाम अथवा उपाधि विक्रमादित्य थी। विक्रम संवत् का प्रारम्भ 57 ई० पू० में किसी विदेशी शासक द्वारा किया गया था जबकि गौतमीपुत्र शातकर्णि 106 ई० के आस-पास राजा हुआ।

व्यक्तित्व एवं उपलब्धियां—गौतमीपुत्र ने लगभग सभी समकालीन महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्तियों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और प्रशासन-व्यवस्था पर भी काफी ध्यान दिया। गोवर्धन जिले में उसने वेणाकटक नामक नगर का निर्माण कराया। उसे अपनी प्रजा का महान हितैषी एवं उसके सुख-दुख का भागी बतलाया गया है (पोरजननिविसेससमदुखसुखस)। वह अपराधी शत्रुओं के प्रति भी उदार एवं सहिष्णु था और जीव-हिंसा नहीं करता था। उसने अपनी प्रजा पर केवल शास्त्र-विहित कर लगाए[1]। उसे अद्वितीय ब्राह्मण (एकबम्हण), क्षत्रियों के मान का मर्दन करने वाला (खतियदपमानमदनस), वर्ण-संकरता को रोकने वाला, अनुपम धनुर्धर एवं शूर-वीर (एकधनुधरस-एकसूरस), राम, केशव, अर्जुन एवं भीम के समान पराक्रमी, राजा ययाति एवं अम्बरीश के तुल्य तेजस्वी[2], शत्रुओं को पराजित करने में दक्ष, वेदों एवं शास्त्रों में पारंगत (आगमाननिलयस), श्रेष्ठ व्यक्तियों का आश्रय (सपुरिसानमअसयस) तथा लक्ष्मी का निवास-स्थल (सिरीयअधिठानस) कहा गया है।

नासिक प्रशस्ति के अनुसार गौतमीपुत्र शातकर्णि का व्यक्तित्व एवं स्वरूप आकर्षक तथा भुजाएं दीर्घ थीं। निरन्तर दान देने के कारण उसके हाथ सदैव आर्द्र रहते थे। वह अपनी माता गौतमी बलश्री का निष्ठावान सेवक था। उसने बलूरक की गुफाओं में निवास करने वाले बौद्ध-भिक्षुओं को ग्राम दान में दिए, नासिक में तेकिरसी के भिक्षुओं के लिए गुफाओं का निर्माण कराया और उन्हें भू-खंड दान में दिए। उसने कार्ले के **महासंघिक** सम्प्रदाय के बौद्धों तथा नासिक के **भद्रायणीय** भिक्षुओं को भी दान दिए। ये कार्य उसकी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा के प्रमाण हैं। परन्तु वह सम्भवतः ब्राह्मण-परम्पराओं में भी

---

1. कितापराधेपि सतुजने अपाणहिसा रुचिस……धमोपजित कर विनियोग-करस (नासिक प्रशस्ति)।
2. रामकेसवार्जुनभीमसेनतुलपकमस……नहुसजनमेजययातिमावरीस समतेजस (नासिक प्रशस्ति)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

निष्ठा रखता था क्योंकि उसे एकबम्हण (अद्वितीय ब्राह्मण) कहा गया है। उपर्युक्त विवरण में पारम्परिक अतिशयोक्ति के साथ-साथ बहुत कुछ तथ्य भी समाहित है।

राज्यकाल—गौतमीपुत्र का राज्यकाल काफी विवादास्पद है और विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तावित उसके राज्यारोहण की तिथियाँ ईसा पूर्व 40 से 125 ई० तक हैं[1]। रैप्सन के अनुसार नहपान के राज्यकाल का वर्ष 46[2] अर्थात् 78 + 46 = 124 ई० गौतमीपुत्र के शासन का 18वां वर्ष था। इसलिए वह 124-18 = 106 ई० के आस-पास राजा हुआ। नासिक अभिलेख संख्या 5 गौतमीपुत्र के राज्यकाल के 24 वें वर्ष का है। इस से प्रमाणित होता है कि उसने कम से कम 24 वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार उसकी शासनावधि 106 से 130 ई० तक मानी गई है।

संयुक्त-शासन विषयक मत—आर० जी० भंडारकर ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि शासन के अन्तिम वर्षों में गौतमीपुत्र शातकर्णि ने अपने पुत्र वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि के साथ संयुक्त रूप से राज्य किया था।

1. नासिक प्रशस्ति में गौतमी बलश्री को गौतमीपुत्र की जननी तथा वाशिष्ठीपुत्र की दादी (रञ्ञोगोतमीपुतससातकणिस महादेवीया च जीवसुताय राजमाहूय वचनेन) कहा गया है। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि शासन के 24वें वर्ष तक गौतमीपुत्र अस्वस्थता के कारण प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए अक्षम हो गया था और गौतमी बलश्री राजकीय कार्य देख रही थी।

2. नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र की विजयों आदि का वर्णन है, किन्तु इसमें पुलुमावि की उपलब्धियों का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे भी संकेत मिलता है कि गौतमीपुत्र उस समय जीवित था।

---

1. विभिन्न मतों की समीक्षा के लिए देखिए—G. Yazdani (editor), Early History of the Deccan, Vol. I, pp. 83-107; Chattopadhyaya; Some Early Dynasties of South India, p. 77; वी०वी० मिराशी, सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, पृ० 28-29.
2. रैप्सन महोदय ने इसे 78 ई० में प्रारम्भ होने वाले शक संवत् का वर्ष माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डी० आर० भंडारकर ने उक्त मत का समर्थन किया है। उनके अनुसार गौतमीपुत्र महाराष्ट्र का शासक था और पुलुमावि शेष पैतृक साम्राज्य का। परन्तु जी० जे० डुब्रील, के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा हेमचन्द्र रायचौधरी ने इसका खंडन किया है। इन विद्वानों के अनुसार, नासिक प्रशस्ति में स्पष्टतः वर्णित है कि इस गुफा का निर्माण गौतमीपुत्र शातकर्णि तथा गौतमी बलश्री के आदेश से प्रारम्भ हुआ था और सम्भवतः पुलुमावि के शासन काल में यह कार्य पूरा हुआ। गौतमीपुत्र तथा पुलुमावि द्वारा संयुक्त रूप से जारी किया गया अभी तक कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त, नहपान के सिक्कों पर केवल गौतमीपुत्र के नाम की ही प्रतिछाप अंकित है। इन तथ्यों से प्रमाणित होता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि एवं वाशिष्ठीपुत्र ने संयुक्त रूप से शासन नहीं किया। नासिक गुफा के दान के समय गौतमीपुत्र कदाचित् जीवित नहीं था। अतएव शोक संतप्त गौतमी बलश्री ने अपने पुत्र को उपलब्धियों का सविस्तार विवरण प्रस्तुत कर अपने को संतुष्ट किया होगा।

वशिष्ठीपुत्र पुलुमावि (130-159 ई०)—गौतमीपुत्र शातकर्णि के पश्चात् उसका पुत्र वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि राजा हुआ। पुराणों के अनुसार उसने 28 या 29 वर्ष तक शासन किया। वह काफी शक्तिशाली राजा था। उसने आन्ध्र देश में सातवाहन प्रभुत्व को सुदृढ़ रूप से स्थापित किया[1]। परन्तु उसी के राज्यकाल में नर्मदा नदी के उत्तर के कुछ भागों तथा उत्तरी कोंकण पर उज्जैन के शक-क्षत्रपों का अधिकार हो गया था।

वशिष्ठीपुत्र पुलुमावि के अभिलेख नासिक, कार्ले, अमरावती एवं धरणीकोट आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं और उसके सिक्के विदर्भ, सागली तथा आन्ध्र राज्य के कई स्थानों पर काफी संख्या में मिले हैं। हाल ही में वनवासी के मधुकेश्वर देव के मन्दिर के प्रांगण में उसका एक शिला-लेख प्रकाश में आया है। इस लेख से प्रतीत होता है कि उसने कुन्तल की एक राजकुमारी से विवाह किया था जिसकी मृत्यु के उपरान्त यह शिला लेख खुदवाया गया[2]। टालमी के भूगोल से हमें ज्ञात होता है कि बैठन (पंठण या प्रतिष्ठान) राजा श्रीपुलुमावि

---

1. कुछ विद्वानों के अनुसार गौतमीपुत्र शातकर्णि ने ही आन्ध्र राज्य पर विजय प्राप्त कर इसे अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। परन्तु यह कम सम्भावित प्रतीत होता है।
2. सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, पृ० 30.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की राजधानी थी। उसके साम्राज्य में महाराष्ट्र का अधिकांश भाग, दक्षिणी कोसल, आन्ध्र और कर्नाटक के बड़े भू-भाग शामिल थे। कुछ विद्वानों के अनुसार उसी के राज्यकाल में सातवाहनों के नवविजित प्रदेशों को **आन्ध्रापथ** तथा **सातवाहनीय** नाम दिए गए थे।

वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने महाराज, दक्षिणापथेश्वर तथा नवनगरस्वामी (नवनगर का निर्माण कराने वाला) की उपाधियां धारण कीं। उसके शासन के अन्तिम वर्षों में सातवाहनों का शकों से युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप सातवाहन साम्राज्य के उत्तरी प्रदेशों (आकर एवं अवन्ति आदि) पर शकों का आधिपत्य स्थापित हो गया। एन० सुब्रमण्यम का अनुमान है कि वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि को उसके श्वसुर रुद्रदामन प्रथम ने पराजित किया होगा। कुछ विद्वानों ने रुद्रदामन द्वारा पराजित सातवाहन शासक का समीकरण शातकर्णि चतुर्थ से किया है। परन्तु यह मत अग्राह्य है। मद्रास तथा कुद्दालूर के बीच कोरोमंडल के समुद्र-तटीय क्षेत्रों में वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि के कुछ सिक्के मिले हैं जिन पर दोहरे मस्तूल वाले जहाज की आकृति अंकित है। इन सिक्कों से प्रतीत होता है कि उसके पास नौसेना थी और उसने समुद्री व्यापार को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। सिक्कों के साक्ष्य की पुष्टि 1962 ई० में कांजीवरम् में हुए पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त अवशेषों से हो गई है। ये पुरावशेष प्रमाणित करते[1] हैं कि द्वितीय शताब्दी में सातवाहन साम्राज्य का कांची तक प्रसार हो गया था।

वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि का अन्तिम तिथि-युक्त अभिलेख उसके शासन के 24वें वर्ष का है।

शिवश्री शातकर्णि—पुराणों के अनुसार वाशिष्ठीपुत्र के पश्चात् श्रीशातकर्णि राजा हुआ। वायु पुराण में उसका राज्यकाल 29 वर्ष बतलाया गया है। कुछ विद्वानों ने श्रीशातकर्णि का समीकरण रुद्रदामन प्रथम के दामाद वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णि से किया है। श्रीशातकर्णि के चांदी के सिक्के पश्चिमी भारत के शक-शासकों के सिक्कों के नमूने पर ढलवाए गए थे। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार यह असम्भावित नहीं है कि वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णि (श्रीशिव शातकर्णि) को या तो रुद्रदामन प्रथम ने अपरान्त का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया होगा अथवा रुद्रदामन की मृत्यु के पश्चात् उसने स्वयं इस भू-भाग को जीत कर अपने अधीन कर लिया।

1. Indian Archaeology—A Reveiw, 1962-63, pp. 12-13.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्रीशिवस्कन्द शातकर्णि–अधिकांश पुराणों के अनुसार श्रीशिव पुलुमावि के पश्चात् उसका पुत्र श्रीशिवस्कन्द शातकर्णि राजा हुआ। अमरावती के एक अभिलेख में पुलुमावि के बाद सिवमकसद का नाम आता है। के० गोपालाचारी के अनुसार लिपि-शास्त्र के आधार पर सिवमकसद को पुराणों में वर्णित शिवश्री के साथ रखना चाहिए। तहंला (Tarhala) निधि के तीन सिक्कों पर खद सादकर्णि नाम पढ़ा गया है। सम्भव है कि ये सिक्के शिवस्कन्द शातकर्णि द्वारा जारी किए गए हों।

गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णि–शिवस्कन्द शातकर्णि के पश्चात् गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णि राजा हुआ। उसके राज्यारोहण के समय सातवाहन साम्राज्य कुछ जर्जरित अवस्था को पहुँच गया था। यज्ञश्री के अभिलेख कन्हेरी, नासिक (महाराष्ट्र) तथा गुंटूर (आन्ध्र) ज़िलों में मिले हैं जो पूर्वी एवं पश्चिमी दक्षिणापथ पर उसका आधिपत्य प्रमाणित करते हैं। उसके सिक्के चांदा (मध्य प्रदेश), उत्तरी कोंकण, बड़ौदा, सौराष्ट्र (गुजरात), सोपारा, बरार, अकोला (महाराष्ट्र), कृष्णा एवं गोदावरी (आन्ध्र) ज़िलों में प्राप्त हुए हैं। रैप्सन ने ठीक ही कहा है कि केवल सिक्कों के प्राप्ति-स्थानों के आधार पर यह निष्कर्ष समीचीन नहीं है कि यज्ञश्री शातकर्णि के राज्यकाल में सातवाहनों की सत्ता का विस्तार शक-क्षत्रपों के राज्य के भीतर अपरान्त तक हो गया था। यज्ञश्री के चांदी के सिक्के शैली, आकार तथा तौल आदि में शक शासक रुद्रदामन प्रथम के सिक्कों से काफी मिलते-जुलते हैं। वस्तुतः सातवाहन राजाओं में केवल यज्ञश्री के सिक्के इस प्रकार के हैं। इन सिक्कों के मुख भाग पर राजा का शीर्ष बना है और पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी चिह्न तथा किरण-युक्त सूर्य अंकित है। ये लक्षण शक-क्षत्रपों के सिक्कों में पाए जाते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यज्ञश्री शातकर्णि ने अपरान्त के अतिरिक्त सम्भवतः पश्चिमी भारत तथा नर्मदा नदी की घाटी में भी शक-सत्ता का अन्त कर दिया था। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार शकों के विरुद्ध सातवाहनों की इस सफलता के दो प्रमुख कारण थे–1. शक-क्षत्रप जीवदामन तथा रुद्रसेन प्रथम के बीच गृहयुद्ध एवं 2. महाराष्ट्र में महाक्षत्रप ईश्वरदत्त का अभ्युदय।

यज्ञश्री शातकर्णि के कुछ सिक्कों पर घोड़े की आकृति अंकित है। इस आधार पर सुझाव दिया गया है कि उसने सम्भवतः अश्वमेध यज्ञ किया होगा। परन्तु इस मान्यता के लिए उक्त साक्ष्य पर्याप्त नहीं है। उसके कुछ सिक्कों के मुख भाग पर दो मस्तूलों वाला जहाज़ तथा पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चिह्न बना है। इस प्रकार का एक सिक्का गुंटूर ज़िले में तथा दूसरा कोरोमंडल के तटवर्ती क्षेत्र में मिला है। वी० ए० स्मिथ के अनुसार ये सिक्के प्रमाणित करते हैं कि उसके साम्राज्य का विस्तार समुद्र तट तक हो गया था। परन्तु रैप्सन आदि विद्वानों ने इन सिक्कों को वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि से सम्बन्धित किया है। पार्जिटर के अनुसार यज्ञश्री शातकर्णि के शासन काल में कुछ पुराणों के नवीन संस्करण तैयार किए गए थे। यह विचार भी अनुमान पर ही आधारित है। यज्ञश्री के कुछ चांदी के सिक्कों पर हाथी की आकृति अंकित है। आन्ध्र राज्य से प्राप्त इस शासक के तांबे एवं सीसे के सिक्कों पर हाथी, घोड़े और चैत्य के चित्रण हैं। उसके सिक्कों में काफी विविधता भी है।

यज्ञश्री के साम्राज्य के अन्तर्गत मध्य प्रदेश का कुछ भाग और महाराष्ट्र एवं आन्ध्र राज्यों के अधिकांश भाग शामिल थे। उसने शकों के विरुद्ध निर्णायक सफलता प्राप्त की और अपने दीर्घकालीन शासन में सातवाहन राजवंश की महानता एवं समृद्धि में अभिवृद्धि की। कुछ विद्वानों के अनुसार उसके शासन के अंतिम दिनों में नासिक के निकटवर्ती क्षेत्र को आभीरों ने अपहृत कर लिया था और इसी दौरान में सम्भवत: त्रैकूटक राजवंश की भी स्थापना हुई थी। यज्ञश्री का अन्तिम तिथि-युक्त अभिलेख उसके शासन के 27वें वर्ष का है और पुराणों के के अनुसार उसने 29 वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार उक्त दोनों साक्ष्यों में काफी हद तक सामंजस्य है। के० गोपालाचारी ने बाण के हर्षचरित में वर्णित त्रिसमुद्राधिपति उपाधि धारी सातवाहन शासक की तथा ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित नागार्जुन के मित्र राजा की पहचान यज्ञश्री से की है।

पुराणों के अनुसार सातवाहन राजवंश के अन्तिम तीन शासक विजयश्री, चंद्र शातकर्णि तथा पुलुमावि थे। विजय ने छ: वर्ष तक शासन किया। अकोला ज़िले से प्राप्त सिक्कों की निधि में उसके चार सिक्कों पर 'विजयशातकर्णि' नाम उत्कीर्ण है। श्रीचन्द्र शातकर्णि का समीकरण कुछ विद्वानों ने गोदावरी ज़िले के कोपवलि नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख में उल्लिखित चढ़सात से किया है। इसी क्षेत्र में वाशिष्ठीपुत्र चन्द्रसाति तथा चढ़साति के सिक्के पाये गए हैं। अधिकांश विद्वानों ने चढ़, चड या चंड को चन्द्र शातकर्णि का ही दूसरा नाम माना है और उसकी पहचान कोपवलि अभिलेख के चढ़सात से की है। डी० सी० सरकार इन दोनों को पृथक शासक मानते हैं। सिक्कों से कर्ण, कुम्भ तथा रुद्र शातकर्णि के नाम ज्ञात हुए हैं। इन तीनों ने पुलुमावि द्वितीय के बाद शासन किया। ये सम्भवत: मुख्य सातवाहन राजवंश से सम्बन्धित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नहीं थे। इसलिए पुराणों में उनका उल्लेख नहीं हुआ है। कुम्भ तथा कर्ण के सिक्के विदर्भ में प्राप्त हुए हैं। इन राजाओं ने सम्भवतः इसी क्षेत्र में शासन किया। रुद्र शातकर्णि आन्ध्र का राजा रहा होगा। नानाघाट एवं कन्हेरी अभिलेखों में क्रमशः वाशिष्ठीपुत्र चतरपन और माठरीपुत्र स्वामी सकसेन के उल्लेख हैं और कौशीतकी शातकर्णि नामक शासक के सिक्के मिले हैं। ये राजा साम्पार्श्विक (collateral) शाखा से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

पुलुमावि चतुर्थ इस वंश का अन्तिम शासक था। पुराणों के अनुसार उसने सात वर्ष तक राज्य किया। अकोला निधि में उसके सिक्के भी शामिल हैं जिन पर उसका नाम पुलुमावि अंकित है। बेल्लारी ज़िले से प्राप्त पुलुमावि चतुर्थ का अभिलेख उसके शासन के आठवें वर्ष का है। इसमें बतलाया गया है कि कुमारदास नामक गृहपति ने एक झील का निर्माण कराया था। वी० एस० सुकठंकर ने उपर्युक्त अभिलेख के वाशिष्ठीपुत्र का समीकरण गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि के पुत्र से किया है। परन्तु गोपालाचारी तथा कुछ अन्य विद्वान इस से सहमत नहीं हैं।

तृतीय शताब्दी के तृतीय दशक में सातवाहन साम्राज्य का अन्त हो गया। यज्ञश्री शातकर्णि के पश्चात् योग्य शासकों का अभाव, सामन्तों के विद्रोह तथा महत्वाकांक्षी राजनैतिक शक्तियों का अभ्युदय, इस राजवंश के पतन के प्रमुख कारण थे। सातवाहन साम्राज्य के अवशेषों पर कई छोटे राज्यों का उदय हुआ। इसके उत्तरी प्रदेशों में सातवाहनों की ही एक शाखा राज्य करने लगी। विदर्भ में कर्ण (कृष्ण), कुम्भ तथा रुद्र शातकर्णि नामक राजाओं के सिक्के प्राप्त हुए हैं। नासिक एवं इसके समीप-वर्ती प्रदेशों को आभीरों ने अपने अधीन कर लिया। कृष्णा तथा गुंटूर ज़िलों में इक्ष्वाकुओं और तोंडमंडलम क्षेत्र में पल्लवों का उदय हुआ। दक्षिणापथ के दक्षिण-पश्चिमी भाग में चुटुओं, महारठिकों एवं महाभोजों की, तथा पश्चिम में त्रैकूटकों की शक्ति बढ़ रही थी। विदर्भ में वाकाटकों ने सातवाहन सत्ता का पूर्णरूपेण विनाश कर दिया।

आन्ध्र-सातवाहन शासक दक्षिणापथ में प्रथम महान साम्राज्य के निर्माता थे और उन्होंने कम से कम 300 वर्ष तक राज्य किया। इस सुदीर्घ शासनावधि में कला, साहित्य एवं व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। नासिक, कार्ले और भाजा में अनेक शैल-कृत चैत्यों एवं बिहारों का निर्माण हुआ और प्राकृत भाषा को विशेष प्रश्रय प्राप्त हुआ। शकों, पल्लवों तथा यूनानियों से दीर्घकाल तक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संघर्षरत रहकर सातवाहनों ने देश को उनके प्रभुत्व से मुक्त कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सातवाहन राजाओं ने वैदिक तथा बौद्ध धर्म को काफी संरक्षण दिया। भारत के अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की वृद्धि में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके शासनकाल में भृगुकच्छ (भड़ौच), शूर्पारक (सोपारा), वैजयन्ती (बनवासी) तथा कल्याण बहुत प्रसिद्ध बन्दरगाह थे, जहां से भारत का रोम, यूनान तथा अन्य देशों के साथ बहुत बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। इसके परिणामस्वरूप देश की समृद्धि में आशातीत वृद्धि हुई।

शासन व्यवस्था—सातवाहनों की शासन व्यवस्था मौर्य शासन प्रणाली से काफी प्रभावित थी। राजा सम्पूर्ण राज्य एवं प्रशासन व्यवस्था का शीर्षस्थ अधिकारी था। इस राजवंश के शासकों ने प्रायः राजा, स्वामी, क्षत्रप एवं महाक्षत्र की उपाधियों का प्रयोग किया। अन्तिम तीन विरुद सातवाहनों पर शक शासकों का प्रभाव प्रमाणित करते हैं। गौतमीपुत्र शातकर्णि ने अपने को महाराज एवं राजराज के विरुदों से सुशोभित किया। कई सातवाहन राजाओं के नामान्त मातृमूलक थे।

राजा को सहयोग देने के लिए विभिन्न विभागों एवं वर्गों के अनेक अधिकारी होते थे। सामन्तों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक उत्तरदायित्व दिए गए थे। विशेष परिस्थितियों में रानियों को भी शासन की बागडोर संभालनी पड़ती थी। सातवाहन साक्ष्यों में इस प्रकार के दो उदाहरण मिलते हैं—

1. शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के उपरान्त उसकी रानी नागनिका (नायनिका) ने अपने नाबालिग पुत्र वेदिश्री की संरक्षिका के रूप में राज्य किया था।

2. गौतमी बलश्री ने अपने पुत्र गौतमीपुत्र के साथ कुछ समय तक संयुक्त रूप से शासन किया।

साम्राज्य आहारों, निगमों तथा ग्रामों में विभाजित था। सातवाहन अभिलेखों में मामल्ल आहार तथा गोवर्धन आहार आदि के उल्लेख मिलते हैं। आहार राष्ट्र के समतुल्य था और इसके अधिकारी को प्रायः अमात्य कहते थे। परन्तु जंगलिगुंडि अभिलेख में महासेनापति को एक आहार का प्रधान बतलाया गया है।

एक आहार में कई निगम (नगर) तथा ग्राम होते थे। सातवाहन साम्राज्य के प्रमुख नगर प्रतिष्ठान, धान्यकटक, अमरावती और नासिक थे। नगर के

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रशासन में सहयोग देने के लिए तथा नागरिकों के हितों की सुरक्षा के लिए एक सभा होती थी जिसे **निगम-सभा** कहा गया है। ग्राम का अधिकारी ग्रामणी अथवा ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक कई ग्रामों का प्रशासनिक प्रधान होता था। पुलुमावि के राज्यकाल के आठवें वर्ष के म्याकदोनि शिला-लेख में ग्रामिक कुमारदास का उल्लेख है। कुछ अभिलेखों में दसग्रामिक (दस ग्रामों का प्रधान) शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।

साम्राज्य के कुछ प्रान्त उच्च पदाधिकारियों के अधीन थे और कुछ सामन्त शासकों के अधीन। सातवाहन राजाओं के अभिलेखों में वर्णित अधिकारियों में महासेनापति, महारठि (महारथी), महाभोजक, अमात्य, राजामात्य, महामात्र, भांडागारिक, हेरनिक, निबन्धकार तथा लेखक शामिल हैं। महारथी पश्चिमी घाटों के ऊपरी क्षेत्रों के शासक थे और महाभोजक उत्तरी कोंकण के। अमात्य, आहार का अधिकारी था। महारथी तथा महाभोजक, अमात्य से अधिक महत्वपूर्ण अधिकारी प्रतीत होते हैं क्योंकि वे राजा की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना ही भूमि-दान दे सकते थे जबकि अमात्य को यह अधिकार नहीं प्राप्त था। भांडागारिक रसद का प्रधान था, निबन्धकार रजिस्ट्रीकरण अधिकारी था और हेरनिक को कुछ विद्वानों ने कोषाध्यक्ष माना है। राजामात्य राजा का व्यक्तिगत सचिव रहा होगा। महासेनापति सेना का सर्वप्रधान अधिकारी था। डी० आर० भंडारकर, वी० एस० सुकठंकर एवं डी० सी० सरकार ने महासेनापति को सामन्त के समकक्ष माना है। के० गोपालाचारी के अनुसार दक्षिणापथ के इक्ष्वाकु एवं कुछ अन्य राजवंशों के शासकों के अभिलेखों में वर्णित महातलवर, महासेनापति की भी उपाधि धारण करते थे। जंगलिगुंडि अभिलेख में महासेनापति को एक आहार का अधिकारी बतलाया गया है। वह वस्तुतः सेना का ही प्रधान था और कभी-कभी उसे प्रान्त के प्रशासन का उत्तरदायित्व दे दिया जाता था। महामात्य का उल्लेख मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में भी हुआ है। यह भी महत्वपूर्ण अधिकारी था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आन्ध्र-सातवाहन शासकों का वंशानुक्रम एवं संख्या[1]

राजाओं का क्रम-संख्या		नाम	राज्यकाल वर्षों में	
वायु पुराण	मत्स्य पुराण		वायु पुराण	मत्स्य पुराण
1	1	सिमुक	23	23
2	2	कृष्ण	18	18
	3	शातकर्णि (प्रथम)	–	10
	4	पूर्णोत्संग	–	18
	5	स्कन्दस्तम्भि	–	18
3	6	शातकर्णि (द्वितीय)	56	56
	7	लम्बोदर	–	18
4	8	अपीलक	12	12
	9	मेघस्वाति	–	18
	10	स्वाति	–	18
	11	स्कन्दस्वाति	–	7
	12	मृगेन्द्र	–	3
	13	कुन्तलस्वाति	–	8
	14	स्वातिकर्ण	–	1
5	15	पुलुमावि (प्रथम)	24	36
6	16	गौरकृष्ण	25	25
7	17	हाल	1	5
8	18	मन्दुलक	5	5
9	19	पुरीन्द्रसेन	21	5
10	20	सुन्दर स्वातिकर्णि	1	1
11	21	चकोर स्वातिकर्ण	½	⅓
12	22	शिवस्वाति	28	28
13	23	गौतमीपुत्र शातकर्णि	21	21
	24	पुलुमावि (द्वितीय)	–	28
	25	शिवश्री	–	7
	26	शिवस्कन्द	–	7
14	27	यज्ञश्री	29	29
15	28	विजय	6	6
16	29	चन्द्रश्री	3	10
17	30	पुलुमावि (तृतीय)	7	7

1. Yazdani, Early History of the Deccan, Vol. I, p. 112.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

7

इक्ष्वाकु, बृहत्फलायन, आनन्द, शालंकायन एवं विष्णुकुंडिन राजवंश

इक्ष्वाकु–प्रारम्भिक इतिहास

आन्ध्र-सातवाहनों के पतन के पश्चात् दक्षिणापथ में कई छोटे राजवंशों का उदय हुआ। उत्तर-पश्चिमी दक्षिणापथ में आभीरों की शक्ति बढ़ी और आन्ध्र राज्य में इक्ष्वाकु राजवंश की। सातवाहनों के राज्यकाल तक इक्ष्वाकुओं का इतिहास नितान्त धूमिल है और सातवाहन शासकों के अभिलेखों में भी उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इक्ष्वाकु सम्भवतः सातवाहनों के सामन्त एवं पदाधिकारी थे और उनके सामाजिक जीवन तथा प्रशासन व्यवस्था आदि पर सातवाहनों का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। पार्जिटर[1] तथा एम० रामाराव[2] ने इक्ष्वाकुओं को सातवाहनों का वंशज माना है। के०सुब्रमण्यम के अनुसार, अन्तिम सातवाहन शासक का पदाधिकारी कुमारदत्त सम्भवतः इक्ष्वाकु वंशीय था। कीथ एवं मैकडोनेल[3] ने इक्ष्वाकुओं को वैदिक कुरुओं से सम्बन्धित माना है।

आन्ध्र राज्य के इक्ष्वाकु या तो कोशल के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश से सम्बन्धित रहे होंगे अथवा उत्तर भारत के किसी अन्य प्राचीन इक्ष्वाकु परिवार से। वैदिक[4] एवं प्रारम्भिक बौद्ध-साहित्य[5] में इक्ष्वाकुओं के अनेक उल्लेख मिलते हैं। रामायण (उत्तर कांड, अध्याय 107) में बतलाया गया है कि राम की मृत्यु के उपरान्त कोशल के इक्ष्वाकु राज्य का विभाजन हो गया और राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश को

---

1. Dynasties of the Kali Age, p. 46.
2. Journal of Indian History, Vol. XL, p. 557.
3. Vedic Index, Vol. I, p. 75.
4. Vedic Age, p. 254.
5. Law, B. C. Tribes in Ancient India, pp. 246-47.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दक्षिण कोशल का प्रदेश प्राप्त हुआ जिसकी राजधानी कुशस्थली विन्ध्य-नर्मदा के निकट स्थित थी। भागवत पुराण[1] के अनुसार, इक्ष्वाकु वंशीय मनुस्वायम्भू प्रजापति के तीन पुत्र-उत्कल, गय तथा विमल दक्षिणापथ के शासक हुए। विष्णु तथा वायु पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकु के 100 पुत्रों में से 48 दक्षिणापथ चले गए और वहीं उन्होंने शासन किया[2]। वायु पुराण (88/177-178) में यह भी बतलाया गया है कि अश्मक तथा मूलक नाम के इक्ष्वाकु राजकुमारों ने दक्षिणापथ में अश्मक एवं मूलक जनपदों की स्थापना की थी। नयसेन के कन्नड़ ग्रन्थ धर्मामृत के अनुसार इक्ष्वाकु यशोधर ने 12वें तीर्थंकर वसुपूज्य के समय में (तीसरी या दूसरी शताब्दी ई० पू०) वेंगी में अपना राज्य स्थापित किया और प्रतिपालपुर नगर की नींव डाली। के० गोपालाचारी ने प्रतिपालपुर का समीकरण भट्टिप्रोलु से किया है[3]। टी० एन० रामचन्द्रन[4] का अनुमान है कि दूसरी या तीसरी शताब्दी में इक्ष्वाकु आन्ध्र देश में जाकर बस गए होंगे।

पुराणों में इक्ष्वाकुओं को श्रीपर्वतीय (श्रीपर्वत के निवासी या श्रीपर्वत से सम्बन्धित) कहा गया है और आन्ध्रों (सातवाहनों) के उत्तराधिकारियों के रूप में सात श्रीपर्वतीय शासकों का वर्णन है जिन्होंने 52 वर्ष तक शासन किया[5]। ई० जे० रैप्सन[6] तथा एस० संकरनारायनन[7] ने श्रीपर्वतीयों को चुटु वंश से सम्बन्धित माना है। परन्तु इन विद्वानों द्वारा दिए गए तर्क दुर्बल एवं अग्राह्य हैं।

इक्ष्वाकु आन्ध्र देश में कृष्णा तथा गोदावरी नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र के शासक थे। उनकी राजधानी विजयपुर या विजयापुरी प्रतीत होती है क्योंकि इक्ष्वाकु अभिलेखों में इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण नगर के रूप मे वर्णन है और बतलाया गया है कि वहां कई इक्ष्वाकु रानियों तथा अन्य महिलाओं ने स्मारकों

---

1. तयात्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतस्त्रयः.....दक्षिणापथ राजानो बभूत (भागवत पुराण, 9/1/41)।
2. चत्वारिंशदस्तौ च दक्षिणापथभूपालाः (विष्णु पुराण, 4/8/14); वायु पुराण, 2/26/10)।
3. Early History of Andhradesa, p. 129.
4. MASI, No. 71, p. 4.
5. Dynasties of the Kali Age, pp, 45, 72.
6. Catalogue of Indian Coins, LXIX.
7. Visnukundis and their Times, pp. 205 ff.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का निर्माण कराया था। एहुबुल शान्तमूल के राज्यकाल के अभिलेखों में श्रीपर्वत को विजयापुरी के पूर्व में स्थित बतलाया गया है। श्रीपर्वत के समीकरण के सम्बन्ध में मत-भिन्नता है। टी० एन रामचन्द्रन के अनुसार यह नल्लमलै पर्वत-श्रृंखला की एक पहाड़ी थी और विजयापुरी नगर इसी पर स्थित था। डी० सी० सरकार ने श्रीपर्वत की पहचान नल्लमलै पर्वत-श्रृंखला से ही की है।

नागार्जुनकोंड में हुए पुरातात्विक उत्खनन के परिणामस्वरूप दुर्गीकरण, राजप्रासाद, अश्वमेध-यज्ञ स्थल, स्नानघाट, गोदी तथा बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मों से सम्बन्धित अनेक स्मारकों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर नागार्जुनकोंड को ही प्राचीन विजयापुरी माना गया है[1]।

शान्तमूल प्रथम—आन्ध्र देश के इक्ष्वाकु वंश का संस्थापक शान्तमूल प्रथम था। विभिन्न विद्वानों ने उसका राज्यारोहण 220 तथा 227 ई०के बीच माना है। हाल ही में गुंटूर ज़िले में केसानपल्लि में उसका एक अभिलेख मिला है[2]। उसकी विजयों तथा अन्य उपलब्धियों के विषय में बहुत कम सूचना उपलब्ध है। चूंकि शान्तमूल ने 'अश्वमेध प्रकार' के सिक्के चलाए थे, इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि उसने कुछ महत्वपूर्ण सामरिक सफलताओं के पश्चात् अश्वमेध-यज्ञ किया होगा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी वीरपुरुषदत्त को किसी विजय का श्रेय नहीं दिया गया है, इससे भी अप्रत्यक्ष रूप से निष्कर्ष निकलता है कि शान्तमूल प्रथम ने ही सम्भवत: कृष्णा-गुंटूर ज़िलों के क्षेत्र को अपने अधीन किया होगा। उसने दो प्रकार के सिक्के चलाए—**अश्वमेध प्रकार** के सिक्कों के मुख भाग पर एक घोड़े तथा यूप के चित्र हैं और ब्राह्मी लिपि में सिरिचत (श्रीशान्त) लिखा है। पृष्ठभाग पर उज्जयिनी चिह्न अंकित है। **हस्ति प्रकार** के सिक्कों के मुख भाग पर हाथी की आकृति और पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी चिह्न है। ये सिक्के आन्ध्र राज्य के नलगोंडा तथा गुंटूर ज़िलों में पाए गए हैं।

शान्तमूल प्रथम की दो बहनों उल्लेख का हुआ है। इन में से एक का विवाह उसने अपने पूकिय सामन्त महासेनापति एवं महातलवर के साथ किया। कुछ विद्वानों ने पूकिय की पहचान गुंडलकम्फा नदी के तट पर स्थित पुंगि-क्षेत्र से की है जिसमें वर्तमान गुंटूर एवं नेल्लोर ज़िलों के अतिरिक्त इनके निकटवर्ती क्षेत्र

1. Ramchandran, T. N, Nagarjunkonda, pp. 6 ff.
2. Journal of Epigraphical Society, Vol. VII, XII.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भी शामिल थे। शान्तमूल की पुत्री अटविशान्तश्री का विवाह धनक परिवार के महासेनापति एवं महादंडनायक के साथ हुआ। शान्तमूल ब्राह्मण धर्म का अनुयाई तथा विरुपाखपति महासेन (कार्तिकेय) का उपासक था। उसने अश्वमेध, वाजपेय तथा अग्निष्टोम आदि यज्ञ सम्पन्न किए। उसके राज्यकाल का अन्त विभिन्न विद्वानों ने 240 तथा 250 ई० के मध्य रखा है।

माठरीपुत्र वीरपुरुषदत्त—शान्तमूल प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र वीरपुरुषदत्त राजा हुआ। उसके राज्यकाल के अभिलेख अमरावती, नागार्जुनकोंड तथा जग्गयपेट से प्राप्त हुए हैं। इनमें बौद्ध-विहारों, मन्दिरों तथा अन्य स्मारकों के निर्माण एवं उन्हें दिए गए दानों का ही मुख्यतः वर्णन है। नागार्जुनकोंड अभिलेख में (इसे कुछ विद्वानों ने वीरपुरुषदत्त के राज्य काल के 20वें वर्ष का तथा कुछ ने 28वें वर्ष का माना है) उसकी रानियों द्वारा विजयीपुरी के महाबौद्ध-विहार को, निर्वाण-प्राप्ति के उद्देश्य से दिए गए दानों का उल्लेख है। उसकी सभी पत्नियां बौद्ध धर्म में श्रद्धा रखती थीं। किन्तु वह स्वयं इस धर्म का उपासक था अथवा नहीं, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

इक्ष्वाकुओं में बुआ तथा चाची आदि की पुत्रियों के साथ विवाह (cross cousin marriages) करने की अनुमति थी। वीरपुरुषदत्त की तीन रानियां उसके पिता की बहनों की दुहिताएं थीं। दक्षिण भारत में इस प्रथा का प्रचलन आजकल भी है। वीरपुरुषदत्त ने सम्भवतः उज्जैन की शक राजकुमारी रुद्रधरभट्टारिका से भी विवाह किया और अपनी पुत्री कोदवलसिरि का विवाह बनवासी के राजा के साथ किया जिसके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह सम्भवतः कुन्तल के चुटु शातकर्णि परिवार का शासक था। इन वैवाहिक सम्बन्धों से इक्ष्वाकुओं को अपनी शक्ति के विस्तार में अवश्य सहायता मिली होगी। वीरपुरुषदत्त के पुत्रों में एलिएहवुलदस तथा एहवुलशान्तमूल के नाम वर्णित हैं। एहवुलदस को महासेनापति नियुक्त किया गया था। पूकिय वंश के वाशिष्ठीपुत्र खंडसिरि तथा धनक वंशीय महासेनापति-महातलवर-महादंडनायक खंदविसक उसके सम्बन्धी एवं सामन्त थे।

वीरपुरुषदत्त ने हस्ति-प्रकर के सिक्के चलाए जिनके मुख भाग पर हाथी की आकृति तथा **सिरिविरि** लिखा है। पृष्ठ भाग पर उज्जयिनी चिह्न अंकित है।

वीरपुरुषदत्त की किसी उपलब्धि का उल्लेख नहीं हुआ है। उसके शासनकाल में बौद्ध धर्म एवं स्थापत्य को अत्यधिक संरक्षण प्राप्त हुआ। एम०

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रामाराव के अनुसार उसने 240 से 260 ई० तक और दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार 250 से 275 ई० तक राज्य किया।

एहवुलशान्तमूल द्वितीय–शान्तमूल द्वितीय के राज्यारोहण की तिथि के विषय में मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसके शासन का प्रारम्भ 275 ई० में तथा कुछ के अनुसार 285 ई० में हुआ। परन्तु उसके राज्यकाल का अन्त सभी विद्वानों ने 333–34ई० के लगभग माना है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री[1] तथा दिनेशचन्द्र सरकार[2] के अनुसार 275 तथा 285 ई० के बीच के 10 वर्ष के अन्तराल में वसुसेन नामक एक आभीर शासक ने इक्ष्वाकु राज्य को अधिकृत कर वहां शासन किया। बाद में शान्तमूल द्वितीय ने वसुसेन को पराजित कर अपना पैतृक राज्य प्राप्त कर लिया। इस मत का आधार नागार्जुनकोंड से प्राप्त वसुसेन का एक अभिलेख है। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि अष्टभुजस्वामी की मूर्ति के अभिषेक के अवसर पर आभीर वसुसेन, कौशिक गोत्रीय शिवसेन, अवन्ति का यवन शासक रुद्रदामन तथा बनवास का राजा विष्णुरुद्रशिवलानन्द शातकर्णि उपस्थित थे। उक्त अभिलेख में अंकित तिथि को 248–49 ई० में प्रारम्भ हुए कलचुरि-चेदि संवत् का 30 वां वर्ष मानते हुए इसे डी० सी सरकार ने इसे 278–79 ई० का माना है। सरकार की मान्यता है कि वसुसेन ने या तो इक्ष्वाकु राज्य को आक्रान्त कर वीरपुरुषदत्त को राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया और स्वयं वहां 275 से 285 ई०तक शासन किया। बाद में वीर पुरुषदत्त के पुत्र शान्तमूलद्वितीय ने वसुसेन को पराजित कर अपना पैतृक राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। परन्तु यदि उपर्युक्त तिथि कलचुरि-चेदि संवत् के बजाय वसुसेन के शासन का 30वां वर्ष है, तो सम्भवतः वसुसेन तथा पल्लवों ने मिलकर इक्ष्वाकुओं पर विजय प्राप्त की होगी और आभीर शासक ने इक्ष्वाकु राज्य के कुछ प्रदेशों को अधिकृत कर वहां शासन किया। बाद में पल्लवों ने उसे वहां से निकाल दिया।

एम० रामाराव की अवधारणा है कि नागार्जुनकोंड अभिलेख में उल्लिखित शासकों में से बनवास का शातकर्णि वीरपुरुषदत्त का दामाद तथा अवन्ति का राजा रुद्रदामन, शान्तमूल प्रथम की पत्नी का सम्बन्धी रहा होगा। उनका अनुमान है कि इक्ष्वाकु राजधानी में अष्टभुजस्वामी की मूर्ति के अभिषेक के अवसर पर इक्ष्वाकुओं के उपर्युक्त सम्बन्धी एकत्रित हुए होंगे। वसुसेन ने इक्ष्वाकु राज्य पर आक्रमण नहीं किया था।

के० एस० सुन्दरन के अनुसार यदि वास्तव में वसुसेन ने इक्ष्वाकुओं पर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विजय प्राप्त की होती तो वह अपने अभिलेख में इस उपलब्धि का उल्लेख अवश्य कराता। यह अभिलेख वसुसेन के किसी अधीनस्थ ने उत्कीर्ण कराया होगा, इसलिए इसमें वसुसेन के शासन के वर्ष का उल्लेख है। सुन्दरन महोदय का अनुमान है कि आभीर राजा के सामन्तों ने इक्ष्वाकुओं पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में अष्टभुजस्वामी की प्रतिमा के अभिषेक में शामिल होकर इस देवता के प्रति आभार प्रकट किया होगा।

उपर्युक्त सभी मत अनुमान पर आधारित हैं और अभी तक वसुसेन के अभिलेख की इक्ष्वाकु-राजधानी में उपस्थिति का वास्तविक कारण अज्ञात है। तथ्य जो भी हो, न तो नागार्जुनकोंड अभिलेख में अंकित तिथि का पाठ निर्विवाद है और न हीं यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह किसी संवत् का वर्ष है अथवा वसुसेन के शासन का। नागार्जुनकोंड अभिलेख के वर्ण्य-विषय को देखने से प्रतीत होता है कि वसुसेन इक्ष्वाकुओं का सम्भवतः मित्र था और उसे इस धार्मिक कृत्य के अवसर पर आमन्त्रित किया गया होगा।

शान्तमूल द्वितीय के शासन काल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ और प्राकृत के स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। उसे धर्म-विजयी 'राम के समान अपनी प्रजा का स्नेह-भाजन' और सगर, दिलीप, अम्बरीश तथा युधिष्ठिर के समान महान बतलाया गया है। अपने पूर्ववर्ती राजाओं की भांति शान्तमूल ने भी हस्तिवर्ग के सीसे के सिक्के चलाए। उसके राज्यकाल की किसी अन्य घटना का उल्लेख नहीं हुआ है।

रुद्रपुरुषदत्त द्वितीय—शान्तमल द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र रुद्रपुरुषदत्त द्वितीय राजा हुआ। डी०सी०सरकार तथा ए० सुन्दरराजन के अनुसार उसने 333-34 ई० से 344-45 ई० तक शासन किया। परन्तु ए०रामाराव ने उसका राज्यकाल 284-तथा 295 ई० के मध्य रखा है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि रुद्रपुरुषदत्त द्वितीय को अपने भाई वीरपुरुषदत्त से युद्ध करना पड़ा था।

रुद्रपुरुषदत्त द्वितीय के राज्यकाल के चौथे वर्ष के गुर्जला अभिलेख में हलमपुर-स्वामी को दिए गए भूमिदान का उल्लेख है और 11 वें वर्ष के नागार्जुनकोंड अभिलेख में उसकी सौतेली मां वरमभटा की स्मृति में निर्मित एक स्तम्भ का विवरण है। रुद्रपुरुषदत्त ने भी हस्ति-प्रकार के सीसे के सिक्के चलाए। वह आन्ध्र देश के इक्ष्वाकु राजवंश का अन्तिम ज्ञात शासक है और उसकी मृत्यु के बाद इस राजवंश का पतन हो गया।

इक्ष्वाकुओं के पतन का सर्वप्रमुख कारण सम्भवतः आन्ध्र में पल्लवों का

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभ्युदय था। इसके बाद भी वे काफी समय तक सामन्त शासकों की हैसियत से राज्य करते रहे। 5वीं शताब्दी के आस-पास के अनजि से प्राप्त एक अभिलेख में कर्नाटक के सन्त-प्रवृत्ति वाले इक्ष्वाकुओं एवं केकय राजवंश के बीच हुए वैवाहिक सम्बन्ध का उल्लेख है। नयसेन के धर्मामृत में भी इक्ष्वाकुओं का वर्णन है, किन्तु यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं कि यह एक ही इक्ष्वाकु वंश की विभिन्न शाखाएं थी अथवा आन्ध्र राज्य के इक्ष्वाकु, कर्नाटक के इक्ष्वाकुओं से भिन्न थे।

इक्ष्वाकुओं का शासन काल दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म एवं दर्शन के विकास के इतिहास में एक गौरवपूर्ण अध्याय है। इस काल में, विशेष रूप से वीरपुरुषदत्त की शासनावधि में, बौद्ध धर्म तथा कला को अत्यधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकु अभिलेखों में निम्नलिखित महायान बौद्ध-सम्प्रदायों के उल्लेख हुए हैं—**महासंघिक, अपरमहाविनसेलिय, स्थविर** तथा **विभज्यवाद**। इक्ष्वाकुओं के शासन काल में बौद्ध धर्म के केन्द्र के रूप में नागार्जुनकोंड को वस्तुतः वही गौरव प्राप्त हुआ जो परवर्ती काल में नालन्दा एवं विक्रमशिला को मिला। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि लगभग सभी इक्ष्वाकु राजा ब्राह्मण धर्मानुलम्बी थे और उन्होंने वैदिक यज्ञों को सम्पन्न किया। परन्तु उनकी रानियां बौद्ध धर्म में श्रद्धा रखतीं थीं और उन्होंने नागार्जुनकोंड में अनेक स्तूप तथा विहार बनवाए। इन स्मारकों में शान्तिश्री द्वारा निर्मित महाचैत्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें महात्मा बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित थीं। इक्ष्वाकु राजधानी विजयापुरी में श्रीलंका के बौद्ध-भिक्षुओं के निवास के लिए भी चैत्य एवं विहार बनवाए गए थे। इससे भारत तथा सिंहल के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का प्रमाण प्राप्त होता है। यह सम्पर्क मुख्यतः व्यापार के माध्यम से स्थापित हुआ होगा। नागार्जुनकोंड के बौद्ध स्मारकों पर उत्कीर्ण शिल्प में जातक-कथाओं में वर्णित अनेक घटनाओं के चित्रण हैं। इक्ष्वाकुओं के पतन के साथ ही कृष्णा नदी की घाटी में बौद्ध-धर्म का ह्रास हो गया। इसका प्रमुख कारण सम्भवतः ब्राह्मण धर्मानुलम्बी पल्लवों तथा चालुक्यों का अभ्युदय था। इन राजवंशों के शासन काल में वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों को अत्यधिक संरक्षण मिला।

बृहत्फलायन—इक्ष्वाकु राजवंश के पतन के पश्चात् तीसरी शताब्दी के अंतिम चरण में आन्ध्र राज्य के मसुलीपटम क्षेत्र में बृहत्फलायन गोत्रीय राजवंश ने शासन किया। अभी तक इस वंश का जयवर्मन नामक केवल एक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ही शासक ज्ञात है। उसने अपने राज्यकाल के १० वें वर्ष में कुडूर आहार में स्थित सैनिक शिविर से कोंडमडि दानपत्र जारी किया था। इसमें जयवर्मन को महाराज तथा परममाहेश्वर (शिव का परम उपासक) की उपाधियां दी गई हैं और बृहत्फलायन गोत्रीय बतलाया गया है। कोंडमडि दानपत्र में मुरोदय-कलुकि नामक एक ग्राम ब्राह्मण अग्निशर्मा को दान में देने तथा कुडूर आहार के अधिकारी (**वापत = व्यापृत**) को राजा द्वारा उक्त दान के सम्बन्ध में दी गई राजाज्ञा का विवरण है। कुडूर के समीकरण के विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। डुब्रील तथा संकरनारायनन ने इस की पहचान मसुलिपटम से लगभग छः किलो मीटर की दूरी पर स्थित कुडूरु या गुडूरु नामक गांव से की है। कुछ विद्वानों ने ने इसे गंटसाल के निकट कोडुरु नामक स्थान माना है। ब्राह्मण अग्निशर्मा को दान में दिए गए मुरोदयकलुकि ग्राम की पहचान नहीं की जा सकी है।

जयवर्मन की राजधानी मसुलिपटम रही होगी, यद्यपि कुछ विद्वानों ने कुडूर को उसकी राजधानी माना है। उसका राज्य आहारों में बंटा हुआ था जिसके अधिकारी को व्यापृत कहते थे। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार जयवर्मन के राज्यकाल से ही **ब्रह्मदेयों** की प्रथा का प्रारम्भ हुआ जो परवर्ती कालों में काफी प्रचलित हुए।

जयवर्मन के पूर्वजों अथवा उत्तराधिकारियों के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। बृहत्फलायन राजवंश के प्रारम्भिक सदस्य सातवाहनों अथवा इक्ष्वाकुओं के सामन्त या पदाधिकारी रहे होंगे। तीसरी शताब्दी के अन्त के लगभग जयवर्मन ने अपने को इक्ष्वाकुओं की अधिसत्ता से मुक्त कर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। परन्तु यह राजवंश अधिक समय तक राज्य नहीं कर सका और पल्लवों के अभ्युदय के कारण बृहत्फलायनों के शासन का अन्त हो गया।

यहां यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि नागार्जुनकोंड से प्राप्त एक अभिलेख में वरमभटा को इक्ष्वाकु शासक एहवुलशान्तमूल की पत्नी तथा बृहत्-फलायन (बहपल = बृहत्फल या बृहत्फलायन) गोत्रीय महाक्षत्रप की पुत्री बत-लाया गया है। इस महाक्षत्रप के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु उक्त अभिलेख से यह प्रमाणित होता है कि पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रप अपने को बृहत्फलायन गोत्र से सम्बन्धित करने लगे थे[1]।

---

1. Some Early Dynasties of South India, p. 120.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आनन्द–छठी शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में आन्ध्र देश के गुंटूर ज़िले के निकटवर्ती क्षेत्र में आनन्द गोत्रीय शासकों ने एक छोटे राज्य की स्थापना की। ये शासक आनन्द नामक ऋषि के वंशज थे। बृहत्फलायन की भांति उनका राजवंश भी गोत्र के नाम से ही जाना जाता है। इसके संस्थापक कन्दर के नाम पर कभी-कभी इसे कन्दर वंश भी कहा जाता है। इन राजाओं की राजधानी कन्दरपुर थी जिसकी स्थापना कन्दर ने ही की होगी। यह नगर गुंटूर ज़िले में सम्भवतः चेज़र्ला (Chezerla) के निकट स्थित था। आनन्द राजवश के 'परिवार देवता' शिव प्रतीत होते हैं, जिनका मन्दिर कुछ विद्वानों के अनुसार वकेश्वर (आधुनिक चेज़र्ला) के निकट स्थित रहा होगा। इस राजवंश के इतिहास पर मुख्यतः दो ताम्रपत्र तथा एक प्रस्तर-अभिलेख प्रकाश डालते हैं। इन साक्ष्यों में निम्न-लिखित शासकों का विवरण प्राप्त होता है-

कन्दर[1]–कन्दर इस वंश का संस्थापक था। उसकी उपलब्धियों आदि का उल्लेख उसके दौहित्र (पुत्री के पुत्र) सतमामल्ल के चेज़र्ला अभिलेख में हुआ है। इस अभिलेख में कन्दर को आनन्द गोत्रीय, धान्यकटक के युद्ध में शत्रु के हाथियों को मारने वाला, आन्ध्र देश की स्त्रियों के वैधव्य का कारण, त्रिकूट-पर्वत का स्वामी, तथा कन्दरपुर एवं अन्य जनपदों का शासक कहा गया है। उसने कृष्णा नदी के तट पर विष्णुकुंडिनों को पराजित कर त्रिकूट पर अधिकार कर लिया और 'त्रिकूटपर्वत के स्वामी' का विरुद धारण किया, जिसका प्रयोग विष्णुकुंडिन शासक करते थे।

कन्दर के राज्य में गुंटूर ज़िले के अतिरिक्त तेनलि (Tenali) तालुक भी शामिल थी। उसने अपने नाम पर कन्दरपुर नगर स्थापित किया और उसे राजधानी बनाया। उसने पल्लव शासक के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। उसके राजकीय-ध्वज पर गोलांगुल की आकृति अंकित है जो बन्दर की एक किस्म है। डी० सी० सरकार के अनुसार यह असम्भावित नहीं है कि कन्दर तथा उसके कुछ सामन्तों ने अमरावती क्षेत्र से पल्लवों को निष्कासित कर दिया हो। साथ ही चेज़र्ला अभिलेख की लिपि के आधार पर उन्होंने इस सम्भावना को भी स्वीकार किया है कि उक्त अभिलेख में वर्णित कन्दर, आनन्द वश के संस्थापक से भिन्न इस नाम का कोई अन्य शासक भी हो सकता है।

---

1. डी० सी० सरकार के अनुसार कन्दर संस्कृत शब्द कृष्ण का प्राकृत में बिगड़ा रूप है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अत्तिवर्मन (हस्तिवर्मन)—इस शासक के विषय में बहुत कम सूचना मिलती है। उसके राज्य काल के गोरंटला अभिलेख में उसे शिव का भक्त, आनन्द गोत्रीय तथा हिरण्यगर्भ महादान को सम्पन्न करने वाला बतलाया गया है। उसके राज्यकाल की किसी घटना का उल्लेख नहीं हुआ है।

दामोदरवर्मन—दामोदरवर्मन के शासन के द्वितीय वर्ष के मत्तेपद (Mattepad) अभिलेख में उसे सम्यक सम्बुद्ध का उपासक, आनन्द-गोत्रीय तथा हिरण्यगर्भोदभवोदभव कहा गया है। चूंकि उसके पिता को हिरण्यगर्भ महादान सम्पन्न करने वाला बतलाया गया है, इस आधार पर दामोदरवर्मन को अत्तिवर्मन का पुत्र माना जा सकता है।

आनन्द गोत्रीय शासकों का तिथिक्रम काफी विवादपूर्ण है। चूंकि दामोदरवर्मन के शासन काल के मत्तेपद अभिलेख का कुछ भाग प्राकृत में और कुछ संस्कृत में लिखा गया है, इस आधार पर डी० सी० सरकार ने उसे चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में रखा है। गोरंटला अभिलेख पूर्णतया संस्कृत में है। इसलिए इस अभिलेख के अत्तिवर्मन ने मत्तेपद अभिलेख में वर्णित शासकों के बाद में राज्य किया होगा।

के० गोपालाचारी ने कन्दर को छठी शताब्दी के प्रथम चरण में और उसके दौहित्र को इसी शताब्दी के तृतीय चरण में रखा है। कुछ विद्वानों के अनुसार आनन्द वंशीय शासकों ने 290 से 330 ई० तक, कुछ के अनुसार 375 से 500 ई० तक तथा कुछ के अनुसार छठी तथा सातवीं शताब्दी के बीच शासन किया। एम० रामाराव द्वारा प्रस्तावित इन राजाओं का वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम इस प्रकार है—

कन्दर प्रथम	—	(लगभग 375-400 ई०)
दामोदरवर्मन	—	(,, 425-450 ई०)
अत्तिवर्मन	—	(,, 450-475 ई०)
कन्दर द्वितीय	—	(,, 500-525 ई०)
कन्दर द्वितीय का दौहित्र	—	(,, 525-550 ई०)

शालंकायन—शालंकायन सातवाहनों के सामन्त रहे होंगे और यदा-कदा उन्होंने सम्भवतः पल्लवों की भी प्रभुसत्ता स्वीकार की। बृहत्फलायनों एवं पल्लवों की शक्ति का अन्त करने के उपरान्त शालंकायनों ने आन्ध्र देश में अपना राज्य स्थापित किया। उनके राज्य में वर्तमान कृष्णा तथा गोदावरी ज़िले एवं इनके निकटवर्ती क्षेत्र शामिल थे। टालमी ने सलकेन्वाय (Salakenoi) का

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उल्लेख किया है जो मैसोलिया (Masolia) में निवास करते थे और बेनगौरॉन (Benagouron) उनके राज्य का एक महत्वपूर्ण नगर था। हेमचन्द्र राय-चौधरी तथा डी० सी० सरकार ने सलकेन्वाय एवं बेनगौरान का समीकरण क्रमशः शालंकायनों एवं वेंगी से किया है। चूंकि इस राजवंश के शासकों के अधिकाश अभिलेख वेंगी से जारी किए गए थे, इसलिए यही नगर उनकी राजधानी रही होगी। वेंगीपुर का समीकरण कृष्णा जिले में एल्लोरे के निकट-वर्ती पेडुवेगि नामक स्थान से किया गया है।

पल्लवों एवं शालंकायनों में अनेक समानताएं मिलती हैं[1]। इस आधार पर टी० वी० महालिंगम ने दोनों को परस्पर सम्बन्धित माना है। शालंकायन शासक सूर्य (चित्ररथस्वामी) के उपासक थे, जो उनके कुलदेवता प्रतीत होते हैं। उनके सिक्कों तथा अभिलेखों में संलग्न मुद्राओं पर बैल की आकृति अंकित है और शालंकायन शब्द का अर्थ भी (शिव का वाहन) नन्दि है। इन तथ्यों से अनुमान किया गया कि है शिव-भक्त होने के कारण ही उन्होंने सम्भवतः अपने राजवंश का नाम शालंकायन रखा। शालंकायन शासकों के वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम के विषय में काफी मत-भिन्नता है और विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं–**डुब्रील** (Dubrueil) **के अनुसार**

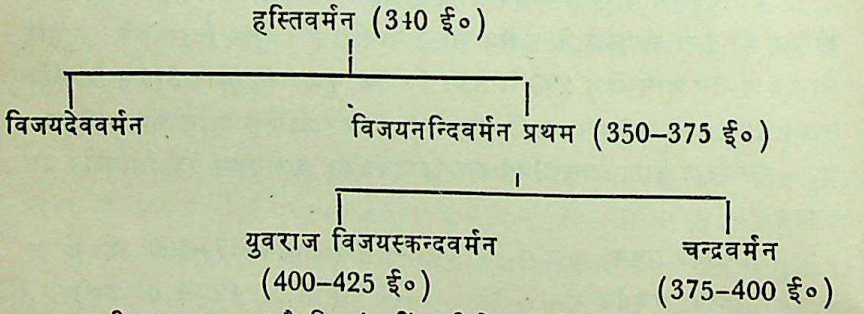

डुब्रील का अनुमान है कि पांचवीं शती के मध्य के लगभग शालंकायन राज-वंश का अन्त हुआ।

दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार

1. देववर्मन (लगभग 320-345 ई०)
2. हस्तिवर्मन (,, 345-370 ई०)

1. दोनों राजवंशों का गोत्र भारद्वाज एवं ध्वज-चिह्न वृषभ था। उनके अभिलेखों में समान लिपि (वेंगी-लिपि) का प्रयोग हुआ है और दोनों राज-वंशों में स्कन्दवर्मन, बुद्धवर्मन तथा नन्दिवर्मन नाम मिलते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

3. नन्दिवर्मन प्रथम (370-395 ई०)
4. चन्द्रवर्मन प्रथम (395-420 ई०)
5. नन्दिवर्मन द्वितीय (420-445 ई०)
6. स्कन्दवर्मन (445-470 ई०)

एम० रामाराव के अनुसार

1. हस्तिवर्मन प्रथम (300-325 ई०)
2. नन्दिवर्मन प्रथम (325-350 ई०)
3. विजयदेववर्मन (350-375 ई०)
4. हस्तिवर्मन द्वितीय (375-400 ई०)
5. स्कन्दवर्मन द्वितीय (400-425 ई०)
6. नन्दिवर्मन द्वितीय (425-450 ई०)
7. स्कन्दवर्मन तृतीय (450-475 ई०)

देववर्मन के पिता ने भट्टारक की उपाधि धारण की थी। इस आधार पर नीलकान्त शास्त्री का अनुमान है कि वह स्वतन्त्र शासक रहा होगा। देववर्मन ने हस्तिवर्मन के पहले शासन किया। परन्तु इन दोनों राजाओं का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। देववर्मन के राज्यकाल के 13वें वर्ष के एल्लोरे अभिलेख के अनुसार वह शिव (महादेव) का भक्त था और उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। यह यज्ञ उसने सम्भवतः पल्लवों को पराजित करने के उपरान्त आन्ध्र देश पर अधिकार करने के उपलक्ष में सम्पन्न किया होगा। के० वी० लक्ष्मणराव के अनुसार शालंकायनों ने अश्वमेध यज्ञ की प्रेरणा गुप्त सम्राटों से प्राप्त की होगी। इसके विपरीत डी० सी० सरकार की मान्यता है कि गुप्तों ने इस यज्ञ की परम्परा शालंकायन शासकों से ग्रहण की होगी। इनमें से कोई भी मत सही नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः इस यज्ञ की परम्परा काफी प्राचीन थी और शालंकायनों एवं गुप्तों के अभ्युदय के पहले ही इक्ष्वाकुओं, भारशिव नागों तथा अन्य राजवंशों के शासकों ने अश्वमेध यज्ञ किए थे।

उपर्युक्त एल्लोरे अभिलेख के अनुसार गोदावरी ज़िले के एलूर नामक स्थान पर वमूर गोत्रीय ब्राह्मण गणशर्मा को कर-मुक्त 20 **निवर्तन** भूमि दान में दी गई थी। एल्लोरे अभिलेख में संलग्न देववर्मन की मुद्रा पर उत्कीर्ण आकृति काफी मिट चुकी है। हुल्ट्श महोदय के अनुसार यह व्याघ्र का चित्र रहा होगा और दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार बैल का।

देववर्मन के राज्यकाल के एल्लोरे अभिलेख में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गया और स्कन्दवर्मन तथा नन्दिवर्मन द्वितीय के अभिलेखों में संस्कृत का। इस आधार पर उसका राज्यकाल स्कन्दवर्मन तथा नन्दिवर्मन द्वितीय के पहले रखा जाना चाहिए[1]। देववर्मन का शालंकायन शासकों से क्या सम्बन्ध था, निश्चित-रूप से ज्ञात नहीं। एम० रामाराव का अनुमान है कि वह नन्दिवर्मन प्रथम का भाई था।

नीलकान्त शास्त्री के अनुसार महाराज नन्दिवर्मन प्रथम 375 ई० के लगभग राजा हुआ। उसके शासन के 14वें वर्ष में कानुकोल्लु दानपत्र बालक महाराज खन्दपोत्ति की शक्ति-विवर्धन के उद्देश्य से प्रसारित किए गए थे। शब्दार्थ के आधार पर कुछ विद्वानों ने रवन्द (स्कन्द) को नन्दिवर्मन का पुत्र अथवा पौत्र (पोत्ति) माना है। एम० रामाराव के अनुसार पोत (पोत्ति) सम्मान सूचक शब्द है। वह बालक को युवमहाराज के समतुल्य मानते हैं। इस प्रकार स्कन्द सम्भवतः नन्दिवर्मन प्रथम का पुत्र था और कानुकोल्लु दानपत्र प्रसारित होने के समय वह अल्पायु का बालक था। नन्दिवर्मन प्रथम के राज्य में कुद्रहार विषय शामिल था जिसका विस्तार कृष्णा नदी के दोनों ओर था। उसके तीन पुत्र थे–

1. हस्तिवर्मन द्वितीय–जो नन्दिवर्मन प्रथम की मृत्यु के पश्चात् राजा हुआ।

2. चंडवर्मन–जो कुछ समय तक **युवमहाराज** रहा।

3. स्कन्दवर्मन–वह नंदिवर्मन प्रथम के शासन के 14वें वर्ष में अल्पायु का बालक था। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार नन्दिवर्मन प्रथम के पश्चात् उसके पुत्र हस्तिवर्मन द्वितीय तथा पौत्र स्कन्दवर्मन क्रमशः राजा हुए।

कोलैर अभिलेख में वर्णित नन्दिवर्मन को डी० सी० सरकार ने पेडुवेग्गि अभिलेख का नन्दिवर्मन द्वितीय माना है क्योंकि इन दोनों को ही चंडवर्मन का ज्येष्ठ पुत्र कहा गया है। पेडुवेग्गि तथा कोलैर अभिलेखों में नन्दिवर्मन द्वितीय को भगवतच्चित्तरथस्वामिपादानुध्यातोवप्पभट्टारकपादभक्तः परमभागवतः कहा गया है। ये विरुद नन्दिवर्मन को कंटेरु अभिलेख में भी दिए गए हैं और उपर्युक्त तीनों साक्ष्यों में उसे परमभागवत कहा गया है। इसलिए डी० सी० सरकार के अनुसार कोलैर, पेडुवेग्गि तथा कंटेरु-तीनों अभिलेखों में नन्दिवर्मन द्वितीय का ही वर्णन है। यह भी उल्लेखनीय है कि शालंकायन शासकों में नन्दि-वर्मन द्वितीय के अतिरिक्त अन्य किसी राजा ने परमभागवत का विरुद नहीं

1. प्राकृत भाषा संस्कृत के पहले प्रचलित हो गई थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धारण किया था। शालंकायन शासकों के विषय में अन्य कोई महत्वपूर्ण सूचना नहीं मिलती।

विष्णुकुंडिन–विष्णुकुंडिन राजवंश का प्रारम्भिक इतिहास एवं इसके अभ्युदय की परिस्थितियां सुस्पष्ट नहीं है। इस राजवंश के अभिलेखों में इस सन्दर्भ में कहा गया है कि विष्णुकुंडिन अपने प्रयासों से शक्तिशाली हुए और उन्हें अपने कुलदेवता **श्रीपर्वतस्वामी** की अनुकम्पा से राजत्व की प्राप्ति हुई थी। वस्तुतः शालंकायनों के पतन के उपरान्त आन्ध्र देश में विष्णुकुंडिन राजवंश की स्थापना हुई[1]।

'विष्णुकुंडिन' नाम के विषय में काफी मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार आनन्द, शालंकायन तथा वृहत्फलायन की भांति, विष्णुकुंडिन भी एक गोत्र था। परन्तु गोत्रों की प्राचीन सूचियों में विष्णुकुंडिन का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। एम० रामाराव के अनुसार विष्णुकुंडिन शब्द कुल अथवा जनजाति का द्योतक है। एस० संकरनारायनन की मान्यता है कि इस राजवंश का नाम विष्णुकुंडिन था विष्णुकुंडिन नहीं, क्योंकि विष्णुकुंडिन शासकों के पांच अभिलेखों में विष्णुकुंडि नाम आया है जबकि विष्णुकुंडिन केवल चिक्कुल्ल अभिलेख में प्रयुक्त हुआ है।

कीलहार्न (Kielhorn) महोदय के अनुसार आन्ध्र राज्य के कृष्णा ज़िले में स्थित विनुकोंडा विष्णुकुंडिनों की राजधानी थी। वी० वी० कृष्णराव के अनुसार कुंडिनपुर का प्रारम्भिक नाम विष्णुकुंडिनपुर था और इसी स्थान से यह राजवंश सम्बन्धित था। विष्णुकुंडिनों के वाकाटक राजवंश से वैवाहिक सम्बन्ध के आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि वे उत्तर के मूल निवासी थे और बाद में वहां से स्थानान्तरण कर बेज़वाड़ा के निकट बस गए। नागार्जुनकोंड की घाटी अथवा इसके निकटवर्ती क्षेत्र को भी विष्णुकुंडिनों का मूल निवास माना गया है। कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि गुंटूर ज़िले में प्रवाहित होने वाली ब्रह्मकुंड नामक नदी की किसी शाखा का नाम सम्भवतः विष्णुकुंडि था और इस नदी के निकट ही विष्णुकुंडिनपुर नगर स्थित रहा होगा जो कालान्तर में विनुकोंडा कहलाने लगा। परन्तु विष्णुकुंडिन नाम की नदी का किसी साक्ष्य में उल्लेख नहीं मिलता और न यह मानने के लिए कोई आधार है कि

---

1. एम० रामाराव के अनुसार विष्णुकुंडिन राजवंश के संस्थापक ने शालंकायनों के अतिरिक्त आनन्दों तथा पल्लवों की भी शक्ति को समाप्त कर अपना राज्य स्थापित किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथाकथित नदी के तट पर विष्णुकुंडिनपुर स्थित था जिसका नाम बाद में विकृत होकर विनुकोंडा हो गया।

विष्णुकुंडिनों के लिए प्रयुक्त **श्रीपार्वतेय** तथा **आन्ध्रपति** के विरुदों के आधार पर संकरनारायनन ने उनका समीकरण, पुराणों में वर्णित श्रीपर्वतीय-आन्ध्रों से, और श्रीपर्वतीय-आन्ध्रों का तादात्मय चुटु शातकर्णियों से किया है। उनके अनुसार विष्णुकुंडिन चुटुओं का एक शाखा-राजवंश था। परन्तु ये तर्क अग्राह्य हैं क्योंकि चुटु पश्चिमी दक्षिणापथ के शासक थे, आन्ध्र देश के नहीं। पुराणों में श्रीपर्वतीयों का उल्लेख वस्तुतः आन्ध्र देश के इक्ष्वाकुओं के लिए हुआ है। विष्णुकुडिनों को चुटुओं से सम्बन्धित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

कुछ विद्वानों के अनुसार विष्णुकुंडिन प्रारम्भ में कृष्णा नदी के दक्षिणी तटवर्ती क्षेत्र में बसे हुए थे और उनकी राजधानी अमरावती थी जिसका समीकरण इन विद्वानों ने ईपुर ताम्रपत्रों के द्वितीय सेट में वर्णित अमरपुर से किया है। डुब्रील महोदय का अनुमान है कि लेन्दलूर इस राजवंश की राजधानी थी जो वेंगी नगर के निकट एल्लोरे तालुक मे स्थित देन्दुलूर नामक स्थान प्रतीत होता है। कदम्बों की भांति विष्णुकुंडिनों का राजकीय-चिह्न व्याघ्र था। इस चिह्न-साम्य के आधार पर डुब्रील ने इन राजवंशों के परस्पर सम्बन्धित होने की सम्भावना स्वीकार की है।

विष्णुकुंडिन शासकों के अभिलेखों में वर्णित स्थानों में से अधिकांश आन्ध्र प्रदेश में स्थित थे। वे श्रीपर्वत के शासक तथा श्रीपर्वतस्वामी के उपासक बतलाए गए हैं। कीलहार्न ने श्रीपर्वत का समीकरण करनूल जिले के श्रीशैलम से किया है। भौगोलिक स्थिति एवं नाम-साम्य के आधार पर विनुकोंडा विष्णुकुंडिनों से सम्बन्धित प्रतीत होता है और यही नगर उनकी शक्ति का केन्द्र रहा होगा।

स्पष्ट साक्ष्यों के अभाव के कारण विष्णुकुंडिन शासकों का वशानुक्रम एवं तिथिक्रम निर्धारित करना बहुत कठिन है। अतएव यहां प्रमुख मतों को उद्धृत करने के अतिरिक्त केवल उन्हीं नृपतियों के राज्यकाल का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिनके विषय में विद्वानों में अपेक्षाकृत अधिक सहमति है।

माधववर्मन प्रथम—माधववर्मन प्रथम इस राजवंश का सर्वाधिक महान शासक था। उसके राज्यकाल के अभिलेखों में उसे 11 अश्वमेध तथा 1,000 अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न करने वाला, त्रिवर्गनगर के अंतःपुर की स्त्रियों को अनुरंजित करने वाला और हिरण्यगर्भप्रसूत कहा गया है। बाद के अभिलेखों में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसे उपर्युक्त यज्ञों के अतिरिक्त बहुसुवर्ण, पौन्डरीक, पुरुषमेध, वाजपेय, 16 राजसूयप्राधिराज्य तथा प्राजापत्य यज्ञ सम्पन्न करने का श्रेय दिया गया है। इस संदर्भ में यह भी बतलाया गया है कि इन यज्ञों के पुण्य से उसने **परमेष्ठि** (सार्वभौम) पद प्राप्त किया था।

आर० सुब्रमण्यम के अनुसार माधववर्मन ने सम्भवतः शालंकायनों को कृष्णा नदी के दक्षिण में खदेड़ कर उनकी राजधानी वेंगी पर अधिकार कर लिया और गुंटूर ज़िले में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। एम० रामाराव का अनुमान है कि पल्लव शासक सिंहवर्मन द्वितीय ने वेंगोराष्ट्र (शायद कृष्णा नदी के उत्तरी तट पर स्थित कोई भू-भाग) तथा कर्मराष्ट्र पर अधिकार कर लिया था जिससे आनन्दों तथा शालंकायनों की शक्ति को भारी क्षति पहुंची। आनन्द वंशीय कन्दर को धान्यकटक के युद्ध का विजेता और आन्ध्र देश की स्त्रियों के वैधव्य का कारण, बतलाया गया है। उसने 'त्रिकूट पर्वत के स्वामी' की उपाधि भी धारण की थी। कन्दर ने यह सामरिक सफलता विष्णुकुंडिनों के विरुद्ध प्राप्त की होगी जो उपर्युक्त विरुद का प्रयोग करते थे। आनन्द शासक की इन गति-विधियों से उत्तेजित होकर माधववर्मन ने उसके विरुद्ध अभियान किया होगा और इसी आक्रमण के सिलसिले में वह संभवतः बेलपुर (गुंटूर ज़िले में) उपस्थित था।

पूर्व में माधववर्मन गोदावरी नदी को पारकर किसी शत्रु के विरुद्ध बढ़ा था जिसके नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। उस समय दक्षिण कलिंग में दुर्जय वंश (रामकाश्यप गोत्रीय) का शासन था जिसकी राजधानी पिष्ठपुर थी। माधववर्मन ने उपर्युक्त अभियान सम्भवतः दुर्जय शासक के विरुद्ध किया था। एम० रामाराव का अनुमान है कि उसने वाकाटक राज्य को भी आक्रान्त किया था। 554 ई० के हड़हा अभिलेख में मौखरि ईशानवर्मन ने **आन्ध्राधिपति** पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। रामाराव का यह भी सुझाव है कि विष्णुकुंडिनों की वर्धमान शक्ति के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से वाकाटकों तथा मौखरियों ने मिलकर माधववर्मन के राज्य पर असफल आक्रमण किया होगा, जिसका प्रतिशोध लेने के लिए इस विष्णुकुंडिन शासक ने उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में हमले किए। परन्तु विष्णुकुंडिन शासकों के तिथिक्रम की अनिश्चतता तथा स्पष्ट साक्ष्यों के अभाव के कारण इन मतों में से कोई भी बहुमान्य नहीं है।

माधववर्मन ने वत्सगुल्म की एक वाकाटक राजकुमारी के साथ

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवाह किया। उसने जनाश्रय का विरुद धारण किया जिसके आधार पर कुछ विद्वानों ने उसे छन्द-शास्त्र के ग्रन्थ जनाश्रयीछन्दोविचिति का रचयिता माना है।

माधववर्मन द्वितीय–माधववर्मन प्रथम के पुत्र देववर्मन की मृत्यु उसके जीवन काल में ही हो गई थी। अतः माधववर्मन प्रथम के उपरान्त उसके पौत्र माधववर्मन द्वितीय को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसका राज्यकाल काफी घटना पूर्ण रहा। उसके शासनकाल के अभिलेखों में उसे त्रिकूटमलयाधिपति, अमरपुर[1] का निवासी तथा पूर्वी, पश्चिमी एवं दक्षिणी समुद्र से घिरी पृथ्वी का अधिपति कहा गया है। उत्तर में नर्मदा नदी तक का समस्त भू-भाग उसके अधीन था।

आर० सुब्रमण्यम के अनुसार उसके राज्यकाल में विष्णुकुंडिन राज्य की सीमाओं का अधिक विस्तार नहीं हुआ और वेंगी क्षेत्र में शालंकायनों का प्रभुत्व बना रहा। परन्तु एस० संकरनारायनन की अवधारणा है कि माधववर्मन ने शालंकायनों की शक्ति को नष्ट करने के उपरान्त पिष्टपुर तथा श्रीकाकुलम् पर अधिकार कर लिया और पल्लवों को पराजित कर गुंटूर ज़िले में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वत्सगुल्म शाखा का वाकाटक शासक देवसेन माधववर्मन द्वितीय का समकालीन था। अजंता अभिलेख के अनुसार देवसेन विलासी एवं उदासीन प्रवृत्ति का राजा था। उसकी दुर्बलताओं का लाभ उठाकर माधववर्मन ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी और अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किए। वाकाटकों को पराजित करने के बाद उसने आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी नदी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। कदम्बों तथा राष्ट्रकूटों के साथ उसके मित्रता पूर्ण सम्बन्ध थे।

माधववर्मन द्वितीय के तीन पुत्र थे–

देववर्मन, विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम तथा मन्च्यण्णभट्टारक। इनमें से केवल अंतिम नाम में तेलुगु प्रभाव है। विष्णुकुंडिन शासकों के अभिलेखों में वर्णित वंशानुक्रम में मन्च्यण्ण भट्टारक को नहीं शामिल किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि उसने या तो राज्य ही नहीं किया अथवा कभी स्वतंत्रत शासक नहीं हो सका था।

---

1. बी० वी० कृष्णराव ने अमरपुर का समीकरण विनुकोंडा से किया है जो समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि किसी भी साक्ष्य में विनुकोंडा को अमरपुर नहीं कहा गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

देववर्मन–ईपुर ताम्रपत्रों में माधववर्मन द्वितीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी देववर्मन को महान विजेता तथा क्षत्रियों को पराजित करने वाला कहा गया है। परन्तु उसे महाराज के स्थान पर केवल श्री की उपाधि दी गई है। इस से अनुमान किया गया है कि उसने माधववर्मन द्वितीय के सामरिक अभियानों में भाग लेकर अपने शौर्य का प्रदर्शन किया होगा और स्वतंत्रत रूप से सम्भवतः कभी शासन नहीं किया।

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम–माधववर्मन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र विक्रमेन्द्र-वर्मन प्रथम (विक्रमेन्द्र भट्टारक) राजा हुआ। उसके राज्यकाल का कोई अभिलेख नहीं मिला है। इसलिए उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों से ही उसके विषय में सूचना प्राप्त होती है। चिक्कुल्ल तथा रामतीर्थ अभिलेखों में उसे कोई राजकीय उपाधि नहीं दी गई है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उसने भी सम्भवतः स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य नहीं किया। किन्तु तुम्मलगुडेम तथा केन्दुपल्लेम अभिलेखों में विक्रमेन्द्रवर्मन के लिए प्रयुक्त महाराज की उपाधि से इस मत का खंडन हो जाता है।

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम को इन्द्र के समान वीर एवं वैभवशाली बतलाया गया है। समस्त सामन्त शासक उसकी चरण-वन्दना करते थे (प्रतापोपनतसकल-सामन्त मुकुटमन्जरितचरणयुगल)। उसने वाकाटक वंशीय राजकुमारी के साथ विवाह किया। इसीलिए उसे उभयवंशालंकार (विष्णुकुंडिन तथा वाकाटक राजवंशों का आभूषण) कहा गया है। एम० रामाराव के अनुसार उसने आनन्दों तथा शालंकायनों पर विजय प्राप्त की और पल्लवों को पराजित कर उनसे कर्मराष्ट्र अपहृत कर लिया था। विक्रमेन्द्रवर्मन को महाकवि की उपाधि दी गई है, यद्यपि अभी तक उसकी कोई काव्य-रचना नहीं प्राप्त हुई है। यह उपाधि हमें समुद्रगुप्त द्वारा धारण किए गए कविराज के विरुद का स्मरण दिलाती है। विक्रमेन्द्रवर्मन को परमसौगत (बुद्ध का परम भक्त) तथा श्रीपर्वत-स्वामीपादानुध्यात (श्रीपर्वतस्वामी का उपासक) भी कहा गया है।

इन्द्रभट्टारक–विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र इन्द्र-भटटारक राजा हुआ। शासन के प्रारम्भ में उसे गृह-युद्ध का सामना करना पड़ा। परन्तु उसने अपने विद्रोहियों का दमन करने में सफलता प्राप्त की। उसे भृकुटी-भंग मात्र से अपने सम्बन्धियों को तितर-बितर तथा नष्ट करने वाला कहा गया है। इस विवरण में सम्भवतः इन्द्रभट्टारक तथा माधववर्मन द्वितीय के बीच हुए गृह-युद्ध का संकेत है। इन्द्रभट्टारक को सहस्त्रों

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

युद्धों का विजेता भी बतलाया गया है। इस कथन के आधार पर अधिक से अधिक यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह शक्तिशाली शासक था और उसने कुछ महत्वपूर्ण सामरिक सफलताएं प्राप्त की होंगी।

इन्द्रभट्टारक के समय में पल्लव, कदम्ब, पूर्वी गंग, वाकाटक तथा मौखरि राजवंश काफी शक्तिशाली हो गए थे। उसके राज्यकाल के चिक्कुल्ल तथा रामतीर्थम अभिलेखों में उसे अनेक **चतुर्दन्तसमरशतसहस्रसंघट्ट-विजयी** कहा गया है। आर० सुब्रमण्यम के अनुसार यह इन्द्रभट्टारक की कलिंग-विजय का वर्णन है, क्योंकि चतुर्दन्त इन्द्र के वाहन ऐरावत का विरुद है जिसे पूर्व दिशा का हाथी माना गया है। इसके अतिरिक्त कलिंग राज्य उत्तम हाथियों के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस अभियान में सम्भवतः दुर्जय वंशीय शासक ने भी उसकी सहायता की थी। परन्तु वी० वी० मिराशी की अवधारणा है कि चतुर्दन्त हाथियों से हुए युद्ध का उपर्युक्त विवरण पारम्परिक है। इससे मिलता-जुलता वर्णन सेन्द्रक वंशीय शासकों के अभिलेखों में भी मिलता है। अतएव इसे अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।[1] तथ्य जो भी रहा हो, इन्द्रभट्टारक की कलिंग-विजय का स्थाई प्रभाव नहीं रहा और कुछ ही समय के उपरान्त पूर्वी गंगों ने विष्णुकुंडिन राज्य पर आक्रमण कर दिया। गंग शासक पृथ्वीमूल के गोदावरी अभिलेख के अनुसार मित्रवर्मन का पुत्र एवं अनेक युद्धों का विजेता इन्द्र उन सभी शासकों से मिलकर इन्द्रभट्टारक से लड़ा था जो उसे (इन्द्रभट्टारक को) पराजित करने के लिए कटिबद्ध थे। कीलहार्न तथा डुब्रील ने इन्द्रभट्टारक का समीकरण विष्णुकुंडिन शासक से किया है जिसे वी० वी० मिराशी ने स्वीकार किया है। फ्लीट ने उसकी पहचान पूर्वी चालुक्य वंशीय इन्द्रभट्टारकवर्मन से की है और एम० रामाराव ने पूर्वी गंग शासक इन्द्रवर्मन प्रथम से। इनमें से कोई मत बहुमान्य नहीं है। इन्द्रभट्टारक ने वाकाटकों की राजनीति में भी हस्तक्षेप किया जिसके परिणामस्वरूप उसका नल वंशीय शासक से युद्ध हुआ और इन्द्रभट्टारक ने उसे विदर्भ क्षेत्र से खदेड़ दिया।

एक महान विजेता के अतिरिक्त इन्द्रभट्टारक वैदिक धर्म का निष्ठावान अनुयाई, शिव का भक्त (परममाहेश्वर) एवं ब्राह्मणों में अनुरक्त (परमब्रह्मण्य) था। उसने घटिका नाम के विद्या-संस्थानों को काफी संरक्षण

---

1. CII, Vol. IV, Part I, pp. 112, 119; EI, Vol. XXII, p. 95.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रदान किया, भूमि, गायों तथा स्वर्ण आदि के दान दिए और कम से कम 37 वर्ष तक शासन किया।

माधववर्मन तृतीय—देववर्मन का पुत्र माधववर्मन तृतीय विष्णुकुंडिन राजवंश का अंतिम महत्वपूर्ण शासक था। उसके शासन के 37 वें वर्ष के ईपुर-ताम्रपत्रों में उसे संपूर्ण महीमंडल का शासक, त्रिवर्गनगर की युवतियों के हृदय को आनन्दित करने वाला, अपने बाहुबल से समस्त सामन्तों को जीतने वाला, शक्ति, विनय एवं नय आदि गुणों से युक्त, हिरण्यगर्भप्रसूत, 1,000 अग्निष्टोम यज्ञ संपन्न करने वाला तथा अश्वमेध यज्ञों के अपभृत-स्नान से संसार के पापों को नष्ट करने वाला बतलाया गया है। पोलमुरु अभिलेख में उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त उसे **दशशतसकलधरणीतलनरपति** तथा **जनाश्रय** के विरुद भी दिए गए हैं और सभी प्राणियों का रक्षक बतलाया गया है। एम०एस० शर्मा तथा आर० सुब्रमण्यम के अनुसार दशशतसकलधरणीतल का प्रयोग वेंगी राज्य के लिए हुआ है।

एस० संकरनारायनन के अनुसार माधववर्मन तृतीय द्वारा धारण किए गए विकूटमलयाधिपति के विरुद से संकेत मिलता है कि वह अपने पितामह के सेनापति या गवर्नर की हैसियत से वाकाटकों की सहायता करने गया होगा और उसकी मलय-विजय संभवतः इसी अभियान से, अथवा वेंगी के आक्रमण से सम्बन्धित थी।

माधववर्मन तृतीय के राज्यकाल में पश्चिम में वातापी के चालुक्यों और दक्षिण में पल्लवों के अतिरिक्त, कलिंग के गंग तथा उत्तर-पश्चिम के नल वंशीय शासक काफी शक्तिशाली हो गए थे। शासन के उत्तरार्ध में माधववर्मन ने पूर्वी गंगों पर आक्रमण किया।[1] ईपुर ताम्रपत्र उसके स्कन्धावार से प्रसारित हुए थे और पोलमुरु ताम्रपत्र उस समय जारी किए गए जब वह अपने शासन के 48 वें वर्ष में पूर्वी राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से गोदावरी नदी को पार कर रहा था। उपर्युक्त अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि राज्यकाल के 35वें तथा 48वें वर्षों के बीच के अन्तराल में वह युद्धों में व्यस्त रहा था। इन अभिलेखों में उसे त्रिवर्गनगर **त्रिवर्गनगरभवनागतपरमयुवतीहृदयनन्दन** भी कहा गया है। इस विवरण के अर्थ के विषय में मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार माधववर्मन ने त्रिवर्गनगर की राजकुमारियों के साथ विवाह किया था और

1. माधववर्मन तथा पूर्वी गंगों के बीच हुए संघर्ष का संकेत बाद के कुछ तमिल ग्रंथों में भी मिलता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ के अनुसार उसने इस नगर को अपनी राजधानी बनाया। त्रिवर्गनगर का समीकरण कलचुरि शासकों की राजधानी तेवर से किया गया है।

बेजवाड़ा के मलयेश्वर मंदिर पर अंकित शक संवत् 514 के एक अभिलेख में माधववर्मन नामक शासक का उल्लेख हुआ है जिसके पुत्र ने भिक्षा मांगने वाली एक महिला के लड़के का वध कर दिया था। इस जघन्य अपराध के लिए माधववर्मन ने अपने पुत्र को मृत्यु-दंड दिया। उसकी न्याय-प्रियता से प्रसन्न होकर मलयेश्वरदेव ने माधववर्मन पर स्वर्ण की वर्षा की और उसके तथा भिक्षुणी के मृत-पुत्रों को पुनः जीवित कर दिया। इस कथानक का विवरण 15वीं शताब्दी में विरचित नचिकेतोपाख्यान नामक ग्रन्थ में अधिक विस्तार से दिया गया है। किन्तु इन साक्ष्यों में माधववर्मन के वंश का उल्लेख नहीं हुआ है। आर० सुब्रमण्यम ने उसकी पहचान माधववर्मन तृतीय से की क्योंकि उस समय बेजवाड़ा क्षेत्र पर शासन करने वाला इस नाम का अन्य कोई राजा ज्ञात नहीं है।

माधववर्मन चतुर्थ–विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय के बाद उसका चचेरा भाई माधववर्मन चतुर्थ राजा हुआ। उसने शीघ्र ही अपने शत्रुओं को पराजित कर विष्णुकुंडिन राजवंश की प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया और अश्वमेध तथा अन्य यज्ञ सम्पन्न किए।

माधववर्मन चतुर्थ ने इन्द्रपुर के स्थान पर त्रिवर्गनगर को राजधानी बनाया। परन्तु उसकी अन्य उपलब्धियों के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। इन्द्रभट्टारकवर्मन की मृत्यु के पश्चात् पूर्वी गंगों ने स्वतंत्रता घोषित कर दी। इसलिए 612 ई० के लगभग माधववर्मन ने कलिंग के विरुद्ध अभियान किया। इस आक्रमण के सन्दर्भ में केवल यही बतलाया गया है कि उसने 612 ई० में गोदावरी नदी को पार किया था। परन्तु इसके परिणाम आदि का विवरण नहीं दिया गया है। उसके राज्यकाल के अंत के विषय में भी कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती।

गोविन्दवर्मन–गोविन्दवर्मन नामके दो विष्णुकुंडिन शासक हुए। पोलमुरु अभिलेख के आधार पर आर० सुब्रमण्यम ने गोविन्दवर्मन को विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय का पुत्र माना है। पोलमुरु तथा ईपुर ताम्रपत्रों के अनुसार गोविन्दवर्मन कई राज्यों का विजेता तथा अत्यधिक शक्तिशाली शासक था और उसके चरणों पर अनेक राजा नत-मस्तक होते थे। उसने परमधार्मिक, परमसौगत (बुद्ध का भक्त) तथा श्रीपर्वतस्वामीपादानुध्यात (श्रीपर्वतस्वामी का उपासक) के विरुद धारण

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किए। उसने कुछ मन्दिरों तथा बौद्ध-स्मारकों का भी निर्माण कराया। वह बौद्धों, ब्राह्मणों तथा निर्धनों को उदारतापूर्वक दान देता था।

गोविन्दवर्मन के राज्यकाल में पूर्वी गंगों, चालुक्यों तथा पल्लवों की वर्धमान शक्ति ने विष्णुकुंडिन राज्य के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया था और इन शक्तियों से अपने राज्य की सुरक्षा के लिए वह निरन्तर संघर्ष करता रहा।

तुम्मलगुडेम अभिलेख में वर्णित गोविन्दवर्मन को महाराज इन्द्रवर्मन का पौत्र तथा महाराज माधववर्मन का पुत्र बतलाया गया है। यह अभिलेख गोविन्दवर्मन के शासन के 37 वें वर्ष का है। वी०वी० मिराशी ने इसे गोविन्द-वर्मन द्वितीय माना है। मिराशी की मान्यता है कि 615 ई० के लगभग गोविन्दवर्मन द्वितीय को ही सम्भवतः पुलकेशिन द्वितीय ने पराजित कर अपदस्थ कर दिया था। तुम्मलगुडेम अभिलेख में गोविन्दवर्मन की अग्रमहिषी (परमभट्टारक महादेवी) द्वारा इन्द्रपुर में निर्मित बौद्ध-विहार को दान में दिए गए दो ग्रामों का उल्लेख हुआ है।

विष्णुकुंडिन राजवंश का अन्त—के० ग्रोपालाचारी तथा डी० सी० सरकार के अनुसार वातापी के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय के आक्रमण के समय वेंगी में विष्णुकुंडिन राजवंश का शासन था। कुछ विद्वानों ने कोलार झील के तट पर हुए भीषण युद्ध में चालुक्य सेना द्वारा पराजित वेंगी के शासक का समी-करण विक्रमेन्द्रवर्मन तृतीय अथवा उसके पुत्र मन्च्यंण्णभट्टारक से किया है, परन्तु यह विचार समीचीन नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः चालुक्यों की पूर्वी दक्षिणापथ की विजय के पहले ही विष्णुकुंडिन राजवंश का विघटन हो गया था और पिष्टपुर को जीतने के उपरान्त विजय प्राप्त करता हुआ पुलकेशिन द्वितीय जब कोलार झील के निकट पहुंचा, तो पिष्टपुर के शासक तथा विष्णुकुंडिनों के सामन्त दुर्जय वंशीय पृथ्वीमहाराज ने उससे युद्ध किया। इस संघर्ष के सन्दर्भ में विष्णुकुंडिन शासक का उल्लेख नहीं हुआ है। बाद के कुछ पूर्वी चालुक्यों के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि पृथ्वीमहाराज अथवा उसके उत्तराधिकारी के राज्यकाल में पुलकेशिन द्वितीय के छोटे भाई कुब्जविष्णुवर्धन ने वेंगी पर अधिकार कर लिया था। इस राजवंश के अन्त की तिथि के विषय में भी विद्वानों में मत-भिन्नता है। एन० वेंकटरमनैय्या की मान्यता है कि विष्णुकुंडिनों के पतन के पश्चात् वेंगी में दुर्जय वंश के शासको ने कुछ समय तक राज्य किया। इसलिए विष्णुकुंडिन राजवंश का अन्त 600 ई० के आस-पास हुआ होगा। एन० सुब्रमण्यम, टी०के०

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रवीन्द्रन तथा पी० एन० चोपड़ा के अनुसार 621 ई० के लगभग विष्णुवर्धन वेंगी में स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था। कुछ विद्वानों ने उसके राज्यकाल का प्रारम्भ 615 ई० में और कुछ ने 624 ई० में माना है। परन्तु कोप्परम अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर चालुक्यों द्वारा वेंगी की विजय की तिथि 631 ई० के आस-पास रखी गयी है। चूंकि 634-35 ई० तक आन्ध्र देश में पूर्वी चालुक्य राज्य की स्थापना हो चुकी थी, इसलिए इस तिथि के पहले ही विष्णुकुंडिन राजवंश का पतन हुआ होगा।

विष्णुकुंडिन राजाओं का वंशानुक्रम तथा तिथिक्रम

एच० के० शास्त्री के अनुसार–

1. माधववर्मन प्रथम
2. देववर्मन
3. माधववर्मन द्वितीय
4. गोविन्दवर्मन प्रथम
5. माधववर्मन तृतीय
6. विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम
7. इन्द्रभट्टारकवर्मन
8. विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय
9. गोविन्दवर्मन द्वितीय विक्रमाश्रय
10. माधववर्मन चतुर्थ जनाश्रय

के० वी० लक्ष्मणराव के अनुसार–

1. माधववर्मन प्रथम (357-382 ई०)
2. देववर्मन (382-407 ई०)
3. माधववर्मन द्वितीय (407-444 ई०)
4. विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (444-469 ई०)
5. इन्द्रभट्टारकवर्मन (469-496 ई०)
6. विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (496-521 ई०)
7. गोविन्दवर्मन (521-546 ई०)
8. माधववर्मन तृतीय (546-610 ई०)
9. मन्च्यंण्णभट्टारक (610 ई०)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डी० सी० सरकार के अनुसार–

विक्रमहेन्द्रवर्मन (लगभग 500-520 ई०)
(विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम)
|
गोविन्दवर्मन विक्रमाश्रय (लगभग 520-535 ई०)
|
माधववर्मन प्रथम जनाश्रय 535-585 ई०)

देववर्मन | विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (615-625 ई०) | मन्च्यंण्णभट्टारक
माधववर्मन द्वितीय (585-615 ई०) |
इन्द्रभट्टारकवर्मन (625 655 ई०)
|
विक्रमेन्द्रवर्मन तृतीय (655-670 ई०)

वी० एस० रामचन्द्रमूर्ति, आर० एस० पंचमुखी तथा के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार

माधववर्मन प्रथम (लगभग 440-460 ई०)
|
देववर्मन | विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (460-480 ई०)
|
माधववर्मन द्वितीय | इन्द्रभट्टारकवर्मन (480-515 ई०)
|
विक्रमेन्द्र वर्मन द्वितीय (515-535 ई०)
|
गोविन्दवर्मन विक्रमाश्रय (535-556 ई०)
|
माधववर्मन तृतीय जनाश्रय (556-616 ई०)
|
मन्च्यंण्णभट्टारक

एम० एस० शर्मा के अनुसार–

माधववर्मन प्रथम (400 ई०)
|
देववर्मन (400-425 ई०)
|
माधववर्मन द्वितीय (425-462 ई०)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गोविन्दवर्मन (462-487 ई०)

माधववर्मन तृतीय (487-535 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (535-560 ई०)

इन्द्रभट्टारकवर्मन (560 587 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (587-612 ई०)

आर० सुब्बाराव के अनुसार–

माधववर्मन प्रथम (लगभग 400 ई०)

देववर्मन

माधववर्मन द्वितीय

गोविन्दवर्मन

माधववर्मन तृतीय

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम

इन्द्रभट्टारक या इन्द्रवर्मन लगभग (525-555 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय

के० गोपालाचारी के अनुसार–

माधववर्मन (553-593 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (593-618 ई०)

इन्द्रभट्टारक (618-643 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (643-668 ई०)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एम० रामाराव के अनुसार–

विक्रमहेन्द्रवर्मन (475-500 ई०)
|
गोविन्दवर्मन (500-525 ई०)
|
माधववर्मन प्रथम (525-575 ई०)
|
इन्द्रभट्टारकवर्मन (575-602 ई०)
|
विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (602-615 ई०)

एस० संकरनारायनन के अनुसार–

इन्द्रवर्मन (लगभग 375-400 ई०)
|
माधववर्मन प्रथम (400-422 ई०)
|
गोविन्दवर्मन प्रथम (422-462 ई०)
|
माधववर्मन (462–502 ई०)
|

देववर्मन | 5 विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (502-527 ई०) | मन्च्यंण्णभट्टारक | (पुत्र या पौत्र) गुणभर्तृ

6-इन्द्रभट्टारकवर्मन सत्याश्रय (527-555 ई०) | गोविन्दवर्मन द्वितीय विक्रमाश्रय

विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (555-572 ई०) | (एक अज्ञात नाम वाला पुत्र ?)

8-माधववर्मन चतुर्थ (564-612 ई०)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बी० वी० कृष्णराव के अनुसार–

माधववर्मन (440-460 ई०)

देववर्मन

विक्रमेन्द्रवर्मन प्रथम (460-480 ई०)

इन्द्रवर्मन भट्टारक (480-515 ई०)

विक्रमेन्द्रवर्मन द्वितीय (515-535 ई०)

गोविन्दवर्मन (535-556 ई०)

माधववर्मन तृतीय (556-616 ई०)

मन्च्यंण्ण भट्टारक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

8

वेंगी का चालुक्य राजवंश

आन्ध्र-सातवाहनों के पतन तथा चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय (लगभग 609, 610-642 ई०) की पूर्वी दक्षिणापथ की विजय के बीच के अन्तराल में आन्ध्र राज्य में मुख्यत: राजनैतिक विघटन रहा। इस काल में वहां इक्ष्वाकु, वृहत्-फलायन, आनन्द, शालंकायन तथा विष्णुकुंडिन राजवंशों ने क्रमश: शासन किया। किन्तु उपर्युक्त राजवंशों में से कोई भी शक्तिशाली राज्य का निर्माण नहीं कर सका। अन्त में पुलकेशिन द्वितीय ने आन्ध्र राज्य को जीतकर अपने छोटे भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को वहां का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया। यही विष्णुवर्धन बाद में वेंगी के पूर्वी चालुक्य राज्य का संस्थापक हुआ।

वेंगी राज्य मुख्यत: कृष्णा एवं गोदावरी नदियों के बीच के क्षेत्र में विस्तृत था। इसकी राजधानी वेंगी (वेंगीपुर) थी जिसका समीकरण आन्ध्र राज्य के गोदावरी ज़िले में एल्लोर से लगभग 11 किलो मीटर की दूरी पर स्थित वर्तमान पेडुवेगि नामक स्थान से किया गया है। पूर्वी चालुक्यों की शक्ति की पराकाष्ठा के दिनों में उनके राज्य का विस्तार पूर्व में उड़ीसा के गंजाम ज़िले में महेन्द्र-गिरि तक, पश्चिम में आन्ध्र प्रदेश के नेल्लोर ज़िले में मन्नेरु नदी तक, उत्तर में भूतपूर्व हैदराबाद राज्य, बस्तर तथा मध्य भारत की सीमाओं तक, और दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक था। इस प्रकार मोटे तौर पर इसमें उड़ीसा राज्य के आधुनिक गंजाम ज़िले का दक्षिणी भाग तथा आन्ध्र राज्य के विशाखा-पटनम, गोदावरी, कृष्णा, गुंटूर एवं नेल्लोर ज़िले शामिल थे।

कुब्ज विष्णुवर्धन—प्रारम्भ में विष्णुवर्धन को पुलकेशन द्वितीय ने महाराष्ट्र का गवर्नर नियुक्त किया था। 617–18 ई० के सतारा अभिलेख में उसने अपने को युवराज तथा पुलकेशिन द्वितीय का प्रिय-भ्राता कहा है। इस अभिलेख में यह भी वर्णित है कि विष्णुवर्धन ने अलन्दतीर्थ ग्राम कुछ ब्राह्मणों को दान में दिया था। अलन्दतीर्थ का समीकरण सतारा से लगभग 55 किलो मीटर उत्तर में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow .

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भीमरथी नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित अलुन्द से किया गया है। दंडी के अवन्तिसुन्दरीकथासार में वर्णित एक अनुश्रुति में भी विष्णुवर्धन को नासिक का राजा कहा गया है और बतलाया गया है कि वह पल्लव शासक (सिंहविष्णु या नरसिंहवर्मन प्रथम) का समकालीन था। उपर्युक्त साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि उत्तरी महाराष्ट्र का सतारा से नासिक तक का सम्पूर्ण भू-भाग उसके अधीन था।

634-35 ई० के पहले किसी समय पुलकेशिन द्वितीय की पूर्वी दक्षिणापथ की दिग्विजय में, उसके साथ विष्णुवर्धन भी गया था। कलिंग (उड़ीसा) तथा आन्ध्र में उस समय विष्णुकुंडिन राजवंश शासन कर रहा था। विष्णुवर्धन ने पहले कलिंग पर विजय प्राप्त की। इसके उपरान्त कुनाल झील के निकट उसका विष्णुकुंडिन शासक[1] के साथ भयंकर युद्ध हुआ जिसमें विष्णुवर्धन की विजय हुई। उसकी इस सफलता के कारण ही सम्भवतः पुलकेशिन ने उसे वेंगी का शासक बना दिया। वह महत्वाकांक्षी एवं योग्य राजा था और उसने अपने राज्य के निकटवर्ती कुछ अन्य प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। उसने बुद्धवर्मन नामक अपने शूद्र जातीय (चतुर्थाभिजन) सेनापति को गिरिपश्चिम प्रदेश (गुंटूर ज़िला) का शासक नियुक्त किया। उसके दूसरे सेनापति कालकम्प ने दद्दर नाम के राजा को पराजित कर मार डाला। दद्दर का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है।

कुछ समय तक विष्णुवर्धन पुलकेशिन द्वितीय के अधीनस्थ के रूप में शासन करता रहा। बाद में उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ी और उसने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। विष्णुवर्धन के राज्यकाल के तिम्मरपुरम तथा चिपुरुपल्लि अभिलेखों में उसके द्वारा स्वतन्त्र शासक के रूप में दिए गए भूमि दानों के विवरण हैं। इनमें से प्रथम अभिलेख तिथि रहित तथा दूसरा उसके शासन के 18वें वर्ष का है। जब पुलकेशिन द्वितीय पल्लव शासक नरसिंहवर्मन प्रथम से संघर्षों में व्यस्त था और पल्लवों द्वारा कई युद्धों में परास्त हुआ था, सम्भवतः उसी अन्तराल में विष्णुवर्धन ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी।

---

1. डी०सी० सरकार ने पराजित विष्णुकुंडिन शासक का समीकरण विक्रमेन्द्रवर्मन तृतीय से किया है और एस० संकरनारायनन ने उसे विक्रमेन्द्रवर्मन चतुर्थ का पुत्र माना है। परन्तु विष्णुकुंडिन शासकों के तिथिक्रम की अनिश्चितता के कारण उक्त राजा की पहचान करना कठिन है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विष्णुवर्धन के अभिलेखों में उसकी विजयों एवं अन्य उपलब्धियों का अधिक ब्योरा नहीं मिलता है। उसके अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों, उनमें वर्णित क्षेत्रों की भौगोलिक सीमाओं तथा उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि उसके राज्य का विस्तार उत्तर-पूर्व में विशाखापटनम जिले तक और दक्षिण-पश्चिम में नेल्लोर जिले तक हो गया था। उसके एक चांदी के सिक्के पर सिंह, त्रिशूल तथा दीपक की आकृतियां अंकित हैं[1]।

उसने मकरध्वज, विषमसिद्धि[2] तथा बिट्टरस[3] नामक उपाधियां धारण कीं। डी० सी० गांगुली के अनुसार संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भारवि को उसने संरक्षण प्रदान किया। उसके नाम के साथ कुब्ज शब्द जोड़ा गया है। इसके शाब्दिक अर्थ के आधार पर क्या यह निष्कर्ष निकालना समीचीन है कि वह कुबड़ा था? विष्णुवर्धन की रानी अयणमहादेवी ने बेजवाड़ा के नेडुविवमदि जैन-मंदिर को दान दिया था। चिपुरुपल्लि अभिलेख उसके राज्यकाल के 18वें वर्ष का है। इससे प्रमाणित होता है कि उसने 18 वर्ष तक राज्य किया। परन्तु उपर्युक्त अभिलेख में अंकित तिथि को विभिन्न विद्वानों ने 632, 641 तथा 656 ई० माना है। इस तिथि के आधार पर ही विष्णुवर्धन के राज्य के समारम्भ की तिथि निर्धारित होगी। दिनेशचन्द्र सरकार की मान्यता है कि चिपुरुपल्लि अभिलेख में उल्लिखित 18वां वर्ष विष्णुवर्धन के युवराज के रूप में अभिषिक्त होने के समय से मानना चाहिए और 617-18 ई० के कुछ पहले वह युवराज चुन लिया गया था। एन० सुब्रमण्यम, पी० एन० चोपड़ा तथा टी० के० रवीन्द्रन ने उसके स्वतन्त्र शासन का प्रारम्भ 621 ई० के लगभग माना है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने 625 ई० में स्वतन्त्रता घोषित की होगी। के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने उसका राज्यकाल 625 से 641 ई० तक और कुछ विद्वानों ने 633-656 ई० तक माना है।

629 ई० के लगभग चीनी यात्री ह्वेनसांग ने आन्ध्र राज्य का भ्रमण किया था। उसने लिखा है कि उस समय वेंगी राज्य में 20 बौद्ध-विहार थे जिनमें 3 000 से भी अधिक बौद्ध-भिक्षु निवास करते थे।

---

1. History of South India, Vol I, 1980, p. 164.
2. विषमसिद्धि का शाब्दिक अर्थ 'विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करने वाला' है।
3. बिट्टरस संस्कृत शब्द विष्णुराज का कन्नड़ भाषा में बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जयसिंह प्रथम–विष्णुवर्धन प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र जयसिंह प्रथम राजा हुआ। उसके राज्यकाल के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने अनेक सामन्त शासकों को पराजित किया था। परन्तु इन विजयों का स्पष्ट ब्योरा नहीं दिया गया है। जयसिंह द्वारा पराजित किसी भी शासक अथवा राज्य के नाम आदि का उल्लेख नहीं हुआ है और न हीं उसकी किसी उपलब्धि का वर्णन है। जयसिंह के राज्यकाल के अभिलेखों में उसके द्वारा दिए गए भूमि दानों के ही विवरण हैं। उसके कुछ अभिलेख वेंगीपुर (पेड्डवेगि) में पाए गए हैं।

जयसिंह ने वातापी के चालुक्यों को पल्लवों के विरुद्ध संघर्ष में सम्भवतः कोई सहयोग नहीं दिया। पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् वातापी में व्याप्त अव्यवस्था एवं अराजकता के दौरान उसने मुख्य राजवंश से अपना सम्बन्ध पूर्ण-रूपेण समाप्त कर दिया होगा। इसके पश्चात् इन दोनों चालुक्य राजवंशों (वातापी तथा वेंगी) के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

जयसिंह ने महाराज, पृथ्वीवल्लभ, पृथ्वीजयसिंह तथा सर्वसिद्धि के विरुद धारण किए। वह शिव का भक्त था। उसने असनपुर के एक घटिका (उच्च शिक्षा संस्था) से अपना एक शासनादेश जारी किया था। भीम प्रथम के बेजवाड़ा अभिलेख तथा कई अन्य चालुक्य अभिलेखों के अनुसार उसने 33 वर्ष तक शासन किया। परन्तु अम्म द्वितीय के ब्रिटिश म्यूजियम अभिलेख में उसका राज्यकाल 30 वर्ष बतलाया गया है। तीन वर्ष के इस अन्तर के कारण के विषय में दिनेशचन्द्र सरकार ने सुझाव दिया है कि जयसिंह के राज्यकाल के के अन्तिम तीन वर्षों में उसका छोटा भाई इन्द्रवर्मन ही मुख्यतः प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन कर रहा था। कुछ विद्वानों के अनुसार जयसिंह ने 633 से 663 ई० तक राज्य किया और कुछ के अनुसार 641 से 673 ई० तक।

इन्द्रवर्मन–जयसिंह प्रथम के बाद उसका भाई इन्द्रवर्मन वेंगी के राज-सिंहासन पर बैठा। उसे इन्द्रभट्टारक, इन्द्रराज तथा इन्दुराज भी कहा गया है। उसने महाराज के अतिरिक्त सिंहविक्रम तथा त्यागधेनु की उपाधियां धारण कीं। अन्तिम दो विरुद क्रमशः उसकी वीरता एवं दानशीलता के प्रतीक हैं। परन्तु उसकी किसी विजय अथवा अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि का विवरण नहीं मिलता। कोडिवर्मन नामक उसके एक सामन्त का उल्लेख हुआ है। जयसिंह के राज्यकाल के अन्तिम भाग में इन्द्रवर्मन प्रशासन व्यवस्था से सक्रिय-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रूप से सम्बद्ध रहा। परन्तु स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन की बागडोर सम्भालने के समय तक वह वृद्ध हो चुका था और केवल एक सप्ताह के शासन के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

विष्णुवर्धन द्वितीय–इन्द्रवर्मन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र[1] विष्णुवर्धन द्वितीय था। उसने विषमसिद्धि, मकरध्वज तथा प्रलयादित्य की उपाधियां धारण कीं और नौ वर्ष तक शासन किया। परन्तु उसके राज्यकाल के अभिलेखों में उसके द्वारा दिए गए भूमि दानों के अतिरिक्त अन्य किसी घटना का उल्लेख नहीं हुआ है।

विष्णुवर्धन द्वितीय के उत्तराधिकारी–विष्णुवर्धन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र मंगियुराज 672 ई० में राजा हुआ। उसने 25 वर्ष तक शासन किया। परन्तु उसका राज्यकाल घटनापूर्ण नहीं रहा और उसके अभिलेखों में उसकी किसी सामरिक उपलब्धि आदि का वर्णन नही है। विष्णुवर्धन द्वितीय ने सर्वलोकाश्रय तथा विजयसिद्धि के विरुद धारण किए। डी० सी० गांगुली के अनुसार उसके शासन का अन्त 696 ई०[2] में हुआ।

मंगियुवराज के कई पुत्र थे और उसकी मृत्यु के पश्चात् सम्भवतः उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ जिसमें जयसिंह द्वितीय विजयी रहा और उसने वेंगी का राजसिंहासन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। जयसिंह द्वितीय के भाई विजयादित्य ने मध्यकलिंग[3] पर अधिकार कर लिया जिसकी राजधानी रलमंचि विशाखापटनम जिले में स्थित आधुनिक येल्लमंचिलि थी। जयसिंह द्वितीय ने भी सर्वसिद्धि एवं सर्वलोकाश्रय की उपाधियां धारण की और 662 से 709 ई० तक शासन किया उसके राज्यकाल में उसके भाई विजयादित्य-वर्मन ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी।

---

1. विष्णुवर्धन द्वितीय के राज्यकाल के अधिकांश अभिलेखों में तथा उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में भी उसे इन्द्रवर्मन का पुत्र कहा गया है। परन्तु विष्णुवर्धन के एक अभिलेख में उसे जयसिंह प्रथम का पुत्र बतलाया गया है। इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का सुझाव है कि जयसिंह प्रथम विष्णुवर्धन को भतीजे के स्थान पर सम्भवतः पुत्रवत मानता रहा होगा।
2. के० ए० नीलकांत शास्त्री तथा एन० वेंकटरमनैय्या के अनुसार विष्णुवर्धन द्वितीय ने 682 से 706 ई० तक राज्य किया।
3. मध्यमकलिंग में मोटे तौर पर आधुनिक विशाखापटनम जिले का क्षेत्र शामिल था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार जयसिंह द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त भी सम्भवतः उसके सौतेले भाइयों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ और कोक्कलि ने वेंगी को अधिकृत कर छः महीने तक वहां शासन किया। इसके पश्चात् उसे अपने बड़े भाई विष्णुवर्धन तृतीय के समक्ष झुकना पड़ा और शायद दोनों में सन्धि हो गई जिसके परिणामस्वरूप कोक्कलि को एलमंचि के आस-पास का क्षेत्र प्राप्त हुआ।

विजयादित्य की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र महाराज कोकिलवर्मन मध्यमकलिंग का शासक हुआ। उसने 709 ई० तक राज्य किया। उसके राज्य-काल के अभिलेखों में उसके द्वारा दिए गए भूमि दानों के ही विवरण हैं। कोकिल अपने चाचा विक्रमादित्य द्वारा अपदस्थ कर दिया गया। बाद में विक्रमादित्य को भी उसके बड़े भाई विष्णुवर्धन तृतीय ने राजसिंहासन से हटा दिया।

विष्णुवर्धन तृतीय—विष्णुवर्धन तृतीय ने 709 ई० के लगभग शासन की बागडोर सम्भाली। उसने मध्यमकलिंग पर पहले ही अधिकार कर लिया था। उसके दीर्घकालीन शासन की किसी महत्वपूर्ण उपलब्धि का उल्लेख नहीं मिलता। विष्णुवर्धनतृतीय के शासन के 23वें वर्ष के एक अभिलेख में मंगियुवराज की पुत्री पृथ्वीपोणि द्वारा दिए गए दान का विवरण है। 762 ई० के दूसरे दान-पत्र में बेजवाड़ा में विष्णुवर्धन प्रथम की महारानी अय्यण महादेवी द्वारा निर्मित जैन-मन्दिर को दान में दिए गए एक ग्राम का उल्लेख है। यह दान-पत्र विष्णुवर्धन तृतीय के राज्यकाल का प्रतीत होता है। परन्तु डी० सी० गांगुली की मान्यता है कि यह मूलतः विष्णुवर्धन प्रथम के राज्यकाल में जारी किया था और विष्णुवर्धन तृतीय ने इसका नवीनीकरण कराया। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार यह भी असम्भावित नहीं है कि उपर्युक्त दान-पत्र का नवीनीकरण विष्णुवर्धन तृतीय के उत्तराधिकारी द्वारा किया गया हो।

विष्णुवर्धन के राज्यकाल के उत्तरार्ध में पृथ्वीव्याघ्र नामक एक निषाद शासक ने अश्वमेध यज्ञ करने के पश्चात् सम्भवतः पूर्वी चालुक्य राज्य के दक्षिणी भाग के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, जिनमें आधुनिक नेल्लोर जिले का कुछ भाग भी शामिल था। पृथ्वीव्याघ्र को बाद में पल्लव नन्दिवर्मन द्वितीय के सेनापति उदयचन्द्र ने पराजित कर दिया और उसके द्वारा विजित पूर्वी चालुक्य राज्य के भू-भाग को अधिकृत कर पल्लव शासक को दे दिया।

विष्णुवर्धन की पत्नी विजयमहादेवी को परिपालिका की उपाधि दी गई

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है और विष्णुवर्धन ने स्वयं विषमसिद्धि, त्रिभुवनांकुश तथा समस्तभुवनाश्रय के विरुद धारण किए। उसके राज्यकाल के अभिलेखों में मुख्यतः उसके भूमि दानों के ही विवरण हैं। यद्यपि विष्णुवर्धन 762 ई०[1] तक जीवित रहा, किन्तु 746 ई० के आस-पास उसने प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने पुत्र विजयादित्य प्रथम को दे दिया था।

विजयादित्य प्रथम—विष्णुवर्धन तृतीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी विजयादित्य प्रथम के राज्यकाल में दक्षिणापथ की राजनीति में काफी उथल-पुथल हुआ। आठवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग ने वातापी के चालुक्यों को परास्त कर उनके साम्राज्य के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूटों की वर्धमान शक्ति ने पूर्वी चालुक्यों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर दिया था। राष्ट्रकूट युवराज गोविंद द्वितीय के 769 ई० के एक अभिलेख के विवरण के आधार पर के०ए०नीलकान्त शास्त्री तथा एन०वेंकटरमनैय्या ने सुझाव दिया है कि कृष्णा एवं मूसी नदियों के संगम पर स्थित राष्ट्रकूट स्कन्धावार में वेंगी के शासक विजयादित्य ने अपनी सेना तथा राज्य आदि के साथ गोविन्द के समक्ष समर्पण किया था। सम्भवतः इन दोनों में खुला युद्ध नहीं हुआ। विजयादित्य प्रथम के विषय में कोई अन्य उल्लेखनीय सूचना नहीं मिली है।

विष्णुवर्धन चतुर्थ—विजयादित्य प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र विष्णुवर्धन चतुर्थ (विष्णुराज) वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। उसने सम्भवतः हैहय वंश की एक राजकुमारी के साथ विवाह किया, जिससे नृपरुद्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विष्णुवर्धन के राज्यारोहण के समय तक वातापी के चालुक्य राजवंश का अंत हो गया था और उसका स्थान राष्ट्रकूटों ने ले लिया। इस राजनैतिक परिवर्तन ने पूर्वी चालुक्य राज्य पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला क्योंकि उदीयमान राष्ट्रकूट चालुक्यों के प्रमुख शत्रु बन गए। 769 ई० के कुछ पहले राष्ट्रकूट कृष्ण प्रथम ने अपने पुत्र युवराज गोविन्द द्वितीय को वेंगी-मंडल पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। पराजित होकर अथवा बिना युद्ध किए ही विष्णुवर्धन चतुर्थ ने गोविन्द के समक्ष अपना राजकोष आदि समर्पित

---

1. एन० वेंकटरमनैय्या तथा के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने विष्णुवर्धन तृतीय का राज्यकाल 719 से753 ई० तक माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर उसकी अधिसत्ता स्वीकार कर ली।[1]

विष्णुवर्धन का विद्रोही भाई भीमसलुक्कि राष्ट्रकूटों से मिल गया, इसलिए उसकी स्थिति अधिक विषम हो गई। परन्तु विष्णुवर्धन राष्ट्रकूटों के प्रभुत्व से मुक्त होने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में था। कुछ समय के पश्चात् गोविन्द द्वितीय तथा उसके भाई ध्रुव प्रथम के बीच युद्ध छिड़ गया जिसमें विष्णुवर्धन ने गोविन्द का समर्थन किया। परन्तु ध्रुव ने अपने भाई को पराजित कर राष्ट्रकूट राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया और विष्णुवर्धन को अपना प्रभुत्व मानने के लिए विवश कर दिया। चालुक्य शासक ने ध्रुव के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और इस प्रकार दोनों शासकों में मित्रता हो गई। डी० सी० गांगुली के अनुसार ध्रुव की ओर से विष्णुवर्धन ने पश्चिमी गंगों से युद्ध किया था।

802 ई० के एक राष्ट्रकूट अभिलेख में बतलाया गया है कि राष्ट्रकूट राजा के पत्रवाहक के मुख से केवल एक शब्द निकलने पर वेंगी का शासक उसका सेवक बन गया[2]। इसकी पुष्टि 808 ई० के एक अन्य राष्ट्रकूट अभिलेख ने भी की है। उपर्युक्त काव्यात्मक एवं अतिरंजित विवरण में कितना सत्यांश है, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। वस्तुतः इन दोनों शासकों के पारस्परिक संघर्ष का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है।

डी० सी० गांगुली के अनुसार विष्णुवर्धन चतुर्थ ने 764 से 799 ई० तक राज्य किया और एन० वेंकटरमनय्या एवं के०ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार 772 ई० से 808 ई० तक।

विजयादित्य द्वितीय—विष्णुवर्धन चतुर्थ के पश्चात् उसका पुत्र विजयादित्य द्वितीय 799 ई० के लगभग राजा हुआ। वह वेंगी के सर्वाधिक शक्तिशाली शासकों में से एक था। शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसके छोटे भाई भीमसलुक्कि ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की सहायता से

---

1. कृष्णा तथा मूसी नदियों के संगम पर स्थित उसके (गोविन्द द्वितीय) के विजयस्कन्धावार से प्रसारित 779 ई० के अलस ताम्रपत्रों में इस विजय का इस प्रकार विवरण है—गोविन्दराजो युवराजः वेंगी-मंडले····· विजस्कन्धावारे-कोशदंडात्मभूमि-समर्पणेनानते कृष्णवर्ण्णा-मू-(सी)···· सभोगे दत्तः (EI, Vol. VI; p. 211)।
2. लेखाहार मुखोदितर्द्ध वचसायत्रा वेंगीश्वरोनित्यम किंकरवद····।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विजयादित्य को पराजित कर वेंगी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया[1]। परन्तु जब गोविन्द उत्तर भारत के युद्धों में व्यस्त हो गया तो विजयादित्य ने राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उनके साम्राज्य के कई प्रदेशों को आक्रान्त किया और भीमसलुक्कि को पराजित कर पुनः वेंगी का राज्य प्राप्त कर लिया। उसने गंगों पर भी विजय प्राप्त की, परन्तु बाद में राष्ट्रकूट शासक ने उसे परास्त कर अपने संरक्षित भीम को एक बार फिर वेंगी के राजपीठ पर प्रतिष्ठित कर दिया।

विजयादित्य अपने राज्य को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता रहा और गोविन्द तृतीय की मृत्यु ने उसे अनुकूल अवसर प्रदान किया। गोविन्द का पुत्र अमोघवर्ष प्रथम 814 ई० में राज्यारोहण के समय अल्पायु का बालक था, इसलिए गुजरात के राष्ट्रकूट शासक कर्क को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया। अमोघवर्ष के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसके विरुद्ध भयंकर विद्रोह हुए और उसे राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया गया। राष्ट्रकूट राज्य में उत्पन्न हुई इस अराजक स्थिति का विजयादित्य ने पूरा लाभ उठाया और इसी अन्तराल में अपनी शक्ति संगठित कर उसने वेंगी पर अधिकार कर लिया। विजयादित्य तृतीय के गुंटूर अभिलेख के अनुसार, विजयादित्य द्वितीय बल्लभेन्द्र (अमोघवर्ष प्रथम) के सेनानायकों से 12 वर्ष तक युद्ध करता रहा और भीमसलुक्कि को हटाकर उसने वेंगीमंडल पर अधिकार कर लिया[2]। अम्म प्रथम के राज्यकाल के एक अभिलेख में भी बतलाया गया है कि उसने 12 वर्ष तक युद्ध एवं नीति द्वारा रट्टों (राष्ट्रकूटों) तथा गंगों से 108 लड़ाइयां लड़ी थी[3]। विजयादित्य तृतीय के मसुलीपटम अभिलेख में उसे गंग राजवंश का विनाशक कहा गया है।

उपर्युक्त विवरण निःसन्देह अतिरंजित हैं, परन्तु वे विजयादित्य द्वितीय

---

1. अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्रों के अनुसार गोविन्द तृतीय ने दक्षिण कोशल, कलिंग, वेंगी तथा ओड्रक आदि राज्य जीतकर अपने सेवकों को दे दिए। इन सेवकों में भीम भी शामिल रहा होगा, जिसे वेंगी का राज्य प्राप्त हुआ।
2. द्वादसयुद्धोवल्लभेन्द्रदंडनायकैः सह भीमसालुको नाभानं स्वानुजं-निर्जित्य गृहीतवेंगीमंडलं।
3. गंगारट्टबलैः सार्धं द्वादशाब्दानहर्निशम।
भुजार्जितबलः खड्गसहायो नवविक्रमैः।
अष्टोत्तरं युद्धशतं युद्धवा····।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की राष्ट्रकूटों एवं उनके मित्र गंगों के विरुद्ध निर्णायक सफलता को प्रमाणित करते हैं। राष्ट्रकूट अभिलेखों में भी स्वीकार किया गया है कि अमोघवर्ष के राज्य-काल में राष्ट्रकूट वश की राजलक्ष्मी चालुक्यरूपी समुद्र में समा गई थी[1] और विजयी चालुक्यों ने स्तम्भनगर को तहस-नहस कर दिया था। परन्तु राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विजयादित्य की सफलता अस्थाई रही। बाद में अमोघवर्ष ने गुजरात के शासक कर्क की सहायता से चालुक्य सेना को पराजित कर अपने साम्राज्य के बाहर खदेड़ दिया और वीरनारायण विष्णु की भांति अपने राजवंश का उद्धार किया[2]। अमोघवर्ष प्रथम के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में वर्णित है कि उसने विंगवेल्लि के युद्धस्थल पर विजयादित्य को निर्णायक रूप से परास्त कर चालुक्य सेना का भीषण संहार किया और वेंगी के शासक को उसकी आराधना करनी पड़ी। डी० सी० गांगुली ने विंगवेल्लि का समीकारण नेल्लोर जिले के भिंगिनपल्लि नामक स्थान से किया है। इस पराभव के परिणामस्वरूप विजया-दित्य द्वितीय को राष्ट्रकूटों की प्रभुसत्ता स्वीकार करनी पड़ी। बाद में दोनों में मित्रता हो गई और विजयादित्य के पुत्र विष्णुवर्धन पंचम ने एक राष्ट्रकूट राजकुमारी के साथ विवाह किया।

विजयादित्य द्वितीय का किसी 'नाग' शासक से भी युद्ध हुआ था जिसके समीकरण के विषय में मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह मध्य प्रदेश के बस्तर राज्य का नाग वंशीय शासक रहा होगा और कुछ ने उसे प्रतीहार नागभट द्वितीय माना है[3]। विजयादित्य ने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, चालुक्यार्जुन, त्रिभुवनांकुश तथा नरेन्द्रमृगराज नामक उपाधियां धारण कीं। वह शिव का भक्त था। अम्म प्रथम के अभिलेख के अनुसार 108 युद्धों में विजयादित्य ने (नर-संहार एवं तोड़-फोड़ आदि) जो पाप किए थे, उनके शमन के लिये उसने नरेन्द्रेश्वर नाम के 108 शिव-मंदिरों का निर्माण कराया।

---

1. निमग्नां यश्चुलुक्याब्धौ रट्टराजश्रियंपुनः (इन्द्र तृतीय का नवसारी अभिलेख)।
2. पृथ्वीमिवोद्धरन् धीरोवीरनारायणो भवत (इन्द्र तृतीय का नवसारी अभिलेख)।
3. मिहिर भोज की ग्वालियर प्रशस्ति के अनुसार नागभट द्वितीय ने आन्ध्र तथा कलिंग आदि राज्यों के शासकों को पराजित किया था। डी० सी० गांगुली ने आन्ध्र के शासक की पहचान विजयादित्य द्वितीय से की है। डी० सी० सरकार ने भी इसे स्वीकार किया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यह संख्या स्पष्टतः पारम्परिक है।

विभिन्न साक्ष्यों में विजयादित्य का राज्यकाल 40, 41, 44, तथा 48 वर्ष बतलाया गया है। जे० एफ० फ्लीट के अनुसार उसने 44 वर्ष तक राज्य किया और डी० सी० सरकार के अनुसार 48 वर्ष तक। के० ए० नीलकान्त शास्त्री एवं एन० वेंकटरमनैय्या ने उसका शासनकाल 808 से 847 ई० तक माना है। डी० सी० सरकार का अनुमान है कि कुछ वर्ष तक चालुक्य राज्य विजयादित्य द्वितीय के प्रतिद्वन्दी भीम के अधीन रहा होगा। सम्भवतः इसीलिए विजयादित्य के शासनकाल के विषय में सभी साक्ष्यों की सूचना में एकरूपता नहीं है।

विष्णुवर्धन पंचम–विजयादित्य द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र विष्णुवर्धन पंचम राजा हुआ। उसने अपने पिता के सामरिक अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। विष्णुवर्धन के अल्पकालीन राज्यकाल के विषय में बहुत कम सूचना प्राप्त हुई है। उसने राष्ट्रकूट राजकुमारी सिंहलादेवी के साथ विवाह किया। वह सम्भवतः गुजरात के राष्ट्रकूट वंश की राजकुमारी थी। विष्णुवर्धन ने विषमसिद्धि, सर्वलोकाश्रय तथा कलिविष्णुवर्धन के विरुद धारण किए। 18-20 माह के शासन के पश्चात् 848 ई० के लगभग उसकी मृत्यु हो गई।

विजयादित्य तृतीय–विष्णुवर्धन पंचम के पुत्र एवं उत्तराधिकारी विजयादित्य तृतीय ने 848 ई० में शासन की बागडोर सम्भाली। वह पूर्वी चालुक्य वंश का सर्वाधिक महान शासक एवं महत्वाकांक्षी विजेता था। शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसने अपने राज्य के दक्षिण में स्थित क्षेत्रों पर आक्रमण किए।

नेल्लोर की लड़ाकू जनजाति बोय (Boya) ने विजयादित्य के दक्षिणी अभियान में बाधा उपस्थित की। पंडरंग के नेतृत्व में भेजी गई चालुक्य सेना ने बोयों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया, और नेल्लोर नगर पर अधिकार कर उसके दुर्ग को ध्वस्त कर दिया। नेल्लोर उस समय सम्भवतः पल्लवों के अधीन था। विजयादित्य की सेना ने पल्लव शासक अपराजित को पराजित कर उसकी राजधानी में तोड़-फोड़ की और उससे बहुत सा सोना अपहृत कर लिया। इन विजयों के उपरान्त पंडरंग चोल राज्य की सीमा तक पहुंच गया था। एक अभिलेख के अनुसार उसने तंचापुरी (तंजौर) नगर पर अधिकार कर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिया और चोल शासक (सम्भवतःविजयालय) को शरण दी[1]। उसने पांड्यों को भी पराजित किया।

अम्म द्वितीय के मलियपुंडि अभिलेख के अनुसार विजयादित्य ने नोलम्ब शासक मंगि का सिर काटकर उसे कन्दुक बनाकर युद्ध-स्थल में क्रीड़ा की, गगों को पराजित कर उन्हें एक दुर्ग में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया और दाहल के कलचुरि संकिल तथा उसके सम्बन्धी राष्ट्रकूट शासक (कृष्ण द्वितीय) को सन्त्रस्त किया[2]। डी०सी० गांगुली ने मंगि की पहचान नोलम्बराष्ट्र के महेन्द्र नामक शासक से की है।

अमोघवर्ष प्रथम के उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय के राज्यकाल में विजयादित्य ने राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। धर्मवरम अभिलेख के अनुसार उसने कृष्ण द्वितीय से दो युद्ध किए थे। प्रथम संघर्ष में राष्ट्रकूट शासक को पराभूत होकर अपने साले दाहल (जबलपुर के आस-पास का क्षेत्र) के कलचुरि शासक संकिल के यहां शरण लेनी पड़ी। उसका पीछा करता हुआ विजयादित्य दाहिल की ओर बढ़ा। मार्ग में चालुक्य सेनानायक पंडरंग ने कलिंग, वेमुलवाड, बस्तर तथा दक्षिण कोशल के शासकों को पराजित किया। उसने बस्तर राज्य के चक्रकूट नगर को भस्मसात कर दिया और दक्षिण कोशल तथा कलिंग के राजाओं से बहुत से हाथी एवं सोना प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने राष्ट्रकूटों तथा चेदियों की सम्मिलित सेनाओं को किरणपुर नगर में एक तुमुल युद्ध में परास्त कर इस नगर को जला दिया। ए०एस० अल्तेकर ने किरणपुर की पहचान मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले के किरनपुर नामक स्थान से की है[3]। राष्ट्रकूट साम्राज्य को पदाक्रान्त करती हुई विजयादित्य की वाहिनी अचलपुर

1. उस समय चोल राज्य पर पांड्य मारंजडैयन हावी हो गया था। डी० सी० गांगुली के अनुसार विजयालय चोल ने सम्भवतःविजयादित्य तृतीय के यहां शरण ली और चालुक्य शासक ने पांड्यों को पराजित कर विजयालय को उसका राज्य दिलाने में सहायता की होगी और राहण नामक राजा पर विजय प्राप्त की। राहण का समीकरण निश्चितरूप से नहीं किया जा सका है।
2. हत्वाभूरिनोलम्बनृपं मंगिम्महासंगरे...गंगानांश्रितगंगकूट शिखरानिर्जित्य ...दाहलाधीशसंकिल उग्रवल्लभमुतम।
3. एक राष्ट्रकूट अभिलेख में किरणपुरी विषय का उल्लेख हुआ है। यह बीजापुर जिले में स्थित था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(बरार क्षेत्र का एलिचपुर) तक पहुंच गई और इस नगर को भी भस्मसात कर दिया। एक कलचुरि अभिलेख में बतलाया गया है कि पराजित वल्लभ राजा (कृष्ण द्वितीय) ने विजयादित्य के प्रति काफी सम्मान प्रदर्शित किया था। उसने राष्ट्रकूट शासक का राजकीय-चिह्न (गंगा-यमुना नदियों की आकृतियां) अपहृत कर लिया, वल्लभ (राष्ट्रकूट राजा) की उपाधियां स्वयं धारण कीं और सम्पूर्ण दक्षिणापथ एवं त्रिकलिंग को अपने अधीन कर लिया। अन्त में कृष्ण द्वितीय द्वारा आत्मसमर्पण करने पर विजयादित्य ने उसका राज्य वापस लौटा दिया।

सामरिक अभियानों में विजयादित्य के सेनापति विनयादिसरमन, कंडेयराज तथा उसके पुत्र पंडरंग ने उसे सक्रिय सहयोग दिया था। विजयादित्य के साम्राज्य का विस्तार उत्तर में गंजाम जिलें में महेन्द्रगिरि से लेकर दक्षिण में पुलिकनधीव तक हो गया था। उसने अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को युवराज नियुक्त किया, परन्तु विजयादित्य के जीवनकाल में ही सम्भवतः उसकी मृत्यु हो गई। विजयादित्य ने परचक्रराम (अपने शत्रुओं के लिए राम), गुणकेनल्लाट (गुणों एवं सदाचार से प्रेम करने वाला), त्रिपुरामर्त्यमहेश्वर (तीन नगरों के लिए महेश्वर के समान संहारक), रणरंगशूद्रक, मनुजप्रकार, नृपतिमार्तण्ड विक्रमधवल, विरुदंगभीम, भुवनकन्दर्प, अरशंककेशरिन तथा त्रिभुवनांकुश आदि विरुद धारण किए और विजयेश्वर नामक मंदिर का निर्माण कराया। 44 वर्ष के दीर्घकालीन शासन के बाद 892ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

भीम प्रथम—विजयादित्य के कोई पुत्र नहीं था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भाई विक्रमादित्य प्रथम का पुत्र भीम प्रथम उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रारम्भ में भीम को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके चाचा युद्धमल्ल प्रथम तथा कुछ अन्य सम्बन्धियों ने उससे संघर्ष छेड़ दिया और राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय की सहायता प्राप्त कर भीम के राज्याभिषेक के सम्पन्न होने के पूर्व ही उस पर आक्रमण कर दिया। भीम पराजित होकर बन्दी बना लिया गया और राष्ट्रकूटों एवं उनके मित्रों ने लगभग सम्पूर्ण वेंगी राज्य पर अधिकार कर लिया[1]। परन्तु पूर्वी चालुक्यों के कुछ निष्ठावान सामन्तों एवं समर्थकों ने संगठित होकर राष्ट्रकूटों को पीछे खदेड़ दिया और भीम को वेंगी के राज-

1. राष्ट्रकूटों के सामन्त वेमुलवाड़ के चालुक्यों के अभिलेखों तथा पम्प कवि के पम्पभारत काव्य में वर्णित है कि कृष्ण द्वितीय के अधीनस्थ बड्डेग ने भीम को बन्दी बना लिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सिंहासन पर बैठा दिया। अन्तिलि अभिलेख के अनुसार 892 ई० में उसका राज्याभिषेक हुआ और उसने विष्णुवर्धन नाम धारण किया।

कुछ समय के उपरान्त कृष्ण द्वितीय ने कर्नाट तथा लाट की सेनाओं के साथ सेनापति दंडेशगुंडरन के नेतृत्व में वेंगी को पुनः आक्रान्त किया और वर्तमान नेल्लोर तथा गुंटूर जिलों तक बढ़ गया। उसने भीम के राज्य के कई दुर्गों को अधिकृत कर उन्हें अपने पदाधिकारियों के अधीन कर दिया। भीम तथा उसके पुत्र युवराज इरिमर्तिगंड ने निर्वद्यपुर (पूर्वी गोदावरी जिले का वर्तमान निद्यवोलु नामक स्थान) में आक्रान्ता का डटकर मुकाबला किया और उसे पराजित कर पीछे खदेड़ दिया।

राष्ट्रकूटों का चालुक्यों से दूसरा तुमुल युद्ध पेरुवगूरु ग्राम (पश्चिमी गोदावरी जिले के एल्लोरे तालुक में स्थित पेदवंगुरु) में हुआ। इस संघर्ष में भी भीम को विजय प्राप्त हुई और उसने कर्नाट तथा लाट की सम्मिलित राष्ट्रकूट सेनाओं को परास्त कर दिया[1]। राष्ट्रकूट सेनापति गुंडन मारा गया, परन्तु भीम का पुत्र भी वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी इन सफलताओं के परिणामस्वरूप वेंगी राज्य राष्ट्रकूटों के प्रभुत्व से मुक्त हो गया।

भीम प्रथम ने सर्वलोकाश्रय, त्रिभुवनांकुश, द्रोणार्जुन, परमब्रह्मण्य तथा ऋतसिद्ध नामक उपाधियां धारण कीं। वह उदार प्रवृत्ति का शासक तथा दीन-अनाथों का पोषक था। वह शिव का परम भक्त था और पूर्वी गोदावरी जिले के द्राक्षारामम् तथा चालुक्यभीमवरम् नामक स्थानों पर उसने शिव के मंदिरों का निर्माण कराया। 30 वर्ष के घटनापूर्ण शासन के बाद 921-22 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

भीम प्रथम के उत्तराधिकारी—भीम प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विजयादित्य चतुर्थ 921-22 ई०[2] में राजा हुआ। उसने गडभाष्कर तथा कोल्लभिगंड के विरुद धारण किए। उसे वेंगीमंडल एवं त्रिकलिंग का शासक कहा गया है। विजयादित्य चतुर्थ के छः महीने के अल्पकालीन शासन में कलिंग के गंगों ने सम्भवतः राष्ट्रकूटों की सहायता प्राप्त कर पूर्वी चालुक्यों के विरुद्ध विद्रोह कर

---

1. भीम प्रथम के मसुलीपटम अभिलेख के अनुसार उसने कृष्ण वल्लभ तथा उसके मित्र-शासकों को हरा दिया और वे उससे भयभीत होकर भाग गये थे।
2. डी० सी० गांगुली के अनुसार विजयादित्य चतुर्थ 918 ई० में राजा हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दिया था। विजयादित्य ने विरजापुरी[1] नामक स्थान पर अपने शत्रुओं (गंगों तथा राष्ट्रकूटों आदि) को युद्ध में पराजित कर दिया, परन्तु वह स्वयं भी मारा गया[2]। शक्तिवर्मन के राज्यकाल के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि भीम प्रथम के पुत्र (विजयादित्य चतुर्थ) ने विरजापुरी में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया था।

विजयादित्य की मृत्यु के पश्चात् लगभग 12 वर्ष तक वेंगी के राजसिंहासन को अधिकृत करने के लिए गृहयुद्ध होते रहे और इस अन्तराल में वेंगी में छः चालुक्य राजाओं ने शासन किया। विजयादित्य के उपरान्त सबसे पहले उसका पुत्र अम्म प्रथम वेंगी के राजसिंहासन पर बैठा। उसने विष्णुवर्धन तथा राज-महेन्द्र के विरुद धारण किए और लगभग सात वर्ष तक शासन किया।

अम्म प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र विजयादित्य पंचम अपरनाम कंठिक-विजयादित्य या कंडिकबेट[3] 929 ई० के लगभग राजा हुआ। राज्यारोहण के केवल 15 दिन के पश्चात् ही उसे युद्धमल्ल प्रथम के पुत्र ताल (ताडप) ने राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ तथा नोलम्बराष्ट्र के शासक अय्यप की सहायता से राजपीठ से अपदस्थ कर कारागार में डाल दिया और स्वयं वेंगी का राजसिंहासन अपहृत कर किया। कुछ समय के उपरान्त विजादित्य पंचम जेल से भाग निकला और उसने वेमुलवाड़ के चालुक्य शासक अरिकेशरि द्वितीय के यहां शरण ली[4]। ताल को भी केवल एक महीने के बाद ही भीम प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय ने राजसिंहासन से हटा दिया और स्वयं वेंगी तथा त्रिकलिंग में लगभग एक वर्ष[5] तक शासन किया। इसके पश्चात् वह भीम द्वितीय द्वारा अपदस्थ कर दिया गया। भीम ने आठ महीने तक शासन किया। इसके बाद उसे ताल (ताडप) प्रथम के

1. गांगुली के अनुसार यह स्थान कृष्णा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित था।
2. कुलोत्तुंग द्वितीय के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि विजयादित्य (चतुर्थ) विरजापुरी के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ था। अन्य अभि-लेखों में भी इसका उल्लेख है।
3. राज्यारोहण के समय वह अल्पायु का बालक था और उसके राज्याभिषेक के समय कंठिका (हार) तथा पट्टबन्ध को उसकी गर्दन में बांध दिया गया था। इसलिए उसे ये नाम दिए गए (EI, Vol. V. p. 138)।
4. पम्पभारत में अरिकेशरि द्वितीय को शरणागत विजयादित्य पंचम की रक्षा करने का श्रेय दिया गया है।
5. विभिन्न अभिलेखों में उसके शासन की अवधि नौ माह, 11 माह, तथा एक वर्ष दी है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुत्र[1] युद्धमल्ल द्वितीय ने राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ की सहायता से राजसिंहासन से हटाकर कलिंग जाने के लिए बाध्य कर दिया और 930 ई० में वह स्वयं वेंगी का राजा हो गया। युद्धमल्ल द्वितीय ने मल्ल तथा मल्लपराज के विरुद धारण किए। उसकी सुरक्षा के लिए गोविन्द चतुर्थ ने वेंगी के शबर सेनानायकों के अधीन अपनी एक सेना तैनात कर दी थी। इस प्रकार पूर्वी चालुक्य राज्य पूर्णरूप से राष्ट्रकूटों का संरक्षित बन गया और वे उसकी राजनीति के वास्तविक कर्णधार हो गए। युद्धमल्ल ने बेजवाड़ा में मल्लेश्वरस्वामी के मन्दिर का निर्माण कराया और उसी के निकट एक बौद्ध-विहार भी बनवाया। उसके सात वर्षीय शासन के दौरान कंठिकविजयादित्य पंचम, राजमार्तण्ड तथा भीम द्वितीय आदि वेंगी के राजसिंहासन के लिए उससे युद्ध करते रहे। पांच वर्ष तक संघर्षरत रहने के पश्चात् अन्त में भीम द्वितीय ने युद्धमल्ल द्वितीय तथा उसके समर्थक गोविन्द चतुर्थ[2] आदि की सेनाओं को पराजित कर दिया और वेंगी राज्य को अधिकृत कर 934-35 ई0 में अपना अभिषेक कराया।

भीम द्वितीय, विजयादित्य चतुर्थ का उसकी रानी मेलाम्बा से उत्पन्न पुत्र था। उसने राजमार्तण्ड को युद्ध मार दिया, युद्धमल्ल एवं विजयादित्य पंचम को वेंगी राज्य से बाहर खदेड़ दिया और अन्य कई शत्रुओं को पराजित किया या मार दिया। उसने चालुक्य राज्य की अराजक स्थिति को समाप्त कर शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की। उसके राज्यकाल में वेलनांटि का शासक मल्लीय काफी महत्वपूर्ण हो गया था। भीम की दो रानियों के उल्लेख मिलते हैं—अंकिमहादेवी और लोकमहादेवी। उसने विष्णुवर्धन, राजभीम, सर्वलोकाश्रय, त्रिभुवनांकुश, राजमार्तण्ड तथा गंडमहेन्द्र आदि नाम एवं उपाधियां धारण कीं। उसने 12 वर्ष तक शासन किया और 946 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

अम्म द्वितीय—भीम द्वितीय के उपरान्त लोकमहादेवी से उत्पन्न उसका पुत्र अम्म द्वितीय अपरनाम विजयादित्य राजा हुआ। वह आठ वर्ष की अल्पायु में ही युवराज नियुक्त कर दिया गया था। 945-46ई० में 12 वर्ष की अवस्था में उसने शासन की बागडोर सम्भाली। अम्म के राज्यकाल के प्रारम्भ के कुछ

1. कलचुम्बुरु अभिलेख में उसे ताडप का भतीजा तथा 1143 ई० के एक अभिलेख में विक्रमादित्य द्वितीय का पुत्र बतलाया गया है। परन्तु इन साक्ष्यों की उपर्युक्त सूचना सन्दिग्ध है।
2. गोविन्द चतुर्थ के दुर्बल शासनकाल में राष्ट्रकूट साम्राज्य में व्याप्त अव्यवस्था का लाभ उठाकर भीम द्वितीय ने उसे पराजित कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्ष शान्तिपूर्ण बीते, किन्तु 956ई०[1] के लगभग युद्धमल्ल द्वितीय के पुत्र बाडप तथा ताल द्वितीय ने राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय की सहायता से उसके विरुद्ध सफलता प्राप्त की और उसे वेंगी छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। मंगल्लु अभिलेख के अनुसार अम्म द्वितीय ने अपने भाई दानार्णव को वेंगी राज्य का उत्तरदायित्व सौंप दिया और स्वयं कलिंग में जाकर शरण ली। परन्तु दुर्बल दानार्णव इन सबल आक्रान्ताओं के समक्ष टिक नहीं सका और बाडप ने उसे अपदस्थ कर वेंगी पर अधिकार कर लिया। बाद में कृष्ण तृतीय ने दानार्णव को ही वेंगी का शासक बना दिया। परन्तु राष्ट्रकूट सेना के वापस जाने के पश्चात् अम्म द्वितीय ने दानार्णव को पराजित कर वेंगी का राजसिंहासन पुनः प्राप्त कर लिया और वहां 970ई० तक शासन किया। इस तिथि के उपरान्त किसी समय दानार्णव ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अम्म द्वितीय को मार कर वेंगी राज्य पर अधिकार कर लिया।

अम्म द्वितीय ने बेलनांटि के शासक नृपकाम की पुत्री के साथ विवाह किया। उसने राजमहेन्द्र, त्रिभुवनांकुश तथा समस्तभुवनाश्रय की उपाधियां धारण की। डी०सी० सरकार के अनुसार उसी ने राजमहेन्द्री नगर का निर्माण कराया और सम्भवतः इसे राजधानी भी बनाया। उसने विजयवाटिका (बेज़वाड़ा) के जैन-मन्दिर को तथा शिव के एक मन्दिर को दान देकर अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। शासन के 11वें वर्ष में अम्म अपदस्थ कर दिया गया था। परन्तु कई अभिलेखों के साक्ष्य के अनुसार उसने 25 वर्ष तक राज्य किया। डी०सी० गांगुली ने सुझाव दिया है कि उसने 11 वर्ष तक वेंगी में शासन किया होगा और वहां से अपदस्थ किए जाने के उपरान्त 14 वर्ष तक कलिंग में राज्य किया।

दानार्णव–अम्म द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त 970 ई० में दानार्णव कलिंग का राजा हुआ। उसने केवल तीन वर्ष[2] तक शासन किया। उसे जटाचोडभीम से काफी संघर्ष करना पड़ा। दानार्णव की आर्या नामक पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए– शक्तिवर्मन प्रथम और विमलादित्य। 973 ई० में दानार्णव के शासन का अन्त हुआ।

---

1. डी०सी० सरकार के अनुसार बाडप ने 951 ई० में यह आक्रमण किया था।
2. एक अभिलेख के अनुसार उसने 30 वर्ष तक राज्य किया। किन्तु यहां सम्भवतः तीन के स्थान पर भूल से 30 वर्ष लिख दिया गया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दानार्णव की मृत्यु के उपरांत सम्भवतः बाडप ने कलिंग राज्य को भी अपने अधीन कर लिया। उसने विजयादित्य तथा समस्तभुवनाश्रय के विरुद धारण किए। उसके बाद उसका भाई महाराज ताडप द्वितीय अपरनाम विष्णु-वर्धन राजा हुआ। उपर्युक्त शासकों ने 973 से 999 ई० तक राज्य किया।

शक्तिवर्मन प्रथम–दानार्णव की मृत्यु यद्यपि 973ई० में ही हो गई थी, परन्तु उसका ज्येष्ठ पुत्र शक्तिवर्मन प्रथम 999 ई० में वेंगी का राजपीठ प्राप्त कर सका। शक्तिवर्मन एवं उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में 973 तथा 999 ई० के बीच के 27 वर्ष के अन्तराल को पूर्वी चालुक्य राज्य में अराजकता का काल बतलाया गया है जिसमें अव्यवस्था का एकछत्र राज्य था। एन० सुब्र-मण्यम के अनुसार वेंगी में अपनी स्थिति अनिश्चित पाकर शक्तिवर्मन एवं विमलादित्य ने चोल राज्य में शरण ली। इससे क्रोधित होकर वाडप ने तोंड-मंडलम पर आक्रमण कर दिया। परन्तु राजराज चोल ने उसे पराजित कर शक्तिवर्मन को वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

राजराज चोल के शासन के 14वें वर्ष के एक अभिलेख के अनुसार उसने 999 ई० में वेंगीनाडु पर विजय प्राप्त की। 1005 ई० के दूसरे अभिलेख में उसकी कलिंग विजय का उल्लेख है। परन्तु बाद में शक्तिवर्मन ने चोलों को पराभूत कर वेंगी में उनके प्रभुत्व का अन्त कर दिया। उसके राज्यकाल के एक अभिलेख में वर्णित है कि उसने अपने यौवन में ही चोलों के अतिरिक्त महाराज बद्येम तथा कुछ अन्य शासकों को हराया और चोडभोम को मार डाला था। बाद में शक्तिवर्मन ने चोलों से मित्रता कर ली और मुख्यतः उन्हीं की सहायता से अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। वेंगी अब राष्ट्रकूटों के स्थान पर चोलों का संरक्षित राज्य बन गया और इसके बाद का इस राज्य का इतिहास साम्राज्य-वादी चोलों एवं कल्याणी के चालुक्यों के बीच इसे अधिकृत करने के लिए हुए संघर्षों का ही मुख्यतः विवरण है[1]। 1006 ई० में पश्चिमी चालुक्य शासक सत्याश्रय की सेना बायलनम्बि के नेतृत्व में वेंगी को आक्रान्त कर चेब्रोलु (गुंटूर जिले में) नामक स्थान तक बढ़ गई थी। शक्तिवर्मन द्वारा इस आक्रमण का मुकाबला करने के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिली है। बाद में सम्भवतः राजराज चोल की सेना ने बायलनम्बि को वेंगी से खदेड़ दिया होगा।

शक्तिवर्मन ने चालुक्यनारायण, चालुक्यचन्द्र, सर्वलोकाश्रय तथा विष्णु-

1. राजनैतिक दृष्टि से वेंगी इन दोनों राजवंशों के लिए बहुत महत्वपूर्ण था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्धनमहाराज की उपाधियां धारण कीं। अपने 12 वर्ष के शासन के दौरान अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद उसने काफी हद तक वेंगी में शान्ति एवं व्यवस्था कायम रखी। 1011 ई० के आस-पास उसके शासन का अन्त हुआ।

विमलादित्य—शक्तिवर्मन प्रथम का कोई पुत्र नहीं था, अतएव उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई विमलादित्य 1011 ई० में उसका उत्तराधिकारी हुआ। शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसने राजराज नामक एक शासक का वध कर दिया था। राजराज चोलों का कोई सम्बन्धी प्रतीत होता है। इसलिए राजराज चोल की सेना ने वेंगी पर आक्रमण कर विमलादित्य को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया। परन्तु बाद में सम्भवतः चालुक्य शासक ने राजराज से मित्रता कर ली, जिसके परिणामस्वरूप न केवल उस वेंगी एवं कलिंग राज्य वापस मिल गए, वरन् चोल शासक ने अपनी पुत्री कुन्दवा (कुन्दवै) का विमलादित्य के साथ विवाह, कर दोनों राजवंशों के सम्बन्धों को अधिक घनिष्ट एव सुदृढ़ बना दिया। यह विवाहोत्सव सम्भवतः चोल राजधानी में ही राजराज चोल के शासन के 29वें वर्ष में सम्पन्न हुआ था। इस अवसर पर विमलादित्य ने तिरुवैयरु के पंचपांडवेश्वर के मन्दिर को दान दिया। विमलादित्य की दूसरी रानी मेडवम (मेलमा) सम्भवतः जटाचोडभीम की पुत्री थी।

रणस्तिपुंडि अभिलेख में विमलादित्य को सौराष्ट्रों, शकों, लाटों तथा गुर्जरों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। परन्तु यह विवरण मुख्यतः काल्पनिक प्रतीत होता है। पृथ्वीश्वर के पिठापुरम अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि वेलनाडु के शासक कुडियवर्मन (द्वितीय) ने कई युद्धों में विमलादित्य को सक्रिय सहयोग दिया था, जिससे प्रसन्न होकर पूर्वी चालुक्य शासक ने उसे गुद्दवार की जागीर दे दी थी।

विमलादित्य ने विरुदांकभीम, मुम्मडभीम, विष्णुवर्धन, राजमार्तण्ड एवं भूपमहेन्द्र आदि नाम तथा विरुद धारण किए। रणस्तिपुंडि अभिलेख में उसे परममाहेश्वर तथा परमब्रह्मण्य कहा गया है। ये उपाधिया उसकी शिव-भक्ति प्रमाणित करती हैं। परन्तु बाद में वह जैन धर्म का अनुयाई हो गया था। विमलादित्य ने 1011 से 1018 ई० तक शासन किया।

राजराजनरेन्द्र विष्णुवर्धन—विमलादित्य की मृत्यु के पश्चात् उसकी रानी कुन्दवा से उत्पन्न राजराजनरेन्द्र तथा मेलम से उत्पन्न विजयादित्य सप्तम के बीच उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ जिसमें कल्याणी के चालुक्य जयसिंह

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्वितीय ने विजयादित्य का साथ दिया और राजेन्द्र चोल ने अपने भांजे राजराज-नरेन्द्र का। पहले विजयादित्य ने राजराज को अपदस्थ कर वेंगी राज्य से बाहर निकाल दिया, बाद में 1022 ई० में राजेन्द्रचोल ने उसे वेंगी के राजपीठ पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु उसका राज्याभिषेक, राज्यारोहण के चार वर्ष बाद 1022 ई० मे सम्पन्न हुआ। यह घटना मौर्य सम्राट अशोक के राज्याभिषेक का स्मरण दिलाती है जो 273 ई० पूर्व के आसपास राजा हो गया था, किन्तु उसका राज्याभिषेक 269 ई० पूर्व में सम्पन्न हुआ। विजयादित्य उससे निरन्तर संघर्ष करता रहा और अनुकूल अवसर प्राप्त कर, 1030 ई० में उसने विद्रोह कर दिया।

राजराज के सौतेले भाई विजयादित्य ने 1030 ई० के लगभग उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया और चालुक्य राज्य के पूर्वी भाग में, जिसमें आधुनिक विशाखा-पटनम ज़िले का क्षेत्र शामिल था, अपने पृथक राज्य की स्थापना की। 1030 ई०[1] में उसने अपना अभिषेक कराया और विजयादित्य-विष्णुवर्धन नाम धारण किया। सम्भवतः कल्याणी के चालुक्यों ने उसकी सहायता की थी।

1042 ई०के आस-पास पश्चिमी चालुक्य सोमेश्वर प्रथम ने वेंगी को आक्रान्त किया। राजराज की सहायता के लिए राजेन्द्र चोल ने ब्राह्मण सेनापति ब्रह्मराज के नेतृत्व में अपनी एक सेना भेजी। वेंगी के समीप कलिंदिडि नामक स्थान पर पश्चिमी चालुक्यों तथा चोलों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ और सोमेश्वर वेंगी में अपना आधिपत्य नहीं जमा पाया। राजेन्द्र चोल का पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजाधिराज भी पश्चिमी चालुक्यों के विरुद्ध राजराज की निरन्तर सहायता करता रहा। राजाधिराज के 1045 ई०के एक अभिलेख में कृष्णा नदी के तट पर धन्नाड (धान्यकटक) नामक स्थान पर हुए युद्ध में उसकी चालुक्यों के विरुद्ध सफलता का विवरण है। इस संघर्ष में चोल शासक ने पश्चिमी चालुक्य सेनानायक गंगाधर तथा गंडप्पयन को मौत के घाट उतार दिया और विक्कि (विक्रमादित्य षष्ठ) को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। किन्तु चोलों की यह सफलता स्थाई नहीं रही और कुछ ही समय के पश्चात् सोमेश्वर ने वेंगी पर पुनः आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। 1047 ई०के एक अभिलेख में उसे

1. एन० वेंकटरमनैय्या तथा नीलकान्त शास्त्री के अनुसार विजयादित्य का राज्याभिषेक 21 जून, 1031 ई० में और आर० सथियनथायर तथा डी० सी० गांगुली के अनुसार 1030 ई० में हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(सोमेश्वर प्रथम को) कलिंग तथा वेंगी का विजेता बतलाया गया है और 1049 तथा 1054 ई० तक के अभिलेखों में उसके पुत्र सोमेश्वर द्वितीय ने अपने को वेंगीपुरवरेश्वर कहा है। 1055-56 ई० के पश्चिमी चालुक्य शासकों के कई अभिलेख पूर्वी गोदावरी जिले में द्राक्षाराममु नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं।

राजाधिराज के राज्यकाल में वेंगी तथा कलिंग में चोल प्रभुत्व समाप्त हो गया और इन राज्यों में पश्चिमी चालुक्यों की अधिसत्ता स्थापित हो गई। अपने हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से राजराज ने चोलों के स्थान पर अब कल्याणी के चालुक्यों को अपना मित्र बना लिया था।

राजराज ने राजेन्द्रचोल की पुत्री अमंगादेवी के साथ विवाह किया। उसके शासन के 11वें वर्ष के एक अभिलेख के अनुसार वलिवेरु नामक स्थान पर स्थित त्रयपुरुष महादेव के मन्दिर में प्रतिदिन दीपक जलाने के लिए एक व्यक्ति ने 50 भेड़ें दान में दी थीं। राजराज विद्या एवं विद्वानों का उदार संरक्षक था। उसने नन्नियभट्ट तथा नारायणभट्ट[1] नामक कवियों को, और पावुलूरिमल्लनार्य नामक गणितज्ञ को प्रश्रय प्रदान किया। परन्तु 1060 ई० जब राजराज अपनी राजधानी के बाहर था, उसी दौरान में उसके सौतेले भाई विजयादित्य ने वेंगी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। 40 वर्ष[2] के दीर्घकालीन शासन के उपरान्त 1060 ई० में राजराज अपदस्थ कर दिया गया।

शक्तिवर्मन द्वितीय—राजराजमहेन्द्र के बाद उसका छोटा सौतेला भाई विजयादित्य सप्तम 1060 ई० में राजा हुआ। परन्तु राज्यारोहण के कुछ ही समय के पश्चात् उसने राजसिंहासन का परित्याग कर अपने पुत्र शक्तिवर्मन द्वितीय को वेंगी शासक बना दिया। शक्तिवर्मन केवल एक वर्ष तक राज्य कर सका। उसने समरैकभैरव, विष्णुवर्धन तथा सत्याश्रय की उपाधियों का प्रयोग किया। रयलि अभिलेख के अनुसार एक वर्ष के शासन के उपरान्त उसने अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के समान स्वर्गलोक प्राप्त किया। इस विवरण से प्रतीत होता है कि शक्तिवर्मन सम्भवतः युद्ध में मारा गया था। वीरराजेन्द्र चोल की सेना

1. सोमेश्वर प्रथम ने नारायणभट्ट को वेंगी भेजा था। नारायणभट्ट ने राजराज के पुरोहित नन्नयभट्ट को तेलुगू भाषा में महाभारत लिखने में काफी सहयोग दिया और राजराज ने उसे अग्रहार प्रदान किया।
2. शक्तिवर्मन द्वितीय तथा कुलोत्तुंग द्वितीय के अभिलेखों के अनुसार राजराज ने 41 वर्ष तक राज्य किया। परन्तु मल्लयदेव के पिठापुरम अभिलेख में उसका शासनकाल 40 वर्ष बतलाया गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने इस बीच वेंगी को आक्रान्त किया था[1] और शक्तिवर्मन सम्भवतः चोलो से ही युद्ध करता हुआ 1061 ई० में वीरगति को प्राप्त हुआ।

विजयादित्य सप्तम–शक्तिवर्मन द्वितीय की मृत्यु के बाद 1061 ई० में विजयादित्य सप्तम ने पुनः वेगी राज्य के शासन की बागडोर सभाली। उसकी राजनैतिक गतिविधियां 1018 ई० में ही प्रारम्भ हो गईं थीं। विमलादित्य की मृत्यु के पश्चात् विजयादित्य ने अपने सौतेले भाई राजराजमहेन्द्र से उत्तराधिकार के लिए काफी संघर्ष किया और कल्याणी के चालुक्यों की सहायता प्राप्त कर वह उसे अपदस्थ करने में भी सफल हुआ। परन्तु 1022 ई० में वीरराजेन्द्र ने राजराज को पुनः वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। विजयादित्य इसके बाद भी उसका विरोध करता रहा और 1030-31 ई० में उसने वर्तमान विशाखापटनम जिले के क्षेत्र के शासक के रूप में अपना अभिषेक कराया।

1031 तथा 1061 ई० के बीच के 30 वर्ष के अन्तराल में विजयादित्य के राजनैतिक जीवन के विषय में सुस्पष्ट एवं क्रमबद्ध सूचना नहीं मिलती है। इस अवधि के अधिकांश भाग में वह कल्याणी के चालुक्यों का अधीनस्थ[2] रहा होगा और उन्हीं की सहायता से राजराज का विरोध करता रहा। परन्तु वीरराजेन्द्र के सक्रिय हस्तक्षेप के कारण उसे कोई महत्वपूर्ण तथा स्थाई सफलता नहीं मिल सकी। शक्तिवर्मन द्वितीय की मृत्यु के समय वह सोमेश्वर प्रथम की सेना का नेतृत्व करता हुआ चोलो से युद्ध कर रहा था।

सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् विजयादित्य को चोलों की अधिसत्ता स्वीकार करनी पड़ी और वह उनके सामन्त के रूप में वेंगी में शासन करने लगा। उसके अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि 1068 ई० तक वह शान्तिपूर्वक शासन करता रहा। 1068 तथा 1072 ई० के बीच के अन्तराल में विजयादित्य का कोई अभिलेख नहीं मिला है। यह तथ्य सम्भवतः उसकी संकटपूर्ण स्थिति को संकेतित करता है। इस अन्तराल में कलिंग के शासक राजराज देवेन्द्रवर्मन

1. वीरराजेन्द्र के 1063 ई० के अभिलेखों में बतलाया गया है कि उसने वेंगी में कल्याणी के चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ को पराजित किया था।
2. विजयादित्य ने सोमेश्वर प्रथम के राजदरबार में शरण ली और उसके सामरिक अभियानों में सक्रिय भाग लेकर उसे प्रसन्न कर लिया था। सोमेश्वर ने विजयादित्य को अंककार (वीरयोद्धा) तथा कुमार की उपाधियों से विभूषित किया और चोल आक्रमणों से गंगवाड़ी की सुरक्षा के लिए उसे नोलम्बवाड़ी का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा दाहल के कलचुरि कर्ण ने वेंगी पर आक्रमण किए। कर्ण ने 1073 ई० के एक अभिलेख में वेंगी पर आक्रमण करने तथा आन्ध्र के शासक की शक्ति को नष्ट करने का दावा किया है। उसने द्राक्षाराममु के भगवान भीमेश्वर को उपहार आदि दिए। राजराज देवेन्द्रवर्मन के एक सेनापति को 1075 ई० के एक अभिलेख में वेंगी के शासक पर कई बार विजय प्राप्त करने तथा उसकी सम्पत्ति का अपहरण करने का श्रेय दिया गया है। इन आक्रमणों के कारण विजयादित्य को अपना राज्य छोड़कर पुनः कल्याणी के चालुक्यों का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। 1074-75 ई० के एक अभिलेख में उसे सोमेश्वर द्वितीय का सामन्त एवं पल्लवान्वयंकांचीपुरवरेश्वम तथा पल्लवपेरुमानंडि कहा गया है। इन विरुदों का प्रयोग नोलम्बपल्लव करते थे। इससे प्रतीत होता है कि विजयादित्य उस समय चालुक्यों के अधीन नोलम्बवाड़ी में शासन कर रहा था।

विजयादित्य ने चालुक्यभीम, विष्णुवर्धन, कलियुधिष्ठिर, करवालभैरव तथा सर्वलोकाश्रय की उपाधियां धारण कीं। एक अभिलेख में बतलाया गया है कि सर्वलोकाश्रय विष्णुवर्धनमहाराजश्री विजयादित्य ने करवालभैरव नामक एक मंडप का निर्माण कराया था। उसकी दो रानियों का उल्लेख हुआ है—चेदि राजकुमारी मादव जिसका पुत्र शक्तिवर्मन द्वितीय था, और रैवल। विजयादित्य सप्तम ने 15 वर्ष तक राज्य किया और 1075 ई० में उसके शासन का अन्त हुआ। उसकी मृत्यु के साथ ही वेंगी में चालुक्य शासन का अन्त हो गया और इस तिथि के बाद का इस राज्य का इतिहास चोल साम्राज्य के अधीन एक प्रान्त का इतिहास है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

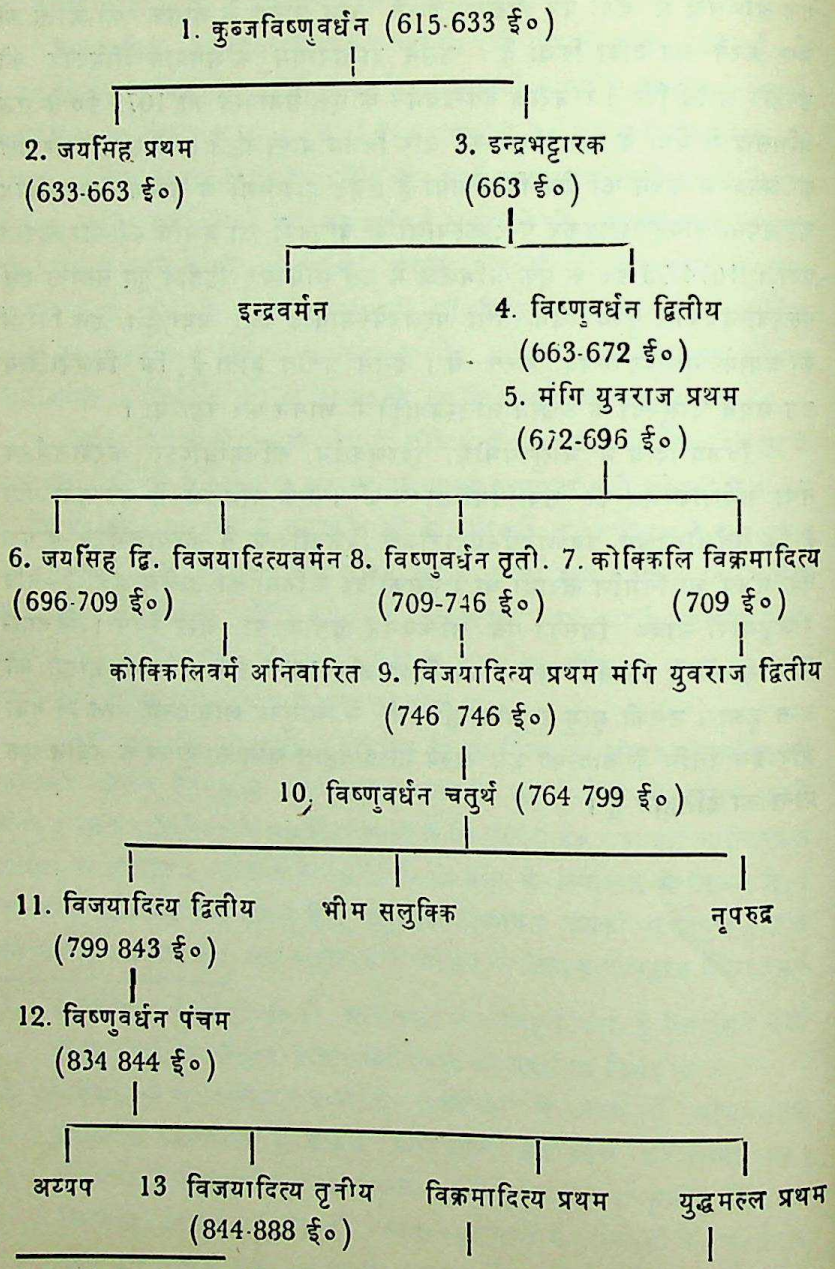

1. Ganguly, D. C., Eastern Chalukyas, pp. 216-218.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

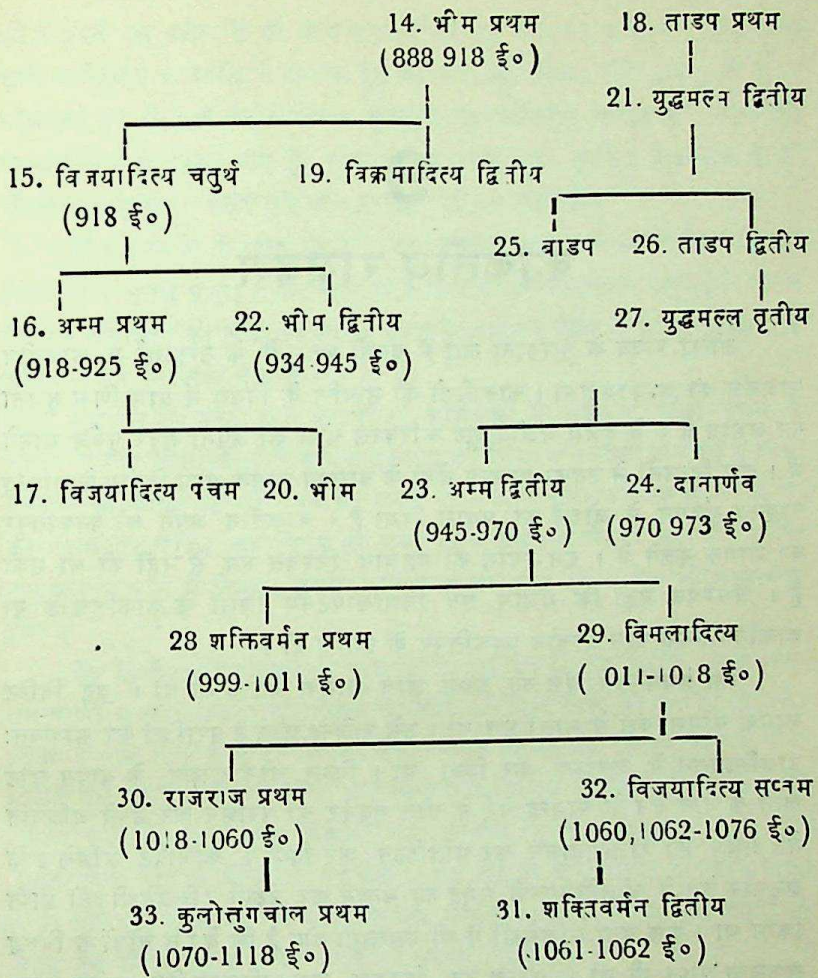

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

9

काकतीय राजवंश

आन्ध्र राज्य के तेलंगाना क्षेत्र में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काकतीय राजवंश का अभ्युदय हुआ। काकतीयों की उत्पत्ति के विषय में प्रामाणिक सूचना का अभाव है। वे दुर्जय वंशीय शूद्र करिकाल चोल को अपना सुदूर पूर्वज मानते थे। कुछ विद्वानों ने उनका सम्बन्ध वेंगी के चालुक्य शासक अम्म द्वितीय के सामन्त कार्कत्य गुंडयन से जोडने का प्रयास किया है। काकतीय अपने को काकतिपुर का शासक कहते थे। इस स्थान की पहचान निश्चत रूप से नहीं की जा सकी है। असम्भव नही कि गंजाम एवं विशाखापटनम जिलों के काकतिखंडि या काकतिपल्लिक ग्राम प्राचीन काकतिपुर के प्रतीक हों।

बेत प्रथम–इस वंश का प्रथम ज्ञात शासक बेत प्रथम था। वह विष्टि नामक सामन्त वंश से सम्बन्धित था। उसे राजेन्द्र चोल ने पराजित कर सम्भवतः राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया था। किन्तु चोल सम्राट के वापस लौट जाने के बाद बेत के सामन्त येर्र ने चोल गवर्नर को पराभूत कर अपने अधिपति बेत प्रथम को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। काजीपेट अभिलेख के अनुसार बेत ने चोल सेनारूपी समुद्र का मन्थन कर लक्ष्मी (विजयश्री) को प्राप्त किया था। कुछ अन्य अभिलेखों में भी बतलाया गया है कि बेत ने चोलों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। परन्तु यह विवरण कुछ अविश्वसनीय प्रतीत होता है। वास्तव में बेत तथा उसके सेनापति ब्रह्म ने अपने अधिराट कल्याणी के चालुक्य शासक की ओर से चोलों से युद्ध किया होगा जिसमें चोल पराजित हुए, और बेत प्रथम के प्रशस्तिकार ने चोलों के विरुद्ध प्राप्त सफलता का सम्पूर्ण श्रेय उसी को दे दिया। बेत के राज्य में कोरवि क्षेत्र (वर्तमान नलगोंडा जिले का एक भाग) अवश्य शामिल था। वह शिव का भक्त था। उसने 11वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में शासन किया।

प्रोल प्रथम–बेत प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र प्रोल प्रथम राजा हुआ। वह कल्याणी के चालुक्य शासक सोमेश्वर प्रथम (1043–1068 ई०) का सामन्त

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था। अपने इस अधिपति की ओर से उसने चक्रकूट के नागों, कोंकण के शिलाहारों तथा भद्रंग एवं काडपति के शासक दुर्ग को पराजित किया और पुरकूट के राजा गोन्न का युद्ध में वध कर दिया[1]। पुरकूट का समीकरण बस्तर के निकटवर्ती परकोटनगर से किया गया है और चक्रकूट सम्भवतः पुरकूट के समीप में ही स्थित रहा होगा। भद्रंग की पहचान नहीं की जा सकी है।

प्रोल प्रथम ने सोमेश्वर प्रथम के सामरिक अभियानों में उसे सक्रिय सहयोग दिया था। इससे प्रसन्न होकर चालुक्य शासक ने उसे अन्मकोंड विषय (ज़िला) दे दिया। अन्मकोंड का तादात्म्य आन्ध्र राज्य के वारंगल ज़िले में स्थित हनुमकोंडा नामक स्थान से किया गया है।

गणपति के कांची एवं मोटपल्लि अभिलेखों के अनुसार, प्रोल प्रथम ने केसरि अथवा जगतीकेसरि[2] नामक तालाब का निर्माण कराया। अपने पूर्ववर्ती शासकों की भांति वह भी शिव का भक्त था और लकुलीश्वर-आगम के भाष्यकार रामेश्वर पंडित का शिष्य हो गया था। उसने रामेश्वर को वैंजनपल्लि नामक ग्राम दान में दिया। उसके राज्यकाल का अन्त 1075 ई० के आस-पास हुआ।

बेत द्वितीय—प्रोल प्रथम के बाद उसका पुत्र बेत द्वितीय 1075 ई० के लगभग राजा हुआ। उसके राज्यकाल के कई अभिलेख मिले हैं जो 1079 तथा 1090 ई० के बीच के हैं। बेत को एक भयंकर क्रान्ति का सामना करना पड़ा जिससे उसे भारी क्षति पहुंची। इस विप्लव के कारण आदि के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सोमेश्वर द्वितीय एवं विक्रमादित्य षष्ठ के बीच हुए गृह-युद्ध में बेत द्वितीय ने सोमेश्वर का साथ दिया होगा और जब सोमेश्वर को पराजित कर विक्रमादित्य षष्ठ राजा हो गया, तो उसने बेत की शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया।

1079 के हनुमकोंडा अभिलेख में बेत द्वितीय को त्रिभुवनमल्ल की उपाधि नहीं दी गई है। यह तथ्य सम्भवतः उसकी संकटपूर्ण स्थिति का सूचक है। परन्तु बेत द्वितीय ने अपने मित्र **विरयाल** वंशीय एरर्र एवं वेमचोल वंशीय रेव नामक शासकों की सहायता से शत्रुओं को पराभूत कर कोरवि प्रदेश में पुनः

---

1. वेंकटरमनैय्या के अनुसार उपर्युक्त अभियानों में प्रोल प्रथम, युवराज विक्रमादित्य षष्ठ के नेतृत्व में भेजी गई सोमेश्वर की सेना के साथ 1060 ई० में गया होगा।
2. प्रोल प्रथम ने केसरि या जगतीकेसरि की उपाधि धारण की थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपनी सत्ता स्थापित कर दी[1]। इसके पश्चात् बेत का मंत्री दंडाधीश 1090 ई० के कुछ पहले उसे विक्रमादित्य षष्ठ के राजदरबार में ले गया और वहां पर बेत ने चालुक्य सम्राट को साष्टांग प्रणाम किया। इससे प्रसन्न होकर विक्रमादित्य ने उसे सब्बिसयिर क्षेत्र प्रदान किया जिसकी पहचान करीमनगर जिले में अथवा इसके निकट स्थित सब्बिनांडु से की गई है। सब्बिसयिर में सम्भवत: अन्मकोंड के अतिरिक्त कोरवि क्षेत्र भी शामिल था। इसी के बाद बेत द्वितीय ने त्रिभुवन-मल्ल एवं विक्रमचक्रिय के विरुद धारण किए होंगे।

बेत द्वितीय ने अन्मकोंड को राजधानी बनाया और वहां एक मन्दिर एवं शिवपुरी नामक तड़ाग का निर्माण कराया। उसने 1090 ई० के आस-पास तक शासन किया।

दुर्गनृपति–बेत द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र दुर्गनृपति राजा हुआ। काजीपेट अभिलेख में उसे त्रिभुवनमल्लदेव की उपाधि दी गई है। इसके अतिरिक्त उसके विषय में कोई अन्य उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती और न ही उसका राज्यकाल निश्चित रूप से ज्ञात है।

प्रोल द्वितीय–दुर्गनृपति का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई प्रोल द्वितीय था। एन० वेंकटरमनैय्या के अनुसार वह सम्भवत: 1117 ई० में राजा हुआ। प्रारम्भ में वह पश्चिमी चालुक्य साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश में विक्रमादित्य षष्ठ का सामन्त था। 1126 ई०में विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् जब चालुक्य साम्राज्य विघटित होने लगा, तो प्रोल द्वितीय ने भी विद्रोह कर दिया और आन्ध्र में शासन करने वाले पश्चिमी चालुक्यों के सामन्तों को पराजित कर दिया।

प्रोल द्वितीय के अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि उसने गोकर्ण के पुत्र को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया, मेडराज को हराया और पोलवासदेश को जीतकर गंग शासक को दे दिया। प्रोल की वर्धमान शक्ति से उत्तेजित होकर चालुक्य तैलप तृतीय ने अपने सामन्त सान्तर वंशीय जगद्देव के साथ काकतीय

1. वारंगल ज़िले के गुडूर नामक स्थान से प्राप्त एक तिथि–रहित अभिलेख में वर्णित है कि युद्ध में एरर्र ने पोट्टबेत (बेत द्वितीय) के शत्रुओं को मौत के घाट उतारा और कोरवि प्रदेश में उसकी अधिसत्ता स्थापित कर दी। वारंगल ज़िले के भाटूरु से प्राप्त 1120 ई० के एक अन्य अभिलेख में बतलाया गया है कि रेव ने काकति राजाओं को सुरक्षा प्रदान की, उनके शत्रुओं को हराया और उनके राज्य की अखंडता बनाये रखने में सहायता की।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्य पर आक्रमण कर उसकी राजधानी अन्मकोंड को घेर लिया। परंतु रुद्रदेव के हनुमकोंडा अभिलेख के अनुसार, प्रोल द्वितीय ने चालुक्यशिखामणि तैलपदेव तृतीय को पराजित कर बन्दी बना लिया, किन्तु उसके द्वारा प्रदर्शित श्रद्धा एवं विनम्रता से प्रभावित होकर बाद में उसे मुक्त कर दिया। प्रोल द्वितीय ने गोविन्दराज को भी हराया और उदय द्वारा शासित क्षेत्रों में लूट-पाट की। किंतु बाद में उसने इन विजित राज्यों को लौटा दिया। उससे पराजित होकर मन्त्रकूट (कृष्णा जिले का सम्भवतः मन्तेन ग्राम) का शासक गुंड अपनी राजधानी की ओर भाग गया था। प्रोल ने उसका पीछा किया और उसे बन्दी बना लिया। गुंड का शीश मुंडित कराकर प्रोल ने उसकी छाती पर सुअर का चिह्न अंकित कराया और बाद में उसका वध कर दिया।

उपर्युक्त शासकों में गोकर्ण कदाचित तेलुगूचोड वंश से सम्बन्धित था। गोविन्दराज का समीकरण कुछ विद्वानों ने विक्रमादित्य षष्ठ के सेनापति अनन्त-पाल के इसी नाम के भांजे से किया है। किन्तु अन्य विद्वानों ने उसे बागिमादमय-नायक का पुत्र गोविन्दराज माना है। गुंड पश्चिमी चालुक्यों का सामन्त था।

शक संवत 1091 के द्राक्षारामम् अभिलेख में कोट्चोडयराज को काकति **प्रोलनिर्दहन** की उपाधि दी गई है। इससे प्रमाणित होता है कि उसने प्रोल का वध कर दिया था। गणपति के मोटुपल्लि अभिलेख के अनुसार प्रोल ने जगती-केसरि नाम के तालाब का निर्माण कराया था। कुछ विद्वानों ने प्रोल प्रथम को इस तालाब का निर्माता माना है और कुछ ने प्रोल द्वितीय को।

इन विजयों के परिणामस्वरूप प्रोल द्वितीय कृष्णा एवं गोदावरी नदियों के बीच के भू-भाग का अधिपति बन गया। शासन के अन्तिम भाग में उसने वेंगी के विरुद्ध अभियान किया और आन्ध्र के शासकों के संघ से संघर्ष करता हुआ सम्भवतः मारा गया।

रुद्रदेव—प्रोल द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र रुददेव प्रथम राजा हुआ। उसने कदाचित अपने पिता के राज्यकाल में कुछ सामरिक अभियानों में भाग लिया था। रुद्र के शासन के प्रारम्भ में काकतीयों के कुछ सामन्तों ने विद्रोह कर दिया था, परन्तु उसने इन विद्रोहियों का दमन कर दिया।

1162 ई० के अन्मकोंड अभिलेख में रुद्र को डोम्मराज, मेडराज तथा मयलिगिदेव के विरुद्ध विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। उसने भीम, गोकर्ण, चोडोदय तथा तैलप को भी पराजित किया। गोकर्ण, भीम द्वारा मार दिया गया और तैलप, रुद्र के डर से संग्रहणी का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हुआ। रुद्र ने भीम पर आक्रमण कर उसे जंगल की ओर खदेड़ दिया, चोडोदय के नगर तथा दुर्ग को तहस-नहस कर डाला और इस दुर्ग के बीच में एक तालाब का निर्माण कराया। चोडोदय उसकी शक्ति से सन्त्रस्त होकर मर गया। डोम्मराज तथा मेडराज वारंगल के पारवल तालुक के शासक थे और चोडोदय कोंडपल्लि में राज्य कर रहा था। चोडोदय एवं गोकर्ण तेलुगूचोड वंशीय नृप प्रतीत होते हैं। ई० हुल्ट्श ने मैलिगिदेव की पहचान यादव शासक भिल्लम के पूर्वज मल्लुगि नामक राजा से की हैं। एन० वेंकटरमनैय्या इससे सहमत नहीं हैं। जो भी हो, उपर्युक्त राजा काकतीय साम्राज्य के निकटवर्ती प्रदेशों में शासन कर रहे थे। उन्होने रुद्र के राज्यकाल के प्रारम्भ मे विद्रोह किया होगा। परन्तु रुद्र ने उन्हे पराजित कर पुनः अपना प्रभुत्व मानने के लिए बाध्य कर दिया। करीमनगर जिले से प्राप्त शक सम्वत् 1081 (1159 ई०) के महामंडलेश्वर डोम्मराज के एक अभिलेख में मेडराज तथा जगतदेव को 80 हजार सैनिकों की बलशाली सेना के साथ किसी शत्रु के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। इस शत्रु के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। असम्भव नहीं कि वह रुद्रदेव प्रथम रहा हो। यदि यह अनुमान सही है, तो हमें स्वीकार करना पडेगा कि प्रारम्भ में काकतीय शासक पराजित हुआ होगा। परन्तु बाद में उसे सफलता मिली।

1162 ई० (अन्मकोंड अभिलेख की तिथि) के पहले ही रुद्र ने वेंगी पर भी आक्रमण किया था। 1158 ई० के द्राक्षाराम अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसका साम्राज्य पूर्व में समुद्रपर्यन्त विस्तृत था। वेलनांटि (आन्ध्रराज्य के वर्तमान करनूल, गुंटूर, कृष्णा तथा गोदावरी जिले) के शासक, चोलों के सामन्त थे। 1173 ई० के कुछ पहले चोलों की शक्ति जर्जरित हो गई थी, इसलिए वे वेलनांटि के सामन्तों को सक्रिय सहायता देने की स्थिति में नहीं रह गए थे। इसका लाभ उठाकर 1185 ई० के पूर्व किसी समय रुद्रदेव ने उन्हें अपने अधीन कर लिया।

कुलोत्तुंग राजेन्द्रचोड द्वितीय ने गोदावरी क्षेत्र में रुद्र की अधिसत्ता समाप्त करने के उद्देश्य से अपनी एक सेना भेजी। कुलोत्तुंग तथा उसके मित्र शासकों के अभिलेखों के प्राप्ति स्थानों से प्रमाणित होता है कि कम से कम 1181 ई० तक यह क्षेत्र उसी के प्रभुत्व मे था। इस प्रकार काकतीयों ने रुद्र के शासन के अन्तिम वर्षों में उक्त गोदावरी क्षेत्र को खो दिया था। 1172 ई० में चालुक्य-चोल राजराज द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् वेंगी के चालुक्य मल्लपदेव ने स्वतन्त्रता

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

घोषित कर दी और वह प्रोलनाडु[1] का अधिपति बन गया।

कोलनिगणपतिदेव के शिवयोगसागर नामक ग्रन्थ के अनुसार रुद्र ने अन्मकोंड के निकट ओरंगल्लु (वारंगल) नामक नगर का निर्माण कराया। वह शिव का उपासक एवं साहित्य और कला का उदार संरक्षक था। उसके शासन काल में अन्मकोंड तथा मन्त्रकूट नगरों में मन्दिरों का निर्माण हुआ। गणपेश्वर अभिलेख के अनुसार उसने अपने शत्रुओं के जिन नगरों को नष्ट किया था, वहां रुद्रेश्वर के अनेक मन्दिर बनवाए। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अन्मकोंड के सहस्र-स्तम्भीय मन्दिर का निर्माण भी उसी के राज्यकाल में हुआ था। द्राक्षारामम् अभिलेख में उसे 'विनयविभूषण' और 1195 ई० के पिल्लमडि अभिलेख में 'विद्वानों का शरणस्थल' कहा गया है। रुद्रदेव को नीतिसार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना का भी श्रेय दिया गया है। परन्तु यह सन्दिग्ध एवं विवादास्पद है।

शासन के अन्तिम वर्षों में रुद्र ने सम्भवतः पश्चिम में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से देवगिरि के यादवों पर आक्रमण किया, अथवा वह स्वयं यादवों की साम्राज्यवादी नीति का शिकार हुआ, निश्चितरूप से ज्ञात नहीं। परन्तु इसमें सन्देह नही कि यादवों से संघर्ष करता हुआ वह पराजित हुआ और मारा गया। पाटण अभिलेख के अनुसार जयतुगि (जैत्रपाल प्रथम) ने आन्ध्र की रमणियों के प्रमियों के सुख को समाप्त कर दिया था। हेमाद्रि का भी कथन है कि जैत्रपाल ने तिल्लिगाधिपरुद्र की बलि चढ़ाकर यज्ञ सम्पन्न किया था। रुद्र की मृत्यु 1195-96 ई० में हुई।

महादेव—रुद्रदेव का कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई महादेव ने 1195-96 ई० में शासन की बागडोर सम्भाली। उसमें राजोचित गुणों का अभाव था। वह शैव आचार्य ध्रुवेश्वर का शिष्य हो गया था और धार्मिक कार्यों में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करता था। महादेव के राज्यकाल के एक अभिलेख में वर्णित है कि राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् उसने राजसत्ता की उपेक्षा की और शिव की भक्ति में पूर्णरूपेण लीन हो गया।

प्रतापचरित्र में महादेव को एक वीर शासक बतलाया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार उसने अपने पुत्र गणपति के साथ यादव राज्य को आक्रान्त किया और सेउण (यादव) सेना से संघर्ष करता हुआ मारा गया। गणपति को

---

1. प्रोलनाडु में पिठापुरम तथा काकिनाड तालुकों के कुछ क्षेत्र शामिल थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यादव शासक जैतुगि ने बन्दी बना लिया था, परन्तु बाद में उसे बन्धन-मुक्त कर उसका राज्य वापस दे दिया। उपर्युक्त घटनाओं का आंशिक पुष्टिकरण शक सम्वत् 1172 (1249–50 ई०) के येनदन अभिलेख के साक्ष्य ने भी किया है। इस प्रकार महादेव की पराजय एवं मृत्यु के परिणामस्वरूप काकतीय राज्य में काफी अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। महादेव की दो पुत्रियों का उल्लेख हुआ है– मेलमा (मेलाम्बिका) और कुन्दाम्बिका। इन दोनों का विवाह नतवाडि के शासक बुद्ध के साथ हुआ था।

गणपति–कैद से मुक्त होने के बाद गणपति 1199 ई० के लगभग राज-सिंहासन पर बैठा। महादेव की मृत्यु तथा गणपति के बन्दी बनाए जाने के परि-णामस्वरूप काकतीय राज्य में अराजकता उत्पन्न हो गई थी, जिसका लाभ उठा कर कुछ सामन्तों ने विद्रोह कर दिया। निकटवर्ती शत्रु-शासकों ने भी काकतीय राज्य को आक्रान्त किया। इन आक्रान्ताओं में चोलकुलोत्तुंग तृतीय तथा नागति का समीकरण नहीं किया जा सका है।

गणपति के राज्यकाल में जर्जरित एवं पतनोन्मुख चोल साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों को अधिकृत करने के लिए काकतीयों, होयसलों तथा पांड्यों में दीर्घकाल तक संघर्ष चला। गणपति ने प्रारम्भ में चोड द्वितीय तथा वेलनांटि के राजा पृथ्वीश्वर को पराजित कर मार डाला और आन्ध्र राज्य में अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इसके पश्चात् उसने कलिंग के गंग शासक राजराज तृतीय को पराभूत किया और कलिंग तथा वारंगल के समुद्रतटीय क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की। परन्तु कलिंग में काकतीयों का प्रभुत्व अधिक समय तक नहीं कायम रह सका। राजराज तृतीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अनंगभीम तृतीय ने 1217 ई० के द्राक्षाराम्म् अभिलेख में त्रयिवसुन्धरा (त्रिकलिंग) तक के प्रदेश को स्वतन्त्र कराने का दावा किया है। शिवयोगसागर नामक ग्रन्थ (15वीं शताब्दी) के अनुसार गणपति के मन्त्री इन्दुलूरिसोमप्रधनि ने वेलनांटि तथा कलिंग को एक ही अभियान में जीता था।

अमरावती के कोटों, गुंटूर के तेलुगूचोडों, कृष्णा ज़िले के नाथवाडियों तथा दिवि के अय्य वंशीय शासकों ने गणपति की अधिसत्ता स्वीकार की थी। नेल्लूरपुर (नेल्लोर) के राजा गंडगोपाल को हराकर उसने उसके राज्य को अपने अधीन कर लिया। करनूल तथा कडप्पा ज़िलों पर गणपति का अधिकार हो जाने पर काकतीय राज्य का विस्तार होयसल राज्य की सीमा तक हो गया था। गणपति ने कर्नाटों को पराजित करने का दावा किया है। यहां कर्नाटों का अभिप्राय

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होयसलों से है। परन्तु गणपति होयसल राज्य के किसी प्रदेश को अपने साम्राज्य में नहीं मिला सका।

चेब्रोलु अभिलेख के अनुसार मद्र, पंचाल, विदेह, काशी, हम्मीर एवं हूणों के शासक गणपति के द्वार पर प्रार्थी बने थे। पाखल अभिलेख में वर्णित है कि गणपति के चारण उसकी प्रत्येक सभा में काशी, कलिंग, मगध, कुरु, केरल, चोल, तथा तुम्माण के हूण-शासकों को उपस्थित करते थे। उपर्युक्त विवरण मुख्यतः कल्पना पर आधारित हैं। काकतीय शासक ने वास्तव में चोलों एवं कलिंगों के विरुद्ध ही विजय प्राप्त की थी।

अन्त में गणपति का पांड्यों से शक्ति-संतुलन हुआ। जटावर्मन सुन्दरपांड्य के राज्यकाल में पांड्य काफी शक्तिशाली हो गए थे। जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने होयसलों के अतिरिक्त काकतीयों के मित्र एवं सामन्त नेल्लूर के तेलुगूचोडों को हराया और गणपति के राज्य के लिए भी ख़तरा उत्पन्न कर दिया था। इसलिए दोनों में युद्ध अवश्यंभावी हो गया[1]। मुद्गूर नामक स्थान पर हुए तुमुल युद्ध में गणपति पराजित हुआ और जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने कांची को जीतने के पश्चात् नेल्लोर पर अधिकार कर लिया। इन क्षेत्रों से पांड्य शासकों के अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। पांड्य सेना पूर्वी गोदावरी ज़िले में द्राक्षारामम् तक पहुंच गई थी, परन्तु बाद में गणपति ने उसे पराजित कर उस क्षेत्र को पुनः अधिकृत कर लिया।

इस प्रकार गणपति अपने दीर्घ शासन के अधिकांश भाग में संघर्षों में व्यस्त रहा और अनेक युद्धों में उसने सफलता प्राप्त की। उसके राज्यकाल के अभिलेख वारंगल के अतिरिक्त वर्तमान नलगोंडा, गोदावरी, कृष्णा, गुंटूर, कर्नूल, नेल्लोर, कडप्पा, महबूबनगर तथा चिंगलेपुट ज़िलों में प्राप्त हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि उसका साम्राज्य उत्तर में गोदावरी ज़िले से लेकर दक्षिण में चिंगलेपुट ज़िले तक विस्तृत था। साम्राज्य की पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए उसने अपने सामन्त भोज तथा गंगेयसाहनी नामक सेनापति को नियुक्त किया था।

गणपति ने अन्मकोंड के स्थान पर ओरंगल्लु (वारंगल) को राजधानी बनाया तथा इसमें दुर्गीकरण कराकर सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था की। वारंगल के दुर्ग के वैभवशाली तोरण-द्वार उसी के राज्यकाल में बनाए गए थे। उसने पिल्ल-

1. एन० वेंकटरमनैय्या के अनुसार जटावर्मन ने गणपति के मित्र वीरगंगगोपाल को पराजित कर दिया था। पांड्यों एवं काकतीयों के बीच हुए युद्ध का यही प्रमुख कारण था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मरि, रमप्पा तथा पालमपेट नामक स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण कराया। गणपति ने प्रशासन व्यवस्था के सुधार तथा आर्थिक समृद्धि के लिए भी महत्व-पूर्ण कदम उठाये। मोटुपल्लि अभिलेख के विवरण से प्रमाणित होता है कि मोटु-पल्लि उसके राज्यकाल में बहुत महत्वपूर्ण बन्दरगाह था और वहां व्यापारिक-भांड के साथ अनेक देशों से व्यापारी आते थे। परन्तु इस पत्तन के निकटवर्ती प्रदेशों के शासक बाहरी वणिकों से काफी कर वसूल करते थे, उन्हें अनेक प्रकार से तंग करते थे और तट पर रखी गई वस्तुओं पर कब्ज़ा कर लेते थे। गणपति ने इन गतिविधियों को समाप्त कर न केवल व्यापारियों के जान-माल की सुरक्षा की, बल्कि उन्हें करों में छूट दी तथा अन्य सुविधाएं भी प्रदान कीं। इससे विदशी व्यापार को काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

गणपति ने नारम्बा तथा परमाम्बा के साथ विवाह किया। ये दोनों पिनचोडि की पुत्रियां थीं। गणपति का कोई पुत्र नहीं था, किन्तु दो पुत्रियां थीं–रुद्रमदेवी (रुद्राम्बा) तथा गणपमदेवी या गणपाम्बा। उसने रुद्राम्बा का विवाह पूर्वी चालुक्य वीरभद्र के साथ तथा गणपाम्बा का कोट वंशीय वेत के साथ किया। गणपति ने ज्येष्ठ पुत्री रुद्राम्बा को अपना उत्तराधिकारी चुना, उसे पुत्रवत् माना और उसका नाम रुद्रदेव रखा। 1260 ई०अथवा इससे कुछ पहले से रुद्रदेव ने सह-शासक के रूप में अपने पिता को प्रशासन में सक्रिय सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया था। गणपति की अन्तिम ज्ञात तिथि 1261 ई० है।

रुद्राम्बा (रुद्रमदेवी, रुद्रदेव)–रुद्राम्बा 1259-60 ई० से प्रशासन में अपने पिता गणपति को सहयोग देने लगी थी और उसी के नाम पर शासन-कार्य संचालित करती थी। गणपति की मृत्यु के पश्चात् 1261 ई० के आस-पास उसने स्वतन्त्र शासिका के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। जन्निगदेव के 1269 ई० के गुंटूर जिले के दुग्गि नामक स्थान से प्राप्त कर एक अभिलेख में उसे गणपतिदेव की **पट्टोद्धृति** कहा गया है। यह शब्द पट्टोद्धृति (राजत्व के लिए मनोनीत) के स्थान पर भूल से लिखा गया प्रतीत होता है। परन्तु रुद्राम्बा के उत्तराधिकार को सामान्य समर्थन नहीं प्राप्त था और उसके शासन के प्रारम्भ में ही विद्रोह होने लगे। प्रतापचरित्र के अनुसार गणपतिदेव की एक अन्य रानी से उत्पन्न हरिहरदेव एवं मोरारिदेव नामक पुत्र रुद्राम्बा को अपदस्थ करने के लिए प्रयत्नशील हो गए। अपने समर्थकों को संगठित कर उन्होंने वारंगल को अधिकृत कर लिया और रुद्राम्बा को राजधानी के बाहर निकाल दिया। बाद में रुद्राम्बा ने अपने विरोधयों का दमन करने में सफलता प्राप्त की और अपने सौतेले भाइयों

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को मार दिया। परन्तु प्रतापचरित्र के अतिरिक्त अन्य किसी साक्ष्य में गणपति के उपर्युक्त पुत्रों का उल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए इस विवरण की प्रामाणिकता असन्दिग्ध नही है। रेर्वचल राजवंश के इतिहास से सम्बन्धित वेलुगोटिवारि-वंशावलि के अनुसार, रुद्राम्बा ने मुख्यत: रेर्चचल प्रसादादित्य की सहायता से अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। प्रसादादित्य ने उसके शत्रुओं को मार दिया और उसका अभिषेक कराकर काकतीयराज्यस्थापनाचार्य एवं रायपितामहांक के विरुद धारण किए।

देवगिर के यादव रुद्राम्बा के प्रमुख शत्रु थे। यादव शासक महादेव ने 1260 ई० के कुछ ही समय बाद वारंगल को आक्रान्त कर काकतीयों को पराजित कर दिया। महादेव को उसके अभिलखों मे तिल्लिंगराय (तेलंगाना के शासक) को उखाड़ने वाला कहा गया है। उसने काकतीयों के बहुत से हाथी तथा पांच वाद्य-यन्त्र अपहृत कर लिए और रुद्राम्बा को केवल स्त्री होने के कारण छोड़ दिया। परन्तु प्रतापचरित्रम के अनुसार, जब महादेव ने वारंगल को घेर लिया, तो रुद्राम्बा ने 15 दिन तक उसका डटकर मुकाबला किया और संउण सेना के तीन लाख पैदल सैनिक एवं एक लाख घुड़सवार मारे गए। महादेव को पराजित होकर भागना पड़ा और रुद्राम्बा ने देवगिरि तक उसका पीछा किया। अन्त में यादव शासक को उससे सान्धि करनी पड़ी जिसकी शर्तों के अनुसार उसने युद्ध के हर्जाने के रूप मे एक करोड़ सोने के सिक्के देना स्वीकार किया। इस धनराशि को रुद्राम्बा ने अपने सनापतियों आदि में बांट दिया और देवगिरि में एक विजय-स्तम्भ स्थापित करने के पश्चात् उसकी सेना वहां स वापस आ गई।

वस्तुत: दोनों पक्षों के साक्ष्यों के उपर्युक्त विवरण अतिरंजित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आक्रान्ता महादेव को प्रारम्भ में काकतीयों के विरुद्ध कुछ सफलता मिली, परन्तु बाद में उसे रुद्राम्बा ने निर्णायक रूप से पराजित कर दिया।

रुद्राम्बा का सामन्त अम्बदेवमहाराज, बल्लुरिपट्टन का शासक था। वह काकतीयों के शत्रु पांड्यों तथा यादवों से मिल गया और उसने अपने को करनूल एवं कडप्पा जिलों का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इसके पश्चात् उसने, गणपति द्वारा नेल्लूरपुर (नेल्लोर) के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किए गए गंडगोपाल को भी अपदस्थ कर दिया। 1260 ई० में शेन्दमंगलम् के पल्लव शासक कोप्पेरुंजिंग ने काकतीयों पर विजय प्राप्त करने के बाद कांची पर अधिकार कर लिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

1263 ई० में मूतकूर की विजय के परिणामस्वरूप जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने काकतीय साम्राज्य के कई प्रदेशों को अधिकृत कर इन्हें वीरगंडगोपाल के भाइयों को दे दिया था। विक्रमपांड्य ने भी काकतीयों पर आक्रमण किया, किन्तु सफलता नहीं प्राप्त कर सका। वीरपांड्य के चिदम्बरम् अभिलेख में बतलाया गया है कि उत्तर में (वारंगल में) एक स्त्री शासन कर रही थी, इसलिए उसने उस दिशा को जीतने के लिए अपनी सेना नहीं भेजी। पांड्यों द्वारा विजित भू-भागों को रुद्राम्बा ने पुनः अधिकृत कर लिया। कडप्पा एवं नेल्लोर जिलों से प्राप्त रुद्राम्बा तथा उसके सामन्तों के अभिलेख इन क्षेत्रों पर काकतीयों का प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं।

रुद्राम्बा के शासन के प्रारम्भिक के 15-16 वर्षों में गोदावरी नदी की घाटी तथा वेंगी प्रदेश में काकतीयों की प्रभुसत्ता के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। इन क्षेत्रों में उस समय पूर्वी चालुक्य तथा हैहय राजवंशों के शासक राज्य कर रहे थे। रुद्राम्बा ने पोतिनायक एवं प्रोलिनायक नामक सेनापतियों के नेतृत्व में वेंगी पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजी जिसने गोदावरी नदी के तटवर्ती किसी स्थान पर गजपति नामक राजा को पराजित कर गजपतिमत्तमातंगसिंह (गजपति के लिए सिंह के समान) तथा ओड्डियरायमानमर्दन (गजपति के दर्प का मर्दन करने वाला) की उपाधियां धारण कीं। इस विजय के परिणामस्वरूप आन्ध्र राज्य में काकतीयों की अधिसत्ता स्थापित हो गई। उपर्युक्त क्षेत्र में रुद्राम्बा तथा उसके सामन्तों के कई अभिलेख मिले हैं।

वेनिस के यात्री मार्कोपोलो ने रुद्राम्बा की काफी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि गुंटूर जिले में मोटुपल्लि (Mutfili) राज्य मलाबार से लगभग 1600 किलो मीटर उत्तर की ओर स्थित था, वहां 40 वर्ष से एक स्त्री शासन कर रही थी। वह बहुत बुद्धिमान, सुयोग्य, न्यायप्रिय एवं शान्त स्वभाव की थी, उसके राज्य में हीरे की खाने थीं, इत्यादि। रुद्राम्बा के शासन का अन्त 1295 ई० के आस-पास हुआ।

प्रतापरुद्र—रुद्राम्बा की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री मुम्मडम्म का पुत्र प्रतापरुद्र 1295 ई० में वारंगल के राजसिंहासन पर बैठा। उसे रुद्राम्बा के राज्यकाल में ही प्रशासन से सम्बद्ध कर लिया गया था और उस दौरान में उसने काकतीयों के कुछ शत्रुओं का दमन किया था। राज्यारोहण के उपरान्त उसने प्रशासन को चुस्त बनाया और सेना को पुनः व्यवस्थित एवं संगठित किया। एक पारम्परिक विवरण के अनुसार उसने वेलम जनजाति के 77 व्यक्तियों को नायक के पद पर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नियुक्त किया तथा वारंगल के दुर्ग के 77 बुर्जों में से प्रत्येक बुर्ज की सुरक्षा का उत्तरदायित्व एक नायक को दिया। 1309 ई० में प्रतापरुद्र ने विद्रोही सामन्त अम्बदेव का दमन करने के लिए सेनापति महारायपट्टसाहिणिसोमय के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने अम्बदेव को अपदस्थ कर उसके राज्य को अपने अधीन कर लिया और सोमयनायक को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। प्रतापरुद्र के सेनानायक अडिदम्म ने नेल्लोर को आक्रान्त कर वहां के शासक मनुमगंडगोपाल को मार दिया। परन्तु वह नेल्लोर को अधिकृत नहीं कर सका और कम से कम 1315 ई० तक मुनमगंडगोपाल का पुत्र अथवा उत्तराधिकारी विजयगंडगोपाल या राजगंडगोपाल वहां शासन कर रहा था।

1303 ई० में मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में तेलंगाना प्रदेश पर अलाउद्दीन खिलजी का प्रथम आक्रमण हुआ। वेलुगोटिवारिवंशावलि के अनुसार, प्रतापरुद्र ने मुस्लिम सेना को पराजित कर दिया। पोतुगंटिमैलि नाम के उसके एक अधिकारी ने भी दिल्ली के तुरुष्कों का मानमर्दन करने का दावा किया है। परन्तु इस असफलता से अलाउद्दीन हतोत्साहित नहीं हुआ और उसने काकतीय राज्य पर दूसरा आक्रमण करने का निश्चय किया। 1309 ई० में उसने पुनः अपनी सेना भेजी जिसने तेलंगाना की ओर बढ़कर सर्वर के दुर्ग को घेर लिया। इस दुर्ग के रक्षकों ने प्रारम्भ में मुस्लिम सेना से युद्ध किया, परन्तु अपनी पराजय निश्चित समझकर उन्होंने परिवारों सहित अपने को आग में भस्मीभूत कर दिया। सर्वर के कुछ निवासियों ने प्रतापरुद्र को इस घटना की सूचना दी। वह नौ लाख पैदल सैनिकों, 20 हज़ार घुड़सवारों और एक हज़ार हाथियों की शक्तिशाली सेना के साथ उसका मुकाबला करने के लिए तैयार था। परन्तु मुस्लिम सेनानायक मलिक नायब ने प्रतापरुद्र को अपनी सम्पूर्ण वाहिनी एकत्रित करने का अवसर ही नहीं दिया। तेज़ी से बढ़ता हुआ वह वारंगल तक पहुंच गया और इसे घेर लिया। वारंगल नगर में एक दुर्ग के अन्दर दूसरा दुर्ग था। ये दोनों दुर्ग उसके चारों ओर बनाई गई गहरी खाई द्वारा अत्यधिक सुरक्षित एवं दुर्भेद्य थे। भीतरी दुर्ग में सेनाधिकारी एवं सामन्त आदि अपने राजकोष एवं सैन्य-शक्ति समेत रहते थे। 19 जनवरी, 1310 ई० में वारंगल के किले का घेरा प्रारम्भ हुआ जो 25 दिन तक चला। प्रारम्भ में काकतीयों को मुस्लिम सेना के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई, परन्तु बाद में संचार-व्यवस्था के भंग कर दिए जाने पर भीतरी दुर्ग में घिरे व्यक्ति रसद आदि के अभाव के कारण अधिक समय नहीं लड़ सके और प्रतापरुद्र सन्धि करने के लिए विवश हो गया। उसे एक विशाल धनराशि तथा हाथी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वार्षिक कर के रूप में दिल्ली के सुलतान को देने की शर्त स्वीकार करनी पड़ी। 1310 ई० में मुस्लिम सेना ने अन्मकोंड पर भी अधिकार कर लिया।

इस पराजय का प्रतापरुद्र की प्रतिष्ठा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और उसके अधीनस्थ मल्लिदेव तथा नेल्लोर के तेलुगुचोडों ने विद्रोह कर दिया। मलिक काफूर के वापस जाने के पश्चात् प्रतापरुद्र ने इन विद्रोहियों को दबाने का प्रयास किया। उसने मल्लिदेव के विरुद्ध गोंकय के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी। मल्लिदेव पराजित हुआ तथा मारा गया और गंडिकोट क्षेत्र पर काकतीयों का अधिकार स्थापित हो गया। परन्तु तेलुगुचोडों पर आक्रमण करने के पहले ही दिल्ली के सुल्तान के आदेश से प्रतापरुद्र को अपनी सेना के साथ पांड्यों पर आक्रमण करने के लिए जाना पड़ा। प्रतापरुद्र स्वयं भी पांड्यों पर आक्रमण करना चाहता था, इसलिए उसने मुप्पिडिनायक के नेतृत्व में तुरन्त अपनी सेना भेज दी। इस अभियान में मुस्लिम सैन्य-शक्ति की अपेक्षा प्रतापरुद्र का सम्भवतः बहुत अधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा। काकतीय सेना ने नेल्लोर के शासक श्री-रंगनाथ को पराजित किया और उसी प्रदेश के निकटवर्ती क्षेत्र के कोटतिक्क नामके एक अन्य नृपति पर भी विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् रविवर्मन को पराजित कर प्रतापरुद्र ने कांची को अधिकृत कर लिया। उसने होयसलों को भी हराया और तिरुचिरापल्ली जिले तक के सभी क्षेत्रों पर अपनी अधिसत्ता स्थापित कर दी। इन विषयों के परिणामस्वरूप प्रतापरुद्र तथा मुस्लिम सेना पांड्य राज्य के निकट पहुंच गई थी। इसलिए पांड्यों ने युद्ध की तैयारी की। वेलुगोटिवारिवंशावलि के अनुसार पांच पांड्य शासक अपनी सेनाओं के साथ काकतीयों से युद्ध करने के लिए कांची की ओर बढ़े और कांची के निकट किसी स्थान पर भीषण युद्ध हुआ। प्रतापरुद्र के सामन्त रेचर्रलएर्रदाच ने इस संघर्ष में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने पाड्यों की हस्ति-सेना के नायक को बन्दी बना लिया था। इस शक्ति-संतुलन में काकतीयों का पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। कांची को अधिकृत करने के पश्चात् प्रतापरुद्र ने मानवीर को वहां का गर्वनर नियुक्त किया और देवरिनायक को आदेश दिया कि वह सुंदरपांड्य को पांड्य राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करे।

इसी दौरान दिल्ली में मलिक काफ़ूर का बध करने के पश्चात् अलाउद्दीन का दूसरा पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारकशाह गद्दी पर बैठ गया। इस क्रान्ति का लाभ उठा कर सेउण शासक हरपालदेव ने मुस्लिम सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और प्रतापरुद्र ने अपना वार्षिक कर नही भेजा। अमीरखुसरो के अनुसार, इस

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विद्रोह को दबाने तथा काकतीय शासक से कर वसूल करने के उद्देश्य से कुतुबुद्दीन ने खुसरोखां के नेतृत्व में एक सेना इस आदेश के साथ वारंगल भेजी कि यदि प्रतापरुद्र सम्पूर्ण कर की अदायगी न करे, तो उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया जाय। इस सन्देश को प्राप्त करने के बाद भी प्रतापरुद्र ने कर देने से इन्कार कर दिया। इसलिए खुसरोखां उसके विरुद्ध बढ़ा। काकतीय शासक ने एक हजार अश्वारोहियों तथा एक विशाल पैदल-सेना के साथ खुसरोखां से युद्ध किया, किन्तु उसे केवल घुड़सवारों की छोटी मुस्लिम सेना ने पराजित कर दिया। खुसरोखां ने वारंगल के बाहरी दुर्ग पर अधिकार कर लिया और प्रतापरुद्र को भयभीत होकर उससे सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार काकतीय शासक ने पांच जिले, 100 हाथी तथा 22 हजार घोड़े कुतुबुद्दीन को वार्षिक कर के रूप में देना स्वीकार किया तथा उसे बहुत सा सोना एवं बहुमूल्य रत्नादि भेंट किए। इस सम्पत्ति को लेकर मुस्लिम सेना वापस लौट गई।

अमीरखुसरो का उपर्युक्त विवरण निष्पक्ष नहीं है और यह इसामी के विवरण से भिन्न है। इसामी (1349 ई०) ने लिखा है कि प्रतापरुद्र ने खुसरोखां के सन्देश-वाहक का स्वागत किया और उसके शिविर में बहुमूल्य उपहारों के साथ शेष कर का भुगतान कर दिया। इससे वह सन्तुष्ट हो गया और सुल्तान कुतुबुद्दीन के आदेशानुसार उसने प्रतापरुद्र को एक छत्र, एक दुर्लभ तथा रत्न-जटित काबा भेंट किया। इसामी की यह सूचना अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है।

1320 ई० में गियासुद्दीन तुगलक ने अपने को सुलतान घोषित कर दिया और 1323 ई० में उसने अपने पुत्र उलुगखां को तेलंगाना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। फिरिश्ता (17वीं शताब्दी का प्रारम्भ) ने लिखा है कि प्रतापरुद्र ने विगत क्रान्तियों के दौरान कर भेजने से इन्कार किया था। इसलिए उस पर आक्रमण किया गया। फिरिश्ता के अनुसार प्रतापरुद्र ने मुस्लिम सेना का डटकर मुकाबला किया और उसे पराजित कर काफी दूर तक खदेड़ा। इब्नबतूता, बरनी तथा कुछ अन्य मुस्लिम लेखकों ने प्रतापरुद्र पर गियासुद्दीन के आक्रमण के कारण कुछ भिन्न बतलाए हैं। तथ्य जो भी हो, गियासुद्दीन ने कुछ समय के पश्चात् तेलंगाना पर आक्रमण करने के लिए उलुगखां को पुनः भेजा। इस अभियान में मुस्लिम सेना को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उसने पहले वारंगल के बाहरी दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बाद में आन्तरिक किले पर। उलुगखां प्रतापरुद्र

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया। 1330 ई० के आस-पास के विलस अभिलेख में बतलाया गया है कि जब प्रतापरुद्र को बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाया जा-रहा था, तो (मार्ग में ही) नर्मदा नदी के तट पर उसकी मृत्यु हो गई। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उसने सम्भवतः आत्महत्या कर ली थी। प्रतापरुद्र सम्भवतः निःसन्तान था। अन्नमदेव नामक उसके एक भाई का उल्लेख मिलता है। प्रतापरुद्र के साथ ही काकतीय वंश का अन्त हो गया।

वंशानुक्रम[1]

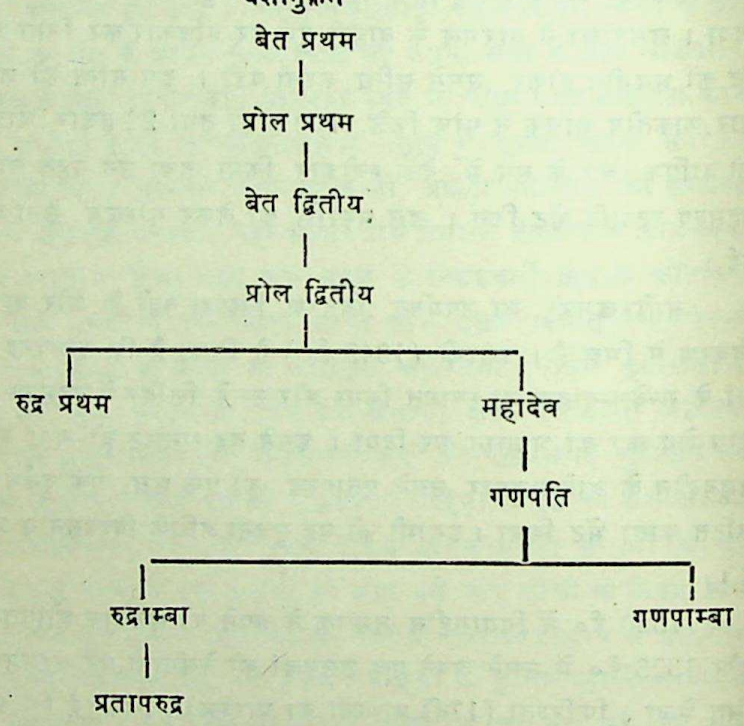

1. Struggle for Empire, p. 863.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

10

चेदि शासक खारवेल

मौर्य सम्राट अशोक ने कलिंग[1] पर विजय प्राप्त कर इसे अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। किन्तु इसके बाद काफी समय तक इस राज्य के इतिहास के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। कब तक कलिंग मौर्य साम्राज्य का अंग रहा और मौर्यों के पतन के उपरान्त किन राजाओं अथवा राजवंशों ने कलिंग में शासन किया, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। प्रथम शताब्दी ई० पूर्व के उत्तरार्ध में खारवेल नामक एक स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली शासक कलिंग के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित था। इस राजा के चरित्र तथा उपलब्धियों आदि के विषय में जानकारी का एकमात्र साधन उसके राज्यकाल का तिथि-रहित हाथीगुम्फा अभिलेख है[2]।

हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार खारवेल चेदि राजवंश का शासक था और उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि की थी। (चेतिराजवसवधनेन)। इस कुल का प्रथम शासक महामेघवाहन और तीसरा खारवेल था। परन्तु महामेघ-वाहन एवं खारवेल के बीच के अन्तराल में शासन करने वाले राजा का नाम हाथीगुम्फा अभिलेख में सुरक्षित नहीं बचा है। सम्भव है कि खारवेल महामेघ-

1. विभिन्न साक्ष्यों में कलिंग राज्य की भौगोलिक सीमाएं भिन्न-भिन्न बतलाई गई हैं। इसके अन्तर्गत महानदी एवं गोदावरी नदियों के मध्य का पूर्वी समुद्रतटीय भू-भाग था। हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार यह राज्य मोटे तौर पर येलमंचिलि, तथा विशाखापटनम ज़िले में चीरपुरुपल्ले तक विस्तृत था। पांचवी शताब्दी में कलिंगाधिपति उपाधि धारण करने वाले शासकों के अधीन कृष्णा और महानदी के बीच का समस्त समुद्रतटीय क्षेत्र था (EI, Vol. XXX, p. 144)। महाभारत (वनपर्व, 114/31) के अनुसार वैतरणी कलिंग राज्य की उत्तर-पूर्वी सीमा थी।
2. यह अभिलेख उड़ीसा के पुरी ज़िले में उदयगिरि की चट्टान पर उत्कीर्ण है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाहन का पौत्र रहा हो। उक्त अभिलेख की प्रथम पंक्ति में खारवेल को ऐर (ऐल) महाराज, महामेघवाहन तथा कलिंगाधिपति की उपाधियां दी गई हैं। प्रथम उपाधि के पाठ एवं अर्थ के विषय में मत-भिन्नता हैं। बेनीमाधव बरुआ ने ऐर को आर्य का समानार्थी माना है जिसका अर्थ 'स्वामी' है। महामेघवाहन का अर्थ है 'महामेघ अर्थात हाथी जिसका वाहन हो'। यह इन्द्र का विरुद है।

एक प्राचीन उड़िया पांडुलिपि के साक्ष्य के आधार पर यह भी सुझाव दिया गया है कि खारवेल कलिंग के भील वंश से सम्बन्धित था। उक्त पांडुलिपि में बतलाया गया है कि मौर्यों के पश्चात् कलिंग में भील वंश ने शासन किया जिसमें कुल सात राजा हुए–ऐरभील, खरभील, मुरभील, नरभील दरभील, सर-भील, खरभील द्वितीय। इनमें से अन्तिम शासक ने खंडाचल (खंडगिरि) पर एक राजप्रासाद बनवाया था[1]। परन्तु इस विवरण की पुष्टि किसी अन्य साक्ष्य द्वारा नहीं हुई है। अतएव इसे प्रामाणिक मानना कठिन है।

उदयगिरि पर्वत की मंचपुरी गुफा की नीचे की मंजिल का निर्माण आर्य-महामेघवाहन वंशीय कलिंगराज वक्रदेव[2] ने, और ऊपर की मंजिल का खारवेल की पत्नी ने कराया था। यदि नीचे की मंजिल ऊपरी मंजिल के बाद मे बनी थी, तो वक्रदेव को खारवेल का पिता माना जा सकता है।

उपलब्धियां–हाथीगुम्फा अभिलेख में खारवेल के प्रारम्भिक जीवन, शिक्षा, युवराजत्व, प्रशासन सम्बन्धी अनुभव तथा उसके शासन के प्रथम वर्ष से लेकर 13वें वर्ष तक की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण है। अभिलेख का प्रारम्भ जैन **अर्हंतों** तथा **सिद्धों** की वन्दना से हुआ है। इसके बाद बतलाया गया है कि प्रारम्भिक 15 वर्षों में उसने एक राजकुमार के लिए उपयुक्त विभिन्न क्रीड़ाओं के अतिरिक्त लेख (accountancy, royal correspondence), गणना (गणित या finance) तथा कानून या राजशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की[3] और 15 वर्ष की आयु में वह युवराज बना दिया गया। युवराज की हैसियत से उसने नौ वर्ष तक प्रशासन-कार्य में सक्रिय भाग लेकर महत्वपूर्ण अनुभव अर्जित किया। 24वें

---

1. देखिए Das, D. NI Early History of Kalinga; pp 56,59. Journal of Bihar Research Society, Vol. XVI, pp. 189-205.
2. कुछ विद्वानों ने वक्रदेव के स्थान पर **तकदेव, कुदेय** तथा **कदम्य** भी पढ़ा है।
3. (पं) दरस-वसानि सीरि-(कडार)-सरीखताकीडिताकुमारकीडिका।
   ततो लेखरूपगणना-व्यवहार-विधि-विसारदेन सबविजावदातेन।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्ष की समाप्ति पर उसका औपचारिक रूप से राज्याभिषेक किया गया[1] और उसने शासन की बागडोर सम्भाली। खारवेल ने ललाक वंश के हस्तिसिंह नामक शासक के प्रपौत्र की पुत्री के साथ विवाह किया था।

राज्यकाल के प्रथम वर्ष में खारवेल ने आंधी-तूफ़ान से नष्ट हुए कलिंग-नगर के प्रमुख द्वारों एवं प्राचीर का जीर्णोद्धार कराया। अपनी राजधानी को आकर्षक बनाने के लिए उसने उद्यान तथा सीढ़ियों युक्त तालाब निर्मित कराए। प्रजा के मनोविनोद के लिए उसने 35 लाख सिक्के व्यय किए[2]। इन सिक्कों के नाम अथवा धातु का उल्लेख नहीं किया गया है।

दूसरे वर्ष खारवेल ने शातकर्णि नामक शासक के विषय में विचार न करते हुए (या उसकी अवहेलना करते हुए) पश्चिम दिशा की ओर अपनी शक्तिशाली चतुरंगिणी सेना भेजी। इस सेना ने कन्हवेणा तक पहुंचकर असिक-नगर को आतंकित किया। उपर्युक्त अंश में वर्णित कन्हवेणा की पहचान तथा असिकनगर के पाठ एवं समीकरण के विषय में मत-भिन्नता है। आर० डी० बनर्जी, के० पी० जायसवाल तथा हेमचन्द्र रायचौधरी ने असिकनगर को मुसिकनगर पढ़ा है और धवलीकर महोदय ने मुसिकनगर का समीकरण कर्नाटक राज्य के मास्की नामक स्थान से किया है। बी० एम० बरुआ, वी० वी० मिराशी तथा डी० सी० सरकार ने मुसिकनगर के स्थान पर असिकनगर (ऋषिकनगर) पाठ स्वीकार किया है। मिराशी का मत है कि मुसिकनगर नाम प्राचीन साक्ष्यों में नहीं आया है, जबकि असिक या ऋषिकनगर का उल्लेख रामायण एवं महाभारत के अतिरिक्त नासिक प्रशस्ति तथा अन्य प्राचीन साक्ष्यों में हुआ है। उन्होंने असिक (ऋषिक) क्षेत्र की स्थिति अश्मक, अनूप तथा विदर्भ जनपदों के निकट मानी है। के० पी० जायसवाल के अनुसार यह कृष्णा तथा मूसी नदियों के संगम के निकट, और डी० सी० सरकार के अनुसार कृष्णा नदी के तट पर स्थित था।

कन्हवेणा को आन्ध्र राज्य की कृष्णा नदी माना गया है। बी० एम० बरुआ, ई० जे० रैप्सन तथा वी० वी० मिराशी ने इसकी पहचान बैणगंगा की सहायक कन्हन नदी से की है। हाथीगुम्फा अभिलेख का शातकर्णि, सातवाहन

1. संपुंण-चतुवीसति-वसो तदानि··कलिंगराज··वसे···महाराजाभिसेचनं।
2. पधमे वसे वातविहत-गोपुरप्राकारनिवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरि खिवी (रं) सितलतडागपाडियो च बंधापयति सवूयान प (टि) संथपनं च ···पनति (सि) साहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासक शातकर्णि प्रथम प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार खारवेल शातकर्णि का मित्र था, इसलिए उसने उसकी सेना को अपने राज्य से होकर जाने में आपत्ति नहीं की। यह भी सुझाव दिया गया है कि खारवेल शातकर्णि की सहायता के लिए अपनी सेना सहित गया था। परन्तु ये मत निराधार हैं, क्योंकि ऐसा मानने कर **अचितयिता** (बिना सोचे हुए अथवा बिना परवाह किए हुए) शब्द के प्रयोग का औचित्य सिद्ध नहीं होता। तथ्य जो भी हो, खारवेल को सम्भवतः शातकर्णि के विरुद्ध कोई सफलता नहीं मिली, इसलिए इस अभियान के परिणाम के विषय में हाथीगुम्फा अभिलेख मौन है। शातकर्णि प्रथम भी काफी शक्तिशाली शासक था और ऐसा प्रतीत होता है कि वह खारवेल की सेना को पीछे खदेड़ने में उससे अपने राज्य की सुरक्षा करने में सफल रहा। इसकी अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि इस तथ्य से हो जाती है कि खारवेल को दो वर्ष बाद ही महाराष्ट्र में शासन करने वाले रठिकों तथा भोजकों पर आक्रमण करना पड़ा जो सातवाहनों के अधीन रहे होंगे।

पांचवें वर्ष में उसने तनसुलिय नामक स्थान से अपनी राजधानी कलिंग-नगर तक जाने वाली नहर (प्रणाली) का जीर्णोद्धार कराया। इस नहर का निर्माण नन्द राजा ने 300 वर्ष पूर्व कराया था[1]। यहां नन्द शासक का नाम वर्णित नहीं है। अधिकांश विद्वानों ने उसका समीकरण महापद्मनन्द से किया है। पांचवें वर्ष में ही खारवेल ने अपनी राजधानी के लोगों को कई सुविधाएं प्रदान कीं और ग्रामीण जनता के कल्याण के उद्देश्य से करो में छूट दी। इन जनहितकारी कार्यों में राजकोष के कई लाख सिक्के खर्च हुए। के० पी० जायसवाल के अनुसार हाथीगुम्फा अभिलेख के इसी अंश में खारवेल द्वारा किए गए राजसूय-यज्ञ का भी उल्लेख हुआ है, परन्तु वास्तव में उनका पाठ अशुद्ध है और अन्य विद्वानों ने राजसूय के स्थान पर **राजसिवय, राजसिरि** तथा **राजसेय** पढ़ा है।

खारवेल के शासन के छठे तथा सातवें वर्षों की उपलब्धियां स्पष्ट नहीं हैं। आठवें वर्ष में उसने गोरथगिरि (बिहार राज्य के गया ज़िले में बराबर की पहाड़ियां) पर आक्रमण कर वहां के दुर्गों को नष्ट किया। इसके पश्चात् उसने राजगृह (गया ज़िले में राजगिर) को आक्रान्त किया। इसी सन्दर्भ में यह भी वर्णित है कि दिमित (डिमित या दिमत) नामक यूनानी शासक उससे भयभीत

---

1. पंचमे च दानी वसे नन्दराज-ति-वस-सत-ओ (घा)-टितं तनसुलियवाटा पणाडि नगरं पवेस (य)–ति।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होकर मथुरा भाग गया[1]। इस राजा के नाम के पाठ एवं समीकरण के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। के० पी० जायसवाल तथा जे० जी० डुब्रील ने उसकी पहचान हिन्द-यूनानी शासक डिमेट्रियस (लगभग 190-165 ई०पू०) से की है। परन्तु खारवेल की बहुमान्य तिथि के आधार पर इसका खंडन हो गया है। वी० वी० मिराशी ने इसे डिमेट्रियस प्रथम का पुत्र डिमेट्रियस द्वितीय माना है, जो मथुरा के निकटवर्ती क्षेत्र का शासक था। यह मत भी नितान्त सन्दिग्ध है। कुछ विद्वानों ने दिमित को पंजाब का, और कुछ ने मथुरा का यवन शासक माना है। इस राजा का नाम तथा उसकी पहचान वस्तुतः अभी तक अनिश्चित है।

नवें वर्ष की घटनाओं का विवरण हाथीगुम्फा अभिलेख में सुरक्षित नहीं है। 10वें वर्ष में खारवेल ने उत्तर भारत पर दूसरा आक्रमण किया। किन्तु इसके परिणाम का उल्लेख नहीं हुआ है। 11वें वर्ष में उसकी सेना दक्षिण की ओर बढ़ी, पिथुन्डनगर को जीता तथा ध्वस्त किया और इसे गधों द्वारा जुतवाया। पिथुन्ड का समीकरण टालमी द्वरा वर्णित पितिन्द्र (Pityndra) से किया गया है जो आन्ध्र राज्य के मसुलीपटम क्षेत्र में स्थित था। 11वें वर्ष में ही खारवेल ने तमिल राज्यों के उस संघ को भी परास्त कर दिया जो 113 (कुछ विद्वानों के अनुसार 131) वर्ष से खतरा उत्पन्न किए हुए था। परन्तु अन्य किसी साक्ष्य में हमें तमिल शासकों के संघ का उल्लेख नहीं मिलता जो इतने अधिक समय से शक्तिशाली बना हुआ था।

12वें वर्ष में उसने मगध राज्य पर पुनः आक्रमण कर वहां के शासक बहसतिमित (बृहस्वातिमित्र) को अपनी चरण-वन्दना करने के लिए बाध्य किया। इस विजय के पश्चात् वह मगध राज्य से बहुत सी धन-सम्पत्ति तथा उस जैन-प्रतिमा को भी वापस लाया जिसे नन्द सम्राट (महापद्मनन्द) कलिंग से ले गया था[3]। कुछ विद्वानों के अनुसार गंगानदी के तट पर खारवेल का बहसतिमित से युद्ध हुआ होगा। बहसतिमित सम्भवतः कोई स्थानीय मित्र वंशीय शासक था जिसने इन्द्राग्निमित्र एवं ब्रह्ममित्र के बाद मगध में शासन

---

1. मधुरं अपयातो यवनरा (ज) (डिमित, दिनेशचन्द्र सरकार)।
2. कुछ विद्वानों ने इसे त्रमिरदहसंघात पढ़ा है। परन्तु यह पाठ तथा इसका अर्थ असन्दिग्ध नहीं है।
3. नंदराजनीत च कलिं (ग-जिन संनिवेश·····)। बी० एम० बरुआ ने यहां **कलिंगजन** पढ़ा है जिसका अर्थ 'कलिंग की प्रजा' है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया होगा[1]। 13वें वर्ष में उसने सुदूर दक्षिण के पांड्य शासक को भी पराजित किया और उससे बहुमूल्य मोती तथा रत्न उपहार में प्राप्त किए।

खारवेल ने मगध राज्य पर दो आक्रमण किए थे। प्रथम आक्रमण में उसे या तो निर्णायक सफलता नहीं मिली, अथवा इस जनपद को और अधिक क्षति पहुंचाने के मन्तव्य से उसने दूसरा आक्रमण किया होगा। मौर्य सम्राट अशोक तथा नन्द शासक महापद्मनंद ने पहले कलिंग राज्य पर विजय प्राप्त की थी। खारवेल ने मगध को दो बार जीतकर सम्भवतः उस राज्य के प्रति अपनी प्रतिशोध की भावना को सन्तुष्ट किया था।

एक महान विजेता एवं साम्राज्य निर्माता के अतिरिक्त खारवेल प्रजापालक, श्रेष्ठ गुणसम्पन्न, उदार तथा धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था। उसने धमराज (धर्मराज) एवं खेमराज (क्षेमराज अर्थात् शांति का शासक) नामक विरुद धारण किए। वह मल्लयुद्ध, नृत्य एवं संगीत की गोष्ठियों का आयोजन करता था। उसने उस नहर का जीर्णोद्धार कराया जिसे महापद्मनंद ने बनवाया था। खारवेल महाविजयप्रासाद नामक भव्य राजभवन में निवास करता था। वह जैन धर्म का अनुयाई एवं संरक्षक था। उसने भिक्षुराज की उपाधि धारण की, जैन-सन्तों को दान दिए और उनके निवास के लिए कुमारीपर्वत (उदयगिरि) के शिखर पर गुफाएं एवं मंडप बनवाये जिनके निर्माण में 75 लाख सिक्के खर्च हुए। अन्य प्राचीन भारतीय शासकों की भांति खारवेल का भी धार्मिक दृष्टिकोण काफी उदार था। हाथीगुम्फा अभिलेख में बताया गया है कि वह सभी धार्मिक सम्प्रदायों की पूजा करता था और समस्त धर्मों के मन्दिरों का उसने जीर्णोद्धार कराया था[2]। उसके पास अत्यधिक शक्तिशाली सेना थी (अपतिहतचकवाहनबलो)। उसने कम से कम 13 वर्ष तक शासन किया। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न खारवेल उड़ीसा के महानतम शासकों में से एक था।

तिथि—खारवेल की तिथि के विषय में विद्वानों में पहले बहुत मतभेद था। के० पी० जायसवाल, भगवानलाल इंद्रजी, वी० ए० स्मिथ, ई० जे० रैप्सन तथा स्टेनकोनाव ने निम्नलिखित तर्कों एवं तथ्यों के आधार पर उसे ई० पू० दूसरी शताब्दी में रखा—

1. के० पी० जायसवाल ने हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णित मगध के शासक

---

1. Early History of Kalinga, p. 77.
2. सवपासंडपूजको सवदे (वाय) तन-सकार-कारको।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वहसतिमित की पहचान पुष्यमित्र शुंग से की जो 185 ई०पू० के लगभग राजा हुआ था। उनके अनुसार बृहस्पति, पुष्य नक्षत्र के स्वामी हैं, इसलिए ज्योतिष के आधार पर वहसतिमित का समीकरण पुष्यमित्र से किया जा सकता है। जी०वेंकट-राव भी इससे सहमत हैं।

2. उपर्युक्त विद्वानों ने हाथीगुम्फा अभिलेख की 16वीं पंक्ति में मौर्य संवत् के 165वें वर्ष का उल्लेख माना है और उसे इस प्रकार पढ़ा है—**पानंतरिय-सीठवस सतेराज मुरिय काले वोच्छिने**। जायसवाल का कहना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने कोई संवत् चलाया होगा। चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण 322 ई० पू० के आस-पास हुआ। यदि इसी तिथि से मौर्य संवत् का प्रारम्भ माना जाए, तो इस का 165वां वर्ष 322-165 = 156-57 ई० पू० होगा।

3. उक्त विद्वानों ने हाथीगुम्फा अभिलेख में उल्लिखित दिमित की पहचान हिन्द-यूनानी शासक डिमेट्रियस से की है जिसका राज्यकाल 190 तथा 165 ई० पू० के बीच रखा गया है।

4. हाथीगुम्फा अभिलेख की छठीं पक्ति में बतलाया गया है कि खारवेल ने अपने राज्यकाल के पांचवे वर्ष में उस नहर (प्रणाली) को अपनी राजधानी तक पहुंचाया जिसका निर्माण **तिवससत** पूर्व नन्दराज ने कराया था। यहां **तिव-ससत** का अर्थ जायसवाल आदि ने 103 वर्ष माना है और नन्दराज की पहचान शैशुनाग वंशीय नन्दिवर्धन नामक शासक से की है।

उपर्युक्त मतों में से कोई भी निःसन्दिग्ध नहीं है और इनका खंडन निम्न-लिखित तर्कों द्वारा किया गया है—

(क) यदि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राज्यारोहण के समय किसी संवत् का प्रवर्तन किया होता, तो उसका पौत्र अशोक तथा उसके उत्तराधिकारी इसका प्रयोग अवश्य करते। अशोक ने अपने अभिलेखों में सर्वत्र अपने राज्यकाल के वर्षों का ही उल्लेख किया है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, किसी भी साक्ष्य से यह ज्ञात नहीं है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने कोई संवत् चलाया था।

(ख) जायसवाल आदि ने जिसे **मुरियकाल**...पढ़ा है, उसे डी० सी० सरकार तथा बी० एम० बरुआ ने **मुखियकल** अर्थात् मुख्य कलाएं पढ़ा है और **पानतरीय** शब्द का सम्बन्ध इसके पहले वाले वाक्य से जोड़ा है।

(ग) ज्योतिष के आधार पर वहसतिमित का पुष्यमित्र शुंग से समीकरण नितान्त निराधार और अग्राह्य है। इसके अतिरिक्त, व्याकरण के किसी भी नियम से वहसतिमित का रूपान्तर पुष्यमित्र नहीं हो सकता। हेमचन्द्र रायचौधरी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने व्याकरण के साक्ष्य को उदधृत करते हुए कहा है कि वृहस्पति तथा पुष्य, एक ही शासक के दो नाम नहीं माने जा सकते। आर० पी० चन्द ने भी उपर्युक्त समीकरण का खंडन करते हुए कहा है कि स्कन्द एवं कुमार एक ही देवता के नाम है, परन्तु इस आधार पर कुमारगुप्त का समीकरण स्कन्दगुप्त से नहीं किया जा सकता। डी० सी० सरकार के अनुसार बहसतिमित का संस्कृत रूपान्तर वृहस्वातिमित्र होगा, बृहस्पतिमित्र नहीं। सरकार का कहना है कि वृहस्वातिमित्र पभोसा अभिलेख में उल्लिखित आषाढ़सेन नामक राजा की भगिनी का पुत्र तथा मोराअभिलेख में वर्णित यशोमति का पिता था। उन्होंने आषाढ़सेन का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० माना है।

(घ) हेमचन्द्र रायचौधरी, डी० सी० सरकार तथा आर० सी० मजूमदार ने **तिवससत** का अर्थ तीन सौ वर्ष माना है और नन्दराज का समीकरण महापद्मनन्द से किया है, क्योंकि नन्दिवर्धन नन्दवंश से सम्बन्धित न होकर शिशुनाग वंशीय शासक था। इसके अतिरिक्त, उसे इतना शक्तिशाली राजा मानने के लिए भी कोई आधार नहीं है।

(च) यूनानी राजा के नाम को विभिन्न विद्वानों ने दिमत, दमित, तथा डिमित पढ़ा है। इसलिए उसकी पहचान हिन्द-यूनानी राजा डिमेट्रियस से करना बहुत सन्देहपूर्ण है। वह ई० पू० प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शासन करने वाला कोई अन्य हिन्द-यूनानी राजा रहा होगा। महापद्मनंद ई० पू० 344 के लगभग राजा हुआ और उसके राज्यारोहर्ण के 300 वर्ष पूर्व अर्थात 344-300 = 44 ई०पू० में खारवेल ने उसके द्वारा निर्मित प्रणाली को अपनी राजधानी में पहुंचाने का कार्य किया। चूंकि यह घटना खारवेल के राज्यकाल के 5वें वर्ष की बतलाई गई है, इसलिए खारवेल 44 ई० पू० से 4-5 वर्ष पहले अर्थात् 49-48 ई० पू० के लगभग राजसिंहासन पर बैठा होगा। इस तिथि का पुष्टिकरण हाथीगुम्फा अभिलेख की लिपि से भी हो जाता है जो दूसरी शताब्दी ई० पू० के हेलियोदोरस के बेसनगर स्तंभ-लेख की लिपि से निःसदेह बाद की है। प्रथम शताब्दी ई० पू० के आस-पास के नानाघाट के अभिलेखों की लिपि भी हाथीगुम्फा अभिलेख की लिपि के बाद की है। इस प्रकार लिपि-शास्त्र के आधार पर हाथीगुम्फा अभिलेख को ई० पू० प्रथम शताब्दी में रखा जाना चाहिए।

हाथीगुम्फा अभिलेख के शातकर्णि का समीकरण अधिकांश विद्वानों ने सातवाहन शासक शातकर्णि प्रथम से किया है जिसने ई० पू० प्रथम शताब्दी के उत्त-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रार्द्ध में शासन किया[1]। मंचपुरी गुफा में उत्कीर्ण मूर्तियां भी शिल्प-शैली के आधार पर प्रथम शताब्दी ई० पू० की मानी गई हैं। अतएव खारवेल के राज्यकाल का प्रारम्भ ई० पू० प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा मध्य में हुआ।

खारवेल का महाराज सद से समीकरण (?)—कुछ वर्ष पूर्व आन्ध्र राज्य के पश्चिमी गोदावरी जिले के गुंटुपल्ली (Guntupulli) नामक स्थान पर चार स्तम्भों पर उत्कीर्ण एक अभिलेख प्रकाश में आया जो **महामेघवाहन, महिष-कलिंगाधिपति महाराज श्री सद** नामक शासक के राज्यकाल का है। गुंटुपल्ली अभिलेख के सम्पादक आर० सुब्रमण्यम[2] ने लिपि, तथा महाराज सद द्वारा धारण की गई उपाधियों के आधार पर सद की पहचान खारवेल से की है। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार गुंटुपल्ली अभिलेख की लिपि द्वितीय शताब्दी की है। सद खारवेल का कोई दूरस्थ उत्तराधिकारी रहा होगा[3]।

खारवेल की मृत्यु के पश्चात् कलिंग का इतिहास पुनः धूमिल हो जाता है। मंचपुरी गुफा के एक अभिलेख में कुदेपसिरि नामक राजा का उल्लेख है जिसे **ऐर महाराज** एवं **महामेघवाहन** कहा गया है। इस शासक की उपाधियां खारवेल की उपधियों से मिलती-जुलती हैं, परन्तु उसके नाम में सातवाहनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। आर० डी० बनर्जी के अनुसार कुदेपसिरि के बाद कलिंग के इतिहास पर अन्धकार छा जाता है।

---

1. कुछ विद्वानों के अनुसार हाथीगुम्फा अभिलेख की लिपि ई० पू० 160 के आस-पास की है।
2. The Guntupully Brahmi Inscriptions of Kharavela, Hyderabad, 1968.
3. देखिए, Mishra, S. M., The Identification of Maharaja Sada, Journal of the Mythic Society, Vol. VIII. pp. 53-56.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

11

पूर्वी गंग राजवंश

गंगा नदी के तटवर्ती क्षेत्र में गंग नाम की एक प्राचीन जनजाति के लोग निवास करते थे, जिन्हें मेगास्थनीज़ ने गंगरिदोइ (Gangaridoi) कहा है। प्लिनी के अनुसार गंग धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़े और वर्तमान विशाखापटनम जिले के उत्तर में वंशधरा नदी के तट पर बस गए। परवर्ती गंग-अभिलेखों में पूर्वी गंगों को गंगवाड़ी के मण्कुड (मण्लकुडि) नामक स्थान का मूल निवासी बतलाया गया है। कालान्तर में वे कलिंग राज्य में बस गए। एच० के० मेहताब के अनुसार इस राजवंश के संस्थापक ने 497 ई० में वाकाटक हरिषेण की सहायता से शैलोद्भवों को उत्तरी कलिंग से खदेड़ दिया और वहां अपना राज्य स्थापित किया[1]। परन्तु डी०एन०दास की मान्यता है कि पूर्वी गंग सम्भवतः **माठर** वंशीय राजाओं पर विजय प्राप्त कर, पूर्वी कलिंग के श्रीकाकुलम क्षेत्र के शासक बने थे[2]। पूर्वी गंगों ने कलिंगनगर को राजधानी बनाया और दन्तपुर[3] सम्भवतः उनकी उपराजधानी[4] थी। इन दोनों स्थानों के समीकरण के विषय में कुछ मत-भिन्नता है। कनिंघम ने कलिंगनगर की पहचान राजमहेन्द्री (Rajmundry) से की है, फ्लीट ने कलिंगपटनम से और जी० वी० राममूर्ति एवं डी. सी. सरकार ने गंजाम जिले के मुखलिंगम नामक स्थान से। दन्तपुर को कुछ विद्वानों ने गंजाम जिले में चिकाकोल के निकट स्थित दन्तवक्त्र नामक स्थान माना है।

1. History of Orissa, p. 43.
2. Early History of Kalinga, p. 117.
3. पूर्वी गंग शासक इन्द्रवर्मन के जिरजिंगि ताम्रपत्र दन्तपुर से जारी किए गए थे। महाभारत, जातक-कथाओं तथा महागोविन्दसुत्तन्त में दन्तपुर को कलिंग की राजधानी बतलाया गया है।
4. एच. के. मेहताब के अनुसार दन्तपुर पूर्वी गंगों की प्रारम्भिक राजधानी थी और बाद में कलिंगनगर को यह गौरव प्राप्त हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डी. एन. दास ने दन्तपुर की पहचान प्लिनी द्वारा उल्लिखित दंडगुल (Dandagul) नामक दुर्गीकृत नगर से की है।

प्रारम्भिक गंग शासकों के अभिलेखों में उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती। परन्तु 11वीं शताब्दी एवं इसके बाद के अभिलेखों में वर्णित परम्पराओं के अनुसार गंगा नदी की अनुकम्पा से ययाति के पुत्र तुर्वशु का गांगेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके वंशज गंग कहलाए। इसी परिवार में विष्णुवर्मन[1] नामक राजा हुआ। विष्णुवर्मन के पुत्र भगदत्त ने कलिंग में पूर्वी गंग राज्य की स्थापना की।

दूसरे कथानक के अनुसार (अयोध्या के) इक्ष्वाकु राजा हरिश्चन्द्र की महारानी विजयमहादेवी को, गंगा नदी में स्नान करने के उपरान्त गंगादत्त नामक पुत्र प्राप्त हुआ और गंगादत्त के भगदत्त नामक एक वंशज ने कलिंग में अपना राज्य स्थापित किया।

इस प्रकार पूर्वी गंगों ने अपने को गंगवाड़ी के पश्चिमी गंगों की एक शाखा तथा अयोध्या के इक्ष्वाकु-क्षत्रियों से सम्बन्धित माना। यह सम्भव है कि पश्चिमी एवं पूर्वी गंग परस्पर सम्बन्धी रहे हों। किन्तु वे उत्तर भारत के मूल निवासी नहीं थे। कलिंग के गंगों का प्रारम्भिक इतिहास तिमिराच्छादित है और उनका वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम विवादास्पद है।

इन्द्रवर्मन प्रथम—प्रामाणिक साक्ष्यों के अनुसार इन्द्रवर्मन प्रथम कलिंग के गंग राज्य का संस्थापक था[2]। उसके राज्यकाल के 39वें वर्ष के जिरजिंगि ताम्रपत्रों में उसे महाराज तथा त्रिकलिंगाधिपति की उपाधियां दी गई हैं और बतलाया गया है कि उसने अनेक चतुर्दन्त-युद्धों में अपने निकटवर्ती राजाओं के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। वस्तुतः 520 ई० के लगभग इन्द्रवर्मन के सबसे प्रबल शत्रु शैलोद्भव शासक सैन्यभीत द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर उसे अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला।

जिरजिंगि ताम्रपत्र दन्तपुर से जारी किए गए थे। इन ताम्रपत्रों में इन्द्रवर्मन द्वारा अग्निस्वामी तथा उसके पुत्र रुद्रस्वामी को वोरवार **विषय** में स्थित जिज्जिका ग्राम के दान का विवरण है। जिज्जिका का समीकरण नहीं किया जा सका है। उपर्युक्त ताम्रपत्रों के मसौदे का लेखक देवसिंहदेव, इन्द्रवर्मन का

1. विष्णुवर्मन या विष्णुगुप्त को अहिच्छत्र का शासक बतलाया गया है।
2. एच० के० मेहताब के अनुसार इस राजवंश के संस्थापक का नाम ज्ञात नहीं है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सान्धिविग्रहिक था। त्रिकलिंग के समीकरण के विषय में मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द कलिंग राज्य के तीन पृथक क्षेत्रों का सूचक है। अन्य विद्वान इसे कलिंग तथा इसके निकटवर्ती दो अन्य राज्यों का सम्मिलित नाम मानते हैं। इन्द्रवर्मन द्वारा प्रयुक्त त्रिकलिंगाधिपति का विरुद पारम्परिक था अथवा उसकी विजयों पर आधारित, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

इन्द्रवर्मन प्रथम ने 496-98 ई० में अपने शासन के प्रारम्भ होने पर एक नवीन संवत् का प्रवर्तन किया जिसे गंग संवत् कहते हैं। जिरजिंगि ताम्रपत्रों में अंकित वर्ष 39 को अधिकांश विद्वानों ने इसी संवत् का वर्ष माना है।

पृथ्वीमूल के गोदावरी ताम्रपत्रों के प्रथम सेट में बतलाया गया है कि यह ताम्रपत्र उसने मितवर्मन के पुत्र एवं मण्लकुड के द्विज परिवार के इन्द्राधिराज के कहने पर जारी किए थे। इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि विष्णुकुंडिन शासक इन्द्रभट्टारक के विरुद्ध, उसके शत्रुओं ने एक शक्तिशाली संघ बना लिया था जिसमें इन्द्राधिराज भी शामिल था। उसने इन्द्रभट्टारक को पराजित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और इस सफलता के परिणामस्वरूप सम्भवतः दक्षिणी कलिंग पर इन्द्रवर्मन का अधिकार स्थापित हो गया। इन्द्राधिराज पृथ्वीमूल का मित्र रहा होगा। परन्तु उसके समीकरण के विषय में काफी मत-भिन्नता है। जे. एफ. फ्लीट तथा एच. के. मेहताब ने इन्द्राधिराज को पूर्वी गंग शासक इन्द्रवर्मन प्रथम अथवा इन्द्रवर्मन द्वितीय माना हैं। डी.आर. भंडारकर ने उसकी पहचान इन्द्रवर्मन प्रथम से की है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वह कलिंग का कोई स्थानीय शासक रहा होगा। तथ्य जो भी हो, पूर्वी गंगों की विष्णुकुंडिन शासक के विरुद्ध सफलता अस्थायी रही और 553 ई० के पहले किसी समय इन्द्रभट्टारक ने कलिंग पर पुनः अधिकार कर लिया। इन्द्रवर्मन प्रथम शिव का उपासक (परममाहेश्वर) था। उसने 496-98 ई० से लेकर कम से कम 535-37 ई० तक राज्य किया। एच०के० मेहताब के अनुसार कोंगोद के शासक महाराज यशोभीत ने 539 ई० में इन्द्रवर्मन का वध कर दिया था।

इन्द्रवर्मन के उत्तराधिकारियों के वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम के विषय में मत-भिन्नता है। एच० के० मेहताब के अनुसार, उसकी मृत्यु के पश्चात् क्रमशः अनन्तवर्मन, देवेन्द्रवर्मन तथा शक्तिवर्मन ने शासन किया। देवेन्द्रवर्मन को गंग वंश की गरिमा कहा गया है और महेन्द्रगिरि पर शिव के एक मन्दिर का निर्माण कराने का श्रेय दिया गया है। शक्तिवर्मन ने अपनी तलवार के बल पर कलिंग पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। उसने **सकलकलिंगाधिपति** की उपाधि

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धारण की। शक्तिवर्मन की मृत्यु के तुरन्त बाद में शासक करने वाले गंग राजा का नाम ज्ञात नहीं है। 569-71 ई० में गंग राज्य में महासामन्तवर्मन शासन कर रहा था।

महासामन्तवर्मन ने गंग सम्वत् के 64वें वर्ष में पोन्नुतुरु ताम्रपत्र प्रकाशित किए थे। उसके नाम में सामन्त शब्द जुड़ा होने से अनुमान किया गया है कि वह सम्भवतः अधीनस्थ शासक अथवा उच्च सैन्य-अधिकारी था। इसके पश्चात् महाराज हस्तिवर्मन ने शासन किया। उसने कलिंगाधिपति, राजसिंह तथा रणभीत नामक विरुद धारण किए और शैलोद्भव शासक धर्मराज मानभीत के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। सम्भवतः इसी विजय के उपलक्ष में उसने रणभीत की उपाधि धारण की थी। हस्तिवर्मन के अभिलेखों में गंग संवत् के वर्ष 79 एवं 80 अंकित हैं। 575-76 ई० (गंग संवत् 79) के नरसिंहपल्लि ताम्रपत्र श्रीकाकुलम तथा तेक्कलि के मध्यवर्ती वराहवर्तनी **विषय** पर उसका आधिपत्य प्रमाणित करते हैं। अन्य गंग शासकों की भांति वह भी परममाहेश्वर था और उसने विष्णु के एक मन्दिर का भी निर्माण कराया।

हस्तिवर्मन के उपरान्त उसका पुत्र इन्द्रवर्मन द्वितीय राजा हुआ। उसके शासन की ज्ञात तिथियां गंग संवत् के वर्ष 87,88,91 तथा 97 हैं। उसे भी राजसिंह तथा सकलकलिंगाधिपति (सम्पूर्ण कलिंग का शासक) कहा गया है। उसके राज्यकाल के अभिलेख, श्रीकाकुलम जिले के नरसन्नपेट क्षेत्र तक उसका प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। इन्द्रवर्मन द्वितीय भी परममाहेश्वर था। एच० के० मेहताब का अनुमान है कि उसी के शासन काल में सम्भवतः महाकोशल के राजा हर्षगुप्त ने त्रिकलिंग को जीत लिया और विष्णुकुंडिन माधववर्मन ने भी उसे काफी क्षति पहुंचाई थी।

डी० सी० सरकार के अनुसार इन्द्रवर्मन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र या पौत्र इन्द्रवर्मन तृतीय राजा हुआ[1]। उसकी प्रथम ज्ञात तिथि 624-626 ई० (गंग सम्वत् 128) है। कुछ विद्वानों ने इस राजा का समीकरण मितवर्मन के

1. एच० के० मेहताब के अनुसार इन्द्रवर्मन द्वितीय का उत्तराधिकारी दानार्णव था। दानार्णव के राज्यकाल में वातापी के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने पूर्वी दक्षिणापथ के अन्य राज्यों के साथ कलिंग को भी अपने अधीन कर लिया था। दानार्णव के बाद उसका पुत्र इन्द्रवर्मन तृतीय राजा हुआ। (History of Orissa, p47)..

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुत्र इन्द्राधिराज से किया है जिसने विष्णुकुंडिन शासक इन्द्रभट्टारकवर्मन को पराजित किया था। एस० संकरनारायनन[1] का अनुमान है कि इन्द्रभट्टारकवर्मन की मृत्यु के उपरान्त विष्णुकुंडिनों की शक्ति क्षीर्ण होने लगी थी जिसके परिणाम-स्वरूप पूर्वी गंग प्रबल हो गए। सम्भव है कि गंगों ने विष्णुकुंडिन राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों पर आक्रमण कर कुछ भू-भागों पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की हो। उनकी इन्हीं गतिविधियों को रोकने के लिए कदाचित् विष्णुकुंडिन माधववर्मन चतुर्थ को 612 ई०में पूर्वी प्रदेशों की विजय के लिए जाना पड़ा था। माधववर्मन का किस पूर्वी गंग राजा से युद्ध हुआ, निश्चित रूप से कहना कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस विष्णुकुंडिन शासक ने जाजपुर तक के भू-भाग को जीत लिया था। उसकी इस विजय से पूर्वी गंगों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को भारी क्षति पहुंची। सम्भवतः इसीलिए 593 तथा 624 ई० के बीच के अन्तराल में कलिंग के गंगों का इतिहास धूमिल एवं अन्धकारमय है। परन्तु डी० सी० सरकार उपर्युक्त मतों से सहमत नहीं हैं।

इसके उपरान्त दानार्णव के पुत्र इन्द्रवर्मन चतुर्थ[2] ने 624-26 से 650-52ई० तक राज्य किया। ई० हुल्ट्श के अनुसार इन्द्रवर्मन तृतीय की अन्तिम ज्ञात तिथि 634 ई० है जबकि दानार्णव के पुत्र इन्द्रवर्मन चतुर्थ की प्रथम ज्ञात तिथि 633 ई० है। यदि उपर्युक्त तिथियां सही पढ़ी गई हैं, तो इनसे अनुमान किया जा सकता है कि इन्द्रवर्मन चतुर्थ को इन्द्रवर्मन तृतीय से उत्तराधिकार के लिए युद्ध करना पड़ा होगा और इन्द्रवर्मन चतुर्थ ने उसे परा-जित कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 650 ई० है। गुणार्णव के पुत्र देवेन्द्रवर्मन की ज्ञात तिथियां 679 तथा 691 ई० हैं। इस प्रकार इन्द्रवर्मन चतुर्थ एवं देवेन्द्रवर्मन के शासन के बीच लगभग 29वर्ष का अन्तराल था और इसी अवधि में सम्भवतः गुणार्णव ने राज्य किया होगा। देवेन्द्रवर्मन ने सम्पूर्ण कलिंग को जीतने का दावा किया है। अन्य गंग शासकों की भांति वह भी परममाहेश्वर था। देवेन्द्रवर्मन के उत्तराधिकारी अनन्तवर्मन के राज्यकाल का 700 ई० के आस-पास का एक अभिलेख मिला है। उसके बाद

1. Visnukundis and their Times, pp. 102-103.
2. कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इन्द्रवर्मन द्वितीय के उपरान्त दानार्णव ने राज्य किया होगा और दानार्णव की मृत्यु के बाद इन्द्रवर्मन चतुर्थ को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु डी० सी० सरकार के अनुसार, दानार्णव ने स्वतन्त्र शासक के रूप में शायद कभी राज्य नहीं किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नन्दिवर्मन (लगभग 717 ई०) तथा देवेन्द्रवर्मन द्वितीय (747 तथा 750 ई०) ने शासन किया। देवेन्द्रवर्मन के बाद के शासकों में राजेन्द्र प्रथम, अनन्तवर्मन द्वितीय (गंग संवत् 284, 304), देवेन्द्रवर्मन तृतीय (गंग संवत् 308, 310), राजेन्द्र द्वितीय (गंग संवत् 313 एवं 342), सत्यवर्मन (गंग संवत् 351), अनन्तवर्मन तृतीय (गंग संवत् 358), भूपेन्द्रवर्मन मारसिंह और देवेन्द्रवर्मन चतुर्थ (गंग संवत् 397) ने क्रमशः शासन किया। देवेन्द्रवर्मन चतुर्थ के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक पूर्वी गंगों का क्रम-बद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। इस अन्तराल में यह राज्य विघटित होकर पांच भागों में बंट गया और वेंगी के चालुक्यों ने पूर्वी गंगों के कुछ क्षेत्र अधिकृत कर लिए थे।

साम्राज्यवादी गंग—गुणमहार्णव का पुत्र वज्रहस्त साम्राज्यवादी गंगों में पहला महत्वपूर्ण शासक था। उसने विभाजित गंग राज्य को पुनः एकता के सूत्र में बांध दिया। उस समय उत्कल के केशरी वंश के शासक दुर्बल हो गए थे, अतएव वज्रहस्त ने कोंगोद तथा त्रिकलिंग पर अधिकार कर लिया। वज्रहस्त के बाद उसके तीन पुत्रों—गुंडम (तीन वर्ष), कामार्णव (35 वर्ष) तथा विनयादित्य (तीन वर्ष) ने क्रमशः राज्य किया। तदनन्तर कामार्णव का पुत्र वज्रहस्तअनियंक भीम (35) वर्ष और उसके तीन पुत्र-कामार्णव (6 महीने), गुंडम (3 वर्ष) तथा मधुकामार्णव (19 वर्ष) क्रमशः राजा हुए। कामार्णव की मृत्यु के उपरान्त वैदुम्ब वंशीय रानी विनयमहादेवी से उत्पन्न उसके पुत्र वज्रहस्तअनन्तवर्मन पंचम ने 1038 ई० में शासन की बागडोर सम्भाली। उसने अपनी राजधानी कलिंगनगर से कई अभिलेख जारी किए थे। वज्रहस्त ने त्रिकलिंगाधिपति का विरुद धारण किया और हैहय वंश की एक राजकुमारी के साथ विवाह किया। उसी के राज्यकाल में कलचुरि शासक कर्ण ने कलिंग को आक्रान्त किया और इस अभियान की सफलता के उपलक्ष में त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि से अपने को विभूषित किया।

वज्रहस्त पंचम के उपरान्त 1070 ई० में उसके पुत्र राजराजप्रथम देवेन्द्रवर्मन को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। वेंगी के चालुक्य विजयादित्य सप्तम को सहायता देने के कारण वह चोल कुलोत्तुंग का प्रथम शत्रु बन गया और कुलोत्तुंग ने 1076 ई० के कुछ समय बाद अपने पुत्र मुम्मडिचोड के नेतृत्व में राजराज प्रथम के विरुद्ध सेना भेजी। परन्तु यह चोल अभियान विफल रहा। अनन्तवर्मन चोडगंग के शक संवत् 1040 के विशाखापटनम अभिलेख के अनुसार राजराज ने चोलों पर पूर्ण विजय प्राप्त की और चोल शासक की पुत्री राजसुन्दरी के साथ

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवाह कर लिया। परन्तु चोलों ने भी पूर्वी गंगों के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने का दावा किया है। आर० डी० बनर्जी के अनुसार शायद किसी पक्ष को निर्णायक एवं स्थाई सफलता नहीं प्राप्त हुई।

उस समय उड़ीसा (उत्कल) के सोम वंशीय शासकों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष छिड़ गया था। राजराज प्रथम ने सोम वंशीय दो प्रतिद्वन्दी भाइयों में से एक की सहायता की और उसे उत्कल के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। उसके सेनापति वनपति ने चोल, उत्कल, वेंगी, कोशल तथा कुछ अन्य राज्यों के शासकों को पराजित करने, और दद्दार्णव को मार डालने का दावा किया है।

अनन्तवर्मन चोड गंगदेव—राजराज प्रथम देवेन्द्रवर्मन के उपरान्त चोल वंशीय रानी राजसुन्दरी से उत्पन्न उसका पुत्र अनन्तवर्मन चोडगंग 1078 ई० के लगभग राजा हुआ। वह उड़ीसा के महानतम शासकों में से एक था। उसने सम्पूर्ण उत्कल तथा कलिंग को अपने अधीन कर वस्तुतःवर्तमान उड़ीसा राज्य का निर्माण कर दिया था। उसे चालुक्यगंग तथा गंगेश्वरदेवभूप भी कहा गया है। वह वेदों, शास्त्रों, युद्ध-विद्याओं तथा अन्य अनेक विषयों में पारंगत था।

अनन्तवर्मन चोडगग के शासन के प्रारम्भिक भाग में चोल कुलोत्तुंग प्रथम ने सेनानायक करुणाकर के नेतृत्व में कलिंग पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल वाहिनी भेजी जिसने अनन्तवर्मन को पराजित कर विशाखापटनम पर अधिकार कर लिया और उसका नाम विजेता के नाम पर, कुलोत्तुंगशोलपट्टणम रख दिया। 1083 ई० के कुछ ही समय बाद सम्पूर्ण कलिंग पर चोलों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। कुलोत्तुंग प्रथम के पुत्र तथा वेंगी के गवर्नर राजराज-चोडगंग (1084-1088 ई०) ने महेन्द्रपर्वत तक के क्षेत्र पर शासन करने का दावा किया है। यह भू-भाग अनन्तवर्मन के राज्य के प्रमुख प्रदेशों में से एक था। परन्तु उसने अपनी शक्ति को पुनःसंगठित कर 2090 ई० के पहले राजसिंहासन प्राप्त कर लिया और विशाखापटनम जिले पर भी अधिकार करने में सफलता प्राप्त की।

पाल शासक रामपाल ने पूर्वी गंगों के संरक्षित उत्कल के शासक कर्णकेशरी के स्थान पर अपने संरक्षित को राजा बना दिया था। परन्तु अनन्तवर्मन ने उसे अपदस्थ कर कर्णकेशरी अथवा उसके उत्तराधिकारी को उत्कल में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। इस सफलता के बाद से पूर्वीगंग शासक अपने को 'उत्कल के स्वामी' की उपाधि से विभूषित करने लगे। उस समय उत्कल के केशरी वंश

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के शासक दुर्बल हो गये थे और अनन्तवर्मन चोडगंग ने उन्हें अपना अधीनस्थ बना लिया। वह सम्भवतः उत्कल होकर ही बंगाल गया होगा। रामपाल के राज्यकाल में चोडगंग ने उड़ीसा को पालों के आधिपत्य से मुक्त कर दिया और उसकी मृत्यु के पश्चात् बंगाल के कुछ भागों पर भी अधिकार कर लिया।

1120 ई० के लगभग कुलोत्तुंग प्रथम की मृत्यु के उपरान्त वेंगी में आन्तरिक कलह तथा राजनैतिक अस्थिरता ने चोलों को दुर्बल बना दिया था। इसका लाभ उठाकर अनन्तवर्मन ने वेंगी को अपने अधीन कर लिया। 1118 ई० के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने उत्कल तथा वेंगी के शासकों को पराजित करने के पश्चात् उनका राज्य वापस लौटा दिया और उन्हें अपना सामन्त बना लिया। इस प्रकार 12 वीं शताब्दी के प्रथम चरण में अनन्तवर्मन चोडगंग ने उत्कल, बंगाल, चोल एवं चालुक्य राज्यों के कई भू-भागों को अपने वर्धमान साम्राज्य में शामिल कर लिया था। 1126 ई० में कल्याणी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ की मृत्यु के उपरान्त उसने आन्ध्र राज्य को आक्रान्त कर गोदावरी तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। परन्तु 1134 ई० के कुछ पहले चोल कुलोत्तुंग द्वितीय ने गोदावरी ज़िले को पुनः अपने अधीन कर लिया था।

अनन्तवर्मन चोडगंग के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों के अनुसार, उसने मन्दार का दुर्ग अधिकृत कर इसके शासक को खदेड़ दिया था। आर० डी० बनर्जी तथा एच० के० मेहताब ने मन्दार का समीकरण हुगली ज़िले के भीतरगढ़ नामक स्थान से किया है। बंगाल काफी समय तक पूर्वी गंगों के अधीन रहा। 1134 ई० में अनन्तवर्मन ने केशरी शासक सुवर्ण को पराजित कर अपना सामन्त बना लिया था। चोडगंग के राज्यकाल से ही उड़ीसा का कटक क्षेत्र 'गंगकटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पूर्वी गंग राज्य की पश्चिमी सीमा पर कलचुरियों का राज्य स्थित था। कलचुरि शासक जाजल्लदेव के मल्हार अभिलेख तथा कुछ अन्य कलचुरि अभिलेखों के अनुसार, रत्नदेव प्रथम ने चोडगंग को पराजित कर दिया था।

1135 ई० के आस-पास चोडगंग के राज्य का विस्तार उत्तर में गंगा नदी से लेकर दक्षिण में गोदावरी तक हो गया था, और उसने इन नदियों के मध्यवर्ती प्रदेशों के शासकों से कर प्राप्त करने का दावा किया है। उसके अभिलेख गंजाम तथा विशाखापटनम ज़िलों के अतिरिक्त गोदावरी ज़िले के द्राक्षारामम् नामक स्थान पर भी प्राप्त हुए हैं। अनन्तवर्मन ने राजाधिराज,

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राजपरमेश्वर परमभट्टारक तथा त्रिकलिंगाधिपति की उपाधियां धारण कीं। ये विरुद उसकी बढ़ी हुई शक्ति के सूचक हैं। उसे परमब्रह्मण्य (ब्राह्मणों में अनुरक्त), परमवैष्णव तथा परममाहेश्वर भी कहा गया है। ये उपाधियां उसकी धार्मिक सहिष्णुता प्रमाणित करती हैं।

1135 ई0 के लगभग चोडगंग ने पुरी के प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ कराया था। मनमोहन चक्रवर्ती के अनुसार इस भव्य मन्दिर का **जगमोहन** (मण्डप) तथा **विमान** अनन्तवर्मन के राज्यकाल में बने; किन्तु **नाटमन्दिर** एवं **भोगमन्दिर** का निर्माण बाद में हुआ। जो भी हो उक्त निर्माण-कार्य, उसके शासन की बहुत महत्वपूर्ण कलात्मक एवं धार्मिक उपलब्धि थी। उसकी रानियों में इन्दिरा, सोमलामहादेवी, लक्ष्मीदेवी, कस्तुरिकामेदिनी तथा पृथ्वीमहादेवी के उल्लेख मिलते हैं। 1142 ई० में उसने अपने पुत्र कामार्णव का राज्याभिषेक कर दिया। अनन्तवर्मन चोडगंग के शासन का अन्त 1147 ई० के लगभग हुआ।

अनन्तवर्मन चोडगंग के पुत्र कामार्णव ने 1147 से 1156 ई० तक शासन किया। इसके बाद राघव (1156-1170 ई०), राजराज द्वितीय (1170-1194 ई०) और अनंगभीमदेव ने क्रमशः राज्य किया। ये तीनों भाई थे। कुछ विद्वानों के अनुसार गीतगोविन्दका लेखक जयदेव राजराज द्वितीय का समकालीन था। अनंगभीम ने 1194 से 1198 ई० तक शासन किया। वह राजराज द्वितीय के राज्यकाल में ही प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन करने लगा था। उसने पुरी के जगन्नाथ मन्दिर के निर्माण-कार्य को पूरा किया[1] और भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का मण्डप भी बनवाया। 1192 ई० में उसके सम्बन्धी स्वपनेश्वरदेव ने भुवनेश्वर में मेघेश्वर के मन्दिर का निर्माण कराया।

अनंगभीम के पश्चात् बाघल्लादेवी से उत्पन्न उसका पुत्र राजराज तृतीय 1198 ई० में राजा हुआ। उसके शासनकाल में मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। किन्तु पालों, सेनों तथा अन्य राजवंशों की भांति, पूर्वी गंग भी इस नवीन ख़तरे का सामना करने के लिए अधिक सचेष्ट नहीं थे। राजराज तृतीय के अभिलेखों में उसे महान योद्धा तथा विद्वान कहा गया है। उसने 1211 ई० तक शासन किया। राजराज तृतीय के उत्तराधिकारी अनंगभीम तृतीय के राज्यारोहण के समय तक मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल पर विजय प्राप्त कर चुके थे।

तबाकाते–नासिरी के अनुसार गियासुद्दीन ने पूर्वी बंगाल तथा असम के

1. अनंगभीम ने सम्भवतः इस मन्दिर के **नाटमन्दिर** एवं **भोगमन्दिर** का निर्माण कराया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अतिरिक्त जाजनगर से भी कर वसूल किया था। कुछ विद्वानों ने जाजनगर का समीकरण उड़ीसा से किया है। परन्तु आर० डी० बनर्जी एवं एच० के० मेहताब ने इसे आधुनिक टिप्परा (Tippera) माना है। 1112 तथा 1220 ई० के मध्य अनंगभीम तृतीय ने मुस्लिम आक्रमणकारियों को पराजित किया था। कुछ विद्वानों ने उसे कटक में बाणवाती के दुर्ग के निर्माण का श्रेय दिया है, परन्तु अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। उसके राज्यकाल में नरसिंहमहामुनि ने उड़ीसा में वैष्णव धर्म का काफी प्रचार किया और पूर्वी गंग शासकों को विष्णु के प्रति आकृष्ट करने में सफलता प्राप्त की।

अनंगभीम तृतीय के पुत्र नरसिंहदेव प्रथम ने 1238 ई० में शासन की बागडोर सम्भाली। उसने लखनौर पर अधिकार कर लिया और राढ़ा में मुस्लिम प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। वारेन्द्र (उत्तरी बंगाल) को आक्रान्त कर, 1245 ई० में वह लखनावती तक बढ़ गया था। बंगाल का गवर्नर तुगानखान उसके समक्ष टिक न सका और अपनी राजधानी लखनौर में छिपने के लिए बाध्य हुआ। नरसिंहदेव ने उसे चारों ओर से घेर लिया। ऐसी स्थिति में तुगानखान ने दिल्ली के सुलतान के पास सहायता के लिए सन्देश भेजा। मिनहाजुद्दीन के अनुसार दिल्ली की सेना के पहुंचने पर नरसिंहदेव ने घेरा उठा लिया। परन्तु यह विवरण तथ्य पर आधारित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने नरसिंहदेव के विरुद्ध सुलतान की विजय का वर्णन नहीं किया है। जो भी हो, राढ़ा पर पूर्वी गंगों का प्रभुत्व बना रहा। नरसिंहदेव प्रथम के उत्तराधिकारियों के कुछ अभिलेखों में बतलाया गया है कि उसके द्वारा पराजित होने पर राढ़ा तथा वारेन्द्र के यवनों की काजल-युक्त आंखों से निकले अश्रु-समूहों से गंगा का पानी कृष्ण वर्ण का हो गया था और इसलिए वह यमुना प्रतीत होने लगी थी। कई युद्धों के पश्चात् 1255 ई० के आस-पास राढ़ा पर मुस्लिम सत्ता पुनः स्थापित हो गई थी।

नरसिंहदेव प्रथम विद्या एवं विद्वानों का महान संरक्षक था। उसका राजदरबार साहित्यदर्पण के लेखक विश्वनाथ, एकावलि के रचयिता विद्याधर एवं कुछ अन्य विद्वानों से सुशोभित था। उसके राज्यकाल में उड़ीसा में संस्कृत साहित्य का अत्यधिक विकास हुआ। पुरी जिले में कोणार्क के वैभवशाली सूर्य-मन्दिर का निर्माण उसकी सर्वाधिक महान उपलब्धि थी। उसने 1264 ई० तक राज्य किया।

नरसिंहदेव प्रथम के पश्चात् उसके पुत्र भानुदेव प्रथम ने 1264 से 1279

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ई० तक शासन किया। उसे पुरी के निकट अठर्नला के पुल का निर्माण कराने का श्रेय दिया गया है। उसने श्रोत्रिय ब्राह्मणों को 100 भू-खंड दान में दिए और चालुक्य राजकुमारी जाकल्लदेवी के साथ विवाह किया।

भानुदेव प्रथम का पुत्र नरसिंहदेव तृतीय 1278 ई० में राजा हुआ। आर० डी० बनर्जी के अनुसार उसने बंगाल के मुस्लिम गवर्नर तुगानखान से युद्ध किया था, परन्तु एच० के० मेहताब इससे सहमत नहीं है। उसने 1305 ई० तक शासन किया। नरसिंहदेव द्वितीय के पुत्र भानुदेव द्वितीय अपरनाम पुरुषोत्तम (1305–1328 ई०) के राज्यकाल में मुहम्मद तुग़लक राजमहेन्द्री तक पहुंच गया था और वहां के एक मन्दिर को तुड़वाकर उसके स्थान पर उसने मस्जिद का निर्माण कराया। तदनन्तर मुहम्मद तुग़लक ने जाजनगर पर आक्रमण कर, 40 हाथी प्राप्त किए। किन्तु इस आक्रमण का उड़ीसा की राजनीति पर कोई स्थाई प्रभाव नहीं हुआ। भानुदेव द्वितीय के राज्यकाल के एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि वह गियासुद्दीन से लड़ा था। गियासुद्दीन का अभिप्राय या तो दिल्ली के सुल्तान से है, अथवा बंगाल के गवर्नर से।

भानुदेव द्वितीय के बाद नरसिंहदेव तृतीय ने 1328 से 1352 ई० तक राज्य किया। उसके शासनकला में पूर्वी गंगों के पतन की प्रक्रिया काफी तीव्र हो गई थी। उसके उत्तराधिकारी भानुदेव तृतीय (1352-1378 ई०) के राज्यकाल में उड़ीसा पर कई बाहरी आक्रमण हुए। भानुदेव तृतीय ने श्रीकूर्मम् के मन्दिर को अपने पिता नरसिंहदेव तृतीय तथा सौतेली मां गंगाम्बिका की प्रतिमाएं भेंट कीं। फिरिश्ता के अनुसार बंगाल के गवर्नर इलियासशाह ने 1353 ई० में उड़ीसा पर आक्रमण किया, और 1356 ई० में वि जयनगर के शासक बुक्का के भतीजे संगम ने भानुदेव तृतीय के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। पुर्तगाली इतिहासकार नूनेज़ ने लिखा है कि बुक्काराय ने उड़ीसा राज्य को जीत लिया था। इसके बाद फीरोज़शाह तुग़लक ने जाजनगर को आक्रान्त कर भानुदेव को पराजित कर दिया। इन पराजयों से पूर्वी गंगों की शक्ति काफी क्षीर्ण हो गई थी।

भानुदेव तृतीय के पुत्र नरसिंहदेव चतुर्थ (1378–1405 ई०) के राज्यकाल में उड़ीसा के राजा **गजपति** की उपाधि का प्रयोग करने लगे थे। भानुदेव चतुर्थ (1405-1435 ई०) के शासनकाल में भी गंग राज्य विदेशी आक्रमणों का लक्ष्य बना। 1399 ई० में जौनपुर के राजा ने उसे कर देने के लिए बाध्य किया। 1412 ई० में बहमनी सुल्तान फीरोज़शाह ने उड़ीसा को जीतकर भानुदेव के बहुत से हाथी अपहृत कर लिए। 1422 ई० में मालवा के सुल्तान होंश-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गगोरी ने एक व्यापारी के वेष में जाजनगर पहुंच कर भानुदेव को बन्दी बना लिया और उससे बहुत से हाथी प्राप्त करने के बाद ही उसे मुक्त किया। अन्तिम घटना की प्रामाणिकता के बारे में कुछ विद्वानों को सन्देह है। आर०डी० बनर्जी के अनुसार उपर्युक्त जाजनगर की पहचान चेदि राज्य के जाजल्लनगर से की जानी चाहिए। भानुदेव चतुर्थ अयोग्य तथा व्यसनी शासक था। उसकी इन दुर्बलताओं का लाभ उठाकर उसके महत्वाकांक्षी मन्त्री कपिलेश्वररौतराय ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली, और इस प्रकार पूर्वी गंग वंश के शासन का अन्त हो गया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

12

चुटु एवं आभीर

चुटु एवं आभीर—आन्ध्र-सातवाहनों के पतन के पश्चात् दक्षिणापथ के दक्षिण-पश्चिमी भाग पर चुटुओं ने अधिकार कर लिया था। डुब्रील महोदय के अनुसार चुटु, सातवाहनों के सामन्त थे और छोटानागपुर एवं इसके निकटवर्ती क्षेत्र के शासक थे। सातवाहन साम्राज्य के विघटन के उपरान्त उन्होंने कर्नाटक तथा अपरान्त को अपने अधीन कर लिया था। सुधाकर चट्टोपाध्याय का अनुमान है कि प्रारम्भ में चुटु आभीरों के सामन्त रहे होंगे। कुन्तल प्रदेश में कदम्बों के अभ्युदय के पूर्व वे दक्षिणापथ के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों में शासन कर रहे थे।

डी० सी० सरकार ने चुटुओं को महाराष्ट्र के रठिकों, महारठिकों या महाभोजकों से सम्बन्धित माना है, जो सातवाहनों के सामन्त थे। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार चुटु, सातवाहनों की ही एक शाखा थे। पी०बी० देसाई ने भी उन्हें सातवाहनों का सम्बन्धी एवं सामन्त माना है। ई० जे० रैप्सन तथा एस० संकरनारायनन की मान्यता है कि चुटुओं को ही पुराणों में आन्ध्र-भृत्य कहा गया है और वे विष्णुकुंडिनों से सम्बन्धित थे। कुछ विद्वानों के अनुसार चुटु नागों के वंशज थे।

वात्स्यायन के कामसूत्र में कुन्तल शातकर्णि का, और राजशेखर की काव्य-मीमांसा में कुन्तल नरेश सातवाहन का उल्लेख हुआ है। यह भी उल्लेखनीय है कि पुराणों में वर्णित आन्ध्र-सातवाहन राजाओं की सूचियों में कुन्तल शातकर्णि को गौतमीपुत्र शातकर्णि से पहले रखा गया है। उपर्युक्त साक्ष्य कुन्तल प्रदेश पर सातवाहनों का प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। बाद में इसी क्षेत्र पर उनके सम्बन्धी चुटुओं ने अधिकार कर लिया। परन्तु चुटुओं का सातवाहनों, नागों अथवा विष्णुकुंडिनों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए कोई ठोस आधार नहीं है और न ही चुटुओं को पुराणों में आन्ध्रभृत्य कहा गया है। कर्नाटक से प्राप्त कुछ अभिलेख एवं सिक्के इस राजवंश के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

अभी तक चुटुकुलानन्द (चुटुकुल को आनन्द प्रदान करने वाला) नामक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

केवल एक ही चुटु शासक के विषय में निश्चित सूचना उपलब्ध है। मल्लवल्लि (कर्नाटक राज्य के शिमोगा ज़िले में स्थित) अभिलेख वैजयन्तीपुर के शासक मानव्यसगोत्रहारीतिपुत्र-विष्णुकड चुटुकुलानन्द शातकर्णि के राज्यकाल का है। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि चुटुकुलानन्द शातकर्णि ने अपने शासन के प्रथम वर्ष में एक ग्राम दान में दिया था। बनवासी से प्राप्त एक प्रस्तर-अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि हारीतिपुत्रविष्णुकुडकचुटुकुलानन्द शातकर्णि ने अपने शासन के 12वें वर्ष में एक तालाब तथा एक विहार आदि दान में दिए थे। इसी अभिलेख में उसकी पुत्री महाभोजी तथा महाभोजी के पुत्र शिवस्कन्दनागश्री का भी उल्लेख है। सुधाकर चट्टोपाध्याय ने उपर्युक्त दोनों अभिलेखों के चुटुकुलानन्द शातकर्णि को एक ही शासक माना है। पी० बी० देसाई के अनुसार, लिपि-साक्ष्य के आधार पर मल्लवल्लि अभिलेख, बनवासी अभिलेख के बाद का है और सम्भव है कि मल्लवल्लि अभिलेख का शातकर्णि, बनवासी अभिलेख के शिवस्कन्द-नागश्री का पुत्र रहा हो। डी० सी० सरकार ने बनवासी अभिलेख को 200 ई० अथवा इसके कुछ बाद का, और मल्लवल्लि अभिलेख को बनवासी अभिलेख के लगभग 50 वर्ष बाद का माना है। उन्होंने बनवासी अभिलेख में वर्णित राजा को शातकर्णि प्रथम और मल्लवल्लि अभिलेख के शासक को शातकर्णि द्वितीय कहा है। साथ ही यह भी सुझाव दिया है कि विष्णुकडचुटुकुलानन्द शातकर्णि द्वितीय, पल्लव शिवस्कन्दवर्मन का सामन्त रहा होगा। यह अनुमान निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है–

1. **आन्ध्रापथ** तथा **सातवाहनीय** क्षेत्रों पर तीसरी शताब्दी के अन्तिम भाग में पल्लवों का आधिपत्य था।
2. कदम्ब राजवंश के संस्थापक मयूरशर्मन ने पल्लवों से मलप्रभा तथा अरब सागर के बीच का क्षेत्र प्राप्त किया था।

पी० बी० देसाई का भी लगभग यही मत है। उनका कथन है कि बनवासी अभिलेख का शिवस्कन्दनागश्री नाम पल्लव शिवस्कन्दवर्मन का स्मरण दिलाता है, और हीरहडगल्लि ताम्रपत्र पल्लव स्कन्दवर्मन का कर्नाटक पर प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं।

ई० जे० रैप्सन ने बनवासी अभिलेखों में वर्णित महाभोजी और उसके पुत्र शिवस्कन्दनागश्री का समीकरण कन्हेरी के एक अभिलेख के स्कन्दनागशातकर्णि तथा उसकी जननी नागमूलनिका से किया है। नागमूलनिका को महारठि की पत्नी तथा महाभोजी का पुत्र बतलाया गया है। इन साक्ष्यों के आधार पर रैप्सन

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने चुटु शासकों का वंश-वृक्ष इस प्रकार तैयार किया है–

1. राजा हारीतिपुत्र शातकर्णि (महाभोजी)
2. महारठि (नागमूलनिका)
3. हारीतिपुत्र शिवस्कन्दवर्मन

परन्तु यह मत बहुमान्य नहीं है।

मल्लवल्लि के उपर्युक्त स्तम्भ पर एक कदम्ब शासक का भी अभिलेख उत्कीर्ण है जिसमें उसे **मानव्यसगोत्रहारीतिपुत्र-वैजयन्तीपतिशिवस्कन्दवर्मन** कहा गया है। कुछ विद्वानों ने इस शिवस्कन्दवर्मन को चुटु राजवंश से सम्बन्धित माना है। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है और सुधाकर चट्टोपाध्याय आदि ने इस आधार पर इसे स्वीकार नहीं किया है कि कदम्ब राजा को चुटुकुलानन्द का विरुद नहीं दिया गया है।

डी० आर० भंडारकर के अनुसार चुटुकुलानन्द व्यक्ति का नाम अथवा उपाधि थी और यह शब्द द्रविड़ भाषा के **चुटुकड** का संस्कृत रुपान्तर है। परन्तु चुटुकड को द्रविड़ भाषा का शब्द मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। डी०सी० सरकार तथा एस० सँकरनारायनन का अनुमान है कि चुटुकड स्थान का नाम रहा होगा। वी०वी० मिराशी ने चुटुकुल को गोत्र का नाम माना है।

कारवार (Karwar) ज़िले से प्राप्त मुडानन्द तथा चुटुकडानन्द नामक शासकों के सीसे के सिक्के कर्नाटक क्षेत्र के सातवाहन राजाओं के गवर्नरों के सिक्कों से मिलते-जुलते हैं। इस चुटुकडानन्द को उपर्युक्त अभिलेखों में वर्णित चुटुकुलानन्द से सम्बन्धित माना जा सकता है[1]। सुधाकर चट्टोपाध्याय ने मुड को मुंड शब्द का समानार्थी माना है और विष्णु पुराण के उस अंश को उद्धृत किया है जिसमें आन्ध्र-सातवाहनों के पश्चात् मुंड वंशीय 13 शासकों के राज्य करने का वर्णन है। कुछ विद्वानों ने मुडानन्दों की पहचान टालमी द्वारा उल्लिखित दस्यु-राजाओं (pirate kings) से की है।

डी० सी० सरकार का अनुमान है कि यज्ञश्री शातकर्णि की मृत्यु के पश्चात् कुन्तल क्षेत्र के सातवाहन-गवर्नरों को मुडानन्दों ने उखाड़ दिया होगा और बाद में चुटुकडानन्द (चुटुकुलानन्द) ने मुडानन्दों की शक्ति का अन्त कर दिया। किन्तु इसके विपरीत रैप्सन की धारणा है कि राजा मुडानन्द ने चुटुकुलानन्द के बाद में शासन किया होगा। स्पष्ट प्रमाणाभाव के कारण किसी निश्चित निष्कर्ष

1. परन्तु यह उल्लेखनीय है कि **चुटुकड** शब्द चुटु शासकों के अभिलेखों तथा मुद्रा-लेखों में नहीं प्रयुक्त हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पर पहुंचना कठिन है। असम्भव नहीं कि मुडानन्द, चुटुकुलानन्द का समकालीन और उत्तरी कनारा जिले का शासक रहा हो। तथ्य जो भी हो, बाद में कदम्बों ने मुडानन्द तथा चुटुकडानन्द, दोनों को ही पराजित कर उनके राज्य को अधिकृत कर लिया था।

आभीर—आन्ध्र-सातवाहनों के पतन के पश्चात् पश्चिमी दक्षिणापथ में आभीरों ने शासन किया। आभीरों का सर्वप्रथम उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य (ई० पू० दूसरी शताब्दी) में हुआ है। इस ग्रन्थ में उन्हें शूद्र तथा इसकी टीका काशिका में महाशूद्र कहा गया है। महाभारत में बतलाया गया है कि शूद्र-आभीरों के प्रति घृणा के कारण ही सरस्वती नदी विनशन नामक स्थान पर विलीन हो गई। भीष्मपर्व में आभीरो को अपरान्त (पश्चिमी भारत) में निवास करने वाले गणों में शामिल किया गया है। नकुल ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में आभीरों को पराजित किया था। द्वारका नगर के विनाश के बाद जब अर्जुन स्त्रियों, बच्चों एवं वृद्ध जनों को वहां से इन्द्रप्रस्थ ले जा रहे थे, तो मार्ग में पंचनद प्रदेश में आभीरों ने उस पर आक्रमण कर लूट-पाट की। महाभारत में आभीरों द्वारा युधिष्ठिर को कर एवं भेंटें आदि देने का भी उल्लेख हुआ है। इसमें वर्णित एक कथानक के अनुसार द्रविड़, आभीर, पुंड्र तथा शबर अपने क्षत्रियोचित कर्तव्यों की उपेक्षा करने के कारण ही शूद्र हो गये थे। रामायण में उन्हें दस्यु तथा अस्पृश्य कहा गया है।

मनु-स्मृति के अनुसार आभीर ब्राह्मण पुरुष तथा अम्बस्ठ स्त्री की सन्तान थे। पेरीप्लस तथा टालमी के भूगोल में अबेरिया या अबिरिया (आभीर देश) को निचली सिन्धु घाटी एवं सौराष्ट्र के मध्य में स्थित बतलाया गया है। विष्णु तथा भागवत पुराणों के अनुसार, आभीरदेश सौवीर के निकट स्थित था। मार्कण्डेय पुराण में आभीरों का उल्लेख भृगुकच्छों, कोंकणों तथा शबरों के साथ हुआ है जो बेण नदी (वैणगंगा) के तटवर्ती क्षेत्र में बसे हुए थे। ये आभीर नासिक तथा खानदेश के निवासी रहे होंगे। बृहन्नारदीय पुराण के अनुसार आभीरों को देव-पूजा का अधिकार प्राप्त नहीं था। प्रबोधचन्द्रोदय में आभीरदेश को मालवा के निकट और कुछ जैन-ग्रन्थों में अचलपुर (अमरौती जिले में एलिचपुर) का निकटवर्ती बतलाया गया है।

डी०आर०भंडारकार, वी० ए० स्मिथ, ए० बी० कीथ, डब्ल्यू०डब्ल्यू० टार्न तथा डी०सी० सरकार ने आभीरों को विदेशी माना है। वे सम्भवतः पूर्वी ईरान के किसी क्षेत्र के मूल निवासी थे। नाम-साम्य के आधार पर कंदहार तथा हिरात

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के बीच स्थित अविरवन क्षेत्र से आभीरों का सम्बन्ध जोड़ा गया है। टार्न महोदय के अनुसार आभीरों ने सिकन्दर के आक्रमण के दौरान भारत में प्रवेश किया होगा। परन्तु डी० सी० सरकार का अनुमान है कि वे शकों या पल्हवों आदि विदेशी जनजातियों के साथ ही भारत आये होंगे। आभीरों का भारत में प्रवेश ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में कम सम्भावित प्रतीत होता है। ए० बी० कीथ ने 150 ई० पू० के पहले आभीरों का भारत में अप्रवासन माना है। ई० पू० प्रथम शताब्दी में आभीरदेश इंडोसीथिया का एक प्रान्त था। टार्न के अनुसार आभीरों के देश को सर्वप्रथम बैक्ट्रिया के शासक डिमेट्रियस ने जीता था। ए० के० नरायन ने इस मत का खंडन किया है। उनकी मान्यता है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में आभीरों को शकों ने पराजित किया था।

बीम्स (Beams) महोदय के अनुसार आभीर (अहिर) शब्द का अर्थ 'सर्प-प्रेमी' है। कर्नल वाकर ने सुझाव दिया है कि अहिर, 'अहेरी' शब्द से बना है जिसका अर्थ 'शिकारी' है। हेमचन्द रायचौधरी आभीर शब्द को द्रविड़ उत्पत्ति का मानते हैं। एल० डी० बार्नेट की अवधारणा है कि सुदूर दक्षिण के प्राचीन चोल, पांड्य तथा चेर राज्यों में निवास करने वाले **आयर** लोग (Ayars) आभीरों के पूर्वज थे। भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार **शबरी** तथा **अभीरी** भाषाएं ग्वालों में प्रचलित थीं जो आभीरों की बस्तियां थीं। दंडी ने लिखा है कि आभीर, आर्यों के प्रति शत्रुता की भावना रखते थे।

आभीर सम्भवतः विदेशी थे। कालान्तर में उनका भारतीयकरण हो गया और उन्हें हिन्दू सामाजिक संगठन में शूद्रों के समकक्ष स्थान प्रदान किया गया। यहां यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि आभीरों की भांति लिच्छवियों को भी (जो कि अनेक विद्वानों के अनुसार विदेशी थे) भारतीयकरण के पश्चात् व्रात्य-क्षत्रिय (निम्न श्रेणी के क्षत्रिय) तथा शूद्रवत् माना गया।

भारत में प्रवेश करने के उपरान्त आभीर पहले सम्भवतः पूर्वी पंजाब में सतलज एवं यमुना नदियों के मध्यवर्ती भू-भाग में, तथा राजस्थान में विनशन के निकटवर्ती क्षेत्र में बस गए थे। भगवानसिंह के अनुसार सरस्वती नदी की घाटी उनकी शक्ति का केन्द्र था और प्रथम शताब्दी ई० पू० में वे दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में निवास कर रहे थे। आभिलेखिक साक्ष्य के अनुसार वे पहले मध्य प्रदेश में पहुंचे और भिलसा तथा झांसी के बीच स्थित अहिरवार नामक स्थान पर बस गए। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में वे दक्षिणापथ की ओर बढ़े और महाराष्ट्र में उन्होंने अपने राज्य की स्थापना की। वराहमिहिर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की वृहत्संहिता में आभीरदेश का विस्तार अवन्ति के दक्षिण में नासिक तक बतलाया गया है। मार्कण्डेय पुराण (अध्याय 57/45-48) तथा वायु पुराण (अध्याय 45/126) में आभीरों को दक्षिणापथ का निवासी (दक्षिणापथवासिनः) कहा गया है और उनका उल्लेख शबरों, पुलिन्दों, वैदर्भों, कलिंगों, अन्ध्रों, कुन्तलों एवं केरलों आदि दक्षिणापथ तथा सुदूर दक्षिण के लोगो के साथ हुआ है।

प्रारम्भ में आभीर सम्भवतः उज्जयिनी के शक-क्षत्रपों के अधीन पदाधिकारी थे। अभिलेखों में उनका पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रपों के सेनापतियों के रूप में उल्लेख हुआ है। 181 ई० के गुंड अभिलेख में आभीर सेनापति बापक के पुत्र रुद्रभूति नामक सेनानायक ने शक शासक रुद्रसिंह को 'महाक्षत्रप' के स्थान पर केवल 'क्षत्रप' कहा है। इससे प्रतीत होता है कि यह आभीर सेनापति उस क्षेत्र का वास्तविक शासक हो गया था। धीरे-धीरे आभीरों ने अपनी शक्ति का विस्तार किया। डी० आर० भंडारकर के अनुसार 188 तथा 190 ई० के मध्य, उज्जयिनी के शक राज्य में कोई महाक्षत्रप नहीं था। इस राजनैतिक संकट के अन्तराल में आभीर ईश्वरदत्त (ईश्वरसेन) ने वहां शासन किया होगा। प्रारम्भ में आभीर वेतनभोगी लड़ाकू थे। परन्तु शकों के शासनकाल में वे सेना में नियमित रूप से भर्ती होने लगे थे और सातवाहनों की शक्ति की पराकाष्ठा के दिनो में खानदेश में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त थे।

आन्ध्र-सातवाहन राजवंश के पतन के पश्चात् उत्तर-पश्चिमी दक्षिणापथ में राज्य करने वाले आभीर-शासकों में शिवदत्त का पुत्र राजामाठरिपुत्र ईश्वरसेन उल्लेखनीय है। इस शासक के राज्यकाल के 9वें वर्ष का एक अभिलेख नासिक में प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख में ईश्वरसेन के पिता शिवदत्त को कोई राजकीय उपाधि नहीं दी गई है। इससे प्रतीत होता है कि वह राजा नहीं था और उसका पुत्र ईश्वरसेन ही आभीर राजवंश का संस्थापक था। ई० जे० रैप्सन तथा वी० वी० मिराशी ने ईश्वरसेन को 248-49 ई० में प्रारम्भ होने वाले कलचुरि-चेदि संवत् का प्रवर्तक माना है। इस संवत् को उसने अपने राज्यारोहण के समय प्रारम्भ किया होगा।

ईश्वरसेन के सिक्के मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ में पाये गये हैं और कलचुरि-चेदि संवत् का प्रचलन बाद में मुख्यतः पश्चिमी महाराष्ट्र, अपरान्त तथा लाट प्रान्तों में ही रहा। इन साक्ष्यों के आधार पर उसका आधिपत्य पश्चिमी महाराष्ट्र, दक्षिणी गुजरात, अपरान्त तथा काठियावाड़

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रदेशों पर माना जाता है। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार 279 ई० लगभग उसने कृष्णा-गुंटूर ज़िलों को अपने अधीन कर लिया था। ईश्वरसेन के नासिक अभिलेख में शक अग्निवर्मन की पुत्री शकानिविष्णुदत्ता द्वारा गोवर्धन की व्यापारिक श्रेणियों के पास, रोगी बौद्ध-भिक्षुओं की चिकित्सा के लिए 2,000, 1000 तथा 500 कार्षापण सिक्कों के जमा किए जाने का उल्लेख हुआ है। उसके राज्यकाल के विषय में कोई अन्य उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती। उसके उत्तराधिकारियों ने महाराष्ट्र में काफी समय तक शासन किया था।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ईश्वरदत्त नामक एक साहसिक शासक ने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की और क्षत्रप-शैली में चांदी के सिक्के चलाए। उसके कुछ सिक्के शक शासक रुद्रसिंह के सिक्कों के साथ गुजरात में प्राप्त हुए हैं और ये ईश्वरदत्त के शासन के प्रथम तथा द्वितीय वर्षों के हैं। डी० आर० भंडारकर ने इन सिक्कों की तिथि 188 ई० मानी है और ई० जे० रैप्सन तथा डी० सी० सरकार ने क्रमशः 237 एवं 240 ई०। अधिकांश विद्वान ईश्वरदत्त को आभीर मानते हैं, यद्यपि इस मान्यता के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।

भागवत पुराण–(11/1/29) के अनुसार आभीर राजवंश में कुल सात शासक हुए। परन्तु विष्णु पुराण (4/24/51) तथा मत्स्य पुराण (273/18) में आभीर राजाओं की संख्या क्रमशः नौ एवं दस बतलाई गई है। भगवान सिंह के अनुसार मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण से पहले का है, इसलिए इसकी सूचना अधिक प्रामाणिक माननी चाहिए। परन्तु यह विचार बहुमान्य नहीं है और अधिकांश विद्वान विष्णु पुराण को ही अधिक प्राचीन मानते हैं। वी० वी० मिराशी के अनुसार, दस राजाओं के शासन के लिये 67 वर्ष की अवधि बहुत कम है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वायु पुराण की एक पांडुलिपि का साक्ष्य भी उद्धृत किया है जिसमें आभीर-शासकों का कुल राज्यकाल 67 वर्ष के स्थान पर 167 वर्ष बतलाया गया है। इसे स्वीकार करने पर आभीरों की शासनावधि 248-49 ई० से लेकर 415-16 ई० (248-49 + 167 = 415-16 ई०) तक निर्धारित की गई है। यही त्रैकूटकों के शासन के प्रारम्भ की तिथि है जिनके अभ्युदय के कारण ही मुख्यतः आभीरों का पतन हुआ था। परन्तु ईश्वरसेन के बाद के आभीर शासकों के राज्यकाल की घटनाओं तथा उनकी उपलब्धियों आदि के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती।

नागार्जुनकोंड से प्राप्त आभीर वसुसेन के एक अभिलेख के आधार पर के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा दिनेशचन्द्र सरकार की मान्यता है कि 275 तथा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

285 ई० के बीच के दस वर्ष के अन्तराल में वसुसेन नाम के एक आभीर शासक ने आन्ध्र के इक्ष्वाकु राज्य में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उपरान्त वहां शासन किया। परन्तु बाद में इक्ष्वाकु शासक शान्तमूल ने उसे पराजित कर अपने राज्य को पुनः अधिकृत कर लिया था। उक्त अभिलेख में बतलाया गया है कि **अष्टभुजस्वामी** की प्रतिमा के अभिषेक के अवसर पर वसुसेन, शिवसेन, अवन्ति राज्य का यवण शासक रुद्रदामन तथा वनवासक का राजा विष्णुरुद्रशिवलानन्द शातकर्णि, इक्ष्वाकु-राजधानी में विद्यमान थे। इस अभिलेख में उत्कीर्ण तिथि को दिनेशचन्द्र सरकार ने 30 वर्ष पढ़ा है और इसे 248-49 ई० के कलचुरि-चेदि संवत् का वर्ष मानते हुए वसुसेन के अभिलेख की तिथि 278-79 ई० निर्धारित की है। डी० सी० सरकार ने यह भी कहा है कि यदि इस तिथि को कलचुरि-चेदि संवत् के वर्ष स्थान पर वसुसेन के राज्यकाल का 30वां वर्ष मान लिया जाय, तो यह विश्वास किया जा सकता है कि उसने पल्लवों से मिलकर इक्ष्वाकुओं को पराजित किया होगा और उनके राज्य के कुछ भू-भागों को अधिकृत कर वहां पर शासन किया। बाद में पल्लवों ने उसे वहां से खदेड़ दिया।

एम० रामाराव के अनुसार वसुदेव के नागार्जुनकोंड अभिलेख में वर्णित राजाओं में से वनवासक का शातकर्णि इक्ष्वाकु शासक वीरपुरुषदत्त का दामाद और अवन्ति का रुद्रदामन शान्तमूल प्रथम की पत्नी का सम्बन्धी रहा होगा। उनकी मान्यता है कि नागार्जुनकोंड में **अष्टभुजस्वामी** की मूर्ति के अभिषेक के समय इक्ष्वाकुओं के उपर्युक्त सम्बन्धी वहां उपस्थित थे, वसुसेन ने इक्ष्वाकु राज्य पर आक्रमण नहीं किया था।

के० एस० सुन्दरन के अनुसार उपर्युक्त अभिलेख वसुसेन के किसी अधीनस्थ द्वारा लिखवाया गया होगा। अतएव इसमें उसके (वसुसेन के) शासक के वर्ष का उल्लेख हुआ है। यदि वसुसेन ने इक्ष्वाकुओं को पराजित किया होता, तो वह इस महत्वपूर्ण सफलता का वर्णन अपने अभिलेख में निस्सन्देह कराता। सुन्दरन का अनुमान है कि वसुसेन के किसी सामन्त ने इक्ष्वाकु-राजधानी पर विजय प्राप्त की होगी और इसके उपलक्ष में अष्टभुजस्वामी के प्रति अपनी श्रद्धा एवं आभार प्रदर्शित करने के लिए वे उसके अभिषेक में शामिल हुए होंगे।

ये सभी मत अनुमान पर आधारित हैं। वसुसेन के अभिलेख की तिथि उसके शासन का वर्ष है अथवा किसी संवत् का, निश्चित रूप से कहना कठिन है। परन्तु इस अभिषेक के विवरण से प्रतीत होता है कि वह सम्भवतः इक्ष्वाकुओं का मित्र था और उसे अष्टभुजस्वामी की प्रतिमा के अभिषेकोत्सव में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया गया होगा। इस मान्यता के लिए अधिक स्पष्ट प्रमाण अपेक्षित है कि वसुसेन ने इक्ष्वाकु राज्य को जीता और वहां दस वर्ष तक शासन भी किया।

चौथी शताब्दी में आभीरों को अनेक कठिनाइयों एवं बाहरी आक्रमणों का सामना करना पड़ा। चन्द्रवल्लि अभिलेख के अनुसार कदम्ब शासक मयूर-शर्मन ने आभीरों को पराजित कर दिया था। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उनका उल्लेख उन जन-जातियों के साथ हुआ है जो उसके साम्राज्य की पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमी सीमा पर रहती थीं और जिन्होंने उसे विभिन्न प्रकार से सन्तुष्ट करने का प्रयास किया था। इन साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि कम से कम 350 ई० के आस-पास तक आभीर शासक राज्य कर रहे थे। पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रप तथा सम्भवतः चुटु एवं मुंड भी उनके अधीन अधिकारी थे। वी० वी० मिराशी ने त्रैकूटक, माहिष्मती तथा मध्य गुजरात के शासकों को आभीरों का सामन्त माना है। उनके अनुसार महाराज स्वामिदास एवं रुद्र-दास आदि खानदेश में वर्ष 67, 107 तथा 117 में आभीरों के अधीनस्थ के रूप में राज्य कर रहे थे। मिराशी ने उपर्युक्त तिथियों को कलचुरि-चेदि संवत् से सम्बन्धित किया है। परन्तु डी०सी० सरकार के अनुसार ये तिथियां गुप्त संवत् की हैं, और उक्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय अथवा उसके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के सामन्त रहे होंगे।

फ्लीट महोदय के अनुसार वातापी के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय (610, 611-642 ई०) ने आभीरों को पराजित कर उनकी शक्ति के केन्द्र नासिक को अधिकृत कर लिया था। परन्तु ऐहोल प्रशस्ति में अथवा अन्य किसी भी साक्ष्य में पुलकेशिन की विजयों में आभीरों को नहीं शामिल किया गया है। आभीरों का पतन सम्भवतः पुलकेशिन के आक्रमण के पहले ही हो गया था, यद्यपि इसके बाद वे कई शताब्दियों तक अपना अस्तित्व बनाये रहे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

13

वाकाटक राजवंश

मूलनिवास—सातवाहन साम्राज्य के पतन के पश्चात् तथा शकों की शक्ति क्षीर्ण होने पर दक्षिणापथ में जिन राजनैतिक शक्तियों का अभ्युदय हुआ, उनमें वाकाटक सर्वाधिक शक्तिशाली थे। वे **विष्णुवृद्धि गोत्र** के ब्राह्मण थे। इस राजवंश का संस्थापक विन्ध्यशक्ति था। वायु तथा ब्रह्मांड पुराणों के अनुसार कोलिकिलो (किलकिलो) के 96 वर्ष के दीर्घ शासन के उपरान्त विन्ध्यशक्ति राजा हुआ[1]।

अधिकांश विद्वान **वाकाटक** शब्द को स्थानवाची मानते हैं[2], किन्तु इसके समीकरण के विषय में काफी मत-भिन्नता है। मुख्यतः इसीलिए वाकाटकों का निवास-स्थान विवादास्पद है। वी० ए० स्मिथ के अनुसार वे उत्तर भारत में मध्य प्रदेश के मूलनिवासी थे। पुराणों में विदिशा के राजाओं के विवरण के सन्दर्भ में सदाचन्द्र, चन्द्रांश, धनधर्मन, भूतिनन्द तथा नन्दियशस आदि के नाम मिलते हैं। इन्हीं शासकों की सूची में वाकाटक राजवंश के प्रथम नृपति विन्ध्यशक्ति एवं उसका पुत्र प्रवीर (प्रवरसेन प्रथम) भी शामिल है। इस आधार पर मध्य प्रदेश में विदिशा के आस-पास के क्षेत्र को वाकाटकों का मूलदेश माना गया है। इसकी पुष्टि कुछ सीमा तक इस तथ्य से भी हो जाती है कि वाकाटक-अभिलेखों में केवल संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया गया है।

के० पी० जायसवाल ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर बुन्देलखंड को वाकाटकों का मूल निवास क्षेत्र माना है—

---

1. ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति।
   समाषण्णवती ज्ञात्वा पृथिवी तु समेष्यति।
   (Dynasties of the Kali Age, p. 48).
2. अमरावती के एक अभिलेख में उल्लिखित वाकाटक नामक गृहपति के आधार पर मिराशी ने इस शब्द को व्यक्तिवाचक माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

1. बुन्देलखंड में बजौर-बगट[1] नामक एक ग्राम है। यहां **बगट** शब्द को जायसवाल ने वाकाटक से सम्बन्धित माना है।

2. बुन्देलखंड की भूतपूर्व जसो रियासत से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर दुरचा (दुरेहा?) नामक स्थान पर स्थित एक स्तम्भ पर **वाकाटकानाम्** लेख अंकित है।

3. पृथ्वीषेण प्रथम के सामन्त व्याघ्रदेव का एक अभिलेख बुन्देलखंड में नचनाकीतलई नामक स्थान पर प्राप्त हुआ है। जायसवाल ने नचना की पहचान **चणका** से की है जो पुराणों के अनुसार प्रवीर या प्रवरसेन प्रथम के आधिपत्य में था।

4. पुराणों में इस वंश के संस्थापक विन्ध्यशक्ति को किलकिला-क्षेत्र से सम्बन्धित किया गया है। यह स्थान बुन्देलखंड में इसी नाम की नदी के निकट स्थित था।

के० पी० जायसवाल का उपर्युक्त मत तथा इसके समर्थन में दिए गए तर्क एवं प्रमाण मान्य नहीं हैं। **बगट** एवं **वाकाटक** शब्दों की तथाकथित कुछ वाह्य समानता के आधार पर बजौरबगट को वाकाटकों से सम्बन्धित नहीं माना जा सकता। उपर्युक्त जिस लेख को जायसवाल ने **वाकाटकानाम्** पढ़ा है, उसे ए०एस० अल्तेकर तथा कुछ अन्य विद्वान **वंकतृकानाम्** पढ़ते हैं, जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। पृथ्वीषेण प्रथम ने बुन्देलखंड के कुछ भाग पर विजय प्राप्त की थी, किन्तु यह क्षेत्र उसका आदिदेश नहीं था। **चणका** या **कांचनका** की नचना नामक स्थान से पहचान करने के लिए कोई आधार नहीं है। पुराणों में विन्ध्यशक्ति को किलकिला-क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं किया गया है, बल्कि यह बतलाया गया है कि वह **किलकिलों (कोलिकिलों)** के राज्यकाल के समाप्त हो जाने पर राजा हुआ था।

वी० वी० मिराशी महाराष्ट्र के बरार क्षेत्र को निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर वाकाटकों का मूल देश मानते हैं–

1. वाकाटक शासक विन्ध्यशक्ति द्वितीय के बसीम अभिलेख में प्रयुक्त प्राकृत भाषा के कई तकनीकी शब्द पल्लव शिवस्कन्दवर्मन के हीरहडगल्लि एवं मईडवलु अभिलेखों में मिलते हैं।

2. प्रवरसेन द्वितीय के इन्दौर ताम्रपत्रों के अतिरिक्त वाकाटको के सभी

1. यह झांसी जिले में चिरगांव कस्बे से लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभिलेख विन्ध्य के दक्षिणी क्षेत्र में ही पाए गए हैं और यह ताम्र-पत्र भी सम्भवतः किसी अन्य स्थान से इन्दौर ले लाये गए होंगे।

3. प्रवरसेन प्रथम, सर्वसेन एवं विन्ध्यशक्ति द्वितीय को बसीम अभिलेख में हारीतिपुत्र एवं धर्ममहाराज की उपाधियां दी गई है। इन विरुदों का प्रचलन दक्षिण भारत के चुटु, पल्लव, कदम्ब तथा वातापी के चालुक्य आदि राजवंशों में था। उत्तर भारत के राजा इनका प्रयोग नहीं करते थे।

4. तृतीय शताब्दी के अमरावती के एक अभिलेख में दक्षिण भारत के वाकाटक नामक एक गृहपति का उल्लेख है। (**ग्रामेबाथवत-गहपतिसवाकाटकस**)। **वाकाटक** नाम का उल्लेख करने वाला यह सबसे प्राचीन अभिलेख है। मिराशी के अनुसार यही वाकाटक नामक गृहस्थ वाकाटक वंश का आदिपुरुष एवं संस्थापक था।

5. वाकाटकों ने दक्षिण भारत के वल्लूर नामक ग्राम के परिवार को कई पीढ़ियों तक संरक्षण प्रदान किया। यह वल्लूर सम्भवतः येलुगंडल जिले का वेलूर है।

वाकाटक वंश के प्रथम शासक विन्ध्यशक्ति के नाम के आधार पर ए०एस० अल्तेकर का अनुमान है कि प्रारम्भ में वह विन्ध्य के निकटवर्ती क्षेत्र का अधिपति रहा होगा। पुराणों में उसका उल्लेख विदिशा के शासकों के साथ हुआ है और उसकी राजधानी पुरिका भी पूर्वी मालवा अथवा बरार क्षेत्र में स्थित थी। इसलिए पूर्वी मालवा या बरार ही वाकाटकों का मूल निवास था। जी०जे० डुब्रील तथा सुधाकर चटोपाध्याय भी वाकाटकों को दक्षिणापथ के बरार क्षेत्र का ही मूलनिवासी मानते हैं।

रमेशचन्द्र मजूमदार की मान्यता है कि वाकाटक मध्य प्रदेश के मूलनिवासी थे, क्योंकि इसी क्षेत्र में उनके अधिकांश अभिलेख मिले हैं।

उपर्युक्त अमरावती अभिलेख में उल्लिखित गृहपति नामक गृहस्थ का वाकाटक राजवंश से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। वह वास्तवमें तीर्थ-यात्री के रूप में अमरावती के बौद्ध-बिहार के दर्शनार्थ गया होगा। प्रारम्भिक वाकाटक शासकों के अभिलेख मुख्यतः महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश में मिले हैं और विन्ध्यशक्ति की राजधानी **पुरिका** पूर्वी मालवा या बरार क्षेत्र में अथवा इसके आस-पास स्थित रही होगी। इसलिए वाकाटकों का आदिदेश इन्हीं भू-भागों में स्थित रहा होगा।

अभ्युदय की तिथि—वाकाटकों के अभ्युदय की तिथि मोटेतौर पर ही निर्धा-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रित की जा सकती है। सातवाहन साम्राज्य के पतन तथा वाकाटक राजवंश की स्थापना के बीच के अन्तराल का बरार क्षेत्र एवं मध्य प्रदेश का इतिहास काफी धूमिल है। के० पी० जायसवाल के अनुसार विन्ध्यशक्ति ने अपने राज्यारोहण के समय 248-49 ई० में प्रारम्भ होने वाले कलचुरि-चेदि संवत् का प्रवर्तन किया था, परन्तु यह मत काल्पनिक है। यदि वाकाटक राजवंश के संस्थापक ने, अथवा इस वंश के किसी अन्य शासक ने उक्त संवत् चलाया होता, तो कम से कम वह स्वयं तथा उसके उत्तराधिकारी इसका प्रयोग अवश्य करते। किन्तु वाकाटकों के किसी भी अभिलेख या मुद्रा-लेख में कलचुरि-चेदि संवत् नहीं प्रयुक्त हुआ है। इस राजवंश के सभी तिथि-युक्त अभिलेखों में राजाओं के शासन के वर्षों का ही उल्लेख हुआ है कलचुरि-चेदि संवत् का वाकाटकों से कोई सम्बन्ध नहीं था।

एन० सुब्रमण्यम, पी० एन० चोपड़ा तथा टी० के० रवीन्द्रन ने रुद्रसेन-द्वितीय एवं प्रवरसेन द्वितीय की चन्द्रगुप्त द्वितीय से समकालीनता को वाकाटकों की तिथिक्रम निर्धारित करने का प्रमुख आधार माना है। ए० एस० अल्तेकर तथा आर०सी० मजूमदार के अनुसार प्रभावती के पति रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु लगभग पांच वर्ष के शासन के पश्चात् 390 ई० के आस-पास हुई होगी और रुद्रसेन द्वितीय के पिता पृथ्वीषेण ने 360 से 385 ई० तक राज्य किया। कुछ वाकाटक अभिलेखों में बतलाया गया है कि पृथ्वीषेण के राज्यकाल के एक शताब्दी पूर्व वाकाटक राजवंश की स्थापना हो चुकी थी[1] और पुराणों के अनुसार विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रवरसेन प्रथम (प्रवीर) ने 60 वर्ष तक शासन किया था[2]। यदि यह कथन तथ्य पर आधारित है, तो 360-100 = 260 ई० 250 ई० के आस-पास वाकाटक राजवंश की स्थापना हुई होगी।

विन्ध्यशक्ति प्रथम—पुराणों के अनुसार वाकाटक राजवंश का संस्थापक विन्ध्यशक्ति था, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि हरिषेण के अजन्ता अभिलेख के अतिरिक्त अन्य किसी वाकाटक अभिलेख में उसे इस राजवंश के वंशवृक्ष में नहीं

---

1. समुदित-वर्षशतम-अभिवर्धमान-कोशदंडसाधन-सन्तानपुत्र-पौत्रः (दुदिया-ताम्र-पत्र-अभिलेख)।
2. विन्ध्यशक्ति-सुतश्चापि प्रवीरोनाम वीर्यवान्।
भोक्ष्यते च समाशष्टिमसमाप्तवर दक्षिणैः।
(Dynasties of the Kali Age, p. 50).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शामिल किया गया है। अजन्ता अभिलेख में उसे कोई राजकीय **विरुद** नहीं दिया गया है। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार उसने किसी राजा के पदाधिकारी के रूप में अपने राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ किया होगा। उसका राज्याभिषेक सम्भवतः कभी नहीं हुआ और वह आजीवन सेनापति बना रहा। के० पी० जायसवाल के अनुसार विन्ध्यशक्ति प्रारम्भ में भारशिव-नागों का सामन्त रहा होगा। किन्तु उसके अधिपति राजवंश अथवा राजा का नाम अभी तक अज्ञात है।

पुराणों में विन्ध्यशक्ति का उल्लेख **किलकिलों** के साथ हुआ है और बतलाया गया है कि पुरिका उसकी राजधानी थी। किलकिलों को यवन तथा वृष कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि इस जनजाति के लोग सम्भवतः विदेशी थे। कुछ विद्वानों के अनुसार वे पश्चिमी भारत के शकों तथा विदिशा के नाग शासकों से सम्बन्धित थे। पुरिका[1] नगर दशार्ण या विदर्भ[2] में स्थित रहा होगा। परन्तु इसकी सुनिश्चित रूप से पहचान नहीं की जा सकी है।

अल्तेकर के अनुसार **विन्ध्यशक्ति**, वाकाटक वंश के संस्थापक की उपाधि थी जिसे उसने सम्भवतः विन्ध्यपर्वत-श्रंखला के निकटवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार करने के परिणामस्वरूप धारण किया होगा। परन्तु विन्ध्यशक्ति नाम का, विन्ध्य-क्षेत्र से सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक नहीं है। हमें यह किसी साक्ष्य से ज्ञात नहीं होता कि विन्ध्यशक्ति वाकाटक वंश के प्रथम शासक का नाम न होकर उसकी उपाधि थी। यदि यह वास्तव में उसका विरुद था, तो पुराणों अथवा वाकाटक अभिलेखों में उसके नाम का उल्लेख अवश्य किया गया होता।

हरिषेण के अजन्ता अभिलेख में विन्ध्यशक्ति को द्विज (ब्राह्मण) तथा वाकाटक वंश का **केतु** कहा गया है और बतलाया गया है कि उसने अनेक युद्धों में विजयें प्राप्त कर अपनी शक्ति में वृद्धि की थी। अपने शौर्य से शत्रुओं को पराजित कर वह उन्हें विनम्र बना देता था। वह इन्द्र तथा उपेन्द्र के समान

---

1. वराहमिहिर की बृहत्संहिता (14/10) में पुरिका का दशार्ण (पूर्वी मालवा) के साथ उल्लेख हुआ है।
2. मार्कण्डेय पुराण (7/48) में इसका उल्लेख अश्मक तथा विदर्भ के साथ हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रभावशाली था और अनेक शासक उसके चरणों में नतमस्तक होते थे[1]। परन्तु विन्ध्यशक्ति द्वारा विजित किसी राजा अथवा राज्य के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए उसकी उपलब्धियों का सही मूल्यांकन एवं उसके राज्य की वास्तविक सीमाओं का निर्धारण करना कठिन है। अल्तेकर का यह सुझाव कि उसने मुख्यत: उन निर्जन जंगली प्रदेशों को जीता होगा जो किसी भी राजा के अधीन नहीं थे, काल्पनिक है। उसके राज्य में सम्भवत: विन्ध्य के आस-पास के क्षेत्रों के अतिरिक्त मध्य प्रदेश तथा बरार के कुछ भू-भाग सम्मिलित थे।

पुराणों के अनुसार विन्ध्यशक्ति ने 96 वर्ष तक शासन किया, परन्तु यह स्पष्टत:अविश्वसनीय है और इस कथन के आधार पर अधिक से अधिक यह स्वीकार किया जा सकता है कि वह 96 वर्ष तक जीवित रहा होगा। विभिन्न विद्वानों ने विन्ध्य-शक्ति के राज्यकाल की तिथियां 240-45 से 265 ई० (सुधाकर चट्टोपाध्याय), 255-75 ई० (अल्तेकर), 250-75 ई० (रमेशचन्द्र मजूमदार) तथा तृतीय शताब्दी का अन्तिम चरण (नीलकांत शास्त्री) मानी हैं।

प्रवरसेन प्रथम (लगभग 275-335 ई०)—विन्ध्यशक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र प्रवरसेन राजा हुआ। पुराणों में उसे **प्रवीर** कहा गया है। प्रवरसेन प्रथम ने **धर्ममहाराज** एवं **हारीतिपुत्र** के अतिरिक्त **सम्राट** की उपाधि भी धारण की थी। वाकाटक शासकों में **सम्राट** का विरुद केवल प्रवरसेन प्रथम को ही दिया गया। इससे प्रमाणित होता है कि वह न केवल इस वंश का प्रथम स्वतन्त्र शासक था, वरन् उसने उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य की सीमाओं का काफी विस्तार भी किया। प्रवरसेन के राज्यकाल का अभी तक कोई अभिलेख नहीं मिला है, परन्तु अन्य वाकाटक शासकों के अभिलेखों में उसकी महानता एवं उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है।

पुराणों तथा कुछ वाकाटक अभिलेखों में वर्णित है कि प्रवरसेन प्रथम ने चार अश्वमेध यज्ञ किए थे। ये यज्ञ प्राय: साम्राज्यवादी शासक एवं महान विजेता ही करते थे। परन्तु जहां एक ही शासक द्वारा कई अश्वमेध यज्ञ किए जाने के उल्लेख मिलते हैं, वहां इस यज्ञ का राजनैतिक महत्व कम होता है। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार प्रवरसेन ने चार अश्वमेध यज्ञ चार महत्वपूर्ण

1. रणदानशक्तिर्द्विज: प्रकाशो भुवि विन्ध्यशक्ति:।
पुरन्दरौपेन्द्रसमप्रभाव: स्वबाहुवीर्य (र्ज्जि) तस·····वभूव वाकाटक-वंशकेतु:। रणेषुहर्युद्धतरणजालसंछादितार्करस च·····।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सामरिक अभियानों में प्राप्त सफलताओं के अवसर पर सम्पन्न किए होंगे। उसने प्रथम अश्वमेध यज्ञ जबलपुर एवं बालाघाट तक भू-भाग पर अधिकार करने के पश्चात् किया होगा। दूसरे आक्रमण में उत्तरी एवं पूर्वी महाराष्ट्र, दक्षिणी विदर्भ तथा अजन्ता पर विजय प्राप्त की होगी क्योंकि वाकाटक अभिलेखों से विदित होता है कि प्रवरसेन का पुत्र सर्वसेन इस प्रदेश में राज्य कर रहा था। श्रीशैलस्थलमाहात्म्य में वर्णित एक अनुश्रुति के अनुसार सम्राट चन्द्रगुप्त की चन्द्रवती नामक पुत्री, कृष्णा नदी के निकटवर्ती करनूल ज़िले में स्थित श्रीशैल के देवता मल्लिकार्जुन की पूजा के लिए प्रतिदिन फूल-माला भेंट करती थी। अल्तेकर महोदय चन्द्रावती को प्रभावती गुप्ता का ही दूसरा नाम मानते हैं। यदि यह सत्य है, तो उक्त अनुश्रुति का विवरण भूतपूर्व निज़ाम राज्य के अधिकांश भाग पर जिसमें श्रीशैल क्षेत्र भी शामिल था, प्रवरसेन का आधिपत्य प्रमाणित करता है। परन्तु किसी अन्य साक्ष्य से यह ज्ञात नहीं हुआ हैं कि चन्द्रावती प्रभावती का ही दूसरा नाम था।

प्रवरसेन प्रथम ने तीसरे आक्रमण में बघेलखंड तथा छत्तीसगढ़ को अपने अधीन किया होगा। अल्तेकर की यह भी धारणा है कि उसने गुजरात एवं काठियावाड़ के शक-क्षत्रप रुद्रसेन द्वितीय तथा रुद्रदामन द्वितीय पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। सम्भवतः इसीलिए इन शासकों ने 332 तथा 348 ई० के बीच के अन्तराल में **महाक्षत्रप** की उपाधि नहीं धारण की थी[1]।

अल्तेकर के उपर्युक्त विचार मुख्यतः अनुमान पर आधारित हैं यदि प्रवरसेन ने वास्तव में चार अश्वमेध-यज्ञ किए थे, तो यह विश्वास किया जा सकता है कि वे चार युद्धों में प्राप्त विजयों अथवा किन्ही अन्य चार महत्वपूर्ण घटनाओं के उपलक्ष में सम्पन्न किए गए होंगे। परन्तु किन विजयों के उपलक्ष में ये यज्ञ किए गए थे, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वी०वी० मिराशी के अनुसार 332 तथा 348 ई० के बीच शक-क्षत्रपों द्वारा **महाक्षत्रप** की उपाधि का प्रयोग न करने का प्रमुख कारण मध्य भारत में श्रीधरवर्मन नामक शासक का अभ्युदय था। उसने मालवा में शक-क्षत्रपों का आधिपत्य समाप्त कर दिया था[2]। परन्तु इसी समय के आस-पास पश्चिमी मालवा एवं गुजरात में आभीर भी राज्य कर

1. अन्य विद्वानों के अनुसार 295 तथा 340 ई० के बीच के काल में पश्चिमी भारत के शकों ने **महाक्षत्रप** की उपाधि नहीं धारण की थी (Some Early Dynasties of South India, p. 159).
2. CII, Vol. IV, Part I, Introduction, p. 38.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रहे थे। इस प्रकार एक समय में एक ही क्षेत्र में दो पृथक राजनैतिक शक्तियों का शासन करना सम्भव नहीं था।

मध्य प्रदेश के छिन्दवाड़ा नामक स्थान पर प्राप्त निधि में शक-क्षत्रपों के 633 सिक्के मिले हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार ये सिक्के शक-क्षत्रपों ने प्रवरसेन प्रथम को कर के रूप में दिए होंगे। परन्तु इस मान्यता के लिए कोई प्रमाण नही है, और अन्य विद्वान इससे असहमत हैं। पुराणों के अनुसार प्रवरसेन ने सिसुक[1] को पराजित कर पुरिका को अपने अधीन कर लिया था।

हरिवंश पुराण के अनुसार पुरिका नगरी ऋक्षवत् (सतपुड़ा की पहाड़ियां) की उपत्यका पर स्थित थी। बृहत्संहिता (14/20) में इसका दशार्ण के साथ उल्लेख हुआ है और मार्कण्डेय पुराण (107/48) में विदर्भ तथा अश्मक राज्यों के साथ। पुराणों में कांचनका नगरी को भी प्रवरसेन के अधीन बतलाया गया है।[2] कांचनका की पहचान निश्चित रूप से नहीं की जा सकी है। के० पी० जायसवाल ने इसे कांची माना है जो अग्राह्य है। सुधाकर चट्टोपाध्याय ने मध्य प्रदेश पर प्रवरसेन प्रथम का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया हैं। उनके अनुसार पुराणों के एक श्लोक का गलत अर्थ लगाकर विद्वानों ने प्रवरसेन को पुरिका का विजेता मान लिया है। उनकी मान्यता है कि पृथ्वीषेण प्रथम के राज्यकाल के नचनाकीतलई एवं गंज नामक स्थानों से प्राप्त अभिलेख मध्य प्रदेश में वाकाटक सत्ता प्रमाणित करने वाले प्राचीनतम साक्ष्य हैं।

प्रवरसेन प्रथम के साम्राज्य की सीमायें निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं। के० पी० जायसवाल के अनुसार वह भारत का सार्वभौम सम्राट था और उसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में पुरुषपुर (पेशावर) से लेकर दक्षिण में कांची तक, और पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में द्वारका तक विस्तृत था। जायसवाल की यह भी मान्यता है कि प्रवरसेन के पुत्र ने पल्लव वंश की स्थापना की थी और वह दक्षिण भारत का भी अधिपति बन गया था। अल्तेकर ने उसके प्रत्यक्ष आधिपत्य के अन्तर्गत उत्तरी महाराष्ट्र, बरार, नर्मदा नदी के दक्षिण का मध्य प्रदेश का भू भाग तथा भूतपूर्व हैदराबाद राज्य का काफी बड़ा क्षेत्र माना है। दक्षिण कोशल, बघेलखंड, मालवा, गुजरात एवं काठियावाड़

---

1. सिसुक विदिशा के नाग शासक की पुत्री का पुत्र था।
2. विन्ध्यशक्ति-सुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान्।
   भोक्ष्यते च समा षष्टि पुरी कांचनका चवै।
   (Dynasties of the Kali Age, 50).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के प्रदेश उसके राजनैतिक प्रभाव में थे। डी० सी० सरकार ने प्रवरसेन के साम्राज्य में उत्तर में बुन्देलखंड से लेकर दक्षिण में भूतपूर्व हैदराबाद रियासत तक का भू-भाग शामिल किया है। उपर्युक्त मतों में जायसवाल का मत असम्भावित एवं अमान्य है। पुराणों, वाकाटक अभिलेखों तथा कुछ अन्य साक्ष्यों में प्रवरसेन को महान शासक एवं विजेता बतलाया गया है। उस समय की राजनैतिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसके राज्य में मध्य प्रदेश का कुछ भाग तथा महाराष्ट्र एवं आन्ध्र राज्यों के अधिकांश क्षेत्र शामिल रहे होंगे। यह भी सम्भव है कि मालवा तथा पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रपों के राजनैतिक संकट के दौरान उसने उनके विरुद्ध भी कुछ सफलता प्राप्त की हो।

मथुरा से प्राप्त कुछ सिक्कों में से एक पर के०पी० जायसवाल के अनुसार प्रवरसेन का लेख एवं वर्ष 76 अंकित है। दूसरे सिक्के पर रुद्र का लेख तथा वर्ष 100 उत्कीर्ण है। अल्तेकर ने इसका खंडन करते हुए कहा है कि जायसवाल जिसे प्रवरसेन का सिक्का मानते हैं, वह वास्तव में वीरसेन का सिक्का है, और जिसे उन्होंने वर्ष 76 वर्ष पढ़ा है, वह चहारदीवारी से घिरे ताल-वृक्ष के पत्ते की आकृति हैं। दूसरे सिक्के पर रुद्र के नाम के बजाय **त्रिरत्न** का चिह्न अंकित है तथा जिसे 100 वर्ष की संख्या पढ़ा गया है, वह **स्वस्तिक** का चिह्न है। इसके अतिरिक्त तथाकथित प्रकार का प्रवरसेन का सिक्का केवल मथुरा से ही प्राप्त हुआ है। यदि प्रवरसेन ने इस प्रकार के सिक्के चलाए थे तो उनमें से कुछ वाकाटक साम्राज्य के प्रमुख प्रदेशों में भी सम्भवतः पाए गए होते। जायसवाल के अनुसार प्रवरसेन प्रथम ने पंजाब के कुषाणों को पराजित कर उन्हें भारत से निकाल दिया और अफगानिस्तान में रहने के लिए बाध्य किया। इसके पश्चात् कुषाणों ने ससैनी वंश के सम्राटों की अधिसत्ता स्वीकार कर ली। उनकी यह भी धारणा है कि कौमुदीमहोत्सव में वर्णित चंडसेन नामक शासक चन्द्रगुप्त प्रथम था और प्रवरसेन प्रथम ने उसकी राजधानी पाटलिपुत्र पर विजय प्राप्त कर उसे अपदस्थ कर दिया था। चंडसेन (चन्द्रगुप्त प्रथम) के स्थान पर प्रवरसेन ने अपने संरक्षित कल्याणवर्मन को राजा बनाया। अपने निर्वासन के दौरान में ही चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु हो गई, जैसा कि प्रयाग-प्रशस्ति के चतुर्थ श्लोक के विवरण से प्रमाणित होता है। इस श्लोक के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम ने शासन के अन्तिम दिनों में अपना राज्य खो दिया था और शोकाकुल होकर मृत्यु शैय्या पर लेटा हुआ था। के० पी० जायसवाल तथा एस० के०

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आयंगर के ये तर्क किसी विश्वसनीय साक्ष्य पर आधारित न होने के कारण अमान्य हैं। न तो कौमुदीमहोत्सव में वर्णित चंडसेन की पहचान चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ करना उचित है और न ही यह मानने के लिए कोई आधार है कि कल्याणवर्मन ने प्रवरसेन की सहायता से मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था। प्रयाग प्रशस्ति के तथाकथित श्लोक संख्या चार का भावार्थ यह है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने सम्भवतः उत्तराधिकार के सम्भावित संघर्ष को समाप्त करने के उद्देश्य से अपने सुयोग्य पुत्र समुद्रगुप्त को अपने जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

प्रवरसेन वाकाटक साम्राज्य का वास्तविक प्रणेता था। उसने अपने पुत्र गौतमीपुत्र का विवाह भारशिव-नागवंश की भवनागा नामक राजकुमारी के साथ किया। इस वैवाहिक सम्बन्ध से उसकी स्थिति उत्तर में सुदृढ़ हो गई थी। भारशिव-नाग उस समय मध्य भारत में शासन कर रहे थे, अतः उस दिशा में अपने राज्य का विस्तार करने में उसे सम्भवतः भारशिवों से सहयोग प्राप्त हुआ होगा। प्रवरसेन ब्राह्मण-धर्म का संरक्षक था। उसने वाजपेय यज्ञ, चार अश्वमेध यज्ञ तथा 16 अतिरात्र यज्ञों के अतिरिक्त अग्निष्टोम आप्तोर्याम, ज्योतिष्टोम, बृहस्पतिसव, साद्यस्क्रम, उक्थ्य एवं षोड़सिन आदि वैदिक यज्ञ भी सम्पन्न किए थे। सम्भवतः इन यज्ञों को करने के पश्चात् उसने सम्राट का विरुद धारण किया होगा। प्रवरसेन के शासन का अन्त 325 (चट्टोपाध्याय) या 335 ई० (अल्तेकर तथा दिनेशचन्द सरकार) में हुआ।

प्रवरसेन प्रथम के उत्तराधिकारी–पुराणों के अनुसार प्रवरसेन प्रथम के पश्चात् उसके चार पुत्रों ने शासन किया। उसका सबसे ज्येष्ठ पुत्र गौमतीपुत्र था जिसे वाकाटक अभिलेखों में कोई राजकीय उपाधि नहीं दी गई है। इस आधार पर अधिकांश विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि उसकी मृत्यु प्रवरसेन के जीवनकाल में ही हो गई होगी। प्रवरसेन की मृत्यु के उपरान्त वाकाटक साम्राज्य कितने भागों में विभाजित हुआ, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इसके कम से कम दो भाग अवश्य प्रमाणित होते हैं। प्रवरसेन का दूसरा पुत्र सर्वसेन था, किन्तु उसके शेष दो पुत्रों के नाम वर्णित नहीं है।

गौतमीपुत्र तथा उसके उत्तराधिकारियों की राजधानी महाराष्ट्र के नागपुर जिले में नन्दिवर्धन नामक नगर में थी। मिराशी महोदय ने इसकी पहचान नागपुर से लगभग 20 किलोमीटर उत्तर में रामटेक के निकट स्थित नगर्धन या

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नन्दर्धन नामक स्थान से की है और कुछ विद्वानों ने इसे नगर्धन से लगभग 25 किलोमीटर उत्तर में स्थित नन्दपुर नामक स्थान माना है। सर्वसेन तथा उसके वंशजों की राजधानी वत्सगुल्म थी। वत्सगुल्म का सर्वप्रथम उल्लेख सम्भवत: महाभारत एवं वात्स्यायन के कामसूत्र में हुआ है। इसका समीकरण महाराष्ट्र के अकोला जिले के बासिम नामक स्थान से किया गया है। प्रवरसेन के पुत्रों ने उसके जीवन काल में प्रान्तीय गवर्नरों के रूप में शासन किया होगा और उसकी मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्र शासकों के रूप में। वी०वी० मिराशी के अनुसार उसके (अज्ञात नाम वाले) दो पुत्रों में से एक ने दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ़) जनपद पर राज्य किया और दूसरे ने सम्भवत :कृष्णा नदी की घाटी में उत्तरी क्षेत्र में। इन दोनों उप-शाखाओं का राज्यकाल अल्पकालीन रहा क्योंकि उनसे सम्बन्धित राजाओं के न तो कोई अभिलेख अथवा सिक्के मिलें हैं और न ही समसामयिक राजवंशों के साक्ष्यों में उनका उल्लेख हुआ है। डी० सी० सरकार के अनुसार यह सम्भावित है कि गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारियों ने बाद में अपने भाइयों द्वारा शासित प्रदेशों को भी अपने अधीन कर लिया हो।

मुख्य वाकाटक शाखा के शासक : रुद्रसेन प्रथम–भारशिव-नाग वंशीय भवनागा से उत्पन्न गौतमीपुत्र का पुत्र रुद्रसेन प्रथम अपने पितामह प्रवरसेन प्रथम के पश्चात् राजा हुआ। जिस प्रकार गुप्त अभिलेखों में समुद्रगुप्त को लिच्छविदौहित्र कहा गया है, उसी प्रकार रुद्रसेन प्रथम को वाकाटक अभिलेखों में भारशिवानां महाराजश्री-भवनागदौहित्र (भारशिव-नाग वंश के शासक भवनाग की पुत्री का पुत्र) कहा गया है। शासन की बागडोर सम्भालने के समय वह नाबालिग था। इसलिए न केवल राजसिंहासन प्राप्त करने में, वरन् प्रशासन-कार्य में भी रुद्रसेन प्रथम को पद्मावती के भारशिव-नागवंशीय अपने नाना भवनाग से काफी सक्रिय सहयोग मिला होगा। इसीलिए वाकाटकों की वंशावली में उसे भी शामिल किया गया है।

रुद्रसेन ने महाराज की उपाधि धारण की। यह उल्लेखनीय है कि प्रवरसेन प्रथम के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती किसी भी वाकाटक शासक ने सम्राट के विरुद का प्रयोग नहीं किया। अल्तेकर ने इसके निम्नलिखित सम्भावित कारण माने हैं–

(अ) वाकाटक ब्राह्मण धर्मानुलम्बी थे जिसके अनुसार वाजपेय यज्ञ करने वाला अधिराट य सम्राट होता हैं। चूंकि वाकाटक शासकों में केवल प्रवरसेन प्रथम ने ही यह यज्ञ किया था, इसलिए उसी ने सम्राट की उपाधि धारण की।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(ब) प्रवरसेन प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया और उसके उत्तराधिकारी छोटे-छोटे प्रदेशों के ही अधिपति रह गये थे।

(स) उस समय वाकाटकों की अपेक्षा गुप्त शासक बहुत अधिक शक्तिशाली थे। इसलिए उन्होंने गुप्तों के समक्ष सम्राट या महाराजाधिराज की उपाधि नहीं धारण की।

एस० के० आयंगर तथा डी० सी० सरकार के अनुसार कम से कम चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल से वाकाटक, गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ मित्र हो गये थे और उनकी स्थिति (गुप्तों के) सामन्त शासकों से अधिक भिन्न नहीं थी।

उपर्युक्त सभी तर्क अनुमान पर आधारित हैं। प्रवरसेन प्रथम के अतिरिक्त सम्राट का विरुद किसी वाकाटक शासक द्वारा न धारण किए जाने का वास्तविक कारण जो भी रहा हो, किन्तु **महाराज** की उपाधि सदैव अधीनस्थ राजनैतिक स्थिति की परिचायक नहीं थी, और विशेष रूप से विवेच्य-काल में दक्षिण भारत के अनेक स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली शासकों ने केवल महाराज की उपाधि का प्रयोग किया[1]। फिर भी प्रभावती गुप्ता के राज्यकाल में वाकाटक राजवंश पर गुप्त शासकों का प्रभाव निःसन्देह काफी बढ़ गया था। प्रभावती के अभिलेखों में वाकाटक वंशवृक्ष के स्थान पर गुप्त-वंशावली का ही वर्णन है। उसने अपने अभिलेखों में अपने पिता के राजवंश से ही अपने सम्बन्ध का उल्लेख किया और पिता के **गोत्र** को भी प्रयोग किया। परन्तु उसने गुप्त संवत् का प्रयोग नहीं किया था।

के० पी० जायसवाल तथा कुछ अन्य विद्वानों ने रुद्रसेन प्रथम की पहचान प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित रुद्रदेव नामक शासक से की है जिसे समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। यह समीकरण निम्नलिखित कारणों से अमान्य है—

1. प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित राजा का नाम रुद्रदेव है, रुद्रसेन नहीं।

2. रुद्रदेव को आर्यावर्त या उत्तर भारत के राजाओं में शामिल किया गया है, किन्तु वाकाटक महाराष्ट्र के शासक थे। उन्हें आर्यावर्त का शासक नहीं कहा जा सकता।

3. प्रयाग प्रशस्ति में रुद्रदेव का उल्लेख उन नौ राजाओं के साथ में हुआ है जिनका पूर्णरूपेण उन्मूलन कर समुद्रगुप्त ने उनके राज्यों को अपने साम्राज्य

1. इस प्रकार के राजवंशों में वाकाटकों के अतिरिक्त पल्लव, कदम्ब, इक्ष्वाकु तथा विष्णुकुंडिन आदि थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में मिला लिया था। परन्तु वाकाटक राजवंश का शासन समुद्रगुप्त के राज्य-काल के उपरान्त लगभग दो शताब्दियों तक बना रहा।

4. गुप्त-शासकों ने वाकाटकों के साथ मित्रतापूर्ण तथा वैवाहिक सम्बन्ध बनाए थे, अतः गुप्तों ने उनकी राजनीति में हस्तक्षेप नहीं किया।

5. यदि समुद्रगुप्त ने रुद्रसेन प्रथम को कौशाम्बी में हुए युद्ध में मार डाला होता तो उसका पुत्र पृथ्वीषेण अपने पुत्र रुद्रसेन द्वितीय का विवाह समुद्र-गुप्त की पौत्री प्रभावती गुप्ता के साथ सम्भवतः नहीं करता।

देवटेक (नागपुर से लगभग 80 कि०मी० उत्तर-पश्चिम में स्थित) नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख को मिराशी महोदय ने रुद्रसेन प्रथम के राज्यकाल का माना है, किन्तु डी० सी० सरकार इससे सहमत नहीं हैं। इस विवादास्पद अभिलेख के अतिरिक्त रुद्रसेन प्रथम के राज्यकाल का अन्य कोई अभिलेख अब तक प्रकाश में नहीं आया है। उसकी विजयों, साम्राज्य की सीमाओं तथा राज्यकाल की अन्य घटनाओं के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। अल्तेकर का अनुमान है कि छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त मध्य प्रदेश के शेष सभी जिले उसके अधीन थे।

रुद्रसेन प्रथम के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसे महाभैरव का परम भक्त बतलाया गया है। महाभैरव शिव के उग्र रूपों में से एक का नाम है। उसकी शिव-भक्ति का एक कारण सम्भवतः उसका भारशिव-नागों से सम्बन्ध रहा होगा और उसका नाम भी कदाचित् उसकी शिव-भक्ति का परिचायक है। अल्तेकर के अनुसार रुद्रसेन प्रथम ने 325 से 360 ई० तक शासन किया और चट्टोपाध्याय के अनुसार 340 से 365 ई० तक।

पृथ्वीषेण प्रथम—रुद्रसेन प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वीषेण प्रथम राजा हुआ। उसके राज्यकाल का अभी तक कोई अभिलेख नहीं मिला है। व्याघ्रदेव के दो अभिलेखों में उसे पृथ्वीषेण का सामन्त कहा गया है। अल्तेकर ने व्याघ्रदेव को बुन्देलखंड के उच्छकल्प वंश का शासक माना है। ए० एस० अल्तेकर तथा दिनेशचन्द्र सरकार ने उक्त अभिलेखों के पृथ्वीषेण की पहचान पृथ्वीषेण प्रथम से की है, किन्तु कुछ विद्वान उसे पृथ्वीषेण द्वितीय मानते हैं। अधिक सम्भावित यही है कि व्याघ्रदेव वाकाटक पृथ्वीषेण प्रथम का अधीनस्थ शासक रहा होगा। उसके दो अभिलेखों में से एक भूतपूर्व जसो रियासत के नचनाकीतलई नामक स्थान से, तथा दूसरा अजयगढ़ रियासत में गंज से प्राप्त हुआ है। इन अभिलेखों के प्राप्ति-स्थलों से प्रमाणित होता है कि बुन्देलखंड का

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

क्षेत्र पृथ्वीषेण के आधिपत्य में था। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि समुद्रगुप्त के अभिलेख बुन्देलखंड पर उसका प्रभुत्व प्रदर्शित करते हैं। पृथ्वीषेण प्रथम ने समुद्रगुप्त से बुन्देलखंड क्षेत्र अपहृत किया था, अथवा समुद्रगुप्त ने पृथ्वीषेण से, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। किन्तु बाद में निःसन्देह इस भू-भाग में गुप्तों की अधिसत्ता स्थापित हो गई थी। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार पृथ्वीषेण प्रथम ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में सम्भवतः यह विजय प्राप्त की होगी। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि एवं सांची के अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि ये क्षेत्र इसी गुप्त सम्राट के अधीन थे। पृथ्वीषेण द्वारा कुन्तल की विजय तथा बुन्देलखंड में उसके राजनैतिक प्रभाव के बढ़ जाने के बाद ही शायद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उससे मित्रता की होगी और उसके पुत्र युवराज रुद्रसेन द्वितीय के साथ अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह कर दिया।

पृथ्वीषेण का समकालीन बासिम शाखा का वाकाटक शासक सर्वसेन का पुत्र विन्ध्यसेन था। इन दोनों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे और सम्भवतः बासिम के शासक आन्तरिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हुए मुख्य वाकाटक राजवंश का नाम-मात्र के लिए आधिपत्य मानते थे। अजन्ता अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर पहले कुछ विद्वानों की मान्यता थी कि पृथ्वीषेण प्रथम ने ही कुन्तल प्रदेश को जीतकर वाकाटक राज्य में शामिल कर लिया था, परन्तु उक्त अभिलेख के पाठों को संशोधित कर मिराशी ने यह सिद्ध कर दिया है कि कुन्तल प्रदेश की विजय बासिम शाखा के विन्ध्यसेन ने की थी।

पृथ्वीषेण प्रथम के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसे युधिष्ठिर के समान धर्म-विजयी तथा अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति का शासक कहा गया है और बतलाया गया है कि उसने अपने पुत्र-पौत्रों आदि के साथ 100 वर्ष से संचित राजकोश, सेना तथा अन्य साधनों का उपभोग किया था[1]। इस विवरण से प्रतीत होता है कि पृथ्वीषेण शान्ति-प्रिय एवं धर्मनिष्ठ शासक था। सामरिक अभियानों में उसकी अधिक अभिरुचि नहीं थी और उसके राज्यकाल के एक शताब्दी पूर्व वाकाटक राजवंश की स्थापना हो चुकी थी।

पृथ्वीषेण शिव का उपासक था। अल्तेकर के अनुसार उसने 360 से 385 ई० तक शासन किया और सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार 365 से 390 ई० तक।

---

1. वर्षशतमभिवर्धमानकोशदंडसाधनसन्तानपुत्रपौत्रिणः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रुद्रसेन द्वितीय–पृथ्वीषेण प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय राजा हुआ। उसने चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता के साथ विवाह कर अपने वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि की। हाल ही में मन्धल (नागपुर ज़िले में) हुए उत्खनन में रुद्रसेन द्वितीय के राज्यकाल के 15वें वर्ष का एक अभिलेख मिला है। यह उसकी शासनावधि का प्रथम ज्ञात अभिलेख है। इसमें उसके द्वारा विष्णु-मन्दिर को दिए गए दान का वर्णन है[1]। उक्त अभिलेख से प्रमाणित होता है कि रुद्रसेन ने कम से कम 15 वर्ष तक शासन किया। अल्तेकर के अनुसार रुद्रसेन द्वितीय ने अपने श्वसुर चन्द्रगुप्त को गुजरात एवं काठियावाड़ के शक-क्षत्रपों के विरुद्ध युद्ध में इस आशा से सहयोग दिया होगा कि विजित भू-भाग में से कुछ उसे भी प्राप्त होगा। किन्तु इस योजना के चरितार्थ होने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

रुद्रसेन के पूर्वज शैव थे। किन्तु वह स्वयं चक्रपाणि-विष्णु का उपासक था। ए० एस० अल्तेकर, रमेशचन्द्र मजूमदार तथा दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार इसका प्रमुख कारण सम्भवतः वाकाटकों पर गुप्तों का प्रभाव था। परन्तु धार्मिक विश्वासों में इस प्रकार के हस्तक्षेप की सम्भावना अधिक नहीं है।

रुद्रसेन के शासनकाल में वाकाटक साम्राज्य धन तथा सेना आदि से सम्पन्न एवं सशक्त था। यदि रुद्रसेन के पहले नहीं तो कम से कम उसके राज्य-काल में नन्दिवर्धन मुख्य वाकाटक राजवंश की राजधानी अवश्य बन गया था। उसके समय से वाकाटक शासक गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ मित्र बन गए थे। अल्तेकर के अनुसार रुद्रसेन द्वितीय ने 385 से 390 ई० तक और सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार 390 से 400 ई० तक शासन किया। डी०सी० सरकार ने उसके राज्यकाल का अन्त 400 ई० के आस-पास माना है। उसकी मृत्यु के समय उसके पुत्र दिवाकरसेन एवं दामोदरसेन नाबालिग थे।

प्रभावती गुप्ता––रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के समय उसके पुत्र दिवाकर-सेन तथा दामोदर सेन क्रमशः पांच एवं तीन वर्ष के बालक होने के कारण प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन करने के योग्य नहीं थे। इसलिए उसकी पत्नी प्रभावती गुप्ता ने अपने पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली। उसे भी प्रशासन का कोई अनुभव नहीं था। इसलिए उसके समक्ष कुछ कठिनाइयां अवश्य आई होंगी जिनके निवारण में उसके पिता चन्द्र-

1. Journal of Epigraphical Society, Vol. X, 1983, Presidential Address, P. 3.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गुप्त द्वितीय ने उसे सहायता प्रदान की होगी। परिणामस्वरूप, वाकाटक-राजनीति में गुप्तों का हस्तक्षेप काफी बढ़ गया और प्रभावती गुप्ता के राज्यकाल में ही सम्भवतः चन्द्रगुप्त ने गुजरात तथा काठियावाड़ पर विजय प्राप्त की थी। इस अभियान में उसे वाकाटकों से काफी सहयोग मिला होगा। कुछ विद्वानों के अनुसार पाटलिपुत्र से महाकवि कालिदास को दिवाकरसेन तथा दामोदरसेन को शिक्षा देने से लिए नन्दिवर्धन भेजा गया था और कालिदास ने मेघदूत की रचना वाकाटक-राजधानी में ही की थी।

प्रभावती के राज्यकाल का एक अभिलेख पूना (पुणे) से तथा दूसरा ऋथपुर (अमरावती ज़िले में स्थित एक ग्राम) से प्राप्त हुआ है। पूना का अभिलेख उसके शासन के 13वें वर्ष का है। यह नन्दिवर्धन से प्रसारित हुआ था। इसमें प्रभावती को युवराज दिवाकरसेन की **जननी** कहा गया है। ऋथपुर अभिलेख रामगिरि-स्वामी के पादमूल से ज़ारी किया गया था। रामगिरि का समीकरण नागपुर के निकट स्थित रामटेक से किया गया है। उपर्युक्त अभिलेखों में प्रभावती को **उभयकुलालंकार** (गुप्त तथा वाकाटक कुलों की शोभा या आभूषण) तथा अपने पिता के गोत्र के आधार पर **धारणसगोत्रा** कहा गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन अभिलेखों में वाकाटक शासकों की वंशावली के वर्णन के स्थान पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के समस्त पूर्वजों के नाम, उपाधियां एवं उपलब्धियां आदि वर्णित हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय की भांति प्रभावती भी विष्णु की उपासिका थी। उसका ऋथपुर अभिलेख विष्णु की वन्दना से प्रारम्भ होता है (जितम- भगवता)। इसमें प्रभावती को भगवतपादानुद्ध्याता (भगवान विष्णु के चरणों में लीन) तथा पूना अभिलेख में भगवतभक्ता (विष्णु की भक्ता) कहा गया है। यह भी बतलाया गया है कि उसने (वैष्णव परम्परा के अनुसार एकादशी के दिन व्रत-उपवास रहकर द्वादशी को आचार्य वनाल-स्वामी को दान दिया था। इस दान को देने के पूर्व उसने इसे भगवान विष्णु के पादमूल में विधिवत अर्पित किया था। वी० वी० मिराशी के अनुसार यहां पादमूलों का अभिप्राय रामगिरि पर स्थित भगवान राम की पादुकाएं हैं।

दुर्भाग्यवश दिवाकरसेन की मृत्यु उसके राज्याभिषेक के पहले ही, प्रभावतीगुप्ता के शासन के 13वें वर्ष के बीतने पर हो गई, इसलिए उसका छोटा भाई दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) 410 ई० के लगभग राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। संरक्षण-शासन के समाप्त होने के बाद भी प्रभावती काफी समय तक जीवित रही। प्रवरसेन द्वितीय के शासन के 19वें वर्ष के ऋथपुर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभिलेख में प्रभावती द्वारा दिए गए एक दान का उल्लेख है और इस घटना के चार वर्ष बाद प्रवरसेन ने अपने एवं अपनी माता के कल्याण के लिए दान दिया था। प्रभावती गुप्ता के राज्यकाल की अन्य किसी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं मिलता। उसने लगभग 390 से 410 ई० तक शासन किया।

प्रवरसेन द्वितीय—प्रभावती गुप्ता के कनिष्ठ पुत्र प्रवरसेन द्वितीय का राज्यारोहण 410 ई० के लगभग हुआ। उसके राज्यकाल के अभिलेख वर्धा, छिन्दवाड़ा नागपुर, बालाघाट, सिवानी, अमरौली, बेतूल तथा कुछ अन्य स्थानों पर पाए गए हैं। ये भू-भाग उसके प्रत्यक्ष प्रभुत्व के अन्तर्गत थे। मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के अतिरिक्त भूतपूर्व हैदराबाद रियासत के उत्तर-पश्चिमी भागों पर भी उसका अधिकार था। प्रवरसेन के अभिलेख उसके शासन के द्वितीय वर्ष से लेकर 27वें वर्ष तक के हैं। सभी अभिलेखों में उसने अपने नाना चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख देवगुप्त के नाम से किया है।

एक साहित्यिक अनुश्रुति के अनुसार प्रवरसेन अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में भोग-विलास में आसक्त रहा[1]। उसके प्रारम्भिक दानपत्र नन्दिवर्धन से और शासन के 18वें वर्ष के बाद वाले दान-पत्र प्रवरपुर से प्रकाशित हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि प्रवरसेन के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में नन्दिवर्धन के स्थान पर प्रवरपुर को राजधानी बना दिया गया था, अथवा प्रवरपुर उसकी द्वितीय राजधानी रही होगी। नन्दिवर्धन की पहचान नागपुर से लगभग 55 किलोमीटर उत्तर में स्थित नन्दपुर से, या नागपुर से 20 किलोमीटर उत्तर में रामटेक के निकटवर्ती नगर्धन या नन्दर्धन नामक स्थान से की गई है। नन्दपुर में प्राप्त प्राचीन किलेबन्दी के अवशेषों से प्रतीत होता है कि यही वाकाटकों की राजधानी रही होगी। प्रवरपुर नन्दिवर्धन से सम्भवतः अधिक दूरी पर स्थित नहीं था। कुछ विद्वानों ने इसका समीकरण वर्धा जिले के पौनार नामक स्थान से किया है। कुछ ही समय पूर्व नागपुर जिले के मन्धल नामक स्थान से तथा यवतूल (महाराष्ट्र) से प्रवरसेन द्वितीय के ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं[2]।

प्रवरसेन द्वितीय के अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से प्रतीत होता है कि दिवाकरसेन की मृत्यु पश्चात् उसने सम्भवतः दिवाकरसेन के राज्य के कुछ प्रदेश अपने अधीन कर लिए थे। इस गृह-युद्ध के समय तथा पुष्यमित्रों के आक्रमण से अपने राज्य की सुरक्षा के लिए प्रवरसेन ने कई सेनापति नियुक्त

1. **गुप्त-वाकाटक युग**, पृ० 110
2. Journal of Epigraphieal Society, Vol. X, Presidntial Address, p. 3.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किए थे। वह धार्मिक तथा साहित्यिक प्रवत्ति का शासक था। उसके राज्यकाल के अभिलेखों में उसकी किसी सामरिक उपलब्धि का उल्लेख नहीं है। इनमें प्रायः प्रवरसेन द्वारा दिए गए दानों के ही विवरण प्राप्त होते हैं। उसके चम्मक अभिलेख में वर्णित है कि उसने चर्माक नामक ग्राम 1,000 ब्राह्मणों को दान में दिया था और इस ग्राम की वार्षिक आय 8,000 सिक्के[1] थी। इस अभिलेख में प्रवरसेन द्वितीय को सम्राट कहा गया है और चन्द्रगुप्त द्वितीय को महाराजाधिराज।

बाणभट्ट के हर्षचरित नामक ग्रन्थ में प्रवरसेन को महाराष्ट्री-प्राकृत काव्य सेतुबन्ध अपरनाम रावणवध का रचयिता बतलाया गया है। कुछ विद्वान प्रवरसेन नाम के कश्मीर के शासक को इस ग्रन्थ की रचना का श्रेय देते हैं। भरतचरित नामक एक परवर्ती ग्रन्थ के अनुसार, सेतुबन्ध का लेखक कुन्तल का शासक था। इस ग्रन्थ के टीकाकार रामदास (16वीं शती) के अनुसार इसकी रचना राजा प्रवरसेन ने ही की थी जिसे भोजदेव भी कहते थे और इस काव्य को विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के आग्रह पर कालिदास ने संशोधित किया था[2]।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए हैं–

1. वाकाटक शासक प्रवरसेन द्वितीय सेतुबन्ध काव्य का लेखक था
2. भोजदेव प्रवरसेन द्वितीय का दूसरा नाम था।
3. प्रवरसेन द्वितीय का राज्य कुन्तल के नाम से भी प्रसिद्ध था, अथवा वह कुन्तल का भी शासक था।

प्रवरसेन कुन्तल का राजा नहीं था क्योंकि वहां उस समय कदम्ब राजवंश शासन कर रहा था। और प्रवरसेन के पुत्र का विवाह कुन्तल के शासक की पुत्री के साथ हुआ था। फिर भी उसे सेतुबन्ध का लेखक माना जा सकता है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस काव्य का वर्ण्य-विषय विष्णु से सम्बन्धित है जबकि प्रवरसेन शिव का भक्त था। उसका परममाहेश्वर (शिव का परम उपासक) होना सम्भवतः यह संकेतित करता है कि वह अपने धार्मिक विचारों में गुप्त-शासकों से बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ था। उसके समकालीन बासिम शाखा के शासक का नाम भी प्रवरसेन द्वितीय था। 430 ई० के आस-पास

---

1. इन सिक्कों के नाम तथा धातु का उल्लेख नहीं किया गया है।
2. धीराणां काव्य चर्चाचतुरिमविषये विक्रमादित्यवाचा।
   यं चक्रं कालिदास.....सेतुनामप्रबन्धम् ॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मुख्य राजवंश के प्रवरसेन ने अपने पुत्र युवराज नरेन्द्रसेन का विवाह कुन्तल के राजा की पुत्री अज्झितभट्टारिका के साथ किया था। कुन्तल के शासक का समीकरण कदम्ब वंशीय काकुस्थवर्मन से किया जा सकता है। प्रवरसेन द्वितीय ने कम से कम 27 वर्ष तक शासन किया।

प्रवरसेन के राज्यकाल के अभिलेखों में उसके कोंडराय एवं नारायणराय नामक सामन्तों के उल्लेख हैं जो क्रमशःवरार तथा बेतूल के शासक थे। चमिदास नामक प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त उसके चक्रवर्मन, वप्पदेव, चित्रवर्मन, कात्यायन तथा नेमिदास आदि सेनापतियों के भी नाम वर्णित हैं। उसके शासन का अन्त 440 ई० के आस-पास हुआ।

नरेन्द्रसेन (लगभग 440-460 ई०)—बालाघाट अभिलेख के अनुसार प्रवरसेन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र नरेन्द्रसेन राजा हुआ। वह महत्वाकांक्षी शासक था। उसके राज्यकाल का कोई अभिलेख नहीं मिला है। नरेन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीषेण द्वितीय के बालाघाट अभिलेख के अनुसार उसने अपने प्रताप तथा पराक्रम से वाकाटक वंश की राजलक्ष्मी को प्राप्त किया और उसकी कीर्ति को पुनःप्रतिष्ठित किया था[1]। इस विवरण से प्रतीत होता है कि वाकाटक राजवंश पर कोई संकट आ गया था, जिसे नरेन्द्रसेन ने अपने पौरुष एवं प्रयत्नों से दूर किया। परन्तु किसी भी साक्ष्य में इस आपत्ति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं। अल्तेकर के अनुसार यह विपत्ति नलों के आक्रमण के परिणामस्वरूप उपस्थित हुई थी, और नल शासक भवदत्त ने 445 ई० के आस-पास वाकाटकों के विरुद्ध विजय प्राप्त की होगी। उसने वाकाटकों की राजधानी नन्दिवर्धन पर अधिकार कर लिया था। भवदत्त के ऋथपुर के ताम्रपत्र नन्दिवर्धन से ही प्रसारित हुए थे। इस प्रकार उक्त नल शासक ने वाकाटकों को निर्णायक रूप से परास्त कर उन्हें अपनी राजधानी को भी छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद नरेन्द्रसेन ने शीघ्र ही खोए हुए क्षेत्र पर पुनः अधिकार कर लिया। भवदत्त के पुत्र स्कन्दवर्मन के विषय मे कहा गया है कि उसने अपने वंश की विचलित हुई श्री (राजलक्ष्मी) को पुनःप्रतिष्ठित किया था और अपनी राजधानी को फिर से बसाया था। इससे प्रतीत होता है कि विजयी नरेन्द्रसेन ने नलों के राज्य में घुसकर उनकी राजधानी को तहस-नहस कर दिया था और कुछ समय तक नलों को वाकाटकों की प्रभुसत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

---

1. पूर्वाधिगतगुणविश्वासादपहृतवंशश्रियः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अजन्ता की गुफा संख्या 16 में उत्कीर्ण एक अभिभेख के आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि प्रवरसेन की मृत्यु के उपरान्त नरेन्द्रसेन को अपने प्रतिस्पर्धी भाई तथा उसके पुत्र से उत्तराधिकार के लिए काफी समय तक संघर्ष करना पड़ा और उन्हें पराजित कर उसने राजसिंहासन प्राप्त किया था। किन्तु अब अधिकांश विद्वान अजन्ता अभिलेख में वर्णित वाकाटक शासक को प्रधान राजवंश के स्थान पर बासिम शाखा से सम्बन्धित मानते हैं।

पृथ्वीषेण द्वितीय के बालाघाट अभिलेख के अनुसार नरेन्द्रसेन ने मालवा, मेकल तथा कोशल को अपने अधीन कर लिया था। नरेन्द्रसेन की विजयों के पूर्व मालवा गुप्त साम्राज्य का प्रान्त था। मन्दसोर से प्राप्त 436ई० (मालव संवत् 493) तथा 472 ई० (मालव संवत् 529) के अभिलेखों में मालवा में हुई सम्भवतः किसी राजनैतिक क्रान्ति का संकेत है। उस समय नरेन्द्रसेन भी शासन कर रहा था। मन्दसोर अभिलेख में बतलाया गया है कि 436 तथा 472 ई० के अन्तराल में मालवा प्रदेश में कई राजाओं ने शासन किया। कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया है कि मालवा में यह राजनैतिक अव्यवस्था या तो कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के उपरान्त अथवा उसके शासनकाल के अन्तिम वर्षों में पुष्पमित्रों के आक्रमणों के समय व्याप्त हुई होगी। तथ्य जो भी हो, नरेन्द्रसेन ने इस अवसर का लाभ उठाकर मालवा को अपने अधीन कर लिया। मालवा में उस समय किस राजवंश का शासन था, ज्ञात नहीं। कोशल का अभिप्राय यहां दक्षिण कोशल है जिसमें आधुनिक बिलासपुर, रायपुर तथा सम्भलपुर के जिले शामिल थे। मेकल का समीकरण नर्मदा नदी के उद्गम स्थान अमर-कंटक क्षेत्र से किया गया है। दक्षिण कोशल का शासक सम्भवतः शरभपुर के राजवंश से सम्बन्धित रहा होगा और मेकल का राजा पांडुवंश से। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार नरेन्द्रसेन की मालवा, मेकल तथा कोशल राज्यों की विजयों से प्रतीत होता है कि उसने सम्भवतःगुप्तों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की होगी। यदि नरेन्द्रसेन ने कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में गुप्त साम्राज्य को क्षेत्रीय क्षति पहुंचाई थी, तो स्कन्दगुप्त ने उसे पूरा कर लिया। परन्तु स्कन्दगुप्त के समय में भी पश्चिमी मालवा पर गुप्तों का सुदृढ़ अधिकार नहीं रह गया था।

नरेन्द्रसेन के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में नल राजवंश का अभ्युदय हो रहा था। पुराणों में इस वंश के शासकों को बहुत शक्तिशाली बतलाया गया है और उनके सिक्के मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में मिले हैं। नल राजा भवदत्त

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्मन ने वाकाटकों की राजधानी नन्दिवर्धन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। उसका एक दान-पत्र ऋथपुर में मिला है। इसी स्थान से पहले प्रभावती गुप्ता ने भी एक अभिलेख जारी किया था। इससे प्रमाणित होता है कि यह क्षेत्र वाकाटकों के अधिकार से निकलकर नल वंश के शासकों के अधीन हो गया था। वी० वी० मिराशी के अनुसार इसके पश्चात् वाकाटकों ने पद्मपुर को राजधानी बनाया। पद्मपुर की पहचान भूतपूर्व ग्वालियर राज्य के आमगांव नामक स्थान से की गई है[1]। किन्तु भवदत्त की मृत्यु के उपरान्त नरेन्द्रसेन ने नलों को पराजित कर न केवल खोए हुए प्रदेश पुनः प्राप्त कर लिए, वरन् उनकी राजधानी को भी ध्वस्त कर दिया।

नरेन्द्रसेन ने कुन्तल के राजा की पुत्री अजितभट्टारिका के साथ विवाह किया था। कुन्तल के शासक की पहचान बनवासी के कदम्ब काकुस्थवर्मन से की गई है, क्योंकि तालगुंड अभिलेख में बतलाया गया है कि इस कदम्ब शासक की पुत्रियों का विवाह गुप्त तथा अन्य राजवंशों के शासकों के साथ हुआ था। यह भी सुझाव दिया गया है कि नलों के विरुद्ध युद्ध में काकुस्थवर्मन ने नरेन्द्रसेन की सहायता की होगी। नरेन्द्रसेन ने कोशल की एक राजकुमारी के साथ भी विवाह किया। उसने बासिम शाखा के शासकों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखे। उसके राज्यकाल में उच्छकल्प तथा परिव्राजक राजवंशों के शासक वाकाटकों के अधीन नहीं थे। नरेन्द्रसेन को महाराज की उपाधि दी गई है। उसने लगभग 440 से 460 ई० तक शासन किया।

पृथ्वीषेण द्वितीय—नरेन्द्रसेन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र पृथ्वीषेण द्वितीय था। उसने भी अपने पिता की भांति महाराज की उपाधि धारण की। उसके राज्यकाल के बालाघाट अभिलेख में बताया गया है कि उसे अपने वंश की विचलित राजलक्ष्मी को दो बार पुनः प्रतिष्ठित करना पड़ा था। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार बस्तर के नलों तथा दक्षिणी गुजरात एवं उत्तरी कोंकण के त्रैकूटकों के आक्रमणों के कारण वाकाटक-राजलक्ष्मी विचलित हुई थी। अल्तेकर का अनुमान है कि वाकाटक राज्य पर प्रथम संकट छत्तीसगढ़ के शरभपुरीय शासक मानमात्र के आक्रमण के कारण उत्पन्न हुआ होगा और दूसरा त्रैकूटकों के आक्रमण के परिणामस्वरूप। अन्य विद्वानों ने सुझाव दिया है कि नल शासक भवदत्तवर्मन तथा वत्सगुल्म शाखा के हरिषेण ने मुख्य वाकाटक राजवंश की राजलक्ष्मी को विचलित किया होगा।

1. वाकाटक राजवंश और उसके लेख, पृष्ठ 365।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उक्त विपत्ति के कारण जो भी रहे हों, पृथ्वीषेण द्वितीय ने निःसन्देह उसे दूर करने में सफलता प्राप्त की।

पृथ्वीषेण का एक अभिलेख बेम्बाड़ा (मध्यप्रदेश के चांदा ज़िले में बेम्बल) तथा दूसरा सम्भवतः पद्मपुर (भांडारा ज़िले में पद्मपुर) से प्रकाशित किया गया था। बालाघाट अभिलेख में उसे परमभागवत कहा गया है। कुछ ही समय पूर्व मन्धल से प्राप्त पृथ्वीषेण द्वितीय के दानपत्रों में पहली बार उसकी राजमुद्रायें भी संलग्न मिली हैं। इनमें से एक दानपत्र रामगिरि (रामटेक) के शिविर से जारी किया गया था[1]। पृथ्वीषेण द्वितीय प्रमुख वाकाटक शाखा का अन्तिम ज्ञात शासक है।

वत्सगुल्म शाखा के वाकाटक शासक—इस शाखा का संस्थापक प्रवरसेन प्रथम का पुत्र तथा गौतमीपुत्र का छोटा भाई धर्ममहाराज सर्वसेन था। उसके राज्यकाल की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। चूंकि प्रवरसेन प्रथम ने दीर्घकाल तक शासन किया था, इसलिए राज्यारोहण के समय सर्वसेन काफी अवस्था प्राप्त कर चुका होगा। अल्तेकर के अनुसार उसने 330 से 360 ई० तक राज्य किया।

सर्वसेन के पश्चात् उसका पुत्र विन्ध्यसेन द्वितीय 360 ई० के आस-पास राजा हुआ। वह काफी शक्तिशाली शासक था। उसके राज्यकाल के 37वें वर्ष में एक अभिलेख वत्सगुल्म (बासिम) से प्रकाशित हुआ था। इस अभिलेख में नान्दीकट क्षेत्र में स्थित एक ग्राम के दान का वर्णन है। नान्दीकट की पहचान भूतपूर्व हैदराबाद रियासत के नान्देर नामक स्थान से की गई है। इस अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसने कुन्तल प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर दिया था। उसके राज्य में बरार (विदर्भ) का दक्षिणी भाग, नागर, नासिक, पुणे एवं सतारा ज़िले तथा भूतपूर्व हैदराबाद रियासत के उत्तरी क्षेत्र शामिल थे। उसने कम से कम 37 वर्ष तक राज्य किया।

अजन्ता के एक अभिलेख में पहले कुछ विद्वानों ने प्रवरसेन प्रथम, रुद्रसेन प्रथम तथा पृथ्वीषेण प्रथम के नाम पढ़े थे। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह अभिलेख वाकाटकों की वत्सगुल्म शाखा से सम्बन्धित है और इसमें रुद्रसेन प्रथम तथा पृथ्वीषेण प्रथम के स्थान पर क्रमशः सर्वसेन तथा विन्ध्यसेन के नाम अंकित हैं। विन्ध्यसेन की पहचान विन्ध्यशक्ति द्वितीय से की गई है। डी० सी० सरकार के अनुसार अक्षरों के भग्न होने के कारण विन्ध्यसेन का नाम अस्पष्ट है। इस शासक को अजन्ता अभिलेख में कुन्तल के राजा

1. Journal of Epigraphical Society, Vol X, Presidential Address, p. 3.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का विजेता कहा गया है। यह कुंतलेश चतुर्थ शताब्दी के मध्य के आस-पास शासन करने वाला कदम्ब वंशीय राजा रहा होगा।

उपर्युक्त अजन्ता अभिलेख के अनुसार कुन्तल पर विजय प्राप्त करने वाले वाकाटक शासक के पश्चात् उसका पुत्र प्रवरसेन राजा हुआ। उसे वत्सगुल्म शाखा का प्रवरसेन द्वितीय मानना चाहिए। प्रवरसेन की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी, इसलिए उसका आठ वर्षीय पुत्र राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। अल्तेकर के अनुसार प्रवरसेन द्वितीय ने 400 से 415 ई० तक राज्य किया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम अजन्ता अभिलेख में सुरक्षित नहीं बचा है। इस अज्ञात नाम वाले शासक का राज्यारोहण 415 ई० में हुआ होगा। अल्तेकर ने इस सम्भावना की ओर संकेत किया है कि उक्त शासक के संरक्षक के रूप में नन्दिवर्धन की प्रमुख वाकाटक शाखा के प्रवरसेन द्वितीय ने बासिम राज्य के शासन की बागडोर सम्भाली होगी जिसके परिणामस्वरूप लगभग 10 वर्ष तक इन दोनों राजवंशों में एकता एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रहे और उसके व्यस्क हो जाने पर प्रवरसेन द्वितीय ने बासिम शाखा के अपने चचेरे भाई को प्रशासन का उत्तरदायित्व दे दिया होगा। अजन्ता अभिलेख में प्रवरसेन द्वितीय के उत्तराधिकारी को श्रेष्ठ शासक कहा गया है। सम्भव है कि उसने नलों के विरुद्ध नरेन्द्रसेन की सहायता की हो। अल्तेकर के अनुसार उसने 415 से 455 ई० तक राज्य किया।

इसके बाद प्रवरसेन द्वितीय का पौत्र महाराज देवसेन राजा हुआ। उपर्युक्त अजन्ता अभिलेख में, तथा वत्सगुल्म से प्राप्त अभिलेख में देवसेन का उल्लेख हुआ है और उसकी महानता आदि की प्रशंसा की गई है। परन्तु उसके राज्यकाल की किसी घटना का वर्णन नहीं है। देवसेन व्यसनों में आसक्त हो गया था और उसने प्रशासन का कार्यभार हस्तिभोज नामक अपने एक सुयोग्य मन्त्री को दे दिया था। उसने 455 से 475 ई० तक शासन किया।

हरिषेण—देवसेन के बाद उसका पुत्र हरिषेण राजा हुआ। वह नन्दिवर्धन के वाकाटक शासक नरेन्द्रसेन तथा पृथ्वीषेण द्वितीय का समकालीन था। अल्तेकर के अनुसार पृथ्वीषेण द्वितीय का या तो कोई उत्तराधिकारी नहीं था, या उसके वैध उत्तराधिकारी को अपदस्थ कर हरिषेण ने मुख्य शाखा द्वारा शासित प्रदेशों को भी अपने अधीन कर लिया था। उसके राज्यकाल में उसके मन्त्री वराहदेव ने अजन्ता की एक गुफा में लेख उत्कीर्ण कराया था। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि हरिषेण का आधिपत्य कुन्तल (दक्षिणी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महाराष्ट्र), अवन्ति (पश्चिमी मालवा), कलिंग (उड़ीसा राज्य का समुद्रतटवर्ती क्षेत्र), श्रीकाकुलम (विशाखापटनम), कोसल (रायपुर, बिलासपुर तथा सम्भलपुर के ज़िले), त्रिकूट (उत्तरी कोंकण का निकटवर्ती त्रैकूटक क्षेत्र), लाट (दक्षिणी गुजरात के नवसारी एवं भड़ौच क्षेत्र), आन्ध्र (कृष्णा नदी के मुहाने पर स्थित ज़िले) तथा कुछ अन्य जनपदों पर था। यह विश्वास करना कठिन है कि हरिषेण ने उपर्युक्त सभी राज्यों के शासकों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की थी। यह भी उल्लेखनीय है कि कुन्तल के कदम्ब, वाकाटकों के सम्बन्धी थे। हरिषेण ने कदम्ब शासक मृगेश या रविवर्मन को सम्भवतः किसी छोटे-मोटे संघर्ष में पराजित किया होगा, क्योंकि कदम्ब अभिलेखों में भी बतलाया गया है कि उक्त शासक उत्तर के किसी राजा द्वारा पराजित हुए थे। आन्ध्र देश में विष्णुकुंडिन वंशीय राजा शासन कर रहे थे और दक्षिण कोसल में नलों का शासन था। सम्भव है कि विष्णुकुंडिन विक्रमेन्द्रवर्मन के विरुद्ध हरिषेण ने कुछ सफलता प्राप्त की हो। गुप्त शासक बुधगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था। इसका लाभ उठाकर हरिषेण ने सम्भवतः मालवा तथा गुजरात पर अधिकार कर लिया होगा। उसने त्रैकूटकों को भी अपने अधीन कर लिया था। एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार हूण-आक्रमणों के कारण गुप्त शासक दुर्बल हो गये थे। इसका लाभ उठाकर वाकाटकों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। दक्षिण कोशल तथा मालवा पर वाकाटकों की दोनों शाखाओं के शासकों ने अपने प्रभुत्व का दावा किया है। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार हरिषेण ने त्रैकूटकों की शक्ति को सम्भवतः भारी क्षति पहुंचाई थी। मिराशी की मान्यता है कि वह अजन्ता अभिलेख में वर्णित राज्यों के शासकों से कर लेकर ही सन्तुष्ट हो गया होगा। दंडी के दशकुमारचरित के विवरण के आधार पर मिराशी ने अनुमान किया है कि हरिषेण का एक दुर्बल तथा व्यसनी पुत्र था जिसके समय में वाकाटकों के सामन्तों ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप कदम्बों ने वाकाटक राज्य पर आक्रमण कर दिया। हरिषेण का पुत्र पराजित हुआ तथा मार डाला गया। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार हरिषेण की उपर्युक्त विजयों ने मुख्य शाखा के वाकाटकों की शक्ति को क्षीर्ण कर दिया था। उसने पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शासन किया। अल्तेकर के अनुसार उसने लगभग 475 से 510 ई० तक राज्य किया।

वाकाटकों का पतनः कारण एवं प्रभाव—छठी शताब्दी के मध्य के आस-पास वाकाटकों की दोनों शाखाओं का लगभग एक साथ अन्त हो गया। परन्तु उनके

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पतन के कारण अज्ञात हैं। वातापी के चालुक्यों द्वारा छठीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पराजित राजवंशो में वाकाटकों का उल्लेख नहीं है। इससे प्रमाणित होता कि इसके पहले ही उनका अन्त हो गया था[1]। अल्तेकर के अनुसार हरिषेण के उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में वनवासी के कदम्बों उत्तरी-महाराष्ट्र के कलचुरियों तथा बस्तर के नलों ने वाकाटक राज्य के अधिकांश भागों पर अधिकार कर लिया था। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में तीवरदेव नामक राजा राज्य कर रहा था और चांदा ज़िले में सोमवंशी पांडव नृपति का शासन था। यशोधर्मन ने मालवा तथा उत्तरी मध्य प्रदेश में मन्दसोर के निकटवर्ती क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया था। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार छठी शताब्दी के मध्य के लगभग सतारा-कोल्हापुर क्षेत्र के राष्ट्रकूट शासक मानांक ने अश्मक विदर्भ तथा कुन्तल राज्यों पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। सम्भव है कि मानांक ने दोनों शाखाओं के वाकाटकों से युद्ध किया हो। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार यह भी असम्भावित नहीं है कि छठी शताब्दी के मध्य के पूर्व नलों ने दोनों वाकाटक राज्यों को अपने अधीन कर लिया हो।

अल्तेकर ने मानांक के अभ्युदय को वाकाटकों के पतन के कारणों में नहीं शामिल किया है। उनके अनुसार यह किसी साक्ष्य से प्रमाणित नहीं होता है कि मानांकअथवा उसके पौत्र जयराज, भविष्य और अविधेय शक्तिशाली राष्ट्रकूट (राष्ट्र के प्रधान) के रूप में कोशल, बरार तथा दक्षिणी महाराष्ट्र पर शासन कर रहे थे। वे स्थानीय सामन्त थे और उनमें से किसी का भी राष्ट्रकूट के रूप में वर्णन नहीं मिलता। कुछ विद्वानों के अनुसार खानपुर अभिलेख में वर्णित विष्णुकुंडिन शासक माधववर्मन प्रथम ने वाकाटक राज्य को अपने अधीन कर लिया था। परन्तु सुधाकर चट्टोपाध्याय इस माधववर्मन को स्थानीय शासक मानते हैं जो विष्णुकुंडिन राजवंश से सम्बन्धित नहीं था। वाकाटक राजवंश के पतन के पश्चात् कुछ समय तक दक्षिणापथ में राजनैतिक विघटन की स्थिति विद्यमान रही जिसे वातापी के चालुक्यों ने समाप्त कर पुनः एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया।

---

1. पी० एन० चोपड़ा तथा टी० के० रवीन्द्रन आदि के अनुसार वातापी के चालुक्यों ने ही 550 ई० के आस-पास वाकाटकों की शक्ति का अन्त कर दिया। परन्तु यह मत अग्राह्य है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाकाटक शासकों का वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम

1. आर० सी० मजूमदार[1] के अनुसार–

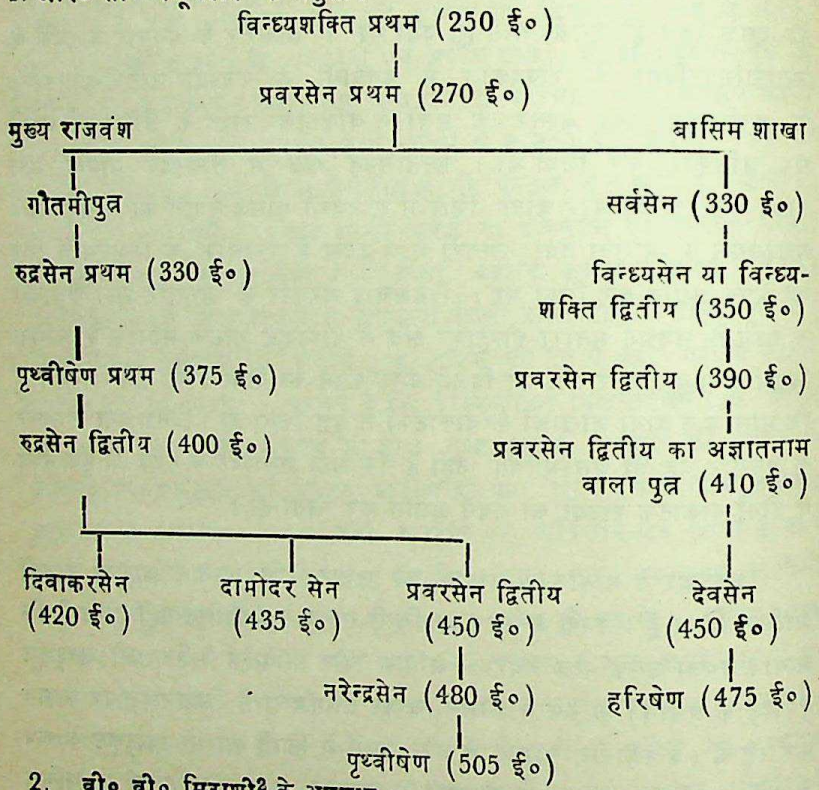

2. वी० वी० मिराशी[2] के अनुसार–

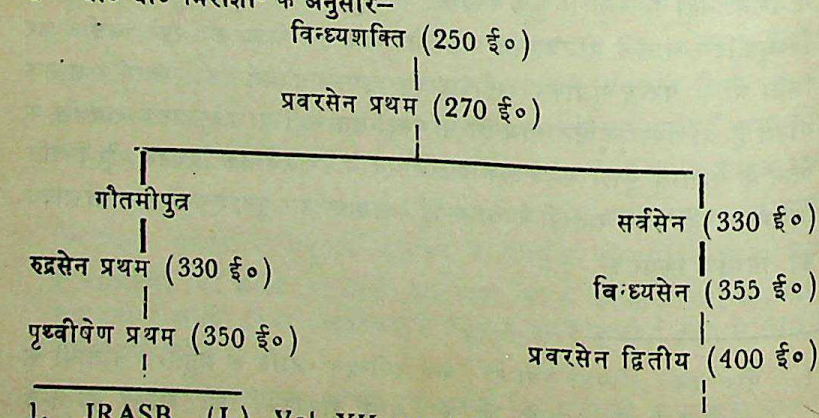

1. JRASB, (L), Vol. XII, pp. 1-5.
2. IHQ, Vol. XXIV, pp. 148-155.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रुद्रसेन द्वितीय (400 ई०)

दिवाकरसेन (405 ई०) | प्रवरसेन द्वितीय (420 ई०)

नरेन्द्रसेन (450 ई०)

पृथ्वीषेण (470 ई०)

प्रवरसेन का अज्ञात नाम वाला पुत्र (410 ई०)

देवसेन (450 ई०)

हरिषेण (457 ई०)

हरिषेण का अज्ञातनाम वाला पुत्र (500 ई०)

3. सुधाकर चट्टोपाध्याय[1] के अनुसार—

विन्ध्यशक्ति

प्रवरसेन प्रथम (265-325 ई०)

गौतमीपुत्र

रुद्रसेन प्रथम (340-365 ई०)

पृथ्वीषेण द्वितीय (365-390 ई०)

रुद्रसेन द्वितीय (390-400 ई०)
प्रभावती गुप्ता (400-415 ई०)

दिवाकरसेन (415 ई०)

सर्वसेन (325-340 ई०)

पृथ्वीषेण प्रथम (340-355 ई०)

विन्ध्यसेन या विन्ध्यशक्ति द्वितीय (355-395 ई०)

प्रवरसेन प्रथम (395-415 ई०)

प्रवरसेन का अज्ञात नाम वाला पुत्र (415-455 ई०)

देवसेन (455-480 ई०)

प्रवरसेन द्वितीय तथा दामोदर सेन (445-475 ई०)

नरेन्द्रसेन (475-500 ई०)

पृथ्वीषेण द्वितीय (500-525 ई०)

हरिषेण (480-505 ई०)

हरिषेण का अज्ञातनाम वाला पुत्र (?) (505 ई०)

1. Some Early Dynasties of South India, p. 156.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

14

वातापी का चालुक्य राजवंश

चालुक्य राजवंश के शासनकाल से न केवल कर्नाटक, वरन् सम्पूर्ण दक्षिणापथ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग का समारम्भ हुआ। चालुक्यों की कई शाखाएं थीं–वातापी के चालुक्य, वेंगी के चालुक्य, लाट के चालुक्य तथा कल्याणी के चालुक्य। इनमें वातापी का राजवंश मूल तथा प्राचीनतम था। वेंगी तथा लाट के चालुक्य इसी के शाखा-राजवंश थे।

दक्षिण भारत के पल्लव, कदम्ब तथा कुछ अन्य राजवंशों की भांति चालुक्यों की उत्पत्ति, मूलनिवास एवं प्रारम्भिक इतिहास के विषय में प्रामाणिक सूचना का अभाव है। वेंगी तथा कल्याणी के चालुक्य शासकों के अभिलेख तथा कुछ साहित्यिक साक्ष्य उपर्युक्त समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। परन्तु ये साक्ष्य काफी बाद के हैं और उनके विवरणों में पारस्परिक विरोध के अतिरिक्त, अनैतिहासिक कथानकों का बाहुल्य है। जो भी हो, इनमें प्राप्त चालुक्यों की उत्पत्ति-विषयक विवरण संक्षेप में इस प्रकार हैं–

वंशनाम–चालुक्य शब्द के कई रूप मिलते हैं। वातापी के चालुक्यों के अभिलेखो में प्रायः **चल्क्य, चलिक्य** तथा **चलुक्य** शब्द प्रयुक्त हुए हैं। लाट (दक्षिणी गुजरात) के चालुक्य शासक विजयादित्य मंगलरसराज के शक संवत् 613 (691 ई०) के मनोर अभिलेख में उसे **चलुक्य** कहा गया है। पुलकेशिन द्वितीय के लोहनेर अभिलेख में **चलुक्की**, विक्रमादित्य प्रथम के करनूल अभिलेख में **चलेक्य**, विजयादित्य के अभिलेखों में **चलिक्य**, और कुछ अभिलेखों में **चलुक्य** तथा **चिरिक्य** नाम मिलते हैं। डी० सी० सरकार का अनुमान है कि इस राजवंश के संस्थापक का नाम चल्क, चलिक अथवा चलुक रहा होगा। जे० एफ० फ्लीट एवं के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार इस वंश का प्रारम्भिक नाम चल्कय था। आर०जी० भंडारकर तथा भगवानलाल इन्द्रजी के अनुसार चलुक्य, और एस० सी० नन्दिमथ के अनुसार **चलुकी, चल्कि** अथवा **शल्कि**। यह कन्नड़ भाषा में कृषि के एक उपकरण का नाम था और इस वंश के संस्थापक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का भी यही नाम रहा होगा। इस आधार पर अनुमान किया गया है कि चालुक्य प्रारम्भ में कृषक रहे होंगे। कालान्तर में उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर राजत्व प्राप्त कर लिया और उनकी उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में अनेक कथानक गढ़े गए।

उत्पति एवं मूल निवास—वातापी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों में उनकी उत्पत्ति के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। वस्तुतः वेंगी तथा कल्याणी के चालुक्यों के 11 वीं शती तथा इसके बाद के साक्ष्यों में चालुक्यों की उत्पत्ति तथा मूलनिवास आदि के विषय में अनैतिहासिक विवरण प्राप्त होते हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

1. विक्रमादित्य षष्ठ के हन्दरिके अभिलेख के अनुसार चालुक्य, हारीति ऋषि के चुल्लू से उस समय उत्पन्न हुआ जब वह देवताओं को आहुतियां दे रहे थे।

2. 1025-26 ई० के कल्याण अभिलेख के अनुसार ब्रह्मा का पुत्र मनु, और मनु का पुत्र मानव्य था। हरित तथा हारित, मानव्य के क्रमशः पुत्र एवं पौत्र थे और हारित के पुत्र चालुक्य से चालुक्य जनजाति उत्पन्न हुई।

3. कौथेम अभिलेख में बतलाया गया है कि चालुक्य वंश के प्रारम्भिक 59 शासकों ने अयोध्या में राज्य किया। उनके पश्चात् 16 राजाओं ने दक्षिणापथ में शासन किया। तदनन्तर एक शून्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसके समाप्त होने पर जयसिंह ने अपने वंश के गौरव को पुनः प्रतिष्ठित किया।

4. विल्हण के विक्रमांकदेवचरित से हमें ज्ञात होता है कि दुष्टों के दमन के लिए इन्द्र ने ब्रह्मा से एक पराक्रमी योद्धा को उत्पन्न करने की प्रार्थना की और ब्रह्मा ने अपने चुलुक से एक पुरुष को जन्म दिया, जिसके वंशज चालुक्य कहलाए।

5. वेंगी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों में भी ब्रह्मा को चालुक्यों का आदिपुरुष बतलाया गया है। ब्रह्मा के पश्चात् अनेक काल्पनिक नाम वर्णित हैं, जिनके बाद उदयन का उल्लेख है। उदयन के उपरान्त 59 शासकों ने अयोध्या में राज्य किया। इसके बाद विजयादित्य ने दक्षिणापथ की विजय के लिए प्रस्थान किया और पल्लव शासक त्रिलोचन पर आक्रमण कर दिया। किन्तु वह स्वयं युद्ध में मारा गया। विजयादित्य की पत्नी ने विष्णुवर्धन नामक पुत्र को जन्म दिया। विष्णुवर्धन ने एक पल्लव राजकुमारी के साथ विवाह किया तथा चालुक्यमिति पर जन्मधारी, कुमार (कार्तिकेय), नारायण एवं सप्त-मातृकाओं

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की पूजा की और कालान्तर में सभी राजकीय-चिन्ह प्राप्त किऐ। कदम्ब, गंग एवं अन्य राजवंशों को पराजित करने के पश्चात् विष्णुवर्धन दक्षिणापथ का स्वामी बन गया।

6. गुजरात के चौलुक्य शासक कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति के अनुसार दनु के पुत्रों से देवताओं की रक्षा करने वाला व्यक्ति गंगाजल से परिपूर्ण चुलुक से उत्पन्न हुआ जिससे उद्भूत जनजाति चौलुक्य नाम से प्रसिद्ध हुई। लगभग इसी प्रकार का विवरण मेरुतुंग के प्रबन्ध चिन्तामणि तथा कुछ अन्य साक्ष्यों में भी मिलता है।

7. जयसिंह सूरी के कुमारपालचरित के अनुसार चालुक्य नाम के एक महान पुरुष से उत्पन्न जनजाति चौलुक्य कहलाई।

8. विक्रमादित्य षष्ठ के राज्यकाल के कुछ अभिलेखों में चालुक्यों को चन्द्रवंशी (क्षत्रिय) एवं ब्रह्मा के पुत्र अत्रि के नेत्र उत्पन्न बतलाया गया है।

चालुक्यों की उत्पत्ति एवं मूलदेश-विषयक उपर्युक्त विवरण स्पष्टतः अनैतिहासिक तथा काल्पनिक हैं जिन्हें बहुत बाद में लिखा गया। चालुक्यों का अयोध्या से कोई सम्बन्ध नहीं था[1] और वे कर्नाटक के ही मूलनिवासी प्रतीत होते हैं इस वंश के प्रारम्भिक शासक बनवासी के कदम्बों के सामन्त या उच्च पदाधिकारी रहे होंगे। वे क्षत्रिय जाति के थे[2]।

प्रारम्भिक शासक : जयसिंह–जयसिंह वातापी के चालुक्य वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक था। उसका सर्वप्रथम उल्लेख 472-73 ई० के कैरा ताम्रपत्रों में हुआ है। उसने वल्लभ, श्रीवल्लभ तथा वल्लभेन्द्र नामक विरुद धारण किए। उसकी तुलना कुबेर तथा इन्द्र से की गई है। जयसिंह के राज्यकाल का अभी तक कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है और अन्य चालुक्य शासकों के अभिलेखों में उसे कोई राजकीय विरुद नहीं दिया गया है। जे० एफ०फ्लीट के अनुसार जयसिंह बनवासी के कदम्बों का सामन्त रहा होगा। एस० सी० नन्दिमथ ने उसे कदम्ब शासकों का सैन्य अथवा प्रशासकीय पदाधिकारी माना है[3]। ये मत अनुमान पर ही आधारित हैं।

प्रारम्भिक चालुक्य अभिलेखों में जयसिंह की किसी उपलब्धि का उल्लेख नहीं हुआ है, परन्तु बाद के साक्ष्यों में उसकी कुछ विजयें आदि वर्णित हैं।

1. के० वी० रमेश के अनुसार, चालुक्यों को अयोध्या का मूल निवासी मानना असम्भव नहीं हैं (Chalukyas of Vatapi Delhi 1984, pp. 19-21)
2. ह्वेनसांग ने पुलकेशिन द्वितीय को क्षत्रिय कहा है।
3. Karnataka through the Ages, p. 200.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जगदेकमल्ल के दौलताबाद अभिलेख में बतलाया गया है कि जयसिंह ने कदम्बों के ऐश्वर्य को नष्ट कर दिया था। जी० एम० मोरेस के अनुसार जयसिंह अपने समकालीन मृगेश अथवा रविवर्मन जैसे शक्तिशाली कदम्ब शासक को पराजित करने के लिए सक्षम नहीं था।

कल्याणी के चालुक्यों के कौथेम एवं कुछ अन्य अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि चालुक्य वंश के संस्थापक जयसिंह ने राष्ट्रकूट शासक इन्द्र एवं उसके पुत्र कृष्ण को पराजित किया था। कन्नड़ कवि रण्ण के गदायुद्ध में भी जयसिंह की राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विजय का उल्लेख हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार इन्द्र तथा कृष्ण मानपुर के राष्ट्रकूटों से सम्बन्धित रहे होगें जो सतारा, कोल्हापुर तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्रों पर छठी शताब्दी के प्रारम्भ में शासन कर रहे थे। परन्तु राष्ट्रकूट राजाओं की वंश-तालिकाओं में इन्द्र तथा कृष्ण का कहीं भी पिता-पुत्र के रूप में वर्णन नहीं है और कल्याणी के चालुक्यों के अभिलेखों का साक्ष्य जयसिंह के राज्यकाल के बहुत बाद का है। अतएव उपर्युक्त कथन की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। यह भी सुझाव दिया गया है कि जयसिंह प्रारम्भ में सम्भवतः राष्ट्रकूटों का सामन्त था जब राष्ट्रकूट अपने पड़ोसी नलों तथा मौर्यों से संघर्ष में व्यस्त थे, उस दौरान में उसने बीजापुर जिले के आस-पास के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया होगा। परन्तु इस मान्यता के लिए भी कोई पुष्ट आधार नही है।

राष्ट्रकूट अभिमन्यु के तिथि-रहित उन्दिकवाटिका अभिलेख में जयसिंह नाम के एक शासक का उल्लेख है और उसे हरिवत्स के दुर्ग का अधिकारी बतलाया गया है। लिपि-शास्त्र के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस अभिलेख को छठी शताब्दी का माना है और इसमें वर्णित जयसिंह का समीकरण चालुक्य वंश के संस्थापक से किया है। परन्तु उपर्युक्त अभिलेख में जयसिंह को चालुक्य वंश से सम्बन्धित नहीं किया गया है और इसकी सही तिथि निर्धारित करने के लिए लिपि के अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी अपेक्षित हैं। जयसिंह ने अनुमानतः छठी शताब्दी के प्रथम चरण में शासन किया होगा।

रणराग (520-540 ई०)—जयसिंह के पुत्र एवं उत्तराधिकारी रणराग का भी कोई अभिलेख नहीं मिला है, और न ही उसके विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना प्राप्त हुई है। येवूर अभिलेख में उसे एक वीर शासक कहा गया है और गदायुद्ध में रणराजसिंह की उपाधि दी गई है। वह शिव का उपासक था। रणराग ने सम्भवतः अपने शासन-काल में प्राप्त राज्य को सुरक्षित रखा।

CC-0. U.P. State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुलकेशिन प्रथम (लगभग 540[1]–66–67 ई०)– रणराग के पुत्र एवं उत्तराधिकारी पुलकेशिन[2] प्रथम के राज्यकाल से चालुक्य वंश की महानता का युग प्रारम्भ हुआ। जे. एफ. फ्लीट एवं दिनेशचन्द्र सरकार पुलकेशिन को संस्कृत एवं कन्नड भाषाओं का मिश्रित शब्द मानते हैं जिसका अर्थ 'चीतों के समान बालों वाला' है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह शुद्ध संस्कृत का शब्द है और इसका अर्थ 'विशालकाय व्याघ्र' है।

शक संवत् 465 के वातापी अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध तथा अन्य यज्ञ सम्पन्न किए थे[3]। कल्याणी के चालुक्य शासक सोमेश्वर तृतीय के विक्रमांकाभ्युदय के अनुसार, पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर 13,000 ग्राम पुरोहितों को दान में दिए और उसके विजयी घोड़े ने चारों समुद्रों से घिरी पृथ्वी की परिक्रमा की थी[4]। उसे वातापी का प्रथम विधाता (**वातापयः प्रथम-विधाता**) कहा गया है। उसने वातापी के आस-पास के क्षेत्रों को जीतकर इसे अपनी राजधानी बनाया और वहां एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया[5]। उसने कदम्बों से वातापी क्षेत्र अधिकृत किया होगा। पुलकेशिन प्रथम की किसी अन्य उपलब्धि का वर्णन नहीं है। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार उसकी विजयों आदि में उसके पुत्र कीर्तिवर्मन प्रथम का भी महत्वपूर्ण योगदान था। के.ए. नीलकान्त शास्त्री तथा एस.सी. नन्दिमथ के अनुसार पुलकेशिन ने बनवासी तथा अन्य क्षेत्रों को कदम्बों से अपहृत करने के पश्चात् अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया होगा। परन्तु जी. एम. मोरेस का अनुमान है कि पुलकेशिन प्रथम के राज्यकाल तक चालुक्य कदम्बों के सामन्त बने रहे। तथ्य जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि पुलकेशिन प्रथम ने कुछ महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त करने के उपरान्त ही अश्वमेध यज्ञ किया होगा और वह चालुक्य वंश का प्रथम स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली शासक था।

---

1. नन्दिमथ ने उसके शासन का प्रारम्भ 550 ई० में माना है।
2. पुलकेशिन प्रथम को पोलेकेशिन एवं पोलिकेशिन भी कहा गया है।
3. चलुक्यानां कुलमलंकरिष्णुः अश्वमेधावभृथ-स्नान-पवित्रीकृत-गात्रः श्रीपोलेकेशि वल्लभमहाराजः।
4. Ramesh, K. V., Chalukyas of Vatapi, p. 36.
5. धराधरेन्द्रं वातापिमजेयं भूतये भुवः।
   अधस्तादुपरिष्टाच्च दुर्गमेतदचीकरत॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मंगलेश के महाकूट स्तम्भ-लेख में बतलाया गया है कि पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध एवं वाजपेय के अतिरिक्त अग्निष्टोम, अग्निचयन, पौंडरीक, बहु-सुवर्ण तथा हिरण्यगर्भ नामक यज्ञ सम्पन्न किए। इससे प्रमाणित होता है कि वैदिक-धर्म में उसकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। लाट के चालुक्य शासक मंगलरसराज के नेरूर अभिलेख के अनुसार पुलकेशिन मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, इतिहास तथा पुराणों आदि का विद्वान था और राजनीति में बृहस्पति के समान दक्ष था। महाकूट अभिलेख में उसे हिरण्यगर्भ का वंशज, बृद्धोपदेशग्राही, ब्रह्मण्य (ब्राह्मण धर्म का उपासक), सत्यवक्ता तथा अटल प्रतिज्ञा वाला (**सत्यवागवषमावादकः**) कहा गया है। कुछ चालुक्य अभिलेखों में उसकी तुलना दिलीप एवं ययाति जैसे पुरातन नृपतियों से की गई है।

पुलकेशिन प्रथम की पत्नी दुर्लभादेवी बप्पुर वंश की राजकुमारी थी। उसके दो पुत्र थे–कीर्तिवर्मन प्रथम एवं मंगलेश। मुधोलि अभिलेख में पूगवर्मन नामक एक शासक का उल्लेख है। कुछ विद्वानों के अनुसार पूगवर्मन पुलकेशिन प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी मृत्यु अपने पिता के जीवनकाल में ही हो गई थी। उपर्युक्त अभिलेख में पूगवर्मन के पिता के नाम का उल्लेख नहीं है और उसे श्रीपृथ्वीवल्लभ महाराज कहा गया है। चूंकि यह उपाधि पुलकेशिन प्रथम के अतिरिक्त अन्य चालुक्य शासकों ने भी धारण की थी, इसलिए यह पूगवर्मन को पुलकेशिन प्रथम का पुत्र मानने के लिए पुष्ट आधार नहीं है, और कुछ विद्वानों ने उसे मंगलेश का पुत्र माना है।

पुलकेशिन प्रथम को महाराज, रणविक्रम, राजसिंह, सत्याश्रय, वल्लभराज, श्रीवल्लभ तथा श्रीपृथ्वीवल्लभ की उपाधियां दी गई हैं। गोडचि अभिलेख में उसे धर्ममहाराज भी कहा गया है। यह विरुद केवल इसी अभिलेख में वर्णित है और किसी अन्य चालुक्य शासक के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है। पुलकेशिन प्रथम का शक संवत् 465 (543 ई०) का वातापी अभिलेख प्रमाणित करता है कि वह 543 ई० में शासन कर रहा था। इसलिए उसके राज्यकाल का प्रारम्भ इस तिथि के पहले हुआ था। अमिनभावी अभिलेख में बतलाया गया है कि सत्याश्रय (पुलकेशिन प्रथम) ने शक संवत् के वर्ष 488 की परिसमाप्ति पर, वैशाख मास में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर अमिनभावी के देवता **कलिदेव** को दान दिया था। कुछ विद्वानों ने इस अभिलेख को अप्रामाणिक माना है और कुछ ने पुलकेशिन प्रथम के राज्यकाल का। तथ्य जो भी हो, कीर्तिवर्मन प्रथम के शक संवत् 500 (578 ई०) का वातापी अभिलेख उसके शासन के 12वें वर्ष का है,

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसलिए वह 578-11 = 567 ई० के आस-पास राजा हुआ था। यही पुलकेशिन प्रथम के राज्यकाल के अन्त की तिथि है[1]।

कीर्तिवर्मन प्रथम-पुलकेशिन प्रथम के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र कीर्तिवर्मन प्रथम 566-67 ई० में राजा हुआ। उसने सत्याश्रय, वल्लभ, श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराज, पुरुरणपराक्रम तथा परमभागवत की उपाधियां धारण कीं। उसकी विजयों का विवरण मुख्यतः पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति में तथा मंगलेश के महाकूट अभिलेख में मिलता है।

ऐहोल प्रशस्ति[2] तथा कल्याणी के चालुक्य अभिलेखों में उसे नलों, मौर्यों तथा कदम्बों का विनाशक कहा गया है[3]। नल वर्तमान बेल्लारी एवं कर्नूल ज़िलों के शासक थे। पराजित नल वंशीय राजा की पहचान करना कठिन है।

मौर्य महाराष्ट्र के समुद्रतटीय क्षेत्र कोंकण के शासक थे और पुरी उनकी राजधानी थी। पुरी का समीकरण एलीफैंटा द्वीप के निकट स्थित धारपुरी नामक स्थान से किया गया है। फ्लीट तथा नन्दिमथ के अनुसार कोंकण पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कीर्तिवर्मन ने ध्रुवराज इन्द्रवर्मन को वहां का शासक नियुक्त कर दिया था।

कदम्बों द्वारा शासित राज्य में कर्नाटक के वर्तमान उत्तरी कनारा, बेलगांव, धारवाड़ तथा इनके निकटवर्ती भू-भाग सम्मिलित थे। कदम्बों को पराजित करने के उपरान्त कीर्तिवर्मन ने उनकी राजधानी वैजयन्ती (बनवासी) को भी सम्भवतः अपने अधीन कर लिया था। ऐहोल प्रशस्ति के विवरण से प्रतीत होता है कि उसने कदम्बों के संघ को छिन्न-भिन्न कर दिया था। इस संघ में बनवासी के मुख्य कदम्ब राजवंश के अतिरिक्त अन्य शाखाओं के कदम्ब, सेन्द्रक एवं गंग राजवंशों के शासक भी शामिल रहे होंगे। कुछ विद्वानो ने कीर्तिवर्मन प्रथम द्वारा पराजित गंग शासक का समीकरण कृष्णवर्मन द्वितीय से किया है और कुछ ने उसके पुत्र अजवर्मन से। महाकूट एवं ऐहोल अभिलेखों के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों ने भी कीर्तिवर्मन प्रथम की बनवासी-विजय की पुष्टि की है। इस विजय के परिणामस्वरूप वह उत्तरी कर्नाटक का अधिपति बन गया था।

---

1. शक संवत् 488 (अमिनभावी अभिलेख की तिथि) पुलकेशिन प्रथम की अन्तिम ज्ञात तिथि है।
2. नलमौर्यकदम्बकालराद्रि·····कीर्तिवर्मा।
3. नलनिलय-विलोपी मौर्य-निर्याणहेतुः।
   प्रथित-पृथु कदम्बस्तम्भ-भेदी कुठारः॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मंगलेश के महाकूट अभिलेख में कीर्तिवर्मन प्रथम को कलिंग, मगध, अंग, वंग, बटटूर, मद्रक, केरल, गंग, मूषक, पांड्य, द्रमिल, चोलिय, आलुक तथा वैजयन्ती के शासकों का विजेता बतलाया गया है। यह विवरण ऐहोल प्रशस्ति से अत्यधिक भिन्न है। वस्तुतः कीर्तिवर्मन की केवल कदम्ब राज्य की विजय को ही दोनों अभिलेखों में शामिल किया गया है। महाकूट अभिलेख में वर्णित कीर्तिवर्मन प्रथम की विजयें निःसन्देह अतिरंजित हैं। उसे चक्रवर्ती शासक मानने के लिए कोई आधार नहीं है और सर्वाधिक शक्तिशाली चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय तथा विक्रमादित्य प्रथम भी दक्षिण भारत के इतने विशाल भू-भाग को अपने अधीन नहीं कर सके[1] थे। तलकाड के गंगों का राज्य कदम्ब राज्य के निकट स्थित था, इसलिए यह सम्भावित है कि कदम्ब राज्य पर आक्रमण करने के पूर्व अथवा उसी आक्रमण के दौरान में कीर्तिवर्मन ने गंगों को भी पराभूत किया होगा। कुछ विद्वानों ने पराजित गंग राजा का समीकरण दुर्विनीत से किया है।

आलुक दक्षिणी कनारा अथवा गुंटूर ज़िले के शासक थे। विनयादित्य के कोल्हापुर अभिलेख में उन्हें चालुक्यों का परम्परागत भृत्य (सामन्त) कहा गया है। सम्भव है कि आलुकों का राज्य भी कीर्तिवर्मन प्रथम के आक्रमण का शिकार हुआ हो। महाकूट अभिलेख में वर्णित कीर्तिवर्मन की अन्य विजयें काल्पनिक प्रतीत होती हैं। यदि वह वास्तव में इतना महान विजेता होता, तो पुलकेशिन द्वितीय अपने ऐहोल अभिलेख में उसकी उपलब्धियों का वर्णन अवश्य गर्व के साथ करता।

कीर्तिवर्मन प्रथम के राज्य में कर्नाटक के धारवाड़, बेलगांव, बीजापुर, बेल्लारी तथा शिमोगा ज़िले, महाराष्ट्र के सीमान्त प्रदेश एवं आन्ध्र के करनूल एवं गुंटूर ज़िले सम्मिलित थे। उसने सेन्द्रक वंशीय शासक श्रीवल्लभसेनानन्द की बहिन के साथ विवाह किया। शक संवत् 500 (578 ई०) के अभिलेख में कीर्तिवर्मन द्वारा एक विष्णु-मन्दिर के निर्माण का विवरण है। कीर्तिवर्मन ने कितने वर्ष तक शासन किया और उसके राज्यकाल का अन्त कब हुआ, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

---

1. के. वी. रमेश के अनुसार उस समय उत्तर तथा दक्षिण भारत में कोई शक्तिशाली राजा अथवा राजवंश नहीं था, अतएवं कीर्तिवर्मन प्रथम की उपर्युक्त विजयें असम्भव अथवा असम्भावित नहीं है (Chalukyas of Vatapi, pp. 50-51).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मंगलेश–कीर्तिवर्मन प्रथम की मृत्यु के समय उसका पुत्र पुलकेशिन द्वितीय अल्प आयु का बालक रहा होगा। सम्भवतः इसीलिए कीर्तिवर्मन के पश्चात् उसका अनुज मंगलेश राजा हुआ। उसने अपने भतीजे पुलकेशिन द्वितीय के संरक्षक के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली[1]। उसे मंगलेश्वर, मंगलीश, मंगलराज तथा मंगलार्णव भी कहा गया है, और पृथ्वीवल्लभ, श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराज, रणविक्रम, उरुरणविक्रान्त तथा चलियवंशाम्बरपूर्णचन्द्रः आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

मंगलेश के राज्यकाल के अभिलेखों में किसी संवत् का उल्लेख नहीं है। उसके पूर्ववर्ती शासक कीर्तिवर्मन प्रथम की मृत्यु की तिथि भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इसलिए मंगलेश के राज्यारोहण की तिथि निर्धारित करना कठिन है। महाकूट अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर जे० एफ० फ्लीट, डी० सी० सरकार तथा कुछ अन्य विद्वानों ने उसके राज्यकाल का प्रारम्भ 597-98 ई० के आस-पास माना है। परन्तु यह पुष्ट आधार नहीं है। चूंकि कीर्तिवर्मन प्रथम शक संवत् 500 (578 ई०) में राज्य कर रहा था और शक संवत् 534 (612 ई०) मंगलेश के उत्तराधिकारी पुलकेशिन द्वितीय के शासन का तीसरा वर्ष था। इसलिए मंगलेश के राज्यकाल का प्रारम्भ 578 ई० के बाद में तथा अन्त 610 ई० के कुछ पहले हुआ। यदि सत्याश्रय ध्रुवराजइन्द्रवर्मन के शक संवत् 532 के गोवा अभिलेख में वर्णित उसका अधिराट श्रीपृथ्वीवल्लभ महाराज मंगलेश ही था, तो इस तिथि (शक संवत् 532) को मंगलेश के शासन का 20वां वर्ष मानना चाहिए। इस प्रकार वह 532-19 = शक संवत् 513 या 590-91 ई० में राजा हुआ[2]।

मंगलेश अपने पूर्ववर्ती चालुक्य शासकों से अधिक महान एवं महत्वाकांक्षी विजेता था और उसने सभी दिशाओं में चालुक्य राज्य का प्रसार करने का प्रयास किया। उसके राज्यकाल के महाकूट अभिलेख के अनुसार, वह उत्तर भारत पर विजय प्राप्त कर (**उत्तरविजिगीषु**) भागीरथी नदी के तट पर अपना विजय-स्तम्भ स्थापित करना चाहता था। इस अभिलेख में उत्तर भारत के कम

---

1. राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की मृत्यु के समय उसका पुत्र अमोघवर्ष प्रथम भी नाबालिग था, इसलिए गुजरात शाखा के राष्ट्रकूट शासक कर्क को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया था।
2. Dikshit, D. P., Chalukyas of Badami, 1980, pp 47-53; Ramesh, K. V., Chalukyas of Vatapi, pp. 57-61.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से कम एक शासक बुद्ध (बुद्धराज) के विरुद्ध मंगलेश की विजय का स्पष्ट वर्णन है और इसका समर्थन मंगलेश के नेरूर अभिलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति से भी हो जाता है। नेरुर अभिलेख के अनुसार मंगलेश ने शंकरगण के पुत्र बुद्धराज की, हाथी, घोड़े, पैदल तथा राजकोष से सम्पन्न एवं सशक्त सेना को खदेड़ दिया था। बुद्धराज का समीकरण गुजरात, काठियावाड़ एवं महाराष्ट्र के कलचुरि शासक शंकरगण के पुत्र से किया गया है। इस विजय में प्राप्त समस्त धन-सम्पत्ति को मंगलेश ने विजयोत्सव मनाने में खर्च कर दिया। ऐहोल प्रशस्ति में बतलाया गया है कि मंगलेश ने कलचुरियों पर विजय प्राप्त की, कलचुरि राज्य की स्त्रियों के साथ रमण किया और उसकी अश्व-सेना की धूल पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रों के तटवर्ती क्षेत्रों तक पहुंच गई थी। चूंकि इस युद्ध का विवरण मंगलेश के शासन के 5वें अथवा 7वें वर्ष के महाकूट अभिलेख में मिलता है, इसलिए यह विजय उसने अपने राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ही प्राप्त की थी। कलचुरि उस समय गुजरात, काठियावाड़ तथा नासिक क्षेत्र में शासन कर रहे थे। परन्तु बुद्धराज के बड़नेर अभिलेख से प्रमाणित होता कि 608 ई० में उसका नासिक क्षेत्र पर आधिपत्य था और सरसनवी अभिलेख के अनुसार 609 ई० में गुजरात मंगलेश के अधीन था।

उपर्युक्त दोनों पक्षों के साक्ष्यों की समीक्षा करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धराज के विरुद्ध मंगलेश को स्थाई सफलता नहीं मिली और कलचुरि शासक ने खोये हुए प्रदेशों को प्राप्त कर लिया था। परन्तु 609 ई० के कुछ ही समय बाद मंगलेश ने सम्भवतः कलचुरि राज्य के कई क्षेत्रों को पुनः अधिकृत कर लिया था, क्योंकि पुलकेशिन द्वितीय के विजित राज्यों में कलचुरियों का उल्लेख नहीं है, यद्यपि कलचुरि राज्य के प्रदेश उसके साम्राज्य में शामिल थे।

मंगलेश की दूसरी महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि रेवतीद्वीप की विजय थी। रेवतीद्वीप सम्भवतः कोंकण प्रदेश की राजधानी अथवा इस राज्य का बहुत महत्वपूर्ण नगर था। इसकी पहचान महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले में वेंगुर्ला के दक्षिण में स्थित रेडि नामक स्थान से की गई है। परन्तु यह समीकरण बहुमान्य नहीं है। ऐहोल प्रशस्ति[1] से हमें ज्ञात होता है कि मंगलेश ने रेवतीद्वीप

1. पुनरपि च जिघ्रिक्षोस् सैन्यमाक्रान्त-सालं-
रुचिर-बहुपताकं रेवतीद्वीपमाशु।
सपदि महदुदन्वत्तोय संक्रान्त बिम्बं–
वरुणबलमिवाभूदागतं यस्य वाचा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया था। नौ सेना द्वारा रेवतीद्वीप की विजय के विवरण से प्रतीत होता है कि यह सम्भवतः पश्चिमी समुद्रतट के निकट स्थित रहा होगा। परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में भी वर्णित है कि मंगलेश की नौ सेना ने रेवतीद्वीप पर आक्रमण करने के लिए पहले नावों से निर्मित पुल को पार किया था[1]। इस प्रकार मंगलेश के राज्यकाल तक चालुक्यों ने एक सुदृढ़ नौ सेना संगठित कर ली थी।

कीर्तिवर्मन प्रथम के राज्यकाल में कोंकण प्रदेश में मौर्य शासन कर रहे थे, जिन्हें पराजित कर उसने इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया था। मंगलेश के समय में रेवतीद्वीप के शासक ने चालुक्यों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया होगा और इसलिए उसे कोंकण पर आक्रमण करना पड़ा। मंगलेश के नेरूर अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उसने 18 युद्धों के विजेता चालुक्य वंशीय स्वामिराज को पराजित कर मार डाला था। स्वामिराज कोंकण का शासक था और उसे सम्भवतः कीर्तिवर्मन प्रथम ने नियुक्त किया था। कुछ विद्वानों के अनुसार स्वामिराज ने मंगलेश के विरुद्ध पुलकेशिन द्वितीय का साथ देकर उसे अपना शत्रु बना लिया था। तथ्य जो भी हो, स्वामिराज को मारने के पश्चात् मंगलेश ने शायद इन्द्रवर्मन को उसके स्थान पर कोंकण का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया। इन्द्रवर्मन के गोवा अभिलेख में खेटकहारदेश में स्थित करेलिल्का नामक ग्राम के दान का उल्लेख है। यह दान इन्द्रवर्मन ने **श्रीपृथ्वीवल्लभ महाराज** की पूर्व अनुमति प्राप्त कर ब्राह्मणों को दिया था। खेटकहारदेश की पहचान रत्नागिरि जिले की खेड तालुक से की गई है। एस० सी० नन्दिमथ के अनुसार 611 ई० में ध्रुवराजइन्द्रवर्मन चार **विषयों** तथा **मंडलों** के गवर्नर के रूप में शासन कर रहा था और रेवतीद्वीप उसकी शक्ति का केन्द्र था। फ्लीट का अनुमान है कि इन्द्रवर्मन मंगलेश का पुत्र था जिसे वह पुलकेशिन द्वितीय के स्थान पर वातापी का शासक बनाना चाहता था[2]। मगलेश के राज्यकाल के 598-99 ई० के मारुटूर अभिलेख के अनुसार उसने पिष्टपुर (आन्ध्र राज्य में पिठापुरम) पर अधिकार कर लिया था (पिष्टपुर-कादान-ग्रहण)। किन्तु इस क्षेत्र को वह अधिक समय तक अपने अधीन नहीं

---

1. सर्वद्वीपाक्रमण-महसो यस्य नौ-सेतु-बन्धैः
उल्लंघ्याब्धिं व्यधित-पृतना रेवतीद्वीप-लोपं।

2. Karnataka through the Ages, p. 204.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रख सका[1]। मंगलेश के राज्य में गुजरात, काठियावाड़ एवं महाराष्ट्र के नासिक तथा उत्तरी कोंकण क्षेत्र सम्मिलित थे। दक्षिण में उसने उत्तराधिकार में प्राप्त उत्तरी कर्नाटक तथा आन्ध्र राज्य के करनूल जिले पर अपना आधिपत्य सुरक्षित रखा। इस प्रकार उसने अपने राज्य की उत्तरी सीमा में काफी वृद्धि की थी।

एक महान विजेता होने के साथ-साथ मंगलेश अन्य बहुत से श्रेष्ठ गुणों से भी युक्त था। महाकूट अभिलेख में उसके बहुमुखी व्यक्तित्व की प्रशंसा की गई है। उसे चालुक्य वंश का चन्द्र, इन्द्र एवं राम के समान अजेय, शिव के समान उदार, युधिष्ठिर के समान सत्यनिष्ठ, वासुदेव के तुल्य सौभाग्यशाली, लक्ष्मी से सम्पन्न, मानधातृ के समान यशस्वी तथा बृहस्पति के समान नीतिनिपुण बतलाया गया है। नेरूर अभिलेख में उसे परमभागवत (विष्णु का परम भक्त) कहा गया है। शक संवत् 500 के वातापी अभिलेख में वर्णित है कि मंगलेश ने उस विष्णु-मन्दिर के निर्माण-कार्य को पूर्ण कराया, जिसका प्रारम्भ कीर्तिवर्मन प्रथम के राज्यकाल में हुआ था। इस अभिलेख में उपर्युक्त मन्दिर के स्थापत्य की भी प्रशंसा की गई है। महाकूट अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने मुक्तेश्वर-शिव के मन्दिर को 10 ग्राम दान में दिए थे। वातापी अभिलेख के अनुसार उसने लंजीश्वर (?) के मन्दिर के मालाकारों को कुछ भूमि दान में दी थी। मंगलेश ने एक धर्मविजय-स्तम्भ की भी स्थापना कराई। परन्तु उसके जीवन का अन्त गृह-युद्ध के कारण हुआ जिसका विवरण ऐहोल प्रशस्ति में प्राप्त होता है। इस प्रशस्ति में बतलाया गया है कि पुलकेशिन द्वितीय ने अपनी मन्त्र एवं उत्साह शक्ति से मंगलेश को सभी ओर से दुर्बल बना दिया और मंगलेश को न केवल अपना राज्य, बल्कि जीवन भी खोना पड़ा[2]। यह घटना 609–10 ई० में घटी होगी[3]।

साम्राज्यवादी शासक : पुलकेशिन द्वितीय—ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार पुलकेशिन द्वितीय का चाचा मंगलेश अपने पुत्र[4] को वातापी के राजसिंहासन पर

---

1. Ramesh, K. V., Chalukyas of Vatapi, p. 67.
2. स यदुपचित (म) न्त्रोत्साह-शक्ति-प्रयोगे–
क्षपितबलविशेषो मंगलेशस्समन्तात।
स्वतनमगतराज्यारम्भयत्नेन सार्द्धं–
निजमतनु च राज्यं जीवितोन्चोंझतिस्म ॥
3. नन्दिमथ के अनुसार मंगलेश की मृत्यु 608 ई० में हुई।
4. मंगलेश के पुत्र के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। कई विद्वानों ने उसे गोवा अभिलेख का सत्याश्रय ध्रुवराजइन्द्रवर्मन माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रतिष्ठित करना चाहता था और पुलकेशिन को उसके वैध अधिकार से वंचित रखने के लिए प्रयत्नशील था। पुलकेशिन नहुष के समान उदार तथा राजलक्ष्मी का प्रिय था (**लक्ष्म्याः किलाभिलषितः**)। इसलिए मंगलेश उससे ईर्ष्या करने लगा। अपने चाचा के मन्तव्य को समझकर और अपने विरुद्ध वातावरण देखकर पुलकेशिन ने सम्भवतः राजदरबार छोड़ दिया। अपनी मंत्र एवं उत्साह शक्ति से उसने सभी ओर से मंगलेश को दुर्बल कर दिया और मंगलेश को अपने पुत्र को राजा बनाने के उद्देश्य की विफलता के अतिरिक्त जीवन एवं राज्य से भी हाथ धोने पड़े[1]। इस प्रकार पुलकेशिन ने वातापी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस गृह-युद्ध में चालुक्यों के कुछ मित्रों, सामन्त शासकों तथा उच्च पदाधिकारियों आदि ने मंगलेश की सहायता की होगी और कुछ पुलकेशिन की ओर से लड़े होंगे। इस निर्णायक युद्ध का चालुक्य राज्य पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ और इसके परिणामस्वरूप समस्त संसार (चालुक्यों के शत्रुरूपी) अन्धकार से ग्रसित हो गया।[2] राज्यारोहण के समय वातापी तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्रों के अतिरिक्त पुलकेशिन द्वितीय के आधिपत्य में अन्य कौन से प्रदेश थे, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

शक संवत् के व्यतीत वर्ष 534 (612 ई०) के हैदराबाद अभिलेख में उल्लिखित सूर्यग्रहण की तिथि 23 जुलाई, 613 ई० निर्धारित की गई है। यह अभिलेख पुलकेशिन द्वितीय के शासन के तीसरे वर्ष का है, और उसके राजत्व के आठवें वर्ष का मारुटूर (आन्ध्र राज्य के करनूल जिले में) अभिलेख 21 मई, 616 ई० का माना गया है।[3] इस प्रकार उसका राज्यारोहण 609–10 ई० में हुआ।[4]

---

1. तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभागे-लक्ष्म्या किलाभिलषिते पोलकेशनाम्नि-सासूयमात्मनि भवन्तमतपितृव्यम्-ज्ञात्वापरुद्ध चरित व्यवसायबुद्धौ स मदुपचित (म) न्त्रोत्साहशक्ति-प्रयोग-क्षपितबलविशेषो मंगलेशस्समन्तात्-स्वतनमगतराज्यारम्भयलेन सार्द्ध-निजमनु च राज्यन्जीवितोन्चोन्झति स्म ॥
2. तव छत्र-भंगेजगदखिलमरात्यन्धकारोपरुद्धं।
3. इस अभिलेख में भी एक सूर्यग्रहण का उल्लेख है जो ज्येष्ठ मास की अमावस्या के दिन, 21 मई, 616 ई० में हुआ था।
4. फ्लीट महोदय ने पहले यही तिथि स्वीकार की थी। किन्तु बाद में उन्होंने उसके राज्य का प्रारम्भ 612 ई० में माना।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विजयें–पुलकेशिन द्वितीय एक महान शासक तथा महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने अपने राजवंश की विचलित राजलक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठित का चालुक्य साम्राज्य की गरिमा में काफी अभिवृद्धि की। आन्तरिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर पहले उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाया और इसके पश्चात् एक विस्तृत दिग्विजय-योजना का कार्यान्वन प्रारम्भ किया जिसका विवरण ऐहोल प्रशस्ति में इस प्रकार है–

आप्पायिक एवं गोविन्द–अपनी दिग्विजय-यात्रा में पुलकेशिन ने सर्वप्रथम आप्पायिक एवं गोविन्द को पराजित किया। ये दोनों शासक अपनी हस्ति-सेना सहित भीमरथी [भीमा] नदी के उत्तरी किनारे तक बढ़ गए थे और इनसे चालुक्यों की शक्ति के केन्द्र बीजापुर के आस-पास के क्षेत्र के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था। पुलकेशिन ने खुले युद्ध के स्थान पर भेद-नीति का अनुशरण करते हुए गोविन्द को अपना मित्र बना लिया और उसकी सहायता से आप्पायिक को पराजित कर दिया।

यह दोनों दक्षिणी महाराष्ट्र के स्थानीय शासक रहे होंगे। उनके राजवंश का उल्लेख नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों ने उन्हें दक्षिणी महाराष्ट्र के राष्ट्रकूटों से सम्बन्धित माना है। आर० जी० भंडारकर ने गोविन्द का समीकरण राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग के दादा गोविन्द के साथ किया है, परन्तु यह गोविन्द पुलकेशिन द्वितीय के राज्यकाल के बहुत बाद में राजा हुआ था।

कदम्ब–पुलकेशिन ने कदम्ब राज्य पर आक्रमण कर उसकी राजधानी बनवासी को घेर लिया था। रविकीर्ति के अनुसार बनवासी इन्द्रपुरी के समान भव्य थी और वरदा नदी उसकी मेखला थी। कदम्बों के विरुद्ध कीर्तिवर्मन प्रथम तथा मंगलेश ने भी विजयें प्राप्त की थीं। उन्होंने सम्भवतः पुलकेशिन एव मंगलेश के बीच हुए गृह-युद्ध के समय स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी। कदम्ब शासक बहुत वीरता से चालुक्य-सेना से लड़ा, किन्तु अन्त में पराजित होकर उसे पुलकेशिन के समक्ष समर्पण करना पड़ा। कुछ विद्धानों ने पराजित कदम्ब शासक की पहचान भोगिवर्मन से की है। परन्तु यह समीकरण असन्दिग्ध नहीं है। इस विजय के परिणामस्वरूप कदम्ब राज्य वर्धमान चालुक्य साम्राज्य का अंग बन गया और पुलकेशिन ने इसे अपने सामन्तों-आलुपों एवं सेन्द्रकों में बांट दिया। आलुपों को कदम्बमंडल दिया गया जिसमें कदम्ब राज्य का अधिकांश भाग शामिल था, और सेन्द्रकों को बनवासी का नागरक्षेत्र प्राप्त हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आलुप एवं गंग–आलुप कर्नाटक राज्य के दक्षिणी कनारा जिले में शासन कर रहे थे। उदुपी तालुक में आलुपों के कई अभिलेख मिले है। कुछ विद्वानों के अनुसार कर्नाटक के शिमोगा जिले में स्थित हूंचा (Huncha) उनकी राजधानी थी। यदि मारुटरु अभिलेख में वर्णित आलुकों को आलुप मान लिया जाय, तो वे आन्ध्र राज्य के गुंटूर जिले के शासक थे। कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि पहले आलुप कदम्बों के सामन्त थे और पुलकेशिन द्वितीय के हाथों पराजित होने के बाद उन्होंने चालुक्यों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। कुछ विद्वानों ने कुन्दवर्म्मरस को पराजित आलुप राजा माना है। सम्भवतः उसी को पुलकेशिन द्वितीय ने कदम्बमंडल का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। गंगों का यहां अभिप्राय तलकाड के गंग राजवंश से है और पराजित गंग राजा अविनीत अथवा उसका पुत्र दुर्विनीत रहा होगा। तलकाड के गंग कदम्बों के सम्बन्धी थे। पुलकेशिन द्वितीय ने जब कदम्बों को परास्त कर दिया, तो गंगों ने बिना युद्ध किए ही उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और दुर्विनीत ने पुलकेशिन द्वितीय के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

कोंकण के मौर्य–पुलकेशिन की विशाल नौ सेना ने मौर्यों की राजधानी पुरी (जिसे 'पश्चिमी समुद्र की लक्ष्मी' कहा गया है) पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। पुरी की पहचान बम्बई के निकट एलीफैन्टा द्वीप पर स्थित धारपुरी से की गई है। कुछ विद्वानों ने इसे महाराष्ट्र में कोलवा जिले का राजपुरी नामक स्थान माना है। पुरी उस समय बहुत महत्वपूर्ण बन्दरगाह था।

ऐहोल प्रशस्ति में मौर्यों को कोंकण का शासक कहा गया है और गोवा के निकटवर्ती क्षेत्रों में उनके कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि मौर्य गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों के पश्चिमी समुद्रतटीय भू-भाग के अधिपति थे। पराजित मौर्य शासक की पहचान नहीं की जा सकी है।

लाट, मालव एवं गुर्जर–लाट, मालव एवं गुर्जर राज्यों के शासकों ने युद्ध के बिना ही पुलकेशिन के समक्ष समर्पण कर दिया था। लाट राज्य दक्षिणी गुजरात में कीम नदी के दक्षिण में स्थित था। इसकी राजधानी नवसारिका की पहचान बड़ौदा जिले के नवसारी (नौसारी) नामक स्थान से की गई है। यह राज्य उस समय कलचुरियों के अधीन था। 643 ई० के कैरा अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि चालुक्य वंशीय विजयवर्मराज उस समय गुजरात में शासन कर रहा था। इस राजकुमार को सम्भवतः पुलकेशिन ने ही लाट का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मालवा क्षेत्र वलभी के मैत्रक-राज्य में शामिल रहा होगा। यहां के शासक ने या तो हर्ष से भयभीत होकर अथवा पुलकेशिन की वर्धमान शक्ति से सशंकित होकर उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग ने मालवा को स्वतन्त्र राज्य बतलाया है।

गुर्जरों की कई शाखाएं थीं। ऐहोल प्रशस्ति में सम्भवतः भड़ौच के गुर्जरों का उल्लेख हुआ है[1] जिनकी राजधानी नान्दीपुरी का समीकरण भगवानलाल इन्द्रजी तथा कुछ अन्य विद्वानों ने भूतपूर्व पिप्पला रियासत में कर्जन नदी के तट पर स्थित आधुनिक नान्दोद नामक स्थान से किया है[2]। हर्षवर्धन के आक्रमण से भयभीत मैत्रक शासक को गुर्जर राजा दद्द द्वितीय ने शरण देकर हर्ष को अपना शत्रु बना लिया था। इसलिए सम्भव है कि हर्ष के सम्भावित आक्रमण से अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से दद्द द्वितीय ने पुलकेशिन द्वितीय के समक्ष समर्पण कर दिया हो।

पुलकेशिन द्वितीय का हर्ष से युद्ध—जिस दौरान में दक्षिणापथ में पुलकेशिन द्वितीय सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हो गया था, उत्तर भारत में हर्षवर्धन सार्वभौम सम्राट बनने के लिए प्रयत्नशील था। इन महत्वाकांक्षी सम्राटों की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप अन्त में दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध को चालुक्य अभिलेखों में बहुत महत्व दिया गया है और यह पुलकेशिन द्वितीय की महानतम सामरिक उपलब्धि मानी गई। इसलिए इसका विवरण पुलकेशिन द्वितीय और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों के अतिरिक्त, कल्याणी के चालुक्यों तथा कुछ राष्ट्रकूट शासकों के अभिलेखों में भी प्राप्त होता है।

ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार इस संघर्ष में हर्ष की सेना के बहुत से हाथी मारे गए थे और इस वीभत्स दृश्य से भयभीत होने के कारण हर्ष का हर्ष (प्रसन्नता) विगलित हो गया था[3]। वातापी के अन्य चालुक्य अभिलेखों में बतलाया गया है कि सम्पूर्ण उत्तरापथ के अधिपति हर्षवर्धन को पराजित करने

---

1. आर. सी. मजूमदार ने ऐहोल प्रशस्ति के गुर्जरों को मन्दोर का गुर्जर-प्रतीहार वंश माना है। किन्तु यह असम्भावित है, क्योंकि गुर्जर, लाट एवं मालव निकटवर्ती राज्य थे और मन्दोर का प्रतीहार-राज्य भड़ौच के गुर्जरों की अपेक्षा मालवा एवं लाट से काफी दूर स्थित था। पुलकेशिन अपनी दिग्विजय-यात्रा में राजपूताने तक नहीं गया था।
2. ब्यूलर ने इसकी पहचान भड़ौच से की है।
3. युधिपतितगजेन्द्रानीक-वीभत्सभूतो भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के पश्चात् पुलकेशिन द्वितीय ने अपना दूसरा नाम परमेश्वर रखा था[1]।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि 'शीलादित्य (हर्षवर्धन) ने पूर्व से पश्चिम तक के (अनेक) राज्यों पर विजय प्राप्त की थी, किन्तु मो-हो-ल-च (महाराष्ट्र) के शासक ने उसकी अधिसत्ता स्वीकार नहीं की। शीलादित्य ने पंच-हिन्दों की सर्वश्रेष्ठ सेनाएं तथा सम्पूर्ण देश से उत्तम सेनानायक बुलाए थे और महाराष्ट्र राज्य के विरुद्ध अभियान का स्वयं नेतृत्व किया। परन्तु वह (महाराष्ट्र के शासक पर) विजय प्राप्त नहीं कर सका[2]। इस विवरण से प्रतीत होता है कि हर्ष ने पुलकेशिन द्वितीय पर आक्रमण किया था जिसमें वह सफलता नहीं प्राप्त कर सका। ऐहोल प्रशस्ति में भी हर्ष के केवल भयभीत होने तथा उसकी सेना के हाथियों के मारे जाने का ही उल्लेख है, उसकी पराजय का नहीं। हर्ष की पराजय का अधिक स्पष्ट विवरण परवर्ती चालुक्य साक्ष्यों में ही मिलता है।

यह युद्ध किस स्थान पर हुआ था, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। ऐहोल प्रशस्ति में इसके विवरण के तुरन्त बाद पुलकेशिन के विन्ध्य-नर्मदा क्षेत्र में पहुंचने का उल्लेख है। सम्भवतः इसीलिए वी. ए. स्मिथ की मान्यता है कि पुलकेशिन एवं हर्ष के बीच संघर्ष नर्मदा नदी के आस-पास के क्षेत्र में किसी स्थान पर हुआ होगा। उनके अनुसार पुलकेशिन ने नर्मदा नदी के मार्गों की सुरक्षा की इतनी कड़ी व्यवस्था की थी कि हर्ष को वहां से निराश होकर लौटना पड़ा, और इस नदी को ही वह अपने साम्राज्य की (दक्षिणी) सीमा मानने के लिए बाध्य हुआ। यह अवधारणा समीचीन नहीं है, क्योंकि ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार मालवों, लाटों एवं गुर्जरों ने पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार कर ली थी। चूंकि इन राज्यों पर हर्ष का प्रभुत्व नहीं था, इसलिए दक्षिण में उसके राज्य का विस्तार नर्मदा नदी तक सम्भवतः कभी नहीं हो सका था। आर. सी. मजूमदार ने ठीक ही कहा है कि यह संघर्ष नर्मदा नदी के काफी उत्तर में स्थित किसी स्थान पर हुआ होगा। लाटों, मालवों एवं गुर्जरों के राज्य हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के साम्राज्यों के बीच में स्थित थे। इसलिए दोनों ही उन पर अपनी अधिसत्ता स्थापित करना चाहते थे।

---

1. सकलोत्तरापथपथेश्वर-श्रीहर्षवर्धन-पराजयोपलब्धपरमेश्वरापरनामधेयः।
2. Beal, Buddhist Records of the Western World, Vol.2,p.257; Classical Age, p. 105.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इस युद्ध की तिथि भी विवादास्पद है। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में युद्धों में निरन्तर व्यस्त रहा और छः वर्षों में उसने **पंच-हिन्दों** को जीत लिया था। इसके पश्चात् 30 वर्ष तक वह बिना अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग के ही शान्तिपूर्वक शासन करता रहा।[1] हर्ष 606 ई० में राजा हुआ था। इसलिए चीनी यात्री के उपर्युक्त विवरण के आधार पर जे० एफ० फ्लीट, राधाकुमुद मुकर्जी, के० सी० चट्टोपाध्याय तथा के० ए० नीलकांत शास्त्री ने इस युद्ध की तिथि 612 ई० अथवा इसके पहले मानी है। पुलकेशिन के शासन के पांचवे वर्ष के कुंडलगांव अभिलेख में इस युद्ध का उल्लेख है। इसलिए कुछ विद्वानों के अनुसार यह 615 ई० के पहले हुआ होगा। वी० ए० स्मिथ ने इसे 620 ई० में रखा है। ए० एस० अल्तेकर, आर० सी० मजूमदार तथा आर०एस० त्रिपाठी के अनुसार यह निर्णायक संघर्ष 630 ई० के बाद तथा 634-35 ई० के पहले हुआ होगा। डुब्रील महोदय ने इसे 637-38 ई० में रखा है।

हर्ष 606 ई० में राजसिंहासन पर बैठा था और पुलकेशिन द्वितीय 610 ई० के आस-पास। शासन की बागडोर सम्भालने के समय दोनों के समक्ष अत्यधिक विषम राजनैतिक परिस्थितियां एवं कठिनाइयां थीं जिन्हें सुलझाने में उन्हें काफी समय लगा होगा। इसलिए पुलकेशिन द्वितीय जैसे शक्तिशाली एवं सुदूरस्थ दक्षिणापथ के शासक से युद्ध करना उसके लिए काफी बाद में ही सम्भव हो सका होगा। पुलकेशिन के 630 ई० के लोहनेर अभिलेख में इसका उल्लेख नहीं है और 634-35 ई० की ऐहोल प्रशस्ति में यह वर्णित है। अतएव यह युद्ध 630 ई० के बाद तथा 634-35 ई० के पहले किसी समय हुआ होगा। कंडलगांव अभिलेख की प्रामाणिकता को फ्लीट आदि विद्वानों ने सन्दिग्ध माना है और अन्य तिथियों (630-634-35 ई० के अतिरिक्त) के समर्थन के लिए पुष्ट एवं स्पष्ट साक्ष्यों का अभाव है। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार यह भी सम्भव है कि हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच दो युद्ध हुए हों; प्रथम युद्ध पुलकेशिन के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में, और दूसरा अन्तिम वर्षों में। यह मत मात्र कल्पना पर आधारित होने के कारण अमान्य है।

ऐहोल प्रशस्ति में बतलाया गया है कि शक्र के समान (प्रतापी) पुलकेशिन द्वितीय तीन **महाराष्ट्रकों** का अधिपति हो गया था, जिनमें 99,000 ग्राम शामिल थे। तीन **महाराष्ट्रकों** को विभिन्न विद्वानों ने विदर्भ, कुनाल तथा महाराष्ट्र,

1. बील महोदय द्वारा किए गए इस अंश के अनुवाद के अनुसार हर्ष 30 वर्ष तक युद्धों में व्यस्त रहा था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अथवा महाराष्ट्र, कोंकण एवं कर्नाट माना है। कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि पुलकेशिन के साम्राज्य के तीन भागों के लिए **तीन-महाराष्ट्रक** शब्द प्रयुक्त हुआ है। इनमें से किसी भी सुझाव को मानना कठिन है और न ही 99,000 ग्रामों की संख्या का अर्थ एवं महत्व स्पष्ट है।

पूर्वी दक्षिणापथ—इसके पश्चात् पुलकेशिन ने पूर्वी दक्षिणापथ की विजय के लिए प्रस्थान किया और कोसल तथा कलिंग राज्यों पर विजय प्राप्त की। कोसल का तात्पर्य दक्षिण कोसल से है, जिसमें मोटे-तौर पर मध्य प्रदेश के आधुनिक रायपुर एवं बिलासपुर ज़िलों के अतिरिक्त उड़ीसा राज्य का सम्भलपुर ज़िला भी शामिल था। दक्षिण कोसल में उस समय पांड्य वंशी शासक राज्य कर रहे थे। डी० सी० सरकार ने इस राज्य के पराजित शासक का समीकरण बालार्जुन शिवगुप्त से किया है। कलिंग में पूर्वी गंग शासन कर रहे थे। उनकी राजधानी कलिंगनगर की पहचान गंजाम ज़िले के मुखलिंगम् नामक स्थान से की गई है। पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित कलिंग के शासक का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है।

चालुक्य सेना पूर्वी समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र में बढ़ती हुई आन्ध्र राज्य में पहुंची और उसने पिष्टपुरम पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् कौणाल झील (गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित कोल्लेरु झील) के समीप पुलकेशिन का आन्ध्र के शासक के साथ भयंकर युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप इस झील का पानी रक्त-रंजित हो गया। आन्ध्र में उस समय विष्णुकुंडिन राजवंश का शासन था और पिष्टपुरम (गोदावरी ज़िले का आधुनिक पिठापुरम) इसकी राजधानी रही होगी। विष्णुकुंडिन काफी शक्तिशाली थे। इसलिए उन्होंने चालुक्य सेना का डटकर मुकाबला किया। दिनेशचन्द्र सरकार ने पराजित विष्णुकुंडिन शासक की पहचान विक्रमेन्द्रवर्मन तृतीय से की है जिसने 620 से 630 ई०तक राज्य किया। परन्तु एस० संकरनारायनन ने उसे विक्रमेन्द्रवर्मन चतुर्थ का पुत्र माना है। मारुटूर अभिलेख के अनुसार पुलकेशिन द्वितीय ने 617–18 ई० के पहले ही पिष्टपुरम को अधिकृत कर लिया था। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्द्रवर्मन को पुलकेशिन द्वारा पराजित विष्णुकुंडिन शासक माना है। पुलकेशिन द्वितीय की इस विजय की पुष्टि 631 ई० के कोप्परम अभिलेख ने भी की है जिसके अनुसार उसके छोटे भाई विष्णुवर्धन ने कर्मराष्ट्र (आन्ध्र राज्य के नेल्लोर तथा गुंटूर ज़िलों के कुछ भाग) में कुछ भूमि दान में दी थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि वेंगी में उस समय पल्लवों का शासन था, जिन्हें पुलकेशिन द्वितीय ने पराजित किया था। यह विचार निराधार है।

आन्ध्र-विजय के तुरन्त बाद पुलकेशिन द्वितीय ने विष्णुवर्धन को वहां का राजा नियुक्त कर दिया था अथवा विष्णुकुंडिन शासक कुछ समय तक उसके सामन्त के रूप में शासन करता रहा, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। मारुटूर अभिलेख के विवरण से प्रतीत होता है कि पुलकेशिन द्वितीय ने नव-विजित आन्ध्र राज्य को कई भागों में विभाजित कर उन्हें अपने सामन्तों के अधीन कर दिया था। कुछ वर्ष तक विष्णुवर्धन ने सामन्त के रूप में शासन किया। 632 ई० के आस-पास उसने स्वतन्त्रता घोषित कर दी और एक नए राजवंश का संस्थापक बन गया जिसे पूर्वी-चालुक्य राजवंश चाहते हैं। यह पुलकेशिन द्वितीय के राज्यकाल की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक थी।

पल्लव राज्य पर प्रथम आक्रमण—दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ पुलकेशिन द्वितीय पल्लव राज्य की सीमा तक पहुंच गया। ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार पल्लव, चालुक्यों की उदीयमान शक्ति के विरोधी थे। पुलकेशिन ने अपनी षडंग सेना के साथ पल्लव राज्य पर आक्रमण किया और **पल्लवपति** (महेन्द्रवर्मन प्रथम) के प्रताप को धूमिल कर दिया। महेन्द्रवर्मन पराजित होकर युद्ध के मैदान से भाग गया और उसने कांचीपुर की नगर-दीवार में शरण ली[1]। इस विजय के परिणामस्वरूप पुलकेशिन ने सम्भवतः पल्लव साम्राज्य के धुर उत्तर के कुछ क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया था। मारुटूर अभिलेख के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि 617–18 ई०के आस-पास उसने आन्ध्र राज्य पर विजय प्राप्त की होगी। इसी युद्ध के उपरान्त पुलकेशिन ने पल्लव साम्राज्य पर आक्रमण किया था। अतः पल्लवों से उसका युद्ध 617-18 ई० के बहुत बाद में नहीं हुआ होगा। इस विजय के पश्चात् पुलकेशिन ने चोल, पांड्य एवं केरल राज्यों को अपना मित्र बनाया और उनकी समृद्धि में वृद्धि की।

पुलकेशिन द्वितीय की पल्लवों के विरुद्ध यह विजय सम्भवतः निर्णायक नहीं थी। नन्दिवर्मन द्वितीय के कशाक्कुडि अभिलेख के अनुसार कांची से से लगभग 24 कि० मी० की दूरी पर स्थित पुललूर नामक स्थान पर महेन्द्र-

1. आक्रान्तात्मबलोन्नतिव्रलरजस्छन्न-कांचीपुरः।
प्राकारान्तरित-प्रतापमकरोधः पल्लवानाम्पतिम् ॥ (ऐहोल प्रशस्ति)।
2. चोलकेरलपांड्यानां यो भूत्तत्रमहर्द्धये (ऐहोल प्रशस्ति)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्मन प्रथम ने अपने प्रमुख शत्रुओं को पराजित किया था (**पुल्ललूरे द्विषताम-विशेषान्**)। इन शत्रुओं के नाम नहीं वर्णित हैं। कुछ विद्वानों ने इनमें पुलकेशिन द्वितीय को भी शामिल किया है। परन्तु कुछ के अनुसार महेन्द्रवर्मन प्रथम का सर्वप्रमुख शत्रु गंग शासक था। यदि महेन्द्रवर्मन ने पुलकेशिन द्वितीय को पराजित किया होता तो वह उसके नाम का उल्लेख अवश्य करता। कशाक्कुडि अभिलेख के उपर्युक्त अंश में वर्णित महेन्द्रवर्मन के शत्रुओं में पुलकेशिन द्वितीय नहीं शामिल था। सम्भवतः उसने दक्षिण के कुछ छोटे शासकों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की होगी।

ह्वेनसांग का विवरण–641 ई०में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने महाराष्ट्र (मो-हो-ल-च) का भ्रमण किया था। उसने चालुक्य राजा, उसके राज्य, प्रजा तथा सेना आदि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना दी है। उसके अनुसार महाराष्ट्र का शासक पो-ले-के-शे (पुलकेशिन द्वितीय) क्षत्रिय (Tsa-ti-li) जाति का तथा दानशील था। उसके सामन्त स्वामिभक्त थे। उसके राज्य का क्षेत्रफल 5,000 ली (लगभग 1334 कि०मी०) था और उसकी राजधानी के पश्चिम में एक विशाल नदी बहती थी। राजधानी का क्षेत्रफल 30 ली (8 कि०मी०) था और यह भड़ौच से 1,000 ली (लगभग 320 कि०मी०) की दूरी पर स्थित थी[1]। इस राज्य के लोग वीर एवं प्रतिशोधपूर्ण स्वभाव वाले थे। वे अपने शुभचिन्तकों तथा विपत्ति में सहायता करने वालों के प्रति उदार थे और शत्रुओं के अपकार का बदला लेने में निपुण थे। इस राज्य के राजा (की सेना) के हाथी बहुत बहादुरी एवं निर्दयता के साथ शत्रु पर प्रहार करते थे। राजा बहुत योग्य एवं शक्तिशाली था और उसकी आज्ञा उसके सामन्त आदि सभी मानते थे। ऐसे वीर योद्धाओं एवं हाथियों की सशक्त सेना के कारण वह अपने निकटवर्ती राज्यों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता था[2]।

उपाधियां-पुलकेशिन द्वितीय ने सत्याश्रय, वल्लभ, तथा श्रीपृथ्वीवल्लभ के अतिरिक्त महाराजाधिराज, परमेश्वर एवं भट्टारक आदि उपाधियां धारण कीं। लोहनेर अभिलेख में उसे परमभागवत कहा गया है।

कूटनीतिक सम्बन्ध–उसने सम्भवतः फारस के शासक खुसरो परवेज द्वितीय

---

1. नीलकांत शास्त्री के अनुसार इस विवरण में वातापी की ओर संकेत नहीं है। ह्वेनसांग का अभिप्राय सम्भवतः नासिक से रहा होगा जो उस समय बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र था (दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० 205)।
2. Watters, Vol. 2, p. 239.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। फारसी इतिहासकार तबरी (838-923 ई०) के अनुसार भारत के राजा ने अपना एक दूतमंडल फारस के सम्राट खुसरो द्वितीय परवेज के राज्यकाल के 36वें वर्ष (625-26 ई०) में भेजा था। पुलकेशिन का दूतमंडल उसके एक पत्र, एक हाथी तथा अन्य बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं लेकर गया था। इसके बदले में खुसरो ने भी अपना दूतमंडल भारतीय राजा के यहां भेजा होगा, किन्तु तबरी ने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। तबरी ने भारत के शासक का नाम **फरमिस** या **प्रमेश** बतलाया है जो कि **परमेश्वर** का फारसी रूपान्तर प्रतीत होता है।

इस राजा के वास्तविक नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, इसलिए उसकी पहचान के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार **परमेश्वर**, पुलकेशिन द्वितीय का दूसरा नाम था, अतएव कुछ विद्वानों ने तबरी द्वारा वर्णित भारतीय राजा का समीकरण पुलकेशिन द्वितीय से किया है। परन्तु आर०सी० मजूमदार, वी० घोष तथा के० ए० नीलकांत शास्त्री इससे सहमत नहीं है और उनके अनुसार **प्रमेश** या **परमेश्वर** हर्षवर्धन अथवा किसी अन्य समकालीन शासक का नाम रहा होगा। फर्गुसन महोदय के अनुसार इन दूत-मंडलों का चित्रण अजन्ता की गुफा नं० 1 के भित्ति-चित्रों में हुआ है। इस गुफा की छत पर अंकित एक चित्र में खुसरो एवं उसकी पत्नी शीरी का चित्रण है। दूसरे चित्र में पुलकेशिन खुसरों के राजदूत से भेंट करता हुआ दिखलाया गया है। अन्य विद्वान इन समीकरणों से सहमत नहीं हैं।

पल्लवराज्य पर दूसरा आक्रमण तथा पुलकेशिन द्वितीय का अन्त—ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम आक्रमण में पुलकेशिन द्वितीय को पल्लवों के विरुद्ध निर्णायक एवं स्थाई सफलता नहीं मिली और यदि कशाक्कुडि अभिलेख में वर्णित महेन्द्रवर्मन के प्रमुख शत्रुओं में पुलकेशिन द्वितीय भी शामिल था, तो उसे बाद में पराजित भी होना पड़ा था। तथ्य जो भी हो, पुलकेशिन द्वितीय ने महेन्द्र-वर्मन प्रथम के पुत्र एवं उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन प्रथम के राज्यकाल में पल्लव राज्य पर पुनः आक्रमण किया। अनन्तपुर जिले से प्राप्त कुछ अभिलेखों के साक्ष्य के आधार पर नीलकांत शास्त्री की मान्यता है कि पुलकेशिन ने पहले पल्लवों के सामन्त **बाणों** को पराजित किया और इसके पश्चात् पल्लवों पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में पुलकेशिन द्वितीय को मुंह की खानी पड़ी। कूरम अभिलेख के अनुसार नरसिंहवर्मन प्रथम ने परियाल, शूरमार तथा मणि-मंगलम आदि के युद्धों में पुलकेशिन को पराजित किया था। उसकी सेना ने

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शिरुत्तोंडर के नेतृत्व में वातापी पर भी आक्रमण किया। पुलकेशिन द्वितीय युद्ध में पराजित हुआ तथा मारा गया। इस विजय के उपलक्ष में नरसिंहवर्मन ने **वातापीकोंड** (वातापी को जीतने एवं अधिकृत करने वाला) की उपाधि धारण की। एक पल्लव अभिलेख में यह भी वर्णित है कि जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने वातापी (नामक) राक्षस का संहार किया था, उसी प्रकार नरसिंहवर्मन प्रथम ने वातापी (नगर) को नष्ट कर दिया। के०वी० रमेश की यह अवधारणा कि पुलकेशिन द्वितीय ने पल्लव राज्य पर एक ही आक्रमण किया था और यह आक्रमण नरसिंहवर्मन प्रथम के शासन के प्रारम्भ में हुआ था[2], अग्राह्य है। लगभग 32 वर्ष के घटनापूर्ण शासन के बाद 642 ई०[3] में इस महान चालुक्य सम्राट के जीवन का अन्त हुआ और उसकी मृत्यु के समय उसकी राजधानी के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र भी पल्लव सेना के अधीन थे।

पुलकेशिन द्वितीय तथा विक्रमादित्य प्रथम के बीच के अन्तराल में चालुक्य राज्य की अवस्था—पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु 642 ई० में हुई और उसका पुत्र विक्रमादित्य प्रथम 655 ई० में वातापी का राजसिंहासन प्राप्त कर सका। इस 13 वर्ष के अन्तराल का वातापी का इतिहास अस्पष्टता एवं अनिश्चितता के अन्धकार से आच्छादित है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार इस दौरान में नेल्लोर, बेल्लारी, अनन्तपुर तथा कडप्पा ज़िले चालुक्य साम्राज्य से पृथक हो गए थे। पल्लवों ने चालुक्य राज्य को कितने समय तक अपने अधीन रखा, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। वातापी में इस अन्तराल में केवल एक ही पल्लव अभिलेख मिला है जो नरसिंहवर्मन प्रथम के शासन के 13वें वर्ष (642-43 ई०) का है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि पल्लव सम्भवतः अधिक समय तक चालुक्य राज्य में नहीं टिक सके थे।

पुलकेशिन द्वितीय के कई पुत्र थे। विभिन्न साक्ष्यों में वर्णित उसके पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं-आदित्यवर्मन, विक्रमादित्य प्रमथ, चन्द्रादित्य, जयसिंहवर्मन, नेडमरि तथा रणरागवर्मन। इनमें से कम से कम विक्रमादित्य प्रथम, आदित्य-

1. नरसिंहवर्मन प्रथम की चालुक्यों के विरुद्ध विजयों के सन्दर्भ में इन युद्धों का अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है।
2. Chalukyas of Vatapi, p. 89.
3. 643 ई० के विजयराज के कैरा अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि इस तिथि के पहले ही वातापी का विनाश तथा पुलकेशिन के जीवन का अन्त हो गया था। अतः फ्लीट ने इस घटना को 642 ई० में रखा है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्मन एवं चन्द्रादित्य ने स्वतन्त्र शासकों के रूप में अवश्य राज्य किया। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त चालुक्य राज्य में जो राजनैतिक अव्यवस्था व्याप्त हुई थी, उसका लाभ उठाकर न केवल चालुक्यों के सामन्तों ने, वरन् पुलकेशिन द्वितीय के पुत्रों ने भी विभिन्न प्रदेशों में अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करने का प्रयास किया, जिसके परिणाम-स्वरूप चालुक्य साम्राज्य का विभाजन हो गया।

आदित्यवर्मन के राज्यकाल के प्रथम वर्ष के करनूल अभिलेख से, तथा उसके पुत्र अभिनवादित्य के नेलकुंड अभिलेख से प्रमाणित होता है कि पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात् उसका प्रिय एवं ज्येष्ठ पुत्र आदित्यवर्मन राजा हुआ। इन अभिलेखों में आदित्यवर्मन को श्रीपृथ्वीवल्लभ; महाराजाधिराज तथा परमेश्वर की उपाधियों से विभूषित किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि उसने अपने बाहुबल से समस्त भूमंडल के शासकों पर आक्रमण किया था[1]। कल्याणी के चालुक्य शासक सोमेश्वर तृतीय के विक्रमांकाभ्युदय नामक ग्रंथ में वर्णित चालुक्य शासकों की वंशतालिका में भी आदित्यवर्मन को सत्याश्रय (पुलकेशिन द्वितीय) का उत्तराधिकारी कहा गया है। आदित्यवर्मन के करनूल अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसने कम से कम एक वर्ष तक राज्य किया। टी० वी० महालिंगम ने आदित्यवर्मन का समीकरण विक्रमादित्य प्रथम से किया है। परन्तु आभिलेखिक साक्ष्यों से इसका खंडन हो जाता है। दिनेशचन्द्र सरकार की यह अवधारणा कि विक्रमादित्य प्रथम तथा उसके भाई आदित्यवर्मन आदि एक ही समय में चालुक्य राज्य के विभिन्न प्रान्तों में शासन कर रहे थे, तर्क-संगत लगती है।

आदित्यवर्मन के बाद उसका पुत्र अभिनवादित्य राजा हुआ। उसने भी महाराजाधिराज और परमेश्वर की उपाधियां धारण कीं। उसने बहुत कम समय तक शासन किया होगा। उपर्युक्त दोनों राजाओं की किसी उपलब्धि अथवा उनकी शासनावधि आदि का उल्लेख नहीं मिलता। डी० पी० दीक्षित का यह सुझाव कि ये दोनों पल्लवों से लड़ते हुए मारे गए होंगे, अनुमान मात्र है। वास्तव में इन राजाओं के अन्त की परिस्थितियां अभी तक अज्ञात हैं।

महादेवी विजयभट्टारिका द्वारा प्रकाशित नेरुर तथा कोचेरे अभिलेखों में चन्द्रादित्य को विक्रमादित्य का अग्रज बतलाया गया है और उसे श्रीपृथ्वीवल्लभ के अतिरिक्त परमेश्वर, भट्टारक एवं महाराजाधिराज की उपाधियां दी गई हैं।

---

1. स्वभुजबलपराक्रमाक्रान्तसकलमहीमंडलाधिराज्यः.....

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विजयभट्टारिका को महिषी, भट्टारिका तथा महादेवी कहा गया है। इन विरुदों से स्पष्ट है कि वह चन्द्रादित्य की अग्रमहिषी थी। उपर्युक्त अभिलेखों में विजय-भट्टारिका के शासन के वर्षों का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि इनके प्रकाशन के समय चन्द्रादित्य जीवित नहीं था। आर० जी० भंडारकर के अनुसार विजयभट्टारिका के नेरुर अभिलेख में चन्द्रादित्य के राज्य के वर्षों का उल्लेख है। जे० एफ० फ्लीट तथा दिनेशचन्द्र सरकार ने चन्द्रादित्य को सामन्त शासक माना है, क्योंकि उसका नाम विक्रमादित्य प्रथम के बाद वर्णित है और विक्रमादित्य को पुलकेशिन द्वितीय का 'प्रियपुत्र' कहा गया है।

इन मतों में से कोई भी असन्दिग्ध नहीं है। विजयभट्टारिका के अभिलेखों में उसके पति चन्द्रादित्य के शासन के वर्ष का उल्लेख नहीं हुआ है। चन्द्रादित्य ने चूंकि महाराजाधिराज, परमेश्वर एवं भट्टारक आदि विरुद धारण किए थे, इसलिए वह सामन्त शासक नहीं हो सकता। फ्लीट के अनुसार चन्द्रादित्य की मृत्यु के समय उसका पुत्र नाबालिग रहा होगा, अतएव उसकी संरक्षिका के रूप में विजयभट्टारिका ने शासन की बागडोर सम्भाली। इसी दौरान में विक्रमादित्य प्रथम ने अपनी शक्ति बढ़ाकर वातापी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया होगा।

उपर्युक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु तथा विक्रमादित्य प्रथम के राज्यारोहण के बीच के अन्तराल में कई चालुक्य राजकुमारों ने अपने को पुलकेशिन द्वितीय का वैध उत्तराधिकारी होने का दावा किया। यह उल्लेखनीय है कि विक्रमादित्य प्रथम तथा आदित्यवर्मन, दोनों ने ही अपने को पुलकेशिन द्वितीय का प्रियपुत्र कहा है। आदित्यवर्मन को उसका ज्येष्ठ पुत्र तथा चन्द्रादित्य को विक्रमादित्य प्रथम का बड़ा भाई बतलाया गया है। इन सभी शासकों ने न केवल सम्राट-सूचक उपाधियां धारण कीं, वरन् दान-पत्र भी प्रकाशित किए। इससे निःसन्देह उनका राज्य करना प्रमाणित होता है। परन्तु ये राजकुमार एक-एक करके वातापी के शासक हुए, अथवा चालुक्य राज्य के विभिन्न प्रदेशों में उन्होंने स्वतन्त्र शासक के रूप में एक ही समय में राज्य किया, निश्चित रूप से ज्ञात नही। परन्तु यह स्पष्ट है कि 655 ई० में विक्रमादित्य प्रथम के वातापी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के पूर्व उसके अन्य भाइयों एवं भतीजों का राज्यकाल समाप्त हो चुका था। पुलकेशिन द्वितीय के पुत्रों के पारस्परिक सौहार्द अथवा शत्रुता के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती और न यही ज्ञात है कि उन सबने अथवा कुछ ने मिलकर पल्लवों

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा अन्य शत्रुओं का सामना किया था। करनूल अभिलेख में वर्णित **सर्वान्-दायादान् विजित्य** के आधार पर के० वी० रमेश की धारणा है कि विक्रमादित्य ने अपने सभी भाइयों तथा अन्य सम्बन्धियों आदि पर विजय प्राप्त की थी। तथ्य कुछ भी हो, विक्रमादित्य प्रथम के राज्यारोहण के समय से चालुक्यों का इतिहास पुनः मुखरित हो जाता है।

विक्रमादित्य प्रथम—पुलकेशिन् द्वितीय का प्रियपुत्र[1] विक्रमादित्य प्रथम 655 ई०[2] में वातापी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। पुलकेशिन द्वितीय ने विक्रमादित्य प्रथम को सम्भवतः अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था[3]। कुछ ही समय पूर्व ऐहोल से प्राप्त एक तिथि-रहित अभिलेख में विक्रमादित्य प्रथम को युवराज तथा **तत्पादपद्मोपाश्रय-प्रसादोपात्त-श्रीमहीमान-भागी** कहा गया है[4]। उसके राज्यकाल के बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं। चन्द्रादित्य की पत्नी विजयभट्टारिका के नेरूर तथा कोचेरे ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि विक्रमादित्य प्रथम ने कई युद्धों में अनेक शासकों को मार दिया, विभिन्न दिशाओं में विजयें प्राप्त कीं और अपने पूर्वजों के गौरव एवं समृद्धि को पुनः स्थापित किया। इस विवरण की पुनरावृत्ति विक्रमादित्य के अभिलेखों में भी हुई है। इन साक्ष्यों के आधार पर अनुमान किया गया है कि विजयभट्टारिका के राज्यकाल में वह उसका सम्भवतः सेनापति अथवा अन्य उच्चाधिकारी रहा होगा।

विक्रमादित्य के शासन के तीसरे वर्ष के करनूल अभिलेख के अनुसार उसने उन तीन शासकों (**अवनीपतित्रितय**) को पराजित किया जिन्होंने चालुक्यों की

---

1. पम्प कवि के **गदायुद्ध** में तथा कल्याणी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ के कौथेम अभिलेख में विक्रमादित्य को आदित्यवर्मन का पुत्र कहा गया है। परन्तु यह विवरण: स्पष्टतः दोष-युक्त है क्योंकि समकालीन अभिलेखों में उसे पुलकेशिन द्वितीय का पुत्र एवं आदित्यवर्मन का भाई बतलाया गया है।
2. विक्रमादित्य प्रथम का शक संवत् 592 (670 ई०) का होन्नूर अभिलेख उसके शासन के 16वें वर्ष का है तथा शक संवत् 596 (674 ई०) के गदवल एवं सवणूर अभिलेख 20वें वर्ष के। इनसे प्रमाणित होता है कि उसका राज्यारोहण 670-15 तथा 674-19 = 655 ई० में हुआ।
3. Chalukyas of Vatapi, p. 107.
4. वही, p, 101.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

समृद्धि को ग्रसित कर लिया था[1]। यह उपलब्धि उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में भी वर्णित है। इन तीन राजाओं के समीकरण के विषय में विद्वानों में मतैक्य नही है। फ्लीट ने उनकी पहचान पल्लव शासक नरसिंहवर्मन प्रथम, महेन्द्रवर्मन द्वितीय तथा परमेश्वरवर्मन प्रथम से की है। के० वी० रमेश ने इसका समर्थन किया है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार इन राजाओं में विक्रमादित्य प्रथम के भाई आदित्यवर्मन एवं चन्द्रादित्य तथा पल्लव शासक नरसिंहवर्मन प्रथम शामिल थे। विक्रमादित्य प्रथम की उपलब्धियों के सन्दर्भ में विनयादित्य मंगलराज के सूरत अभिलेख में तथा पुलकेशिराज के नवसारी अभिलेख में वर्णित **विजितचेरचोलपांड्यक्रमागतराजत्रय** को उद्धृत करते हुए डी० पी० दीक्षित ने **अवनीपतित्रितय** में यही तीन राज्य (चेर, चोल एवं पांड्य) शामिल किए हैं। इन राज्यों के शासक पल्लवों के मित्र थे और वे पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् नरसिंहवर्मन प्रथम की ओर से चालुक्यों से लड़े थे।

विक्रमादित्य प्रथम के राजा होने के पूर्व अथवा उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में सम्भवतः पल्लव तथा कुछ विद्रोही सामन्त शासक उसके प्रमुख शत्रु रहे होंगे और उन्हें पराजित करने में उसे अपने नाना गंग वंशीय दुर्विनीत से महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई थी।

पैतृक राज्य में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के पश्चात् विक्रमादित्य ने पल्लव राज्य पर आक्रमण किया। 670-71 ई० के होन्नूर अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि वह उस समय कांची के निकट मल्लिपूर ग्राम में अपने शिविर में विद्यमान था। विक्रमादित्य के गदवल, सवणूर तथा अन्य अभिलेखों में पल्लवों के विरुद्ध उसकी विजय का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है–श्रीवल्लभ (विक्रमादित्य प्रथम) ने नरसिंह (नरसिंहवर्मन प्रथम) के यश को नष्ट किया, महेन्द्र (महेन्द्रवर्मन द्वितीय) के शौर्य को समाप्त किया, ईश्वर (परमेश्वरवर्मन प्रथम) के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और कांची पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त रणरसिक (विक्रमादित्य प्रथम) ने महामल्ल (नरसिंहवर्मन प्रथम) को पूर्णरूपेण परास्त कर राजमल्ल का विरुद धारण किया और परिखा एवं प्राकार से

---

1. श्रियमवनिपति- त्रितयान्तरित।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सुरक्षित तथा दुर्लंघ्य कांची को अपने अधीन किया[1]।

674-75 ई० के गदवल अभिलेख के अनुसार विक्रमादित्य ने चोलिक विषय में प्रवेश कर उरगपुर (तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली ज़िले में कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान उरैयूर) में अपना सैनिक-शिविर लगाया और चोलों के अतिरिक्त केरलों एवं पांड्यों को भी पराजित किया था। इसी वर्ष उरगपुर में स्थित उसके विजय-स्कन्धावार से सवणूर दानपत्र भी प्रकाशित हुए थे। विक्रमादित्य की इन विजयों का विवरण लाट के चालुक्य शासकों के अभिलेखों में भी प्राप्त होता है। इन अभिलेखों की तिथियों से प्रमाणित होता है कि उसने 670-71 ई० में पल्लवों को पराजित किया और चोल, पांड्य एवं केरल राज्यों पर 674-75 ई० के पहले विजयें प्राप्त की थीं। इस प्रकार श्रीवल्लभ (विक्रमादित्य प्रथम) ने दक्षिण दिशा की देवी को बलपूर्वक ग्रहण कर अपना नाम सार्थक कर दिया था। विक्रमादित्य प्रथम के अलम (आन्ध्र राज्य में) से प्राप्त अभिलेख के अनुसार कांची के (पल्लव) शासक ने उसकी चरण-वन्दना की और केरल, पांड्य तथा चोल राज्यों के नृपतियों के अतिरिक्त सिंहल के राजा ने भी उसका प्रभुत्व स्वीकार किया था[2]।

परमेश्वरवर्मन प्रथम के कूरम ताम्रपत्रों के अनुसार उसने चालुक्यों की कई लाख सैनिकों वाली शक्तिशाली सेना को पराजित कर चालुक्य शासक (विक्रमादित्य प्रथम) को चिथड़े लपेट कर युद्ध के मैदान से भागने के लिए विवश किया था।[3] परवर्ती पल्लव अभिलेखों में भी वर्णित है कि परमेश्वरवर्मन प्रथम ने पेरुवडनल्लूर (तिरुचिरापल्ली ज़िले की लडिगुडि तालुक में) के युद्ध में वल्लभ (विक्रमादित्य प्रथम) की सेना को परास्त कर दिया, रणरसिक की सेना के पंक को सुखा दिया तथा चालुक्यों की राजधानी को सन्त्रस्त किया था।

---

1. मृदित-नरसिंह-यशसा विहित-महेन्द्र-प्रताप विलयेन।
नयन-विजितेश्वरेण प्रभुणा श्रीवल्लभेन जितम्॥
यो राजमल्लशब्द-विहित-महामल्ल-कुलनाशः।
अग्राहिमेवेनजयतेश्वर-पोतराजं कांचीव-दर्पणदिशः क्षितिपन कांची।
दुर्लंघ्य-दुष्कर-विभेदविशाल-साला दुर्गाधिदुस्तरबृहत्परिखा परीता।
अग्राहियेन जयतेश्वर-पोतराजं कांचीवदक्षिणदिशा क्षितिपेन कांची॥
2. सिंहलैः केरलैः चोलैः पांड्य-पल्लव-वंशजैः।
सेव्यमानश्चिरं रेजे राजा धर्म-यशः परः॥
3. विक्रमादित्य-कप्पट (कर्पट)-मात्रपरिच्छदम् एकाकी पलायितमकृति।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पल्लवों एवं चालुक्यों के अभिलेखों के उपर्युक्त परस्पर-विरोधी विवरणों में सामन्जस्य स्थापित करना कठिन है। पेरियपुराणम नामक तमिल काव्य के अनुसार पल्लव सेनानायक परंजोति अपरनाम शिरुत्तोंडर ने वातापी पर आक्रमण किया और इस अभियान में प्राप्त सफलता के परिणामस्वरूप शत्रु की बहुत सी धन-सम्पत्ति अपहृत कर उसने अपने स्वामी को भेंट की थी। परन्तु इस पल्लव अधिराट के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। कुछ विद्वानो ने उसकी पहचान नरसिंहवर्मन प्रथम से की है। के०ए०नीलकान्त शास्त्री ने उसे परमेश्वर-वर्मन प्रथम माना है। अन्य विद्वानों की मान्यता है कि जब विक्रमादित्य ने पल्लव राज्य पर आक्रमण किया, तो परमेश्वरवर्मन प्रथम ने चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध के दो मोर्चे बनाने के उद्देश्य से शिरुत्तोंडर के नेतृत्व में अपनी एक सेना वातापी भेजी जिसे विक्रमादित्य प्रथम के पौत्र विजयादित्य ने पराजित कर दिया था। यह भी सुझाव दिया गया है कि परमेश्वरवर्मन ने पांड्य शासक कोच्चडैय्यन की सहायता से चालुक्यों को अपने राज्य से भगा दिया था। वैष्णव सन्त तिरुमंगै आलवार ने नांगूर (तंजौर ज़िलेमे) के सैनिकों द्वारा पांड्यों तथा उत्तर के शासक पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख किया है। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार नांगूर के सैनिक पल्लवों की ओर से लड़े थे और उत्तर का शासक विक्रमादित्य प्रथम रहा होगा जो पेरुवडनल्लूर के युद्ध में परा-जित हुआ था। उनकी यह भी मान्यता है कि पांड्य शासक अरिकेसरि मारवर्मन विक्रमादित्य की ओर से लड़ा तथा पराजित हुआ था। उपर्युक्त मतों में से कोई भी स्पष्ट साक्ष्य पर आधारित नहीं है। किन्तु यह सम्भावित है कि अन्ततोगत्वा परमेश्वरवर्मन प्रथम को चालुक्यों के विरुद्ध कुछ सफलता प्राप्त हुई।

विक्रमादित्य को उसके पुत्र विनयादित्य तथा पौत्र विजयादित्य ने काफी सहयोग दिया था और जब वह दक्षिण के राज्यों की विजय के लिए गया था, उस दौरान में विजयादित्य ने अपने राज्य एवं राजधानी की सुरक्षा के उत्तर-दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया था[1]। विक्रमादित्य के छोटे भाई जयसिंहवर्मन

---

1. दक्षिणाशा विजयिनि पितामहे समुन्मूलित-निखिल-कंटक संहतिः।
अलमपुर से हाल में प्राप्त एक अन्य अभिलेख में इसका अधिक स्पष्ट शब्दों में उल्लेख हुआ है—त्रैराज्य-पल्लवं जेतुं प्रयाते स्वपितामहे।
तदाज्ञा-स्वराज्यं यः प्रारक्षद्ध्वंसित-द्विषं॥
(Chalukyas of Vatapi, pp. 123-124)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने भी उसे सक्रिय सहायता दी थी। अतः उसने जयसिंहवर्मन को 669–70 ई० के लगभग नासिक तथा गुजरात का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था।

बाण वंशीय शासक पोर्मुखराम विक्रमादित्य का सामन्त था। मालयपाडु से प्राप्त एक प्रस्तर-अभिलेख से प्रमाणित होता है कि रेनांडु के तेलुगुचोड पल्लवों के स्थान पर अब चालुक्यों के सामन्त हो गए थे। गंगवाड़ी के गंग उसके मित्र एवं सम्बन्धी थे। दुर्विनीत के उत्तराधिकारी भुविविक्रम ने कर्नाटक के विलिन्द नामक स्थान पर पल्लव शासक को पराजित करने का दावा किया है।

विक्रमादित्य प्रथम ने श्रीपृथ्वीवल्लभ, सत्याश्रय, महाराजाधिराज, भट्टारक, परमेश्वर, अनिवारित तथा राजमल्ल की उपाधियां धारण कीं। उसे परममाहेश्वर भी कहा गया है, जिससे उसकी शिव-भक्ति प्रमाणित होती है। उसने गुरु-जनों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों को दान दिए एवं देवताओं और ब्राह्मणों को दिए गए उन दानों को पुनःजारी कर दिया जो उसके राजा होने के पहले अराजकता के अन्तराल में स्थगित कर दिए गए थे। विक्रमादित्य ने उत्तर में गुजरात, लाट, मालवा तथा नर्मदा नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया। पश्चिम में अधिकांश समुद्रतटीय-क्षेत्र उसके अधीन थे और दक्षिण में उसने पल्लवों की राजधानी कांची तक दिग्विजय की थी। बाद के चालुक्य अभिलेखों में उसे कलभ्रों आदि पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है और बतलाया गया है कि उसने तीन समुद्रों से परिवेष्टित पृथ्वी पर शासन किया। चित्रकंठ नामक घोड़े ने उसकी विजयों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। डिम्बगुडि प्रस्तर-अभिलेख विक्रमादित्य के राज्य के 27 वें वर्ष का है। इससे प्रमाणित होता कि उसने कम से कम 27 वर्ष तक राज्य किया और उसके शासन का अन्त लगभग 682[1] ई० में हुआ।

विनयादित्य–विक्रमादित्य प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र विनयादित्य राजा हुआ। अपने पिता के शासनकाल में ही वह युवराज नियुक्त कर दिया गया था। हाल ही में तेम्भुर्णि (शोलापुर ज़िले में) नामक स्थान से प्राप्त विक्रमादित्य प्रथम के 672 ई० के दो ताम्रपत्रों में **युवराज** विनयादित्य द्वारा दिए गए दानों का विवरण है। विक्रमादित्य की दक्षिण भारत की विजयों के दौरान विनयादित्य निरन्तर उसके साथ रहा और पल्लवों आदि से हुए संघर्षों में उसने सक्रिय भाग लिया था। विक्रमादित्य की अनुपस्थिति में सम्भवतः उसने भी अपने पुत्र विजयादित्य के साथ शिरुत्तोंडर के नेतृत्व में भेजी गई पल्लव-सेना

1. फ्लीट के अनुसार उसके राज्यकाल का अन्त 680 ई० में हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को पराजित कर अपने राज्य एवं राजधानी की सुरक्षा की थी।

शक संवत् 604 (682 ई०) का हैदराबाद अभिलेख उसके शासन के द्वितीय वर्ष का है। इससे प्रमाणित होता है कि वह 681[1] ई० में राजा हुआ। विनयादित्य की विजयों के विवरण उसके राज्यकाल के अभिलेखों के अतिरिक्त परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में भी प्राप्त होते हैं। परन्तु इनमें से अधिकांश में उसकी युवराजत्व के समय की उपलब्धियों का ही मुख्यतः वर्णन है। इन साक्ष्यों के अनुसार उसने **त्रैराज्यपल्लवपति,** कलभ्रों, केरलों, पांड्यों, चोलों, विलों, मालवों और हैहयों को हराया। मूसक, लाट, काम्ब, स्त्रीराज्य तथा **सकलोत्तरापथनाथ** के विरुद्ध विजयें प्राप्त कीं और कमेर (कवेर), पारसीक तथा सिंहलद्वीप से कर वसूल किए।[2] कोल्हापुर अभिलेख के अनुसार कलिंगकेति (कलिंग के शासक) द्वारा प्रार्थना करने पर विनयादित्य ने कुछ भूमि दान में दी थी। इन दिग्विजय अभियानों में चालुक्यों के सामन्त आलुप तथा गंग वंशीय शासकों ने विनयादित्य की सहायता की थी। उपर्युक्त राज्यों में **त्रैराज्य-पल्लवपति, सकलोत्तरापथनाथ**, कलभ्र, विल, मूसक, स्त्री-राज्य तथा कमेर (कवेर) के समीकरण विवादास्पद एवं अनिश्चित हैं। फ्लीट, कीलहॉर्न, कृष्ण शास्त्री तथा हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार **त्रैराज्य** का प्रयोग चोल, पांड्य तथा केरल राज्यों के लिए हुआ है। रायचौधरी का अनुमान है कि ये तीनों राज्य उस समय पल्लव शासक परमेश्वरवर्मन प्रथम के अधीन थे। डुब्रील ने त्रैराज्य में पल्लवों, पांड्यों तथा सिंहल के शासक मानवर्मन को शामिल किया है। दिनेशचन्द्र सरकार ने मालवों की पहचान मलनाडु से की है। किन्तु के० वी० रमेश के अनुसार मालवों का शासक वज्रट था और उसी को **सकलोत्तर-रापथनाथ** कहा गया है। मूसक को मूलक या मूसी नदी का तटवर्ती राज्य माना गया है। काम्ब सम्भवतः गुंटूर जिले का कम्मराष्ट्र था।

कमेर या कवेर के पाठ के विषय में भी मत-भिन्नता है। बी० एल०राइस ने इसे कावेरी नदी की घाटी का कवेरद्वीप माना है। परन्तु बी० ए० सैलेटोर

---

1. जेजुरि तथा तोगर्चेडु अभिलेखों के साक्ष्य के अनुसार विनयादित्य के राज्यकाल का प्रारम्भ 18 जुलाई, 678 तथा 2 जुलाई, 679 ई० के बीच हुआ। इन दो-तीन वर्ष के अन्तर का कारण निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार वह 678-79 के बीच सम्भवतः युवराज नियुक्त किया गया होगा और 681 ई० में राजा हुआ।
2. करदीकृतकामेर-पारसीक-सिंहलादि-द्वीपादिपस्य।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा के० वी० रमेश ने इसे कमेर पढ़ा है और इसका समीकरण कम्बोडिया के खमेर-क्षेत्र से किया है।

कुछ विद्वानों ने कलभ्रों (कलवारों ?) को विदेशी माना है और कुछ के अनुसार वे उत्तर भारत या दक्षिणापथ की एक लड़ाकू जनजाति के लोग थे। अन्य विद्वान उन्हें कर्नाटक के श्रवणगोला अथवा वेंगडम (तिरुपति) का निवासी मानते हैं[1]।

पारसीकों की पहचान भी काफी विवादास्पद है। बी०एल०राइस ने उनका एकीकरण पल्लवों से किया है। उन्हें श्रीलंका अथवा दक्षिण भारत के सीमावर्ती किसी अन्य द्वीप का निवासी भी माना गया है। कुछ विद्वानों की अवधारणा है कि उक्त सन्दर्भ में पारसीकों का अभिप्राय महाराष्ट्र के ठाणा ज़िले के संजन क्षेत्र में बसे हुए ईरान के लोगों से है।

उपर्युक्त सभी मत मुख्यतः अनुमान अथवा सन्दिग्ध साक्ष्यों पर आधारित हैं, अतएव इन्हें स्वीकार करना कठिन है। चूंकि लाटों तथा गुर्जरों के साथ मालवों ने भी पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार की थी, और वे विक्रमादित्य प्रथम का प्रभुत्व मानते रहे, इसलिए मालवों का यहां उल्लेख मालवा क्षेत्र के लिए ही हुआ है। इस राज्य के शासक ने विनयादित्य के राज्यकाल में चालुक्यों के विरुद्ध विद्रोह किया होगा और विनयादित्य ने उसे परास्त कर दिया। कमेर, स्त्रीराज्य तथा विलों की पहचान अनिश्चित है।

बी० ए० सैलेटोर के अनुसार विनयादित्य की पल्लव शासक तथा तीन तमिल राज्यों की विजय के परिणामस्वरूप, सिंहल के शासक मानवर्मन ने पल्लवों के स्थान पर चालुक्यों को अपना अधिपति मान लिया था। दिनेशचन्द्र सरकार का अनुमान है कि विनयादित्य ने मानवर्मन के प्रतिद्वन्दी की सहायता की होगी। तथ्य जो भी हो, श्रीलंका की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति[2] को देखते हुए यह विश्वास किया जा सकता है कि विनयादित्य ने वहां की राजनीति में

---

1. JNSI, Vol XLV (1980), pp.18–20; Journal of the Epigraphical Society of India, Vol.X (1983), pp. 120–124.
2. श्रीलंका में उस समय राजनैतिक उथल-पुथल एवं उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध हो रहे थे और वहां के शासक मानवर्मन ने दो बार पल्लव नरसिंहवर्मन प्रथम के यहां शरण ली थी अन्त में पल्लव शासक की सहायता से ही वह अपना राज्य प्राप्त कर सका था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किसी रूप में हस्तक्षेप कर इसे प्रभावित किया होगा।

पारसीक का प्रयोग सम्भवतः ईरान के लिए हुआ है कि क्योंकि इसके साथ सिंहल एवं कमेर का भी उल्लेख हुआ है। पुलकेशिन द्वितीय तथा ईरानी सम्राट खुसरो परवेज़ द्वितीय के बीच दूत-मंडलों का आदान-प्रदान हुआ था। सम्भव है कि विनयादित्य के शासनकाल में भी चालुक्यों के ईरानी शासक के साथ इसी प्रकार के सम्बन्ध रहे हों जिन्हें चालुक्यों के प्रशस्तिकार ने बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया।

विजयादित्य, विक्रमादित्य द्वितीय तथा कीर्तिवर्मन द्वितीय के अभिलेखों में विनयादित्य द्वारा उत्तर भारत पर किए गए आक्रमण एवं इसमें प्राप्त सफलता का विवरण प्राप्त होता है। इस अभियान में उसके पुत्र विजयादित्य ने भी सक्रिय भाग लिया था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख विजयादित्य के शासन के प्रथम वर्ष के शक संवत् 619 के सिरसि अभिलेख में हुआ है और परवर्ती काल के अनेक अभिलेखों में इसकी पुनरावृत्ति हुई है। इन साक्ष्यों के अनुसार विनयादित्य ने सम्पूर्ण उत्तर भारत के शासक को पराजित कर पालिध्वज तथा अन्य समस्त प्रभुसत्ता के चिन्ह प्राप्त कर लिए थे। विजयादित्य ने शत्रुओं के हाथियों पर प्रहार किए तथा शत्रुओं को पराजित कर गंगा-यमुना की आकृतियां, पालिध्वज, पंचमहाशब्द, पद्यरागमणि एवं हाथी आदि अपहृत कर अपने पिता को भेंट किए थे[1]।

उपर्युक्त विवरण अस्पष्ट तथा अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होता है। विनयादित्य द्वारा पराजित सम्पूर्ण उत्तर भारत के राजा के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, इसलिए उसके समीकरण के विषय में काफी मतभेद है। सी० वी० वैद्य तथा आर० सी० मजूमदार के अनुसार सम्पूर्ण उत्तर भारत का सम्राट कन्नौज का शासक यशोवर्मन था। के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा के० वी० रमेश ने उसकी पहचान वज्रट नामक राजा से की है। हेमचन्द्र रायचौधरी ने उसे मगध का उत्तर-गुप्त वंशीय आदित्यसेन अथवा उसका पुत्र देवगुप्त माना है।

इन मतों में से कोई भी तर्कसंगत नहीं है। यशोवर्मन के राज्यकाल का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्तिम भाग में हुआ था[2], अतः उसे विनयादित्य का समकालीन नहीं माना जा सकता। लाट के चालुक्य शासक

1. सकलोत्तरापथनाथ - मथनोपार्जितोर्ज्जित - पालिध्वजादि - समस्तपरमैश्वर्य-चिन्हस्य।
2. Mishra, S.M, Yasovarman of Kanauj, pp.64–65.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जयसिंहवर्मन द्वारा वज्रट नामक शासक की पराजय का उल्लेख 685 ई० के आस-पास के अभिलेखों में हुआ है, जबकि विनयादित्य का उत्तर भारत के शासक से 696 ई०[1] के लगभग युद्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त, वज्रट के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिली है, इसलिए उसके लिए सम्पूर्ण उत्तर भारत के सम्राट की उपाधि सर्वथा अनुपयुक्त है। सातवीं शती के उत्तरार्ध में आदित्यसेन उत्तर भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था और उसके द्वारा स्थापित विस्तृत साम्राज्य उसके पुत्र देवगुप्त को उत्तराधिकार में मिला था। देवगुप्त विनयादित्य का समकालीन रहा होगा, परन्तु दक्षिण भारत के राजा के साथ हुए उसके किसी युद्ध अथवा पराजय आदि के विषय में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सूचना नहीं मिलती। यह भी उल्लेखनीय है कि विनयादित्य के राज्यकाल के अभिलेखों में इस आक्रमण का उल्लेख नहीं किया गया है। सम्भव है कि उसने उत्तर भारत के एक या एक से अधिक शासकों को पराजित किया हो। यदि उसने उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली शासक के विरुद्ध सफलता प्राप्त की होती, तो पराजित राजा के नाम का उल्लेख अवश्य किया गया होता, जैसा कि पुलेकेशिन द्वितीय तथा अन्य चालुक्य शासकों के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रमाणित होता है।

विनयादित्य के राज्यकाल में भी सेन्द्रक एवं आलुप चालुक्यों के सामन्त बने रहे। उसके पुत्र विजयादित्य ने उसे प्रशासन-कार्य में काफी सहयोग दिया। विनयादित्य के अभिलेखों में उसके द्वारा ब्राह्मणों तथा जैनों आदि को दिए गए भूमि-दानों के विवरण हैं। उसने श्रीपृथ्वीवल्लभ, सत्याश्रय, महाराजाधिराज, परमेश्वर, भट्टारक, राजाश्रय तथा युद्धमल्ल की उपाधियां धारण कीं। गदायुद्ध में उसे दुर्धरमल्ल कहा गया है। उसके अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से प्रतीत होता है कि उसने न केवल उत्तराधिकार में प्राप्त विस्तृत साम्राज्य को सुरक्षित रखा, वरन् उसका विस्तार भी किया। विनयादित्य अपने राज्य का दौरा किया करता था और विभिन्न स्थानों पर शिविर लगाता था। पम्पातीर्थ में लगे उसके इसी प्रकार के एक शिविर का उल्लेख हुआ है। उसकी रानी विनयवती अपने पति की मृत्यु के बाद जीवित रही और उसने वातापी में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की मूर्तियों की स्थापना की। विनयादित्य की पुत्री कुम्कुम महादेवी ने गुडिगेरि में आनेसेज्जेवसदि नामक एक जैन-मन्दिर का निर्माण कराया था। कुम्कुम महादेवी का विवाह आलुप वंशीय राजा के साथ हुआ था। कुछ विद्वानों

1. Yasovarman of Kanauj, pp. 87–88.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के अनुसार कर्नूल ज़िले में महानन्दीश्वर नामक मन्दिर का निर्माण विनयादित्य के ही शासन काल में हुआ था। विजयादित्य के राज्यकाल के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि विनयादित्य की मृत्यु या तो उत्तर भारत के अभियान के दौरान में ही हो गई थी अथवा उत्तर भारत से वापस आने के कुछ ही समय के बाद। उसके राज्यकाल का अन्त 696 ई० के आस-पास हुआ।

विजयादित्य–विनयादित्य के पश्चात् विनयवती से उत्पन्न उसका प्रिय पुत्र विजयादित्य राजा हुआ[1]। विनयादित्य के करनूल अभिलेख से प्रमाणित होता है कि वह शक संवत् 613 (691 ई०[2]) के पूर्व ही युवराज नियुक्त कर दिया गया था और अपने पितामह विक्रमादित्य प्रथम एवं पिता विनयादित्य-दोनों के राज्यकाल में सैनिक तथा प्रशासन सम्बन्धी कार्यों से सम्बद्ध रहा। उसने बचपन में शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया और अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का अभ्यास किया (शैशव-एवधिगता शेषास्त्रशास्त्रो)। वातापी के चालुक्य शासकों में विजयादित्य के राज्यकाल के सर्वाधिक अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनकी संख्या लगभग 40 है। ये उसके शासन के प्रथम वर्ष से लेकर छत्तीसवें वर्ष तक के हैं।

शक संवत् 619 का जम्मलगाम अभिलेख उसके राज्यकाल के प्रथम वर्ष है। इस प्रकार वह 619 + 78 = 696–97 ई० में राजा हुआ। 703 ई० के रायगढ़ अभिलेख में वर्णित है कि वह अपने पिता विनयादित्य के साथ उत्तर भारत के अभियान में गया था और शत्रुओं को पराजित कर उसने गंगा-यमुना की आकृतियां, पद्मरागमणि तथा पालिध्वज आदि प्रभुसत्ता के चिन्ह अपहृत कर विनयादित्य को भेंट किए थे। परन्तु या तो इसी आक्रमण के दौरान या इसके कुछ ही समय बाद विनयादित्य की मृत्यु हो गई थी। किस स्थान पर तथा किन परिस्थितियों में उसके जीवन का अन्त हुआ, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इसी आक्रमण में विजयादित्य पराजित शत्रुओं द्वारा, किन्हीं परिस्थितियों में फंसकर बन्दी बना लिया गया था, किन्तु बाद में अपने बाहुबल से उसने अपने को

---

1. के० वी० रमेश के अनुसार विजयादित्य के अतिरिक्त विनयादित्य का लोकादित्य नामक एक अन्य पुत्र भी था जिसका उल्लेख अलमपुर अभिलेख में हुआ है। इस अभिलेख में लोकादित्य को **एला-अरस** अर्थात् युवराज कहा गया है और उसके द्वारा निर्मित मन्दिर का उल्लेख है।
2. नन्दिमथ के अनुसार वह 692 ई० में युवराज नियुक्त किया गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बन्धनमुक्त कर लिया[1]।

राजा होने के पश्चात् विजयादित्य का पल्लवों से युद्ध हुआ। उसके शासन के 35वें वर्ष के उलचला अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उसने अपने पुत्र युवराज विक्रमादित्य द्वितीय को कांची पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। विक्रमादित्य ने पल्लव शासक परमेश्वरवर्मन द्वितीय को पराजित कर उससे कर वसूल किया।

वातापी के चालुक्य शासकों में विजयादित्य ने सबसे अधिक समय तक शासन किया और पल्लवों से युद्ध के अतिरिक्त उसका राज्यकाल मुख्यतः शान्ति-पूर्ण रहा। उसके सामन्तों में आलुप, गंग, सेन्द्रक, वाण तथा रेनाडु के तेलुगु-चोडों के अतिरिक्त नरेन्द्रादित्य, भूपादित्य तथा उपेन्द्र नामक शासकों के नाम वर्णित हैं। आलुप वंशीय शासक विजयादित्य का सम्बन्धी भी था और चालुक्य सम्राट ने उसे बनवासी तथा इसके आस-पास के क्षेत्र का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था। लाट का प्रान्तीय शासक विनयादित्य मंगलराज था।

विजयादित्य ने वास्तुकला को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया। पट्टदकल में उसने विजयेश्वर नाम के शिव के एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया (स्थापितो महाशैल-प्रासादश्श्रीविजयेश्वर-भट्टारक)। बाद में सम्भवतः कीर्ति-वर्मन द्वितीय के राज्य में इसका नाम संगमेश्वर रखा गया, क्योंकि कीर्तिवर्मन द्वितीय का पट्टदकल अभिलेख हर-गौरी संगम की स्तुति से प्रारम्भ होता है। उसके शासनकाल में निर्मित स्मारकों में यह मन्दिर सर्वाधिक भव्य था। शक संवत् 636 के अलमपुर अभिलेख में वर्णित है कि विजयादित्य की आज्ञा से ईशानाचार्य ने अलमपुर में स्थित एक शिव-मन्दिर के प्राकार का निर्माण कराया था। विजयादित्य के वातापी अभिलेख में बतलाया गया है कि उसकी जननी विनयवती ने वातापी में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर (शिव) की मूर्तियों की

1. इस घटना का विवरण इस प्रकार है–(उत्तर भारतीय अभियान में) भागते हुए शत्रुओं ने विजयादित्य को बन्दी बना लिया और अपने साथ उसे लें गए क्योंकि ईश्वर की यही इच्छा थी। बाद में उसने बिना किसी की सहायता के अपने को मुक्त कर लिया और प्रजा में व्याप्त अराजकता को समाप्त कर दिया, जो सम्भवतः उसकी अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो गई थी–पलायमानैरासाद्य कथमपि विधिवशादपनीतोपि प्रतापादेव-विषय-प्रकोपम.....अनपेक्षिता-पर-सहायकस्तदहान्निर्गत्य (EI, Vol. XXXIV, pp 313 ff.)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्थापना कराई। बन्निकोप अभिलेख में विजयादित्य के राज्यकाल में नन्दीश्वर की मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख है। उसकी बहिन कुम्कुमदेवी ने लक्ष्मेश्वर में आनेसेज्जेय वसदि नामक जैन-मन्दिर का निर्माण कराया था। विजयादित्य ने स्वयं भी जैन-धर्म को संरक्षण प्रदान किया और पुलिगेरे में स्थित शंखजिनेन्द्र के मन्दिर को एक ग्राम दान में दिया। उसने कुछ जैन आचार्यों को भी दान दिए। इस प्रकार प्रकार विजयादित्य की धार्मिक सहिष्णुता के कारण उसके राज्यकाल में ब्राह्मण तथा जैन, दोनों धर्मों को पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त हुआ। महाकूटविनमोटि (वीणा पोटिगल) नामक एक गणिका को विजयादित्य की प्राणवल्लभा कहा गया है और उसके द्वारा सम्पन्न किए गए हिरण्यगर्भ महा-दान तथा अनेक बहुमूल्य वस्तुओं के दान का विवरण है। पट्टदकल से प्राप्त तिथि-रहित एक अभिलेख में लोकपालेश्वर-मन्दिर में अनन्तगुण की प्रतिमा को दिए गए पिता तथा पुत्र के एक सम्मिलित दान का उल्लेख है। विजयादित्य की संगीत में भी अभिरुचि थी और उसने पट्टदकल के संगीतज्ञों को दान दिया था। 730 ई० के लक्ष्मेश्वर से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार उसने अपने पिता विनयादित्य के गुरु उदयदेव पंडित को करदम नामक एक ग्राम दान में दिया था। अलमपुर अभिलेख के अनुसार उसने निर्धन, अनाथ तथा रोगी व्यक्तियों के लिए सत्र एवं चिकित्सालय स्थापित कराए तथा (सिंचाई) आदि के लिए तड़ागों का निर्माण कराया[1]।

विजयादित्य का राज्य उत्तर में गुजरात तथा लाट तक विस्तृत था और दक्षिण में पल्लव राज्य की सीमा तक। वह प्रशासन-कार्य में बहुत रुचि लेता था। उसके अभिलेखों में उसके कई शिविरों के उल्लेख हैं। अपने राज्यकाल के दसवें वर्ष में वह एलापुर (एलोरा) में लगे एक शिविर में विद्यमान था। 22वें वर्ष में वह हलमपुर तथा 34वें वर्ष में लक्ष्मेश्वर के स्कन्धावारों में मौजूद था। यह उल्लेखनीय है कि उसके शासन के दसवें तथा 23वें वर्ष के बीच के अन्तराल में उसका कोई अभिलेख नहीं मिला है।

विजयादित्य ने श्रीपृथ्वीवल्लभ, सत्याश्रय, महाराजाधिराज, परमेश्वर, भट्टारक, समस्तभुवनाश्रय तथा साहसरसिक नामक उपाधियां धारण कीं।

1. स्थाने-स्थाने च सत्राणि दरिद्रानाथ-क्षिप्तये।
पशूनां रोग-तप्तानां प्रीत्या चास्थापयन्नृपः॥
.....
तटाका बहवस्तेन देशे-देशे च कारिताः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसे शक्तित्रय का स्वामी, शत्रुओं का मान-मर्दन करने वाला, दानशील एवं निर्मल चरित्र वाला शासक बतलाया गया है। उसने कम से कम 36 वर्ष तक शासन किया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी विक्रमादित्य द्वितीय के शक संवत् 656 (734 ई०) का लक्ष्मेश्वर अभिलेख उसके शासन के द्वितीय वर्ष का है। इससे प्रमाणित होता है कि विजयादित्य ने 733 ई० तक शासन किया।

विक्रमादित्य द्वितीय–विजयादित्य के पश्चात् उसका पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय राजा हुआ। शक संवत् 632 (710 ई०) के विजयादित्य के सतारा अभिलेख से प्रमाणित होता है कि इस तिथि के पहले ही विक्रमादित्य युवराज नियुक्त कर दिया गया था। युवराज की हैसियत से ही उसने पल्लव राज्य के विरुद्ध भेजी गई चालुक्य सेना का नेतृत्व किया था और इस अभियान में पूर्ण सफलता प्राप्त की। शक संवत् 656 का लक्ष्मेश्वर अभिलेख विक्रमादित्य द्वितीय के राज्यकाल के द्वितीय वर्ष का है। अतः वह 656 + 78 = 734—1 = 733 ई० में राजा हुआ। इस तिथि का समर्थन शक संवत् 664 (741–42 ई०) के नखण अभिलेख में से भी हो जाता है जो उसके शासन के आठवें वर्ष का है।

विक्रमादित्य के राज्यकाल के बहुत से अभिलेख मिले हैं। उसके शासन के प्रारम्भिक भाग में अरबों का भयंकर आक्रमण हुआ था जिसका विवरण लाट के प्रान्तीय शासक पुलकेशिराज के कलचुरि संवत् 490 (738-39 ई०) के नवसारी अभिलेख में प्राप्त होता है। इस अभिलेख में अरबों को **ताज्जिक** कहा गया है और बतलाया गया है कि सैन्धवों, कच्छेलों (कच्छ का रणक्षेत्र), सौराष्ट्रों (काठियावाड़ के शासक), चावोटकों (सम्भवतः चाप), मौर्यों तथा गुर्जरों (मन्डोर एवं नान्दीपुरी के गुर्जर-प्रतीहार) को आक्रान्त एवं पराजित करने के पश्चात् वे दक्षिणापथ के शासकों पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से नवसारी तक पहुंच गए थे[1]। परन्तु पुलकेशिराज ने उन्हें परास्त कर वापस लौटने के लिए बाध्य कर दिया। इस उपलब्धि से प्रसन्न होकर उसके अधिराट विक्रमादित्य द्वितीय ने उसे दक्षिणापथ का रक्षक (दक्षिणापथ-स्वाधारण), चालुक्य कुल का आभूषण (चालुक्यकुलालंकार), पृथ्वीवल्लभ तथा अजेय पर

1. तरलतरतारतरवारिदारि(तोदित)-सैन्धवकच्छेल्लसौराष्ट्र (चा)-बोटक-मौर्यगूर्ज्जरा(दि रा)जे(निःशेषदक्षिणात्यक्षितिपतिजि(गी)षयादक्षिणापथ प्रवेशाभिलाषिणि····नवसारिकविषयप्रसाधनायागते
(CII, Vol. IV, Part I p. 141)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विजय प्राप्त करने वाला (अनिवर्तकनिवर्तयित्रि) नामक उपाधियों से विभूषित किया। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस विजय का सम्पूर्ण श्रेय पुलकेशिराज ने स्वयं लिया और उपर्युक्त उपाधियां देने के अतिरिक्त विक्रमादित्य द्वितीय के विषय में इस सन्दर्भ में और कुछ नहीं कहा गया है। अरबों का यह आक्रमण 738-39 ई० के कुछ ही समय पहले हुआ होगा।

नखण (रत्नागिरि ज़िले में) नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख में विक्रमादित्य द्वारा पल्लव राज्य पर किए गए आक्रमण का वर्णन है। इसकी पुष्टि कीर्तिवर्मन द्वितीय के केन्दूर तथा वक्कलेरि अभिलेखों द्वारा भी हुई है। विक्रमादित्य की रानी लोकमहादेवी के पट्टदकल अभिलेख के अनुसार उसने (विक्रमादित्य द्वितीय ने) तीन वार कांची पर विजय प्राप्त की थी। नरवण तथा केन्दूर अभिलेखों में बतलाया गया है कि राज्यारोहण के पश्चात् विक्रमादित्य ने सर्वप्रथम अपने स्वाभाविक एवं वंशानुगत शत्रु, पल्लवों का विनाश करने का निश्चय किया। तुंडाक प्रदेश से होता हुआ वह पल्लव राज्य में पहुंचा और नन्दिपोतवर्मन (नन्दिवर्मन पल्लवमल्ल) को पराजित कर दिया[1]। इस युद्ध में उसने अपने शत्रुओं के बहुत से हाथी, बहुमूल्य रत्न एवं मणियां, कटुमुखवादित और समुद्रघोष से युक्त ध्वज अपहृत कर लिए थे। कांची पर अधिकार स्थापित करने के उपरान्त विक्रमादित्य ने वहां तोड़-फोड़ नहीं की, वरन् ब्राह्मणों तथा निर्धनों को दान दिए। उसने कांची में नरसिंहपोतवर्मन द्वारा निर्मित राजसिंहेश्वर मन्दिर की सम्पत्ति को कोई क्षति नहीं पहुंचाई तथा इस मन्दिर को स्वयं बहुमूल्य वस्तुएं भेंट कीं[2]। इस देवालय पर उत्कीर्ण विक्रमादित्य द्वितीय के एक अभिलेख में वर्णित है कि वल्लभदुर्जय (विक्रमादित्य द्वितीय) की आज्ञा से उसके मन्त्री पूर्णवल्लभ ने यह अभिलेख उत्कीर्ण कराया था। नरसिंहवर्मन प्रथम ने वातापी पर अधिकार करने के पश्चात् **वातापीकोंड** (वातापी को अधिकृत करने वाला) की उपाधि धारण की और वहां अपना एक अभिलेख उत्कीर्ण कराया था। इसी प्रकार विक्रमादित्य ने भी कांची पर विजय प्राप्त करने के बाद **कांचिनकोंड** (कांची पर विजय प्राप्त करने वाला) के विरुद से अपने को

1. प्रकृत्यामित्रस्य पल्लवस्य समूलोन्मूलनायकृत-मतिरतित्वरया-तुंडाक-विषयं प्राप्याभिमुखागतन्नंदिपोतवर्मा।
2. .....कांचीमविनश्य प्रविश्य दानांदित-द्विजदीनानाथजनः नरसिंहपोत-वर्मणानिर्मित-शिलामयराजसिंहेश्वरादि देवकुलसुवर्णराशिप्रत्यर्पणोपार्जित-पुणः (केन्दूर अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विभूषित किया और राजसिंहेश्वर के मन्दिर पर अभिलेख अंकित कराया। पराजित पल्लव शासक नन्दिवर्मन द्वितीय था। यह आक्रमण विक्रमादित्य के राज्यकाल के आठवें वर्ष के पहले किसी समय हुआ था। विक्रमादित्य द्वितीय का पल्लवों से किस स्थान पर यह युद्ध हुआ था, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। न ही यह बतलाया गया है कि चालुक्य सेना किस मार्ग से पल्लव राज्य में पहुंची थी। नेल्लोर जिले की गुडुर तालुक में मल्लम नामक स्थान से प्राप्त नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के 15वें वर्ष के एक अभिलेख में चलुक्कि अरसर की आज्ञा से एक मन्दिर को दिए गए सोने के दान का उल्लेख है। इस आधार पर अनुमान किया गया है कि इसी रास्ते से सम्भवतः विक्रमादित्य आया होगा या वापस गया होगा। परन्तु लोकमहादेवी के पट्टदकल अभिलेख में उल्लिखित विक्रमादित्य द्वितीय के पल्लव राज्य पर तीन आक्रमणों का क्रम एवं तिथियों आदि का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है।

नरवण अभिलेख से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य ने चोलों, पांड्यों, केरलों तथा कलभ्रों आदि के शासकों को सन्त्रस्त किया था[1]। उसकी इन विजयों का विवरण कीर्तिवर्मन द्वितीय के वक्कलेरि तथा केन्दूर अभिलेखों में भी मिलता है। इन राज्यों के शासकों को उसने सम्भवतः पल्लवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पराजित किया होगा। इन विजयों के उपलक्ष में विक्रमादित्य ने दक्षिणी समुद्रतट पर अपना विजय-स्तम्भ स्थापित कराया था[2]। उसके राज्य-काल के अन्तिम वर्षों में चालुक्यों का पल्लवों से पुनः युद्ध हुआ। इस बार चालुक्य सेना का नेतृत्व विक्रमादित्य के पुत्र युवराज कीर्तिवर्मन द्वितीय ने किया था। कीर्तिवर्मन ने नन्दिवर्मन द्वितीय को पराजित कर दिया तथा पल्लव सेना के बहुत से हाथी, बहुमूल्य रत्न तथा सोना अपहृत कर वापस लौटा।

विक्रमादित्य द्वितीय ने सत्याश्रय, वल्लभ, श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराजा-धिराज, परमेश्वर, भंट्टारक, वल्लभदुर्जय एवं कांचियनकोडु की उपाधियां धारण कीं। उसने हैहय वंश की लोकमहादेवी एवं उनकी बहिन त्रैलोक्यमहादेवी नामक राजकुमारियों के साथ विवाह किया। उसके राज्यकाल में भी सेन्द्रक, पश्चिमी गंग, बाण तथा आलुप राजवंश चालुक्यों की प्रभुसत्ता मानते रहे। उसका साम्राज्य उत्तर में गुजरात से लेकर दक्षिण में पल्लव राज्य की सीमा तक विस्तृत था। विक्रमादित्य की अग्रमहिषी लोकमहादेवी ने पट्टदकल में

1. अनिवारित-प्रतापप्रसरप्रतापितपांड्य-चोल-केरलकलभ्रप्रभृतराजन्यकः।
2. दक्षणार्णवे शरदमल-शशधर-विशद-यशोराशि-मयं जयस्तम्भमतिष्ठिपत्।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लोकेश्वर नाम के पत्थर के एक विशाल शिव-मन्दिर का निर्माण कराया जो अब विरुपाक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। इस वैभवशाली मन्दिर के वास्तुविद गुंड को उसने **त्रिभुवनाचारि** (तीनों लोकों का गुरु), **तेन्कणदिशासूत्रधारि** (दक्षिण का प्रसिद्ध वास्तुविद) तथा **अनिवरिताचारि** (अनुपम आचार्य) के विरुदों से सम्मानित किया था। त्रैलोक्यमहादेवी ने त्रैलोकेश्वर नामक शिव-मन्दिर बनवाया। लक्षमेश्वर प्रस्तर-अभिलेख में संखतीर्थ वसति में स्थित श्वेतजिनालय के जीर्णोद्धार तथा इसको दिए गए भूमि दान का उल्लेख है। ऐहोल एवं लक्ष्मेश्वर के अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि उसके राज्यकाल में अन्य स्थानों पर भी काफी निर्माण-कार्य किए गऐ थे। विक्रमादित्य ने ब्राह्मणों को भी दान दिए। उसने लगभग 745 ई० तक शासन किया।

कीर्तिवर्मन द्वितीय–विक्रमादित्य द्वितीय के पश्चात् त्रैलोक्यमहादेवी से उत्पन्न उसका पुत्र कीर्तिवर्मन द्वितीय राजा हुआ। उसने बचपन में विद्या एवं अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास किया था। अपने पिता के राज्यकाल में वह युवराज नियुक्त कर दिया गया था और विक्रमादित्य द्वितीय द्वारा पल्लव राज्य को आक्रान्त करने के लिए भेजी गई सेना का उसी ने नेतृत्व किया था। पल्लवराज (नन्दिवर्मन द्वितीय) युद्ध में डरकर दुर्ग की प्राचीरों के पीछे छिप गया। कीर्तिवर्मन ने उस किले को घेर लिया और अन्त में पल्लव शासक ने उसके समक्ष समर्पण कर दिया। कीर्तिवर्मन ने पल्लव सेना के बहुत से हाथी, बहुमूल्य रत्न तथा अन्य सम्पत्ति अपहृत कर अपने पिता को भेंट की थी[1]।

कीर्तिवर्मन द्वितीय ने श्रीवल्लभ, श्रीपृथ्वीवल्लभ, राजाधिराज, महाराजाधिराज, भट्टारक, परमेश्वर, अनिवारित तथा नृपसिंह आदि उपाधियां धारण कीं। शक संवत् के व्यतीत वर्ष 679 (757 ई०) का वक्कलेरि अभिलेख कीर्तिवर्मन द्वितीय के शासन के 11वें वर्ष का है और 672 (750 ई०) का केन्दूर अभिलेख छठे वर्ष का। इस प्रकार वह 750-5 = 745 तथा 757-10 = 747 ई० के मध्य राजा हुआ।

कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के चौथे वर्ष के ऐनूलि ताम्रपत्रों में भीमा नदी के तट पर स्थित उसके जयस्कन्धावार का उल्लेख है और वक्कलेरि

1. पित्रारोपितयौवराज्यः स्वकुलवैरिणः कांचीपतेर्निग्रहायमांप्रेषय इत्यादेशं लब्ध्वाकृतप्रयाणः.....प्रकाश-युद्धं कर्तुमसमर्थं प्रविष्ट-दुर्ग-पल्लवं-समन्ततोभिभूय भग्नशक्तिं कृत्वा प्रभूतगजसुवर्णमाणिक्यकोटिरादाय पित्रे समर्पितवान कीर्तिवर्मा (केन्दूर अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ताम्रपत्र कर्नाटक राज्य के कोलार जिले में भीमरथी नदी के निकटवर्ती जयस्कन्धावार से प्रसारित हुए थे। ऐनूलि एवं केन्दूर अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि उसने कुछ युद्ध किए थे। परन्तु इन युद्धों का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया है कि गंग चूंकि चालुक्यों के सामन्त थे, इसलिए जब पांड्य शासक मारवर्मन राजसिंह ने गंग राज्य पर आक्रमण किया, तो कीर्तिवर्मन द्वितीय भी गंगों की ओर से लड़ा होगा।

कीर्तिवर्मन के राज्यकाल के छठे वर्ष के अण्णिगेरे अभिलेख में कलियम्म नामक व्यक्ति द्वारा एक चैत्य के निर्माण कराने का उल्लेख है और आडूर अभिलेख में एक जैन-मन्दिर को 25 निवर्तन भूमि के दान का वर्णन है। उसके राज्यकाल के अभिलेखों में ब्राह्मणों को दिए गए दानों के भी उल्लेख हैं।

पश्चिमी गंगों के अतिरिक्त बाण तथा राष्ट्रकूट भी चालुक्यों के सामन्त थे। राष्ट्रकूटों की शक्ति इन्द्र द्वितीय के राज्यकाल में काफी बढ़ गई थी। उसने चालुक्य राजकुमारी भवनागा के साथ कैरा में राक्षस विवाह कर लिया था[1]। इस विवाह की प्रतिक्रिया-स्वरूप वातापी अथवा लाट के चालुक्यों में से किसी ने भी राष्ट्रकूटों का विरोध नहीं किया। इन्द्रराज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी दन्तिदुर्ग उससे भी अधिक शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी शासक था। उसने मही, नर्मदा तथा महानदी के निकटवर्ती क्षेत्र में अपने को बहुत शक्तिशाली राजा बना लिया था लाट के चालुक्य एवं नान्दीपुरी तथा उज्जैन के गुर्जर-प्रतीहार अरब-आक्रमणों के कारण जर्जरित हो गए थे। दन्तिदुर्ग ने उन्हे अपने वर्धमान राज्य में शामिल कर लिया। परन्तु विक्रमादित्य द्वितीय के शासनकाल में उसने चालुक्यों से युद्ध करना उचित नहीं समझा। उसकी मृत्यु के पश्चात् कीर्तिवर्मन के राज्यकाल में दन्तिदुर्ग ने चालुक्यों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कीर्तिवर्मन से उसका युद्ध हुआ जिसमें चालुक्य पराजित हुए। इस पराजय के परिणामस्वरूप उत्तरी महाराष्ट्र, गुजरात तथा इनके निकटवर्ती क्षेत्र चालुक्यों ने खो दिए और इन पर दन्तिदुर्ग का अधिकार स्थापित हो गया। दन्तिदुर्ग के 753-54 ई० के समनगढ़ (कोल्हापुर जिले में) अभिलेख के अनुसार उसने कुछ ही सैनिकों को लेकर कर्नाटक की उस शक्तिशाली सेना को सरलता से पराजित कर दिया जिसने (पहले) कांची (पल्लव), चोल, केरल, एवं पांड्य राज्यों के अतिरिक्त (कन्नौज के) हर्षवर्धन तथा वज्रट नामक राजाओं

2 इन्द्रराजस्ततो ग्रहात-यश्चालुक्यनृपात्मजाम्।
राक्षसेन विवाहेन रणे खेटकमंडपे (संजन दान पत्र)॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पर विजय प्राप्त की थी। वल्लभ (कीर्तिवर्मन द्वितीय) ने बिना युद्ध किए ही समर्पण कर दिया और उसे पराजित कर दन्तिदुर्ग ने राजाधिराज तथा परमेश्वर की उपाधियां धारण कीं[1]। यह विवरण स्पष्टतः अतिशयोक्ति-पूर्ण है। वास्तव में कीर्तिवर्मन द्वितीय से युद्ध करने के पूर्व दन्तिदुर्ग ने काफी तैयारियां की थीं। तथ्य जो भी हो, इस पराजय के बाद भी वातापी तथा कर्नाटक पर कीर्तिवर्मन द्वितीय का आधिपत्य सुरक्षित रहा। कीर्तिवर्मन के शासन के 11वें वर्ष के वक्कलेरि अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसने कम से कम 757 ई० तक राज्य किया। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने धारवाड़ के हंगल क्षेत्र की कुछ भूमि ब्राह्मणों को दान में दी थी। इससे प्रतीत होता है कि 756ई० के आस-पास, दन्तिदुर्ग की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिवर्मन द्वितीय ने अपनी शक्ति को पुनः संगठित करने तथा खोए हुए प्रदेशों को अधिकृत करने का प्रयास किया। किन्तु दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी उसके चाचा कृष्ण प्रथम ने उसे पराजित कर चालुक्यों की अवशिष्ट शक्ति का पूर्णरूपेण विनाश कर दिया। राष्ट्रकूट अभिलेखों में वर्णित है कि पालिध्वज की मालाओं से सुशोभित चालुक्य राज्यलक्ष्मी का कृष्ण प्रथम ने अपहरण कर लिया[2] और चालुक्यों के राजकीय-चिह्न वराह को हिरण में परिवर्तित कर दिया[3]। कल्याणी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों में भी बतलाया गया है कि कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में चालुक्य-राज्यलक्ष्मी तिरोहित हो गई थी।

कीर्तिवर्मन की अन्तिम ज्ञात तिथि 757 ई०। वह या तो राष्ट्रकूटों से युद्ध करता हुआ मारा गया अथवा इस तिथि के कुछ ही समय बाद उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई। वह सम्भवतः निःसन्तान था। इसलिए उसकी मृत्यु के साथ ही वातापी के चालुक्य वंश का अन्त हो गया।

विक्रमादित्य द्वितीय के राज्यकाल तक चालुक्य साम्राज्य काफी शक्ति-

---

1. यो वल्लभं सपदि दंडलकेन (बलेन) जित्वा राजाधिराजपरमेश्वरतामुपैति।
कांचीशकेरलनराधिपचोलपांड्य-श्रीहर्ष-वज्रटविभेदविधान दक्षं।
·· कर्नाटक बलमनन्तमजेयरत्यै (थ्यै)।·····

2. यश्चालुक्यकुलादनूनविबुधव्राताश्रयोवारिधे-·····
र्लक्ष्मीम्मन्दरवत्सलीलम-चिरादाकृष्टवान वल्लभः। (गोविन्द तृतीय का वणीगांव अभिलेख)।

3. यो युद्धकंडूतिगृहीयमुच्चैः शौर्योष्मसन्दीपितमापतन्तम्।
महावराहं हरिणीचकार प्राज्यप्रभावः खलु राजसिंहः॥ (शक संवत् 734 का कर्कराज का बड़ौदा अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शाली एवं समृद्ध था, किन्तु उसकी मृत्यु के केवल 14-15 वर्षों में ही उसका विनाश हो जाना आकस्मिक एवं आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। कीर्तिवर्मन द्वितीय भी दुर्बल शासक नहीं था, तथापि वह अपने साम्राज्य की सुरक्षा तक नहीं कर सका। पुलकेशिन द्वितीय के राज्यकाल से ही चालुक्यों तथा पल्लवों के बीच निरन्तर संघर्ष होते रहे। इन युद्धों से यद्यपि किसी पक्ष के लिए कोई स्थाई लाभ नहीं हुआ, किन्तु इनसे दोनों राजवंशों को धन एवं जन की अपार हानि अवश्य हुई। इन संघर्षों के कारण चालुक्य धीरे-धीरे कमज़ोर होते गए। अरब आक्रमण का चालुक्य राज्य पर अधिक प्रभाव नहीं हुआ था, किन्तु उनके आक्रमणों ने पश्चिमी तथा मध्य भारत के छोटे-छोटे राज्यों की शक्ति को तहस-नहस कर दिया था। इस राजनैतिक परिस्थिति का दन्तिदुर्ग ने पूरा लाभ उठाया। वेंगी एवं गुजरात के चालुक्यों के शाखा-राज्यों के शासकों से भी केन्द्रीय शक्ति को अन्ततोगत्वा हानि पहुंची। परन्तु वातापी के चालुक्यों के पतन का सर्वप्रमुख कारण राष्ट्रकूटों का अभ्युदय था। दन्तिदुर्ग जैसे असाधारण सेनानायक तथा महत्वाकांक्षी एवं कूटनीतिज्ञ शासक के समक्ष कीर्तिवर्मन द्वितीय नहीं टिक सका और राष्ट्रकूटों के घातक प्रहारों के परिणामस्वरूप वातापी के चालुक्य राजवंश का अन्त हो गया।

शासन प्रबन्ध राजा—निरंकुश एवं सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था, सेना तथा न्यायपालिका का प्रधान होता था। वह मन्त्रियों, प्रान्तीय शासकों तथा अन्य अनेक अधिकारियों की सहायता से प्रशासन का संचालन करता था। चालुक्य सम्राट समय-समय पर अपने राज्य का दौरा करते थे। उनके अभिलेखों में वर्णित भूमि-दानों तथा शासनादेशों में से अनेक इन्हीं दौरों के दौरान लगाए गए शिविरों से प्रसारित किए गए थे।

राजा की मन्त्रि परिषद के विषय में चालुक्य साक्ष्यों में अधिक सूचना नहीं मिलती। गोडचि ताम्रपत्रों में उल्लिखित **महाब्राह्मण** को, जिसे **धुरन्धर** (राज्य की धुरी को धारण करने वाला) तथा **राज्य-सर्वस्व** भी कहा गया है, कुछ विद्वानो ने प्रधानमन्त्री माना है। समस्त सरकारी दस्तावेज़ों के मसौदे **सान्धिविग्रहिक** अथवा **महासान्धिविग्रहिक** द्वारा तैयार किए जाते थे।

कभी-कभी रानियां भी प्रशासन में सक्रिय भाग लेती थीं। पुलकेशिन द्वितीय के पुत्र चन्द्रादित्य की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी विजयमहादेवी ने सम्भवतः अपने नाबालिग पुत्र की संरक्षिका के रूप में शासन किया था। लोकमहादेवी ने अपने पति विक्रमादित्य द्वितीय द्वारा पल्लवों के विरुद्ध प्राप्त तीन सामरिक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सफलताओं के उपलक्ष में अपने नाम पर लोकेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था। कीर्तिवर्मन द्वितीय की अग्रमहिषी महादेवी रक्तपुर के स्कन्धावार में उसके साथ विद्यमान थी।

उत्तराधिकार सामान्यतया राजा के सबसे ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त होता था। किन्तु पुत्र न होने पर, ज्येष्ठ पुत्र के अयोग्य या नाबालिग होने पर अथवा उत्तराधिकार के युद्ध आदि के कारण यह नियम टूट जाता था[1]। राजकुमारों को साहित्यिक, सेना तथा प्रशासन सम्बन्धी विषयों में समुचित प्रशिक्षण दिया जाता था। राजा लोग ज्येष्ठ पुत्र को अपने राज्यकाल में ही प्रायः युवराज नियुक्त कर देते थे। युवराज तथा अन्य राजकुमार राजा के साथ सामरिक अभियानों में जाते थे। विक्रमादित्य प्रथम की दक्षिण विजय में उसका पुत्र विनयादित्य उसके साथ गया था। इसी प्रकार विनयादित्य का पुत्र युवराज विजयादित्य उसके साथ उत्तर भारत के अभियान में गया था। युवराज को स्वतन्त्र रूप से शासनादेश जारी करने का भी कभी-कभी अधिकार दे दिया जाता था। उदाहरण के लिए पुलकेशिन द्वितीय के छोटे भाई विष्णुवर्धन ने सतारा के ताम्रपत्र युवराज की हैसियत से ही जारी किए थे। इन ताम्रपत्रों में उसके द्वारा पांच ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि का विवरण है। इसी प्रकार विक्रमादित्य प्रथम के अनुज जयसिंहवर्मन के पुत्र युवराज श्रयाश्रय शीलादित्य ने भी दो दानपत्र जारी किए थे।

सम्पूर्ण साम्राज्य **राष्ट्रों, विषयों, देशों, नाडुओं, मंडलों, भोगों** तथा **ग्रामों** में विभाजित था। लाट, नासिक तथा वेंगी चालुक्य साम्राज्य के महत्वपूर्ण प्रान्त थे जिनका प्रशासन राजकुमार अथवा राजा के किसी निकट सम्बन्धी द्वारा चलाया जाता था[2]। अन्य प्रान्तों में राजा अपने विश्वासपात्र गवर्नर नियुक्त करता था।

---

1. कीर्तिवर्मन प्रथम ने अपने पुत्र पुलकेशिन द्वितीय की अल्प आयु के कारण अपने छोटे भाई मंगलेश को उसका संरक्षक नियुक्त किया था। पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् भी सम्भवतः गृह-युद्ध हुआ था और हमें यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि विक्रमादित्य प्रथम उसका सबसे बड़ा पुत्र था।
2. पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन को पहले वेलवोला का गवर्नर बनाया और बाद में वेंगी का। विक्रमादित्य प्रथम ने अपने अनुज जयसिंहवर्मन को लाट का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चालुक्य अभिलेखों में राष्ट्र शब्द प्रान्त तथा ज़िला, दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ अभिलेखों में ग्रामों को राष्ट्र के अन्तर्गत तथा कुछ में राष्ट्र को विषय का एक भाग बतलाया गया हैं। राष्ट्र के प्रधान को **राष्ट्रपति** या **राष्ट्रकूट** कहते थे। **देश** शब्द भी सम्भवतः प्रान्त तथा विषय, दोनों के लिए आयी है। इसके अधिकारी को **देशाधिपति** कहते थे। मंडल वर्तमान डिवीज़न के समकक्ष था। विषय, मंडल से छोटी इकाई थी। यह आधुनिक ज़िले के समकक्ष था। इसके प्रधान को **विषयपति** कहा गया है। भोग, विषय से छोटी तथा ग्राम से बड़ी इकाई थी[1]। यह वर्तमान तालुक के समकक्ष था और उसके शासक को **भोगपति** अथवा **भोगिक** कहा गया है।

चालुक्य साम्राज्य के प्रमुख नगरों में उनकी राजधानी वातापी के अतिरिक्त ऐहोल, पट्टदकल, बनवासी तथा लक्ष्मेश्वर थे। विक्रमादित्य द्वितीय के लक्ष्मेश्वर अभिलेख में इस नगर के महाजनों, 18 प्रकृतियों[2] तथा नागरिकों द्वारा दिए जाने वाले वार्षिक **करों** का, उनकी दरों के साथ विवरण है।

प्रशासन की लघुतम इकाई ग्राम के अधिकारी को **गामुंड** तथा **ग्रामभोगिक** कहा गया है[3]। वे **ग्राममहत्तरों** तथा **करणों** (लेखपालों) आदि की सहायता से गांव का प्रशासन चलाते थे। इन ग्राम-अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। गांव के प्रशासन तथा जनकल्याणी-कार्यों में महाजन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। एक अभिलेख में बतलाया गया है कि कुछ भूमि एक मन्दिर के नाम हस्तान्तरित करने के पहले उस गांव के महाजनों की पूर्व स्वीकृति प्राप्त की गई थी। विनयादित्य के राज्यकाल के एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि महाजन ही वेन्नियूर का प्रशासन चलाते थे। यू० एन० घोषाल के अनुसार महाजन या महत्तर ग्राम के प्रतिनिधि होते थे।

चालुक्यों के पास एक शक्तिशाली स्थल-सेना के अतिरिक्त नौ सेना भी थी। अपनी जल सेना द्वारा ही कीर्तिवर्मन प्रथम तथा मंगलेश ने रेवतीद्वीप तथा पुरी पर सफल आक्रमण किए थे। पैदल सेना, घुड़सवार तथा हाथियों के

1. वीर नामक गांव को सातिमाल **भोग** में तथा सातिमाल को पलयट्ठाण **विषय** में स्थित बतलाया गया है।
2. 18 प्रकृतियों का अर्थ स्पष्ट नहीं है।
3. कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के अभिलेखों में दो गामुंडों का उल्लेख हुआ है जिनमें से प्रत्येक ने एक-एक जैन मन्दिर का निर्माण कराया था। आडूर के प्रस्तर-लेख में भी एक गामुंड का उल्लेख है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विषय में अधिक विवरण नहीं मिलता। सैन्य, अधिकारियों में **बलाधिकृत, महा-बलाधिकृत** तथा **सान्धिविग्रहिक** के उल्लेख हुए हैं। परन्तु उनकी पारस्परिक वरीयता एवं कार्यों पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

चालुक्यों की कर-व्यवस्था के विषय में उनके अभिलेखों में यत्र-तत्र उल्लेख मिलते हैं। लक्ष्मेश्वर अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि जिन नागरिकों के निजी मकान नहीं होते थे, उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रतिवर्ष वैशाख मास में राजकीय पदाधिकारियों को कर के रूप में 15, 10, 7 या 5 **पण** देने पड़ते थे। सामान्य एवं नियमित करों के अतिरिक्त कुछ सामयिक कर भी लगाए जाते थे। उदाहरण के लिए पुलकेशिन द्वितीय ने बाण राज्य को जीतने के उपरान्त उसके अन्तर्गत स्थित प्रत्येक गांव पर **तेरेपोन** (स्वर्ण के रूप में) नामक कर लगाया था। विजयादित्य के राज्यकाल के वातापी के एक अभिलेख में राजमाता विनयवती द्वारा निर्मित एक मन्दिर के नाम अन्य करों के साथ शकर एवं तेल के रूप में प्रति दुकान से एक निश्चित मात्रा में प्राप्त होने वाली आमदनी का भी उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार लोकमहादेवी ने लोकेश्वर मन्दिर के नाम नरेयंगल के ज़िले की सम्पूर्ण आमदनी करा दी थी और प्रति **मत्तर** भूमि पर दो **कुल** (लगभग 60 किलोग्राम) बाजरा वसूल करने का भी आदेश दिया था। परन्तु इस सन्दर्भ में कहा गया है कि उपर्युक्त कर की वसूली के लिए कुर्की आदि नहीं की जा सकती थी। कुछ खास अवसरों पर तथा किन्हीं संस्थाओं के खर्चे के लिए भी भेटें एवं कर लिए जाते थे।

कुछ भूमियां करों तथा उपकरों से मुक्त होती थीं। ये मुख्यतः ब्राह्मणों को दान में दी गईं ज़मीने होती थीं। पुलकेशिन द्वितीय के 612 ई० के हैदराबाद अभिलेख में **निधि, उपनिधि, क्लिप्त** तथा **उपकर** के उल्लेख हुए हैं। परन्तु इनके अर्थ के विषय में काफी मत-भिन्नता है। श्रयाश्रयशीलादित्य के नौसारी अभिलेख में **उद्रंग** (बाज़ार-कर) तथा **उपरिकर** (चुंगी) का उल्लेख है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि चालुक्यों की प्रशासन व्यवस्था काफी विकसित एवं सुसंगठित थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम

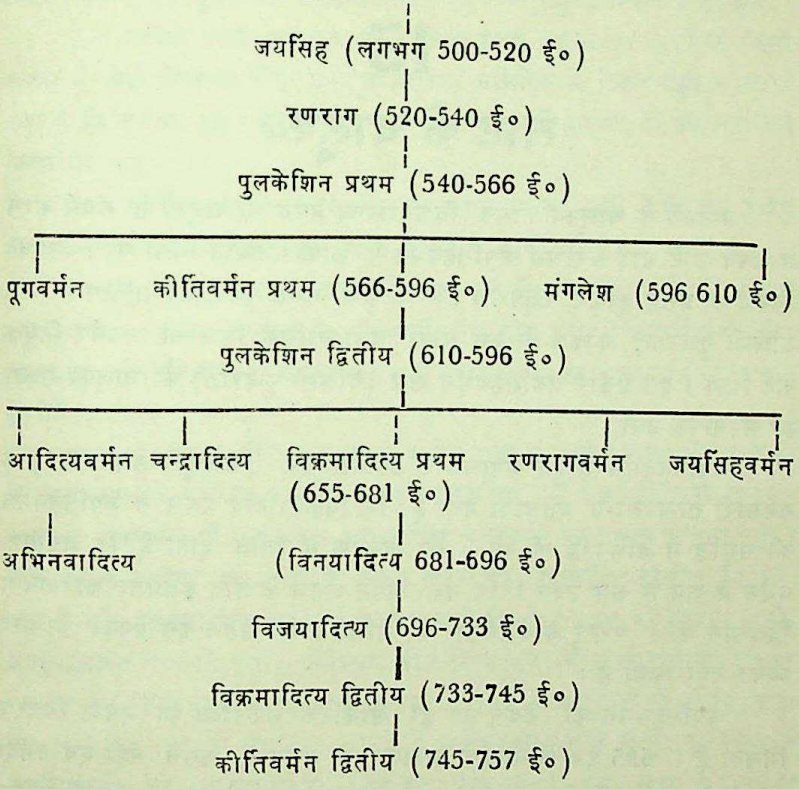

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

15
लाट के चालुक्य

वातापी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम को शत्रुओं से संघर्ष करने में अपने छोटे भाई धराश्रय जयसिंहवर्मन से काफी सहयोग मिला था। उसकी निष्ठा से प्रसन्न होकर 669-70 ई० के कुछ समय पूर्व विक्रमादित्य ने उसे दक्षिणी गुजरात, कोंकण के कुछ भागों तथा नासिक जिले का गवर्नर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार जयसिंहवर्मन लाट (दक्षिणी गुजरात) की चालुक्य-शाखा का संस्थापक बना।

जयसिंहवर्मन के पुत्र श्रयाश्रय के 669-70 ई० (कलचुरि संवत् 421) के नवसारी ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि विक्रमादित्य प्रथम ने जयसिंहवर्मन की समृद्धि में अभिवृद्धि की थी। इस विवरण से प्रतीत होता है कि जयसिंहवर्मन में कम से कम उक्त तिथि तक अपने अग्रज के प्रति कृतज्ञता की भावना विद्यमान थी। परन्तु अन्य किसी भी अभिलेख में उसने इस प्रकार का भाव व्यक्त नहीं किया है।

जयसिंहवर्मन की केवल एक ही सामरिक उपलब्धि का स्पष्ट विवरण मिलता है। 685 ई० के नासिक ताम्रपत्रों के अनुसार, उसने मही एवं नर्मदा नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र में वज्जड (वज्रट) नामक राजा को पराजित कर उसकी सेना का विनाश किया था। इस तिथि के बाद के कुछ अभिलेखों में अस्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि उसने अनेक युद्धों में विजएं प्राप्त की थी। किन्तु किसी भी युद्ध का ब्यौरा नहीं दिया है। यदि यह विवरण तथ्य पर आधारित है, तो इससे अनुमान किया जा सकता है कि या तो जयसिंहवर्मन ने विक्रमादित्य प्रथम के साथ कई युद्धों में सक्रिय भाग लेकर सफलताएं प्राप्त कीं थीं, अथवा प्रान्तीय शासक नियुक्त होने के उपरान्त उसे अपने निकटवर्ती कुछ शासकों से युद्ध करना पड़ा।

नर्मदा एवं मही के बीच का क्षेत्र उस समय नान्दीपुरी के गुर्जरों के अधीन था। वी० वी० मिराशी का अनुमान है कि वज्जड ने गुर्जर राज्य पर आक्रमण किया होगा और गुर्जर शासक दद् तृतीय ने आक्रमण का मुकाबला करने के लिए अपने अधिपति चालुक्य विक्रमादित्य प्रथम से सहायता मांगी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होगी जिसके उत्तर में उसने जयसिंहवर्मन को वज्जड से युद्ध करने के लिए भेज दिया। परन्तु यह सुझाव निम्नलिखित कारणों से अनुपयुक्त प्रतीत होता है–

1. वज्जड द्वारा गुर्जर राज्य पर आक्रमण करने का उल्लेख किसी साक्ष्य में नहीं मिलता और उपर्युक्त नासिक अभिलेख में केवल यही बतलाया गया है कि नर्मदा एवं मही के बीच के क्षेत्र में जयसिंहवर्मन ने उसे पराजित किया था।

2. इस अनुमान के लिए भी कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि दद्द तृतीय ने विक्रमादित्य अथवा जयसिंहवर्मन से सहायता मांगी थी।

वज्जड की पहचान के विषय में काफी मत-भिन्नता है। कुछ विद्वानों ने उसे वलभी का मैत्रक शासक शीलादित्य द्वितीय और कुछ ने शीलादित्य तृतीय माना है। मेरे विचार से वज्जड दद्द तृतीय का ही दूसरा नाम या उपाधि रही होगी[1]।

जयसिंहवर्मन ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा ली और विक्रमादित्य प्रथम के शासनकाल के अन्तिम भाग में, अथवा उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी विनयादित्य के राज्यकाल में वह केवल नाममात्रेण चालुक्यों का प्रभुत्व मानता रहा। 685 ई० के नासिक ताम्रपत्रों में उसने अपने को 'पुलकेशिन द्वितीय का पुत्र' कहा है और विक्रमादित्य का कोई उल्लेख नहीं किया है। यह भी दृष्टव्य है कि जयसिंहवर्मन ने अपने पुत्रों, श्रयाश्रय शीलादित्य एवं मंगलरसराज को गवर्नर नियुक्त कर दिया था। ये दोनों राजकुमार वातापी के चालुक्यों के बजाय अपने को अपने पिता का ही अधीनस्थ मानते थे। मंगलरसराज के मनोर अभिलेख में जयसिंहवर्मन को परममाहेश्वर (शिव का परमभक्त) कहा गया है। उसका अन्तिम अभिलेख 691-92 ई० का है। अनुमानतः 700 ई० के आस-पास उसके शासन का अन्त हुआ। जयसिंहवर्मन के तीन पुत्र थे–श्रयाश्रय शीलादित्य, मंगलरसराज विनयादित्य और पुलकेशिराज।

श्रयाश्रय शीलादित्य–जयसिंहवर्मन ने श्रयाश्रय को दक्षिणी गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया था। वी० वी० मिराशी के अनुसार नवसारी उसकी राजधानी थी। श्रयाश्रय ने **शीलादित्य** की उपाधि धारण की। उसके राज्यकाल के मुद्गपद्र, नवसारी तथा सूरत ताम्रपत्र क्रमशः कलचुरि संवत् के वर्ष 420, 421 तथा 443 (668-69 ई०, 669-70 ई० तथा 691-92 ई०) में जारी किए

---

1. Yasovarman of Kanauj, pp. 50-51.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गए थे। चूंकि उसका सबसे पहला अभिलेख 668-69 ई० का है, इससे प्रमाणित होता है कि जयसिंहवर्मन के शासन के प्रारम्भ में ही वह प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया गया था और उसे अपने नाम से शासनादेश प्रसारित करने का अधिकार प्राप्त था। डी०सी०सरकार के अनुसार जयसिंह तथा उसके पुत्र श्रयाश्रय द्वारा एक ही समय में अभिलेख जारी करने से प्रतीत होता है कि वे वातापी के चालुक्यों के अधीन अर्ध-स्वतन्त्र शासक के रूप में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राज्य कर रहे थे और दोनों की राजनैतिक स्थिति समान थी।

श्रयाश्रय के सभी अभिलेखों में उसे युवराज कहा गया है और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसका उल्लेख नहीं हुआ है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि श्रयाश्रय की मृत्यु कदाचित जयसिंहवर्मन के राज्यकाल में ही हो गई थी और उसने स्वतन्त्र रूप से कभी शासन नहीं किया। उसका अन्तिम अभिलेख 692 ई० के आस-पास का है। इसे कुसुमेश्वर के विजय-स्कन्धावार से प्रकाशित किया गया था। कुसुमेश्वर का समीकरण नहीं किया जा सका है।

मंगलरसराज विनयादित्य–जयसिंहवर्मन के सबसे ज्येष्ठ पुत्र श्रयाश्रय की मृत्यु उसके जीवनकाल में ही हो गई थी, इसलिए जयसिंह के उपरान्त उसका छोटा पुत्र मंगलरसराज अनुमानतः 700 ई० के आस-पास राजा हुआ। परन्तु इस तिथि के पहले ही वह गवर्नर के रूप में प्रशासन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुका था। अभी तक उसके राज्यकाल के तीन अभिलेख मिले हैं, जो शक संवत् के वर्ष 613, 649 तथा 653 के हैं। इनमें शक संवत् 613 (690-91 ई०) का मनोर ताम्रपत्र सबसे पहला है। श्रयाश्रय शीलादित्य ने भी 691-92 ई० में सूरत ताम्रपत्र जारी किए थे। इससे प्रमाणित होता है कि ये दोनों भाई एक ही समय में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में शासन कर रहे थे और जयसिंहवर्मन उस समय जीवित था।

मनोर ताम्रपत्र में मंगलरसराज को विनयादित्य, पृथ्वीवल्लभ, युद्धमल्ल एवं जनाश्रय की उपाधियां दी गई हैं। परन्तु उसकी विजयों अथवा किसी अन्य उपलब्धि का उल्लेख नहीं हुआ है। उसके छोटे भाई पुलकेशिराज के 738-39 ई० के नवसारी ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि मंगलरसराज ने अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त किया था (**निजभुजप्रभावोपार्जितस्वकीयमंडलः**) और निकटवर्ती शत्रु-राजाओं के विरुद्ध कई युद्धों में विजएं प्राप्त की थीं। डी० सी० सरकार के अनुसार नवसारी अभिलेख के उपर्युक्त कथन से, तथा इस अभिलेख में किसी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अधिपति शासक का उल्लेख न होने से संकेत मिलता है कि मंगलरस लगभग स्वतन्त्र शासक हो गया था। परन्तु कृष्णदेव का कथन है कि उक्त अभिलेख में अधिपति शासक का नाम भूल से छूट गया होगा, क्योंक मंगलरस के पूर्ववर्ती एवं उत्तराधिकारी, दोनों ही ने वातापी के चालुक्यों का प्रभुत्व स्वीकार किया था। तथ्य जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि उस समय तक लाट के चालुक्य काफी शक्तिशाली हो गये थे। मंगलरसराज का समकालीन वातापी का चालुक्य शासक विजयादित्य मुख्यतः शान्तिप्रिय था और मंगलरस उसका केवल नाममात्र के लिए प्रभुत्व मानता रहा होगा।

पुलकेशिराज के नवसारी अभिलेख के विवरण से प्रतीत होता है कि निकटवर्ती गुर्जरों तथा मैत्रकों आदि ने लाट के चालुक्य राज्य के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था और मंगलरसराज ने इन शत्रुओं को पराजित कर खोए हुए भू-भागों को पुनः अपने राज्य में शामिल कर लिया।

यहां एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। कुछ राष्ट्रकूट अभिलेखों में बतलाया गया है कि राष्ट्रकूट इन्द्र द्वितीय ने भवनागा नामक चालुक्य राजकुमारी का, कैरा के विवाह-मंडप से अपहरण कर उसके साथ राक्षस-विवाह कर लिया था[1]। इन्द्रराज वातापी के चालुक्यों का सामन्त था। भवनागा के पिता का नाम नहीं बतलाया गया है। चूंकि कैरा गुजरात के चालुक्य राज्य के ही अधिक निकट था, इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि भवनागा वेंगी अथवा वातापी के राजवंश से सम्बन्धित न होकर मंगलरस अथवा पुलकेशिराज की पुत्री रही होगी।

यह विवाह निम्नलिखित समस्याएं एवं शंकाएं उपस्थित करता है–

1. भवनागा का विवाह कैरा में सम्पन्न करने की व्यवस्था करने का क्या कारण था ?

2. उसका अपहरण हो जाने पर वातापी अथवा लाट के चालुक्यों की ओर से राष्ट्रकूट इन्द्र के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई ?

ए० एस० अल्तेकर के अनुसार, भवनागा का विवाह सम्भवतः बलभी के मैत्रक वंशीय शासक के साथ होना निश्चित हुआ था। इसलिए बलभी राज्य के कैरा नामक स्थान पर विवाहोत्सव आयोजित किया गया। कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि राष्ट्रकूट इन्द्र इतना अधिक शक्तिशाली हो गया था कि

1. इन्द्रराजस्ततोग्रहात्यश्चालुक्यनृपात्मजां।
राक्षसेन विवाहेन रणे खेटकमंडपे ।।(अमोघवर्ष प्रथम का संजन अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसने चालुक्यों तथा मैत्रकों को इस विवाह के माध्यम से एक साथ चुनौती दी थी।

मेरे विचार से मंगलरस ने कैरा को जीतकर कम से कम कुछ समय तक अपने अधीन कर लिया था, और उस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करने के उद्देश्य से सम्भवतः उसने अपने पुत्री अथवा भतीजी (?) भवनागा का वहां विवाहोत्सव सम्पन्न करने का निश्चय किया। परन्तु विवाह होने के पूर्व ही इन्द्रराज उसे वहां से उठा ले गया। इस अपहरण में भवनागा की भी कदाचित अनुमति थी। इस प्रकार यह गान्धर्व एवं राक्षस विवाहों का सम्मिश्रण माना जा सकता है, जिसके लिए बाद में भवनागा के माता-पिता ने स्वीकृति दे दी होगी। सम्भवतः इसीलिए चालुक्यों ने इन्द्रराज से युद्ध नहीं किया।

मनोर अभिलेख में मंगलरसराज को परममाहेश्वर कहा गया है और उसके द्वारा मानपुर के सूर्य-मन्दिर को दिए गए भूमि-दान का वर्णन है। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 731-32 ई० है और उसके उत्तराधिकारी पुलकेशिराज के नवसारी ताम्रपत्र 738-39 ई० के हैं। इस प्रकार मंगलरस के शासन का अन्त इन्हीं तिथियों के बीच किसी समय हुआ।

अवनिजनाश्रय पुलकेशिराज-मंगलरसराज के पश्चात् उसका छोटा भाई पुलकेशिराज 738-39 ई० के पूर्व दक्षिणी गुजरात का शासक हुआ। वी० वी० मिराशी के अनुसार मंगलरस तथा पुलकेशिराज एक ही समय में क्रमशः उत्तरी कोंकण और दक्षिणी गुजरात में शासन कर रहे थे। परन्तु यह अनुमान तर्क-संगत नहीं लगता, क्योंकि पुलकेशिराज का कोई भी अभिलेख मंगलरस के समय का नहीं मिला है।

पुलकेशिराज लाट के चालुक्य वंश का अन्तिम तथा सबसे महान शासक था। उसने न केवल स्वयं परमभट्टारक का विरुद धारण किया, वरन् अपने सभी पूर्ववर्ती शासकों को भी इस उपाधि से विभूषित किया। उसके राज्यकाल के नवसारी अभिलेख में बतलाया गया है कि उसकी शक्ति निरन्तर बढ़ रही थी और उसने **ताज्जिकों** (अरब आक्रमणकारियों) को नवसारी में अथवा इसके निकट एक तुमुल युद्ध में निर्णायक रूप से पराजित किया था। ये अरब आक्रमणकारी सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, गुर्जर तथा चाबोटक आदि राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त दक्षिणापथ को जीतने के उद्देश्य से नवसारी तक पहुंच गये थे। उसकी इस महान उपलब्धि से प्रसन्न होकर उसके अधिपति विक्रमादित्य द्वितीय ने उसे दक्षिणापथस्वाधारण, अवनिजनाश्रय, अनिवर्तकनिवर्तयित्रि एवं

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चालुक्यकुलालंकार के विरुदों से विभूषित किया ।

यह उल्लेखनीय है कि पुलकेशिराज ने अपने नवसारी अभिलेख में विक्रमादित्य द्वितीय जैसे शक्तिशाली अधिपति का उल्लेख नहीं किया, स्वयं परमभट्टारक का विरुद धारण किया और अरबों के विरुद्ध विजय का पूर्ण श्रेय स्वयं लिया । इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि वह काफी हद तक स्वतन्त्र हो गया था, यद्यपि उसने वेंगी के चालुक्यों की भांति औपचारिक रूप से स्वतन्त्रता नहीं घोषित की थी । वह इस वंश का अन्तिम शासक था । राष्ट्रकूटों तथा प्रतीहारों की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप मुख्यतः लाट के चालुक्य राजवंश का अन्त हो गया ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

16

मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजवंश

उत्पत्ति एवं मूलनिवास–वातापी के चालुक्यों के पतन के पश्चात् महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में राष्ट्रकूटों ने शासन किया। राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति एवं मूल-निवास विषयक विभिन्न साक्ष्यों के विवरणों में एकरूपता नहीं है। कुछ राष्ट्रकूट अभिलेखों में इस राजवंश को **रट्ट** कहा गया है[1]। कृष्ण तृतीय के करहड तथा देवली अभिलेखों के अनुसार राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति तुंग नामक शासक से हुई और राष्ट्रकूट अपने वंश के आदिपुरुष **रट्ट** का पुत्र था[2]। वर्धा ताम्रपत्रों में राष्ट्र-कूटों को राजकुमारी रट्टा से सम्बन्धित किया गया है जिसके पुत्र का नाम राष्ट्र-कूट था[3]। कुछ अभिलेखों में उन्हें यादव सात्यकि का वंशज और कुछ में चन्द्र-वंशी[4] बतलाया गया है।

व्यक्ति के नाम के अतिरिक्त राष्ट्रकूट या राष्ट्रिक प्रशासकीय पद भी था। **कूट** का अर्थ 'प्रमुख' या 'प्रधान' है और **राष्ट्र** शब्द का प्रयोग विभिन्न कालों

---

1. अमोघवर्ष प्रथम के सिरूर अभिलेख के अनुसार वह रट्ट वंश में उत्पन्न हुआ था, और इन्द्र तृतीय के नवसारी अभिलेख के अनुसार अमोघवर्ष ने रट्ट-कुल-लक्ष्मी का उद्धार किया था–निमग्नां यश्चलुक्याब्धौ रट्टाराज्यश्रियं पुनः। पृथ्वीमिवोद्धरन् धीरो वीरनारायणो भवत्॥
2. EI, Vol. IV, p. 282; Vol. V, p. 192.
3. इन अभिलेखों में सबसे प्राचीन शक संवत् 782 का है। शक संवत् 836 के एक अभिलेख में बताया गया है कि दन्तिदुर्ग का जन्म यदु वंश की सात्यकि शाखा में हुआ था–तन्नान्वये विततसात्यकि-वंश-जन्मा।
   श्रीदन्तिदुर्गनृपतिः पुरुषोतमो भूत॥
4. Karnataka through the Ages p. 232.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में राज्य, मंडल तथा ज़िले के लिए हुआ है[1]।

सी०वी० वैद्य तथा एस० सी० नन्दिमथ ने अशोक के अभिलेखों में वर्णित रठिकों का समीकरण राष्ट्रकूटों से किया है और आधुनिक मराठों को राष्ट्रकूटों का वंशज माना है। ए० एस० अल्तेकर ने इस मत का आंशिक रूप से समर्थन किया है। उन्होंने राष्ट्रकूटों को महाराष्ट्र के स्थान पर कन्नड़ देश का निवासी माना है। डी० आर० भंडारकर ने रठिकों को अपरान्त के लोगों से सम्बन्धित तथा महाराष्ट्र का निवासी माना है। राष्ट्रकूटों को **लट्टलूरपुखराधीश्वर** भी कहा गया है। इस आधार पर पी०बी० देसाई तथा एस०सी० नन्दिमथ ने उन्हें लट्टलूर (महाराष्ट्र के ओस्मानाबाद ज़िले का लातूर) का मूलनिवासी माना है। उनके अनुसार यह क्षेत्र पहले कर्नाटक राज्य में शामिल था। कदम्बों तथा चालुक्यों की भांति राष्ट्रकूट भी कन्नड़ देश से सम्बन्धित थे क्योंकि उन्होंने कर्नाटक की सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुशरण किया तथा कन्नड़ भाषा को संरक्षण प्रदान किया। **असगब्बा, अब्बलब्बे** तथा **रेवकनिर्मडि** जैसे नामों में भी कन्नड़ प्रभाव स्पष्ट है।

जे० एफ० फ्लीट के अनुसार राष्ट्रकूट राजपूताने तथा कन्नौज के राठौरों के वंशज थे। विश्वनाथ रेउ ने राष्ट्रकूटों को कन्नोज के गहड़वालों से सम्बन्धित किया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने सोलंकी शासक त्रिलोचनपाल के शक संवत् 972 के एक अभिलेख के साक्ष्य को उद्धृत किया है, जिसमें बतलाया गया है कि सोलंकियों के आदिपुरुष का विवाह कन्नौज के राष्ट्रकूट शासक की पुत्री के साथ हुआ था[2]। राष्ट्रकूटों के लिए प्रयुक्त रट्ट शब्द के आधार पर बर्नेल महोदय ने उन्हें तेलगु भाषा-भाषी रेड्डी लोगों का वंशज माना है।

दक्षिणापथ के राष्ट्रकूटों का कन्नौज के गहड़वालों अथवा राठौरों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए कोई पुष्ट आधार नहीं है और इस मान्यता के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं–

1. राठौरों तथा गहड़वालों का उदय राष्ट्रकूटों के कई शताब्दियों बाद हुआ।

---

1. सी० वी० वैद्य ने राष्ट्रकूट को प्रमुख राजस्व-अधिकारी माना है। किन्तु विश्वनाथ रेउ ने राष्ट्र का अर्थ राज्य और कूट का अर्थ श्रेष्ठ या उच्च माना है।
2. कान्यकुब्जे महाराजराष्ट्रकूटस्य कन्यकाम्।
   लब्ध्वां सुखस्य तस्यां त्वं चालुक्यानुहि संततिम्॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

2. राष्ट्रकूटों को चन्द्रवंशी कहा गया है, परन्तु गहड़वाल सूर्यवंशी थे।

3. राष्ट्रकूटों का गोत्र गौतम था जबकि गहड़वाल कश्यप गोत्र के थे।

4. गहड़वालों तथा राठौरों के अभिलेखों में उन्हें राष्ट्रकूट नहीं कहा गया है और न हीं राष्ट्रकूट अभिलेखों में राष्ट्रकूटों के लिए गहड़वाल अथवा राठौर शब्द प्रयुक्त हुआ है।

राष्ट्रकूटों को आन्ध्र प्रदेश के रेड्डी लोगों का भी पूर्वज नहीं माना जा सकता।

गोविन्द तृतीय के 808 ई० के राधनपुर अभिलेख से प्रमाणित होता है कि इस तिथि तक राष्ट्रकूट वंश को यदु वंश से भिन्न समझा जाता था[1]। इससे प्रतीत होता है कि बाद में कल्पना के आधार पर उन्होंने अपने को यदुवंशी मान लिया[2]। राष्ट्रकूटों का समीकरण प्राचीन साक्ष्यों[3] में वर्णित रठिकों तथा महारठिकों से किया जाना चाहिए जो महाराष्ट्र के निवासी थे। किन्तु बाद में कर्नाटक राष्ट्रकूटों की गतिविधियों का केन्द्र बना। वे चन्द्र वंशी क्षत्रिय थे। उनका राजकीय-चिह्न सम्भवत: गरुड़ पक्षी था जो उनके अनेक ताम्रपत्रों एवं राजमुद्राओं पर मिलता है[4]। राष्ट्रकूट अभिलेख प्राय: शिव या विष्णु की वन्दना से प्रारम्भ होते हैं। कई अभिलेखों में राष्ट्रकूट शासकों को **वल्लभ** कहा गया है। वल्लभ का अर्थ अधिपति या स्वामी है। मुस्लिम इतिहासकारों ने **वल्लभ** के स्थान पर **बल्हर** शब्द का प्रयोग किया है।

प्रारम्भिक शासक–छठी तथा सातवीं शताब्दियों में महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश के कुछ भागों में कई राष्ट्रकूट परिवारों के उल्लेख मिलते हैं। एक राष्ट्रकूट परिवार आधुनिक बेतूल-एलिचपुर क्षेत्र में शासन कर रहा था। नन्नराज के तिवरखेड तथा मुल्तै अभिलेखों में वर्णित प्रारम्भिक राष्ट्रकूट राजाओं का वंशानुक्रम इस प्रकार है–

---

1. 808 ई० के गोविन्द तृतीय के बनी-डिंडोरी अभिलेख में राष्ट्रकूट वंश की यदु-कुल से केवल तुलना की गई है।
2. उदाहरण के लिए अमोघवर्ष के 871 ई० के संजन ताम्रपत्रों में राष्ट्रकूटों को वीरनारायण का वंशज बतलाया गया है।
3. अशोक के अभिलेखों के अतिरिक्त रठिकों का उल्लेख खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख, गौतमी बलश्री की नासिक प्रशस्ति एवं पल्लव शिवस्कन्दवर्मन के हीरहडगल्लि अभिलेख में भी हुआ है।
4. कुछ राजमुद्राओं में गरुड़ के स्थान पर शिव की आकृति अंकित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दुर्गराज (लगभग 630-650 ई०)
गोविन्दराज (,, 650-670 ई०)
स्वामिराज (,, 670-690 ई०)
नन्नराज (,, 690-715 ई०)

इस प्रकार नन्नराज दुर्गराज का प्रपौत्र, गोविन्दराज का पौत्र एवं स्वामिराज का पुत्र था। उसका संगलूद अभिलेख 692-93ई० (शक संवत 615) तथा मुर्ल्ते अभिलेख 708-9 ई० (शक संवत् 631) का है। तिवरखेड अभिलेख में अंकित तिथि सुस्पष्ट नहीं है[1]। नन्नराज की उपर्युक्त तिथियों के आधार पर ही उसके तीन पूर्वजों का काल मोटे तौर पर निर्धारित किया गया है[2]। नन्नराज अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली शासक था। यह न केवल उसके द्वारा धारण की गई युद्धसूर की उपाधि से, वरन् उसके शासन के कई अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से भी प्रमाणित होता है। परन्तु उसकी किसी उपलब्धि का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। नन्नराज सम्भवतः वातापी के चालुक्यों का सामन्त था। उसका तिवरखेड दानपत्र अचलपुर (बेतूल ज़िले का एलिचपुर) से प्रकाशित हुआ था। इस आधार पर ए० एस० अल्तेकर तथा दिनेशचन्द्र सरकार ने इसी स्थान को नन्नराज तथा उसके परिवार की राजधानी माना है। चूंकि नन्नराज के तीन दानपत्र तीन भिन्न स्थानों से जारी किए गए थे, इसलिए उसकी राजधानी के विषय में निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन है।

अल्तेकर के अनुसार उपर्युक्त राष्ट्रकूट शासक लट्टलूर (ओस्मानाबाद ज़िले का वर्तमान लाटूर नामक स्थान) के मूलनिवासी थे। नन्नराज लट्टलूर से बरार चला गया था और वहां वह पुलकेशिन द्वितीय के अधीन एक छोटे राज्य पर शासन करने लगा।

सातवीं शताब्दी के मध्य के लगभग उत्तरी दक्षिणापथ में दन्तिवर्मन प्रथम नामक शासक राज्य कर रहा था। वह मान्यखेट (कर्नाटक राज्य के गुलबर्गा ज़िले में मालखेड) के राष्ट्रकूट राजवंश से सम्बन्धित तथा वातापी के चालुक्यों का अधीनस्थ रहा होगा। दन्तिवर्मन के उपरान्त उसका पुत्र इन्द्र प्रथम एवं पौत्र गोविन्दराज क्रमशः राजा हुए।

1. तिरवखेड तथा मुर्ल्ते मध्य प्रदेश के वर्तमान बेतूल ज़िले में स्थित थे और संगलूद दानपत्र पद्मनगर से प्रसारित हुए थे।
2. अल्तेकर के अनुसार दुर्गराज, गोविन्दराज तथा स्वामिराज ने अनुमानतः 570 से 630 ई० तक शासन किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दशावतार अभिलेख के अनुसार इन्द्र प्रथम वीर शासक था और यज्ञों में श्रद्धा रखता था। गोविन्दराज अपरनाम वीरनारायण शिव का भक्त था। आर० जी० भंडारकर ने उसका समीकरण उस गोविन्द नामक शासक से किया है जिसे पुलकेशिन द्वितीय ने भीमा नदी के उत्तर में पराजित किया था। परन्तु इस शासक की तिथि एवं उसके द्वारा शासित क्षेत्र की अनिश्चितता के कारण भंडारकर के मत से सहमत होना कठिन है। अल्तेकर के अनुसार इन्द्र प्रथम तथा गोविन्दराज ने लगभग 665 से 700 ई० तक राज्य किया।

गोविन्दराज के बाद उसका पुत्र कर्कराज 700 ई० के आसपास राजा हुआ। दशावतार अभिलेख के अनुसार उसका नाम सुनते ही उसके शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते थे और उनकी कलाइयों से वलय गिरने लगते थे। वह विष्णु का उपासक था और उसने वैदिक यज्ञ भी सम्पन्न किए थे। कर्कराज ने अनुमानतः 715 ई० तक राज्य किया।

कर्क के चार पुत्र थे–इन्द्र (द्वितीय), ध्रुव, कृष्ण तथा नन्नराज। इनमें इन्द्र सबसे बड़ा होने के कारण कर्क के बाद राजा हुआ। वह इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक था। उसने उत्तर की ओर अपने राज्य का विस्तार किया और मध्य भारत के मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। वह वातापी के चालुक्य शासक विजयादित्य का सामन्त रहा होगा। उसके राज्य के पश्चिम में लाट के चालुक्यों तथा नान्दीपुरी के गुर्जरों के राज्य स्थित थे। उसके राज्यकाल की एक ही घटना का उल्लेख हुआ है। अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्रों के अनुसार इन्द्रराज ने खेटक (दक्षिणी गुजरात में स्थित खेड़ा नामक स्थान) में चालुक्य राजकुमारी भवनागा के साथ राक्षस-विवाह किया था[1]। भवनागा के पिता के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। वह सम्भवतः लाट के चालुक्य शासक मंगलराज की पुत्री या भतीजी थी। अल्तेकर के अनुसार यह घटना 722 ई० के पश्चात् किसी समय घटी होगी।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इस विवाह के विरुद्ध इन्द्र के अधिराट वातापी के चालुक्यों अथवा लाट के चालुक्यों में से किसी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। इससे प्रमाणित होता है कि इन्द्र काफी शक्तिशाली शासक हो गया था। उसके पास अश्वारोहियों तथा गजारोहियों की विशाल सेना थी। वह चालुक्य विजयादित्य का सामन्त था। उसने अनुमानतः 715 से 735 ई०

1. इन्द्रराजस्ततोग्रहातयश्चालुक्यनृपात्मजाम्।
राक्षसेन विवाहेन रणे खेटक-मंडपे॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तक राज्य किया।

दन्तिदुर्ग–इन्द्र द्वितीय के बाद चालुक्य वंशीय राजकुमारी भवनागा से उत्पन्न उसका पुत्र दन्तिदुर्ग राजा हुआ। शासन के प्रारम्भिक भाग में वह वातापी के चालुक्यों का सामन्त था। दन्तिदुर्ग के राज्यकाल के दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं–

1. 742 ई० का दशावतार अभिलेख
2. 753-54 ई० का समनगद अभिलेख

ये अभिलेख उसकी उपलब्धियों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में भी उसकी विजयों आदि का वर्णन है। समनगद अभिलेख के अनुसार दन्तिदुर्ग (की सेना) के हाथियों ने मही, महानदी तथा नर्मदा नदियों में स्नान किया और वल्लभ (कीर्तिवर्मन द्वितीय) को पराजित कर, उसने राजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियां धारण कीं। कुछ ही सैनिकों को अपने साथ लेकर उसने उस विशाल एवं शक्तिशाली कर्नाटक-सेना (कीर्तिवर्मन द्वितीय की सेना) पर विजय प्राप्त कर ली थी जिसके द्वारा पहले कांची, केरल, चोल तथा पांड्य राज्यों के शासकों के अतिरिक्त हर्षवर्धन तथा वज्रट भी पराजित हो चुके थे[1]। अन्य अभिलेखों में बतलाया गया है कि दन्तिदुर्ग ने कांची, कलिंग, कोशल, श्रीशैल, मालव, लाट तथा टंक राज्यों को जीता था। उज्जयिनी में उसने **हिरण्यगर्भ-महादान** सम्पन्न किया जिसके अवसर पर गुर्जर-शासक ने प्रतीहार (प्रहरी) के रूप में काम किया था[2]। बाद के अभिलेखों में उसे उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वम् तक के चक्रवर्ती-क्षेत्र के अनेक राजाओं का विजेता कहा गया है। इन विजयों का सही क्रम निर्धारित करना कठिन है।

---

1. महीमहानदीरेवारोधोभित्तिविदारणम्।
   .....
   यो वल्लभं सपदि दंडलकेन (बलेन) जित्वाराजाधिराजपरमेश्वरतामुपैति।
   कांचीशकेरलनराधिप-चोलपांड्य-श्रीहर्ष-वज्रटविभेदविधान-दक्षम्॥
   कर्नाटकं बलमनन्तमजेयरत्यै (थ्यै)-मित्यैःकियदभिरपि यः सहजाजिगाय।
2. हिरण्यगर्भराजन्यैरुज्जयिन्यां यदासितम्।
   प्रतिहारीकृतं येन गुर्जरेशादिराजकम्॥
   (अमोघवर्ष प्रथम का संजन ताम्रपत्र)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दन्तिदुर्ग को बरार तथा मध्य भारत के बड़े भू-भाग उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। एस० सी० नन्दिमथ के अनुसार महाराष्ट्र के ओस्मानाबाद ज़िले का क्षेत्र दन्तिदुर्ग की प्रारम्भिक गतिविधियों का केन्द्र रहा होगा। मध्य भारत तथा मालवा में उस समय कोई शक्तिशाली शासक नहीं था। गुजरात में नान्दीपुरी के गुर्जर, नवसारी के चालुक्य तथा वलभी के मैत्रक, अरब आक्रमणों के के कारण जर्जरित हो गए थे। इस अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाकर दन्तिदुर्ग ने गुर्जरों एवं लाट के चालुक्यों पर आक्रमण कर दक्षिणी गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और अपने भतीजे कर्क को वहां का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया[1]। इसके पश्चात् उसने सम्भवतः मालवा को जीता और इसकी राजधानी उज्जयिनी को अधिकृत कर लिया। इस विजय के उपलक्ष में उज्जयिनी के राजप्रासाद में उसने हिरण्गर्भ-महादान सम्पन्न किया और इस नगरी के प्रसिद्ध देवता शिवमहाकाल को रत्न-जटित मुकुट भेंट किया। जिस गुर्जर शासक ने हिरण्यगर्भ-महादान के अवसर पर उसके प्रतीहार के रूप में काम किया था, उसके नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए उसकी पहचान करना कठिन है। इसके बाद उसने कोशल तथा कलिंग के शासकों को पराजित किया होगा।

उपर्युक्त विजयों के परिणामस्वरूप दन्तिदुर्ग काफी शक्तिशाली हो गया था। विक्रमादित्य द्वितीय के जीवनकाल में वह चालुक्यों का सामन्त बना रहा और सतर्कतापूर्वक अपनी शक्ति बढ़ाता रहा। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् दन्तिदुर्ग ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा को अधिक सक्रिय रूप से कार्यान्वित करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी इन सफलताओं एवं गतिविधियों ने चालुक्य शासक कीर्तिवर्मन द्वितीय का ध्यान आकृष्ट किया और दोनों में शक्ति-सन्तुलन अनिवार्य हो गया। अल्तेकर का अनुमान है कि कीर्तिवर्मन ने दन्तिदुर्ग द्वारा पराजित अपने गुर्जर-सामन्त को गुजरात में पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया होगा। परन्तु राष्ट्रकूट शासक ने दक्षिणी गुजरात छोड़ने से इन्कार कर दिया। सम्भवतः यही दोनों के बीच हुए युद्ध का कारण था। यह मत मात्र अनुमान पर आधारित है। दन्तिदुर्ग बहुत महत्त्वाकांक्षी था। चालुक्यों की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर उसने विद्रोह कर दिया और अपने अधिपति को पराजित करने में सफल हुआ।

---

1. नन्दिमथ के अनुसार दन्तिदुर्ग ने गुजरात में प्रतीहार शासक नागभट प्रथम को पराजित किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राष्ट्रकूट अभलेखों के अनुसार दन्तिदुर्ग ने चालुक्यों की विशाल सेना को भृकुटीभंग मात्र से पराजित कर दिया था[1]। इस विवरण के आधार पर अल्तेकर ने निष्कर्ष निकाला है कि दन्तिदुर्ग ने किसी कूटनीतिक चाल से यह विजय प्राप्त की होगी। परन्तु वास्तव में उपर्युक्त वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण तथा काव्यात्मक है। कीर्तिवर्मन से युद्ध करने के पूर्व दन्तिदुर्ग ने काफी तैयारियां की थीं। चालुक्य सम्राट को पराजित करने के बाद भी वह उसकी शक्ति को नष्ट नहीं कर सका और वातापी एवं कर्नाटक पर चालुक्यों का प्रभुत्व सुरक्षित रहा। राष्ट्रकूटों का चालुक्यों से युद्ध किस स्थान पर हुआ था, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। अल्तेकर के अनुसार यह निर्णायक संघर्ष खानदेश में किसी स्थान पर हुआ होगा। इस विजय के परिणामस्वरूप दन्तिदुर्ग सम्पूर्ण महाराष्ट्र का अधिपति बन गया। 753-54 ई० के समनगद अभिलेख में उसे परमभट्टारक, महाराजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियां दी गई हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इस तिथि के पहले चालुक्यों को परास्त कर दन्तिदुर्ग सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न सम्राट बन गया था।

दन्तिदुर्ग द्वारा विजित अन्य राज्यों में टंक, सिन्धु, कांची एवं श्रीशैल शामिल हैं। टंक की पहचान के विषय में काफी मत-भिन्नता है। सिन्ध-विजय का तात्पर्य सम्भवतः अरबों के विरुद्ध सफलता से है। जुनैद के पश्चात् सिन्ध में लगातार कई अयोग्य गवर्नर आए जिनके समय में मुस्लिम सत्ता की जड़े उखड़ने लगी थीं। इसलिए कन्नौज के यशोवर्मन, लाट के चालुक्य पुलकेशिराज तथा प्रतीहार नागभट प्रथम की भांति दन्तिदुर्ग ने भी अरबों को पराजित कर दिया होगा। अरबों से उसका युद्ध पश्चिमी अथवा मध्य भारत में किसी स्थान पर हुआ होगा।

चालुक्यों को पराजित कर तथा दक्षिणापथ में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के पश्चात् ही दन्तिदुर्ग ने सुदूर दक्षिण की राजनीति की ओर ध्यान दिया होगा। पल्लव राज्य पर आक्रमण कर उसने नन्दिवर्मन द्वितीय को पराजित कर दिया। बाद में दोनों शासकों में मित्रता हो गई और दन्तिदुर्ग ने नन्दिवर्मन पल्लवमल्ल के साथ अपनी पुत्री रेवा का विवाह कर दिया। नन्दिमथ

1. सभ्रूविभंगमग्रहीतनिशातशस्त्रम्।
अश्रान्तमप्रतिहताज्ञमपेतयत्नम्॥
यो वल्लभं सपदि दंडबलेन जित्वा।
भृत्यैः कियद्भिरपियः सहसा जिगाय॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के अनुसार दन्तिदुर्ग ने विक्रमादित्य द्वितीय के सामन्त की हैसियत से अरबों के विरुद्ध युद्ध में लाट के प्रान्तीय शासक पुलकेशिराज को सहयोग दिया था और इसमें प्राप्त सफलता से प्रसन्न होकर उसने दन्तिदुर्ग को पृथ्वीवल्लभ तथा खड्गावलोक की उपाधियों से विभूषित किया। इसी प्रकार 743 ई० के लगभग पल्लव परमेश्वरवर्मन द्वितीय के विरुद्ध अभियान में भी दन्तिदुर्ग विक्रमादित्य की ओर से लड़ा था। परन्तु इन अवधारणाओं को स्वीकार करना कठिन हैं। अरबों तथा पल्लवों से हुए युद्धों में चालुक्यों के सामन्त के रूप में दन्तिदुर्ग के शामिल होने का किसी साक्ष्य में उल्लेख अथवा संकेत नहीं मिलता और न ही विक्रमादित्य द्वारा दन्तिदुर्ग को उपर्युक्त उपाधियां देने का वर्णन है।

श्रीशैल के शासक को दन्तिदुर्ग ने सम्भवतः पल्लव राज्य पर आक्रमण करने के दौरान ही पराजित किया होगा। इस राजा का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है।

दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट साम्राज्य का वास्तविक निर्माता था। सामरिक अभियानों में उसने अपने भतीजे कर्क द्वितीय तथा चाचा कृष्ण प्रथम का सहयोग लिया था। उसने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया जो उत्तर में गुजरात तथा मालवा की उत्तरी सीमा से लेकर दक्षिण में पल्लव राज्य की उत्तरी सीमा तक विस्तृत था। अपने समकालीन मध्य भारत, दक्षिणापथ एवं सुदूर दक्षिण के लगभग सभी महत्वपूर्ण शासकों को पराजित कर वह सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट हो गया था। दन्तिदुर्ग के राज्यकाल में राष्ट्रकूटों की राजधानी के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। अल्तेकर का अनुमान है कि लट्टलूर[1] अथवा एलोरा के निकट कोई स्थान उसकी शक्ति का केन्द्र रहा होगा।

दन्तिदुर्ग ने महाराधिराज, परमेश्वर, भट्टारक, पृथ्वीवल्लभ, वल्लभराज, महाराजशर्व, खड्गावलोक, साहसतुंग तथा वैरमेघ नामक उपाधियां धारण कीं। वह धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था और उसने कुछ ग्राम दान में दिए थे। 753-54 ई० में समनगद दानपत्रों के प्रकाशित होने के समय तक वह जीवित था और उसके उत्तराधिकारी कृष्ण प्रथम की प्रथम ज्ञात तिथि 758 ई० है। इसलिए

1. सी० वी० वैद्य की भी मान्यता है कि मान्यखेट नगर की स्थापना के पूर्व लट्टलूर ही राष्ट्रकूटों की राजधानी रही होगी। लट्टलूर का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। वी० के० राजवाड़े के अनुसार यह स्थान शायद चेदि राज्य में स्थित था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दन्तिदुर्ग के शासन का अन्त 754 तथा 758 ई० के बीच किसी समय हुआ।

कृष्ण प्रथम—दन्तिदुर्ग का कोई पुत्र नहीं था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका चाचा कृष्ण प्रथम 756 ई० के आस-पास राजा हुआ। वी० ए० स्मिथ के अनुसार दन्तिदुर्ग को राजसिंहासन से अपदस्थ कर कृष्ण प्रथम स्वयं राजा बन गया था और सी० वी० वैद्य के अनुसार उसने दन्तिदुर्ग को सम्भवतः मार दिया था[1]। किन्तु कर्कराज के शक संवत् 894 के करदा अभिलेख से इन मतों का खंडन हो जाता है। इस अभिलेख में बतलाया गया है कि दन्तिदुर्ग की निःसन्तान मृत्यु हो जाने पर, कृष्ण राजा हुआ[2]। कावि एवं नवसारी अभिलेखों के विवरण से भी प्रतीत होता है कि दन्तिदुर्ग की स्वाभाविक मृत्यु हुई थी।

राज्याभिषेक के समय कृष्ण ने शुभतुंग एवं अकालवर्ष के विरुद धारण किए। राजा होने के कुछ ही समय बाद उसे अपने भतीजे दक्षिणी गुजरात के शासक कर्क द्वितीय से युद्ध करना पड़ा। 757 ई० में सम्राट सूचक उपाधियां धारण कर कर्क गुजरात में स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य करने लगा था। कृष्ण ने उसे पराजित कर अपना अधीनस्थ बना लिया। इसके अतिरिक्त राहप्प नामक शासक पर विजय प्राप्त कर कृष्ण ने उससे पालिध्वज अपहृत कर लिया था। कुछ विद्वानों ने राहप्प का समीकरण कर्क द्वितीय से किया है और कुछ ने उसे चालुक्यों का सेनापति माना है।

कर्क को पराजित करने के उपरान्त कृष्ण ने वातापी के चालुक्यों की शेष शक्ति को समाप्त करने का निश्चय किया। दन्तिदुर्ग की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिवर्मन द्वितीय ने अपनी शक्ति को संगठित कर खोए हुए प्रदेशों को पुनः अधिकृत करने का प्रयास किया। 757 ई० में वह भीमा नदी के तट पर स्थित अपने जयस्कन्धावार में विद्यमान था। परन्तु कृष्ण ने उसे पराजित कर चालुक्य वंश का पूर्ण-रूपेण विनाश कर दिया। गोविन्द तृतीय के शक संवत् 730 (807 ई०) के एक अभिलेख में वर्णित है कि वल्लभ (कृष्ण प्रथम) ने चालुक्य-

1. सी० वी० वैद्य ने बड़ौदा अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर यह सुझाव दिया है। उनके अनुसार बड़ौदा अभिलेख में बतलाया गया है कि कृष्णराज ने अपने एक दुराचारी सम्बन्धी को मारकर अपनी जाति के कल्याण के लिए प्रभुसत्ता अधिकृत कर ली थी (यो वंशमुन्मूल्य-विमार्गभाजं राज्यं स्वयं गोत्र-हिताय)। परन्तु यहां लाट के प्रान्तीय शासक कर्क द्वितीय या अन्य किसी राष्ट्रकूट शासक की ओर संकेत प्रतीत होता है।
2. तस्मिन (न) अपुत्रे च ततपितृव्यः कृष्णराजः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राजलक्ष्मी को अपहृत कर लिया था[1] इसकी पुष्टि कल्याणी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों ने भी की है[2]। और शक संवत् 734 के कर्क द्वितीय के बड़ौदा अभिलेख के अनुसार राजाओं में सिंह कृष्ण प्रथम ने युद्ध की इच्छा से आगे बढ़ते हुए महावराह (कीर्तिवर्मन द्वितीय) को हिरण बना दिया अर्थात रणभूमि से भगा दिया था[3]।

दक्षिण में कृष्ण ने गंगवाड़ी पर आक्रमण किया। गंग शासक श्रीपुरुष के पुत्र सीयगल्ल ने उसका वीरता के साथ सामना किया। प्रारम्भ में सीयगल्ल को कई युद्धों में सफलता प्राप्त हुई, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और कृष्ण ने उसकी राजधानी मान्यपुर या मान्यनगर (तुम्कुरु जिले में स्थित मण्णे नामक स्थान) पर अधिकार कर वहां विजयोत्सव मनाया और गंगों की बहुत अधिक सम्पत्ति अपहृत कर ली। इसके उपरान्त उसने श्रीपुरुष को अपना सामन्त बना लिया। यह युद्ध 768 ई० के आस-पास हुआ था। 769 ई० में कृष्ण गंग-राज्य से वापस चला गया।

768 ई० के लगभग कृष्ण का वेंगी के चालुक्यों से भी युद्ध प्रारम्भ हो गया। चालुक्य राज्य के विरुद्ध भेजी गई राष्ट्रकूट सेना का नेतृत्व कृष्ण के पुत्र युवराज गोविन्द द्वितीय ने किया था। इस युद्ध में भी राष्ट्रकूटों की विजय हुई। 769 ई० में राष्ट्रकूट सेना कृष्णा एवं मूसी नदियों के संगम पर विद्यमान थी। बाद में इन दोनों राजवंशों में सन्धि हो गई। वेंगी के शासक विष्णुवर्द्धन चतुर्थ ने अपने राज्य के कुछ क्षेत्र गोविन्द द्वितीय को दे दिए तथा अपनी पुत्री शीलभट्टारिका का विवाह उसके छोटे भाई ध्रुव के साथ कर दिया।

कृष्ण प्रथम ने दक्षिणी कोंकण पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया और शिलाहार वंशीय सणफुल्ल को वहां का शासक नियुक्त किया। सणफुल्ल शिलाहार राजवंश का संस्थापक था। अपने छोटे भाई नन्नगुणावलोक को कृष्ण ने औरंगाबाद जिले का शासक बनाया। अकालवर्ष एवं शुभतुंग के अतिरिक्त उसने पृथ्वीवल्लभ तथा श्रीवल्लभ की उपाधियां धारण कीं और उत्तराधिकार में प्राप्त साम्राज्य की सीमाओं का काफी विस्तार किया। चालुक्यों की शक्ति का अन्त कर कृष्ण ने कर्नाटक को भी अपने अधीन कर लिया था। भन्दक ताम्र-

---

1. यश्चालुक्यकुलादनून...लक्ष्मीम...आकृष्टवान् वल्लभः।
2. तद्भवो विक्रमादित्यः कीर्तिवर्मा तदात्मजः।
   येन चालुक्यराज्यश्रीरन्तरायिण्यमद्भुवि ॥ (येवूर अभिलेख)।
3. महावराहं हरिणी चकार-प्राज्यप्रभावेः खलुराजसिंहः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पत्रों से प्रमाणित होता है कि मध्य प्रदेश के सम्पूर्ण मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र पर उसका आधिपत्य था।

महान विजेता एवं साम्राज्य निर्माता के अतिरिक्त कृष्ण प्रथम वास्तुकला एवं साहित्य का भी उदार संरक्षक था। प्रसिद्ध जैन विद्वान अकलंक भट्ट उसका समकालीन था। उसने राजवार्तिक तथा अन्य ग्रन्थों की रचना की थी। अपने नाम पर कृष्ण ने कन्नेश्वर (कृष्णेश्वर) नामक एक देवकुल का निर्माण कराया जिसमें बहुत से विद्वान निवास करते थे। उसने 18 शिव-मन्दिर भी बनवाए थे। किन्तु उसकी सबसे महान उपलब्धि थी एलोरा में कैलाश मन्दिर का निर्माण। यह अत्यधिक विशाल एवं वैभवशाली देवालय शैलकृत मन्दिरों का आश्चर्यजनक एवं अद्वितीय उदाहरण है। बड़ौदा अभिलेख के अनुसार जब देवताओं ने कैलाश मन्दिर को देखा, तो उन्होंने भी आश्चर्य चकित होकर कहा कि इस प्रकार का सौन्दर्य, कला में अन्यत्र दुर्लभ है। इस देवालय का प्रारम्भिक नाम इसके निर्माता कृष्ण प्रथम के नाम पर कृष्णेश्वर रखा गया था।

घमोरी (अमरावती तालुक में) से प्राप्त 1800 चांदी के सिक्कों के एक ओर राजा का शीश तथा दूसरी ओर परममाहेश्वर-माहादित्यपादानुध्यात-श्रीकृष्णराज लेख अंकित है। विश्वनाथ रेउ के अनुसार ये कृष्ण प्रथम के सिक्के हैं[1]। परन्तु यह मत बहुत सन्देहपूर्ण होने के कारण बहुमान्य नहीं है। वस्तुतः अभी तक ऐसा कोई सिक्का नहीं मिला है जो निश्चित रूप से किसी राष्ट्रकूट शासक से सम्बन्धित किया जा सके। कृष्ण प्रथम का अन्तिम तिथि-युक्त अभिलेख शक संवत् 692 (770 ई०) का है। उसने लगभग 773 ई० तक शासन किया।

गोविन्द द्वितीय—कृष्ण प्रथम ने अपने पुत्र गोविन्द द्वितीय को 770-72ई० के बीच युवराज नियुक्त कर दिया था और युवराज की हैसियत से ही उसने वेंगी के चालुक्य शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ को पराजित किया था। गोविन्द द्वितीय बहुत अच्छा घुड़सवार भी था। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह 774-775 ई० के लगभग राजा हुआ। उसने महाराजाधिराज, विक्रमावलोक, प्रभूतवर्ष एवं वल्लभ नामक विरुद धारण किए। दौलताबाद ताम्रपत्रों के अनुसार गोविन्द द्वितीय ने गोवर्धन (नासिक जिले में स्थित) का उद्धार किया और पारियात्र नामक शासक को पराजित किया था। पारियात्र की पहचान विवादास्पद है। अल्तेकर के अनुसार ध्रुव नासिक एवं खानदेश का गवर्नर था, इसलिए

1. राष्ट्रकूटों का इतिहास, पृ० 59।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गोवर्धन में सम्भवतः उसने अपने विद्रोही भाई ध्रुव के विरुद्ध विजय प्राप्त की होगी।

गोविन्द ने युवराज के रूप में अपनी प्रशासनिक योग्यता एवं सैन्य-संचालन की क्षमता का अच्छा परिचय दिया था, किन्तु राजा होने के कुछ ही समय के बाद उसने विलासितापूर्ण जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया और प्रशासन का उत्तरदायित्व ध्रुव को दे दिया। ध्रुव बहुत योग्य तथा महत्वाकांक्षी था। अपने भाई की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर वह अपने को वास्तविक शासक समझने लगा और अपने नाम से शासनादेश भी जारी करने लगा। ध्रुव की इन गतिविधियों ने गोविन्द का ध्यान आकृष्ट किया और उसने सजग होकर शासन का समस्त कार्य अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद उसने ध्रुव को पराजित करने के लिए मालवा, गंगवाड़ी, वेंगी तथा कांची के शासकों से गठबन्धन किया और उनसे मिलने वाली सम्भावित सहायता के बदले में उन्हें अनेक प्रलोभन दिए। ये सभी राजवंश राष्ट्रकूटों के पुराने शत्रु थे। उनसे सन्धि करने पर गोविन्द के मन्त्री आदि भी उसका साथ छोड़कर ध्रुव के समर्थक बन गए और उपर्युक्त शासकों की सहायता पहुंचने के पहले ही ध्रुव ने गोविन्द पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। गोविन्द या तो युद्ध में मारा गया अथवा बन्दी बना लिया गया था और 780 ई० में ध्रुव राष्ट्रकूट राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हो गया[1]।

ध्रुव–अपने अग्रज गोविन्द द्वितीय को पराजित करने के उपरान्त ध्रुव 780 ई० के आस-पास राजा हुआ। जिनसेन के जैन-हरिवंशपुराण के अनुसार कृष्ण का पुत्र श्रीवल्लभ 783 ई० में दक्षिण में शासन कर रहा था[2]। गोविन्द द्वितीय तथा ध्रुव, दोनों ने ही श्रीवल्लभ का विरुद धारण किया था। चूंकि

1. के० वी० सुब्रमण्यम के अनुसार गोविन्द द्वितीय उदार एवं दूरदर्शी शासक था। वह अपनी दुर्बलताओं तथा ध्रुव की योग्यता से अवगत था। इसलिए राज्य एवं प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए, उसने स्वयं राजसिंहासन त्याग दिया और ध्रुव को प्रशासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व दे दिया। सुब्रमण्यम की मान्यता है कि ध्रुव, गोविन्द द्वितीय के प्रति सदैव निष्ठावान बना रहा (History of Karnataka, p. 117)। परन्तु ये विचार प्रामाणिक साक्ष्यों की अपेक्षा कल्पना एवं अनुमान पर अधिक आधारित हैं।
2. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तम-दिशां पंचोत्तरेषूत्तराम्।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गोविन्द की मृत्यु 783 ई० के पहले ही हो गई थी, इसलिए जैन-हरिवंशपुराण में सम्भवतः ध्रुव प्रथम का उल्लेख हुआ है। धूलिया ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है कि 779 ई० तक ध्रुव गोविन्द का आधिपत्य मानता रहा और 780 ई० के लगभग उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली। उसके शासन का प्रारम्भिक भाग शान्तिपूर्ण बीता। उत्तराधिकार में स्वाभाविक रूप से राज्य पाने के स्थान पर उसने इसे बल-प्रयोग द्वारा अपहृत किया था। इसलिए कुछ सामन्त तथा मन्त्री आदि उसके विरुद्ध थे। ध्रुव ने पहले प्रजा में अपनी प्रभुसत्ता के प्रति आस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया। इसके उपरान्त उसने उन राजाओं से युद्ध करने का निश्चय किया जिनके साथ गोविन्द द्वितीय ने अपने राजसिंहासन की सुरक्षा के लिए गठबन्धन किया था।

ध्रुव ने सर्वप्रथम गंगवाड़ी पर आक्रमण किया। गंग शासक श्रीपुरुष बहुत वृद्ध हो चुका था। इसलिए प्रशासन का उत्तरदायित्व उसका पुत्र युवराज शिवमार द्वितीय ही मुख्यतः वहन कर रहा था। शिवमार के नेतृत्व में गंगों ने बहुत वीरता से राष्ट्रकूटों से युद्ध किया। गंग अभिलेखों के अनुसार प्रारम्भ में शिवमार को राष्ट्रकूटों के विरुद्ध कुछ सफलता प्राप्त हुई, परन्तु ध्रुव जैसे असाधारण शासक एवं सेनानायक के समक्ष वह अधिक समय तक नहीं टिक सका। ध्रुव ने शिवमार को पराजित करने के पश्चात् कारागार में डाल दिया और सम्पूर्ण गंगवाड़ी को अपने साम्राज्य में मिलाकर अपने पुत्र स्तम्भ रणावलोक को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। ध्रुव द्वारा गंगों की पराजय का विवरण न केवल राष्ट्रकूट शासकों के अभिलेखों में मिलता है, वरन् इसकी पुष्टि गंग शासकों के अभिलेखों ने भी की है।

इसके पश्चात् ध्रुव ने सम्भवतः पल्लव राज्य पर आक्रमण किया। पल्लव शासक दन्तिवर्मन ने भी ध्रुव के विरुद्ध गोविन्द द्वितीय का साथ दिया था। राधनपुर अभिलेख के अनुसार एक ओर वास्तविक समुद्र तथा दूसरी ओर (राष्ट्रकूटों की) अगणित सेना रूपी समुद्र से घिर जाने पर पल्लव शासक भयभीत हो गया और अपनी सेना के बहुत से हाथी ध्रुव को भेंट कर उसने, पल्लव राज्य की सुरक्षा की। ध्रुव ने वेंगी के शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ पर भी अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की, यद्यपि वह ध्रुव का श्वसुर था।

उपर्युक्त विजयों के उपरान्त ध्रुव दक्षिण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट बन गया था, परन्तु उसकी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा की अभी तुष्टि नहीं हुई थी। इसलिए उसने उत्तर भारत पर आक्रमण करने की एक सुसंगठित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

योजना बनाई[1]। हर्षवर्धन के समय से कान्यकुब्ज उत्तर भारत की राजनीति का केन्द्र बन गया था। ध्रुव के शासनकाल में राजपूताने के गुर्जर-प्रतीहार तथा गौड़ के पाल शासक सबसे अधिक शक्तिशाली थे और उत्तर भारत की प्रभुसत्ता के लिए दोनों परस्पर प्रतिद्वन्दी थे। कान्यकुब्ज में उस समय इन्द्रायुध राज्य कर रहा था। उसकी स्थिति कठपुतली के समान थी। प्रतीहार वत्सराज ने कन्नौज पर आक्रमण कर इन्द्रायुध को पराजित कर दिया और उसे अपना सामन्त बना लिया। वत्सराज की यह सफलता धर्मपाल के लिए चुनौती थी, इसलिए उसने कन्नौज को आक्रान्त किया। परन्तु वत्सराज से उसे भी मुंह की खानी पड़ी। इस पराभव के बाद धर्मपाल प्रतीहारों से पुनः युद्ध करने के लिए तैयारियां कर रहा था और उसने अपनी सेना का प्रमुख भाग गंगा-यमुना के दोआब में तैनात कर दिया था।

इसी दौरान में ध्रुव उत्तर भारत की ओर बढ़ा। 782 ई० में उसकी सेना लाट पहुंच गई थी। कुछ विद्वानों के अनुसार वत्सराज ने मालवा पर आक्रमण किया था और ध्रुव अपने सामन्त लाट के शासक कर्क द्वितीय के साथ मालवा के राजा की सहायता के लिए गया था। इसलिए उसका वत्सराज से युद्ध हुआ। धर्मपाल ने राष्ट्रकूट शासक परबल की पुत्री रट्टादेवी के साथ विवाह किया था। इसलिए कुछ विद्वानों ने यह सुझाव भी दिया है कि ध्रुव, धर्मपाल की ओर से वत्सराज से युद्ध करने के लिए गया होगा। परन्तु यह अनुमान अग्राह्य है, क्योंकि ध्रुव ने बाद में धर्मपाल को भी पराजित किया था। वस्तुतः सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु ही ध्रुव ने उत्तर भारत को आक्रान्त किया था। उसने अपनी सेना को नर्मदा नदी के निकट एकत्रित कर इसे कई कुमुकों में विभाजित किया और अपने सुयोग्य पुत्र गोविन्द तृतीय को उनके संचालन का उत्तरदायित्व दिया। इसके पश्चात् वह स्वयं वत्सराज के विरुद्ध बढ़ा। प्रतीहारों की प्रमुख सेना उस समय गंगा-यमुना के दोआब में थी, इसलिए ध्रुव को नर्मदा नदी तथा मालवा पार करने में अधिक विरोध एवं कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। वत्सराज के लिए

1. पी० बी० देसाई आदि के अनुसार, उसने पहले उत्तर भारत के विरुद्ध अभियान किया और बाद में दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त की (History of Karnataka, p. 119)। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है। दक्षिणापथ एवं सुदूर दक्षिण में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित किए बिना उत्तर भारत की विजय के लिए जाना ध्रुव के लिए बहुत कठिन था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यह आक्रमण आकस्मिक था और उसकी मुख्य सेना के पहुंचने के पूर्व ही ध्रुव ने उसे पराजित कर दिया। यह युद्ध 789 ई० के पहले हुआ था। अल्तेकर ने इसकी तिथि 787 ई० के आस-पास रखी है जो सही प्रतीत होती है। वत्सराज पराजित होकर सम्भवतः राजपूताने की ओर चला गया था।

इस सफलता से प्रोत्साहित होकर ध्रुव ने धर्मपाल से युद्ध करने का निश्चय किया। धर्मपाल की भी मुख्य सेना वत्सराज से युद्ध करने के लिए गंगा-जमुना के दोआब में विद्यमान थी। अतएव वह भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ राष्ट्रकूट आक्रान्ता का मुकाबला नहीं कर सका और उसे पराजित होकर युद्ध के मैदान से भागना पड़ा।

देवली अभिलेख के अनुसार ध्रुव के पास तीन श्वेत छत्र थे। इनमें से दो उसने वत्सराज से अपहृत किए थे और तीसरा कोशल के शासक से। अमोघवर्ष के संजन दानपत्रों में वर्णित है कि गौड़ का राजा गंगा-यमुना के दोआब में पराजित हुआ और ध्रुव ने उसके श्वेत-छत्रों का अपहरण कर लिया था[1]। कर्क द्वितीय के सूरत ताम्रपत्रों में शिव तथा ध्रुव को **गांगोधसंततिनिरोधविवृद्धकीर्तिः** कहा गया है। इस काव्यात्मक विवरण से संजन अभिलेख की उपर्युक्त सूचना की पुष्टि होती है। एस० सी० नन्दिमथ के अनुसार ध्रुव ने उपर्युक्त विजयें 786 तथा 790 ई० के बीच प्राप्त की होंगी[2]। परन्तु उसकी इन सफलताओं के परिणाम-स्वरूप न तो राष्ट्रकूट साम्राज्य की उत्तरी सीमा का विस्तार हुआ और न ही कोई अन्य स्थाई लाभ हुआ। कुछ समय तक गंगा एवं यमुना नदियों के तटवर्ती क्षेत्र में ठहरने के उपरान्त, शत्रुओं से अपहृत की हुई सम्पत्ति और राजकीय-चिह्नों आदि के साथ 790 ई० में ध्रुव दक्षिण भारत के लिए रवाना हुआ। इस वापसी यात्रा के दौरान में उसने वेंगी के चालुक्य शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ पर आक्रमण किया। पूर्वी चालुक्य ध्रुव के समक्ष टिक नहीं सकते थे। अतएव विष्णुवर्धन ने युद्ध करने के स्थान पर मित्रता का हाथ बढ़ाया और उसके साथ अपनी पुत्री शीलभट्टारिका का विवाह कर दिया।

पश्चिमी गंगों, वेंगी के चालुक्यों, पल्लवों, प्रतीहारों तथा पालों को परा-

1. गंगायमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः। लक्ष्मीलीलारविन्दानि श्वेतच्छत्राणि योऽहरत्। (संजन दानपत्र)। गौडीयं शरदिन्दुपादधवलंछत्रद्वयं केवलं तस्मान्नाहृत तद्य-शोपि कुकुभा प्रान्तेस्थितिम् तत्क्षणात्। (बनी-डिंडोरी अभिलेख)।
2. History of Karnataka, p. 118.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जित करने के पश्चात् ध्रुव सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हो गया था। सिन्ध के अरब उस समय पतनावस्था में होने के कारण भारत की राजनीति में उथल-पुथल करने की स्थिति में नहीं थे। अतएव अपने राज्यकाल के अन्तिम दिनों में ध्रुव ने उत्तराधिकार की समस्या सुलझाई। उसके चार पुत्र थे—कर्क, स्तम्भ, गोविन्द तृतीय तथा इन्द्र। कर्क की मृत्यु ध्रुव के राज्यकाल में ही हो गई थी। शेष तीन पुत्रों में स्तम्भ सबसे ज्येष्ठ था। अतः वही उसका वैध उत्तराधिकारी था। परन्तु गोविन्द तृतीय की योग्यता के कारण ध्रुव उससे अधिक प्रभावित था और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। उत्तराधिकार के लिए सम्भावित युद्ध के खतरे को समाप्त करने के उद्देश्य से उसने स्तम्भ को गंगवाड़ी का स्वतन्त्र शासक नियुक्त कर दिया और इन्द्र को मालवा तथा गुजरात का। इसके पश्चात् एक विशाल समारोह आयोजित कर 791-92ई० के मध्य ध्रुव ने गोविन्द तृतीय का विधिवत राज्याभिषेक कर दिया।

ध्रुव ने कलिवल्लभ (युद्ध से प्रेम करने वाला), निरुपम (अद्वितीय), धारावर्ष, श्रीवल्लभ, महाराजाधिराज तथा परमेश्वर नामक उपाधियां धारण की। उसकी अग्रमहिषी शीलभट्टारिका के नाम से भी शासनादेश ज़ारी किए गए थे। उसका राज्य उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी की घाटी तक विस्तृत था। उसके 13 वर्षीय (780-793 ई०) राज्यकाल में राष्ट्रकूट राजवंश की शक्ति, प्रतिष्ठा एवं समृद्धि में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई थी।

गोविन्द तृतीय—ध्रुव की मृत्यु के पश्चात् 793 ई० में उसका पुत्र गोविन्द तृतीय राजा हुआ। पैठण ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि गोविन्द को एक औपचारिक राज्याभिषेक के अवसर पर अपने पिता से राज्य प्राप्त हुआ था[1]। कर्क के सूरत ताम्रपत्रों[2] ने की इसकी पुष्टि की है। फिर भी वह अपने बड़े भाई स्तम्भ से सशंकित था। इसलिए प्रारम्भ में गोविन्द ने **साम** नीति द्वारा बहुत से विरोधियों, सामन्तों तथा मन्त्रियों आदि को विभिन्न प्रकार से सन्तुष्ट कर उनका सहयोग लेने का प्रयास किया। उसका छोटा भाई इन्द्र उसका समर्थक था।

स्तम्भ कुछ ही समय बाद गोविन्द को राजसिंहासन से अपदस्थ करने के

---

1. यश्च प्रभु...पितुस्सकाशात् मूर्धाभिषिक्त-नृपसमंतमाशुराज्यम् आसेदिवान्...।
2. राज्याभिषेक कलशैरभिषिच्य दत्तां।
   राजाधिराजपरमेश्वरतां स्वपित्रा ॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिए प्रयत्नशील हो गया। उसने 12 सामन्तों तथा अन्य शासकों[1] का एक संघ बनाया जिसका नेतृत्व सम्भवतः कांची के पल्लव शासक दन्तिवर्मन ने किया था। इस संघ में नोलम्बवाड़ी, बनवासी तथा धारवाड़ के शासक भी शामिल थे। जब गोविन्द तृतीय को स्तम्भ की इन गतिविधियों के विषय में गुप्तरूप से सूचना दी गई तो उसने सबसे पहले गंग शासक शिवमार को जेल से मुक्त कर उसे गंगवाड़ी का राज्य वापस देने का निश्चय किया। शिवमार एवं स्तम्भ के के बीच वैमनस्य उत्पन्न करने के उद्देश्य से गोविन्द तृतीय ने यह चाल चली थी। परन्तु उसकी यह योजना असफल रही और स्तम्भ शिवमार का शत्रु बनने के स्थान पर उसका मित्र हो गया[2]। इसके बाद गोविन्द तृतीय ने गंगवाड़ी पर आक्रमण कर दिया। स्तम्भ के लिए यह आक्रमण आकस्मिक था और समयाभाव के कारण वह अपने मित्र-शासकों की सहायता प्राप्त करने में असमर्थ रहा। इसलिए गोविन्द ने उसे सरलता से पराजित कर दिया। तदुपरान्त उसने शिवमार को हराया और कारागार में डाल दिया। राधनपुर ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है कि गोविन्द ने यह विजय 798 ई० के लगभग प्राप्त की थी। परन्तु उसने स्तम्भ के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और उसे गंगवाड़ी का पुनः शासक बना दिया। शिवमार के छोटे भाई विजयादित्य ने भी राष्ट्रकूटों से युद्ध किया, किन्तु पराजित हुआ।

इसके पश्चात् गोविन्द तृतीय ने नोलम्बवाड़ी के विरुद्ध अभियान किया। नोलम्बवाड़ी का राजा चारुपोनेर गोविन्द से युद्ध करने के लिए सर्वथा अक्षम था। इसलिए आत्मसमर्पण कर वह गोविन्द तृतीय का अधीनस्थ बन गया। तदनन्तर गोविन्द ने पल्लव राज्य पर आक्रमण कर दन्तिवर्मन को पराजित किया। 804 ई० के ब्रिटिशम्यूजियम ताम्रपत्रों के अनुसार कांची पर विजय

---

1. नवसारी दानपत्र में इन राज्यों की संख्या 13 बतलाई गई है और उनके नाम इस प्रकार हैं—पांड्य, पल्लव, चोल, गंग, केरल, आन्ध्र, वेंगी, चालुक्य, मौर्य, गुर्जर, कोशल, अवन्ति तथा सिंहल। परन्तु यह सूची पारम्परिक प्रतीत होती है और इनमें से कुछ ही राज्यों के शासकों ने उसे समर्थन दिया था (Karnataka through the Ages, p. 121)।
2. स्तम्भ ने भी सम्भवतः शिवमार को उसका राज्य वापस देने का वादा किया होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राप्त करने के पश्चात् वह रामेश्वरम् में अपने सैनिक-शिविर में विद्यमान था। इससे प्रमाणित होता है कि उसने दन्तिवर्मन को 804 ई० के पहले पराजित किया था। लेकिन यह विजय निर्णायक एवं स्थाई नहीं सिद्ध हुई और अपने शासन के अन्तिम वर्षों में गोविन्द को कांची पर पुनः आक्रमण करना पड़ा था।

वेंगी का चालुक्य शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ यद्यपि गोविन्द तृतीय का नाना था, तथापि गोविन्द ने उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। राधनपुर तथा संजन ताम्रपत्रों के अनुसार विष्णुवर्धन चतुर्थ को पराजित होने के उपरान्त गोविन्द तृतीय के अस्तबलों के लिए अहाता तैयार करना पड़ा और उसके शिविर का फर्श भी साफ करना पड़ा था। यदि गोविन्द ने अपने इस निकट सम्बन्धी के साथ सचमुच ऐसा व्यवहार किया था, तो इसका कारण अज्ञात है।

इन विजयों के परिणामस्वरूप गोविन्द तृतीय दक्षिण भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली शासक हो गया था। इसके पश्चात् उसने उत्तर भारत की राजनीति की ओर ध्यान दिया। उत्तर भारत में उस समय प्रतीहारों एवं पालों में संघर्ष चल रहा था। प्रतीहार वत्सराज से अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से धर्मपाल ने कन्नौज पर आक्रमण कर इन्द्रायुध को हरा दिया और उसके स्थान पर अपने संरक्षित चक्रायुध को राजा बनाया। धर्मपाल के खालिमपुर अभिलेख के अनुसार उत्तर भारत के अनेक शासकों ने चक्रायुध के राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित होकर इसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट द्वितीय अपने पिता से अधिक महत्वाकांक्षी तथा साहसिक शासक था। उसने कन्नौज को आक्रान्त कर चक्रायुध को परास्त कर दिया। चक्रायुध की ओर से धर्मपाल नागभट्ट के विरुद्ध बढ़ा, परन्तु वह भी पराजित हुआ। इन विजयों के बाद नागभट उत्तर भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट हो गया था और वह सम्भवतः मालवा तथा गुजरात की ओर अपने साम्राज्य का प्रसार करना चाहता था। इन प्रदेशों पर राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व था। इसलिए गोविन्द तृतीय नागभट द्वितीय की बढ़ती हुई शक्ति से सजग हो गया। कुछ विद्वानों के अनुसार नागभट पर आक्रमण करने के लिए धर्मपाल ने ही गोविन्द तृतीय को भड़काया होगा, परन्तु उस समय की उत्तर भारत की राजनैतिक अवस्था तथा गोविन्द की महत्वाकांक्षा को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव अग्राह्य है। ध्रुव की भांति गोविन्द न केवल प्रतीहारों की शक्ति के प्रसार को रोकना चाहता था, वरन् उत्तर भारत में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए भी इच्छुक था।

इस साहसिक अभियान के पूर्व गोविन्द ने बड़े पैमाने पर तैयारियां कीं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थीं। उसने अपने कुछ सेनानायकों को मालवा, कोशल, उड़ीसा तथा वेंगी राज्यों पर नियन्त्रण रखने का उत्तरदायित्व दिया और अपने भाई इन्द्र को मालवा एवं गुजरात में राष्ट्रकूट सत्ता सुदृढ़ बनाए रखने तथा विन्ध्य के मार्गों पर कड़ी निगरानी रखने का आदेश दिया। इसके पश्चात् वह स्वयं एक विशाल सेना के साथ गंगा-यमुना के दोआब की ओर बढ़ा। राष्ट्रकूट अभिलेखों में गोविन्द तृतीय की उत्तर भारत की विजय का वर्णन अस्पष्ट तथा अतिरंजित है। 811-12 ई० के बड़ौदा ताम्रपत्रों के अनुसार इन्द्र ने अकेले ही गुर्जर-प्रतीहारों को पराजित कर दिया था। अन्य अभिलेखों में बतलाया गया है कि गोविन्द ने जैसे ही उत्तर भारत में प्रवेश किया, नागभट द्वितीय ने उससे डरकर किसी अज्ञात स्थान में शरण ली और स्वप्न में भी वह युद्ध के नाम से भयभीत हो उठता था[1]।

गोविन्द तृतीय तथा नागभट द्वितीय के बीच हुए युद्ध के स्थल का उल्लेख नहीं हुआ है। अल्तेकर के अनुसार दोनों की मुठभेड़ मध्य प्रदेश में झांसी तथा ग्वालियर के मध्यवर्ती किसी स्थान पर हुई होगी। नागभट पराजित हुआ और उसे भागकर राजपूताने में शरण लेनी पड़ी[2]। दुर्बल शासक चक्रायुध ने बिना युद्ध किए ही आत्मसमर्पण कर दिया और धर्मपाल ने या तो भयभीत होकर अथवा पराभूत होकर गोविन्द तृतीय की अधीनता स्वीकार कर ली[3]। अमोघवर्ष प्रथम के संजन अभिलेख के अनुसार दक्षिण भारत की रणभेरी से हिमालय की कन्दराएं अनुगुंजित हो गईं थीं[4]। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। गोविन्द हिमालय तक नहीं गया होगा। परन्तु उसने सम्भवतः प्रयाग, वाराणसी एवं गया आदि तीर्थ-स्थानों के दर्शन किए थे।

गोविन्द तृतीय की उत्तर भारत की दिग्विजय का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्रीय लाभ की महत्वाकांक्षा नहीं, वरन् अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना था। चक्रायुध, नागभट द्वितीय तथा धर्मपाल पर विजय प्राप्त करने के बाद उसकी अधिसत्ता की धाक दक्षिण भारत की भांति उत्तर भारत में भी स्थापित हो गई थी। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार, इसके उपरान्त वह मालवा वापस चला गया

---

1. गुर्जरोनष्टः स्वापि भयात् तथा न समरं स्वप्ने पि पश्येद्यथा।
2. सी० वी० वैद्य के अनुसार प्रतीहारों को पराजित करने के बाद गोविन्द तृतीय ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था।
3. स्वयमेव उपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्मचक्रायुधौ।
4. हिमवत्पर्व·····दूर्ध्वनितं तूर्यकैर्दि-गुणितं तत्कन्दरे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और 799-800 ई० के लगभग राष्ट्रकूट सेना शायद इलाहाबाद-चित्रकूट-सागर मार्ग से वापस लौट गई[1] पी० बी० देसाई का अनुमान है कि गोविन्द तृतीय 795 ई० के लगभग उत्तर भारत की दिग्विजय के लिए रवाना हुआ होगा और 800 ई० के आस-पास वहां से वापस आ गया। उत्तर भारत से लौटने के बाद गोविन्द ने मालव, कोशल, कलिंग, वेंगी, दहाल (जबलपुर का निकटवर्ती क्षेत्र) तथा ओड्र (उड़ीसा) के शासकों को पराजित किया[2]।

गोविन्द तृतीय जब उत्तर भारत की विजय में व्यस्त था, उस बीच दक्षिण भारत के द्रविड़ शासकों ने उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर, राष्ट्रकूटों के विरुद्ध एक संघ बना लिया था। इस संघ में पल्लव, पांड्य, चोल, केरल तथा पश्चिमी गंग राज्यों के शासक शामिल थे। उक्त राजाओं ने राष्ट्रकूट साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। यह सूचना पाकर गोविन्द तृतीय उनसे युद्ध करने के लिए तुरन्त रवाना हुआ और 802-803 ई०[3] में, तुंगभद्रा नदी के तटवर्ती आलमपुर को आधार बनाकर वह दक्षिण की ओर बढ़ा। राष्ट्रकूटों ने दक्षिण के राजाओं के सम्मिलित मोर्चे को तहस-नहस कर दिया। गोविन्द की यह विजय दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीति में निर्णायक सिद्ध हुई और गंग शासक युद्ध में मारा गया। पल्लवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् गोविन्द ने कांची को अधिकृत कर लिया, और उसे आधार बनाकर पांड्य तथा केरल राज्यों के शासकों को पराजित किया।

विष्णुवर्धन चतुर्थ के राज्यकाल के अन्त तक वेंगी के चालुक्यों एवं राष्ट्रकूटों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बने रहे। उसकी मृत्यु के उपरान्त 799 ई० में विजयादित्य द्वितीय राजा हुआ। उसने राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व मानने से इन्कार कर दिया और गोविन्द के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु इसी दौरान में विजयादित्य के भाई भीमसलुक्कि ने उत्तराधिकार के लिए उससे युद्ध छेड़ दिया और गोविन्द तृतीय से सहायता की याचना की। इस गृह-युद्ध ने राजनैतिक परिस्थिति को गोविन्द के अनुकूल बना दिया। 803 ई० में उसने वेंगी को आक्रान्त किया और विजयादित्य द्वितीय को पराजित कर उसके स्थान पर

1. Early History of the Deccan, Vol I, p. 270.
2. Karnataka through the Ages, p. 237.
3. कुछ विद्वानों के अनुसार गोविन्द तृतीय ने 808 ई० के बाद दक्षिण भारत पर आक्रमण किया होगा और समस्त द्रविड़ राजाओं को पराजित करने में उसे अनुमानतः दो वर्ष लगे होंगे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भीमसलुक्कि को वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

गोविन्द तृतीय की बढ़ी हुई शक्ति से सिंहल का राजा भी सम्भवतः सशंकित हुआ और उसने अपनी तथा अपने मन्त्री की प्रतिमाएं राष्ट्रकूट सम्राट को भेंटकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया। इन मूर्तियों को गोविन्द ने मान्यखेट में स्थित एक शिव-मन्दिर के समक्ष अपने विजय-स्तम्भों के रूप में स्थापित करा दिया था[1]।

शासन के अन्तिम दिनों में गोविन्द तृतीय ने अपने पुत्र शर्व अमोघवर्ष को युवराज नियुक्त कर दिया। चूंकि अमोघवर्ष उस समय अल्पायु का बालक था, अतएव गोविन्द ने अपने भतीजे कर्क को उसका संरक्षक बना दिया। कर्क मालवा एवं गुजरात का प्रान्तीय शासक था।

गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट वंश के महानतम शासकों में से एक था। उसका प्रभुत्व हिमालय से लेकर श्रीलंका तक और सौराष्ट्र से बंगाल तक स्थापित हो गया था। युद्धों में वह अदम्य शौर्य एवं उत्साह प्रदर्शित करता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में उसकी तुलता पार्थ (अर्जुन) से की गई है और कुछ विद्वानों ने उसे सिकन्दर महान के समकक्ष रखा है। बनी डिंडोरी अभिलेख में बतलाया गया है कि गोविन्द के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् राष्ट्रकूट अजेय हो गए थे। इस विवरण में बहुत कुछ सत्यांश है। उसने उत्तर में मालवा को तथा दक्षिण में गंगवाड़ी को जीत कर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। उसने श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ, प्रभूतवर्ष, विमलादित्य, कीर्तिनारायण, जगत्तुंग, त्रिभुवनधवल तथा जनवल्लभ की उपाधियां धारण कीं। दिसम्बर 813 ई० में गोविन्द तृतीय ने तोखर्दे ताम्रपत्र जारी किए थे। 814 ई० में उसके राज्यकाल का अन्त हो गया।

शर्व अमोघवर्ष प्रथम—गोविन्द तृतीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शर्व अमोघवर्ष प्रथम 814 ई० में राजा हुआ। राज्यारोहण के समय वह केवल 6 वर्ष का बालक था[2]। इसलिए उसने मालवा एवं गुजरात के शासक कर्क के संरक्षण

---

1. लंकातः किलतत्प्रभुप्रतिकृती कांचीमुपेतौ ततः।
कीर्तिस्तम्भनिभौ शिवायतनके येनेह संस्थापितौ॥ (संजन ताम्रपत्र)।
2. Altekar, Rashtrakutas and their Times, pp. 71-72.
कुछ विद्वानों के अनुसार अमोघवर्ष 16 वर्ष का आयु में राजा हुआ।
(Karnataka through the Ages, p. 237)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में कई वर्ष तक राज्य किया। अमोघवर्ष के शासन के प्रारम्भ के कुछ वर्ष शान्तिपूर्ण बीते, परन्तु 817 ई० के आस-पास उसके विरुद्ध विद्रोह के बादल उमड़ने लगे। संजन ताम्रपत्रों के अनुसार कलि के प्रभाव के कारण (शनि की भृकुटि-भंग मात्र से) मन्त्रियों, सामन्तों, राजकीय पदाधिकारियों तथा सम्बन्धियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिसमें सहस्रों व्यक्तियों का संहार हुआ। जो अधिकारी आदि उसके प्रति स्वामिभक्त थे, उनका वध कर दिया गया और अमोघवर्ष को राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया गया था। इस अराजकता एवं अव्यवस्था की स्थिति में जन-जीवन तथा स्त्रियों का सम्मान असुरक्षित हो गया था[1]। किन्तु कर्क ने विद्रोहियों को पराजित कर 821 ई० तक अमोघवर्ष को पुनः राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। इस प्रकार अपनी विपत्तियों पर विजय प्राप्त कर देदीप्यमान सूर्य की भांति उसका पुनः अभ्युदय हुआ[2]।

इस विवरण में स्पष्टता का अभाव है। अमोघवर्ष के विरुद्ध हुई क्रान्ति में भाग लेने वाले शत्रु-शासकों के न तो नामों का उल्लेख हुआ है और न युद्ध-स्थल का। परन्तु यह दृष्टव्य है कि अमोघवर्ष के शत्रुओं को राष्ट्रकूट कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि विद्रोहियों में सम्भवतः उसके पारिवारिक प्रतिद्वन्दी प्रमुख थे। स्तम्भ के पुत्र शंकरगण को गंगवाड़ी का गर्वनर नहीं नियुक्त किया गया था। अतएव वह अमोघवर्ष का विरोधी हो गया। उसे कुछ सामन्तों, राजाओं एवं मन्त्रियों का भी सहयोग मिला होगा। अमोघवर्ष के शत्रुओं में दूसरा महत्वपूर्ण शासक वेंगी का चालुक्य विजयादित्य द्वितीय था। गोविन्द तृतीय ने विजयादित्य को वेंगी के राजसिंहासन से अपदस्थ कर उसके भाई भीमसलुक्कि को राजा बनाया था। गोविन्द जैसे शक्तिशाली सम्राट के जीवनकाल में विजयादित्य ने राष्ट्रकूटों का विरोध करने का साहस नहीं किया, किन्तु अमोघवर्ष के राज्य

1. नश्यन्नन्तरनुप्रविश्य विषमोभायाभयोसौ कलिः।
सामन्तासचिवन्स्वबान्धवजनानक्षोभयत्स्वीकृताम्।
शठमंत्रप्रविधायत्कूटशपथैरोशस्वतन्त्रा स्वयं।
विनिहृत्योचितयुक्तकारिपुरुषान्सर्वे स्वयंग्राहिणः॥
परयोषिदुहिता स्वसेति न पुनर्भेदपशूनामिव।
प्रभुरेवं कलिकालमित्य वसितं सद्वृत्तमुधृतः॥

2. गुरुबुधमनुयातस्सार्थपातालमल्लादुदयगिरि-महिम्नोरट्टमार्तण्डदेवः।
पुनरुदयमुपेत्योध्रुवतेजस्वि चक्रं प्रतिहतमर्थ-कृत्वा लोकमेकः पुनाति॥
(संजन ताम्रपत्र)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

काल में उसने राष्ट्रकूट साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और भीमसलुक्कि को राजपीठ से हटाकर स्वयं राजा बन गया।

816 ई० के नवसारी ताम्रपत्रों में अमोघवर्ष के विरुद्ध हुई क्रान्ति का उल्लेख नहीं है, किन्तु गुजरात के शासक कर्क के 821 ई० के सूरत ताम्रपत्रों में इसका वर्णन है। इसलिए यह विद्रोह 816 ई० के बाद तथा 821 ई० के पूर्व किसी समय हुआ होगा। वेंगी के चालुक्य अम्म प्रथम के इडर ताम्रपत्रों के अनुसार विजयादित्य द्वितीय 12 वर्ष तक राष्ट्रकूटों एवं गंगों से संघर्ष करता रहा और इस अन्तराल में उसने 108 युद्धों में राष्ट्रकूटों को पराजित किया था[1]। यह विवरण यद्यपि बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण है, परन्तु इससे यह अवश्य प्रमाणित होता है कि पूर्वी चालुक्यों ने अमोघवर्ष को कई बार पराजित किया होगा। इन्द्र तृतीय के वेगुम्रा ताम्रपत्रों में भी बतलाया गया है कि अमोघवर्ष ने चालुक्य रूपी समुद्र में समाई अपने राजवंश की प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया था[2]। 866 ई० के सिरूर ताम्रपत्रों के अनुसार वेंगी के शासक ने अमोघवर्ष की वन्दना की थी। गोविन्द चतुर्थ के 933 ई० के सांगली ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि अमोघवर्ष ने विंगवल्ली के युद्ध-स्थल पर चालुक्यों को बुरी तरह परास्त कर यमराज को विशाल प्रीतिभोज दिया था[3]। उपर्युक्त विवरणों से प्रमाणित होता है कि बाद में राष्ट्रकूटों ने चालुक्यों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और विंगवल्ली के युद्ध में बहुत रक्तपात एवं नरसंहार हुआ था। अल्तेकर के अनुसार अमोघवर्ष ने 830ई० के लगभग विजयादित्य द्वितीय को पराजित किया होगा, परन्तु विंगवल्ली के युद्ध में पराजित चालुक्य शासक की पहचान करना कठिन है। जो भी हो, 844 ई० में विजयादित्य के पौत्र गुणग-विजयादित्य ने वेंगी पर अधिकार कर लिया था और 845–46 ई० में विजयादित्य तृतीय के सेनानायक पांडुरंग ने पुनः वेंगी का विजेता होने का दावा किया। इस प्रकार राष्ट्रकूटों एवं पूर्वी चालुक्यों के बीच

---

1. गंगारट्टबलैः सार्धं द्वादशाब्दानहर्निशम्।
भुजार्जितबलः खड्मसहायो नवविक्रमैः।
अष्टोत्तरं युद्धशतं युद्धवा शम्भोर्महालयम्।
तत्संख्यमकरोद्धीरो विजयादित्य-भूपतिः॥

2. निमग्नां यश्चुलुक्याब्धौ रट्टराज्यश्रियं पुनः।
पृथ्वीमिवोद्धरन् धीरो वीरनारायणोऽ भवत्॥ (नवसारी अभिलेख)।

3. IA, Vol 12. p. 218.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दीर्घकाल तक युद्ध होते रहे जिनमें कभी एक पक्ष को सफलता मिली और कभी दूसरे को। 845–46 ई० के बाद सम्भवतः इन दोनों राजवंशों में कोई संघर्ष नहीं हुआ और पूर्वी चालुक्यों ने अमोघवर्ष की अधिसत्ता स्वीकार कर ली।

816 ई० के लगभग गंग शासक शिवमार ने राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु स्थानीय राष्ट्रकूट शासक ने उसे पराजित कर दिया, और तुम्कुरु जिले के केगिमोगेयर नामक स्थान पर हुए युद्ध में शिवमार मारा गया। शिवमार के बाद उसका भतीजा राजमल्ल गंगवाड़ी का राजा हुआ। उसने अपने राज्य को राष्ट्रकूटों के प्रभुत्व से मुक्त रखने का प्रयास किया। इस प्रयत्न में उसे केवल आंशिक सफलता मिली। राष्ट्रकूटों के चेल्लकेतन वंश के योग्य सामन्त एवं सेनानायक बंकेय ने गंगवाड़ी के उत्तरी भाग को अधिकृत कर लिया था और राजमल्ल को पराजित कर कावेरी नदी के आगे खदेड़ दिया। इसी दौरान में राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तरी भाग में विद्रोह हो गया था जिसे दबाने के लिए अमोघवर्ष ने बंकेय को गंगवाड़ी से बुला लिया। बंकेय की वापसी के पश्चात् राजमल्ल ने पुनः अपने पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया। एक अभिलेख में बतलाया गया है कि जिस प्रकार विष्णु ने वराह का रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया था, उसी प्रकार राजमल्ल ने राष्ट्रकूटों की अधिसत्ता से अपने राज्य को बचाया। राजमल्ल के बाद उसका पुत्र एरेयंग-नीतिमार्ग 843ई० के लगभग राजा हुआ। जब बंकेय को गुजरात के विद्रोह का दमन करने के लिए जाना पड़ा, उसी बीच एरेयंग ने गंगवाड़ी के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। इससे क्रोधित होकर अमोघवर्ष ने अपने अधीनस्थ पूर्वी चालुक्य शासक गुणग-विजयादित्य को नीतिमार्ग को दंडित करने के लिए भेजा। गुणग ने पहले एरेयंग के नोलम्ब वंशीय मित्र मंगि को पराजित किया। परन्तु गंग शासक ने आक्रान्ता से युद्ध नहीं किया और उसके समक्ष सन्धि का प्रस्ताव रखा जिसे अमोघवर्ष ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद इन दोनों राजवंशों में कोई युद्ध नहीं हुआ। अमोघवर्ष ने अपनी पुत्रियों-रेवकनिम्मडि तथा चन्द्रोवलब्बे (चन्द्र-वल्लभा) के विवाह क्रमशः एरेयंग तथा उसके पुत्र बूतुग प्रथम के साथ कर दिए।

कर्क की मृत्यु के उपरान्त ध्रुव प्रथम गुजरात का शासक हुआ। वह 835 ई० तक अमोघवर्ष की अधिसत्ता मानता रहा। इसके बाद उसने विद्रोह कर दिया। राष्ट्रकूट अभिलेखों के अनुसार ध्रुव का वल्लभ नामक राजा से दो पीढ़ियों तक संघर्ष चलता रहा और ध्रुव मारा गया। ध्रुव के उत्तराधिकारी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अकालवर्ष ने भी अमोघवर्ष से युद्ध किया। अकालवर्ष के बाद ध्रुव द्वितीय बड़ी कठिनाई से अपना पैतृक राजसिंहासन प्राप्त कर सका था। अल्तेकर ने वल्लभ की पहचान अमोघवर्ष से की है। 860 ई० के आस-पास अमोघवर्ष एवं गुजरात के राष्ट्रकूट शासकों में सन्धि हो गई क्योंकि प्रतीहार शासक मिहिरभोज की वर्धमान शक्ति ने दोनों के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया था।

मिहिरभोज सम्भवतः नागभट द्वितीय की पराजय का बदला लेने के उद्देश्य से राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तरी भागों पर आक्रमण करने के लिए तैयारी कर रहा था। उसके आक्रमण का सामना सर्वप्रथम ध्रुव द्वितीय को ही करना था। किन्तु वह मिहिरभोज की तुलना में काफी कमजोर था और अमोघवर्ष भी ध्रुव के सहयोग के बिना उक्त प्रतीहार सम्राट से युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। यद्यपि बेगुम्रा ताम्रपत्रों में ध्रुव ने दावा किया है कि उसने 867 ई० के पहले अकेले ही मिहिरभोज को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया था[1], किन्तु यह कथन अविश्वसनीय प्रतीत होता है। ध्रुव द्वितीय और अमोघवर्ष ने मिलकर ही काठियावाड़ के आगे मिहिरभोज की शक्ति के प्रसार को रोकने में सफलता प्राप्त की होगी, और प्रतीहार शासक सम्भवतः गुजरात तथा काठियावाड़ के कुछ प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर सन्तुष्ट हो गया।

अमोघवर्ष के नीलगुंड तथा सिरूर अभिलेखों के अनुसार अंग, वंग एवं मगध के शासक उसकी वन्दना करते थे। कुछ पाल अभिलेखों में बतलाया गया है कि नारायणपाल ने एक द्रविण राजा को पराजित किया था। रमेशचन्द्र मजूमदार तथा ए० एस० अल्तेकर ने इस द्रविड़ शासक का समीकरण अमोघवर्ष से किया है। इन विद्वानों के अनुसार वेंगी पर विजय प्राप्त करने के पश्चात अमोघवर्ष सम्भवतः पूर्वी समुद्रतट से उड़ीसा होता हुआ बंगाल तक पहुंच गया था। वहां नारायणपाल से उसका युद्ध हुआ। इस युद्ध में किसी पक्ष को निर्णायक सफलता नहीं मिल सकी।

अमोघवर्ष ने 64 वर्ष से भी अधिक समय तक शासन किया। वह ध्रुव अथवा गोविन्द तृतीय के समान सुयोग्य शासक तथा महत्वाकांक्षी विजेता नहीं था और उसका दीर्घकालीन शासन सामरिक उपलब्धियों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा। उसी के राज्यकाल में मालवा पर राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व समाप्त हो गया था और गुजरात जैसे छोटे प्रदेश के शासकों के साथ उसे

1. गुर्जरबलमतिबलवत् समुद्यतं वृंहित च कुल्येन।
एकाकिनैव विहितं परांमुखं लीलया येन॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लगभग 20 वर्ष तक संघर्षों में व्यस्त रहना पड़ा। वेंगी के चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों को भारी क्षति पहुंचाई और गंगवाड़ी का प्रदेश भी उसने खो दिया। फिर भी अमोघवर्ष ने अपने साम्राज्य को काफी हद तक सुरक्षित रखा और वेंगी के चालुक्यों तथा पश्चिमी गंगों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की।

कोंकण में फुल्लशक्ति अमोघवर्ष के सामन्त की हैसियत से शासन कर रहा था। अपने सुयोग्य सामन्त तथा सेनानायक बंकेय की महत्वपूर्ण सेवाओं एवं उपलब्धियों से प्रसन्न होकर अमोघवर्ष ने उसे वनवासी, बेलगलि, कुंडूर, कुंडरगे तथा पुरिगेरे (लक्ष्मीश्वर) प्रदेशों का शासक बना दिया था। सिरूर ताम्रपत्रों के अनुसार मालवा का शासक भी उसका सामन्त था। वह कोई स्थानीय राजा रहा होगा जिसकी पहचान नहीं की सकी है। वर्धा ताम्रपत्रों के अनुसार अमोघवर्ष प्रथम ने मान्यखेट नगर की स्थापना की और इसे सम्भवतः राजधानी बनाया। वैभव में यह नगर इन्द्रपुरी से भी बढ़कर था। इसका समीकरण कर्नाटक राज्य के गुलवर्गा जिले में स्थित मालखेड नामक स्थान से किया गया है।

अमोघवर्ष का वास्तविक नाम शर्व था और अमोघवर्ष उसकी अनेक उपाधियों में से एक थी। किन्तु वह अमोघवर्ष के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। उसने महाराजाधिराज, भट्टारक, रट्टमार्तण्ड, नृपतुंग, महाराजशंड, वीरनारायण, अतिशयधवल, पृथ्वीवल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ, प्रभूतवर्ष तथा जगतुंग नामक विरुद धारण किए। असगव्वे नामकी उसकी एक रानी का उल्लेख मिलता है।

जीवन के अन्तिम भाग में अमोघवर्ष जैन मतावलम्बी हो गया था। शक संवत् 782 ई० के कोन्नूर अभिलेख में वर्णित है कि उसने मान्यखेट में जैनदेवेन्द्र को तथा बंकेय द्वारा निर्मित एक जैन-मन्दिर को भूमि दान में दी थी। गुणभद्र सूरी के उत्तरपुराण (जिनसेन द्वारा विरचित आदिपुराण का उत्तरार्द्ध) के अनुसार अमोघवर्ष, जिनसेन का शिष्य तथा दिगम्बर सम्प्रदाय का अनुयाई था। उसके राज्यकाल में जिनसेन ने आदिपुराण तथा पार्श्वाभ्युदय नामक ग्रन्थों की रचना की थी। महावीराचार्य के गणितसारसंग्रह की भूमिका में भी बतलाया गया है कि अमोघवर्ष जैन धर्म में अनुरक्त था। परन्तु उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी और वह ब्राह्मण धर्म में भी श्रद्धा रखता था। भट्टअकलंक के कर्नाटकशब्दानुशासनं के अनुसार प्रजा के कल्याण के लिए अमोघवर्ष ने अपनी अंगुली काट कर महालक्ष्मी को अर्पित की थी[1]। इस ग्रन्थ में उसकी तुलना शिवि तथा दधीचि

1. महालक्ष्म्यै स्वावामांमुलिं लोकोपद्रवशान्तये स्म दिशति श्रीवीरनारायणः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से की गई है।

अमोघवर्ष स्वयं विद्वान तथा कन्नड़ एवं संस्कृत भाषाओं का उत्साही पोषक था। उसने कविराजमार्ग नामक ग्रन्थ की रचना की। एक जैन-ग्रन्थ[1] के साक्ष्य के आधार पर दिगम्बर जैन-आचार्यों की मान्यता है कि उसने वृद्धावस्था में राज्य का परित्याग कर सन्यास ले लिया था और रत्नमालिका नामक ग्रन्थ की रचना की थी। परन्तु ब्राह्मण लोग इसे शंकराचार्य की कृति मानते हैं। अमोघवर्ष की अन्तिम ज्ञात तिथि 878 ई० है। उसकी मृत्यु 880 ई० के आस-पास हुई होगी।

कृष्ण द्वितीय–अमोघवर्ष के पश्चात् उसका पुत्र कृष्ण द्वितीय लगभग 880ई०[2] में राजा हुआ। उसने अकालवर्ष, शुभतुंग, वल्लभराज, श्रीपृथ्वीवल्लभ, परमभट्टारक, महाराजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियां धारण कीं। उसने स्वयं चेदि शासक कोक्कल्लदेव प्रथम की पुत्री महादेवी के साथ विवाह किया और अपने पुत्र जयतुगि (जगत्तुंग) का विवाह चेदि शंकरगण की पुत्री लक्ष्मी के साथ कर दिया। इन वैवाहिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप कृष्ण को सामरिक अभियानों में कलचुरि शासकों से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई थी।

कृष्ण द्वितीय का राज्यकाल काफी घटनापूर्ण रहा। उसे अपने अधिकांश पड़ोसी राजाओं से युद्ध करने पड़े। दक्षिण में गंगवाड़ी तथा नोलम्बवाड़ी के शासकों से, पूर्व में वेंगी के चालुक्यों से, और उत्तर में प्रतीहारों एवं गुजरात के राष्ट्रकूट शासकों से उसने अनेक संघर्ष किए।

वेंगी के चालुक्यों से युद्ध–वेंगी के दो चालुक्य शासक कृष्ण के समकालीन थे–विजयादित्य तृतीय और भीम प्रथम। इदर ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि विजयादित्य ने रट्टों (राष्ट्रकूटों) के शासक के भड़काने पर गंगों (गंगराज्य)

---

1. विवेकात्यक्त राज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
   रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः॥
2. अमोघवर्ष की अन्तिम ज्ञात तिथि 878 ई० है। इस तिथि के बाद भी सम्भवतः वह कुछ समय तक जीवित रहा। विश्वनाथ रेउ उसके राज्य का प्रारम्भ 875 ई० में मानते हैं। पी०बी देसाई का अनुमान है कि अमोघवर्ष के शासन के उत्तरार्द्ध में उसका विरोध करने वाले शासकों का कृष्ण द्वितीय ने भी साथ दिया था, किन्तु बाद में कृष्ण द्वितीय को युवराज नियुक्त कर दिया गया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पर आक्रमण किया और युद्ध में मंगी नामक शासक का सिर काट लिया। बाद में उसने कृष्ण तथा उसके मित्र संकिल को भी सन्तस्त किया और उनकी राजधानियों को भस्मसात कर दिया[1]। मलियपुंडि दानपत्रों के अनुसार मंगी नोलम्ब वंशीय राजा था और वल्लभ का मित्र एवं सहयोगी संकिल दहाल का चेदि शासक था। इसी अभिलेख में यह भी वर्णित है कि विजयादित्य द्वारा किरणपुर नगर के जलाए जाने के समय कृष्ण द्वितीय वहां विद्यमान था[2]। नोलम्ब, पश्चिमी गंगों के मित्र अथवा सामन्त रहे होंगे और मंगी, अल्तेकर के अनुसार, नोलम्ब शासक का सम्भवत:सम्बन्धी था। संकिल का समीकरण कलचुरि शासक शंकरगण से किया गया है और वल्लभ का कृष्ण द्वितीय से। कृष्ण संकिल का बहनोई था।

पश्चिमी गंग, नोलम्ब तथा वेंगी के चालुक्य राष्ट्रकूटों के शत्रु थे[3]। असम्भव नहीं कि कृष्ण ने विजयादित्य को नोलम्बों तथा गंगों पर आक्रमण करने के लिए भड़काया हो और अपनी सेना एवं धन आदि से उसकी सहायता की हो। चालुक्य शासक ने पहले नोलम्बवाड़ी को जीतकर मंगी को मार दिया। इसके बाद उसने गंग शासक राजमल्ल अथवा उसके उत्तराधिकारी बूतुग प्रथम को पराजित किया।

इन सफलताओं से प्रोत्साहित होकर विजयादित्य ने कृष्ण द्वितीय से शक्ति-संतुलन करने का निश्चय किया। राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तर-पूर्वी भाग पर आक्रमण कर उसने चक्रकूट (मध्य प्रदेश की भूतपूर्व बस्तर रियासत में स्थित चक्रकोट्ट) को भस्मीभूत कर दिया। विजयादित्य द्वारा जलाए गए नगरों के नाम

---

1. गंगानां गजवैरिशक्तिरसमान् रट्टेश-संचोदित:।
जित्वा मंगिशिरोऽहरद्-युधि महाह्वाप्तवीर्यार्यमा ॥
पिठापुरम अभिलेख के अनुसार राष्ट्रकूट शासक ने मंगी के शीष रूपी कन्दुक से युद्ध-स्थल पर क्रीड़ा की थी—
मंगिराजोत्तमांगेन यो वीरस्समरांगणे।
चकार कन्दुकक्रीड़ां नाम्ना त्रिभुवनांकुश: ॥
2. हत्वा भूरि नोलम्बराष्ट्रपतिं मंगिं महासंगरे।
गंगानाश्रितगंगकूटशिखरान्निर्जित्य सड्डाहलाधीशम् ॥
संकिलमुग्रवल्लभयुतम् यो भाययित्वा विजयादित्योररक्ष क्षितिम्।
किरणपुरमधाक्षीत् कृष्णराजस्थितम् य: ॥
3. अल्तेकर के अनुसार गंग तथा नोलम्ब राष्ट्रकूटों के मित्र एवं सामन्त थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इडर अभिलेख में नहीं वर्णित हैं। कुछ विद्वानों ने इन्हें किरणपुर तथा अचलपुर माना है[1]। कलचुम्बुरु अभिलेख के अनुसार कृष्ण द्वितीय ने विजयादित्य की वन्दना की थी। विजयादित्य तृतीय के उत्तराधिकारी भीम प्रथम ने भी कृष्ण एवं उसके मित्र लाट तथा कर्नाटक के राजाओं को निर्वद्यपुर और पेरुवंगुरग्राम के युद्धों में पराजित करने का दावा किया है। इन अभियानों में चालुक्यों के सुयोग्य सेनापति पंडुरंग ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। कलचुरि शासक शंकरराज भी अपने बहनोई कृष्ण द्वितीय की ओर से पूर्वी चालुक्यों से लड़ा था। इस सफलता के परिणामस्वरूप विजयादित्य ने उन समस्त क्षेत्रों को पुनः अपने राज्य में शामिल कर लिया जिन्हें पहले राष्ट्रकूटों ने अधिकृत कर लिया था। इससे राष्ट्रकूटों तथा कलचुरियों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुंचा।

891 ई० में गुणग-विजयादित्य की मृत्यु के पश्चात् कृष्ण द्वितीय ने राष्ट्रकूट शक्ति को पुनः संगठित किया और अपने मित्रों एवं सामन्तों आदि की सहायता प्राप्त कर विजयादित्य के भतीजे एवं उत्तराधिकारी भीम प्रथम पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रकूट सेनाओं के एक भाग का नेतृत्व गुजरात के सामन्त कृष्ण ने, तथा दूसरे का कर्नाटक के चालुक्य शासक बड्डेग ने किया था। भीम पराजित हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। किन्तु बाद में उसे मुक्त कर दिया गया और वह राष्ट्रकूटों के सामन्त के रूप में वेंगी में शासन करने लगा। कृष्ण द्वितीय की पूर्वी चालुक्यों के विरुद्ध यह विजय निर्णायक सिद्ध हुई। चालुक्य अभिलेखों में भी स्वीकार किया गया है कि विजयादित्य (विजय के सूर्य) के अस्त होने पर राष्ट्रकूट विजेताओं ने वेंगी को तिमिराच्छादित कर दिया था। इसके उपरान्त कृष्ण द्वितीय ने गुडय्य के नेतृत्व में चालुक्य राज्य को पुनः आक्रान्त करने के लिए सेना भेजी। निर्वद्यपुर (पूर्वी गोदावरी ज़िले में स्थित) में प्रतिद्वन्दी सेनाओं का युद्ध हुआ जिसमें भीम के पुत्र ने गुडय्य को मौत, के घाट उतार दिया, परन्तु स्वयं भी मारा गया। इस प्रकार यह संघर्ष अनिर्णीत रहा और इसके बाद दोनों राजवंशों में कोई युद्ध नहीं हुआ।

वेंगी के चालुक्यों एवं गुजरात के राष्ट्रकूट शासकों के दुर्दिनों में कृष्ण द्वितीय ने दक्षिण में अपने साम्राज्य का विस्तार कर्नाटक राज्य के चित्तलदुर्ग ज़िले तक कर लिया था। 889 ई० के एक अभिलेख के अनुसार सभी दिशाओं में

1. किरणपुर का समीकरण मध्य प्रदेश में बालाघाट ज़िले के किरनपुर तथा अचलपुर का बरार के एलिचपुर से किया गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके साम्राज्य का विस्तार हो रहा था।

गुर्जर-प्रतीहारों से युद्ध–कृष्ण द्वितीय का सर्वाधिक साहसिक संघर्ष गुर्जर-प्रतीहारों से हुआ। पहले मिहिरभोज ने राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों को आक्रान्त किया। कृष्ण उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा, किन्तु पराजित हुआ। यह लड़ाई नर्मदा नदी के तट पर हुई थी। इसके पश्चात् प्रतीहार शासक गुजरात की ओर बढ़ा, लेकिन गुजरात के प्रान्तीय शासक राष्ट्रकूट कृष्णराज ने उसे पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। 888 ई० के बेगुम्रा ताम्रपत्रों के अनुसार वह इस युद्ध में अत्यधिक उत्साह के साथ लड़ा और उज्जयिनी में उसने प्रतीहारों को पराजित कर दिया था। कृष्ण द्वितीय के पुत्र युवराज जगत्तुंग तथा चेदि शासक ने भी इस संघर्ष में भाग लिया था। इन्द्र तृतीय के 914 ई० के बेगुम्रा अभिलेख में बतलाया गया है कि उस समय तक (914 ई० तक) भी प्रतीहारों से हुए युद्ध में कृष्ण द्वितीय द्वारा प्रदर्शित अनुपम शौर्य की चर्चा वृद्ध-जन किया करते थे। परन्तु इस युद्ध के परिणामस्वरूप न तो राष्ट्रकूटों को अधिक लाभ हुआ और न ही प्रतीहारों को विशेष क्षेत्रीय क्षति पहुंची। अलमसूदी के अनुसार गुर्जर-प्रतीहार दक्षिण में राष्ट्रकूटों की शक्ति के प्रसार को रोकने के लिए अपनी सेना तैनात रखते थे। इसलिए सीमान्त प्रदेशों पर कभी-कभी विपक्षी सेनाओं में छुट-पुट युद्ध हो जाया करते थे। कृष्ण द्वितीय में ध्रुव अथवा गोविन्द तृतीय के समान दिग्विजय की क्षमता एवं महत्वाकांक्षा नहीं थी और मिहिरभोज भी काफी वृद्ध होने के कारण राष्ट्रकूटों से टक्कर लेने के लिए उत्साही नहीं था।

गुजरात के राष्ट्रकूटों से युद्ध–प्रतीहारों के विरुद्ध युद्ध में गुजरात के कृष्णराज ने कृष्ण द्वितीय को सक्रिय सहयोग दिया था, परन्तु बाद में इन दोनों राजवंशों में शत्रुता हो गई। संगली तथा कैम्बे ताम्रपत्रों के अनुसार कृष्ण द्वितीय ने कृष्णराज अथवा उसके उत्तराधिकारी को खेटक (कैरा) से खदेड़ दिया था और 910 ई० में गुजरात में प्रचंड नामक सामन्त शासन कर रहा था। 888 ई० के बाद का गुजरात के राष्ट्रकूटों का कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है। इसी तिथि के पश्चात् किसी समय इस शाखा-राजवंश का अन्त हुआ होगा।

कृष्ण द्वितीय की अन्य विजयें–बाद के कुछ राष्ट्रकूट अभिलेखों में कृष्ण को अंग, मगध, कलिंग तथा गौड़ राज्यों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है और बतलाया गया है कि उसने समुद्रतट-वासियों की निद्रा का अपहरण कर लिया था। परन्तु उसकी इन विजयों का विवरण समकालीन साक्ष्यों में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नहीं है।

चोलों से सम्बन्ध–कृष्ण द्वितीय ने चोल आदित्य प्रथम के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था। आदित्य के पश्चात् परान्तक चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। कृष्ण द्वितीय अपनी पुत्री के पुत्र कन्नरदेव को राजा बनाना चाहता था। इसलिए उसने परान्तक पर आक्रमण कर दिया। परन्तु 911 ई० में बल्लाल नामक[1] स्थान पर हुए युद्ध में वह स्वयं पराजित हुआ।

कृष्ण द्वितीय का राज्यकाल सामरिक उपलब्धियों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा। वह केवल गुजरात की राष्ट्रकूट शाखा का ही अन्त करने में सफल हुआ। प्रतीहार भोज एवं महेन्द्रपाल के आक्रमण राष्ट्रकूट साम्राज्य को कोई क्षति नहीं पहुंचा सके। किन्तु वेंगी के चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को कम से कम कुछ समय के लिए ग्रसित कर लिया था। गंगवाड़ी पर भी वह पुनः अधिकार स्थापित नहीं कर सका। गुणभद्र के अनुसार कृष्ण द्वितीय के हाथियों ने गंगाजल का पान किया तथा कन्याकुमारी के वनों में विश्राम किया था[2]। यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है।

कृष्ण द्वितीय जैन धर्म का अनुयाई तथा जैन आदिपुराण के अन्तिम पांच अध्यायों के लेखक गुणभद्र का शिष्य था। उसी के राज्यकाल में उत्तरपुराण (आदिपुराण का बाद वाला भाग) शक संवत् 820[3] = 897-98 ई० में समाप्त हुआ था। अमोघवर्ष प्रथम एवं कृष्ण द्वितीय की अहिंसा प्रधान जैन धर्म में श्रद्धा के कारण राष्ट्रकूटों की साम्राज्यवादी नीति किस सीमा तक प्रभावित हुई, कहना कठिन है। कृष्ण ने अरबों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए[4]। उसके शासन का अन्त 914 ई० में हुआ।

इन्द्र तृतीय–कृष्ण तृतीय के करहड एवं देवली ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है कि कृष्ण द्वितीय के पुत्र जगत्तुंग की मृत्यु उसके जीवनकाल में ही हो गई थी। इसलिए कृष्ण के पश्चात् उसका पौत्र इन्द्र तृतीय राजा हुआ। कृष्ण

---

1. बल्लाल का समीकरण वर्तमान तिरुवल्लम से किया गया है।
2. यस्योत्तुंगमतंगजानिजमदस्त्रोतस्विनी संगमात्।
   गांग वारिकलंकितं पटु-मुहुः पीत्वाप्यगच्छत्तृषाम्॥
   कौमारं घनचन्दनं·····अस्तभास्करच्छायं·····समाशिश्रियन्॥
3. अकालवर्षभूपाले पालयत्यखिलामिलाम्।
   शकनृपकालाभ्यतरविंशत्यधि अष्टशतमिताब्दान्ते॥
4. Desai, History of Karnataka, p. 130.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्वितीय की अन्तिम ज्ञात तिथि 912 ई० है, परन्तु वह लगभग 914 ई० तक जीवित रहा। इन्द्र तृतीय के नवसारी ताम्रपत्रों से हमें ज्ञात होता है कि शक संवत् 836 (914 ई०) में वह अपने **पट्टबन्धोत्सव** के निमित्त मान्यखेट से कुरुन्धक[1] गया था। शक संवत् 836 के बेगुम्रा ताम्रपत्रों के अनुसार उसने **पट्टबन्धोत्सव** की परिसमाप्ति पर सोने का तुलादान सम्पन्न किया, लाट देश में एक ग्राम दान में दिया तथा (पूर्ववर्ती) शासकों द्वारा दिए गए 400 ग्रामों एवं 20 लाख द्रम्म नामक सिक्कों को पुनः दान में दिया। औपचारिक रूप से उसका राज्याभिषेक फरवरी, 915 ई० में हुआ। किन्तु इस तिथि के पहले ही वह राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हो चुका था। राज्यारोहण के कुछ ही समय बाद इन्द्र ने मेरु को ध्वस्त कर दिया और गोवर्धन (नासिक ज़िले में) को जीतने वाले उपेन्द्र नामक शासक को पराजित कर गोवर्धन का उद्धार किया था[2]। यह विवरण सुस्पष्ट नहीं है और मेरु तथा उपेन्द्र के समीकरण के विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। कीलहार्न तथा विश्वनाथ रेउ ने मेरु की पहचान कन्नौज से की है। डी० आर० भंडारकर के अनुसार उपेन्द्र प्रतीहार शासक महीपाल का दूसरा नाम था। परन्तु ए० एस० अल्तेकर तथा पी० बी० देसाई ने उपेन्द्र का तादात्म्य परमार कृष्णराज से किया है, क्योंकि उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार कृष्णराज का दूसरा नाम उपेन्द्रराज था। मेरु का कन्नौज से एकीकरण तर्क-संगत नहीं है क्योंकि राज्यारोहण के तुरन्त बाद सुदूरस्थ प्रतीहार राजधानी पर आक्रमण करना इन्द्र तृतीय के लिए सम्भव नहीं था। अल्तेकर की अवधारणा है कि प्रारम्भ में परमार सम्भवतः प्रतीहारों के सामन्त थे और उन्हीं के भड़काने पर परमार कृष्णराज (उपेन्द्रराज) ने गोवर्धन पर आक्रमण किया होगा। तथ्य जो भी हो, इन्द्र तृतीय ने उपेन्द्र को पराजित कर गोवर्धन पर अधिकार कर लिया और परमारों को अपना प्रभुत्व मानने के लिए बाध्य किया। हरसोला अभिलेख से प्रमाणित होता है कि परमार राष्ट्रकूटों के सामन्त हो गए थे।

उपेन्द्रराज की पराजय ने वस्तुतः इन्द्र तृतीय के उत्तर भारत पर आक्रमण

---

1. डी० आर० भंडारकर ने कुरुन्धक की पहचान ताप्ती नदी के तटवर्ती कन्डोदा नामक स्थान से की है और अल्तेकर ने कोल्हापुर ज़िले के कुरुन्दवाड से। विश्वनाथ रेउ के अनुसार कुरुन्धक कृष्णा एवं पंचगंगा नदियों के संगम पर स्थित था।
2. कृतगोवर्धनोद्धारं हेलोन्मूलितमेरुणा।
उपेन्द्रमिन्द्रराजेन जित्वा येन च विस्मितम्॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था। 908 ई० में प्रतीहार महेन्द्रपाल प्रथम की मृत्यु के उपरान्त भोज द्वितीय एवं महीपाल के बीच उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप प्रतीहारों की शक्ति विभाजित तथा जर्जरित हो गई थी। इसी विषम राजनैतिक परिस्थिति के दौरान इन्द्र 916 ई० की हेमन्त ऋतु में उत्तर भारत पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ। कैम्बे ताम्रपत्रों के अनुसार उसने सर्वप्रथम उज्जयिनी पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। इसके पश्चात् उसकी सेना सम्भवतः झांसी तथा भोपाल होती हुई कालपी पहुंची जहां उसने यमुना नदी को पार किया। कालपी से इन्द्र तृतीय कन्नौज की ओर बढ़ा। प्रतीहार शासक महीपाल राजधानी छोड़कर भाग गया[1] और इन्द्र ने कन्नौज को अधिकृत कर लिया[2]। इसके बाद इन्द्र तृतीय के वेमुलवाड़ वंशीय सामन्त नारसिंह द्वितीय ने उसका पीछा किया। पम्प कवि के कन्नड़ काव्य पम्पभारत में वर्णित है कि नारसिंह ने प्रतीहार राजा की राजलक्ष्मी का अपहरण कर लिया और उसके घोड़ों ने गंगा एवं यमुना के संगम में स्नान किया था। इस विवरण से प्रतीत होता है कि महीपाल को सम्भवतः प्रयाग[3] तक खदेड़ा गया। 916 ई० की ग्रीष्म ऋतु में इन्द्र की सेना वापस चली गई। खजुराहो से प्राप्त एक भग्न चन्देल अभिलेख में बतलाया गया है कि महीपाल को कन्नौज के राजसिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित किया गया था[4]। इन्द्र तृतीय के पहले ध्रुव तथा गोविन्द तृतीय ने भी प्रतीहारों एवं पालों को पराजित किया था, किन्तु वे कन्नौज को अधिकृत नहीं कर सके। इस प्रकार इन्द्र ने उत्तर भारत की दिग्विजय में नया कीर्तिमान स्थापित किया। वस्तुतः

---

1. ए० एस० अल्तेकर की अवधारणा है कि महीपाल सम्भवतः इन्द्र तृतीय की सेना के पहुंचने के पूर्व ही कन्नौज छोड़कर, अपने सामन्त एवं मित्र चन्देल हर्ष की राजधानी महोबा चला गया था।
2. यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रिय-प्रांगणम्।
   तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना-सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी।
   येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मीलितम्।
   नाम्नाद्यापिजनैः कुशस्थलमिति ख्याति परां नीयते॥
3. अल्तेकर के अनुसार महीपाल प्रयाग के बजाय गोरखपुर की ओर भागा होगा क्योंकि राष्ट्रकूटों के मित्र कलचुरि शासकों का राज्य प्रयाग से अधिक दूरी पर स्थित नहीं था।
4. EI, Vol. I, p. 132.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भोज द्वितीय और महीपाल, वत्सराज या नागभट द्वितीय के समान शक्तिशाली नहीं थे और उनके पारस्परिक संघर्ष ने उन्हें दुर्बल बना दिया था। मुख्यतः इसीलिए इन्द्र तृतीय ने प्रतीहारों को सरलता से पराजित कर उनकी राजधानी पर भी अधिकार कर लिया था। परन्तु इस विजय से भी राष्ट्रकूटों को कोई क्षेत्रीय अथवा अन्य लाभ नहीं हुआ। अल्तेकर की मान्यता है कि उत्तर भारत की विजय के पश्चात् इन्द्र तृतीय ने वेंगी को आक्रान्त कर विरजापुरी में विजयादित्य चतुर्थ से युद्ध किया। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार इस युद्ध में विजयादित्य को सफलता मिली, किन्तु वह स्वयं मारा गया और वेंगी राज्य के कुछ क्षेत्रों पर राष्ट्रकूटों ने अधिकार कर लिया। इन्द्र वेंगी की राजनीति को अधिक प्रभावित नहीं कर सका था।

जब इन्द्र तृतीय उत्तर भारत के विजय-अभियान में व्यस्त था, उस अन्तराल में उसके योग्य सेनानायक श्रीविजय ने दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों के शत्रुओं को पराजित किया था। इन्द्र ने कलचुरि शासक अम्मणदेव (अनंगदेव) की पुत्री बीजाम्बा के साथ विवाह किया। शक संवत् 838 के हत्तिमत्तूर (धारवाड़ ज़िले में) से प्राप्त एक अभिलेख में इन्द्र तृतीय के महासामन्त लेंडेयरस का उल्लेख है। दमयन्तीकथा तथा मदालसा नामक चम्पू का लेखक त्रिविक्रम भट्ट इन्द्र का समकालीन था और शक संवत् 836 के कुरुन्धक अभिलेख की रचना उसी ने की थी।

इन्द्र तृतीय ने राजमार्तण्ड (राजाओं में सूर्य), रट्टकन्दप (राष्ट्रकूटों में कामदेव के समान सुन्दर), नित्यवर्ष, श्रीपृथ्वीवल्लभ, परमभट्टारक, महाराजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियां धारण कीं। उसने 922 ई० तक शासन किया। वह गोविन्द तृतीय के समान योग्य सेनानायक तथा महत्वाकांक्षी विजेता था। अपने अल्पकालीन शासन में उसने राष्ट्रकूटों की प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि की। उसके दो पुत्र थे–अमोघवर्ष द्वितीय और गोविन्द चतुर्थ।

अमोघवर्ष द्वितीय तथा गोविन्द चतुर्थ–इन्द्र तृतीय के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र अमोघवर्ष द्वितीय 922 ई०[1] में राजा हुआ। फ्लीट महोदय की यह अवधारणा कि अमोघवर्ष द्वितीय ने शासन नहीं किया[2], अमान्य है, क्योंकि कई

1. अल्तेकर ने 928 ई० में तथा पी० बी० देसाई ने 930 ई० में अमोघवर्ष द्वितीय के शासन का प्रारम्भ माना है।
2. फ्लीट की यह मान्यता गोविन्द चतुर्थ के संगली ताम्रपत्रों के साक्ष्य पर आधारित है जिनमें अमोघवर्ष द्वितीय का उल्लेख नहीं हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राष्ट्रकूट अभिलेखों में उसका उल्लेख हुआ है और शिलाहार शासक अपराजित के भदन ताम्रपत्रों में स्पष्टतः वर्णित है कि उसने एक वर्ष तक राज्य किया था[1]। इस तथ्य का पुष्टिकरण कृष्ण तृतीय के देवली और करहद अभिलेखों से भी हो जाता है। लगभग एक वर्ष के अल्पकालीन शासन के पश्चात् अमोघवर्ष को सम्भवतः उसके भाई गोविन्द चतुर्थ ने मार डाला और 923 ई० में राज-सिंहासन प्राप्त कर लिया।

गोविन्द चतुर्थ ने प्रभूतवर्ष, नृपतुंग, सुवर्णवर्ष, साहसांक, शशांक, रट्टकन्दर्प, नृपतित्रिनेत्र, विक्रान्तनारायण, वल्लभनरेन्द्र, परमेश्वर, परमभट्टारक तथा श्रीपृथ्वीवल्लभ आदि उपाधियां धारण कीं। उसका राज्यकाल महत्वहीन रहा। राज्यारोहण के कुछ ही समय बाद वह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा था। पूर्वी चालुक्य शासक भीम द्वितीय ने गोविन्द की विशाल सेना को पराजित करने का दावा किया है[2]। अल्तेकर ने इस गोविन्द को गोविन्द चतुर्थ माना है। गोविन्द चतुर्थ अपने राज्यकाल के अन्तिम भाग में भीम द्वितीय द्वारा पराजित हुआ।

गोविन्द चतुर्थ बहुत कामुक प्रवृत्ति का शासक था। वह नर्तकियों से घिरा रहता था, विलासितापूर्ण जीवन बिताता था और दुर्व्यसनो में आसक्त था। इसलिए उसने अपनी प्रजा एवं सामन्तों आदि की स्वामिभक्ति खो दी जिसके परिणामस्वरूप उसका विनाश हो गया[3]। पम्प कवि के विक्रमार्जुनविजय काव्य में भी बतलाया गया है कि उसके दुर्व्यसनों से असन्तुष्ट होकर सामन्तों ने गोविन्द चतुर्थ के चाचा अमोघवर्ष तृतीय से उसे राजसिंहासन से हटाने का अनुरोध किया। वेमुलवाड (दक्षिणी कर्नाटक) के चालुक्य सामन्त अरिकेशरिन द्वितीय ने उसे पराजित कर उसके स्थान पर अमोघवर्ष तृतीय को राष्ट्रकूट राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अमोघवर्ष ने गोविन्द चतुर्थ को अपदस्थ कर दिया और स्वयं राजसिंहासन हस्त-गत कर लिया। गोविन्द युद्ध में मारा गया अथवा बन्दी बना लिया गया, निश्चित

1. EI, Vol. 30, p. 27I.
2. दंडंगोविन्दराजप्रणिहितमधिकं चोलपं लोलविक्किं।
विक्रान्तं युद्धमल्लं घटितगजघटं सनिहत्यैक एव ॥
3. राज्यं दधेमदनसौख्यविलासकन्दो गोविन्दराज इति विश्रुतनामधेयः।
सोप्यंगनानयनपाशनिरुद्ध-बुद्धिरुन्मार्गसंगविमुखीकृत-सर्वसत्वः ॥
.....
सामन्तरथ्यस्तराज्यसिंहासनार्थसंस्थितो (करहद अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रूप से ज्ञात नहीं। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 934 ई० है। उसके राज्यकाल का अन्त 935-36 ई० के मध्य हुआ।

अमोघवर्ष तृतीय–अमोघवर्ष तृतीय 935-36 ई० में राष्ट्रकूट राजपीठ पर बैठा। उसने श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर तथा परमभट्टारक की उपाधियों का प्रयोग किया। उसने कलचुरि शासक युवराज प्रथम की पुत्री कुन्दकदेवी के साथ विवाह किया। अमोघवर्ष तृतीय का धर्म की ओर अधिक झुकाव था। उसने शिव के कई मन्दिरों का निर्माण कराया और ब्राह्मणों आदि को काफी दान दिए। वह ब्रह्म-चिन्तन में लीन रहता था, और प्रशासन-कार्य में अधिक रुचि नहीं लेता था। इसलिए राज्य-संचालन का उत्तरदायित्व मुख्यतः उसका पुत्र युवराज कृष्ण तृतीय वहन करता था।

युवराज कृष्ण तृतीय ने अपने बहनोई बूतुग को गंगवाड़ी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करने में काफी सहयोग दिया। उसने दन्तिग तथा बप्पुग का वध कर दिया। ये सम्भवतः नोलम्ब वंशीय शासक थे और राचमल्ल के सामन्त थे। इसके पश्चात् उसने राचमल्ल पर आक्रमण कर उसे मार डाला और बूतुग द्वितीय को राजा बना दिया।

उत्तर में कृष्ण ने अपने सम्बन्धी कलचुरियों को पराजित किया और कालन्जर तथा चित्रकूट के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। उसकी ये उपलब्धियां 940 ई० के देवली ताम्रपत्रों में वर्णित है। इन ताम्रपत्रों में यह भी बतलाया गया है कि पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रों के बीच के सभी सामन्त कृष्ण तृतीय की आज्ञा मानते थे और वह स्वयं अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र था। इसके पश्चात् कृष्ण तृतीय के राज्याभिषेक का विवरण है। उपर्युक्त समस्त उपलब्धियां सम्भवतः कृष्ण तृतीय के युवराजत्व काल की हैं।

अमोघवर्ष के शासन का अन्त 939 ई० में हुआ।

कृष्ण तृतीय–अमोघवर्ष तृतीय के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण तृतीय 939 ई० में राजा हुआ। उसने अकालवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, समस्तभुवनाश्रय, कन्धार-पुखराधीश्वर, परममाहेश्वर, परमेश्वर तथा परमभट्टारक के विरुद धारण किए। वह महत्वाकांक्षी शासक था। सर्वप्रथम कृष्ण का संघर्ष लल्लेय नामक राजा से हुआ जिसने शायद उसे वैध उत्तराधिकारी नहीं माना था। अपने बहनोई एवं सामन्त गंग बूतुग द्वितीय की सहायता से कृष्ण ने लल्लेय को परास्त कर दिया। इसके उपरान्त उसने दक्षिण में अपनी साम्राज्यवादी नीति का क्रियान्वन प्रारम्भ किया और सर्वप्रथम चोलों से शक्ति-सन्तुलन करने का निश्चय किया। वस्तुतः परान्तक चोल की गतिविधियों ने राष्ट्रकूट साम्राज्य के लिए खतरा उत्पन्न कर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दिया था। कृष्ण तृतीय ने बूतुग के साथ 943 ई० में चोल राज्य को आक्रान्त किया और कांची तथा तन्जौर नगरों को अधिकृत कर लिया। कृष्ण के शासन के 5वें एवं 7वें वर्ष के कई अभिलेख तोंडमंडलम में प्राप्त हुए हैं, जो इस क्षेत्र पर उसका प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं।

इस पराजय से परान्तक चोल हतोत्साह नहीं हुआ और अपनी सेना को संगठित कर उसने राष्ट्रकूटों से पुनः शक्ति-संतुलन करने का निश्चय किया। 949-50 ई० में तक्कोलम (आधुनिक अर्काट जिले में) नामक स्थान पर दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। अतकूर अभिलेख के अनुसार चोल बड़ी वीरता से लड़े और पहले उन्होंने राष्ट्रकूटों के पैर उखाड़ दिए। किन्तु जब बूतुग ने युवराज राजादित्य को उसके हाथी समेत मार डाला[1], तो चोल सेना में भगदड़ मच गई और राष्ट्रकूटों की विजय हुई। इससे प्रसन्न होकर कृष्ण तृतीय ने गंग शासक को बेलवोला, पुरिगेरे तथा किसुकाड का शासक बना दिया। बूतुग द्वितीय के सूदी ताम्रपत्रों[2] में कृष्ण को **तन्जैयनकोंड** (तंजोर का विजेता) कहा गया है। इसके विपरीत परान्तक चोल के कन्या कुमारी अभिलेख के अनुसार, उसने कृष्णराज को पराजित कर वीरचोल का विरुद धारण किया था। इस अभिलेख में सम्भवतः चोल शासक द्वारा राष्ट्रकूटों के विरुद्ध प्रारम्भ में प्राप्त की गई तत्कालिक सफलता का संकेत है। शक संवत् 880 के करहद अभिलेख के अनुसार कृष्ण तृतीय ने चोल राज्य को उजाड़ने के बाद पांड्यों को जीता, सिंहल पर विजय प्राप्त की, मांडलिक राजाओं से कर वसूल किया, रामेश्वरम् में अपना कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया और वहां काल-प्रियगंडमार्त्तण्ड एवं कृष्णेश्वर के मन्दिरों का निर्माण कराकर उन्हें कुछ गांव दान में दिए। सोमदेव के यशस्तिलक में भी उसे चेर, पांड्य, चोल तथा सिंहल का विजेता कहा गया है। देवली अभिलेख के अनुसार कृष्ण ने कांची के शासक दन्तिग तथा बप्पुग का वध किया, पल्लव अन्तिन को पराजित किया, गुर्जरों के आक्रमणों से कलचुरियों की रक्षा की; और हिमालय से लेकर श्रीलंका तक तथा पूर्वी समुद्र (बंगाल की खाड़ी) से पश्चिमी समुद्र (अरब सागर) के बीच के सभी सामन्त उसकी आज्ञा मानते थे। 948-49 ई० के शोलापुर अभिलेख में कृष्ण को चक्रवर्ती सम्राट कहा गया है। 967-68 ई० (शक संवत् 890) के

---

1. लीडन (Lyden) दानपत्रों में वर्णित है कि हाथी पर सवार राजादित्य कृष्ण तृतीय से युद्ध करता हुआ मारा गया था
2. इन ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि मिली है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. In Public Domain. State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लक्ष्मेश्वर अभिलेख के अनुसार उसके आदेश से मारसिंह द्वितीय ने गुर्जर राजा को पराजित किया था। वेंगी के चालुक्यों के गृह-युद्ध में कृष्ण ने अम्म द्वितीय के विरुद्ध वाडप की सहायता की और 956 ई० में उसे राजपीठ पर प्रतिष्ठित कर वेंगी को अपना संरक्षित राज्य बना लिया। परन्तु बाद में अम्म ने वाडप को अपदस्थ कर पुनः राजसिंहासन प्राप्त कर लिया। इस प्रकार वेंगी में राष्ट्रकूटों का प्रभाव समाप्त हो गया।

963 ई० के आस-पास कृष्ण ने उत्तर भारत की विजय के लिए प्रस्थान किया। उस समय बुन्देलखंड में चन्देल काफी शक्तिशाली हो गए थे और उन्होंने चित्रकूट तथा कालंजर को राष्ट्रकूट अधिसत्ता से मुक्त कर, अधिकृत कर लिया था। इन क्षेत्रों को पुनः अपने आधिपत्य में लाने के लिए, अथवा अन्य राष्ट्रकूट नृपतियों की भांति साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से उसने इस अभियान की योजना बनाई थी। पहले उसने बुन्देलखंड को आक्रान्त किया। इसके पश्चात् मालवा के परमार शासक सीयक द्वितीय को पराजित कर उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया। सीयक द्वितीय के 949ई० के हरसोला अभिलेख से प्रमाणित होता है कि कम से कम उस समय तक वह राष्ट्रकूटों की अधिसत्ता मानता रहा। इन आक्रमणों में उसे गंग शासक मारसिंह द्वितीय ने काफी सहयोग दिया था। कृष्ण तृतीय चित्रकूट तथा कालंजर पर अधिकार करने में सफल हुआ अथवा नहीं, निश्चत रूप से ज्ञात नहीं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि विक्रम संवत् 1055 (996-97 ई०) के एक अभिलेख में चन्देल धंग ने अपने को कालंजराधिपति कहा है। कृष्ण ने कलचुरि शासक सहस्त्रार्जुन पर भी विजय प्राप्त की थी।

कृष्ण तृतीय की महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धियों ने राष्ट्रकूटों के गौरव एवं प्रतिष्ठा को एक बार पुनः शिखर पर पहुंचा दिया था। किन्तु वह इस राजवंश का अन्तिम महान शासक था। उसे उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् तथा श्रीलंका तक का विजेता कहा गया है। यह स्पष्टतः पारम्परिक विवरण है। वस्तुतः न वह उत्तर में हिमालय तक गया था और न ही दक्षिण में सम्भवतः सिंहल तक। वह उत्तर भारत में ध्रुव, गोविन्द तृतीय तथा इन्द्र तृतीय के समान शानदार सामरिक सफलताएं नहीं प्राप्त कर सका था। परन्तु नर्मदा नदी के दक्षिण में रामेश्वरम् तक के समस्त दक्षिण भारत का वह अवश्य एक बार अधिपति हो गया था। कृष्ण तृतीय के अतिरिक्त अन्य कोई भी राष्ट्रकूट शासक सुदूर दक्षिण में इतना प्रभावी प्रभुत्व नहीं स्थापित कर सका था।

कृष्ण साहित्य एवं विद्वानों का उदार संरक्षक था। कन्नड़ भाषा के

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कवि पोन्न को उसका संरक्षण प्राप्त था। पोन्न ने उसी के राज्यकाल में शान्ति-पुराण की रचना की थी। उसकी विद्वता से प्रभावित होकर कृष्ण ने उसे **उभयभाषाचक्रवर्ती** (दोनों भाषाओं में पारंगत) की उपाधि से विभूषित किया था। पुष्पदन्त के ज्वालामालिनीकल्प के अन्त में लिखा है कि यह ग्रन्थ शक संवत् 861 में कृष्णराज के राज्यकाल में समाप्त हुआ था[1]। कोल्लगल्लु अभिलेख के अनुसार उसके शासन की परिसमाप्ति 967 ई० (शक संवत् 889) में हुई। उसके जीवनकाल में ही उसके सभी पुत्रों की मृत्यु हो गई थी।

खोट्टिग—शक संवत् 894 के करहद अभिलेख के अनुसार कृष्ण तृतीय की मृत्यु के बाद कुन्दकदेवी से उत्पन्न अमोघवर्ष तृतीय का पुत्र एवं कृष्ण तृतीय का छोटा भाई खोट्टिग 967 ई० के आस-पास राजसिंहासन पर बैठा[2]। उसने नित्यवर्ष, रट्टकन्दर्प, श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर एवं भट्टारक आदि उपाधियां धारण कीं।

खोट्टिग के शक संवत् 893 (971 ई०) के एक अभिलेख में उसके सामन्त गंग पेरमानडि मारसिंह का उल्लेख है। वह गंगवाड़ी, बेलवोला तथा पुरिगेरे का शासक था। खोट्टिग के राज्यकाल में राष्ट्रकूटों का पतन प्रारम्भ हो गया था और उसे परमारों ने पराजित कर भारी क्षति पहुंचाई। पहले खोट्टिग की सेना ने परमारों को पीछे खदेड़ दिया और उनका एक सेनापति युद्ध में मारा गया। किन्तु बाद में परमारों ने राष्ट्रकूटों को बुरी तरह परास्त कर दिया। परमार उदयादित्य के उदयपुर अभिलेख के अनुसार श्रीहर्ष (सीयक द्वितीय) ने खोट्टिग की राजलक्ष्मी का अपहरण कर लिया था[3]। इसकी पुष्टि धनपाल के पाइयलच्छीनाममाला नामक प्राकृत-कोष से भी हो जाती है। इस ग्रन्थ में बतलाया गया है कि विक्रम संवत् 1029 (971 ई०) में मालवा के शासक

---

1. आष्टाशतसैकषष्ठिप्रमाणशकवत्सरेष्वतीतेषु।
श्रीमान्यखेटकटके पर्वण्यक्षयतृतीयायाम्।
शतदलसहितचतुश्शतपरिणामग्रन्थरचनयायुक्तम्।
श्रीकृष्णराजराज्ये समाप्तमेतन्मतं देव्याः॥
2. स्वर्गमधिरुढे च ज्येष्ठे भ्रातरि श्रीकृष्णराजदेवे—
युवराजदेवदुहितरि कुन्दकदेव्याममोघवर्षनृपाज्जातः।
खोट्टिगदेवो नृपतिरभूद्भुवनविख्यातः॥
3. श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मीम्।
जग्राह यो युधि नगाहसः प्रतापः॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(सीयक द्वितीय) ने मान्यखेट को लूटा था[1] और वह राष्ट्रकूटों के अभिलेखागार से ताम्रपत्रों की कार्यालय-प्रतियां भी ले गया था। राष्ट्रकूटों के सामन्त गंग शासक मारसिंह ने इस विपत्ति में राष्ट्रकूटों की राजधानी का उद्धार किया था। इस घटना के कुछ ही समय बाद 972 ई० में खोट्टिग की मृत्यु हो गई।

कर्क द्वितीय–खोट्टिग की मृत्यु के उपरान्त उसका भतीजा तथा नृपतुंग का पुत्र कर्क द्वितीय 972 ई० में राजा हुआ। उसने अमोघवर्ष, नृपतुंग, वीर-नारायण, नूतनपार्थ, अहितमार्तण्ड, राजत्रिनेत्र, पृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर एवं परमभट्टारक के विरुद धारण किए। वह परममाहेश्वर (शिव का भक्त) था।

कर्क द्वितीय के खरदा ताम्रपत्रों के अनुसार उसने पांड्यों को सन्त्रस्त किया, हूणों से भयंकर युद्ध किया और चोलों तथा गुर्जरों को पराजित किया था। चूंकि कर्क के राज्यारोहण के लगभग एक महीने बाद खरदा ताम्रपत्र प्रसारित हुए थे, अतः यह अविश्वसनीय है कि इतने कम समय में कर्क जैसे दुर्बल शासक ने उपर्युक्त महत्वपूर्ण विजएं प्राप्त कर ली थीं।

अपनी अयोग्यता तथा दुष्ट प्रकृति के कारण कर्क द्वितीय को अपनी राजधानी में भी पूर्ण समर्थन नहीं प्राप्त था। इसके विपरीत उसका सामन्त पश्चिमी चालुक्य तैलप द्वितीय[2] एक कुशल सेनानायक तथा महत्वाकांक्षी शासक था। कर्क के दुर्बल शासनकाल में वह बहुत शक्तिशाली हो गया था। अन्त में तैलप ने उसे परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया[3]। इस निर्णायक युद्ध के स्थल का उल्लेख नहीं हुआ है। अल्तेकर के अनुसार यह उत्तरी कर्नाटक में किसी स्थान पर हुआ होगा। तैलप द्वारा कर्क की पराजय तथा राष्ट्रकूट साम्राज्य के अपहरण का विवरण राष्ट्रकूट अभिलेखों के अतिरिक्त कलचुरि विज्जणदेव, शिलाहार अपराजित तथा रट्टराज के अभिलेखों में, और विक्रमांकदेवचरित में भी प्राप्त होता है। यह घटना 973 तथा

---

1. विक्कमकालस्सगए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि।
   मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेड़म्मि। (श्लोक 276)।
2. तैलप द्वितीय कर्नाटक के बीजापुर जिले में बगेवाड़ी का शासक था। 965 ई० तक वह महासामन्ताधिपति की उपाधि से ही सन्तुष्ट रहा और राष्ट्रकूटों का सामन्त बना रहा।
3. कक्कलस्तस्य भ्रातृव्यो भुवोभर्ताजनप्रियः।
   समरे तं विनिर्जित्य तैलपो भूनमहीपतिः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

974 ई० के बीच घटी । कर्क द्वितीय कर्नाटक में एक छोटे राज्य पर 991 ई० के आस-पास तक शासन करता रहा । इसके बाद इस राजवंश के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती ।

राष्ट्रकूट शासन प्रणाली—राष्ट्रकूट शासक न केवल एक विशाल साम्राज्य के निर्माता थे, वरन् कुशल प्रशासक तथा कला एवं साहित्य के भी उत्साही संरक्षक थे । ध्रुव, गोविन्द तृतीय, इन्द्र तृतीय तथा कृष्ण तृतीय जैसे महत्वाकांक्षी एवं सुयोग्य शासकों के काल में इस राजवंश की शक्ति एवं गरिमा अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी । राष्ट्रकूटों की सुगठित शासन प्रणाली के विविध पहलुओं के विषय में हमारी जानकारी के प्रमुख स्त्रोत इस राजवंश के राजाओं के बहुसंख्यक अभिलेख, कुछ साहित्यिक ग्रन्थ तथा मुस्लिम लेखकों के विवरण हैं ।

केन्द्रीय शासनः राजा—राजा सम्पूर्ण प्रशासन-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी था । उसका पद आनुवंशिक था । सामान्य नियम के अनुसार पिता की मृत्यु के पश्चात् सबसे ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी होता था । मुस्लिम इतिहासकार सुलेमान ने लिखा है कि भारतीय राजा स्वयं अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करते थे । परन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में इस नियम का उल्लंघन हो जाता था[1] और कभी-कभी सामन्त एवं मन्त्री आदि भी राजा के चुनाव में हस्तक्षेप करते थे[2] । राजा का जीवन अत्यन्त वैभव, शान-शौकत एवं राजकीय तड़क-भड़क से परिपूर्ण था । अबूज़ैद के अनुसार भारतीय सम्राट बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण करते थे । राजा प्रतिदिन राजदरबार में उपस्थित होकर लोगों से भेंट करता था । राजदरबार में प्रतीहार होते थे जो आगन्तुकों की सम्राट से भेंट कराते थे ।

राजप्रासाद के प्रांगण में पैदल सैनिकों, अश्वारोहियों तथा हस्ति-सेना के दलों के साथ इनके नायक उपस्थित रहते थे । राजदरबार में विदेशी राजदूत, सामन्त शासकों के प्रतिनिधि, प्रशासन के उच्च अधिकारी, कवि, वैद्य, ज्योतिषी,

---

1. दन्तिदुर्ग निःसन्तान था, अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका चाचा कृष्ण प्रथम राजा हुआ । ध्रुव ने योग्यता के आधार पर गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी चुना था जबकि स्तम्भ उसका सबसे ज्येष्ठ पुत्र था ।
2. गोविन्द चतुर्थ की अयोग्यता एवं दुर्व्यसनों आदि से तंग आकर उसके सामन्तों एवं मन्त्रियों ने उसे अपदस्थ कर उसके चाचा अमोघवर्ष तृतीय को राजा बनाया था ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महाश्रेष्ठी एवं **श्रेणियों** के प्रतिनिधि आदि रहते थे।

युवराज–राष्ट्रकूट शासक प्रायः अपने राज्यकाल में ही अपने पुत्र को युवराज नियुक्त कर देते थे और औपचारिक रूप से उसका अभिषेक भी कर देते थे। युवराज प्रायः राजधानी में रहता था। वह प्रशासन-कार्य में अपने पिता को सहयोग देता था तथा आवश्यकतानुसार सैनिक अभियानों में उसके साथ, अथवा स्वतन्त्र रूप से जाता था। राजकुमारों को बहुधा प्रान्तों का गवर्नर नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार राजा होने के पहले ही उन्हें प्रशासन एवं सैन्य-संचालन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो जाता था। युवराज के नाबालिग होने पर अग्रमहिषी के स्थान पर राजपरिवार के किसी विश्वस्त निकट सम्बन्धी को उसका संरक्षक नियुक्त किया जाता था[1]। युवराज की स्थिति **पंचमहावाद्ययंत्र** प्राप्त करने वाले सामन्त के समान होती थी।

मन्त्रि परिषद्–राजा को प्रशासन सम्बन्धी मसलों में सहयोग एवं परामर्श देने के लिए मन्त्रि परिषद् होती थी। विभिन्न विभागों के पृथक-पृथक मन्त्री होते थे। परन्तु राष्ट्रकूट साक्ष्यों में हमें केवल प्रधानमन्त्री एवं विदेशमन्त्रियों के ही उल्लेख मिलते हैं। कृष्ण तृतीय के सन्धिविग्रहिक नारायण को सम्राट के दाहिने हाथ के समान प्रिय कहा गया है (तस्य यः प्रियो दक्षिण-हस्तवत्)। पठारी स्तम्भ-लेख में बतलाया गया है कि राष्ट्रकूट सामन्त परबल अपने प्रधानमन्त्री का बहुत आदर करता था ताम्रपत्रों के वर्ण्य-विषय को लिखवाने। का कार्य प्रायः मन्त्री ही करते थे। युद्धमन्त्री राजा के साथ सामरिक अभियानों में जाते थे। राजनैतिक उथल-पुथल में भी मन्त्री सक्रिय भाग लेते थे। राष्ट्रकूट साक्ष्यों में राजपुरोहित के लिए धर्माकुंश शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रशासन की इकाइयां–प्रशासन की सुविधा के लिए समस्त साम्राज्य **राष्ट्रों, विषयों, भुक्तियों** एवं **ग्रामों** में विभाजित था।

राष्ट्र–विवेच्य युग में **राष्ट्र** का क्षेत्र वर्तमान 5-6 जिलों के बराबर होता था। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार राष्ट्रकूट साम्राज्य में राष्ट्रों की कुल संख्या अनुमानतः 20 तथा 25 के बीच रही होगी। राष्ट्र के प्रधान को **राष्ट्रकूट** या **राष्ट्रपति** कहते थे। उसका पद महासामन्त अथवा महामंडलेश्वर के समकक्ष था। राष्ट्रपतियों को प्रशासन-कार्य में सहयोग देने के लिए **राष्ट्रमहत्तरों** की एक समिति होती थी। राष्ट्रपति स्थानीय लोगों को दिए गए अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का लेखा-जोखा रखते थे। जिन ग्रामों का राजस्व मन्दिरों एवं

1. राज्यारोहण के समय अमोघवर्ष नाबालिग था, इसलिए उसके चचेरे भाई कर्क को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ब्राह्मणों को दान में दे दिया जाता था, उनका भी वे ब्योरा रखते थे। परन्तु सम्राट की अनुमति के बिना उन्हें ग्राम आदि की भूमि को दान में देने का अधिकार नहीं था। बंकेय जैसे शक्तिशाली तथा प्रिय सामन्त को भी जैन मन्दिर को एक गांव दान देने के पूर्व अपने अधिराट अमोघवर्ष प्रथम की अनुमति प्राप्त करनी पड़ी थी।

विषय–प्रत्येक राष्ट्र में कई **विषय** होते थे। विषय मोटे तौर पर आधुनिक ज़िले के बराबर था। इसके अधिकारी को **विषयपति** कहते थे। राष्ट्रकूट अभिलेखों में घुणक विषय तथा कर्हाटक विषय के उल्लेख मिलते हैं। विषयपतियों को अपने सीमित क्षेत्र में राष्ट्रपति के समान अधिकार प्राप्त थे। उनका पद आनुवंशिक था। वेतन के रूप में उन्हें कर-मुक्त भूमि दे दी जाती थी। विषयपति को लगान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त थे। राष्ट्रकूट ताम्रपत्रों में दान में दी गई भूमियों में हस्तक्षेप न करने के लिए विषयपतियों को दी गई चेतावनियों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। लगान वसूल करने का उत्तरदायित्व उन्हीं को दिया गया था और किसी भी भूमि को कर-मुक्त करने के लिए उनकी अनुमति ली जाती थी। विषयपतियों की सहायता के लिए विषय-महत्तर होते थे।

भुक्ति–राष्ट्रकूटों के शासनकाल में **विषय** या ज़िला कई **भुक्तियों** में विभाजित होता था[1]। अल्तेकर के अनुसार प्रत्येक भुक्ति के अन्तर्गत ग्रामों की संख्या 50 से लेकर 70 तक होती थी। यह संख्या अनुमान पर आधारित है। भुक्तियां वर्तमान तालुक के समान थीं। इनके अधिकारी को **भोगपति** या **भोगिक** कहते थे। उन्हें राष्ट्रपतियों एवं विषयपतियों के समान अपने सीमित क्षेत्र में अधिकार प्राप्त थे। उनका पद प्रायः वंशानुगत होता था और वेतन के रूप में उन्हें भी कर-मुक्त भूमि दी जाती थी। भुक्तियों के नाम उनके प्रधान कार्यालयों के नाम पर रखे जाते थे। भुक्तियां से छोटी इकाइयां भी होती थीं जिनमें 10 से लेकर 20 ग्राम तक शामिल होते थे।

नगर–नगर का अधिकारी **नगरपति** या **पुरपति** कहलाता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में इन अधिकारियों के बहुत कम उल्लेख मिलते हैं। कुछ महत्वपूर्ण नगरपतियों की स्थिति सामन्त शासकों के समान थी। उदाहरण के लिए अमोघवर्ष प्रथम के राज्यकाल में सोरटूर नगर के शासक को महासामन्त कहा गया है। नगर-प्रशासन में पुरपतियों को सहयोग देने के लिए कुछ विशिष्ट

1. गुप्तकाल तथा इसके बाद के उत्तर भारत के अनेक साक्ष्यों में **भुक्ति** शब्द प्रायः प्रान्त के लिए प्रयुक्त हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व्यक्ति एवं समितियां होती थीं। 997 ई० के एक अभिलेख में वर्णित है कि कोंकण राज्य में गुणपुर नगर के प्रशासन में पुरपति को अम्बुश्रेष्ठि तथा बप्पैश्रेष्ठि नामक सेठ, चेलप्पैयु नामक व्यापारी तथा गोवनेय नामक ब्राह्मण सहयोग देते थे। शासन की अन्य इकाइयों की भांति नगर-प्रशासन में भी नगर-महत्तरों की व्यवस्था रही होगी।

ग्राम—ग्राम, शासन की सबसे छोटी इकाई थी। इसके अधिकारी को **ग्रामकूट, ग्रामपति** तथा **गावुंड** कहते थे। महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के प्रत्येक ग्राम में एक **ग्राम सभा** होती थी। प्रत्येक परिवार का एक वयस्क व्यक्ति इस सभा का सदस्य होता था। तमिल राज्य में **ग्राम-महाजन** या **ग्राम-महत्तर** स्थानीय मन्दिरों, विद्यालयों, सड़कों तथा तालाबों आदि की व्यवस्था के लिए अनौपचारिक रूप से उप-समितियों का गठन करते थे और जन-कल्याण के कार्यों के लिए उन्हे ग्राम के राजस्व का कुछ भाग दे दिया जाता था। ग्रामों में छोटे-मोटे लड़ाई-झगड़े प्रायः होते रहते थे। ग्रामकूट ग्राम की सुरक्षा के लिए उत्तरदाई था। प्रत्येक ग्राम के पास स्थानीय लोगों की एक छोटी सेना होती थी। ग्रामकूट स्वयं भी एक कुशल लड़ाकू होता होता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में डाकुओं तथा अन्य आक्रमणकारियों से युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करने वाले ग्रामकूटों के उल्लेख मिलते हैं। गांव के लोगों को भी अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में प्रशिक्षण दिया जाता था। कृष्ण द्वितीय, कृष्ण तृतीय तथा कर्क द्वितीय के कुछ अभिलेखों में पशुओं के अपहरण के सम्बन्ध में हुए युद्धों में गांव के वीर-योद्धाओं की मृत्यु हो जाने के विवरण हैं। कभी-कभी इस प्रकार के संघर्षों में सम्पूर्ण गांव नष्ट हो जाता था[1]। राष्ट्रकूट अभिलेखों में ग्रामीण झगड़ों के उल्लेखों की बहुलता से प्रमाणित होता है कि गांवों का वातावरण प्रायः अशान्त रहता था। इतने शक्तिशाली राष्ट्रकूट सम्राटों के राज्यकाल में इस प्रकार के संघर्षों के आधिक्य का कारण स्पष्ट नहीं है।

राष्ट्रकूट ताम्रपत्रों में ग्रामों के दान के विवरण में ग्राम के प्रधान का सदैव उल्लेख हुआ है और राजकीय दानों में हस्तक्षेप न करने के लिए जब भी सरकारी पदाधिकारियों को चेतावनी दी गई है, तो उसमें ग्रामप्रधान को अवश्य शामिल किया गया है। ग्रामकूट गांव का लगान वसूल करता था। कृष्ण तृतीय के सोरटूर अभिलेख में बतलाया गया है कि इस स्थान के महाजन वहां के एक मन्दिर को कर के रूप में कुछ कोयला देना चाहते थे जिसके लिए

1. EI, Vol. 6, p. 162.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उन्हें ग्रामपति की पूर्व अनुमति लेनी पड़ी थी। इस प्रकार ग्रामपति का पद काफी महत्वपूर्ण था।

सैन्य संगठन एवं प्रशासन–राष्ट्रकूटों के पास बहुत विशाल एवं शक्तिशाली सेना थी, जिसने उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में दक्षिणी गुजरात तक के विस्तृत क्षेत्र में अपनी शक्ति की धाक जमाई थी। प्रमुख राष्ट्रकूट सेना मान्यखेट में रहती थी। केन्द्रीय सेना में सामन्त शासकों की सेनायें तथा कुछ वंशानुगत सैन्य-शक्तियां भी शामिल थीं। बनवासी के सामन्त शासक बंकेय को 'वंशानुगत सैन्य-शक्ति का प्रधान' कहा गया है। राष्ट्रकूट सेना में विभिन्न जातियों एवं धर्मों के सैनिक तथा पदाधिकारी थे, जिनमें ब्राह्मण एवं जैन उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध सेनानायक बंकेय तथा नारसिंह जैन धर्मावलम्बी थे। गोविन्द चतुर्थ के कलस अभिलेख में रेवादास दीक्षित तथा वीसोत्तर दीक्षित नामक ब्राह्मण सेनापतियों की उपलब्धियों का वर्णन है। सैनिक रसद के लिए सम्पन्न श्रेष्ठि भी आर्थिक सहायता देते थे। मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों से हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट वाहिनी पदाति सैनिकों के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। अलमसूदी के अनुसार **बल्हर** (राष्ट्रकूट सम्राट) के पास असंख्य अश्व तथा हाथी थे, परन्तु पैदल सैनिक सबसे लधिक थे। भारत में अच्छी नस्ल के घोड़े नहीं उत्पन्न होते थे। इसलिए अन्य राजवंशों के शासकों की भांति राष्ट्रकूटों को भी मुख्यतः अरब तथा अन्य पश्चिमी देशों से घोड़े मंगाने पड़ते थे[1]। मुस्लिम इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि राष्ट्रकूट सेना के सैनिकों को नियमित वेतन दिया जाता था।

सेना का एक भाग उत्तर में गुजरात के राष्ट्रकूट शासकों के अधीन रहता था और दूसरा दक्षिण में बनवासी के प्रान्तीय शासक के अधीन। विभिन्न सैन्य-दलों के सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए अधिकारी होते थे। अमोघवर्ष प्रथम के रोन से प्राप्त एक अभिलेख में अश्व-सेना के एक प्रशिक्षक का उल्लेख है। प्रधान सेनापति का पद महासामन्त के समान था और वह पंचवाद्य यन्त्रों का हकदार होता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में विभिन्न वर्ग के सैन्य-अधिकारियों को महाप्रचंड दंडनायक, दंडनायक तथा बलाधिकृत कहा गया है। कलस अभिलेख में हस्ति-सेना के प्रधान का उल्लेख है। इसी प्रकार अश्व-सेना एवं पदाति-सेना

1. अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत, बृहत्संहिता, जैन ग्रन्थ समराइच्चकहा एवं कुवलयमाला तथा अन्य बहुत से प्राचीन भारतीय साक्ष्यों में कम्बोज, सिन्ध और अरब देशों के उत्तम घोड़ों के विवरण प्राप्त होते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के प्रधान भी अवश्य रहे होंगे, यद्यपि राष्ट्रकूट साक्ष्यों में उनके स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते हैं। राष्ट्रकूटों के पास सम्भवतः नौ सेना नहीं थी।

राष्ट्रकूट सेनाओं की संख्या के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता। अलमसूदी के अनुसार गुर्जर-प्रतीहारों की चार दिशाओं में विद्यमान सेनाओं में से प्रत्येक में सात से नौ लाख तक सैनिक होते थे। सुलेमान ने लिखा है कि पाल सम्राटों के पास 50 हज़ार हाथी थे, किन्तु इब्नखुर्दादबा ने हाथियों की संख्या केवल पांच हजार बताई है। चूंकि राष्ट्रकूटों का कई बार पालों एवं प्रतीहारों से शक्ति-संतुलन हुआ था और वे सदैव विजयी रहे, इससे अनुमान किया जा सकता है कि उनकी सेना पालों तथा प्रतीहारों की सेनाओं से संख्या तथा शक्ति में कम नहीं रही होगी।

सैनिक अभियानों में विभिन्न वर्ग के बहुसंख्यक कर्मचारियों के अतिरिक्त राजा की पत्नियां तथा अन्य सम्बन्धी भी जाते थे। गोविन्द तृतीय की अग्रमहिषी उत्तर भारत की दिग्विजय में उसके साथ गई थी और जब वह उत्तर भारत से वापस लौटकर शर्व नामक राजा की राजधानी श्रीभवन में ठहरा था, उसी दौरान में गोविन्द के पुत्र अमोघवर्ष का जन्म हुआ था।

सामन्त—अन्य शक्तिशाली राजवंशों की भाँति राष्ट्रकूट सम्राटों के अधीन भी अनेक सामन्त थे। शक्तिशाली सामन्त पंचवाद्यों[1] का प्रयोग कर सकते थे और उनके अधीन उपसामन्त भी होते थे। ये सामन्त केन्द्रीय शासक की पूर्वानुमति के बिना कर लगा सकते थे, कर वसूल कर सकते थे एवं ग्रामों का दान एवं विक्रय भी कर सकते थे। उन्हें आन्तरिक प्रशासन में काफी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। गुजरात के सामन्त शासकों को गुर्जर-प्रतीहारों की शक्ति के प्रसार को रोकने का उत्तरदायित्व दिया गया था और वेंगी के चालुक्य, राष्ट्रकूटों को पूर्वी गंगों के विरुद्ध सैनिक सहायता भेजते थे। परन्तु सभी सामन्तों की स्थिति समान नहीं थी।

सामन्तों को नियमित कर एवं सैन्य-सहायता देनी पड़ती थी गोविन्द तृतीय के विषय में बतलाया गया है कि वह अपने साम्राज्य का दौरा करते समय सामन्तों से कर भी वसूल करता था। सम्राट के पुत्र उत्पन्न होने पर तथा विवाह आदि शुभ अवसरों पर सामन्त विशेष उपहार देते थे। उन्हें सैनिक अभियानों में भी जाना पड़ता था। उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के

---

1. एक जैन ग्रन्थ में इन पांच वाद्यों के नाम इस प्रकार वर्णित हैं—शृंग, शंख, भेरि, जयघंटा तथा नम्मत।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिए तथा उनके विषय में सम्राट को सूचित करने के लिए राजदूत होते थे जिनकी सहायता के लिए बहुत से गुप्तचर रहते थे। तथापि उपयुक्त अवसर पाकर सामन्त शासक विद्रोह कर देते थे। दक्षिण भारत के अनेक राजवंशों का पतन मुख्यत: उनके सामन्तों के विद्रोह के परिणामस्वरूप हुआ।

कर—राज्य की आय के प्रमुख स्रोत विभिन्न प्रकार के कर, सामन्तों द्वारा दिए जाने वाले कर एवं उपहार, अर्थ-दंड से प्राप्त धन, तथा ऊसर जमीनों, वनों एवं खानों से होने वाली आमदनी, थे। वनों तथा खानों पर राज्य का एकाधिकार था। राजा समस्त कृषि-योग्य भूमि का स्वामी नहीं था, किन्तु प्रत्येक ग्राम में कुछ सरकारी भूमि अवश्य होती थी।

करों में भूमि-कर सर्वप्रमुख था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में इसे **भागकर** एवं उद्रंग कहा गया है। डी० सी० सरकार के अनुसार भागकर शब्द कृषि की उपज पर लगने वाले कर के लिए प्रयुक्त होता था। ए० एन० बोस ने इसे नियमित कर माना है। फ्लीट तथा यू०एन० घोषाल की मान्यता है कि उद्रंग नामक कर स्थाई किरायेदारों से पैदावार के अंश के रूप में लिया जाता था। कृष्ण तृतीय के 888 ई० के बेगुम्रा ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि यह कर तीन किस्तों में वसूल किया जाता था। पहली किस्त भाद्रमास में, दूसरी कार्तिक में और तीसरी किस्त माघ मास में ली जाती थी।

मन्दिरों तथा ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि या तो पूर्णतया कर-मुक्त होती थी अथवा उस पर प्रचलित दर का केवल 50 प्रतिशत कर लिया जाता था। भूमि-कर की दर के विषय में राष्ट्रकूट साक्ष्यों में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। अल्तेकर का अनुमान है कि यह कुल पैदावार का 20 या 25 प्रतिशत रही होगी[1]।

अमोघवर्ष प्रथम के सिरूर[2] अभिलेख में मक्खन पर तथा कृष्ण तृतीय के सोरटूर[3] अभिलेख में कोयले पर लगने वाले करों का उल्लेख हुआ है।

गोविन्द तृतीय के 813 ई० के तोखर्दे[4] अभिलेख में नौका-शुल्क का वर्णन है।

---

1. Early History of the Deccan, Vol. I, p. 305; Rashtrakutas and their Times, p. 223.
2. EI, Vol. 7, p. 203.
3. IA, Vol. 12, p. 257.
4. EI, Vol. 3, p. 58.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अधिकांश राष्ट्रकूट शासक युद्धों में निरन्तर व्यस्त रहे। वे सेना के लिए अरब देशों से बड़े पैमाने पर कीमती घोड़े मंगवाते थे जो दक्षिण भारत की जलवायु में अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाते थे। इन कारणों का राजकीय अर्थ-व्यवस्था पर बुरा प्रभाव होना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप करों की दरें अधिक रहीं होंगी। अल इद्रीसी ने लिखा है कि राष्ट्रकूट राजाओं की प्रजा को बहुत अधिक कर देने पड़ते थे। नियमित करों के अतिरिक्त कुछ आकस्मिक कर भी होते थे जिनके विषय में अधिक सूचना नहीं प्राप्त हुई है।

उपर्युक्त स्रोतों से प्राप्त धन का उपयोग जन-कल्याणी कार्यों, सेना, युद्ध, सरकारी पदाधिकारियों तथा राजदरबार की शान-शौकत आदि के लिए किया जाता था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

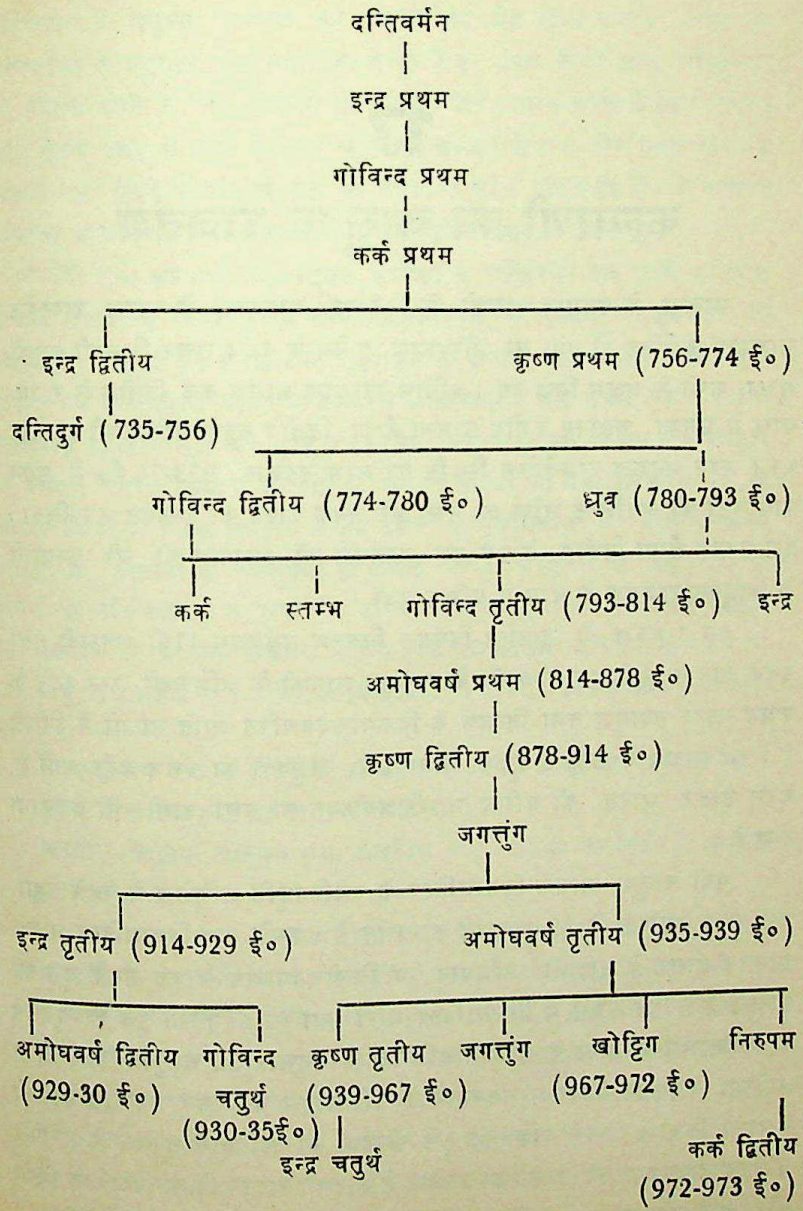

1. History of Karnataka, pp. 150-151.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

17

कल्याणी का चालुक्य राजवंश

मालवा के परमार शासकों के निरन्तर आक्रमणों के कारण राष्ट्रकूट साम्राज्य जर्जरित हो गया था और कृष्ण तृतीय के दुर्बल उत्तराधिकारी इसकी सुरक्षा करने में अक्षम सिद्ध हुए। अन्तिम राष्ट्रकूट शासक कर्क द्वितीय के राज्य-काल में उसका चालुक्य वंशीय सामन्त तैलप द्वितीय बहुत शक्तिशाली हो गया था। अपने अनुकूल राजनैतिक स्थिति का लाभ उठकार 973-74 ई० में उसने राष्ट्रकूटों की अवशिष्ट शक्ति को नष्ट कर उनके राज्य को हस्तगत कर लिया। इस प्रकार तैलप द्वितीय ने एक नए राजवंश की स्थापना की जो कल्याणी के चालुक्य राजवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस राजवंश की उत्पत्ति-विषयक विवरण सर्वप्रथम 11वीं शताब्दी तथा इसके बाद के वेंगी एवं कल्याणी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों, रन्न कवि के कन्नड़ काव्य गदायुद्ध तथा बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित आदि साक्ष्यों में मिलते हैं। इन साक्ष्यों में उन्हें न केवल वातापी के चालुक्यों का वंशज कहा गया है, वरन् उत्तर भारत की प्रसिद्ध नगरी अयोध्या का मूलनिवासी भी बतलाया गया है।

पूर्वी चालुक्य शासक विमलादित्य के रणस्तिपुंडि अभिलेख में पहले ब्रह्मा, चन्द्र तथा अयोध्या के 59 राजाओं का वर्णन है। इसके बाद विजयादित्य नामक चालुक्य शासक के दक्षिणी अभियान एवं त्रिलोचनपल्लव से हुए उसके युद्ध का उल्लेख है। इस संघर्ष में विजयादित्य मारा गया था। उसका पुत्र विष्णुवर्धन था। विक्रमादित्य षष्ठ के कौथेम अभिलेख के अनुसार 59 चालुक्य राजाओं ने अयोध्या में शासन किया। तदनन्तर वे दक्षिणापथ चले गए जहां 16 शासकों ने राज्य किया। इसके बाद की कुछ पीढ़ियों का इतिहास धूमिल है। फिर जयसिंह वल्लभ नामक राजा का उल्लेख है। उसने राष्ट्रकूटों को पराजित किया और अपने वंश का उद्धार किया था।

गदायुद्ध में सत्याश्रय तथा जयसिंह अपरनाम विष्णुवर्धन को अयोध्यापुरी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का राजा कहा गया है और जयसिंह को राष्ट्रकूटों को पराजित करने एवं दक्षिणापथ में चालुक्य राजवंश की स्थापना का श्रेय दिया गया है। विक्रमांकदेवचरित के अनुसार एक बार इन्द्र ने दुष्टों का दमन करने तथा नास्तिकता को समाप्त करने के लिए ब्रह्मा से एक वीर योद्धा उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की। इसके उत्तर में ब्रह्मा ने अपने चुलुक[1] (चुल्लू) से एक वीर पुरुष को जन्म दिया। इसी पुरुष ने चालुक्य वंश की स्थापना की। 1025-26 ई० के कल्याण अभिलेख में भी ब्रह्मा को चालुक्यों का आदिपूर्वज बतलाया गया है।

वेंगी तथा कल्याणी के चालुक्य शासकों के अभिलेखों एवं उनके इतिहास के अन्य साक्ष्यों के विवरणों में काफी समानताओं के बावजूद एकरूपता का अभाव है। वस्तुतः कई शताब्दियों के शासन के पश्चात् जब चालुक्यों ने अपनी उत्पत्ति एवं मूलनिवास आदि का विवरण लिखवाया, उस समय तक वे अपना प्रारम्भिक इतिहास भूल चुके होंगे। इसलिए उन्होंने मुख्यतः कल्पना के आधार पर इसका निर्माण किया। जो भी हो, समस्त साक्ष्यों की समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चालुक्य कन्नड़ देश[2] के मूलनिवासी थे तथा कल्याणी के चालुक्य, वातापी के चालुक्यों के वंशज थे[3]। कल्याणी के कई चालुक्य शासकों के अभिलेखों में वातापी के अन्तिम चालुक्य नृपति कीर्तिवर्मन द्वितीय तथा कल्याणी के चालुक्य राजवंश के संस्थापक तैल द्वितीय के बीच शासन करने वाले सात राजाओं के नाम वर्णित हैं जिन्होंने 757 से 773 ई०तक शासन किया।

---

1. विक्रमादित्य षष्ठ के हन्दरिके अभिलेख में चालुक्य को हारीति ऋषि के चुल्लू से उत्पन्न हुआ बतलाया गया है।
2. चलुकि, चलुक्य, चालुक्य तथा सलुक्कि नाम उनका कर्नाटक से सम्बन्ध दर्शाते हैं।
3. जे०एफ० फ्लीट तथा डी०आर०भंडारकर के अनुसार कल्याणी के चालुक्य वातापी के चालुक्यों के वंशज नहीं थे, क्योंकि कल्याणी के चालुक्यों ने अपने को सत्याश्रय का वंशज माना, जबकि वातापी के चालुक्य हारिति ऋषि से सम्बन्धित तथा मानव्य गोत्रीय बतलाए गए हैं। इसके अतिरिक्त कल्याणी के चालुक्य शासकों ने जगदैकमल्ल एवं त्रिभुवनमल्ल आदि उपाधियां धारण कीं, परन्तु वातापी के चालुक्यों ने अन्त में मल्ल शब्द आने वाले विरुदों का प्रयोग नहीं किया। इस तर्क के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वातापी के कुछ राजाओं ने भी युद्धमल्ल एवं राजमल्ल की उपाधियां धारण की थीं।

CC-0. Uttar Pradesh State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसकी पुष्टि गदायुद्ध[1] ने भी की है।

प्रारम्भिक शासक—कल्याणी के चालुक्यों के कुछ अभिलेखों में वातापी के चालुक्य शासक विजयादित्य के पुत्र एवं विक्रमादित्य के भाई भीम को कल्याणी के चालुक्य राजवंश का प्रथम शासक बतलाया गया है। भीम के पश्चात् क्रमशः कीर्तिवर्मन तृतीय, तैल प्रथम, विक्रमादित्य तृतीय, भीम द्वितीय, अय्यण प्रथम तथा विक्रमादित्य चतुर्थ ने राज्य किया। फ्लीट, भंडारकर तथा अल्तेकर ने इस वंशानुक्रम को प्रामाणिक नहीं माना है, यद्यपि यह पूर्णतया काल्पनिक नहीं है।

अय्यण प्रथम एवं उसके पुत्र विक्रमादित्य चतुर्थ के अतिरिक्त अन्य शासकों के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती। अय्यण ने राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय[2] की पुत्री के साथ विवाह किया और उसे अपने श्वसुर से काफी धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। इसी राष्ट्रकूट राजकुमारी से अय्यण का पुत्र विक्रमादित्य चतुर्थ उत्पन्न हुआ था। विक्रमादित्य ने कलचुरि लक्ष्मणसेन की पुत्री बोन्थादेवी के साथ विवाह किया। यह कलचुरि नरेश, राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का मित्र था। पट्टदकल से प्राप्त एक भग्न अभिलेख में तैल महाराजाधिराजदेव अपरनाम पेर्गंडे महाराज का उल्लेख है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने इसे तैल प्रथम माना है। किन्तु यह समीकरण असम्भावित प्रतीत होता है। तैल प्रथम एक साधारण सामन्त शासक था। इसलिए वह उपर्युक्त उपाधियां नहीं धारण कर सकता था। वस्तुतः तैल प्रथम के बाद भी कई पीढ़ियों तक चालुक्य स्वतन्त्र नहीं हो सके थे। इसके अतिरिक्त, तैल को किसी अन्य साक्ष्य में पेर्गंडे नहीं कहा गया है।

उपर्युक्त चालुक्य शासक सम्भवतः कर्नाटक के बीजापुर जिले तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्र में राष्ट्रकूटों के सामन्त रहे होंगे। अय्यण प्रथम एवं विक्रमादित्य चतुर्थ के क्रमशः राष्ट्रकूट एवं कलचुरि जैसे शक्तिशाली राजवंशों से हुए वैवाहिक सम्बन्धों से प्रतीत होता है कि कल्याणी के प्रारम्भिक चालुक्य शासकों में ये दोनों अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण रहे होंगे। इन राजाओं की शक्ति के केन्द्र आदि के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। तथ्य जो भी हो, विक्रमादित्य

---

1. इन राजाओं से सम्बन्धित गदायुद्ध तथा चालुक्य अभिलेखों की सूचना में बहुत कम अन्तर है।
2. पी० बी० देसाई आदि ने उसे कृष्ण प्रथम की पुत्री माना है (History of Karnataka, p. 154)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चतुर्थ के पुत्र एवं उत्तराधिकारी तैल द्वितीय के राज्यारोहण से इस राजवंश का क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होता है और इसकी महानता एवं गरिमा के युग का समारम्भ होता है।

तैल द्वितीय–तैल द्वितीय कलचुरि राजकुमारी बोन्था से उत्पन्न विक्रमादित्य चतुर्थ का पुत्र था। वह चालुक्य वंश का प्रथम शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी शासक था। प्रारम्भ में वह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के अधीन तर्डवाड़ी[1] में शासन कर रहा था। उसने राष्ट्रकूट शासक भामह की पुत्री से विवाह किया था, जिसे जाकब्बे, जाक्कलादेवी या जक्कलमहादेवी कहा गया हैं। मिरज ताम्रपत्रों के अनुसार भामह अन्तिम राष्ट्रकूट शासक था। असम्भव नहीं कि भामह कर्क द्वितीय का ही दूसरा नाम रहा हो[2]।

957 ई० के एक अभिलेख में तैल द्वितीय को **नाड** का सामन्त तथा 965ई० के दूसरे अभिलेख में **महासामन्ताधिपतिआहवमल्लतैलपरस** कहा गया है। इसके अतिरिक्त उसने महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, समस्तभुवनाश्रय, सत्याश्रयकुलतिलक तथा चालुक्याभरण नामक उपाधियां भी धारण कीं। अपने अधिराट राष्ट्रकूट कर्क द्वितीय के दुर्बल शासनकाल में तैलप ने अपनी शक्ति में काफी अभिवृद्धि की और अन्त में 973-74 ई० में उसे पराजित कर वह राष्ट्रकूट साम्राज्य का अधिपति बन गया[3]।

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय के पश्चात् तैलप द्वितीय ने अपने राज्य का विस्तार प्रारम्भ किया। उसके प्रमुख प्रतिद्वन्दी गंग थे, जो राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। मारसिंह की मृत्यु के उपरान्त गंग राज्य में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ जिसमें पांचलदेव ने अपने प्रतिद्वन्दी मारसिंह द्वितीय को पराजित कर अधीनस्थ बना लिया और कृष्णा नदी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। इस प्रकार पांचलदेव की वर्धमान शक्ति तैलप की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा में बाधक सिद्ध हो रही थी। अतएव उसका पांचलदेव से शक्ति-संतुलन अनिवार्य हो गया। प्रारम्भ में पांचल को चालुक्यों के विरुद्ध सफलता मिली। परन्तु बाद में तैलप द्वितीय के सामन्त बेल्लारी के गंग भूतिगदेव ने स्थिति सम्भाल ली और पांचलदेव को युद्ध में मारकर पराजय को विजय में बदल

1. तर्डवाड़ी का समीकरण बीजापुर जिले में भीमा नदी के तट पर स्थित आधुनिक तड्डेवाडि से किया गया है।
2. Karnataka through the Ages, p. 270.
3. कक्कलस्तस्य भ्रातृव्यो भुवोभर्ता जनप्रियः।
समरे तम् विनिर्जित्य तैलपोभून्महीपतिः॥ (खारेपाटन अभिलेख)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दिया। यह घटना 977 ई० के पहले घटी थी। इस विजय के उपलक्ष में तैल द्वितीय ने **पांचलमर्दनपंचानन** (पांचलदेव को मर्दन करने में सिंह) की उपाधि धारण की। भूतिगदेव की इस महान उपलब्धि से प्रसन्न होकर तैलप ने न केवल उसे **आहवमल्ल** के विरुद से विभूषित किया, वरन् तोरगाले (धारवाड़ जिले के सीमान्त पर स्थित वर्तमान तोरगल) का भी शासक बना दिया। पांचलदेव पर विजय प्राप्त करने के परिणामस्वरूप चालुक्य राज्य का विस्तार उत्तरी-कर्नाटक तक हो गया था। 977 ई० के आस-पास ही तैलप ने कर्क द्वितीय के मित्र रणस्तम्भ को पराजित कर मार डाला।

980 ई० के कुछ पहले तैल को उत्तमचोल से युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में भी उसे सफलता मिली। इसके पश्चात् उसने दक्षिणी कोंकण पर आक्रमण कर शिलाहार शासक अवसर तृतीय अथवा उसके पुत्र रट्टराज को पराजित कर अपना अधीनस्थ बना लिया। उसने सेउण शासक भिल्लम द्वितीय पर भी अपनी अधिसत्ता स्थापित की। तदनन्तर लाट (दक्षिणी गुजरात) को अधिकृत कर उसने अपने सेनानायक बाडप को इस प्रान्त का शासक नियुक्त कर दिया। बाडप ने चालुक्य मूलराज प्रथम के विरुद्ध सफलता प्राप्त की, किन्तु चाहमान विग्रहराज ने गुर्जर राज्य को आक्रान्त कर लाट को कुछ समय के लिए अपने अधीन कर लिया था। तैलप ने अपने पुत्र सत्याश्रय को युवराज नियुक्त कर दिया था। गदायुद्ध के अनुसार सत्याश्रय ने शिलाहारों एवं गुर्जरों से हुए युद्धों में सक्रिय भाग लिया था।

मालवा के परमारों से तैलप का संघर्ष दीर्घकाल तक चलता रहा। उसने परमार मुंज के राज्य को छःबार आक्रान्त किया, किन्तु परमारों ने उसके सभी आक्रमण विफल कर दिए। अन्त में मुंज ने गोदावरी नदी को पारकर स्वयं चालुक्यों पर आक्रमण कर दिया। इस बार तैलप को पूर्ण सफलता मिली। 1003 ई० के कौथेम ताम्रपत्रों के अनुसार तैलप ने मुंज को पराजित करने के बाद बन्दी बना लिया और उसे अपनी राजधानी मान्यखेट में रखा। गडग अभिलेख में बतलाया गया है कि तैलप ने उसका वध कर दिया था। मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि में भी इस युद्ध का रोचक विवरण है। इस ग्रन्थ के अनुसार कारागार में मुंज की देखरेख के लिए तैलप ने अपनी विधवा बहिन मृणालवती को नियुक्त कर दिया था। किन्तु वह मुंज के प्रेमपाश में बंध गई और एक दिन परमार शासक ने उसे बतला दिया कि वह जेल से निकल भागने की योजना बना रहा है। मृणालवती ने मुंज के साथ विश्वासघात किया और तैलप को इसकी सूचना दे दी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसके बाद तैलप ने मुंज का विविध प्रकार से अपमान किया और अन्त में उसका वध कर दिया। यह घटना 995 ई० के आस-पास घटी थी।

तैल द्वितीय के कई सामन्तों के उल्लेख हुए हैं जिनमें बनवासी तथा सान्तलिगे का शासक ब्रह्मरस, कादम्बलिगे का राजा मूलुगुंडसिन्दजातरस, कुंडि का रट्ट सामन्त कार्तवीर्य प्रथम तथा बेलगांव ज़िले में सौन्दत्ति के रट्ट महत्वपूर्ण थे। खचरकुल के शासक भी उसके अधीन थे। शोभनरस नामक सामन्त के शौर्य से प्रभावित होकर उसने उसे गिरदुर्गमल्ल तथा सामन्तचूड़ामणि की उपाधियों से विभूषित किया था। 976 ई० के पहले ही तैल द्वितीय ने सम्राट की उपाधियां धारण कर ली थीं और नोलम्ब-पल्लवों को पराजित कर दिया था। उसे आहवमल्ल तथा भुवनैकमल्ल भी कहा गया है। कम से कम 993 ई० तक मान्यखेट तैलप द्वितीय की राजधानी रही।

तैल द्वितीय ने रट्ट शासक भम्मह की पुत्री जाकब्बे के साथ विवाह किया। इस रानी से उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए-सत्याश्रय और दशवर्मन या यशोवर्मन। दशवर्मन को उसने गवर्नर नियुक्त कर दिया था। विक्रमादित्य षष्ठ के गडग अभिलेख के अनुसार तैलप द्वितीय ने चालुक्य राजवंश की प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित करने के पश्चात् 25 वर्ष तक पृथ्वी को शांति एवं सुरक्षा प्रदान की। उसका राज्य उत्तर में गोदावरी तथा सम्भवतः नर्मदा नदी तक, दक्षिण में शिमोगा, चित्तलदुर्ग एवं सम्भवतः बेल्लारी ज़िलों तक, और पश्चिम में दक्षिणी कोंकण तक विस्तृत था। उत्तरी कोंकण का भी कुछ क्षेत्र उसके अधीन था। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 996 ई० है। उसने सम्भवतः 997 ई० तक शासन किया।

सत्याश्रय–तैल द्वितीय के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सत्याश्रय 997 ई० में राजा हुआ। उसने आहवमल्ल, अकलंकचरित्र, तथा इरिवबेडंग (शत्रुओं का भेदन करने में अद्वितीय) नामक विरुद धारण किए। उसे सत्तिग तथा सत्तिम भी कहा गया है।

सत्याश्रय का राज्यकाल भी घटनापूर्ण रहा। प्रारम्भ में उसे परमार शासक सिन्धुराज के आक्रमण का सामना करना पड़ा। सिन्धुराज ने चालुक्यों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और मुंज के राज्यकाल में तैलप द्वारा अपहृत किए गए प्रदेशों को पुनः अधिकृत कर लिया। कलचुरि कोक्कल्ल द्वितीय ने भी दावा किया है कि उसने कुन्तल के राजा को वनवास के लिए बाध्य कर दिया था। कुन्तल का शासक सम्भवतः सत्याश्रय ही था। परन्तु सत्याश्रय ने उत्तरी कोंकण के शिलाहार शासक अपराजित को पराजित कर उसे सामुद्रिक क्षेत्र में शरण लेने के लिए

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बाध्य किया, अंशनगर को जला दिया और शिलाहार सेना के 21 हाथी भी अपहृत कर लिए। इस विजय के परिणामस्वरूप समुद्रपर्यन्त समस्त भू-भाग चालुक्य साम्राज्य में शामिल हो गया और शिलाहार शासक चालुक्यों के सामन्त बन गए। इसके बाद सत्याश्रय ने सम्भवतः गुर्जर राज्य को आक्रान्त कर चौलुक्य चामुंडराज को पराभूत किया।

सत्याश्रय के राज्यकाल में सबसे भयंकर आक्रमण चोल शासक राजराज प्रथम का हुआ था। 1007-8 ई० के होट्टूर अभिलेख से हमें ज्ञात होता है इस अभियान का नेतृत्व युवराज राजेन्द्र ने किया था। उसने 9 लाख सैनिकों की विशाल सेना के साथ चालुक्य राज्य के दक्षिणी प्रदेशों (सान्तलिगे, बनवासी, कादम्बलिगे तथा कोगलि) को जीता, ऊकल्लु (धारवाड़ ज़िले में उंकल) के दुर्ग को अधिकृत किया और दोनवुर (बीजापुर ज़िले में आधुनिक दोनूर) में सैनिक शिविर लगाया। चालुक्यराज को पराजित कर उसने न केवल उसकी अतुल धन-सम्पत्ति लूटी, वरन् बच्चों, ब्राह्मणों एवं स्त्रियों आदि की निर्मम हत्या की। राजराज के तंजौर अभिलेख में बतलाया गया है कि चालुक्यों से अपहृत की गई सम्पत्ति तंजौर के मन्दिर को समर्पित कर दी गई थी। चोल साक्ष्यों के उपर्युक्त विवरण का आंशिक समर्थन एक चालुक्य अभिलेख ने भी किया है[1]।

नन्दिमथ के अनुसार यह निर्णायक संघर्ष सम्भवतः तावरेयघट्ट नामक स्थान पर हुआ था। सत्याश्रय की इस पराजय के परिणामस्वरूप चालुक्यों ने अपनी राजधानी मान्यखेट तथा कुछ अन्य नगर एवं क्षेत्र खो दिए थे। चोलों ने बनवासी, इडितुरैनाडु (रायचूर ज़िले का एडेदोरेनाड) तथा कोल्लिपाक्कय (हैदराबाद से लगभग 40 कि०मी० उत्तर में स्थित कुलपक नामक स्थान) पर भी विजय प्राप्त की। किन्तु बाद में सत्याश्रय ने राजराज को पराजित कर पीछे खदेड़ा और चोलों की बहुत अधिक सम्पत्ति अपहृत कर ली। इसके पश्चात् उसने आन्ध्र राज्य के आधुनिक करनूल[2] तथा गुंटूर[3] ज़िलों तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया।

सत्याश्रय के सामन्तों में बनवासी के शासक भीमरस, बेलवोला, कुंडूर तथा

1. इस चालुक्य अभिलेख के अनुसार राजराज की विशाल वाहिनी ने चालुक्य साम्राज्य के भीतरी क्षेत्रों में घुसकर प्रजा को अत्यधिक सन्त्रस्त किया था।
2. 1004 ई० में सत्याश्रय करनूल ज़िले के श्रीपर्वत (श्रीशैल) क्षेत्र में विद्यमान था।
3. सत्याश्रय का 1006 ई० का एक अभिलेख गुंटूर ज़िले से प्राप्त हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुरिगेरे के शासक शोभनरस, कुन्दमरस तथा कोंकण के शिलाहार वंशीय शासक रट्टराज के उल्लेख मिलते हैं। उसने नोलम्ब के पल्लव शासक इरिव-नोलम्बाधिराज के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था। सत्याश्रय ने 1008 ई० तक राज्य किया।

विक्रमादित्य पंचम–सत्याश्रय की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा विक्रमादित्य पंचम 1008 ई० में चालुक्य राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। उसने पूर्व की ओर अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। उसके सेनानायक केशव-जिय ने कोशल (दक्षिण कोशल) पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। कोशल का शासक सम्भवतः सोम वंशीय भीमरथमहाभवगुप्त द्वितीय रहा होगा।

बनवासी तथा सान्तलिगे में कुन्दमरस, विक्रमादित्य पंचम का गर्वनर था और दंडनायक केशव बेलवोला एवं पुरिगेरे का। 1010 ई० के एक अभिलेख में उसकी बहिन अक्कादेवी को किसुकाड की शासिका कहा गया है। कौथेम ताम्र-पत्रों के अनुसार सत्याश्रय की दानशीलता एवं यश से आकृष्ट होकर अनेक व्यक्ति कुन्तल में आकर बस गए थे। उसने त्रिभुवनमल्ल तथा वल्लभनरेन्द्र की उपाधियां धारण कीं और 1015 ई० तक शासन किया।

अय्यण द्वितीय–विक्रमादित्य पंचम के पश्चात् उसका अनुज अय्यण द्वितीय 1015 ई० में राजा हुआ। वह केवल एक या दो महीने तक शासन कर सका[1]। उसके विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं प्राप्त हुई है।

जयसिंह द्वितीय–अय्यण द्वितीय के उपरान्त उसका छोटा भाई जयसिंह द्वितीय अपरनाम सिंहदेव 1015ई० के आस-पास राजा हुआ। उसने जगदेकमल्ल, त्रैलोकमल्ल, मल्लिकामोद तथा विक्रमसिंह के विरुद धारण किए। उसके राज्य-काल के अभिलेखों में वर्णित तिथियां 1015 से 1043 ई० तक हैं। 1010 ई० के बेलगवें अभिलेख में जयसिंह को 'राजेन्द्र चोलरूपी हाथी के लिए सिंह के समान' कहा गया है। 1019 ई० के कुछ पहले कलचुरि गांगेयदेव, परमार भोज तथा राजेन्द्र चोल ने एक संघ बनाकर चालुक्य राज्य पर आक्रमण किया था। जयसिंह ने इन सभी शासकों को पराजित करने तथा अपने राज्य से खदेड़ने का दावा किया है। परन्तु 1020 ई० के लगभग भोज ने उत्तरी कोंकण को जीत कर अपने राज्य में शामिल कर लिया और इस सफलता के उपलक्ष में उसने दो उत्सव आयोजित किए थे। राजेन्द्र चोल के 1021ई० के एक अभिलेख के अनुसार उसने

1. यह के० ए० नीलकान्त शास्त्री का मत है। डी० सी० गांगुली के अनुसार उसने अधिक से अधिक एक वर्ष तक राज्य किया होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मुशंगि[1] के युद्ध में जयसिंह को पराजित कर पीछे खदेड़ा और उसके साढ़े सात लाख के कोष को अपहृत कर लिया था। राजेन्द्र चोल ने रट्टपाडि पर भी अधिकार कर लिया था। उसके राज्यकाल के तिरुवालंगाडु अभिलेख में उसे तैल वंश का एक मात्र उन्मूलक कहा गया है। किन्तु बाद में जयसिंह ने न केवल चोलों को चालुक्य राज्य से खदेड़ दिया, वरन् अपने सेनापति चवनरस के साथ राजेन्द्र चोल का, गंगवाड़ी तथा चेर राज्य तक पीछा किया। उसने द्वारसमुद्र (कर्नाटक राज्य में हालेविद) तथा वलेयवत्तन (आधुनिक वेलियपटन) को भी लूटा। शक्ति-संतुलन के बाद दोनों पक्षों ने सम्भवतः तुंगभद्रा नदी को सीमा रेखा मान लिया।

1024 ई० के मिरज ताम्रपत्रों के अनुसार जयसिंह द्वितीय ने परमार भोज को पराजित किया और कोंकण राज्य पर अधिकार स्थापित कर कोल्हापुर के निकट अपना सैनिक-शिविर लगाया था। 1019 ई०के बेलगवें अभिलेख में जय-सिंह को भोजकमलचन्द्र तथा सप्तमालवों का विजेता एवं उनके गर्व को नष्ट करने वाला कहा गया है। कदम्ब वंशीय चट्टगि (चट्ट) के विषय में कहा गया है कि उसने मालव शासक को खदेड़ा तथा गोदावरी नदी के जल का पान किया था। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर जयसिंह ने उसे अधीत्यकापाल की उपाधि से विभूषित किया। जयसिंह के दूसरे सेनानायक कुन्दमरस के बारे में बतलाया गया है कि उसने भोज के हाथियों को कुचल दिया था। इस प्रकार चालुक्य शासक ने परमारों के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त की थी। जयसिंह को यादव भिल्लम तृतीय, चट्ट तथा भट्ट नामक शासकों के अतिरिक्त पट्ठरलि तथा तोगर्ले की विजयों का भी श्रेय दिया गया है। सान्तलिगे में उसका सामन्त विज्जरस शासन कर रहा था।

जयसिंह के राज्य में दक्षिण में वर्तमान शिमोगा, तुंगपुर, अनन्तपुर तथा कडप्पा ज़िले शामिल थे। इसकी पूर्वी सीमा का विस्तार कुलपक के आगे तक हो गया था। 1028 ई० तथा इसके बाद के कई अभिलेख प्रमाणित करते हैं कि जयसिंह के राज्यकाल में चालुक्यों की राजधानी कल्याणी थी जिसकी पहचान कर्नाटक के बीदर क्षेत्र में स्थित कल्याण से की गई है।

जयसिंह की दो रानियों का उल्लेख हुआ है-सुग्गलदेवी और नोलम्ब राज-कुमारी देवकदेवी। सुग्गलदेवी ने 1029ई० में पाशुपताचार्य को दान दिया था।

---

1. मुशंगि का समीकरण रायचूर दोआब के मास्की नामक स्थान से किया गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बसवपुराण के अनुसार सुग्गलदेवी के प्रभाव के कारण ही जयसिंह जैन धर्म का परित्याग कर शैव हो गया था। उसकी बहिन अक्कादेवी के विषय में वर्णित है कि वह युद्ध में भैरवी के समान, शौर्य प्रदर्शित करती थी। अक्कादेवी तथा मयूरवर्मदेवी को बनवासी का शासक नियुक्त किया गया था। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार मयूरवर्मदेव उसका पति था। जयसिंह ने 1043 ई० तक शासन किया।

सोमेश्वर प्रथम—जयसिंह द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर प्रथम 1043[1] ई० में चालुक्य राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। वह इस राजवंश के महानतम शासकों में से एक था। दक्षिण भारत के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजाओं से शक्ति-संतुलन करने के अतिरिक्त उसने उत्तर भारत के परमारों तथा सम्भवतः प्रतीहारों को भी पराजित किया था। परन्तु उसके सर्वप्रमुख प्रतिद्वन्दी एवं शत्रु चोल थे।

1047 ई० के अभिलेखों के अनुसार सोमेश्वर प्रथम ने चोल, लाट, द्रविड़, नेपाल तथा पंचाल राज्यों पर विजयें प्राप्त कीं; मगध, अंग एवं कलिंग के शासकों की शक्ति का विनाश किया, कोंकण को आक्रान्त कर वहां के शासक को अपनी चरण-वन्दना के लिए विवश किया और मालवराज ने अपनी राजधानी धारा में उसकी अनुकम्पा की याचना की। उसके सेनापति नागवर्मन को सोमेश्वर की **दक्षिणभुजा** कहा गया है और उसे **चक्रकूट-कालकूट, विन्ध्याधिपमल्लशिरच्छेदन, मारसिंहमदमर्दन, धारावर्षोत्पाटन** तथा **सेवणदिशपट्ट** की उपाधियां भी दी गई हैं। 1050 ई० के बाद के सोमेश्वर प्रथम के कुछ अभिलेखों में उसे वंग, मगध, नेपाल, कान्यकुब्ज तथा पंचाल के अतिरिक्त कुरु, खस एवं आभीर राज्यों की विजय का भी श्रेय दिया गया है। बिल्हण के अनुसार युवराज विक्रमादित्य षष्ठ ने गौड़, कामरूप, पांड्य तथा सिंहल के विरुद्ध सामरिक अभियानों का नेतृत्व किया था। इनमें कम से कम मगध, अंग, कुरु, खस, आभीर तथा नेपाल की विजयों का विवरण अप्रामाणिक प्रतीत होता है। सोमेश्वर के समस्त सामरिक अभियानों का क्रम सुनिश्चित रूप से निर्धारित करना कठिन है।

1047 ई० के पूर्व किसी समय सोमेश्वर ने काकतीय प्रोल, कदम्ब चामुंडराज, यादव अज्जबस, कलचुरि रेवरस, मधुसूदन और पुलकेशिन आदि

1. कृष्ण मुरारि ने उसके राज्य का प्रारम्भ 1040 ई० में माना है (Chalukyas of Kalyani, p. 71)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सामन्तों एवं सेनापतियों के साथ उत्तरी कोंकण पर आक्रमण कर मुम्मुडि को पराजित कर दिया और अपने संरक्षित को उत्तरी कोंकण का राजा बनाया। 1047 ई० के पहले उसने केरल पर भी विजय प्राप्त की और वहां के शासक को मार डाला। 1148 ई० के पूर्व सोमेश्वर का कलचुरि कर्ण से युद्ध हुआ। बिल्हण के अनुसार उसने कर्ण की शक्ति को नष्ट कर दिया था। परन्तु प्राकृतपैंगलम में कलचुरि शासक को विक्रम (विक्रमादित्य षष्ठ) पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है।

1060 ई० के पहले सोमेश्वर ने लाट के चौलुक्य शासक वत्सराज अथवा उसके उत्तराधिकारी त्रिलोचनपाल को तथा गुजरात के चौलुक्य भीम को भी पराजित किया था। नागदेव, जेमरस, मधुसूदन तथा गुंडमय नामक सेनापतियों के साथ उसने मालवा पर आक्रमण किया और मंडप (मध्य प्रदेश के धारा ज़िले में मांड), उज्जयिनी तथा धारा को ध्वस्त किया। सोमेश्वर प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य षष्ठ के येवूर अभिलेख के अनुसार, मालवा के राजा ने कई बार मंडप में शरण ली थी और विक्रमांकदेवचरित में बतलाया गया है कि जब सोमेश्वर ने धारा को आक्रान्त किया, तो भोज अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। 1066 ई० के होट्टूर अभिलेख में सोमेश्वर के महामंडलेश्वर जेमरस को भोज की **कालाग्नि** और उसके सेनानायक नागवर्ण को **धारावर्षोत्पाटन** एवं 'चक्रकूट के लिए कालकूट' कहा गया है। इन उपाधियों से प्रमाणित होता है कि सोमेश्वर के सामन्तों ने परमारों तथा चक्रकूट के नागों पर विजय प्राप्त की थी। सोमेश्वर ने कलचुरि कर्ण से भी युद्ध किया। उसके महामंडलेश्वर संकरस ने गांगेय (कर्ण) को पराजित करने का दावा किया है। सोमेश्वर को उत्तरी कोंकण के शिलाहार शासक मुम्मुडि तथा कराड के राजा मारसिंह के विद्रोहों का भी दमन करना पड़ा। इस प्रकार नर्मदा नदी के दक्षिण के समस्त प्रदेशों पर इस चालुक्य सम्राट का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। सोमेश्वर ने कलिंग के गंग शासक वज्रहस्त पंचम पर भी विजय प्राप्त की और दक्षिण कोशल में अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

शासन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सोमेश्वर चोलों से संघर्ष करता रहा। उसके अधिकांश युद्ध प्रतिरक्षात्मक थे, किन्तु कई बार उसने भी चोलों पर आक्रमण किए। इन युद्धों के क्रम के विषय में कुछ मत-भिन्नता एवं अनिश्चितता है। नीलकान्त शास्त्री ने इन्हें इस प्रकार रखा है–

राज्यारोहण के कुछ ही समय के बाद सोमेश्वर ने पूर्वी चालुक्य राज्य पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना भेजी, जिसने चालुक्यों को पराजित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर दिया। इसकी सूचना पाकर राजेन्द्र चोल ने भी अपने संरक्षित राज्य की सहायता के लिए सेना भेजी। कलिदिंड अथवा इसके निकटवर्ती किसी स्थान पर दोनों की मुठभेड़ हुई जिसमें किसी पक्ष को निर्णायक सफलता नहीं मिली। इसके बाद धान्यकटक (गुंटूर ज़िले में कृष्णा नदी के तट पर स्थित धरणीकोट) में दोनों का फिर भयंकर युद्ध हुआ। चोल अभिलेखों के अनुसार सोमेश्वर भयभीत हो गया और विक्कि (युवराज विक्रमादित्य षष्ठ[1]) तथा विजयादित्य (राजराजनरेन्द्र का सौतेला भाई) युद्ध के मैदान से भाग गए। राजाधिराज ने सोमेश्वर की सेना को वेंगी से पश्चिम की ओर खदेड़ दिया और कोल्लिपाके (नलगोंडा ज़िले में कुलपाक) तक पहुंच गया। इस अभियान का नेतृत्व युवराज राजेन्द्र चोल ने किया था। उसने कम्पिलि में चालुक्यों के राजप्रासाद को ध्वस्त कर दिया, विक्रम नारायण (विक्रमादित्य षष्ठ) की सेना को परास्त किया, नारायण, गंडर, दिनकर, मधुसूदन, गणपति एवं गंगाधर नामक सेनापतियों को मार दिया और चालुक्य सेना के बहुत से हाथी एवं अश्व छीन लिए। जब सोमेश्वर ने दया की याचना के लिए चोल सेना के शिविर में अपने दूत भेजे, तो उन्हें अपमानित किया गया और उनके शरीर पर 'आहवमल्ल घृणित एवं कायर है' लिखवा कर बाहर निकाल दिया गया। चोल सेना ने कृष्णा नदी के तट पर स्थित पूंडर नगर को भूमिसात कर उसके ध्वंसावशेषों को गधों से जुतवाया और मणन्दिर्प्पै नगर को जला दिया। येतगिरि में चोलों ने विजय-स्तम्भ स्थापित किया तथा उस पर अपने राजकीय चिन्ह सिंह को अंकित कराया। परन्तु इस पराजय के बावजूद सोमेश्वर को अधिक क्षेत्रीय हानि नहीं हुई और उसके सेनानायक चामुंडराज ने 1047 ई० के पहले ही चोलों को खदेड़ दिया। इसके पश्चात् दोनों में पुनः युद्ध हुआ जिसमें चोल विजयी रहे और गुर्जर शासक का सिर काट लिया गया। सोमेश्वर ने सन्धि के लिए राजाधिराज के पास अपने दूत भेजे, जिनका विविध प्रकार से अपमान किया गया। एक को स्त्रियों के वस्त्र पहना दिए गए और दूसरे का सिर मुंडित करा दिया गया। इन सन्देशवाहकों में से एक का नाम चोलों ने **आहवमल्लि** और दूसरे का **आहवमल्ल** रख दिया। तदनन्तर चोल सेना ने चालुक्य राजधानी कल्याणपुर को लूटा। राजाधिराज ने वहां अपना **वीराभिषेक** कराकर विजय

---

1. पी० बी० देसाई आदि ने विक्कि की पहचान तेलुगु शासक विक्कम से की है जो सोमेश्वर प्रथम का सामन्त था (History of Karnataka, p. 163)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राजेन्द्र का विरुद धारण किया। तंजोर जिले के दारासुरम् नामक स्थान पर विद्यमान चालुक्य शैली में निर्मित द्वारपाल की एक प्रतिमा पर अंकित तमिल अभिलेख के अनुसार, कल्याणपुर को भस्मसात करने के पश्चात् वीरराजेन्द्र इसे वहां से अपने साथ लाया था।

1054 ई० में कोप्पम् में चोलों और चालुक्यों की फिर मुठभेड़ हुई जिसमें राजाधिराज मारा गया। उसकी मृत्यु के परिणामस्वरूप चोल सेना में भगदड़ मच गई और वह पराजित होकर भागने लगी। परन्तु राजाधिराज के छोटे भाई राजेन्द्रदेव (वीरराजेन्द्र)ने स्थिति को सम्भाल लिया और पराजय को विजय में परिवर्तित कर दिया। उसने सोमेश्वर के भाई जयसिंह को मौत के घाट उतार दिया। इस चोल आक्रमण एवं राजाधिराज की मृत्यु का विवरण 1071 ई०के कुछ चालुक्य अभिलेखों में भी मिलता है। इन साक्ष्यों के अनुसार दुष्ट चोल शासक ने अपने कुल-धर्म का परित्याग कर वेलवोला प्रदेश में प्रवेश किया और मन्दिरों आदि को भस्मीभूत कर दिया।

कोप्पम[1] की पराजय का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से सोमेश्वर ने दंडनायक बालादेव तथा अन्य सेनापतियों के नेतृत्व में, चोलों पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजी। परन्तु मुडक्कारु (कूडलसंगम) के युद्ध में चालुक्य पुनः पराजित हुए और उनके कई सेनापति एवं मित्र शासक मारे गए। यह युद्ध 1061ई० के पहले हुआ था।

वीरराजेन्द्र के शासन के 1067-68 ई० के अभिलेखों में वर्णित है कि उसने रणक्षेत्र में आहवमल्ल को सन्त्रस्त किया और वेंगनाडु पर अधिकार कर लिया था। इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए कई चालुक्य सेनापतियों के सिर काटकर गंगैकोंडचोलपुरम् नगर की दीवारों पर लटका दिए गए थे। इस अपमान-

---

1. इस स्थान का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। कुछ विद्वानों ने इसे कृष्णा और कुछ ने तुंग नदी के तट पर स्थित माना है। अन्य विद्वान इसकी पहचान कोल्हापुर से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित रिवद्रपुर नामक स्थान से करते हैं जहां कोप्पेश्वर का मन्दिर विद्यमान है। कोप्पम की पहचान तुंगभद्रा की सहायक हीरेहल्ल नदी के तटवर्ती कोप्पल से भी की गई है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जनक पराजय के पश्चात् सोमेश्वर ने वीरराजेन्द्र को कूडलसंगम[1] में ही पुनः शक्ति-परीक्षण के लिए पत्र लिखा जिसके उत्तर में चोल शासक अपनी सेना सहित वहां पहुंचा। युद्ध के लिए प्रस्तावित तिथि के बाद लगभग एक महीने तक वह वहां रुका रहा, परन्तु किसी कारण वश सोमेश्वर कूडलसंगम में नहीं पहुंच सका। चोल अभिलेखों के अनुसार, वह पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र में छिप गया और उसके सेनापति देवनाथ, शित्ति तथा केशि आदि भाग गए थे। वीरराजेन्द्र ने तुंगभद्रा के निकट अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया और उस पर सिंह का चित्र अंकित कराया। सोमेश्वर के सन्देश वाहक को उसने वल्लभ (सोमेश्वर) का वेश धारण करा कर उसके वक्षस्थल पर **चालुक्य** शब्द अंकित कराया। साथ ही (किसी वस्तु पर) यह लिखकर कि चोल-हाथी द्वारा पकड़े जाने के भय से चालुक्य-सिंह पलायन कर गया, उसकी गर्दन में लटका दिया।

डी०सी० गांगुली ने चोल-चालुक्य युद्धों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया है–

चालुक्य राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के कुछ ही समय बाद सोमेश्वर प्रथम को चोल राजाधिराज के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसमें पहले चालुक्य सम्राट के सामन्त पराजित हुए और बाद में कोलूरु (शोरापुर जिले में भीमा नदी के तट पर) में सोमेश्वर स्वयं पराजित हुआ। इसके उपरान्त राजाधिराज ने कल्याणी नगर को ध्वस्त किया तथा चालुक्य राजप्रासाद को भस्मसात कर दिया। कल्याणी से सम्भवतः राजाधिराज कोल्लिपाक्कै (कुलपाक) की ओर बढ़ा जहां विपक्षी सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ और चोलों ने सोमेश्वर को उसके अनेक सामन्तों तथा सेनापतियों सहित पराजित कर दिया।

1047 ई० के पूर्व राजाधिराज ने चालुक्यों को पुनः हराकर कम्पिलि को अधिकृत कर लिया। 1051-52 ई० में उसने अपने भाई वीरराजेन्द्र के साथ

---

1 कूडलसगम की पहचान भी विवादास्पद है। फ्लीट ने इसे पंचगंगा तथा कृष्णा नदियों के संगम पर रिवद्रपुर नामक स्थान के निकट स्थित माना है। बी०एल० राइस ने इसका समीकरण तुंग एवं कृष्णा के संगम पर स्थित कूडलि (Kudali) से किया है। वी० के० पिल्ले के अनुसार यह कृष्णा एवं तुंगभद्रा के संगम पर कहीं स्थित था। डी०सी० गांगुली ने इसे बेल्लारी जिले की रायदुर्ग तालुक का शिगेपल्ले ग्राम माना है, जहां संगमेश्वर का मन्दिर है। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह कर्नाटक में तुंग तथा भद्रा के संगम पर स्थित बल्लै नामक स्थान था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सोमेश्वर के राज्य पर तीसरा आक्रमण किया और कोल्हापुर पर अधिकार करने के बाद बहुत से जैन-मन्दिरों तथा अन्य स्मारकों को ध्वस्त किया। इसके पश्चात् 1054 ई० के पूर्व दोनों पक्षों में कोप्पम में तुमुल युद्ध हुआ। इस संघर्ष में भी अन्ततः चोलों ने विजय प्राप्त की।

सोमेश्वर ने न केवल चोलों के आक्रमणों का अनेक बार सामना किया, वरन् स्वयं भी चोल साम्राज्य को कई बार आक्रान्त किया। कोप्पम के युद्ध के कुछ समय पूर्व उसके सेनापति पुलकेशिन ने कांची पर हमला किया था। इसके बाद 1058 तथा 1061 ई० के बीच उसने चोल राज्य पर दो आक्रमण किए। परन्तु मुडुकाकेरे (शिमोगा जिले में तुंग नदी के तट पर स्थित) में सोमेश्वर तथा उसका पुत्र विक्रमादित्य षष्ठ पराजित होकर युद्ध का मैदान छोड़ गए थे।

राजेन्द्र द्वितीय के उत्तराधिकारी वीरराजेन्द्र के अभिलेखों के अनुसार उसने युद्धों में पांच बार सोमेश्वर प्रथम की पीठ देखी थी अर्थात् उसे पांच युद्धों में पराजित किया था। गंगवाड़ी में चालुक्यों को हराने के बाद वीरराजेन्द्र ने वेंगी के शासक विजयादित्य की ओर से चालुक्यों से युद्ध किया जिसमें सोमेश्वर का सामन्त चामुंडराज मारा गया और चालुक्य सेना बुरी तरह परास्त हुई। वीरराजेन्द्र ने विजयादित्य को वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। इसके कुछ ही समय बाद वीरराजेन्द्र का सोमेश्वर से कूडलसंगम में तुमुल युद्ध हुआ। इस संघर्ष में भी चालुक्य पराजित हुए और चोल सम्राट ने सोमेश्वर की पत्नियां, राजकोष तथा राजकीय-चिह्न आदि अपहृत कर लिए। उपर्युक्त समस्त युद्ध 1067 ई० के पूर्व हुए थे।

1063-64 ई० में सोमेश्वर ने चोलों पर आक्रमण किया और मुडुकाकेरे में अपना सैनिक-शिविर लगाया, परन्तु इस बार भी पराजित हुआ। 1067-68 ई० में युवराज विक्रमादित्य षष्ठ ने चोल राजधानी गंगैकोंडचोलपुरम् में घुसकर तोड़-फोड़ की। सोमेश्वर के सामन्त काकतीय बेत प्रथम को काजीपेट अभिलेख में 'मालव एवं चोल-रूपी हाथियों के लिए सिंह के समान' कहा गया है। इस अभिलेख के अनुसार वह चालुक्य सेना के साथ कांची तक बढ़ गया था और उस नगर के द्वार को उखाड़कर अपने साथ लाया। अन्त में सोमेश्वर प्रथम का सन्देश प्राप्त कर वीरराजेन्द्र पुनः कूडलसंगम में युद्ध के लिए पहुंचा, परन्तु सम्भवतः बीमार होने के कारण सोमेश्वर स्वयं वहां नहीं पहुंच सका।

वस्तुतः पश्चिमी चालुक्य तथा चोल, दोनों ही वेंगी को अपने राजनैतिक प्रभुत्व में रखना चाहते थे। इसलिए इन प्रतिद्वन्दी राजवंशों में अनेक संघर्ष हुए। शासन के अधिकांश भाग में सोमेश्वर प्रथम वेंगी को अपने अधीन रखने

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में सफल रहा। 1044 ई० के नरेयंगल अभिलेख में उसके सामन्त महामंडलेश्वर शोमनरस को **वेंगीपति** कहा गया है। 1049 ई० के पहले किसी समय सोमेश्वर ने वेंगी के शासक राजराज को अपना अधीनस्थ बना लिया था और 1049 तथा 1053 ई० के बीच के अन्तराल में उसके पुत्र सोमेश्वर द्वितीय ने **वेंगीपुरवरेश्वर** की उपाधि धारण की थी। सोमेश्वर प्रथम का 1057 ई० का एक अभिलेख आन्ध्र राज्य के गोदावरी जिले की राम चन्द्रपुर तालुक से प्राप्त हुआ है। परन्तु समय-समय पर पश्चिमी चालुक्यों को पराजित कर चोल भी वेंगी में अपना प्रभुत्व स्थापित करते रहे और सोमेश्वर के शासन के अन्तिम भाग में यह राज्य सम्भवतः चोलों के अधीन हो गया था; क्योंकि 1066-67 ई० के वीरराजेन्द्र के पांच अभिलेखों में वर्णित है कि वेंगीनाडु पर अधिकार कर उसने अपने बड़े भाई की प्रतिज्ञा पूरी की थी।

चोल-चालुक्य संघर्ष का सर्वप्रथम उल्लेख राजाधिराज के 1045 ई० के एक अभिलेख में हुआ है। इस प्रकार अपने शासन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सोमेश्वर प्रथम चोलों से युद्ध करता रहा जिसमें अनेक बार उसकी करारी हार हुई। किन्तु इन पराजयों के बावजूद न तो वह हतोत्साह हुआ और न ही उसने अपने राज्य को अधिक क्षेत्रीय क्षति पहुंचने दी। इससे उसके युद्ध-प्रेम तथा अनुपम शौर्य का प्रमाण मिलता है।

सोमेश्वर प्रथम का प्रभुत्व उत्तर में विन्ध्य से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा तक के अधिकांश भू-भाग में व्याप्त था और कुछ समय तक परमार एवं प्रतीहार भी उसके करद रहे थे। अभिलेखों में उसकी निम्नलिखित रानियों के नाम वर्णित हैं—चन्दलकव्वे (चन्द्रिकादेवी), मैलालदेवी, लीलादेवी, होयसलदेवी, केतलदेवी, चामलदेवी, लच्छलदेवी तथा वाछलदेवी। इनमें मैलालदेवी 1053-54 ई० में बनवासी में, और केतलदेवी 1054 ई० में पेन्नवाड अग्रहार में शासन कर रही थी। मैलालदेवी सम्भवतः अग्रमहिषी थी।

उसने अपने पुत्र सोमेश्वर द्वितीय को 1053 ई० में बेलवोला तथा पुरिगेरे का गवर्नर नियुक्त किया और विक्रमादित्य षष्ठ को 1055-56 ई० में बनवासी तथा गंगवाड़ी का। विष्णुवर्धन विजयादित्य 1064 ई० में नोलम्बवाड़ी में शासन कर रहा था और जयसिंह तृतीय तर्दवाड़ी में। उसके निम्नलिखित सामन्तों के नाम ज्ञात हुए हैं—

1. महामंडलेश्वर मयूरवर्मन द्वितीय प्रानुगल का शासक था।
2. सिंगनदेवरस 1045 ई० में किसुकाड, बनवासी तथा सान्तलिगे में राज्य कर रहा था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

3. चावुंडराय बनवासी तथा वल्लिग्राम का शासक था।
4. होयसल विनयादित्य 1045 ई० में तलकाड तथा साविमले में शासन कर रहा था।
5. कदम्ब वंशीय जयकेशिन प्रथम 1052-53 ई० में कोंकण का शासक था।

सोमेश्वर ने राजनारायण, वीरमार्तण्ड तथा त्रैलोक्यमल्ल की उपाधियां धारण कीं। उसने कला तथा साहित्य को प्रोत्साहन प्रदान किया। विक्रमांकदेवचरित तथा केम्भावि अभिलेख के अनुसार उसने कल्याणी नगर की स्थापना की और इसे राजधानी बनाकर भव्य भवनों से सुशोभित किया[1]। शिव की स्तुति करते हुए 29 मार्च 1068 ई० में सोमेश्वर ने कुरवत्ति (धारवाड़ जिले में तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित) नामक स्थान पर जल-समाधि ले ली[2]।

सोमेश्वर द्वितीय—सोमेश्वर प्रथम के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर द्वितीय 1068 ई० में राजा हुआ। उसने भुवनैकमल्ल की उपाधि धारण की। अपने छोटे भाई विक्रमादित्य षष्ठ को उसने गंगवाड़ी का शासक नियुक्त किया। 1071 तथा 1074 ई० के मध्य विक्रमादित्य कर्नाटक के आधुनिक बेल्लारी, चित्तलदुर्ग, अनन्तपुर तथा धारवाड़ जिलों में शासन कर रहा था, और उसकी राजधानी गोविन्दबाड़ी थी[3]। विक्रमादित्य बहुत महत्वाकांक्षी था। विक्रमांकदेवचरित के अनुसार उसने चोल वीरराजेन्द्र की पुत्री के साथ विवाह किया था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से उसकी शक्ति एवं महत्वाकांक्षा में काफी वृद्धि हुई।

राज्यारोहण के कुछ ही समय बाद 1068-69 ई० में सोमेश्वर को विक्रमादित्य तथा उसके सम्बन्धी एवं सहायक चोलों से युद्ध करना पड़ा। सोमेश्वर द्वितीय को अपदस्थ कर उसके स्थान पर अपने जामाता विक्रमादित्य षष्ठ को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से वीरराजेन्द्र ने चालुक्य राज्य पर आक्रमण कर दिया और गुत्ति (गूटी) को घेर लिया। इसके पश्चात् कम्पिलि नगर को भस्मसात कर चोल सेना ने करदिकल[4] में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया।

---

1. इसके पहले चालुक्यों की राजधानी मान्यखेट थी।
2. बिल्हण के अनुसार वह असाध्य ज्वर से पीड़ित था और उसे जब अपनी मृत्यु निकट दिखलाई पड़ने लगी, तो उसने आत्महत्या कर ली।
3. ओ० सी० गांगुली ने गोविन्दवाड़ी की पहचान बेल्लारी जिले के वर्तमान गोविन्दवाद ग्राम से की है।
4. रायचूर जिले में स्थित आधुनिक करदी नामक ग्राम।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर्नाटक प्रदेश को जीत कर वीरराजेन्द्र ने विक्रमादित्य को रट्टपाडि का राजा घोषित कर दिया, परन्तु सोमेश्वर द्वितीय की शक्तिशाली अश्व-सेना ने वीर-राजेन्द्र को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। चोलों की पराजय के उपरान्त विक्रमादित्य को सोमेश्वर द्वितीय के समक्ष झुकना पड़ा। 1074 ई० के एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि इस तिथि तक दोनों भाइयों में सौहार्द बना रहा और विक्रमादित्य 1074 ई० में सोमेश्वर के अधीन बंकापुर में शासन कर था। सोमेश्वर ने उसे प्रशासन में दूसरा स्थान (केवल अपने से नीचा) दे दिया था। 1071 ई० के अभिलेखों में विक्रमादित्य ने त्रिभुवनमल्ल का विरुद धारण किया।

चोलों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त सोमेश्वर द्वितीय ने गुजरात के चौलुक्य शासक कर्ण के साथ सन्धि की और उसकी सहायता से परमार जयसिंह को पराजित कर मालवा को अधिकृत कर लिया। परन्तु इस सफलता के कुछ ही समय बाद परमार उदयादित्य ने चाहमानों के सहयोग से सोमेश्वर को मालवा प्रदेश से खदेड़ दिया।

1074 ई० में सोमेश्वर द्वितीय कल्याणी एवं विक्रमपुर में विद्यमान था। 1075 ई० में वह तर्दवाड़ी (कृष्णा नदी के तट पर स्थित तंगडगय) में और 1074 तथा 1076 में बंकापुर में ठहरा हुआ था। 1075 ई० के पश्चात् किसी समय उसका विक्रमादित्य षष्ठ से युद्ध हुआ। उसका भाई जयसिंह भी विक्रमा-दित्य का समर्थक था। सोमेश्वर से युद्ध करने के पहले विक्रमादित्य ने कदम्ब वंशीय जयकेशि एवं विजयादित्य, उच्छंगि के पांड्य शासक तथा सम्भवतः होयसल विट्टिग विष्णुवर्धन एवं उसके पुत्र इरेयंग की सहायता प्राप्त कर अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाई। विक्रमादित्य षष्ठ के 1099 ई० के गडग अभिलेख के अनुसार, भुवनैकमल्ल (सोमेश्वर द्वितीय) ने उत्तराधिकार में अपने पिता का राज्य प्राप्त किया था, परन्तु कुछ ही समय के बाद वह निरंकुश एवं भ्रष्ट हो गया और प्रजा पर अत्याचार करने लगा। उसका छोटा भाई विक्रमादित्य धर्मनिष्ठ था और यह स्थिति उसके लिए असहनीय हो गई। इसलिए उसने अपने दुष्ट अग्रज सोमेश्वर द्वितीय को पराजित कर बन्दीगृह में बन्द कर शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। विक्रमांकदेवचरित के अनुसार सोमेश्वर द्वितीय ने चोल कुलोत्तुंग की सेना के साथ विक्रमादित्य पर आक्रमण किया था। द्रविड़ शासक (कुलोत्तुंग) युद्ध का मैदान छोड़कर भाग गया और सोमेश्वर द्वितीय ने बन्दीगृह में प्रवेश किया। विक्रमादित्य के अन्य कई अभिलेखों में भी वर्णित है कि उसने होयसल इरेयंग एवं चोडपांड्य की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सहायता से दुर्व्यसनी सोमेश्वर द्वितीय को पराभूत कर बन्दी बना लिया था। नन्दिमथ महोदय के अनुसार शायद कारागार में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

इस गृह-युद्ध के विषय में उपर्युक्त साक्ष्यों का विवरण अतिरंजित एवं पक्षपातपूर्ण है। चूंकि ये समस्त विवरण विक्रमादित्य षष्ठ के दरबारी कवियों द्वारा लिखे गए थे, इसलिए इनमें उसकी कृतघ्नता को छिपाकर उसे एक उदात्त चरित्र वाले शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दूसरी ओर सोमेश्वर द्वितीय को अयोग्य एवं पतित राजा बतलाया गया है। सोमेश्वर कब तक जेल में रहा और उसके जीवन का अन्त किस प्रकार हुआ, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इस प्रकार विक्रमादित्य ने वस्तुतः महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर अपने भाई से राज्य अपहृत कर लिया था।

1089 ई० के एक अभिलेख में सोमेश्वर द्वितीय की कचलदेवी तथा मैललदेवी नामक रानियों का उल्लेख है। उसकी बहिन सुग्गलदेवी 1069 तथा 1075 ई० के बीच किसुकाड में शासन कर रही थी। उसका सामन्त एवं सेनानायक लक्ष्मण दंडनायक उसके अधीन बनवासी का शासक था। उसे भुवनैकमल्ल (सोमेश्वर द्वितीय) के राज्य की रक्षा करने का श्रेय दिया गया है। सोमेश्वर के अन्य सामन्तों एवं पदाधिकारियों के नाम इस प्रकार हैं- सेउणचन्द्र द्वितीय जो 1069 ई० में सेउणदेश का महामंडलेश्वर था ; 1071 ई० में सन्धिविग्रहिन एवं दंडनायक उदयादित्य बंकापुर में शासन कर रहा था ; 1074 ई० में महामंडलाधिपति एवं दंडनायक नाकिमय्य तर्दवाड़ी का गर्वनर था ; रट्ट वंशीय कार्तवीर्य द्वितीय सौन्दत्ति का शासक था और गंग वंशीय वीरउदयादित्य 1075 ई० में बनवासी, सान्तलिगे तथा मंडलि आदि क्षेत्रों में प्रशासन-कार्य देख रहा था। इनके अतिरिक्त सोमेश्वर द्वितीय ने अपने भाई जयसिंह को नोलम्बवाड़ी का गर्वनर नियुक्त किया था[1]।

विक्रमादित्य षष्ठ–विक्रमादित्य षष्ठ को स्वाभाविक उत्तराधिकार में राज-सिंहासन नहीं मिला था, वरन् अपने अग्रज सोमेश्वर द्वितीय से इसे बलपूर्वक अपहृत कर[2] वह 1076 ई० में राजा हुआ था। राज्यारोहण के समय अपने नाम से उसने चालुक्य विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया[3]। उसके शासन के प्रारम्भ के

1. Karnataka through the Ages, P. 274.
2. सोमेश्वराद्-बाहुबलेन राज्यं ग्रहीतवानार्जित-कीर्तिलक्ष्मीः।
3. यह संवत् चालुक्य साम्राज्य में विक्रमादित्य षष्ठ के जीवनकाल में प्रचलित रहा और उसकी मृत्यु के बाद लगभग एक शताब्दी तक प्रयुक्त हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ वर्ष शान्तिपूर्ण बीते।

सोमेश्वर द्वितीय के शासनकाल में वह लगभग स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था और उसने त्रिभुवनमल्ल जैसी उपाधियों का प्रयोग किया। सोमेश्वर द्वितीय के अभिलेखों में विक्रमादित्य का द्वितीय स्थान[1] बतलाया गया है।

नन्दिमथ के अनुसार अपने पिता सोमेश्वर प्रथम के शासनकाल में विक्रमादित्य षष्ठ ने चोलों को कई बार पराजित किया, कांची नगर में लूटमार की, मालवा के राजा की सहायता की, कलचुरियों को हराया और सुदूरस्थ बंगाल तथा असम राज्यों तक विजयें प्राप्त की थीं।

1070 ई० में चोल वीरराजेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अधिराजेन्द्र राजा हुआ। वह विक्रमादित्य का साला था और वेंगी का चालुक्य शासक राजेन्द्र द्वितीय (कुलोत्तुंग प्रथम) उसे अपदस्थ करने के लिए प्रयत्नशील था। अतएव विक्रमादित्य चोल शासक की सहायता के लिए कांची पहुंचा और अधिराजेन्द्र के विरुद्ध हुए विद्रोह का दमन करने के उपरान्त गंगैकोंडचोलपुरम् में उसने अधिराजेन्द्र का राज्याभिषेक कराया। किन्तु विक्रमादित्य के वापस आने के बाद अधिराजेन्द्र एक जन-विद्रोह में मारा गया और वेंगी के चालुक्य राजिग (कुलोत्तुंग प्रथम) ने चोल राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस स्थिति को विक्रमादित्य सहन नहीं कर सका और दोनों का युद्ध अनिवार्य हो गया। होयसल इरेयंग के विषय में बतलाया गया है कि वह विक्रमादित्य षष्ठ का अधीनस्थ था और उसके आदेश से इरेयंग ने चोल शासक को पत्तों के वस्त्र पहनने के लिए बाध्य कर दिया था (चोलिकर-अण्णलेयम् तलिरनुडिसि)। उच्छंगि का पांड्य शासक भी विक्रमादित्य की ओर से कुलोत्तुंग प्रथम से लड़ा था और उसे (पांड्य राजा को) **राजिगचोलमनोभंग** की उपाधि दी गई। बिल्हण के अनुसार द्रविड़ राजा (कुलोत्तुंग प्रथम) युद्धस्थल से भाग गया और उसके साथी सोमेश्वर द्वितीय ने कारागार में प्रवेश किया था।

दूसरी ओर कुलोत्तुंग के राज्यकाल के 1074 ई० के एक अभिलेख में उसे कुन्तल के शासक को पराजित करने का श्रेय दिया गया है और 1076 ई० के दूसरे अभिलेख के अनुसार विक्रमादित्य तथा उसका भाई जयसिंह, दोनों ही चोलों से पराजित होकर नदी में जा गिरे थे। 1080 ई० के एक अभिलेख में

1. सोमेश्वर द्वितीय सार्वभौम सम्राट था और उसके बाद सर्वाधिक अधिकार विक्रमादित्य षष्ठ को ही प्राप्त थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बतलाया गया है कि नंगिलि (कोलार ज़िले में) तथा तुंगभद्रा के बीच में स्थित किसी स्थान पर कुलोत्तुंग का विक्रमादित्य से युद्ध हुआ था और चोल शासक ने उसे पराजित कर गंगमंडलम् तथा शिगनम् पर अधिकार कर लिया था।

1085 ई० के पहले किसी समय विक्रमादित्य ने चोल राज्य को आक्रान्त कर कांची पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने आन्ध्र की ओर ध्यान दिया। 1091 तथा 1093 ई० के बीच विक्रमादित्य ने पूर्वी चालुक्य राज्य के विरुद्ध अभियान कर वेंगी को जला दिया, वेलनांटि के शासक गोंक प्रथम को पराजित किया और वीरचोड से आन्ध्र राज्य अपहृत कर लिया। किन्तु 1099 ई० में कुलोत्तुंग ने वेंगी में पश्चिमी चालुक्यों की अधिसत्ता समाप्त कर दी और 1117 ई० तक इसे अपने अधीन रखा। 1118 में विक्रमादित्य षष्ठ ने वेंगी को पुनः अधिकृत कर लिया और अपने सेनापति अनन्तपाल को वहां का गवर्नर नियुक्त कर दिया। विक्रमादित्य के अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि कम से कम 1124 ई० तक आन्ध्र राज्य पर उसका प्रभुत्व कायम रहा।

द्वारसमुद्र के होयसल विक्रमादित्य षष्ठ के सामन्त थे, किन्तु अपनी वर्धमान शक्ति से प्रोत्साहित होकर उन्होंने चालुक्यों के विरुद्ध सिर उठाया। 1118 ई० के श्रवणबेलगोला से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार विष्णुवर्द्धन के सेनापति गंगराज ने कर्णेगल नामक स्थान पर विद्यमान विक्रमादित्य की सेना पर रात में आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया था। विष्णुवर्द्धन के अभिलेखों में दावा किया गया है कि उसने बेलवोला, हानुंगल, बनवासी तथा नोलम्बवाड़ी पर विजयें प्राप्त की थीं। 1120ई० के कुछ पहले उसके घोड़ों ने कृष्णा नदी में स्नान किया था। बल्लाल प्रथम, विष्णुवर्धन तथा उदयादित्य ने चालुक्य सेना का डटकर मुकाबला किया और प्रारम्भ में उन्हें सफलता भी मिली। परन्तु बाद में होयसल पराजित हुए। होयसलों के विरुद्ध युद्ध में चालुक्य सेना का नेतृत्व विक्रमादित्य के 12 सामन्त शासकों ने किया था जिनमें मालवा का परमार जगद्देव तथा सिन्द शासक आचुगि द्वितीय भी शामिल थे। सिन्द अभिलेखों के अनुसार सम्राट विक्रम (विक्रमादित्य षष्ठ) के आदेश से रणसिंह आचुगि द्वितीय ने होयसलों को पीछे खदेड़ कर गोवा पर अधिकार कर लिया, लक्ष्मण को युद्ध में मार डाला, पांड्य शासक का पीछा किया और मेलपों को तितर-बितर कर दिया। आचुगि के पुत्र पेरमाडिदेव के विषय में भी कहा गया है कि उसने विष्णुवर्धन को पराजित कर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भगा दिया और (उसकी राजधानी) द्वारसमुद्र को घेर लिया था। 1101 ई० के बाद के बल्लाल प्रथम तथा विष्णुवर्धन के अभिलेखों से भी प्रमाणित होता है कि होयसलों ने विक्रमादित्य षष्ठ का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। 1078 ई० के एक अभिलेख में काव्यात्मक शैली में बतलाया गया है कि सप्तकोंकण क्षेत्र विक्रमादित्य षष्ठ के वलय (कंकण) बन गए थे। 1113 ई० के एक अन्य अभिलेख के अनुसार पांड्य सामन्त कामदेव विक्रमादित्य के अधीन कोंकण-राष्ट्र में शासन कर रहा था। 1077 ई० के बाद के विक्रमादित्य के कई अभिलेखों में उसे गुर्जर, आभीर, कश्मीर, नेपाल, सिन्ध, बर्बर, तुरुष्क, दहाल, मरु, वंग, विदर्भ, कोंकण तथा नल्लूर का विजेता कहा गया है। वास्तव में इनमें से कुछ ही राज्यों पर उसने विजय प्राप्त की थी। 1088 ई० के पहले किसी समय उसने नर्मदा नदी को पार कर कुछ छोटे राजाओं को पराजित किया। इसके बाद लाट को लूटा और गुजरात के चौलुक्य शासक (सम्भवतः कर्ण) की राजधानी को जला दिया।

1100 ई० के आस-पास विद्रोही शासक भोज पर आक्रमण करने के लिए विक्रमादित्य ने भीमरथी नदी के तट पर स्थित अप्पयनदकुप्प नामक स्थान पर अपना सैनिक-शिविर लगाया था। परन्तु इस अभियान में उसे निर्णायक तथा स्थाई सफलता नहीं मिल सकी और 1108 ई० में भोज एक शक्तिशाली शासक के रूप में राज्य कर रहा था।

हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि के व्रतखंड के अनुसार, यादव सेउणचन्द्र ने परमादिदेव (विक्रमादित्य षष्ठ) की उसके शत्रुओं से रक्षा की और उसके राजवंश की प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया। 1100 ई० के एक अभिलेख में सेउणचन्द्र के पुत्र इरमदेव द्वारा चालुक्यों की प्रभुसत्ता स्वीकार करने का उल्लेख है। बाद में यादवों ने विद्रोह कर दिया। किन्तु चालुक्यों ने इरमदेव को पराजित कर सामन्त रहने के लिए बाध्य किया। 1124 ई० के पूर्व किसी समय विक्रमादित्य के नोलम्बवाड़ी के सामन्त पांड्यदेव ने कलचुरि जाजल्लदेव प्रथम का पीछा किया था। उच्छंगि के पांड्य शासक ने भी विद्रोह कर दिया था जिसे विक्रमादित्य के सामन्त आचुगि द्वितीय ने दबा दिया। 1071ई० में कदम्ब विजयादित्य ने भी चालुक्यों की प्रभुसत्ता मानने से इन्कार कर दिया था।

सोमेश्वर द्वितीय के विरुद्ध युद्ध में विक्रमादित्य के अनुज जयसिंह ने उसका साथ दिया था और विक्रमादित्य के राज्यारोहण के बाद भी कुछ वर्ष तक वह उसके प्रति निष्ठावान रहा। 1077 ई० में वह बेलवोला तथा पुलिगेरे का शासक था। एक अभिलेख में उसे युवराज के रूप में कन्दूर का राजा तथा अण्णमअंक-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कार (अपने बड़े भाई का रक्षक) कहा गया है। इसी अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने एतगिरि के स्कन्धावार में हिरण्यगर्भ एवं तुलापुरुष नामक दान दिए थे। किन्तु बाद में जयसिंह विक्रमादित्य का विरोध करने लगा।

विक्रमांकदेवचरित के अनुसार जब विक्रमादित्य को विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ कि जयसिंह उसके विरुद्ध विद्रोह एवं युद्ध की तैयारियां कर रहा है और वह शीघ्र ही कृष्णा नदी तक पहुंच जायेगा, तो उसने जयसिंह के पास सन्देश भेजा कि 'सम्राट की उपाधि के अतिरिक्त तुम्हें एक स्वतन्त्र शासक के सभी अधिकार प्राप्त हैं, इसलिए तुम्हें विद्रोह नहीं करना चाहिए'। परन्तु इस सन्देश से वह अप्रभावित रहा। उसने विक्रमादित्य के पास अपमानजनक उत्तर भेजा और इसके बाद सेना सहित कृष्णा नदी के समीप पहुंच गया। विक्रमादित्य भी उससे युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा और दोनों की सेनाओं में संघर्ष हुआ। प्रारम्भ में जयसिंह को कुछ सफलता मिली, परन्तु बाद में उसे पराजित होकर युद्ध के मैदान से भागना पड़ा और वह विक्रमादित्य के समक्ष लाया गया। किन्तु उसने जयसिंह के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और उसे क्षमा कर दिया। यह विवरण निःसन्देह पक्षपातपूर्ण है।

याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका में विज्ञानेश्वर ने पारम्परिक प्रशंसात्मक शैली में लिखा है कि विक्रमादित्य हिमालय से लेकर रामेश्वरम् तक और बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक के सम्पूर्ण देश का चक्रवर्ती सम्राट था। परन्तु उसके साम्राज्य की वास्तविक सीमाएं उत्तर में नर्मदा नदी और दक्षिण में वर्तमान हसन तथा कडप्पा ज़िले थे।

विक्रमादित्य की अनेक रानियां थीं जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिलाहार राजकुमारी चन्द्रलेखा (चन्दलादेवी), केतलादेवी, लक्ष्मीमहादेवी, जक्कलदेवी, पट्टमहादेवी, मैललमहादेवी, भागलमहादेवी, सावलदेवी, पद्मलदेवी तथा यलवट्टि। उसने वीरराजेन्द्र चोल की पुत्री के साथ भी विवाह किया था। लक्ष्मीमहादेवी को पियरसि (प्रियरानी) और चन्दलादेवी को पियरसि के अतिरिक्त अग्रमहामहिषी कहा गया है। इनमें से कुछ रानियां प्रशासन-कार्य से सक्रिय रूप से सम्बद्ध थीं। 1084-85 में लक्ष्मीमहादेवी दम्बल तथा 18 अग्रहारों पर शासन कर रही थी और 1109-10 ई० में निट्टूसिंगि नामक ग्राम में। मलयमतिदेवी 1094-95ई० में किरियकरेयूर के अग्रहार का प्रशासन देख रही थी। सांवलदेवी 1077-78 ई० में नरेयंगल अग्रहार की प्रशासिका थी जो उसे अंगभोग के लिए दिया गया था। विक्रमांकदेवचरित के अनुसार विक्रमादित्य ने चन्द्रलेखा के साथ स्वयंवर-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवाह किया था। केतलादेवी बेल्लारी ज़िले में, लक्ष्मीमहादेवी द्रोणपुर (धारवाड़ ज़िले में), जक्कलादेवी इंगुड़िगे ग्राम में तथा मैललमहादेवी 1095 ई० में कण्णवल्ले में शासन कर रही थी।

विक्रमादित्य षष्ठ के राज्यकाल के अभिलेखों में उसके अनेक सामन्तों एवं उच्च प्रशासनिक अधिकारियों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–बनवासी का महामंडलेश्वर कीर्तिवर्मन द्वितीय, बीजापुर ज़िले का शासक सिन्द वंशीय मुंज, कोल्हापुर का शिलाहार गंडरादित्य, सौन्दत्ति का रट्ट शासक कार्तवीर्य द्वितीय, माहिष्मती क्षेत्र का हैहय वंशीय सामन्त यनेमरस, होयसल विष्णुवर्धन तथा कोंकण का शासक जयकेशिन द्वितीय। इनके अतिरिक्त गोवा के कदम्ब, देवगिरि के यादव, वारंगल के काकतीय और नोलम्बवाड़ी के पांड्य भी उसके अधीनस्थ थे। विक्रमादित्य षष्ठ के सेनापतियों में अनन्तपाल, गोविन्द, कालिदास तथा सुरेश्वर पंडित उल्लेखनीय हैं।

अपने नाम पर विक्रमादित्य ने विक्रमपुर नगर की स्थापना की थी। इसकी पहचान बीजापुर ज़िले के अरसिबीडि नामक स्थान से की गई है। उसने विष्णु के एक मन्दिर (विष्णुकमलविलासि) तथा एक विशाल झील का निर्माण कराया। उसके राज्यकाल में जयन्तीपुर (बनवासी नगर) काफी महत्वपूर्ण हो गया था।

विक्रमादित्य षष्ठ विद्वानों का उत्साही संरक्षक था। उसके संरक्षित कश्मीरी कवि बिल्हण ने 1085 ई० के आस-पास विक्रमांकदेवचरित नामक काव्य की रचना की थी जिसका नायक विक्रमादित्य षष्ठ ही था। उसने बिल्हण को **विद्यापति** (प्रमुख राजपंडित) बना दिया था। याज्ञवल्क्य स्मृति का टीकाकार विज्ञानेश्वर उसका मन्त्री था। विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर **मिताक्षरा** नाम की टीका लिखी। मिताक्षरा के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम तीन श्लोकों में विज्ञानेश्वर, कल्याण नगर तथा विक्रमादित्य की महानता का विवरण इस प्रकार है–कल्याण जैसा भव्य नगर, विक्रमादित्य जैसा महान सम्राट और विज्ञानेश्वर के समान प्रकांड विद्वान न तो कभी हुए और न ही भविष्य में होंगे। कल्याण प्रधानी राजधानी थी। इसके अतिरिक्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में बनवासी बल्लिगाम, एतगिरि, विजयपुरी तथा विक्रमपुर भी महत्वपूर्ण नगर एवं प्रशासनिक केन्द्र थे।

उसने तमिल ब्राह्मणों को विशेष प्रश्रय प्रदान किया और बहुत से तमिल ब्राह्मणों को अपने राज्य में बसाकर उनके जीवन-निर्वाह के लिए अग्रहार आदि

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दान में दिए। उसने पेरमाडिदेव, कविविक्रम तथा त्रिभुवनमल्ल की उपाधियां धारण कीं। उसने सिंहल के शासक विजयवाहु के पास 1083 ई० में बहुमूल्य भेंटों के साथ अपना एक दूतमंडल भेजकर उससे मित्रतापूर्ण एवं कूटनीतिक सम्बन्ध बनाए। वह कल्याणी के चालुक्य वंश का सबसे महान शासक था। उसने लगभग 51 वर्ष तक राज्य किया। इस दीर्घकालीन शासन के अधिकांश भाग में उसके राज्य में काफी सम्पन्नता एवं शांति रही। बिल्हण के अनुसार लोग रात में अपने घरों के दरवाजे बन्द करने की चिन्ता नहीं करते थे। विक्रमादित्य प्रत्येक पुनीत अवसर पर 16 बहुमूल्य भेंटे दान में देता था। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 1126 ई० है।

सोमेश्वर तृतीय–विक्रमादित्य षष्ठ के बाद उसका पुत्र सोमेश्वर तृतीय 1126 ई० में राजा हुआ। उसने भूलोकमल्ल तथा सर्वज्ञचक्रवर्ती की उपाधियां धारण कीं। उसने **भूलोकमल्लवर्ष** नामक नवीन संवत् का प्रारम्भ किया। परन्तु सोमेश्वर के कुछ अभिलेखों में विक्रम संवत् का भी प्रयोग किया गया है।

द्राक्षारामम् से प्राप्त एक तिथि-रहित अभिलेख के अनुसार वेलनांटिचोड-गोंक द्वितीय ने गोदावरी नदी के तट पर हुए एक युद्ध में सोमेश्वर तृतीय की सेना को खदेड़ा और चालुक्य सेनापति गोविन्द एवं लक्ष्मण को पराजित किया था। यह युद्ध 1135 ई० में अथवा इसके कुछ पहले हुआ होगा। इस पराजय के परिणामस्वरूप चालुक्यों ने बहुत सा सोना, अश्व एवं ऊंट भी खोए थे।

कर्नाटक में होयसलों की शक्ति बढ़ रही थी। होयसल विष्णुवर्धन 1135 ई० के कुछ बाद तक सोमेश्वर तृतीय की प्रभुसत्ता मानता रहा। 1137 ई० के सिन्दिगेरे के एक अभिलेख में उसे **चालुक्यमणिमांडलिकचूड़ामणि** कहा गया है। परन्तु बाद में होयसलों ने विद्रोह कर दिया। सोमेश्वर के शासन के 13वें वर्ष के एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता कि महामंडलेश्वर होयसलदेव ने गंगवाड़ी, नोलम्बवाड़ी तथा बनवासी को अधिकृत किया, उच्छंगि के दुर्ग पर प्रहार किए और कदम्ब शासक मल्लिकार्जुन द्वारा शासित पानुंगल (हानुंगल) को घेर लिया था। किन्तु बाद में सोमेश्वर ने होयसलों को पराजित कर दिया। बनवासी के कदम्ब उसके सामन्त थे।

कर्नाटक के शिमोगा जिले की शिकारपुर तालुक से प्राप्त 1121 ई० के एक अभिलेख में वर्णित है कि दिग्विजय के उद्देश्य से सोमेश्वर दक्षिण की ओर गया था और हुल्लुरि तीर्थ में उसने अपना सैनिक-शिविर लगाया था। उसे आन्ध्र तथा द्रामिल राज्यों का भी विजेता कहा गया है। परन्तु 1134 ई० के

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ पहले चोल कुलोत्तुंग द्वितीय ने आन्ध्र राज्य को पुनः अपने अधीन कर लिया। आन्ध्र में चालुक्यों का आधिपत्य वस्तुतः सोमेश्वर तृतीय के शासनकाल के पहले ही शिथिल हो गया था और विक्रमादित्य षष्ठ की मृत्यु के बाद वेंगी राज्य के दक्षिणी क्षेत्र पर चोलों ने अधिकार कर लिया था। सोमेश्वर को मगध एवं नेपाल की विजयों का भी श्रेय दिया गया है, किन्तु यह विवरण अप्रामाणिक प्रतीत होता है।

सोमेश्वर तृतीय बीजापुर जिले में कर्णलेवाद या कडलेवड (दक्षिण वाराणसी) के स्वयम्भू सोमनाथदेव के मन्दिर में दर्शन के लिए गया था। इस देवालय को उसने प्रभूत दान दिए और 16 **महादान** सम्पन्न किए। 1134 ई० के एक अभिलेख में उसकी रानी वर्मलदेवी का उल्लेख है। सोमेश्वर महान विद्वान तथा लेखक भी था। उसने मानसोल्लास (अभिलसितार्थचिन्तामणि) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें समस्त शास्त्रों का सार संग्रहीत है। उपेन्द्र ठाकुर के अनुसार सोमेश्वर तृतीय ने बंगाल में सेन राजवंश तथा मिथिला में कर्णाट वंश की स्थापना की थी। इस मत को स्वीकार करने के लिए और प्रमाण अपेक्षित हैं। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 1138 ई० है।

जगदेकमल्ल द्वितीय—सोमेश्वर तृतीय के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र जगदेकमल्ल द्वितीय 1138 ई० में राजा हुआ। अपने दो पूर्ववर्ती शासकों की भांति उसने भी अपने राज्यारोहण के समय एक नवीन संवत् का प्रवर्तन किया, जो उसके राज्यकाल में भी लोकप्रिय नहीं हो सका। जगदेकमल्ल को त्रिभुवनमल्ल तथा त्रिभुवनमल्ल पेरिमाडिदेव भी कहा गया है। 1124 ई० के एक अभिलेख में उसे सम्राट पद की सूचक उपाधियां दी गई हैं और उच्छगि के विजयपांड्य को उसका सामन्त बतलाया गया है। चूंकि विक्रमादित्य षष्ठ ने 1126 ई० तक राज्य किया, अतएव 1124 ई० में उसका पौत्र जगदेकमल्ल द्वितीय उसी के अधीन किन्तु महत्वपूर्ण शासक रहा होगा।

सोमेश्वर तृतीय के शासन के अन्तिम भाग में, अथवा जगदेकमल्ल के शासन के प्रारम्भ में होयसलों, कदम्बों तथा कुछ अन्य सामन्तों ने विद्रोह कर दिया था जिन्हें चालुक्यों ने अपने सेनापति सिन्नपेरिमाडिदेव के सहयोग से शान्त किया। 1143 ई० के चित्तलदुर्ग से प्राप्त एक अभिलेख में जगदेकमल्ल द्वितीय की चोलों तथा होयसलों के विरुद्ध सफलता का उल्लेख है। 1147 ई० के मुचुगे अभिलेख के अनुसार उसके आदेश से दंडाधिप ने होयसल शासक का पीछा किया और अपने अधिपति जगदेकमल्ल द्वितीय के लिए कलिंग तथा चोल

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्यों के शासकों से कर वसूल किया था[1]। उसे चोल, लाट तथा गुर्जर राज्यों के शासकों को खदेड़ने वाला और चालुक्य वंश का प्रतिस्थापक भी कहा गया है। जगदेकमल्ल ने नोलम्ब पल्लव के विद्रोह का भी दमन किया था। 1149 ई० के एक अभिलेख में उसने वंकापुर, नोलम्बवाड़ी, हांगल, हुलिगेरे तथा हेड्डोरे (कृष्णा) नदी तक के समस्त प्रदेशों को अपने अधीन करने का दावा किया है।

पेरमाडिदेव के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने जगदेकमल्ल के राज्यकाल में कुलशेखनांक को पराजित किया, चट्ट[2] का सिर काट दिया, जयकेशिन का पीछा किया और विष्णुवर्धन को बेलुपुर तक खदेड़ कर उस नगर को अधिकृत कर लिया था। 1143 ई० के लगभग जगदेकमल्ल ने होयसल नरसिंह के साथ मालवा पर आक्रमण किया; परमार शासक जयवर्मन को राज-सिंहासन से हटा दिया तथा उसके स्थान पर बल्लाल को प्रतिष्ठित कर दिया। सम्भवतः इसी अभियान के दौरान में उसने लाट को भी लूटा और चौलुक्य कुमारपाल को पराजित किया होगा।

नोलम्बवाड़ी के पांड्य, बनवासी का गोरवदेवरस, अनन्तपुर का शासक इरुंगुलचोल (इरुंगोलरस), सान्तर वंशीय जगद्देव, सिन्द राचमल्ल तथा पेरमाडिदेव और गंग मारसिंह का पुत्र एक्कल आदि सोमेश्वर तृतीय के सामन्त थे। होयसलों की भांति कलचुरि तथा काकतीय भी उसका केवल नाममात्रेण आधिपत्य मानते रहे। परन्तु उत्तर में देवगिरि के यादव तथा पूर्व में काकतीय प्रोल प्रथम चालुक्य राज्य को सन्त्रस्त कर रहे थे। इस प्रकार चालुक्य साम्राज्य पतनोन्मुख हो चुका था। जगदेकमल्ल का अन्तिम तिथियुक्त अभिलेख शक संवत् 1074 (लगभग 1151 ई०) का है।

तैल तृतीय—जगदेकमल्ल द्वितीय के पश्चात् उसका छोटा भाई तैल तृतीय सम्भवतः 1149ई० के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। उसने त्रिभुवनमल्ल, त्रैलोक्य-मल्ल तथा चालुक्यचक्रवर्तीविक्रम के विरुद धारण किए। उसके राज्यकाल में अनेक विद्रोह हुए और चालुक्य साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया काफी तीव्र हो गई थी।

तैल तृतीय के 1151 ई० के बीजापुर के एक अभिलेख के अनुसार तर्दवाडी का कलचुरि शासक बिज्जल उसका महामंडलेश्वर था और उसने मालवा, लाट,

1. चोल शासक कुलोत्तुंग द्वितीय था और कलिंग के राजा की पहचान अनन्तवर्मन चोडगंग से की गई है।
2. चट्ट सम्भवतः तोरगले (आधुनिक तोरगल) का शासक चट्ट द्वितीय था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नेपाल, तथा गुर्जर राज्यों पर विजयें प्राप्त की थीं। 1156-57 ई० के अभिलेखों में बिज्जल को सामन्त कहा गया है, किन्तु बाद में उसने विद्रोह कर दिया। 1157 ई० के एक अभिलेख में उसे महाराजाधिराजभुजबलचक्रवर्ती कहा गया है। इसी तिथि के आस-पास बिज्जल ने अपना संवत् भी चलाया और त्रिभुवनमल्ल की उपाधि धारण की। उसे तेलंगाना तथा कोल्हापुर के शासकों का सहयोग मिला था। 1162 ई० में बिज्जल ने पुनः अपने अधिराट पर आक्रमण कर उसे बनवासी की ओर खदेड़ दिया, तथापि तैलप के जीवनकाल में वह नाममात्र के लिए उसकी अधिसत्ता मानता रहा।

1153 ई० के कुछ पहले तैलप ने चौलुक्य कुमारपाल तथा चोल कुलोत्तुंग द्वितीय के आक्रमणों को विफल कर दिया था। उसके अधीनस्थ काकतीयों ने भी विद्रोह कर दिया था जिसका दमन करने के लिए वह अपने सामन्त सान्तर जगद्देव के साथ वारंगल पहुंचा। किन्तु प्रोल प्रथम ने तैल को पराजित कर बन्दी बना लिया। अन्मकोंड के एक अभिलेख के अनुसार युद्ध में हाथी पर सवार तैल को काकतीय शासक ने पकड़ लिया था। कुछ समय तक वह अपनी राजधानी कल्याणी में कैद रहा। बाद में उसके प्रति अपनी अवशिष्ट स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर प्रोल ने उसे मुक्त कर दिया। तैल अण्णिगेरे (धारवाड़ जिले में) चला गया और सम्भवतः उसे राजधानी बनाकर कुछ समय तक बहुत सीमित क्षेत्र पर शासन करता रहा। उसके राज्यकाल के अभिलेख आधुनिक शिमोगा, कडप्पा तथा करनूल जिलों पर उसका प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। होयसल नरसिंह चालुक्यों को अपना अधिपति मानता रहा। 1163 ई० के अन्मकोंड से प्राप्त एक अभिलेख में बतलाया गया है कि काकतीय रुद्रदेव से भयभीत होने के कारण तैल को अतिसार हो गया था। कृष्णस्वामी आयंगर के अनुसार 1163 ई० में ही उसकी मृत्यु हो गई।

कलचुरि शासन का अन्तराल—कलचुरियों की कई शाखाएं थीं जो उत्तर भारत के विभिन्न भागों में शासन कर रही थीं। उसकी शक्ति के केन्द्र सरयूपुर, रत्नपुर, त्रिपुरी तथा माहिष्मती आदि थे। इनमें माहिष्मती का कलचुरि राजवंश सर्वाधिक प्राचीन था। त्रिपुरी के कलचुरियों की एक शाखा किसी समय उत्तर भारत से स्थानान्तरित कर कर्नाटक राज्य में जाकर बस गई थी। 11वीं एवं 12वीं शताब्दियों में वे कल्याणी के चालुक्यों के सामन्त के रूप में तर्दवाड़ी प्रान्त (वर्तमान शोलापुर तथा बीजापुर जिले) में शासन कर रहे थे और उनकी शक्ति का केन्द्र मंगलवाड़ महाराष्ट्र के वर्तमान शोलापुर जिले में स्थित था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कलचुरि हेम्मदि एवं उसका पुत्र बिज्जल चालुक्य जगदेकमल्ल द्वितीय तथा तैल तृतीय के अधीनस्थ थे। बिज्जल योग्य तथा महत्वाकांक्षी था। 1064 ई० में वह तैल तृतीय के महामंडलेश्वर की हैसियत से उत्तंगिदुर्ग (वर्तमान वेल्लारी ज़िला) के आस-पास के क्षेत्र में शासन कर रहा था। धीरे-धीरे वह अपनी शक्ति बढ़ाता गया और महामंडलेश्वर के स्थान पर उसने दंडनायक, महाप्रधान, भुवनैकवीर, त्रिभुवनमल्ल, भुजबलचक्रवर्ती, कालंजरपुरवराधीश्वर तथा कलचुर्यकुल-कमलमार्तण्ड की उपाधियां धारण कीं। एक अभिलेख में विक्रमादित्य षष्ठ की रानी चन्दलादेवी को बिज्जल को दादी कहा गया है।

काकतीय शासक प्रोल द्वारा पराजित होने के कारण तैल की प्रतिष्ठा एवं शक्ति को बहुत अधिक क्षति पहुंची थी[1] और इस पराभव के बाद वह अपनी राजधानी कल्याणी नहीं गया। तैल सम्भवत: बिज्जल से भी सशंकित था। उसने अण्णिगेरे (धाड़वाड़ ज़िले में) में कुछ समय तक शासन किया और बाद में बनवासी चला गया। 1161 ई० तक तैल तृतीय नाममात्र का ही राजा रह गया था[2]। बिज्जल ने इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाया और चालुक्य राज्य की वास्तविक सत्ता उसके हाथ में आ गई। उसने कई चालुक्य सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया और शिलाहार शासक विजयादित्य तथा बनवासी के गवर्नर दंडाधिनाथराच आदि की सहायता से 1162 ई० में औपचारिक रूप से अपने को कल्याणी का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।

शासन के प्रारम्भिक वर्षों में बिज्जल को अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसने सान्तर शासक जगद्देव को पराजित किया, अनन्तपुर ज़िले में गुत्ति के दुर्ग को नष्ट कर दिया, तुंगभद्रा के तट पर होयसल नरसिंह प्रथम को हराया और पांड्य शासक विजय को अधीनस्थ बना लिया। उसने चोल राजराज द्वितीय, आन्ध्र के वेलनांटि शासक राजेन्द्र चोड द्वितीय, पूर्वी गंग वंशीय राघव, चौलुक्य कुमारपाल, कलचुरि जयसिंह तथा चेरों के विरुद्ध भी सफलताएं प्राप्त करने का दावा किया है। बिज्जल के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में उसे अंग, वंग, मगध, नेपाल, तुरुष्क तथा सिंहल पर आक्रमण करने का श्रेय दिया गया है जो मात्र अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

बिज्जल ने यद्यपि सम्पूर्ण चालुक्य साम्राज्य पर अधिकार करने का दावा

---

1. प्रोल ने तैल को पराजित कर बन्दी बना लिया था। बाद में तैल के कुछ निष्ठावान सामन्तों ने उसे मुक्त कराया।
2. Karnataka through the Ages, 291-292.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया है, किन्तु आभिलेखिक साक्ष्य के अनुसार चालुक्य राज्य के दक्षिणी प्रदेश कभी उसके अधीन नहीं रहे और उसके द्वारा शासित भू-भाग का धुर दक्षिणी प्रान्त बनवासी था। उसने अपनी पुत्री सिरयादेवी का विवाह सिन्द शासक चावुंड के साथ किया। कल्याणी के चालुक्य, बिज्जल को अपदस्थ करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। उस समय बसवेश्वर द्वारा चलाया गया लिंगायत सम्प्रदाय (वीरशैव) काफी लोकप्रिय हो गया था। परन्तु बिज्जल ने इसका विरोध किया। इसलिए बिज्जल के कई मित्र उसके विरोधी हो गए थे।

बिज्जल के चार[1] पुत्र थे-सोमेश्वर, संकम, आहवमल्ल तथा सिंहण। 1165 ई० में उसने सोमेश्वर को प्रशासन-कार्य से सम्बद्ध कर लिया और 1168 ई० में उसे औपचारिक रूप से राजा बनाकर स्वयं राजसिंहासन त्याग दिया। एस० सी० नन्दिमथ के अनुसार बिज्जल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में सम्भवतः उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ। 1172 ई० के पहले किसी समय सोमेश्वर ने चोल, गुर्जर तथा लाट राज्यों के विरुद्ध सफलताएं प्राप्त कीं और कलिंग, किम्मिर[2], तुरुष्क, चेर तथा सौराष्ट्र राज्यों में लूट-पाट की। सोमेश्वर की अन्तिम ज्ञात तिथि 1177 ई० है। पी०बी० देसाई के अनुसार सोमेश्वर के शासन के अन्तिम भाग में उसके भाइयों-मैलुगि (मल्लिकार्जुन) तथा संकम ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। मैलुगि के दो अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि उसके शासन का प्रारम्भ 1175 ई० में ही हो गया था। इसी तिथि के आस-पास के संकम के अभिलेख बीजापुर ज़िले में प्राप्त हुए हैं[3]।

सोमेश्वर के उपरान्त उसका छोटा भाई संकम द्वितीय हुआ। उसके

---

1. पी० बी० देसाई तथा बी० आर० गोपाल के अनुसार बिज्जल के पांच पुत्र थे–सोविदेव, मल्लिकार्जुन, संकम, आहवमल्ल एवं सिंहण (History of Karnataka, 195)।
2. कलिंग एवं किम्मिर पूर्वी गंग शासक राजराज द्वितीय के अधीन थे।
3. बीजापुर से प्राप्त 1151 ई० का एक अभिलेख तैल तृतीय के राजत्व के तीसरे वर्ष का है। इस आधार पर उसके राज्य का प्रारम्भ 1149 ई० में माना जा सकता है। परन्तु शक संवत् 1074 = 1151 ई० में जगदेकमल्ल भी शासन कर रहा था। इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि तैल के शासन का प्रारम्भ वस्तुतः उसके पिता के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में ही हो गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सेनानायक कावण ने वेलनांटि के राजेन्द्र चोड द्वितीय, चोल राजराज द्वितीय, होयसल बल्लाल द्वितीय, कदम्ब विजयादित्य और उत्तरी कोंकण के शिलाहार शासक अपरादित्य द्वितीय को पराजित करने का दावा किया है। विज्जल की भांति संकम को भी चौलुक्य भीम द्वितीय के अतिरिक्त गौड़, मगध, तुरुष्क तथा सिंहल की विजयों का श्रेय दिया गया है। इनमें से कम से कम अन्तिम चार राज्यों की विजय का उल्लेख काल्पनिक प्रतीत होता है। उसने 1180 ई० तक शासन किया।

संकम के उपरान्त उसका भाई आहवमल्ल राजा हुआ। उसने वेलनांटि के शासक गोंक तृतीय को पराजित किया; चोल कुलोत्तुंग तृतीय को हराने के पश्चात् कांची नगर में लूट-पाट की और होयसल बल्लाल द्वितीय, कदम्ब विजयादित्य, उत्तरी कोंकण के शिलाहार अपरादित्य द्वितीय तथा मालवा के शासक के विरुद्ध भी सफलताएं प्राप्त करने का दावा किया है। 1181 ई० के एक अभिलेख में उसे चौलिक (चालुक्य सोमेश्वर चतुर्थ?) पर भी विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। किन्तु 1181 ई० में ही सोमेश्वर चतुर्थ ने कल्याणी पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद आहवमल्ल ने लगभग दो वर्ष तक बनवासी तथा बेलवोला प्रदेशों पर शासन किया। 1183 ई० में उसका छोटा भाई सिंहण राजा हुआ। 1183-84 ई० में सोमेश्वर चतुर्थ ने बनवासी एवं बेलवोला के क्षेत्रों पर भी अधिकार कर सिंहण को अपना अधीनस्थ बना लिया। सोमेश्वर के 1184 ई० के अभिलेख में सिंहभूपाल (सिंहण) को उसका सामन्त कहा गया है। इस तिथि के पश्चात् चालुक्य राज्य में कलचुरि शासन का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

इस विवरण से प्रमाणित होता है कि विज्जल तथा उसके पुत्र, कल्याणी में अपनी अधिसत्ता को सुदृढ़ आधारशिला पर खड़ा करने में सफल नहीं हो सके। अधिकांश राज्यों को उपर्युक्त सभी कलचुरि राजाओं की विजयों में शामिल किया गया है। वस्तुतः उनके शासन के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह होते रहे और किसी भी पराजित राजवंश ने कलचुरियों के प्रभुत्व को स्थाई रूप से स्वीकार नहीं किया। फिर भी अपने 26 वर्षीय शासन के दौरान कलचुरियों ने चालुक्य राज्य के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में प्रभावी भूमिका अदा की और चालुक्यों के पतन तथा यादवों और होयसलों के अभ्युदय की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया था।

सोमेश्वर चतुर्थ—चालुक्य राज्य पर कलचुरियों की अधिसत्ता स्थापित हो

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जाने से वहां राजनैतिक अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। किन्तु जब आन्तरिक झगड़ों एवं बिज्जल की मृत्यु के परिणामस्वरूप कलचुरि-शक्ति का काफी ह्रास हुआ, तो तैलप तृतीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी सोमेश्वर चतुर्थ ने 1182 ई० के लगभग आहवमल्ल को पराजित कर अपने पैतृक राज्य के खोए प्रदेशों में से अधिकांश पुनः अधिकृत कर लिए। 1185 ई० के एक अभिलेख में उसे **कलचूर्यकुलनिर्मूलना** (कलचुरिवंश का विनाशक) तथा 1184 ई० के अभिलेख में **चालुक्याभरणसिरिमात्त्रैलोक्यमल्लभुजबलावीर** (चालुक्य वंश का आभूषण तथा बाहुवीर्य वाला त्रैलोक्यमल्ल) कहा गया है। इस प्रकार वह अपने वंश की प्रतिष्ठा का उद्धारक था। कुछ अभिलेखों के अनुसार सोमेश्वर 1177 तथा 1180 ई० के बीच राजा हुआ, और कुछ के अनुसार 1183 ई० में। चालुक्य राज्य में कलचुरि अधिसत्ता के अन्तराल में सोमेश्वर चतुर्थ की राजनैतिक स्थिति के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। इस दौरान में सम्भवतः वह अपने राज्य को बाहरी शक्तियों से मुक्त कराने में प्रयत्नशील रहा होगा। उसे अपने सुयोग्य सेनापति ब्रह्म का काफी सक्रिय सहयोग मिला था।

1181–82 ई० के बेल्लारी जिले से प्राप्त एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उस समय सोमेश्वर के अधीन सिन्द वंशीय राचमल्ल, कुरगोद में शासन कर रहा था। 1184 ई० के एक अन्य अभिलेख के अनुसार चोल, लाट, मलेयाल, तेलिंग, कलिंग, वंग, पंचाल, तुरुष्क, गुर्जर, मालवा तथा कोंकण राज्यों में उसकी आज्ञा तथा अधिसत्ता स्वीकार की जाती थी। यह स्पष्टतः अतिरंजना है। वस्तुतः सोमेश्वर के राज्यकाल के अभिलेख कर्नाटक राज्य के शिमोगा, बेल्लारी. बीजापुर तथा चित्तलदुर्ग जिलों पर उसका प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। बनवासी तथा हानुंगल का शासक कामदेवरस, होयसल बल्लाल द्वितीय, नोलम्बवाड़ी का विजयपांड्य और सिन्द मल्लदेव उसके सामन्त थे। उसके प्रमुख सेनापतियों में ब्रह्म तथा मालपदंडनायक, और महामन्त्री तेजिमय्य के उल्लेख मिलते हैं। उसने कम से कम 1184 ई० तक गोदावरी नदी तक के क्षेत्र पर शासन किया और 1189 ई० तक बेल्लारी तथा शिमोगा जिलों पर। उसने त्रिभुवनमल्ल, वीरनारायण तथा रायमुरारि के विरुद धारण किए।

1184 तथा 1186 ई० में सोमेश्वर जयन्तीपुर (बनवासी) में विद्यमान था। 1186 ई० के बाद के किसी अभिलेख में कल्याणी नगर का उल्लेख नहीं हुआ

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है। असम्भव नहीं कि अपने शासन के बाद वाले भाग में सोमेश्वर ने जयन्तीपुर को राजधानी बना लिया हो। उसने शैव एकान्तदरामय्य को आमन्त्रित कर सम्मानित किया था।

देवगिरि के यादव चालुक्यों के सामन्त थे। किन्तु बाद में उन्होंने विद्रोह कर दिया। 1189 ई० के एक अभिलेख में यादव भिल्लम को **कर्नाटश्रीवल्लभ** (कर्नाटक की राजलक्ष्मी का प्रिय) कहा गया है। यादवों की वर्धमान शक्ति से अभिभूत होकर सोमेश्वर ने अपने सामन्त कदम्ब जयकेशिन तृतीय के यहां शरण ली। जयकेशिन कम से कम 1198 ई०तक उसका आधिपत्य मानता रहा। सोमेश्वर का अन्तिम ज्ञात अभिलेख 1200 ई० का है जो चित्तलदुर्ग ज़िले से प्राप्त हुआ है। इस तिथि के पश्चात् सोमेश्वर चतुर्थ अथवा किसी अन्य चालुक्य शासक के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। मुख्यतः यादवों, होयसलों तथा काकतीयों की बढ़ती हुई शक्ति के परिणामस्वरूप कल्याणी के चालुक्य वंश का पतन हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

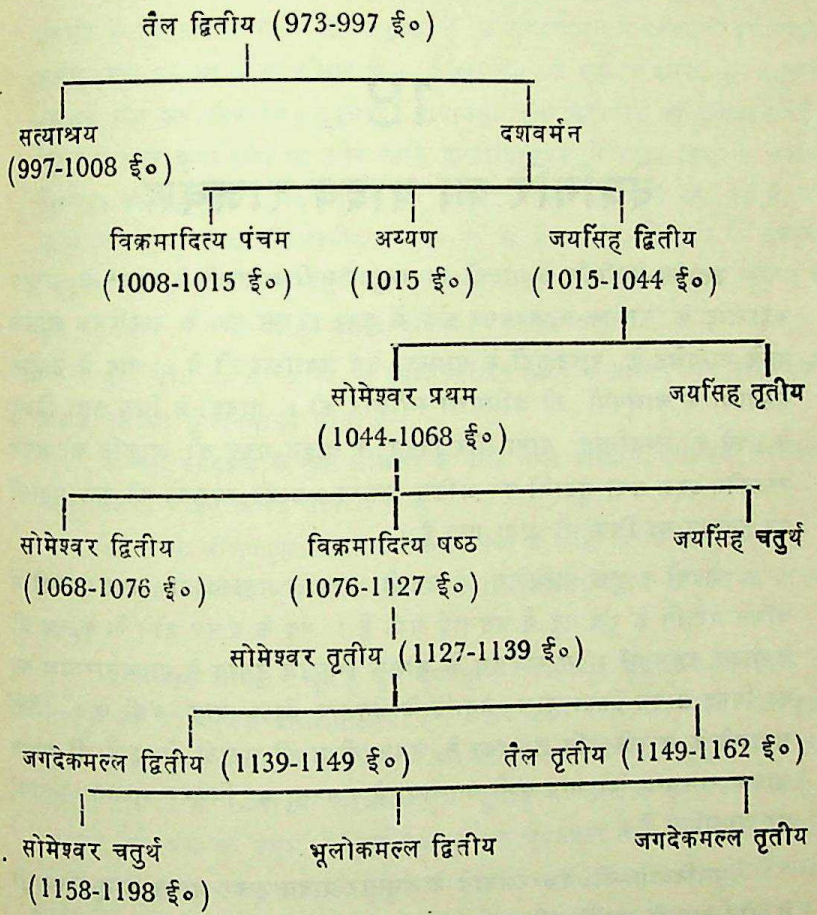

1. History of Karnataka, p. 215.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

18

देवगिरि का यादव राजवंश

उत्पत्ति–देवगिरि के यादवों का अभ्युदय नवीं शताब्दी के मध्य[1] के लगभग महाराष्ट्र के नासिक-अहमदनगर क्षेत्र में हुआ। इस वंश के प्रारम्भिक शासक पहले मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के सामन्त एवं पदाधिकारी थे। बाद में उन्होंने कल्याणी के चालुक्यों की अधिसत्ता स्वीकार की। यादवों ने शिव तथा विष्णु से अपने को सम्बन्धित माना और विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति को अपने राजकीय-ध्वज तथा मुद्राओं पर अंकित कराया। यादव शासकों की कुछ मुद्राओं पर हनुमान का चित्र भी पाया गया है।

यादवों के कुछ अभिलेखों में उनकी उत्पत्ति महाकाव्यों तथा पुराणों में वर्णित ययाति के पुत्र यदु से बतलाई गयी है। यदु के वंशज होने के कारण ही वे यादव कहलाए[2]। इस राजवंश के शासक भिल्लम तृतीय ने यादवनारायण का का विरुद धारण किया था। हेमाद्रि के अनुसार यादव चन्द्र वंशी थे। 13वीं शताब्दी के मराठी कवि ज्ञानेश्वर ने भगवतगीता की मराठी टीका में भी यादव शासक रामचन्द्र को चन्द्र वंशी बतलाया है। परन्तु ये विवरण मुख्यतः कल्पना पर आधारित हैं।

मूलनिवास–वी०के० रजवाड़े के अनुसार यादव उत्तर भारत के मूलनिवासी थे और बाद में उन्होंने दक्षिणापथ के मराठों पर विजय प्राप्त की। आर० जी० भंडारकर तथा सी० वी० वैद्य ने उन्हें महाराष्ट्र के प्राचीनतम मराठा क्षत्रिय परिवारों में से एक माना है। अल्तेकर ने वैद्य के मत का समर्थन किया है। उनके अनुसार कालान्तर में जब यादवों ने राजसत्ता प्राप्त कर ली, तो मथुरा एवं

---

1. डी० सी० गांगुली के अनुसार यादवों का उत्कर्ष 9वी शताब्दी के पूवार्द्ध में और ओ० पी० वर्मा के अनुसार इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था।
2. सर्वेपि पूर्वमथुराधिनाथाःकृष्णादितो द्वारवतीश्वरास्ते।
सुबाहु सूनोरनु दक्षिणाशाप्रशासिनो यादववंशवीराः॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्वारका के प्रसिद्ध यादव वंश से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया।

यादव अपने को **द्वारावतीपुरवराधीश्वर** तथा **विष्णुवंशोद्भव** कहते थे। हेमाद्रि के विवरण से भी प्रमाणित होता है कि दक्षिणापथ में पहुंचने के पूर्व यादव मथुरा तथा द्वारका से सम्बन्धित थे। 1169 ई० के एक अभिलेख के अनुसार (यादव वंश का संस्थापक) दृढ़प्रहार द्वारावती (काठियावाड़ का द्वारका नगर) से दक्षिणापथ चला गया था और उसने चन्द्रादित्यपुर में राज्य किया। चन्द्रादित्यपुर की पहचान नासिक ज़िले के चन्दोर नामक स्थान से की गई है जो नासिक से लगभग 65 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित है। हेमाद्रि के उपर्युक्त विवरण की पुष्टि जिनप्रभासूरि के नासककल्प ग्रन्थ ने भी की है। सुबाहु के पुत्र दृढ़प्रहार के समय में ही यादव दक्षिण के शासक हुए।

पी० बी० देसाई[1] आदि ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर यादवों को कन्नड़ देश का मूलनिवासी माना है–

क–इस राजवंश के कुछ शासकों के नाम यथा दाडिप्प, भिल्लम, राजुगि, वासुगि तथा वड्डिग कन्नड़ उत्पत्ति के हैं।

ख–उनके अधिकांश अभिलेख कन्नड़ भाषा में लिखे गए थे।

ग–इस वंश के कुछ राजाओं ने **कर्नाटराजवंशाभिराम** का विरुद धारण किया।

प्रारम्भिक शासक : सुबाहु एवं दृढ़प्रहार–व्रतखंड में सुबाहु को देवगिरि के यादवों का आदिपूर्वज बतलाया गया है। उसने अपने राज्य को अपने चार पुत्रों में विभाजित कर दिया और दृढ़प्रहार को दक्षिण का प्रदेश प्राप्त हुआ। परन्तु यादव शासकों के किसी भी अभिलेखों में सुबाहु का उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक दृढ़प्रहार था। विविधतीर्थकल्प के अनुसार वह वज्रकुमार का पुत्र था। उसने स्थानीय लोगों को लुटेरों आदि से बचाया, इसलिए उन्होंने दृढ़प्रहार को अपना मुखिया मान लिया और उसे कर देना प्रारम्भ कर दिया। विविधतीर्थकल्प के अनुसार उसने एक लाख युद्ध किए थे। इस संख्या का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है। बस्सैन ताम्रपत्रों में दृढ़प्रहार को अपने शत्रुओं के हाथियों एवं सैनिकों के सिरों का भंजन करने वाला कहा गया है।

अल्तेकर के अनुसार दृढ़प्रहार के अधिपति राष्ट्रकूट अमोघवर्ष प्रथम तथा प्रतीहार मिहिरभोज के बीच प्रायः युद्ध होते रहते थे जिनके परिणामस्वरूप

1. History of Karnataka, pp. 218-219.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नासिक तथा खानदेश में अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। इससे प्रोत्साहित होकर विन्ध्य प्रदेश की लुटेरी जनजातियां इन क्षेत्रों को आक्रान्त करने लगी थीं और दृढ़प्रहार ने इन्हीं का दमन किया होगा।

हेमाद्रि ने दृढ़प्रहार को श्रीनगर[1] का शासक कहा है। परन्तु बस्सैन तथा आश्वी ताम्रपत्रों के अनुसार दृढ़प्रहार पहले द्वारावती का शासक था, बाद में वह चन्द्रादित्यपुर में रहने लगा और वहीं उसने राज्य किया। उसे 'विष्णु का अवतार' बतलाया गया है। दृड़प्रहार ने अनुमानतः 860 ई० से 880 ई० तक राज्य किया।

सेउणचन्द्र प्रथम-दृढ़प्रहार के पश्चात् उसका पुत्र सेउणचन्द्र प्रथम राजा हुआ। संगमनेर अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उसने अपने नाम पर अपने राज्य का नाम सेउणदेश[2] रखा था। नासिक से देवगिरि (औरंगाबाद के निकट दौलताबाद) तक के भू-भाग को सेउणदेश कहा गया है। कालेगांव अभिलेख में गोदावरी नदी को सेउणदेश का आभूषण बतलाया गया है। सेउणदेश में आधुनिक औरंगाबाद, पूर्वी एवं पश्चिमी खानदेश, अहमदनगर तथा नासिक ज़िलों के कुछ भाग शामिल थे। बस्सैन अभिलेख के अनुसार सेउणचन्द्र ने सेउणनगर की स्थापना की और उसे अपनी राजधानी बनाया। सेउणपुर का समीकरण नासिक जिले के वर्तमान सिन्नर नामक स्थान से किया गया है।

सेउणचन्द्र यादव वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक था, परन्तु उसकी सामरिक तथा अन्य उपलब्धियों का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। यह उल्लेखनीय है कि कुछ अभिलेखों में यादवों का वंशवृक्ष दृढ़प्रहार के स्थान पर सेउणचन्द्र से प्रारम्भ किया गया है।

अल्तेकर के अनुसार सेउणचन्द्र ने प्रतीहारों के विरुद्ध युद्ध में अपने अधिराट राष्ट्रकूटों की सहायता की होगी जिसके बदले में उसे सामन्त पद प्राप्त हुआ। सेउणचन्द्र के विषय में बतलाया गया है कि उसकी पैदल सेना ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसके द्वारा शासित प्रदेश नासिक ज़िले तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र तक सीमित रहा होगा। उसने लगभग 880 से 900 ई० तक राज्य किया।

सेउणचन्द्र प्रथम के उत्तराधिकारी—सेउणचन्द्र प्रथम के पश्चात् धाडियप्प,

---

1. श्रीनगर की पहचान सुनिश्चित नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसका समीकरण नासिक ज़िले के सिन्नर नामक स्थान से किया है।
2. लेभे सुतं सेउणचन्द्रसंज्ञंयत्संज्ञयासेउणदेशमाहुः (व्रतखंड, श्लोक 22)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भिल्लम प्रथम तथा श्रीराज अथवा राज आदि ने शासन किया। धाडियप्प को 'यादव वंश का दीप' कहा गया है। अन्य शासकों के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती। इन राजाओं ने अनुमानत: 900 से 950 ई० तक राज्य किया। इसके बाद बड्डिग राजा हुआ। वह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का सामन्त था और उसने कृष्ण तृतीय के अनुज धोरप्प की पुत्री वोडियव्वा के साथ विवाह किया था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से उसकी स्थिति कुछ सुदृढ़ हुई होगी। अल्तेकर का अनुमान है कि बड्डिग ने कृष्ण तृतीय को उसके सामरिक अभियानों में सक्रिय सहयोग दिया था। इससे प्रसन्न होकर उसके अधिराट राष्ट्रकूट शासक ने उसे कुछ क्षेत्र प्रदान किए होंगे।

बड्डिग के बाद उसका पुत्र भिल्लम द्वितीय राजा हुआ[1]। वह भी कृष्ण तृतीय का सामन्त था। परन्तु भिल्लम द्वितीय के ही राज्यकाल में यादवों ने राष्ट्रकूटों से अपने सम्बन्ध तोड़कर कल्याणी के चालुक्यों की अधिसत्ता स्वीकार कर ली थी।

शक संवत् 922 के संगमनेर ताम्रपत्रों में बताया गया है कि भिल्लम द्वितीय ने परमार मुंज को युद्ध में बुरी तरह परास्त किया और उसकी राजलक्ष्मी को रणरंग भीम की पत्नी बनने के लिए बाध्य किया था। कीलहार्न ने रणरंग भीम की पहचान तैलप द्वितीय से की है। ए० एस० अल्तेकर तथा ओ० पी० वर्मा ने इसका समर्थन किया है। उक्त अभियान में उसके द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण योगदान के कारण तैलप द्वितीय ने उसे कुछ और क्षेत्र प्रदान किए।

संगमनेर ताम्रपत्रों में भिल्लम द्वितीय को महासामन्त की उपाधि दी गई है और बतलाया गया है कि उसने विजयाभरणनाथ नामके एक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया और निर्माण-कार्य के पूर्ण हो जाने पर विजयाभरण की उपाधि धारण की। भिल्लम द्वितीय ने झंझ नामक राजा की पुत्री लक्ष्मी (लच्चियव्वा) के साथ विवाह किया। भगवानलाल इन्द्रजी तथा आर० जी० भंडारकर ने झंझ को कोल्हापुर का शिलाहार शासक माना है। ओ० पी० वर्मा के अनुसार वह राष्ट्रकूट राजा था। भिल्लम ने अहमदनगर जिले में कुछ भूखंड दान में दिए थे। उसने अरातिनिसूदन (शत्रुओं का विनाशक), संग्रामराम तथा कन्दुकाचार्य (कन्दुक-क्रीड़ा में पारंगत) के विरुद धारण किए। यादव शासकों में सर्वप्रथम भिल्लम द्वितीय ने अपने को द्वारावतीपुरवराधीश्वर

1. अल्तेकर के अनुसार भिल्लम द्वितीय बड्डिग का पौत्र तथा धाडियश का पुत्र था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कहा। परन्तु उसकी राजधानी सिन्दिनगर (नासिक जिले का सिन्नर) थी।

कलसबुद्रुख ताम्रपत्रों के अनुसार भिल्लम द्वितीय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी वेसु या वेसुगि था। उसने गुजरात के चौलुक्य शासक की पुत्री नयिल्लादेवी के साथ विवाह किया। वेसुगि के पश्चात् भिल्लम तृतीय राजा हुआ। उसने शक संवत् 948(1025 ई०) में कलसबुद्रुख ताम्रपत्र प्रकाशित किए थे। इस प्रकार वह 1025 ई० के पहले राजसिंहासन पर प्रतिष्ठत हो चुका था। उपर्युक्त अभिलेख में उसे महासामन्त कहा गया है। वह चौलुक्य जयसिंह प्रथम का सामन्त था और उसने उसी की पुत्री आवल्लादेवी के साथ विवाह किया था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से यादव वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई होगी। सेउणचन्द्र द्वितीय के बस्सैन अभिलेख से प्रतीत होता है कि भिल्लम तृतीय ने कई युद्ध किए थे और संग्रामराम की उपाधि धारण की। उसने सम्भवतः जयसिंह प्रथम के सामरिक अभियानों में सक्रिय भाग लिया था।

कलसबुद्रुख अभिलेख के अनुसार भिल्लम तृतीय की राजधानी सिन्दनगर थी। उसने कलशग्राम (अहमदनगर जिले में) 21 ब्राह्मणों को दानमें दिया था। उसे यादवनारायण भी कहा गया है। वह चालुक्य जयसिंह द्वितीय का समकालीन था। इस आधार पर भिल्लम तृतीय के राज्यकाल का अन्त 1045ई०[1] के आस-पास माना जाता है।

सेउणचन्द्र द्वितीय–बस्सैन अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि भिल्लम तृतीय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी सेउणचन्द्र द्वितीय था[2]। उसे पृथ्वी के समस्त राजाओं का विजेता तथा वराह रूपधारी विष्णु की भांति अपने राज्य की सुरक्षा करने वाला बतलाया गया है। इस विवरण की पुष्टि शक संवत् 1020 के एरमदेव के ताम्रपत्रों ने की है। ऐसा प्रतीत होता है कि भिल्लम तृतीय के राज्य को कलचुरि शासक कर्ण ने भारी क्षति पहुंचाई थी और सेउणचन्द्र ने अपने वंश की प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया था।

हेमाद्रि के अनुसार सेउणचन्द्र ने परमर्दिदेव (विक्रमादित्य षष्ठ) की, उसके

---

1. अल्तेकर के अनुसार उसने 1040 ई० तक शासन किया।
2. अल्तेकर के अनुसार सेउणचन्द्र द्वितीय भिल्लम चतुर्थ का उत्तराधिकारी था। पी० बी० देसाई आदि ने उसे भिल्लम तृतीय का पौत्र माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शत्रुओं से सुरक्षा कर चालुक्य परिवार के दीप को पुनः प्रज्वलित कर दिया था[1]। बाघलि अभिलेख में सेउणचन्द्र द्वितीय को मौर्यों का अधिराट कहा गया है। उसके राज्यकाल का शक संवत् 974 (1051-52 ई०) का एक अभिलेख अहमदनगर जिले से प्राप्त हुआ है। यह उसकी प्रथम ज्ञात तिथि है। इस आधार पर उसका राज्यारोहण 11वीं शताब्दी के मध्य के आस-पास रखा जा सकता है।

कल्याणी के चालुक्य शासक सोमेश्वर द्वितीय तथा विक्रमादित्य षष्ठ के बीच हुए गृह-युद्ध में उसने अपने पुत्र एरमदेव के साथ विक्रमादित्य का साथ दिया था जिसके बदले में उसे कुछ क्षेत्रीय लाभ हुआ और वह उत्तर में नर्मदा नदी तक के क्षेत्र का शासक हो गया। परन्तु इस मैत्री से क्रुद्ध होकर सोमेश्वर द्वितीय ने तेलुगू चोड चिट्टण के नेतृत्व में 1074 ई० के पूर्व किसी समय सेउणचन्द्र द्वितीय के विरुद्ध सेना भेजी। यद्यपि चिट्टण ने यादव शासक को पराजित करने का दावा किया है, किन्तु वास्तव में वह सेउणचन्द्र के विरुद्ध कोई सफलता नहीं प्राप्त कर सका। 1191 ई० के गडग अभिलेख में यादव वंशवृक्ष का प्रारम्भ सेउणचन्द्र द्वितीय से किया गया हैं। इससे उसकी महत्ता प्रमाणित होती है। 1069 ई० के एक अभिलेख में उसकी मन्त्रिपरिषद के सात उच्च पदाधिकारियों के नाम वर्णित हैं। उसके राज्यकाल के अभिलेख महाराष्ट्र के वर्तमान खानदेश तथा अहमदनगर जिलों पर उसका अधिकार प्रमाणित करते हैं। सेउणचन्द्र द्वितीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी एरमदेव की प्रथम ज्ञात तिथि 1098 ई० है। इसलिए सेउणचन्द्र के शासन का अन्त इस तिथि के पहले ही हुआ होगा।

एरमदेव–सेउणचन्द्र द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र एरमदेव राजा हुआ। वह विक्रमादित्य षष्ठ का महामंडलेश्वर था। उसके राज्यकाल के शक संवत् 1020 के आश्वी ताम्रपत्रों के अनुसार एरमदेव ने विक्रमादित्य षष्ठ को कल्याणी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। परन्तु हेमाद्रि ने इसका श्रेय सेउणचन्द्र द्वितीय को दिया है। सम्भवतः एरमदेव ने अपने पिता के साथ ही विक्रमादित्य षष्ठ की सहायता की होगी। उसने योगल्ला नामक एक राजकुमारी के साथ विवाह किया। एरमदेव के राज्यकाल की किसी अन्य घटना का उल्लेख नहीं हुआ है। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार उसने 1085 से 1105 ई० तक शासन किया।

---

3. समुद्धृतो येन महाभुजेन द्विषां विमर्दात्परमर्दिदेवः।
आस्थापि चालुक्यकुलप्रदीपः कल्याणराज्येपि स एव येन॥
(व्रतखंड, श्लोक 29)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

साम्राज्यवादी शासक: भिल्लमपंचम-भिल्लम पंचम यादव वंश का प्रथम महान शासक था। उसके राज्यकाल के अभिलेखों में उसके राज्यारोहण की तिथियां 1184-85 ई० से लेकर 1187-88 ई० तक मिलती हैं। शासन की बाग-डोर सम्भालने के दस वर्ष पहले से ही युवराज की हैसियत से भिल्लम ने प्रशासन-कार्य एवं सैन्य-संचालन में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और इस अन्तराल में उसने कई महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं थीं। अपने राज्यारोहण के समय भिल्लम ने एक नवीन संवत् का भी प्रवर्तन किया था। भिल्लम पंचम के राज्यकाल में कल्याणी के चालुक्य पतनावस्था में थे और अपने आन्तरिक झगड़ों एवं लिंगायत-सम्प्रदाय के अभ्युदय के कारण कलचुरियों की शक्ति जर्जरित हो गई थी। इसलिए भिल्लम को अपनी महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी नीति को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने का सुअवसर मिल गया। हेमाद्रि के अनुसार उसने अन्तल नामक शासक से श्रीवर्धन अपहृत किया; प्रत्यंडक को पराजित किया, आमंगलवेष्टक के राजा बिल्लण की हत्या की; कल्याण को अधिकृत किया और होयसल शासक को मौत के घाट उतार दिया था[1]। श्रीवर्धन कोंकण का बन्दरगाह था। अल्तेकर ने इसे नागपुर के निकट स्थित माना है। प्रत्यंडक की पहचान कुछ विद्वानों ने भूतपूर्व भोर राज्य के प्रचंडगढ़ या तोरण से, और कुछ ने ओस्मानाबाद जिले के परेंडा नामक स्थान से की है। बिल्लण शोलापुर का शासक था और मंगलवेष्टक इसी जिले में एक छोटा नगर था

शक संवत् 1111 के मुत्तगे अभिलेख के अनुसार भिल्लम मालवों के लिए सिरदर्द, वरालों के लिए वज्र, कलिंगों के लिए सिंह और गुर्जरों, चोलों, गौड़ों एवं पांचालो के हंसरूपी शासकों के लिए मेघगर्जन, तथा अंग, वंग और नेपाल के राजाओ के लिए काल के समान था। यह विवरण अतिशयोक्ति पूर्ण एवं काव्यात्मक है। भिल्लम ने मालवा एवं विन्ध्य के परमार शासक विन्ध्यवर्मन तथा गुजरात के चौलुक्य भीम द्वितीय पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया था। परन्तु नाडोल के चाहमान शासक केल्हण ने उस पर विजय प्राप्त कर वापस लौटने के लिए बाध्य कर दिया था। भिल्लम राजपूताने की ओर बढ़ता

---

1. यः श्रीवर्धनमाससाद नगरं क्षोणीपतेरन्तलात्।
यः प्रत्यंडकभूभृतं च समरे दुष्टं व्यजेष्ट-क्षणात्।
यो वा मंगलवेष्टकं क्षितिपतिं श्रीबिल्लणं जघ्निवान्।
कल्याणश्रियमप्यवाप्य विदधे यो होसलेशं व्युसम्॥
(व्रतखंड, श्लोक 38)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चला गया और गुजरात तथा मालवा में विद्यमान अपने सैनिक आधारों से काफी दूर पहुंच गया था। सम्भवतः इसीलिए वह चाहमान शासक द्वारा पराजित हुआ।

सूक्तमुक्तावलि में भिल्लम को मल्ल, मल्लुगि, मुंज तथा अन्न नामक शासकों के विरुद्ध विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। परन्तु इन राजाओं के समीकरण विवादास्पद हैं।

भिल्लम पंचम की सबसे महान सामरिक उपलब्धि थी कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर चतुर्थ पर विजय तथा उसकी राजधानी कल्याण पर अधिकार। 1183ई० में उसका चालुक्य सोमेश्वर चतुर्थ से शक्ति-संतुलन हुआ। इस युद्ध में चालुक्य सेनापति बर्म ने उसे पराजित कर दिया। किन्तु बाद में भिल्लम को सोमेश्वर के विरुद्ध निर्णायक सफलता मिली 1189 ई० के अण्णिगेरे अभिलेख के अनुसार भिल्लम कर्नाटक की राजलक्ष्मी का प्रिय (कर्णाटश्रीबल्लभ) बन गया था और सम्पूर्ण कर्नाटक राज्य पर शासन कर रहा था। 1191 ई० के गडग अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उस समय बीजापुर जिले में उसका विजय-स्कन्धावार स्थित था। परन्तु सौन्धत्ति के रट्टों, कराड के शिलाहारों, गोवा तथा हांगल के कदम्बों और गुत्ति एवं नोलम्बवाड़ी के पांड्यों ने भिल्लम पंचम की अधिसत्ता नहीं स्वीकार की थी।

भिल्लम पंचम के शासन के अन्तिम वर्षों में यादवों को होयसलों से भयंकर युद्ध करने पड़े। यादव राज्य पर आक्रमण कर, बल्लाल द्वितीय हांगल, गुत्ति, रट्टपल्ल तथा एरम्बर्ग के दुर्गों को अधिकृत करता हुआ कृष्णा नदी तक पहुंच गया था। 1192 ई० के बल्लाल द्वितीय के गडग अभिलेख के अनुसार उसने सोरटूर नामक स्थान पर भिल्लम को पराजित किया था। 1198 ई० के बेलूर अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने भिल्लम (पंचम) के सिर के रक्त से अपनी तलवार को रंजित किया था। 1212 ई० के अण्णिगेरे अभिलेख में बल्लाल को 'भिल्लम की सेना के लिए बड़वाग्नि' कहा गया है और बतलाया गया है कि उसने सोरटूर से लेकर लोक्किगुंडि (धारवाड़ जिले में गडग से लगभग 20 किलोमीटर पूर्व में स्थित) तक भिल्लम का पीछा किया और उसकी सेना को तहस-नहस कर डाला। इसी युद्ध का वर्णन 1224 ई० के होयसल नरसिंह प्रथम के राज्यकाल के हरिहर अभिलेख में भी किया गया है। इस अभिलेख के अनुसार सेउण राजा के दो लाख पैदल सैनिकों तथा 12 हजार घुड़सवारों वाली वाहिनी का बल्लाल ने सोरटूर से कृष्णा नदी के तट तक पीछा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया और उसे भारी क्षति पहुंचाई थी। इस निर्णायक पराजय के पश्चात् यादव सेना मलप्रभा एवं कृष्णा के उत्तरी तट की ओर लौटने के लिए विवश हुई और यही नदियां लगभग अगले 20 वर्ष तक होयसलों तथा यादवों के राज्यों के बीच की सीमा-रेखा बनी रहीं। बल्लाल द्वितीय ने भिल्लम पंचम के विरुद्ध उपर्युक्त सफलताएं 1191 तथा 1192 ई० के बीच प्राप्त की थीं। भिल्लम को चौलुक्य भीम तथा काकतीय रुद्र से भी युद्ध करने पड़े जिनमें किसी पक्ष को निर्णायक सफलता नहीं मिली।

हेमाद्रि के अनुसार भिल्लम पंचम ने देवगिरि नगर की स्थापना की[1] थी। इसका समीकरण औरंगाबाद के निकटवर्ती वर्तमान दौलताबाद से किया गया है। परन्तु देवगिरि को भिल्लम के उत्तराधिकारियों ने राजधानी बनाया था, भिल्लम के राज्यकाल में इसे यह गौरव नहीं प्राप्त हो सका। भिल्लम पंचम के अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि तेनेवलगे तथा तडवलगे (बीजापुर जिले में) उसकी अस्थाई राजधानियां थीं और सिन्नर स्थाई राजधानी।

यादव शासकों में सबसे पहले पंचम ने ही महाराजाधिराज, परमेश्वर तथा परमभट्टारक की उपाधियों का प्रयोग किया। कालेगांव अभिलेख में उसे सार्वभौम शासक तथा गडग अभिलेख में 'कृष्ण का अवतार' कहा गया है। वह यादव राज्य का वास्तविक निर्माता था। उसके अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से प्रमाणित होता है कि कर्नाटक राज्य के वर्तमान धारवाड़, रायचूर तथा बीजापुर जिले और भूतपूर्व बम्बई राज्य के कुछ भाग उसके साम्राज्य में शामिल थे। इस प्रकार उसके राज्य का विस्तार उत्तर में नर्मदा नदी से लेकर दक्षिण में कृष्णा तक हो गया था। उसकी सेना काफी विशाल एवं शक्तिशाली थी जिसमें दो लाख से भी अधिक पैदल सैनिक तथा 12 हजार घुड़सवार थे।

भिल्लम के सेनापतियों में जयत्रसिंह, लक्खण तथा महिदेव प्रमुख थे। राज्यकाल के अन्तिम दिनों में (1191 ई० के लगभग) उसने अपने पुत्र जैतुगि को प्रशासन के उत्तरदायित्व से सम्बद्ध कर लिया था। भिल्लम पंचम ने 1193 ई० तक शासन किया।

जैतुगि—भिल्लम पंचम के पश्चात् उसका पुत्र जैतुगि 1193 ई० लगभग राजसिंहासन पर बैठा। वह 1191 ई० में ही अपने पिता द्वारा प्रशासन-कार्य से सम्बद्ध कर लिया गया था। उसके समय में यादव राज्य कृष्णा तथा तुंगभद्रा

1. चक्रे पुरं देवगिरिं गिरीशप्रसादसंसादितदिव्य शक्तिः।
(व्रतखंड, श्लोक 39)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नदियों तक विस्तृत हो गया था और इसकी सीमा काकतीय राज्य को स्पर्श करने लगी थी ।

जैतुगि ने सबसे पहले काकतीय शासक सम्भवतः महादेव पर आक्रमण किया जिसका विवरण व्रतखंड तथा कुछ यादव अभिलेखों में मिलता है[1] । इन साक्ष्यों के अनुसार महादेव युद्ध में मारा गया और उसका पुत्र गणपति बन्दी बना लिया गया था। बाद में जैतुगि ने गणपति को वारंगल के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया और काकतीय राज्य में यादवों की अधिसत्ता स्थापित हो गई। एम० एस० शर्मा तथा एन० वेंकटरमनय्या के अनुसार किसी राजनैतिक कारण से प्रेरित होकर ही जैतुगि ने काकतीय शासक के प्रति इस प्रकार का व्यवहार किया होगा । ओ० पी० वर्मा का अनुमान है कि अपने साम्राज्य की पूर्वी सीमा को लगातार तनाव की स्थिति से दूर रखने के उद्देश्य से उसने गणपति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए होंगे । जैतुगि ने बेल्लारी ज़िले के सिन्दवाड़ी क्षेत्र को भी अधिकृत कर लिया था ।

मनोलि अभिलेख में जैतुगि को गुर्जरों, लाटों, गौड़ों, पांड्यों तथा चोलों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है और बतलाया गया है कि उसके सेनापति सहदेव ने मालव, कलिंग, पंचाल, तुरुष्क तथा नेपाल राज्यों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी । इनमें केवल मालवा तथा गुजरात के आक्रमणों का विवरण प्रामाणिक प्रतीत होता है । नर्मदा नदी के उत्तर में जैतुगि ने मालवा के परमार सुभटवर्मन तथा चौलुक्य भीम द्वितीय को हराकर उनके राज्यों में काफी लूट-पाट की थी । डी० सी० गांगुली के अनुसार इसी दौरान में उसकी मुठभेड़ कुतुबुद्दीन ऐबक से हुई होगी । परन्तु साम्राज्यवादी चोलों अथवा तेलुगू चोडों, कलिंग, पंचाल तथा नेपाल के विरुद्ध उसकी विजयें असम्भावित प्रतीत होती हैं ।

जैतुगि ने अपने प्रधानमन्त्री को प्रधान सेनापति तथा तर्दवाड़ी का शासक नियुक्त किया । उसके मुरारिकेशव नामक मन्त्री तथा मल्लदेव एवं सहदेव नामक दो भाइयों के उल्लेख मिलते हैं । इन भाइयों को उसने सेनापति नियुक्त किया था । महान वेदज्ञ, तर्कशास्त्री तथा यज्ञ सम्बन्धी कर्मकांड में पारंगत लक्ष्मीधर जैतुगि का संरक्षित था । उसके शासन का अन्त 1198 ई० में हुआ ।

---

1. तिल्लंगाधिपतेः यशोविशसनं रौद्रस्य रौद्राकृतेः ।
कृत्वा पुरुषमेध-यज्ञविधिना लब्धस्त्रिलोकीजयः ॥ (सिंहण द्वितीय का पाटण अभिलेख)

CC-0) UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सिंहण द्वितीय—जैतुगि के पश्चात् उसका पुत्र सिंहण द्वितीय राजा हुआ। उसके घटनापूर्ण राज्यकाल में यादव वंश की प्रतिष्ठा एवं गरिमा में अत्यधिक वृद्धि हुई। युवराज की हैसियत से उसने 1200 ई० के आस-पास प्रशासन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और काकतीयों के विरुद्ध अभियान में सक्रिय भाग लिया था। लगभग एक दशक के युवराजत्व काल में प्रशासन एवं सैन्य-संचालन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् 1210 ई०[1] में उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली। जैतुगि एवं सिंहण द्वितीय की कुछ तिथियां परस्पर-व्यापी हैं।

सिंहण ने सर्वप्रथम होयसलों से युद्ध किया। उस समय दक्षिणी बेलवोला क्षेत्र होयसलों के अधीन था और सिंहण इसे अधिकृत करना चाहता था। 1211ई० के लगभग हानुंगल के कदम्ब शासक कामदेव ने होयसल बल्लाल द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इसी दौरान में सेनानायक वीचण के साथ सिंहण ने भी होयसल राज्य को आक्रान्त किया। यादव राज्य का बनवासी की उत्तरी सीमा तक विस्तार हो जाने पर होयसलों के सिन्द वंशीय सामन्तों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था। सिंहण ने पहले सिन्द राज्य पर आक्रमण किया। अपने संरक्षित राज्य की सुरक्षा के लिए बल्लाल द्वितीय भी यादवों से लड़ा। यादव सेना 1212 ई० में विजयसमुद्र[2] की ओर बढ़ी और उसने वर्तमान अनन्तपुर बेल्लारी, चित्तलदुर्ग एवं शिमोगा ज़िलों के अधिकांश भागों को जीत लिया। बदलिके नामक स्थान पर बल्लाल ने सिंहण का डटकर मुकाबला किया, किन्तु जब यादव सेना ने होयसलों की रसद पर अधिकार कर लिया, तो वे अधिक समय तक नहीं टिक सके। 1213 ई० तक सम्पूर्ण बनवासी तथा सान्तलिगे को अधिकृत करने के बाद सिंहण होयसल राजधानी द्वारसमुद्र की ओर बढ़ा। बल्लाल द्वितीय का सेनापति मल्लेय सेउण सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया। सिंहण की विजय-वाहिनी कावेरी नदी तक पहुंच गई और उसने श्रीरंगपट्टण के राजा जज्जालदेव को भी पराजित किया। 1213 ई० के गडग अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि धारवाड़ ज़िले के अधिकांश भाग पर सिंहण का प्रभुत्व स्थापित हो गया था और होयसलों के अधीनस्थ सिन्द वंशीय विक्रमादित्य द्वितीय को उसने अपना सामन्त बना लिया था। इसी वर्ष उसने बेलवोला में त्रिकुटेश्वर को दान दिया

1. पी०बी० देसाई के अनुसार वह 1199 ई० में ही राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हो गया था।
2. विजयसमुद्र को विजयपुर या हल्लिवूर भी कहा गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था। 1215 ई० के पहले ही समस्त बनवासी क्षेत्र सिंहण के साम्राज्य का अंग बन गया था और उसने मथिदेव को वहां का शासक नियुक्त किया। सिंहण द्वितीय के 1217 ई० के एक अभिलेख में उसे 'होयसल रूपी कमल के बगीचे को नष्ट करने वाला हाथी' कहा गया है। होयसलों को पराजित करने के पश्चात् उसने **शनिवारसिद्धि** का विरुद्ध धारण किया। इस उपाधि का प्रयोग पहले बल्लाल द्वितीय ने किया था।

नरसिंह द्वितीय (1220-35 ई०) के राज्यकाल में सिंहण ने होयसल राज्य पर दूसरा आक्रमण किया। हसन जिले से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार नरसिंह द्वितीय ने तुंगभद्रा नदी के पानी को सेउण सेना के रक्त से भर दिया था। इस युद्ध में सिंहण के सेनापति विक्रमपाल तथा पवूष मार दिए गए और यादवों की करारी हार हुई। नरसिंह के पुत्र सोमेश्वर ने भी **सेउणनृपबलार्णवदावानल** का विरुद धारण किया था, परन्तु वह मुख्यतः चोलों की राजनीति में ही उलझा रहा और यादवों की ओर वस्तुतः अधिक ध्यान नहीं दे सका।

1216 ई० में सिंहण ने कोल्हापुर के शिलाहार शासक भोज द्वितीय पर आक्रमण किया। शिलाहार, कल्याणी के चालुक्यों के सामन्त थे। लगभग दो वर्ष तक संघर्ष करने के पश्चात् भोज द्वितीय पराजित हुआ और उसे कोल्हापुर से भागकर निकटवर्ती पर्नाल (पनहाला) के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। धारवाड़ जिले से प्राप्त एक अभिलेख में सिंहण को 'पनहाला के शासक भोज-रूपी सर्प के लिए गरुण[1]' तथा 1217 ई० के शिमोगा जिले से प्राप्त दूसरे अभिलेख में 'पनहाला के दुर्ग के लिए वज्र' कहा गया है। शक संवत् 1232 ई० के रामचन्द्र के पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों के अनुसार सिंहण ने भोज को दुर्ग में बन्दी बना कर रखा था। इस अभियान का नेतृत्व दंडनायक लक्ष्मीदेव ने किया था। सिंहण ने यह विजय 1217-18 ई० के पहले प्राप्त की थी और इसके पश्चात् शिलाहार राज्य वर्धमान यादव साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। मल्लट (रायचूर जिले में) के हैहयों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार की और वहां का शासक मल्लिदेव द्वितीय सिंहण का निष्ठावान सामन्त हो गया था।

दक्षिणापथ में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के बाद सिंहण ने मालवा के परमारों तथा गुजरात के चौलुक्यों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने पहले लाट को आक्रान्त किया। लाट का शासक सिन्धुराज मालवा के परमार अर्जुनवर्मन का सामन्त था। अपने सेनापति खोलेश्वर के साथ सिंहण ने ताप्ती

1. पन्नालनिलयप्रबलभोजभूपालकालविद्रावणविहगराज।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नदी को पार कर लाट की राजधानी भृगुकच्छ (भड़ौच) पर हमला किया। अर्जुनवर्मन एवं सिन्धुराज ने यादव सेना का मुकाबला किया, किन्तु पराजित हुए। 1228 ई० के आम्बे अभिलेख के अनुसार सिन्धुराज युद्ध में मारा गया और खोलेश्वर ने भृगुकच्छ में अपना कीर्ति स्तम्भ स्थापित किया था। व्रतखंड के अनुसार इस संघर्ष में अर्जुनवर्मन भी वीरगति को प्राप्त हुआ था।

कुछ समय बाद सिंहण ने पुनः लाट पर आक्रमण किया और वहां के शासक शंख या संग्रामसिंह को पराजित कर दिया। उसी के शासनकाल में यादवों ने लाट पर फिर हमला किया और शंख को बन्दी बना लिया। बाद में सिंहण ने उसे मुक्त कर दिया और वह यादवों का अधीनस्थ हो गया।

इसके उपरान्त सिंहण ने गुजरात के बाघेलों के विरुद्ध के अभियान किया। बाघेलों से उसका दीर्घकाल तक संघर्ष चला था।

हम्मीरमर्दन काव्य तथा सोमेश्वर की दभोई प्रशस्ति में यादवों द्वारा गुजराज पर किए गए दो आक्रमणों के विवरण हैं। इनमें से प्रथम आक्रमण की सूचना पाकर गुजरात राज्य एवं उसकी राजधानी में आतंक छा गया। मार्ग में आनेवाले ग्रामों आदि को नष्ट करती हुई यादव सेना आगे बढ़ती गई। अन्त में लवणप्रसाद ने कूटनीति का सहारा लिया। उसके एक गुप्तचर ने मालवा के राजा देवपाल के शिविर में नौकरी प्राप्त कर ली और उसके सर्वोत्तम घोड़े को चुरा लिया। दूसरे गुप्तचर ने इस अश्व को देवपाल का उपहार बताकर संग्रामसिंह को भेंट कर दिया। तदुपरान्त देवपाल की ओर से संग्रामसिंह को एक जाली पत्र लिखवाया कि गुजरात में प्रवेश करते ही देवपाल सिंहण पर पीछे से आक्रमण कर देगा। इसी पत्र में यह भी सुझाव दिया गया कि उपर्युक्त परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर उसे (संग्रामसिंह को) यादव शासक का सिर काटकर अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लेना चाहिए।

यह षड़यन्त्र सफल रहा और इसका अपेक्षित प्रभाव हुआ। सिंहण ने बिना आक्रमण किए ही 1231 ई० के कुछ पहले लवणप्रसाद से सन्धि कर ली। ए० के० मजूमदार के अनुसार इसी दौरान में यादव राज्य पर सम्भवतः काकतीयों ने आक्रमण कर दिया था, इसलिए सिंहण को लवणप्रसाद से सन्धि करनी पड़ी और वह वापस चला गया। कीर्तिकौमुदी में सम्भवतः यादव शासक की इसी वापसी को अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से लिखा गया है कि लवणप्रसाद ने यादव सेना को खदेड़ दिया था।

1221 तथा 1229 ई० के बीच सिंहण ने गुजरात को पुनःआक्रान्त किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मालवा के परमार देवपाल तथा लाट के महामंडलेश्वर शंख के साथ गठबन्धन करने के बाद सिंहण ने यह आक्रमण किया था। मुख्य यादव सेना का नेतृत्व सेनापति खोलेश्वर ने किया ओर एक सेना संग्रामसिंह के नेतृत्व में आगे बढ़ी। गुजरात का शासक वीरधवल इस सम्मिलित मोर्चे का सामना करने के लिए तैयारी कर रहा था, किन्तु इसी दौरान में मारवाड़ के चार राजाओं ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मुस्लिम सेना भी उसके राज्य की ओर बढ़ी। उक्त विद्रोह के दमन के लिए वीरधवल को जाना पड़ा। इस परिस्थिति ने सिंहण को स्वर्ण अवसर प्रदान किया। किन्तु कीर्तिकौमुदी के अनुसार, सिंहण ने इसका लाभ नहीं उठाया और वापस लौट गया।

1229 ई० में सिंहण ने गुजरात पर पुनः आक्रमण किया। इस अभियान का नेतृत्व खोलेश्वर के पुत्र राम ने किया था। लाट का शासक संग्रामसिंह सिंहण का स्वामिभक्त महामंडलेश्वर था, इसलिए उसकी सेना नर्मदा नदी तक आसानी से पहुंच गई। इसी नदी के निकट सेउण सेना का चौलुक्यों से भीषण युद्ध हुआ जिसमें राम मारा गया। राम के विषय में कहा गया है कि उसने शत्रु सेना को तहस-नहस कर दिया था, परन्तु अन्त में वह वीरगति को प्राप्त हुआ। यह उल्लेखनीय है कि यादव अभिलेखों में राम की विजय का उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत 1261 ई० के काडि अभिलेख में गुजरात के शासक बीसलदेव को 'सिंहण की समुद्ररूपी सेना के लिए बड़वाग्नि' कहा गया है। अल्तेकर के अनुसार यह संघर्ष अनिर्णीत रहा होगा। परन्तु दोनों पक्षों के साक्ष्यों की समीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यादव पराजित हुए थे।

सिंहण का चौलुक्यों से लगभग 20 वर्ष तक संघर्ष चलता रहा, किन्तु किसी पक्ष को कोई स्थाई लाभ नहीं हुआ।

सिंहण द्वितीय का काकतीयों से भी शक्ति-संतुलन हुआ था जिसमें यादव पराजित हुए। भोज के एकाम्रनाथ अभिलेख के अनुसार काकतीय गणपति की सेना ने यादव शासक को सन्त्रस्त किया था, और गणपेश्वर अभिलेख में बतलाया गया है कि काकतीयों ने उस पर विजय प्राप्त की। कुछ साक्ष्यों में यह भी वर्णित है कि गणपति द्वारा पराजित किए जाने के परिणामस्वरूप सिंहण को न केवल बहुत सी धन-सम्पत्ति देकर उससे सन्धि करनी पड़ी, वरन् अपनी पुत्री रुद्राम्बा का भी विवाह उसके साथ करना पड़ा। परन्तु यह विवरण स्पष्टतः दोषपूर्ण है क्योंकि रुद्राम्बा गणपति की ही पुत्री थी। एन० वेंकटरमनय्या तथा एम० एस० शर्मा का अनुमान है कि गणपति द्वारा नेल्लोर के चोड शासक तिक्क

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को सहायता देने के कारण ही उसका सिंहण से युद्ध हुआ होगा। गोपेश्वर अभिलेख की तिथि के आधार पर एम० रामाराव की मान्यता है कि 1230-31 ई० में गणपति ने देवगिरि पर आक्रमण किया था। सिंहण द्वितीय ने पश्चिमी समुद्र-तट के शासकों को भी आक्रान्त किया था। कदम्ब त्रिभुवनमल्ल तथा रट्ट वंशीय वेणुग्राम (बेलगांव) के शासक कार्तवीर चतुर्थ ने उसके समक्ष समर्पण किया था। अल्तेकर के अनुसार सिंहण के सेनापति बीचण ने रट्ट शासक लक्ष्मीदेव को 1228 तथा 1238 ई० के बीच किसी समय पराजित किया था। इस विजय के पश्चात् रट्ट राज्य यादव साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

सिंहण ने पर्णखेट (सम्भवत: बरार क्षेत्र में) के शासक हेमाद्र को भी हराया। हेमाद्रि के अनुसार उसने जाजल्ल की हस्ति-सेना पर विजय प्राप्त की और ककुल्ल की प्रभुसत्ता का अपहरण कर लिया था। 1206 ई० के पाटण अभिलेख में मथुरा एवं वाराणसी के शासकों द्वारा यादवों की अधिसत्ता स्वीकार करने और सिंहण के सेनापति की मुस्लिम शासक के विरुद्ध विजय का वर्णन है। परन्तु इन सफलताओं का अन्य किसी साक्ष्य से पुष्टिकरण न होने के कारण, इन्हें असन्दिग्ध मानना कठिन है। आम्बे अभिलेख के अनुसार सिंहण ने काशी के शासक रामपाल को पराजित किया था। परन्तु अन्य किसी साक्ष्य में रामपाल का उल्लेख नहीं मिलता। सिंहण के सेनापति द्वारा पराजित मुस्लिम शासक का नाम नहीं वर्णित है। अल्तेकर ने इसे इल्तुतमिश माना है।

कुछ यादव अभिलेखों में सिंहण द्वितीय, उसके सेनापति खोलेश्वर और खोलेश्वर के पुत्र राम (बीचण) को सिन्ध, पंचाल, अंग, वंग, केरल तथा पांड्य राज्यों के शासकों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। परन्तु यह विवरण तथ्य पर आधारित नहीं प्रतीत होता।

सिंहण के अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से प्रमाणित होता है कि उसके साम्राज्य में कोंकण, लाट, महाराष्ट्र, विदर्भ, कर्नाटक तथा आन्ध्र राज्य शामिल थे और उसके प्रभुत्व का विस्तार उत्तर में नर्मदा नदी से लेकर दक्षिण में तुंग-भद्रा तक, और पूर्व में कर्नूल एवं अनन्तपुर जिलों की सीमा से लेकर पश्चिम में समुद्र तट तक हो गया था। उसने खोलेश्वर को खानदेश, बरार तथा मध्य प्रदेश के कुछ भाग का गवर्नर नियुक्त किया। 1223 ई० में दक्षिण में जगद्दल-पुरुषोत्तमदेव, सिंहण के सामन्त के रूप में शासन कर रहा था और 1230 ई० के लगभग उसका स्थान बीचण ने ले लिया था। बीचण को सिंहण ने कर्नाटक का शासक नियुक्त किया। सिंहण ने होयसलों से महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के उत्तरी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भागों को अधिकृत कर लिया था। परन्तु वह मुस्लिम आक्रमणों के प्रति उदासीन रहा।

सिंहण द्वितीय ने रायनारायण तथा प्रौढ़प्रतापचक्रवर्तिन की उपाधियां धारण कीं। वह न केवल विद्वान्तों का संरक्षक था, वरन् स्वयं भी विद्वान तथा विद्याव्यसनी था। उसने चंगदेव तथा अनन्तदेव नामक ज्योतिषियों को संरक्षण प्रदान किया। अनन्तदेव ने ब्रह्मदेव के ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त के एक अध्याय तथा वराहमिहिर के वृहद्जातक पर टीकाएं लिखीं। चंगदेव ने खानदेश में एक ज्योतिष-विद्यालय भी स्थापित किया था। सिंहण के ही राज्यकाल में शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर की रचना की थी। इस ग्रन्थ में उत्तर तथा दक्षिण भारत के संगीत का विशद विवरण है। सिंहण को इसकी टीका लिखने का श्रेय दिया गया है। उसके शासन के 45वें वर्ष तक के अभिलेख मिले है। उसने 1246 ई० तक राज्य किया।

कृष्ण–सिंहण द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पौत्र कृष्ण 1246-47 ई०[1] में राजा हुआ[2]। राज्यारोहण के कुछ ही समय बाद उसने मालवा पर आक्रमण किया और वहां के परमार शासक जयतुगिदेव को पराजित कर मार डाला। शक संवत् 1172 के एक अभिलेख में कृष्ण को 'मालवराज रूपी कामदेव के लिए शिव' कहा गया है। उसने 1250 ई० के पहले यह विजय प्राप्त की होगी। परन्तु इससे यादवों को कोई क्षेत्रीय लाभ नहीं हुआ।

मालवा विजय के उपरान्त कृष्ण ने गुजरात के बाघेलों के विरुद्ध अभियान किया। व्रतखंड तथा पैठण ताम्रपत्रों के अनुसार उसने गुजरात के शासक वीसलदेव को पराजित कर दिया था। परन्तु बाघेल अभिलेखों में वीसलदेव को विजेता बतलाया गया है। इस युद्ध में किसी पक्ष को सम्भवतः न तो निर्णयिक सफलता मिली और न ही कोई महत्वपूर्ण क्षेत्रीय लाभ हुआ। डी० सी० गांगुली के अनुसार इसी अभियान के दौरान में कृष्ण का बलबन की सेना से युद्ध हुआ होगा।

कलचुरियों के पतन के पश्चात् त्रिपुरी तथा दक्षिण कोशल में कुछ समय

1. ओ० पी० वर्मा तथा डी० सी० गांगुली ने उसके शासन का प्रारम्भ क्रमशः 1246 तथा 1247 ई० में माना है।
2. ओ० पी० वर्मा के अनुसार सिंहण द्वितीय की मृत्यु के बाद जयतुगि के भाई शारंगपाणिदेव तथा जयतुगि के पुत्रों में सम्भवतः उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध हुआ जिसमें कृष्ण विजयी रहा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तक अराजकता व्याप्त रही और ये राज्य किसी शक्तिशाली शासक के अधीन नहीं थे। इसी बीच में कृष्ण ने इन राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। मनौली अभिलेख में उसे 'त्रिपुर की सेनाओं के लिए त्रिनेत्र' (शिव) कहा गया हैं; और पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों के अनुसार उसने कोशल (दक्षिण कोशल) के शासक को आतंकित कर दिया था। डी० सी० गांगुली का अनुमान है कि इन्हीं विजयों के दौरान कृष्ण की शायद काकतीय गणपति से भी मुठभेड़ हुई थी।

पश्चिम में कृष्ण ने कदम्ब शासक षष्ठदेव तृतीय को पराजित किया। उसके सेनापति बीचण ने कदम्बों पर विजय प्राप्त कर उनके राज्य को अपने अधिपति यादव शासक के गवर्नरो के अधीन कर दिया था। पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों में कृष्ण की कामपाल नामक शासक के विरुद्ध विजय का उल्लेख है। कामपाल के वंश के विषय में नहीं बतलाया गया है। वी० वी० मिराशी ने उसे आभीर शासक माना है। डी० सी० गांगुली की भी मान्यता है कि कृष्ण ने आभीरों पर विजय प्राप्त की थी।

कृष्ण ने अपने सेनापति मल्ल के नेतृत्व में उत्तरी कोंकण के शिलाहार[1] शासक (सम्भवतः सोमेश्वर) के विरुद्ध सेना भेजी। उसका यह अभियान भी सफल रहा, यद्यपि इससे उसे कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं हुआ। 1250 ई० के पहले कृष्ण ने होयसल राज्य को आक्रान्त किया। उसके एक अभिलेख में वर्णित है कि यादवों के सेनानायक चामुंड ने होयसल शासक के दर्प का मर्दन किया था। होयसल राज्य के चित्तलदुर्ग जिले पर सर्वप्रथम कृष्ण के ही राज्यकाल में यादवों का आधिपत्य स्थापित हुआ था।

जटावर्मन सुन्दरपांड्य के राज्यकाल में पांड्यों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी और वे यादवों के प्रमुख प्रतिद्वन्दी हो गए थे। कृष्ण के सेनापति बीचण ने 1253 ई० में पांड्यों पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। 1252 ई० में जटावर्मन सुन्दर पांड्य ने यादवों के सामन्त काकतीय गणपति पर आक्रमण किया। अल्तेकर का अनुमान है कि गणपति की सहायता के लिए ही कृष्ण ने अपनी सेना भेजी होगी। डी०सी० गांगुली के अनुसार कृष्ण के सेनानायक मल्ल ने सम्भवतः नोलम्बवाड़ी के पांड्यों को पराजित किया था।

---

1. उत्तरी कोंकण के शिलाहार उस समय वर्तमान ठाणा, अलीबाग तथा रत्नागिरि जिलों के अतिरिक्त सूरत जिले के दक्षिणी भाग पर शासन कर रहे थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों में कृष्ण की चोलों के विरुद्ध विजय का संकेत है और मनौली अभिलेख के अनुसार वह चोलों का अधिपति हो गया था। ओ०पी० वर्मा मनौली अभिलेख के साक्ष्य को अप्रामाणिक मानते हैं क्योंकि चोल उस समय पांड्यों के अधीन थे।

कृष्ण के अभिलेख शिमोगा, चित्तलदुर्ग, रायचूर, बेल्लारी, धारवाड़, बेलगांव, सतारा, पश्चिमी खानदेश तथा विदर्भ में प्राप्त हुए हैं। उसने निःसन्देह एक बड़े राज्य पर शासन किया। उसके शासनकाल में कन्धारपुर(द्वारावतीपुर) यादवों की द्वितीय राजधानी थी।

कृष्ण के मन्त्रियों तथा सेनापतियों में बीचण, मल्लिशेट्टि, चामुंडशेट्टि तथा लक्ष्मीदेव विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। बीचण का अग्रज मल्लिशेट्टि वेणुग्राम में, जगमराहुत सिन्दवाड़ी में तथा कदम्ब शिवचित्त षष्ठदेव द्वितीय गोवा में उसके अधीन शासन कर रहे थे। लक्ष्मीदेव सुयोग्य मन्त्री था। लक्ष्मीदेव के बाद उसके पुत्र जल्हण को कृष्ण ने अपना सैनिक अधिकारी नियुक्त किया और रामचन्द्र तथा केशव नामके जल्हण के पुत्रों को उसने सतारा ज़िले में जागीरें दी थीं। कृष्ण के राज्यकाल में अमलानन्द ने वामती (शंकराचार्य के वेदान्तसूत्र भाष्य पर लिखी टीका) पर वेदान्त कल्पतरु नामक भाष्य लिखा और चक्रधर ने महानुभाव सम्प्रदाय को स्थापना की। कृष्ण वैदिक धर्म का अनुयाई था। हेमाद्रि के अनुसार उसने अनेक वैदिक यज्ञ सम्पन्न किए और वैदिक धर्म को नवीन शक्ति प्रदान की थी। कृष्ण हस्ति-विद्या में पारंगत तथा अच्छा साहित्यकार था। उसे सूक्तमुक्तावली नामक ग्रन्थ का संकलन-कर्ता बतलाया गया है। कृष्ण को सम्भवतः उसके भाई महादेव ने सक्रिय सहयोग दिया था और दोनों में बहुत सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे[1]। इसलिए उसने अपने पुत्र रामचन्द्र के स्थान पर महादेव को 1250 ई०में युवराज नियुक्त कर दिया। 1260ई०में कृष्ण के शासन का अन्त हुआ।

महादेव-कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई महादेव ने 1260 ई० में शासन की बागडोर सम्भाली। राज्यारोहण के लगभग एक दशक पूर्व 1250 ई० में)ही उसने प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन करना प्रारम्भ कर दिया था। उसका राज्यकाल सामरिक एवं साहित्यिक गतिविधियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा।

---

1. मम्मदापुर अभिलेख में महादेव तथा कृष्ण की तुलना राम-लक्ष्मण तथा अर्जुन-युधिष्ठिर से की गई है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महादेव ने सबसे पहले उत्तरी कोंकण को आक्रान्त कर वहां के शिलाहार शासक सोमेश्वर को दो बार पराजित किया। दूसरा युद्ध 1265 ई० के आस-पास हुआ होगा और इसके परिणामस्वरूप ठाणा के शिलाहारों का राज्य यादव साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। 1266 ई० में कोंकण में महाराजाधिराज जयतुगिदेव चक्रवर्ती राज्य कर रहा था। अल्तेकर के अनुसार जयतुगि सोमेश्वर का पुत्र अथवा निकट सम्बन्धी रहा होगा। परन्तु बाद में कोंकण क्षेत्र पर यादवों ने पुनः अधिकार कर लिया, क्योंकि 1273 ई० में यह क्षेत्र महादेव के गवर्नर के अधीन था।

महादेव ने काकतीय राज्य पर भी आक्रमण किया। वारंगल में उस समय रुद्राम्बा शासन कर रही थी। उसके विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए थे, इसलिए उसकी स्थिति काफी डांवाडोल हो गई थी। हेमाद्रि तथा कुछ यादव अभिलेखों के अनुसार महादेव ने रुद्राम्बा को पराजित कर काकतीय सेना के बहुत से हाथी एवं पंचवाद्य अपहृत कर लिए थे। चूंकि रुद्राम्बा स्त्री थी, अतः यादव शासक ने उसका वध नही किया। इसके विपरीत प्रतापचरित्र में बतलाया गया है कि रुद्राम्बा ने 15 दिन तक महादेव की सेना से भीषण संघर्ष किया और उसके तीन लाख घुड़सवारों तथा एक लाख पदातियों को नष्ट कर पीछे खदेड़ दिया था। केवल यही नही, उसने भागती हुई यादव सेना का देवगिरि तक पीछा किया और महादेव को सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसे एक करोड़ सोने के सिक्के देने पड़े। इसके पश्चात् यादव राजधानी में रुद्राम्बा ने अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया।

इस प्रकार दोनों पक्षों के साक्ष्य परस्पर-विरोधी सूचना देते हैं। एम०एस० शर्मा तथा एन० वेंकटरमनय्या के अनुसार प्रतापचरित्र का विवरण काफी हद तक प्रामाणिक है। परन्तु अन्य विद्वानों ने इसके साक्ष्य को अधिक महत्व नहीं दिया है, क्योंकि इसमें अनेक गलत सूचनायें तथा विसंगतियां हैं। तथ्य जो भी हो, रुद्राम्बा की विषम राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रतापचरित्र के उपर्युक्त विवरण पर विश्वास करना कठिन है। ओ० पी० वर्मा के अनुसार महादेव ने 1265 ई० के कुछ ही समय बाद काकतीय राज्य पर आक्रमण किया होगा। एम० रामाराव ने इसे 1267 तथा 1270 ई० के बीच रखा है।

महादेव ने होयसलों से भी शक्ति-संतुलन किया। दो होयसल अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि नरसिंह की शक्ति को नजरंदाज करते हुए, हाथी पर सवार होकर महादेव युद्ध के मैदान में उतरा, किंतु होयसल सेना की मार से

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आतंकित होकर घोड़े पर सवार होकर उसे युद्ध-स्थल से रात में ही भागना पड़ा। दूसरी ओर हेमाद्रि का कथन है कि महादेव ने कर्नाटक की सेना के दर्प को चूर्ण कर दिया था। इसके अतिरिक्त शक संवत् 1186 के एक कन्नड़ अभिलेख में भी महादेव को होयसलरायकोलाहल कहा गया है। यह संघर्ष सम्भवतः अनिर्णीत रहा और किसी पक्ष को स्थाई सफलता नहीं मिली।

शक संवत् 1186 के संगूर अभिलेख में महादेव को **तैलुंगरायशीर्षकमलमूलोत्पाटन** की उपाधि दी गई है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उसने गणपति के राज्यकाल में काकतीयों पर आक्रमण किया होगा। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि यादव शासकों में केवल जयतुगिदेव प्रथम ने ही काकतीय रुद्र का वध किया था, जबकि जयतुगि प्रथम से लेकर रामचन्द्र तक सभी यादव राजाओं को तेलंगराज का उन्मूलक कहा गया है। इसलिए इस विवरण को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए।

उत्तर में महादेव ने गुजरात के विरुद्ध अभियान किया। पैठण ताम्रपत्रों के अनुसार गुजरात का बाघेल शासक वीसलदेव महादेव द्वारा परास्त हुआ था। इस विजय की पुष्टि व्रतखंड तथा कुछ अन्य अभिलेखों ने भी की है। आर०एस० पंचमुखी के अनुसार, शिलाहार सोमेश्वर तथा बाघेल वीसलदेव को महादेव ने एक ही अभियान में पराजित किया होगा। चूंकि वीसलदेव की मृत्यु 1262 ई० में ही हो गई थी, इस आधार पर अल्तेकर की अवधारणा है कि महादेव ने कृष्ण के राज्यकाल में युवराज की हैसियत से उक्त विजय प्राप्त की होगी।

हेमाद्रि ने महादेव की मालवा विजय का भी उल्लेख किया है और बतलाया है कि उस समय वहां एक नाबालिग शासक राज्य कर रहा था। इसलिए महादेव ने उसे पराजित करने के पश्चात् मौत के घाट नहीं उतारा। डी० सी० गांगुली के अनुसार मालवा का शासक सम्भवतः परमार जयसिंह द्वितीय था।

एक अभिलेख में यह भी वर्णित है कि महादेव के भय से गौड़ के लोग बांबी में प्रविष्ट हो गए और उत्कल के निवासी अपमानित होकर भाग गये थे। अल्तेकर आदि ने इस विवरण को काव्यात्मक तथा अप्रामाणिक माना है। 1268 ई० के आस-पास महादेव के सेनापति बलिगदेव ने कदम्बों के विद्रोह का दमन कर दिया और उन्हें पुनः यादवों की अधिसत्ता मानने के लिए बाध्य किया।

महादेव के मन्त्रियों एवं गवर्नरों में देवराज, कूचदंडेश, बोम्मरस, जल्लनदेव तथा गुत्त तृतीय महत्वपूर्ण थे। देवराज, यादव राज्य के दक्षिणी क्षेत्रों का शासक था और [illegible] हेमाद्रि हस्ति-सेना का प्रधान, प्रमुख-

CC-0. Uttar Pradesh State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सचिव, एवं **सर्वाधिकारी** था। वह महान साहित्यकार भी था। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ चतुर्वर्गचिन्तामणि के व्रतखंड को उसने महादेव के राज्यकाल में ही समाप्त किया था। महादेव की अन्तिम ज्ञात तिथि शक संवत् 1193 (1270-71 ई०) है।

अम्मण (आमणदेव)—महादेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अम्मण ने 1270 ई० में देवगिरि के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। महादेव ने अम्मण के स्थान पर अपने चचेरे भाई रामचन्द्र को उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया[1] था। इसलिए रामचन्द्र को अम्मण के विरुद्ध हेमाद्रि, तिक्कम तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण पदाधिकारियों का समर्थन प्राप्त था। परन्तु वह अम्मण से खुला युद्ध करने की स्थिति में नहीं था, अतएव राजधानी से दूर रहकर वह उसे अपदस्थ करने के लिए प्रयत्नशील होगया।

अम्मण विलासिता-प्रिय शासक था और नृत्य एवं संगीत में विशेष रुचि लेता था। रामचन्द्र ने उसकी इन दुर्बलताओं का लाभ उठाने के लिए एक युक्ति का आश्रय लिया। पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों के अनुसार रामचन्द्र, अपने कुछ शक्तिशाली एवं विश्वासपात्र अनुयायियों के साथ अभिनेताओं का रूप धारण कर देवगिरि के दुर्ग में प्रविष्ट हुआ और अम्मण को एक नाटक दिखलाने लगा। जब वह इस अभिनय को देखने में दत्तचित्त हो गया, उसी समय रामचन्द्र एवं उसके साथियों ने उसे बन्दी बना लिया और राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। महिन्द्र भट्ट के **महानुभाव** ग्रन्थ लीलाचरित्र (13वी शताब्दी) में रामचन्द्र द्वारा बलपूर्वक राज्य पर अधिकार करने तथा इसके परिणामस्वरूप यादव राज्य में व्याप्त हुई अव्यवस्था का विस्तृत विवरण है। केशव व्यास के रत्नमालास्त्रोत, परशुराम व्यास के स्मृतिस्थल तथा कुछ अन्य ग्रन्थों के अनुसार रामचन्द्र ने अम्मण का वध कर दिया था। कुछ महानुभाव ग्रन्थों के अनुसार उसे अन्धा करवा दिया गया था। अभिलेखिक साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उसे जेल में डाल दिया गया था जहां वह मृत्युपर्यन्त रहा। अम्मण ने लगभग एक वर्ष तक शासन किया। हेमाद्रि की राजप्रशस्ति में उसका उल्लेख नहीं है और न ही उसके राज्यकाल का कोई अभिलेख मिला है।

रामचन्द्र (रामदेव)—अम्मण को अपदस्थ कर 1271-72 ई० में रामचन्द्र ने देवगिरि का राजसिंहासन हस्तगत कर लिया। राज्यारोहण के कुछ ही समय

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बाद उसने मालवा पर आक्रमण किया। शक संवत् 1194 के ठाणा अभिलेख में उसे 'मालवों के दीपों को बुझाने वाला तीव्र तूफान' और शक संवत् 1198 के उदरि अभिलेख में मालवराज अर्जुन के बहुसंख्यक हाथियों को नष्ट करने वाला सिंह' कहा गया है। उस समय अर्जुनवर्मन द्वितीय तथा उसके मन्त्री के बीच हुए युद्ध के परिणामस्वरूप मालवा राज्य विभाजित हो गया था, इसलिए रामचन्द्र को इसे जीतने में अधिक कठिनाई नहीं हुई।

रामचन्द्र ने गुजरात के बाघेलों के विरुद्ध भी अभियान किया। बाघेल शासक शारंगदेव की चिन्त्रप्रशस्ति के अनुसार, उसने यादवों की शक्ति का विनाश कर दिया था। इसके विपरीत ठाणा अभिलेख में रामचन्द्र को 'गुर्जरों के हाथियों को नष्ट करने वाला सिंह' कहा गया है। इन परस्पर-विरोधी विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध में शायद किसी पक्ष को निर्णायक सफलता नहीं मिली।

रामचन्द्र ने होयसल शासक नरसिंह से भी युद्ध किया। यादवों के मित्र एवं सेनापति तिक्कम, जोयिदेव, हरपाल, देवरस तथा इरुंगोलचोल ने वेट्टूर (चित्तलदुर्ग जिले में स्थित) से होयसलों के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया। सालुवतिक्कम के नेतृत्व में यादव सेना ने बेलवाड़ी (बेलूर) पर आक्रमण किया। 1275 ई० में द्वारसमुद्र की सीमा पर उसका होयसलों से भयंकर युद्ध हुआ। होयसल अभिलेखों के अनुसार तिक्ककेतय नामक दंडनायक के नेतृत्व में होयसल सेना ने यादवों को परास्त कर दुम्मी (शिमोगा तथा चित्तलदुर्ग जिलों के सीमान्त पर स्थित) तक खदेड़ा और चिक्कदेव, अंकनायक तथा खंडेयरायराणेय नामक होयसल सेनापतियों ने यादवों के 12,000 घुड़सवारों को मार डाला। परन्तु 1277 ई० के हरिहर मन्दिर पर उत्कीर्ण एक अभिलेख के अनुसार, सालुवतिक्कम ने द्वारसमुद्र पर अधिकार करने के बाद होयसल सेना के बहुत से घोड़े तथा सम्पत्ति अपहृत कर ली और नंगेय, गुल्लैय तथा कुछ अन्य होयसल सेनापतियों को मार डाला। अभियान की सफल परिसमाप्ति होने पर उसने हरिहरनगर में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर का निर्माण कराया। इस विजय के परिणामस्वरूप होयसल राज्य के उत्तरी क्षेत्र सम्भवतः रामचन्द्र के अधीन हो गए थे और 1282 ई० में होशगुंड में तिक्कपरश उसके सामन्त के रूप में शासन कर रहा था।

यादव सेना के दूसरे कुमुक ने कन्नरदेव, चामुंडरस एवं बनदेवरस के नेतृत्व में दोरवाड़ी पर आक्रमण किया। दोरवाड़ी के शासक सिंघणनायक ने यादवों से

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

युद्ध किया और बनदेवरस का वध कर दिया। परन्तु अन्त में वह पराजित हुआ।

पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों के अनुसार रामचन्द्र ने दहाल, भांडागार एवं ग्वालों के राजाओं को हराया और वज्राकर के शासक को अपदस्थ कर दिया था। दहाल के कलचुरि शासक की पहचान नहीं की जा-सकी है। भांडागार का समीकरण नागपुर से लगभग 60 कि० मी० पूर्व में स्थित भांडारा नगर से किया गया है। रामचन्द्र के राज्यकाल का एक अभिलेख नागपुर के निकटवर्ती रामटेक से तथा दूसरा बालाघाट के समीप लांजी नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। वज्राकर को मध्य प्रदेश के चांदानगर से लगभग 13 कि० मी० दूर स्थित वैरागढ़ नामक स्थान माना गया है।[1] ग्वालों का शासक सम्भवतः खानदेश का कोई आभीर राजा रहा होगा। अल्तेकर के अनुसार वज्राकर एवं भांडागार के शासकों को जीतने के बाद रामचन्द्र ने त्रिपुरी को अधिकृत किया। कुम्मट के शासक मुम्मडि सिंगेय पर रामचन्द्र ने तीन आक्रमण किए—प्रथम आक्रमण 1280 ई० तथा दूसरा 1282 ई० में। किन्तु दोनों बार यादव पराजित हुए। अन्त में 1287 ई० में उसे मुम्मडि के विरुद्ध सफलता मिली[2]।

पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों में रामचन्द्र को पल्ली, कान्यकुब्ज तथा माहिम के शासकों पर विजय प्राप्त करने और कैलास पर्वत तक के क्षेत्र को आक्रान्त करने का श्रेय दिया गया है। पल्ली के शासक की पहचान अनिश्चित है। वी० वी० मिराशी ने उसे विन्ध्य के पर्वतीय क्षेत्र की भील अथवा गोंड जनजाति का शासक माना है। माहिम बम्बई के निकट स्थित था। खेट की पहचान रत्नागिरि ज़िले के खेड़ा नामक स्थान से और संगम की रत्नागिरि से 30 कि० मी० की दूरी पर स्थित संगमेश्वर से की गई है।

रामचन्द्र का वारंगल के काकतीयों से भी संघर्ष हुआ। उसने रुद्राम्बा के विरोधी अम्बदेव की सहायता की थी। बाद में रुद्राम्बा के पौत्र प्रतापरुद्र ने अम्बदेव को परास्त कर दिया और विट्ठलदंडनायक के नेतृत्व में यादव राज्य पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी। 1294 ई० के एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि यह सेना रायचूर तक पहुंच गई थी।

पुरुषोत्तमपुरी ताम्रपत्रों के अनुसार रामचन्द्र ने वाराणसी से मुसलमानों को खदेड़ कर वहां शारंगपाणि के स्वर्णिम मन्दिर का निर्माण कराया। सम्भवतः

---

1. इस स्थान पर पाई जाने वाली हीरों की खानों के कारण इसे प्राचीन साक्ष्यों में वज्रगढ़ कहा गया है।
2. History of Karnataka, p. 236.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

1291 ई० तक वाराणसी में उसका आधिपत्य सुरक्षित रहा। इसके बाद यह नगर अलाउद्दीन खिलजी के अधीन हो गया था।

उपर्युक्त विजयों के परिणामस्वरूप रामचन्द्र के राज्य का विस्तार उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक, और पश्चिमी समुद्रतट से पूर्वी विदर्भ तक हो गया था।

1294 ई० में अलाउद्दीन ने यादव राज्य पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इस अभियान के लिए उसने काफी तैयारियां कीं और कूटनीति का भी सहारा लिया। उसे अपने गुप्तचरों से ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र की प्रमुख सेना सुदूर दक्षिण की विजयों में व्यस्त थी। यह परिस्थिति अलाउद्दीन के लिए बहुत अनुकूल थी। अपने उद्देश्य को गुप्त रखते हुए निर्जन रास्तों से होता हुआ अन्त में अलाउद्दीन देवगिरि पहुंच गया। रामचन्द्र के लिए यह आक्रमण आकस्मिक था और इसका सामना करने के लिए वह अपने को तैयार नहीं कर सका। उसने केवल 4,000 की पैदल सेना[1] लेकर आक्रान्ता से युद्ध किया और पराजित हुआ। इसके पश्चात् उसने अपने दुर्ग में शरण लेने का निश्चय किया। परन्तु उस समय तक यादवों के नवनिर्मित दुर्ग की परिखा एवं प्राकार का निर्माण नहीं हो पाया था। इसलिए वह पूर्णरूप से सुरक्षित तथा अभेद्य नहीं था। इसके अतिरिक्त यादव सेना के पास पर्याप्त रसद भी नहीं थी। अतएव रामचन्द्र अलाउद्दीन के घेरे के समक्ष अधिक समय तक नहीं टिक सका और उसे विवश होकर सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार, उसे लगभग 500 पौंड सोना, कई हज़ार घोड़े, 40 हाथी तथा भारी मात्रा में मोती एवं रत्न हर्ज़ाने के रूप में अलाउद्दीन को देने पड़े। इसके अतिरिक्त उसे एलिचपुर ज़िले के राजस्व के बराबर मूल्य का वार्षिक कर देने का वचन देना पड़ा। अलाउद्दीन ने रामचन्द्र की एक पुत्री के साथ विवाह किया और इसके बाद वह वापस लौटने की तैयारी करने लगा। इसी बीच रामचन्द्र का पुत्र शंकरदेव अलाउद्दीन की सेना से लगभग दोगुनी सेना लेकर देवगिरि पहुंच गया। वह खिलजी सम्राट द्वारा पराजित हुआ अथवा उसने युद्ध ही नहीं किया, इस सम्बन्ध में मुस्लिम इतिहासकार एकमत नहीं हैं। फिरिश्ता के अनुसार रामचन्द्र ने शंकरदेव को अलाउद्दीन से युद्ध न करने की राय दी। शंकरदेव ने इसकी उपेक्षा की और युद्ध छेड़ दिया, परन्तु पराजित होकर उसे पहले से भी अधिक

1. अलाउद्दीन की सेना के अश्वारोहियों की संख्या 6,000 से 8,000 तक बतलाई

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हर्जाना देने की शर्त स्वीकार करनी पड़ी। इसामी के अनुसार उसने युद्ध ही नहीं किया था।

मुस्लिम सेना द्वारा यादवों की पराजय से उनकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ और इससे प्रोत्साहित होकर रामचन्द्र के अनेक शत्रु तथा सामन्त विद्रोह करने लगे। काकतीय प्रतापरुद्र ने यादव राज्य पर आक्रमण कर अनन्तपुर तथा रायचूर ज़िलों पर अधिकार कर लिया। 1296 ई० में होयसल बल्लाल ने सान्तलिगे को अधिकृत कर लिया और 1300 ई० के लगभग उसने बनवासी को आक्रान्त किया।

1304 ई० के आस-पास तक रामचन्द्र अलाउद्दीन को कर देता रहा। 1304 ई० में प्रतापरुद्र ने खिलजी सेना को पराजित कर दिया। इस घटना से प्रोत्साहित होकर शंकरदेव ने अपने पिता को वार्षिक कर बन्द कर देने के लिए तैयार कर लिया। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र ने गुजरात के शासक कर्ण की पुत्री देवलदेवी के साथ विवाह करने का भी निश्चय किया। उस राजकुमारी से विवाह करने के लिए अलाउद्दीन स्वयं इच्छुक था। यादवों की इन गतिविधियों से क्रोधित होकर 1307 ई० में अलाउद्दीन ने मलिककाफूर के नेतृत्व में देवगिरि को आक्रान्त करने के लिए अपनी सेना भेजी। इसामी के अनुसार रामचन्द्र ने खिलजी सम्राट के पास गुप्त रूप से सन्देश भेजा कि मुझे शंकरदेव ने बन्दी बना लिया है और मैं इस विद्रोह के विरुद्ध हूं। तथ्य जो भी हो, मलिककाफूर ने देवगिरि के निकट यादव सेना को पराजित कर दिया और रामचन्द्र को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया। परन्तु उसकी स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर अलाउद्दीन ने न केवल रामचन्द्र का राज्य लौटा दिया, बल्कि उसे नौसारी का ज़िला भी दिया और **राज-ए-राजन** की उपाधि से विभूषित किया। इसके पश्चात् रामचन्द्र अलाउद्दीन के निष्ठावान सामन्त के रूप में देवगिरि में शासन करता रहा और काकतीयों तथा होयसलों के विरुद्ध अभियानों में उसने अलाउद्दीन को हर सम्भव सहयोग दिया था।

रामचन्द्र के राज्यकाल में कवि सन्त ज्ञानेश्वर ने भगवत्गीता पर मराठी में भाष्य लिखा था। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 1311 ई० है।

शंकरदेव तथा हरपालदेव—रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरदेव 1311-12 ई० में राजा हुआ। वह देशभक्त शासक और मुस्लिम अधिसत्ता का कड़ा विरोधी था। इसलिए शासन की बागडोर सम्भालने के बाद उसने अलाउद्दीन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसे दंडित करने के लिए अलाउद्दीन ने मलिककाफूर के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने शंकरदेव को परा-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जित कर मार डाला, यादव राज्य को अपने अधीन कर लिया और मलिककाफूर को देवगिरि का प्रशासक नियुक्त कर दिया।

1315 ई० में अलाउद्दीन काफी बीमार हो गया था। इसलिए ऐन-उल-मुल्क को देवगिरि के प्रशासन का उत्तरदायित्व देकर मलिककाफूर दिल्ली चला गया। बाद में देवगिरि में एक छोटी मुस्लिम सेना छोड़कर ऐन-उल-मुल्क को भी दिल्ली जाना पड़ा। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर रामचन्द्र के दामाद हरपालदेव ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी और लगभग दो वर्ष तक स्वतन्त्र शासक के रूप में देवगिरि में राज्य किया। परन्तु 1318 ई०में कुतुबुद्दीन ऐबक ने यादव राज्य को आक्रान्त किया और हरपालदेव को पराजित कर मार डाला। हरपालदेव की मृत्यु के साथ ही 1318 ई० में देवगिरि के यादव राजवंश का अन्त हो गया।

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

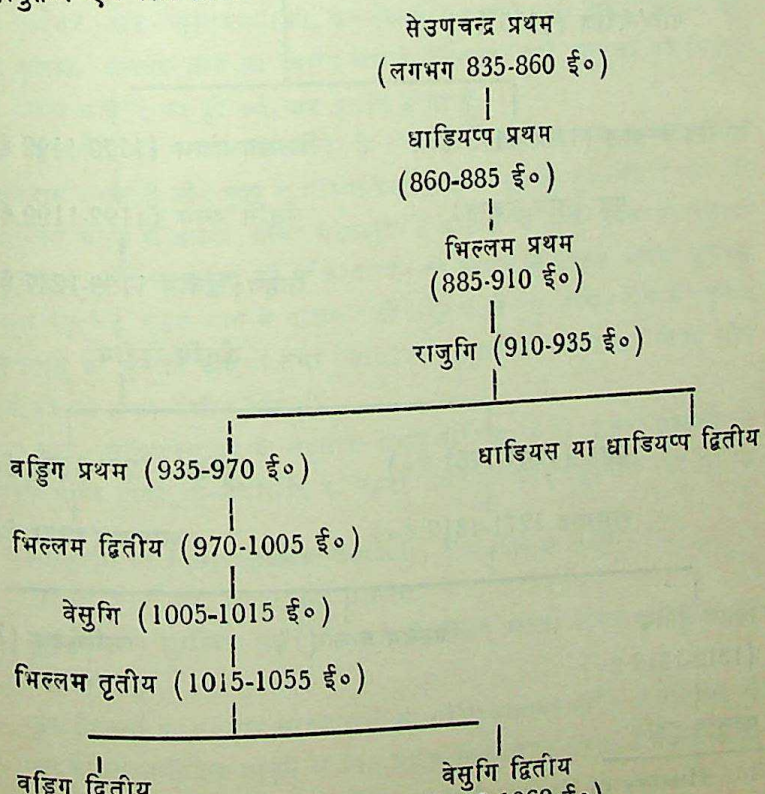

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

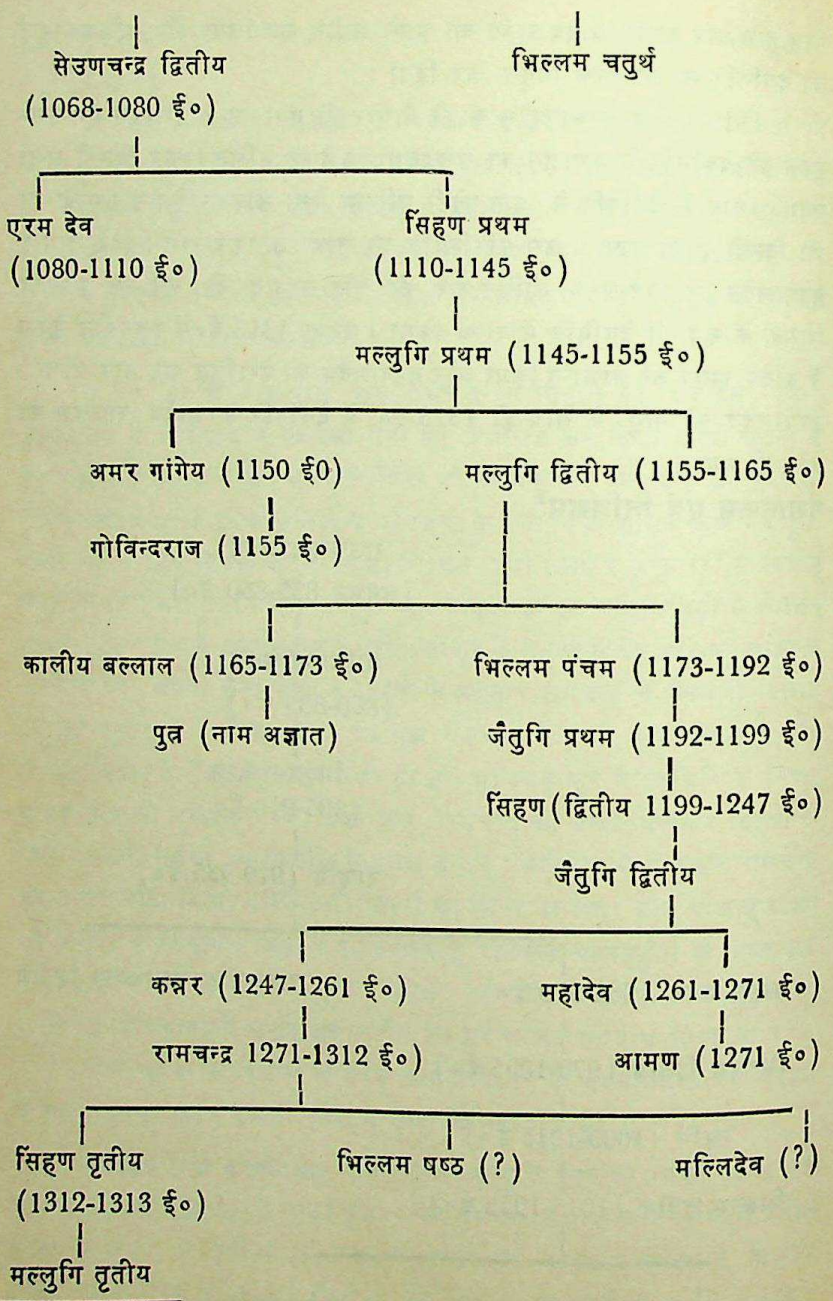

1. History of Karnataka, pp. 246-48.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कलभ्र शासन का अन्तराल—कलभ्र एक लड़ाकू तथा असभ्य जनजाति के लोग थे जिन्होंने तमिलनाडु, केरल और दक्षिणी कर्नाटक में तीसरी शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर छठी शताब्दी के मध्य तक शासन किया। कलभ्रों का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है और स्पष्ट साक्ष्यों के अभाव के कारण उनकी उत्पत्ति एवं मूलनिवास निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

एम० जी० शर्मा ने कलभ्रों को विदेशी माना है[1]। वेलविक्कुडि तथा कई अन्य अभिलेखों में कलभ्रों का उल्लेख बहुवचन में हुआ है। इस आधार पर नीलकान्त शास्त्री की अवधारणा है कि वे किसी प्राचीन राजवंश से सम्बन्धित नहीं थे, वरन् युद्ध-प्रिय जनजाति के लोग थे। एस० रमैय्या के अनुसार वे उत्तर भारत अथवा दक्षिणापथ के साहसिक लड़ाकू थे और आन्ध्र-सातवाहनों एवं कुषाणों के पतन के पश्चात् कर्नाटक से तमिल देश में पहुंचे थे[2]। गोपीनाथ राव ने उनकी पहचान कोडुम्बलूर तथा तंजोर क्षेत्र के **मुत्तरैयरों**[3] से की है। एस० के० आयंगर, आर० सथियनथायर, के०जी०कृष्णन तथा एन० सुब्रमण्यम के अनुसार **कलभ्र, कलवर** शब्द का विकृत रूप है जिसका अर्थ 'डाकुओं का गिरोह' है। कलभ्र कलवर का ही रूपान्तर प्रतीत होता है।

कुछ विद्वानों ने श्रवणवेलगोला के निकटवर्ती कलबप्पुनाडु को कलभ्रों का मूलनिवास माना है और कुछ ने तिरुपति को। तथ्य जो भी हो, तीसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में अथवा चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में उन्हें सम्भवतः पल्लवों के अभ्युदय और समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ की विजय के कारण अपना मूलदेश छोड़ना पड़ा[4]। इसके बाद वे दक्षिण की ओर बढ़ते हुए तमिल देश में पहुंचे। तमिलनाडु में उन्होंने पांड्यों तथा चोलों के प्रभुत्व का अन्त कर दिया और केरल को भी अपने अधीन किया।

आर० सथियनथायर के अनुसार संगम साहित्य में दो कलभ्र शासकों का विवरण प्राप्त होता है—पवत्तिरि का राजा तिरैयन और तिरुपति का शासक

---

1. Journal of Epigraphical Society, Vol, 10, p. 123.
2. JNSI, Vol. 42, 1980, pp. 18-20.
3. मुत्तरैयर का शाब्दिक अर्थ 'तीन राज्यों अर्थात् चोल, पांड्य एवं केरल का अधिपति' है।
4. कुछ विद्वानों के अनुसार सातवाहनों की साम्राज्यवादी नीति ने भी कलभ्रों को अपना आदिदेश छोड़ने के लिए बाध्य किया था। परन्तु सातवाहनों का पतन तीसरी शताब्दी के मध्य में अथवा इसके पहले ही हो गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुल्लि। परवर्ती तमिल ग्रन्थ नवलारचरितै, यप्परुंगलम् तथा पेरियपुराणम् में भी कलभ्र शासकों के उल्लेख हुए हैं। इसके अतिरिक्त कई चालुक्य, पल्लव तथा पांड्य शासकों द्वारा पराजित राज्यों में कलभ्रों को भी शामिल किया गया है। कलभ्र शासकों में अच्युत विक्रान्त महत्वपूर्ण था। उसके राज्यकाल में कावेरीपट्टिनम (तंजोर जिले में) प्रमुख राजधानी तथा मदुरा (मदुरई) द्वितीय राजधानी थी। कलभ्रों ने तांबे के सिक्के चलाए। इन पर अंकित लेख प्राकृत भाषा में है। एस० रमैय्या ने इनमें से कुछ सिक्कों पर **अच्युत-विक्रांत-कलभ्र** पढ़ा है।

दूसरा उल्लेखनीय कलभ्र शासक कोत्तन था। उसने समस्त तमिलदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसके सिक्के एवं अभिलेख रामनाडु जिले तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। वह चिदम्बरम् के शिव-नटराज का परम भक्त था।

छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पांड्यों एवं पल्लवों के अभ्युदय के कारण कलभ्रों का पतन हो गया। पांड्य शासक कडुंगोन ने मदुरा पर अधिकार कर लिया और पल्लव सिंहविष्णु ने तंजोर, तिरुचिरापल्ली तथा पदुकोट्टा पर। इसके बाद कलभ्र इन राजवंशों के अधीनस्थ हो गए।

लगभग 250 वर्ष के अपने शासन के दौरान कलभ्रों ने रचनात्मक भूमिका नहीं अदा की, और तमिल देश के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस ही किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

19

पल्लव राजवंश

उत्पत्ति–आन्ध्र–सातवाहनों के पतन के पश्चात् पूर्वी दक्षिणापथ में जिन राजवंशों का अभ्युदय हुआ, उनमें पल्लव सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। उन्होंने सातवाहन साम्राज्य के दक्षिणी एवं दक्षिण-पश्चिमी भागों पर अधिकार कर लिया और तोंडमंडलम् क्षेत्र को अपनी राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया। संगम युग के तमिल साहित्य में तथा मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेख दो[1] में सुदुर दक्षिण के चोल, पांड्य, एवं चेर राज्यों के विवरण हैं, परन्तु पल्लवों का उल्लेख नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों ने अशोक के अभिलेखों में वर्णित **पलद** या **पुलिन्द** का समीकरण पल्लवों से किया है, किन्तु यह मत अग्राह्य है। पल्लव वस्तुतः संगम युग (प्रथम से तृतीय शताब्दी तक) तक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति नहीं बन सके थे। उनके प्रारम्भिक अभिलेख प्राकृत भाषा में तथा बाद वाले संस्कृत में है। उन्होंने धर्ममहाराज तथा अश्वमेधयाजिन नामक विरुद धारण किए। पल्लव प्रारम्भ में सातवाहनों के सामन्त रहे होंगे।

पल्लवों के समीकरण एवं मूलनिवास के सम्बन्ध में बहुत अधिक मतभिन्नता है। विभिन्न विद्वानों के मतों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक विचारधारा के अनुसार पल्लव विदेशी थे और दूसरी के अनुसार भारतीय। पल्लवों को विदेशी मानने वाले विद्वानों में से कुछ ने श्रीलंका को उनका आदिदेश माना है और कुछ ने फारस या पार्थिया को।

विदेशी उत्पत्ति विषयक विचार एवं उनकी समीक्षा–तमिल काव्य मणिमेखलै के साक्ष्य के आधार पर सी० आर० मुदालियर की मान्यता है कि पल्लव सिंहल के दक्षिणी भाग में रहने वाले तमिल थे और प्रारम्भिक चोलों एवं चोड-

---

1. अशोक के शिलालेख दो में चोल, पांड्य तथा केरल के अतिरिक्त सत्यपुत्रों का भी उल्लेख हुआ है। सत्यपुत्रों के समीकरण के विषय में बहुत मत-भिन्नता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नागवंश से सम्बन्धित थे। उनके अनुसार तोंडमंडलम् के चोल शासक किल्लिवलवन (नेडुमुडि- किल्ली) ने श्रीलंका के मणिपल्लव राज्य की नाग वंशीय राजकुमारी के साथ विवाह किया जिससे इलन्तिरैयन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इलन्तिरैयन दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तोंडमंडलम् का राजा हुआ और उसने कांची को राजधानी बनाया। इलन्तिरैयन के वंशज उसकी माता के जन्म स्थान 'मणिपल्लव' के नाम से प्रसिद्ध हुए और कालान्तर में उनका नाम केवल पल्लव रह गया। इस प्रकार पल्लवों में पिता की ओर से उरैयूर के चोल-शासकों तथा मातृपक्ष से श्रीलंका के नागवंश के रक्त का सम्मिश्रण था।

वी० ए० स्मिथ ने पल्लवों को पहले तमिल राज्य के उत्तर में सम्भवतः वेंगी में निवास करने वाली एक जनजाति माना जो नागवंश से सम्बन्धित थी। किन्तु बाद में उन्होंने श्रीलंका को पल्लवों का आदिदेश माना। स्मिथ के अनुसार कालान्तर में पल्लवों ने शक्ति बढ़ाकर सुदूर दक्षिण के चोलों एवं चेरों आदि पर विजय प्राप्त की और कांची को अधिकृत कर लिया। इस प्रकार पल्लव भारतीय एवं विदेशी जनजातियों के मिश्रण से बनी एक जनजाति थी। एम० एस० रामस्वामी आयंगर के अनुसार पल्लव तमिल राज्य या सिंहल के मूलनिवासी थे और उनका प्रारम्भिक नाम तिरैयर था।

उपर्युक्त मतों में से कोई भी मान्य नहीं है। किसी साक्ष्य में इसका उल्लेख या संकेत नहीं है कि पल्लव श्रीलंका के मूलनिवासी थे और कालान्तर में उन्होंने कांची को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। उन्हें विदेशी तथा भारतीय जनजातियों का सम्मिश्रण मानने के लिए भी कोई ठोस आधार नहीं है। पल्लव शासकों की वंशावली में इलन्तिरैयन नामक किसी राजा का नाम नहीं मिलता; और यह भी उल्लेखनीय है कि मणिमेखलै में इलन्तिरैयन को तमिल भाषा का कवि एवं तमिल साहित्य का संरक्षक कहा गया है, जबकि प्रारम्भिक पल्लव शासकों ने प्राकृत को संरक्षण प्रदान किया था।

बी० एल० राइस, डुब्रील, वी० वेंकैय्या, स्वामीनाथ अय्यर तथा सी० आर० श्रीनिवासन आदि के अनुसार पल्लव पार्थिया के मूलनिवासी थे। इन विद्वानों ने पल्लवों का समीकरण पल्हवों से किया है जो पार्थिया के निवासी थे। इस मान्यता का सर्वप्रमुख आधार **पल्लव** तथा **पल्हव** शब्दों की समानता है। उपर्युक्त विद्वानों के अनुसार प्रथम शताब्दी में शकों तथा यवनों आदि विदेशी जनजातियों के साथ पल्लव (पल्हव) भी भारत में प्रविष्ट हुए, और वे सिन्धु नदी की घाटी तथा पश्चिमी भारतमें बस गए। कालान्तर में सातवाहनों की शक्ति

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का ह्रास होने पर, उन्होंने तोंडमंडलम् पर अधिकार कर लिया और भारत में काफी समय तक रहने के पश्चात् यहां की अनेक सांस्कृतिक परम्पराओं को भी स्वीकार कर लिया। बी० वी० कृष्णराव के अनुसार पल्लव पहले आनर्त तथा कोंकण प्रदेशों में बसे और वहीं से वे कुन्तल या बनवासी होते हुए दक्षिणापथ पहुंचे।

डुब्रील की अवधारणा है कि शक शासक रुद्रदामन प्रथम के 150 ई० के जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित सुविशाख नामक पल्हव मन्त्री ही पल्लवों का पूर्वज था। पल्लवों की राजधानी कांची में स्थित वैकुंठपेरुमाल मन्दिर पर उत्कीर्ण शिल्प के एक चित्रण में पल्लव शासक नन्दिवर्मन द्वितीय को हाथी की खोपड़ी के आकार का राजमुकुट धारण किए हुए दिखलाया गया है। यह राजमुकुट हिन्द-यूनानी राजा डिमेट्रियस के राजमुकुट से मिलता-जुलता है। इस समानता के आधार पर भी वेंकटसुब्बा अय्यर आदि विद्वानों ने पल्लवों का पल्हवों से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है।

स्वामीनाथ अय्यर की मान्यता है कि पल्लवों का प्रारम्भिक नाम **तिरैयर** था और **तिरैयर** फारसी के **द्रय, दरय,** या **दरिया** शब्दों से सम्बन्धित है जिसका अर्थ 'नाविक' है। चूंकि तिरैयर फारसी शब्द है, इसलिए पल्लव अर्थात तिरैयर भी फारस के मूलनिवासी रहे होंगे।

हेरास महोदय के अनुसार पल्लवों के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर अंकित सूर्य तथा चन्द्र की आकृतियां फारस के पार्थिय राजाओं के सिक्कों से ली गई हैं।

उपर्युक्त मतों का खंडन निम्नलिखित तर्कों एवं प्रमाणों द्वारा किया गया है—

1. केवल वाह्य सादृश्य के आधार पर पल्लव तथा पल्हव शब्दों को एक नहीं माना जा सकता।

2. पल्लव शासकों के राज्यकाल के अभिलेखों तथा अन्य साक्ष्यों में कहीं भी पल्हव शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है; और न ही इस मान्यता के समर्थन के लिए कोई प्रमाण है कि पल्लव शब्द पल्हव का पर्याय है।

3. राजशेखर ने काव्यमीमांसा में पल्लवों तथा पल्हवों को दो पृथक जनजातियां बतलाते हुए कहा है कि पल्हव सिन्धु के पश्चिम में तथा पल्लव माहिष्मती के दक्षिण में स्थित क्षेत्र में निवास करते थे।

4. रुद्रदामन प्रथम के मन्त्री सुविशाख को पल्लवों का पूर्वज मानने के लिए भी कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि पल्लव शासकों की वंशतालिका में उसका

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कहीं उल्लेख नहीं मिलता ।

5. वैकुंठपेरुमाल के मन्दिर पर अंकित नन्दिवर्मन द्वितीय के राजमुकुट की डिमेट्रियस के राजमुकुट से समानता के आधार पर पल्लवों का पल्हवों से सम्बन्ध नही जोड़ा जा सकता । इस प्रकार की समानताएं अन्य भारतीय राजवंशों के सन्दर्भ में भी मिलती है । उदाहरण के लिए इक्ष्वाकु शासकों के राज्यकाल की नागार्जुनकोंड की मूर्तियों में एक शक सैनिक का चित्रण है । इसी प्रकार समुद्रगुप्त के प्रारम्भिक सिक्कों पर उसे प्रायः कुषाण वेशभूषा में प्रदर्शित किया गया है । परन्तु इन आधारों पर हम इक्ष्वाकुओं तथा गुप्तों का सम्बन्ध क्रमशः शकों एवं कुषाणों से नहीं जोड़ सकते । इस प्रकार की समानताएं एवं प्रभाव वस्तुतः दो भिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन के परिणाम थे ।

6. इस अवधारणा के लिए भी कोई आधार नहीं है कि पल्लव पार्थिया के निवासी थे और बाद में पल्लव नाम से प्रसिद्ध हुए । पल्लव आन्ध्र अथवा तोंडमंडलम् में ही क्यों बसे? वे कब और किस मार्ग से होकर उत्तर-पश्चिमी भारत से दक्षिण गए और पश्चिमी भारत एवं आन्ध्र के बीच के किसी क्षेत्र या क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति का कोई प्रमाण क्यों नहीं मिलता ? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सका है ।

7. शक आदि विदेशी अश्वमेध यज्ञ नहीं करते थे, जबकि पल्लवों को **अश्वमेधयाजिन** कहा गया है ।

8. यह तर्क कि पल्लवों का प्रारम्भिक नाम तिरैयर था और तिरैयर फारसी शब्द द्रय, दरय या दरिया से सम्बन्धित है, मात्र कल्पना पर आधारित है ।

भारतीय उत्पत्ति-विषयक मत तथा उनका विवेचन–

1. समान गोत्र के आधारपर के०पी० जायसवाल ने पल्लवों को भारशिव-नागों से सम्बन्धित माना है । उनके अनुसार भारशिव-नागों के पतन के पश्चात् उनके राज्य पर वाकाटकों ने अधिकार कर लिया था । वाकाटकों की कई शाखाएं थीं, जिनमें से एक का प्रतिनिधित्व पल्लवों ने किया । इस प्रकार शाखा-राज्य होने के कारण ही इस वंश का नाम पल्लव रखा गया । जायसवाल का यह भी कथन है कि पल्लव वंश के प्रथम शासक का नाम अथवा उपाधि वीरकूर्च या केवल कूर्च थी । वीरकूर्च ने एक नाग राजकुमारी के साथ विवाह कर आन्ध्र जनपद में अपनी सत्ता स्थापित की । वेलूरपाल्यम् अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि वीरकूर्च के पूर्वज नागों के मित्र थे और उनकी प्रशासन-व्यवस्था से सम्बद्ध थे ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

2. मणिमेखलै काव्य के साक्ष्य के आधार पर एस० कृष्णस्वामी आयंगर, आर० आर० आयंगर तथा आर० मुदालियर ने पल्लवों को तमिल राज्य का मूलनिवासी माना है। इन विद्वानों के अनुसार पल्लव शब्द **तोंडैयर** तथा **तोंडमान** का पर्याय है और इसीलिए पल्लवों का मूलनिवास क्षेत्र तोंडमंडलम् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आर० गोपालन तथा सी० मीनाक्षी ने भी आन्ध्र राज्य को पल्लवों का आदिदेश माना है, क्योंकि उनके प्राचीनतम अभिलेख आन्ध्र में ही मिले हैं और वे सातवाहनों के सामन्त थे। एन० सुब्रमण्यम भी मोटेतौर पर इस मत से सहमत हैं। वे पल्लवो को नागों एवं चोलों से सम्बन्धित मानते हैं।

3. आर० सथियनथायर तथा डी०सी० सरकार की मान्यता है कि पल्लवों का उल्लेख मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में **पलद** या **पुलिन्द** के नाम से हुआ है और पलद या पुलिन्द सम्भवत: तोंडमंडलम की कुरुम्ब जनजाति से सम्बन्धित थे। इन विद्वानों के अनुसार तोंडैयर, पल्लव शब्द का तमिल रूपान्तर है। डी० सी० सरकार का यह भी अनुमान है कि इस भू-भाग के दो प्राचीन क्षेत्र पुलिनाडु तथा पुलियूरकोट्टम भी पल्लवों से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

4. अलेक्ज़ेंडर री की धारणा है कि संस्कृत के विद्वानों ने तमिल शब्द पाल-अविल को बिगाड़ कर पल्लव में परिवर्तित कर दिया। तमिल में **पाल** का अर्थ दूध और **अविल** का अर्थ दुहना है। पाल-अविल नामक जनजाति प्रारम्भ में दूध या गोपालन के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करती थी। कालान्तर में जब उसने शक्ति बढ़ाकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया, तो अपनी प्रारम्भिक स्थिति की यादगार में अपने राजवंश का नाम **पालवन** रखा जो बाद में बिगड़कर **पल्लव** हो गया।

5. के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार कदम्ब तथा चुटु राजवंशों की भाँति पल्लव मूलत: उत्तर भारत के निवासी थे। कालान्तर में वे दक्षिण भारत में बस गए और वहां की संस्कृति एवं परम्पराओं को स्वीकार कर लिया।

6. टी० वी० महालिंगम ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर पल्लवों को वेंगी के शालंकायनों से सम्बन्धित माना है—

क–दक्षिण भारत के राजवंशों में पल्लवों के अतिरिक्त केवल शालंकायनों का गोत्र भारद्वाज था।

ख–इन दोनों राजवंशों में स्कन्दवर्मन, बुद्धवर्मन तथा नन्दिवर्मन नाम के शासक हुए।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ग–दोनों का ध्वज-चिह्न वृषभ था।

घ–दोनों राजवंशों के अभिलेखों में एक ही लिपि (वेंगी लिपि) का प्रयोग हुआ है।

ङ–दोनों के प्रारम्भिक अभिलेख प्राकृत में और बाद वाले संस्कृत में हैं।

पल्लव वस्तुतः न तो भारशिव-नागों से सम्बन्धित थे और न वाकाटकों अथवा शालंकायनों से। वाकाटकों का गोत्र विष्णुवृद्धि था और पल्लवों का भारद्वाज। कूर्च या वीरकूर्च को भी पल्लव वंश का संस्थापक नहीं माना जा सकता, क्योंकि पल्लव अभिलेखों में उसका उल्लेख नहीं हुआ है। पल्लवों का उदय वाकाटकों के बाद में नहीं, वरन् लगभग उनके साथ ही हुआ था।

पल्लव शब्द को पाल-अविल का विकृत रूप मानना तथा यह अवधारणा कि वे प्रारम्भ में ग्वाले रहे होंगे, कल्पना की मौलिक उड़ान की परिचायक है। पल्लवों का तोंडमंडलम् के कुरुम्बों से अथवा अशोक के अभिलेखों में वर्णित पलद या पुलिन्दों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए भी कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार, यह मत भी निराधार है कि पल्लव उत्तर भारत के मूलनिवासी थे और बाद में वे दक्षिण भारत में बस गए।

निष्कर्ष–निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पल्लव दक्षिण भारत के ही मूलनिवासी थे। प्रारम्भ में वे आन्ध्र राज्य में सातवाहनों के सामन्त या पदाधिकारी थे। सातवाहनों के पतन के पश्चात् पल्लवों ने तोंडमंडलम् क्षेत्र में अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। सातवाहनों के प्रशासन से सम्बद्ध होने के कारण तथा उन्हीं के साम्राज्य के अवशेषों पर अपनी शक्ति प्रतिष्ठित करने के कारण पल्लवों ने सातवाहनों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा तथा उनकी शासन-पद्धति को प्रारम्भ में अपनाया। पल्लवों के प्रारम्भिक अभिलेख एवं स्मारक कृष्णा तथा गोदावरी के बीच के क्षेत्र में ही मिले हैं। मइडवोलु, हीरहडगल्लि तथा कुछ अन्य प्रारम्भिक अभिलेख सातवाहनि-राष्ट्र (कर्नाटक के धारवाड़ एवं बेल्लारी जिले) पर पल्लवों का प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। कालान्तर में पल्लवों ने दक्षिण की ओर अपनी शक्ति का विस्तार किया और तमिल राज्य को अधिकृत कर कांची को राजधानी बनाया।

पल्लवों के अभिलेखों में उन्हें भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण तथा अश्वत्थामा का वंशज कहा गया है। परन्तु कदम्ब शासक शान्तिवर्मन के तालगुंड स्तम्भ-लेख में उन्हें क्षत्रिय बतलाया गया है। पल्लव शासकों के नाम के अन्त में प्रयुक्त वर्मन शब्द से भी प्रतीत होता है कि वे क्षत्रिय थे। वे कांची की नाग-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जनजाति से भी सम्भवतः सम्बन्धित थे ।

प्रारम्भिक पल्लव शासक–प्रारम्भिक पल्लव शासकों के विषय में मुख्यतः इस राजवंश के अभिलेखों से ही सूचना प्राप्त होती है जिन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया है–प्राकृत अभिलेख और संस्कृत अभिलेख । प्रारम्भिक अभिलेख प्राकृत भाषा में हैं और बाद वाले संस्कृत में । इन दोनों वर्गों के अभिलेखों में विभिन्न पल्लव शासकों के केवल शासन के वर्षों के ही उल्लेख मिलते हैं; इनमें किसी संवत् का प्रयोग नहीं हुआ है । इसलिए प्रारम्भिक पल्लव राजाओं का तिथिक्रम मुख्यतःउनके अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा तथा लिपि के आधार पर ही तैयार किया गया है । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित साक्ष्य भी तिथिक्रम की समस्या को सुलझाने में कुछ हद तक सहायक सिद्ध हुए हैं–

1. गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने 350ई०के लगभग पल्लव विष्णुगोप को पराजित किया था । इस आधार पर न केवल विष्णुगोप का, वरन् उसके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती शासकों का तिथिक्रम भी मोटेतौर पर निर्धारित किया जा सकता है ।

2. जैन ग्रन्थ लोकविभाग की रचना 458 ई० में पल्लव सिंहवर्मन के शासन के 22वें वर्ष में हुई थी । इस प्रकार उसके राज्यकाल का प्रारम्भ 436 ई० के आसपास हुआ ।

3. कदम्ब शासक शान्तिवर्मा के राज्यकाल के तालगुंड अभिलेख में तथा पश्चिमी गंगों के पेनुगोंड ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि दो गंग राजाओं (माधववर्मन द्वितीय तथा माधववर्मन तृतीय) का राज्याभिषेक पल्लव शासक सिंहवर्मन तथा उसके पुत्र स्कन्दवर्मन ने किया था । पेनुगोंड ताम्रपत्रों की लिपि के आधार पर उपर्युक्त पल्लव शासकों को 5वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रखा गया है ।

4. नन्दिवर्मन तृतीय के वेलूरपाल्यम् ताम्रपत्रों में वर्णित पल्लव शासकों की लम्बी सूची में अशोकवर्मन का नाम भी शामिल है । कुछ विद्वानों ने उसका समीकरण मौर्य सम्राट अशोक से किया है और इस आधार पर भी पल्लवों के अभ्युदय की तिथि निर्धारित करने का प्रयास किया है । परन्तु यह एकीकरण असम्भावित है ।

दिनेशचन्द्र सरकार ने पल्लवों के प्राकृत अभिलेखों को 250 तथा 350 ई० के बीच में रखा है और संस्कृत अभिलेखों को 350 से 575 ई० के बीच । उनकी मान्यता है कि उपर्युक्त दोनों वर्गों के अभिलेखों में वर्णित पल्लव शासकों में से कुछ केवल युवराज ही रहे और उन्होंने स्वतन्त्र रूप से सम्भवतः कभी शासन नहीं किया

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रारम्भिक पल्लव राजाओं ने आन्ध्र-सातवाहनों के अनुकरण पर तांबे के सिक्के जारी किए जिनके पृष्ठ भाग पर अंकित जहाज की आकृति उनकी सामुद्रिक व्यापार में अभिरुचि का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। प्रारम्भिक पल्लव शासकों के वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम से सम्बन्धित प्रमुख मत इस प्रकार हैं– के० ए० नीलकांत शास्त्री[1] के अनुसार प्राकृत अभिलेखों में वर्णित शासक

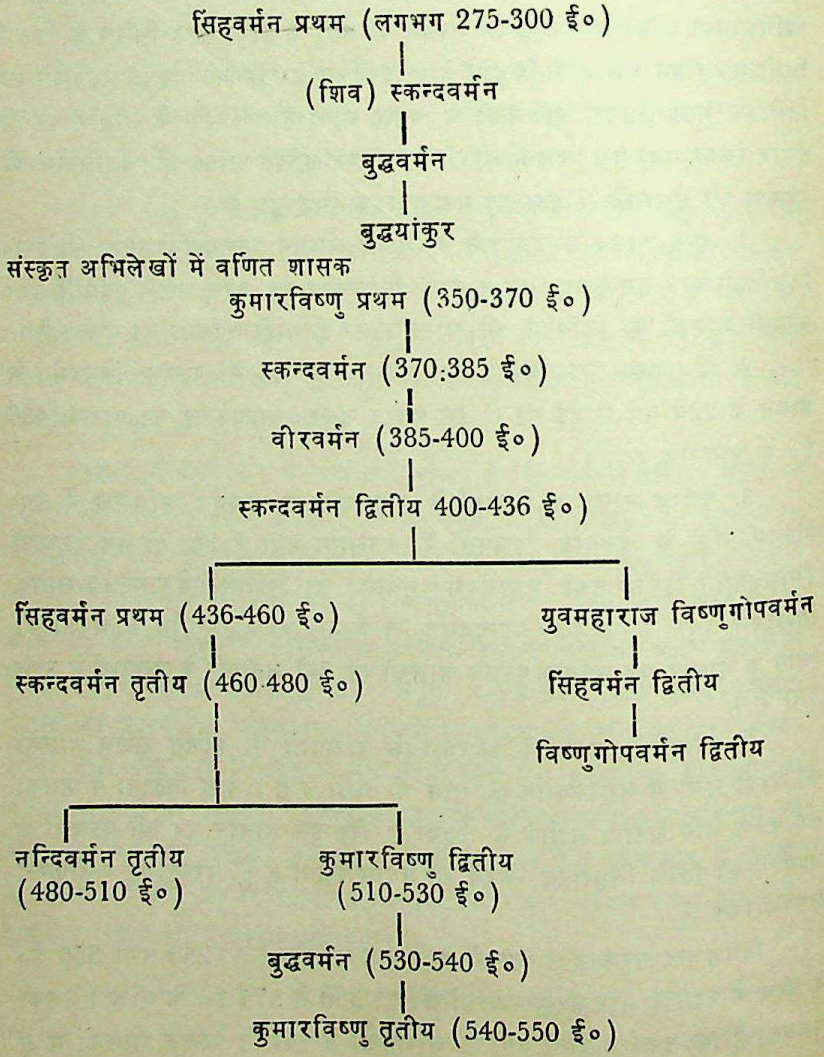

1. History of South India, p. 103.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दिनेशचन्द्र सरकार[1] के अनुसार प्राकृत अभिलेखों में वर्णित शासक–

सिंहवर्मन (तृतीय शती का अन्तिम भाग)

शिवस्कन्दवर्मन (चतुर्थ शती का आरम्भ)

स्कन्दवर्मन (चतुर्थ शती का द्वितीय चरण)

बुद्धवर्मन — विष्णुगोप (चतुर्थ शती का तृतीय चरण)

बुध्यांकुर

संस्कृत अभिलेखों में वर्णित शासक

स्कन्दवर्मन प्रथम

बुद्धवर्मन — विष्णुगोप (चतुर्थ शती का तृतीय चरण) — कुमारविष्णु प्रथम

बुद्धवर्मन

कुमारविष्णु द्वितीय (पांचवी शती का आरम्भ)

स्कन्दवर्मन द्वितीय

सिंहवर्मन (लगभग 436-458 ई०)

स्कन्दवर्मन तृतीय

नन्दिवर्मन प्रथम

शान्तिवर्मन चंडदंड (छठी शती का प्रारम्भ)

सिंहवर्मन (550-575 ई०)

सिंहविष्णु (575-600 ई०)

1. Classical Age, pp. 282-83

CC-0. CSP, State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

टी० वी० महालिंगम के अनुसार[1]

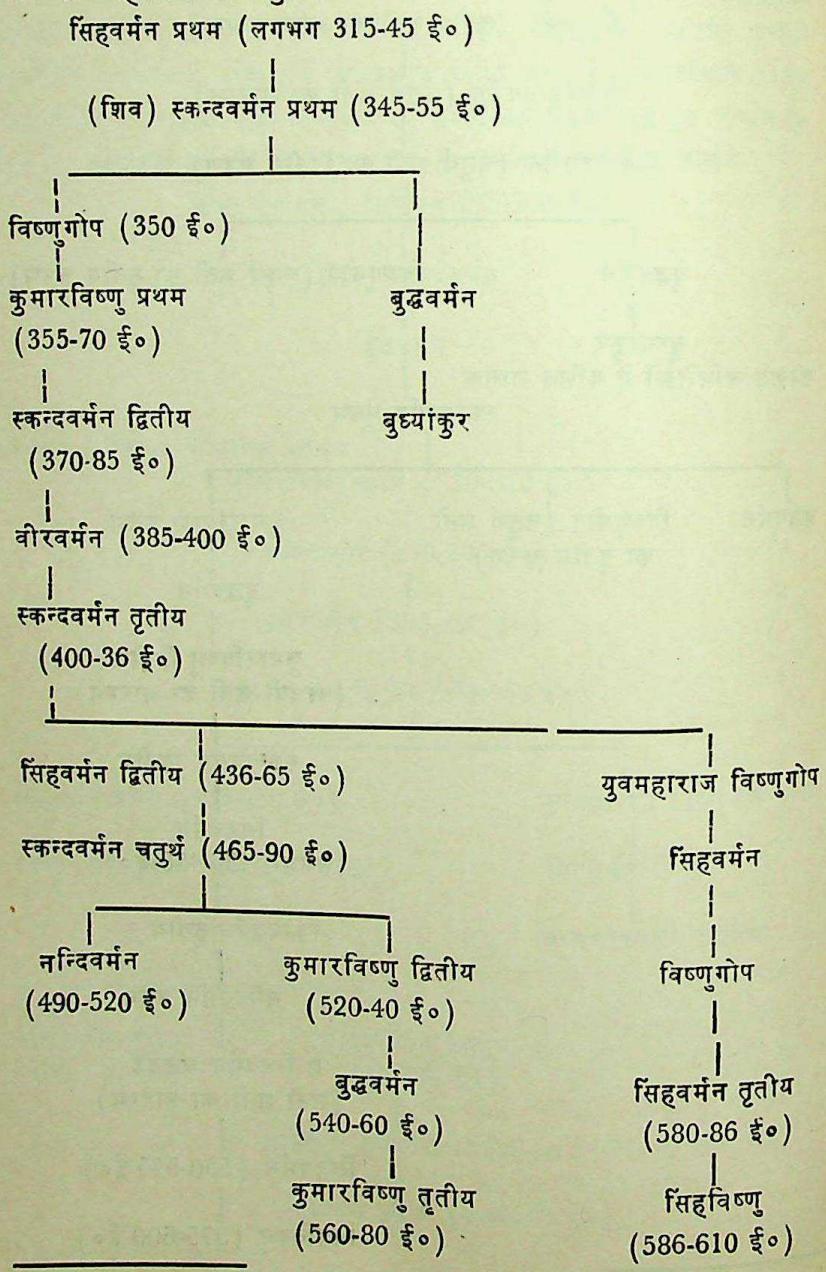

1. **Kanchipuram in early South Indian History, pp. 33-34.**

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राकृत एवं संस्कृत अभिलेखों में वर्णित प्रमुख पल्लव शासक निम्नलिखित हैं–

शिवस्कन्दवर्मन–प्रारम्भिक पल्लव शासकों में शिवस्कन्दवर्मन सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली था। मइडवोलु ताम्रपत्रों में उसके पिता को वप्पदेव कहा गया है। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार यहां **वप्प** का अर्थ केवल पिता है, है, क्योंकि वप्प शब्द का प्रयोग पिता के अर्थ में अन्य कई अभिलेखों में भी हुआ है। आन्ध्र राज्य के गुंटूर ज़िले से प्राप्त सिंहवर्मन नामक शासक के एक प्राकृत अभिलेखों की लिपि आन्ध्र के इक्ष्वाकुओं के अभिलेखों की लिपि से काफी समानता रखती है। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार सिंहवर्मन शायद शिवस्कन्दवर्मन का पिता था और उसने तृतीय शताब्दी के अन्तिम चरण में राज्य किया होगा। परन्तु यह भी असम्भव नहीं कि शिवस्कन्दवर्मन के पिता का नाम वप्पदेव रहा हो।

मइडवोलु अभिलेख में शिवस्कन्दवर्मन को युवमहाराज तथा भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण कहा गया है। इसमें धान्यकटक में विद्यमान अन्ध्रापथ के प्रान्तीय शासकों को दिए गए शिवस्कन्दवर्मन के पिता के आदेशों का वर्णन है। हीरहडगल्लि अभिलेख शिवस्कन्दवर्मन के राज्यकाल के आठवें वर्ष में कांची से जारी किया गया था। इस अभिलेख में उसे धर्ममहाराज की उपाधि दी गई है और बतलाया गया है कि उसने अश्वमेध, वाजपेय तथा अग्निष्टोम आदि यज्ञ सम्पन्न किए थे। अश्वमेध यज्ञ के उल्लेख के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिवस्कन्दवर्मन स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली शासक रहा होगा। उसके राज्य में कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों की घाटी, कुन्तल प्रदेश और सम्भवतः दक्षिणी कर्नाटक के कुछ भूभाग भी शामिल थे। इस प्रकार पल्लव राज्य की दक्षिणी सीमा पेन्नार नदी तथा आधुनिक बेल्लारी ज़िले तक पहुंच गई थी। पल्लवों ने कृष्णा और गुंटूर ज़िले इक्ष्वाकु शासकों से अपहृत किए होंगे। दिनेशचन्द्र सरकार ने शिवस्कन्दवर्मन का राज्यकाल चतुर्थ शताब्दी के प्रथम चरण में रखा है।

स्कन्दवर्मन–ब्रिटिश म्यूज़ियम अभिलेख स्कन्दवर्मन के राज्यकाल का है। डी० सी० सरकार ने मइडवोलु एवं हीरहडगल्लि अभिलेखों के शिवस्कन्दवर्मन तथा ब्रिटिश म्यूज़ियम अभिलेख के स्कन्दवर्मन को एक ही शासक माना है। उनके अनुसार शिव केवल आदर सूचक शब्द है जो स्कन्दवर्मन के नाम के पहले जोड़ दिया गया है। चूंकि मइडवोलु एवं हीरहडगल्लि अभिलेखों की अपेक्षा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ब्रिटिश म्यूजियम अभिलेख में संस्कृत के शब्द अधिक संख्या में प्रयुक्त हुए हैं, और शिव को स्कन्दवर्मन के सन्दर्भ में आदर सूचक शब्द मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है, इसलिए सरकार के उपर्युक्त मत से सहमत होना कठिन है। शिवस्कन्दवर्मन तथा स्कन्दवर्मन दो पृथक शासक प्रतीत होते हैं और स्कन्दवर्मन ने शिवस्कन्दवर्मन के बाद में राज्य किया होगा।

ब्रिटिश म्यूजियम अभिलेख में युवराज बुद्धवर्मन तथा बुद्ध्यांकुर का भी उल्लेख है। बुद्धवर्मन एवं स्कन्दवर्मन का पारस्परिक सम्बन्ध अज्ञात है। बुद्ध्यांकुर सम्भवतः बुद्धवर्मन का पुत्र था। इन दोनों ने स्वतन्त्र शासक के रूप में भी राज्य किया, अथवा युवराज ही रहे, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं।

विष्णुगोप–अग्रिम उल्लेखनीय पल्लव शासक विष्णुगोप था। प्रयाग प्रशस्ति में विष्णुगोप को समुद्रगुप्त द्वारा पराजित दक्षिणापथ के 12 राजाओं में शामिल किया गया है और उसे कांची का शासक (कांचेयकविष्णुगोप) कहा गया है। डुब्रील महोदय के अनुसार विष्णुगोप के नेतृत्व में दक्षिण भारत के राजाओं ने मिलकर समुद्रगुप्त के विरुद्ध विजय प्राप्त की थी। वी० वी० कृष्णराव तथा हाल में कुछ अन्य विद्वानों ने इस मत को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। परन्तु यह अवधारणा निराधार एवं काल्पनिक है। न केवल इसलिए कि प्रयाग प्रशस्ति में विष्णुगोप की पराजय का स्पष्ट उल्लेख है, बल्कि इसलिए भी कि किसी साक्ष्य में विष्णुगोप अथवा दक्षिणापथ के किसी राजा द्वारा समुद्रगुप्त को पराजित करने का संकेत तक नहीं है।

समुद्रगुप्त से समकालीनता के आधार पर विष्णुगोप की तिथि मोटे तौर पर निर्धारित की जा सकती है। समुद्रगुप्त ने 350 ई० के लगभग दक्षिण भारत पर आक्रमण किया होगा, इसलिए विष्णुगोप का राज्यकाल 340 तथा 350 ई० के बीच रखा जा सकता है। प्राकृत अभिलेखों में वर्णित पल्लव शासकों से विष्णुगोप का सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि समुद्रगुप्त की विजय के परिणामस्वरूप पल्लव राज्य को काफी क्षति पहुंची थी।

विष्णुगोप (लगभग 350 ई०) तथा सिंहवर्मन (लगभग 550 ई०) के बीच के 200 वर्षों के काल में आठ पल्लव राजाओं के नाम वर्णित हैं। इनमें से कुछ ने मुख्य राजवंश के विरुद्ध स्वतन्त्रता घोषित कर पृथक शाखा-राजवंशों की स्थापना करने का प्रयास किया था। वस्तुतः इस अन्तराल का पल्लवों का इतिहास काफी धूमिल एवं अनिश्चित है। कुछ विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया है कि विष्णुगोप की पराजय के पश्चात् कांचीनगर पल्लव राज्य से पृथक हो गया

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और कुमारविष्णु प्रथम ने इस पर पुनः अपना अधिकार स्थापित किया था। वेलूरपाल्यम् अभिलेख में बुद्धवर्मन को चोलसैन्यार्णववडवाग्नि कहा गया है। इससे अनुमान किया गया है कि उसके राज्यकाल में चोलों ने कांची पर आक्रमण किया होगा। परन्तु यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि कुमारविष्णु प्रथम ने अपने पारिवारिक प्रतिद्वन्दियों से कांची को पुनः प्राप्त किया था अथवा चोल आदि बाहरी शत्रुओं से।

विष्णुगोप के बाद के पल्लव शासकों में कुमारविष्णु द्वितीय तथा स्कन्दवर्मन द्वितीय के विषय में बहुत कम सूचना मिलती है। उदयेन्दिरम ताम्रपत्रों में नन्दिवर्मन द्वितीय को स्कन्दवर्मन द्वितीय का प्रपौत्र कहा गया है। स्कन्दवर्मन द्वितीय के पश्चात् सिंहवर्मन प्रथम राजा हुआ। उसने 436 से कम से कम 458 ई० तक शासन किया। जैन ग्रन्थ लोकविभाग की रचना शक संवत् के वर्ष 380 (458 ई०) के आस-पास हुई थी और यह सिंहवर्मन के शासन का 22वां वर्ष था। इस आधार पर उसका राज्यारोहण 458-22 = 436 ई० में रखा गया है। उसके राज्यकाल में बाण राजवंश की शक्ति काफी बढ़ गई थी। सिंहवर्मन ने गंग शासक आय्यवर्मन को राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया था। सिंहवर्मन के कुछ शासनादेश कांची के बजाय पीकिर, दशपुर तथा पलक्कड आदि स्थानों पर स्थित उसके सैनिक-शिविरों से जारी किए गए थे और उसके भाई कुमारविष्णु को कांची पर पुनःअधिकार स्थापित करना पड़ा था। इन तथ्यों के आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इस अन्तराल में कांची नगर सम्भवतः चोलों के अधीन था।

सिंहवर्मन के बाद के पल्लव शासकों में स्कन्दवर्मन तृतीय, नन्दिवर्मन प्रथम, शान्तिवर्मन एवं सिंहवर्मन द्वितीय महत्वपूर्ण थे। स्कन्दवर्मन ने पश्चिमी गंग आय्यवर्मन के पुत्र माधव द्वितीय का अभिषेक किया था और शान्तिवर्मन ने उच्छंगी शाखा के कदम्ब विष्णुवर्मन का। इन पल्लव राजाओं की उपलब्धियों आदि के बारे में अधिक सूचना नहीं मिलती। अनुमानतः उन्होंने 458 से 500 ई० के बीच के काल में शासन किया होगा।

छठी शताब्दी के प्रारम्भ में कांची से जारी किए गए एक अभिलेख में कांची के राजा चंडदंड का उल्लेख है जिसका कदम्ब शासक रविवर्मन से युद्ध हुआ था। कुछ ही वर्ष पूर्व सिंहवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के सक्रेपटन ताम्रपत्र प्रकाश में आये हैं इन ताम्रपत्रों में पहली बार स्कन्दवर्मन द्वितीय से लेकर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सिंहवर्मन द्वितीय तक के चार पल्लव शासकों का वंशानुक्रम वर्णित है[1]।

साम्राज्यवादी पल्लव: सिंहविष्णु–सिंहवर्मन द्वितीय के पुत्र सिंहविष्णु के राज्यारोहण के समय से पल्लवों के इतिहास की अस्पष्टता तथा अनिश्चितता समाप्त हो जाती है और इस राजवंश की महानता एवं गौरव का युग प्रारम्भ होता है। वह 575 ई० के लगभग राजा हुआ। उसने अवनिसिंह की उपाधि धारण की जो उसके शौर्य की परिचायक है। कशाक्कुडि अभिलेख के अनुसार सिंहविष्णु ने कलभ्रों, मालवों (अथवा मलय), चोलों, पांड्यों, केरलों तथा सिंहल के शासकों के विरुद्ध युद्धों में सफलता प्राप्त की[2]। चोलों को पराजित कर उसने कावेरी नदी की घाटी को अपने राज्य में शामिल कर लिया था[3]। मालवा की पहचान अनिश्चित है। सम्भव है कि इसका प्रयोग मलय पर्वतश्रृंखला के लिए किया गया हो, क्योंकि सुदूर स्थित मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र पर सिंहविष्णु की विजय असम्भावित प्रतीत होती है। पांड्यों की शक्ति निरन्तर बढ़ रही थी। सिंहविष्णु का समकालीन पांड्य शासक कडुंगोन रहा होगा। कडुंगोन के विरुद्ध उसे सफलता मिली अथवा नहीं, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। कुछ विद्वानों के अनुसार दक्षिणापथ की प्रभुसत्ता के लिए पल्लवों एवं चालुक्यों में संघर्ष का प्रारम्भ सिंहविष्णु के राज्यकाल के अन्तिम भाग में ही हो गया था, किन्तु यह मत किसी स्पष्ट साक्ष्य पर आधारित नहीं है। टी०वी० महालिंगम के अनुसार सिंहविष्णु का पश्चिमी गंग शासक दुर्विनीत के साथ भी संघर्ष हुआ था। सिंहविष्णु का राज्य मद्रास से लेकर कुम्भकोनम तक विस्तृत था। महेन्द्रवर्मन प्रथम के मत्तविलासप्रहसन में उसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई हैं और उसे महान शासक बतलाया गया है। वह वैष्णव धर्म का अनुयाई तथा कला का उत्साही संरक्षक था। मामल्लपुरम् के आदिवराह मन्दिर का निर्माण उसी के राज्यकाल में हुआ। इस मन्दिर में दो रानियों सहित सिंहविष्णु की मूर्ति उत्कीर्ण है। कुछ ही वर्ष पूर्व उत्तरी अर्काट ज़िले की चेंगम तालुक में स्थित नरसिंगनल्लूर नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि सिंहविष्णु ने कम

---

1. Kanchipuram through the Ages, p. 22.
2. अवनि(सि)ह: सिंहविष्णु···मालवमथकलभ्रममालवचोल (मलयमथ·कलभ्रमालवचोल)-पांड्य-निजभुजबलतृप्तन् (निजभुजबलद्धतं) सिंह (ल)-केरलाश्च।
3. कवीर(कावेरी)तनयाचिन्तास्सपदि येन चोलाद्वता: (SII, Vol. 2, p. 508)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से कम 33 वर्ष तक शासन किया। इस अभिलेख में उसे **सिंगविण्णपेरुमार** की उपाधि दी गई है[1]। उसके शासन का अन्त 600 ई०[2] के आस-पास हुआ।

महेन्द्रवर्मन प्रथम– सिंहविष्णु के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम 600[3] ई० के लगभग राजा हुआ। वह पल्लव वंश का प्रथम महान शासक था। उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य को उसने एक शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया तथा सांस्कृतिक, कलात्मक एवं साहित्यिक गतिविधियों को पर्याप्त प्रश्रय और प्रोत्साहन प्रदान किया। उस समय उत्तर में वातापी के चालुक्य तथा दक्षिण में मदुरा के पांड्य काफी शक्तिशाली हो गए थे; और जब इन राजवंशों के शासकों ने दक्षिण भारत की प्रभुसत्ता के लिए साम्राज्यवादी नीति को क्रियान्वित किया, तो उनके पारस्परिक संघर्ष अनिवार्य हो गए।

महेन्द्रवर्मन के प्रमुख प्रतिद्वन्दी वातापी के चालुक्य थे। चेर्ज़ला अभिलेख के साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि उसके शासन के प्रारम्भ में आन्ध्र राज्य के वर्तमान गुंटूर ज़िले का क्षेत्र पल्लवों के अधीन था। किन्तु 610 तथा 616 ई० के मध्य किसी समय इस भू-भाग को पुलकेशिन द्वितीय ने अधिकृत कर लिया था[4]। 634-35 ई० की ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार पुलकेशिन ने (दक्षिण) कोशल, कलिंग एवं पिष्ठपुरम् पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पल्लव राज्य पर आक्रमण किया और उदीयमान चालुक्य वंश से शत्रुता रखने वाले **पल्लवपति** के प्रताप को अपनी सेना की धूल से धूमिल कर उसे कांची की नगर-दीवार में

---

1. यह सिंहविष्णु के राज्यकाल का प्रथम ज्ञात प्रस्तर अभिलेख है (Srinivasan, C. R., Kanchipuram through the Ages,p. 27)।
2. टी० वी० महालिंगम के अनुसार उसने 610 ई० तक राज्य किया (Kanchipuram in early South Indian History, P. 61)।
3. कुछ विद्वानों के अनुसार 609 ई० के लगभग सिंहविष्णु ने अपने पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम को कन्नड़ राज्य की विजय के लिए भेजा था (Karnataka through the Ages,pp.137-139)। परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वीकृत तिथिक्रम के अनुसार 609 ई० में महेन्द्रवर्मन प्रथम स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था। उसके राज्यारोहण की तिथि वस्तुतः विवादास्पद है।
4. 616 ई० के पुलकेशिन द्वितीय के अभिलेख में उसके द्वारा मरूटूर (गुंटूर ज़िले में स्थित) ग्राम को दान में देने का विवरण है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

छिपकर शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया[2]। इस पराजय के परिणामस्वरूप पल्लव राज्य के धुर उत्तरी क्षेत्रों पर चालुक्यों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। अधिकांश विद्वानों ने पल्लवपति की पहचान महेन्द्रवर्मन प्रथम से की है, किन्तु टी० वी० महालिंगम इससे सहमत नहीं हैं।

नन्दिवर्मन द्वितीय के कशाक्कुडि अभिलेख के अनुसार पुल्लिलूर (कांची से लगभग 24 कि० मी० की दूरी पर स्थित) नामक स्थान पर महेन्द्रवर्मन ने अपने प्रमुख शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी (**पुल्लिलूरे द्विषतां विशेषान्**)। इन शत्रुओं के नाम नहीं बतलाए गए हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इनमें पुलकेशिन द्वितीय सर्वप्रमुख था। एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार महेन्द्रवर्मन के इन शत्रुओं में पश्चिमी गंग शासक की ओर भी संकेत है। परन्तु यदि महेन्द्रवर्मन ने वास्तव में पुलकेशिन द्वितीय जैसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी को पराजित किया होता, तो वह उसके नाम का उल्लेख अवश्य कराता। यह भी ध्यान देने की बात है कि पल्लव शासक के शत्रुओं के लिए बहुबचन (द्विषतां) का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि उसने सम्भवतः दक्षिण के कुछ छोटे शासकों पर विजय प्राप्त की होगी। टी० वी० महालिंगम का अनुमान है कि तेलगू-चोड शासक नल्लडि ने कुछ समय के लिए कांची के निकटवर्ती क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था और पुल्लिलूर के युद्ध में महेन्द्रवर्मन ने नल्लडि तथा उसके कुछ मित्र शासकों को पराजित किया होगा। ऐहोल प्रशस्ति में बतलाया गया है कि पल्लव शासकों को पराजित करने के उपरान्त पुलकेशिन द्वितीय ने कावेरी नदी को पार किया और पांड्य, चोल एवं केरल राज्यों से मित्रता की तथा उनकी समृद्धि में वृद्धि की। चालुक्य शासक द्वारा पल्लवों के शत्रु चोल, पांड्य एवं केरल राज्यों से मैत्री सम्बन्ध बनाना तो तर्कसंगत लगता है, परन्तु उसने इन राज्यों की समृद्धि को किस प्रकार बढ़ाया, यह स्पष्ट नहीं है। टी० वी० महालिंगम के अनुसार पुलकेशिन द्वितीय ने सम्भवतः नल्लडि चोल को सहायता प्रदान कर उसे पल्लव आधिपत्य से मुक्त करा दिया होगा और अन्य शासकों को भी इसी प्रकार की सहायता दी होगी। परन्तु न तो महेन्द्रवर्मन प्रथम द्वारा नल्लडि को पराजित करने का कहीं उल्लेख है और न ही पुलकेशिन द्वितीय द्वारा नल्लडि आदि को सहायता देने का। चेंगम तालुक (उत्तरी अर्काट ज़िले में) से 11प्राप्त वीरगलों (hero-stone inscriptions) में उसके

---

1. आक्रान्तात्मबलोन्नति-बलराजः सन्छन्नकांन्चपुर–
प्राकाररान्तरित-प्रताप-मकरोधः पल्लवानां पतिम्

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्य के सीमावर्ती ग्रामों पर पशुओं के अपहरण के लिए समय-समय पर किए गए हमलों के विवरण हैं।

महेन्द्रवर्मन प्रथम के शासन के प्रारम्भ में ही पल्लव राज्य उत्तर में कन्दर तथा विष्णुकुंडिन् राज्यों की सीमा तक विस्तृत हो गया था। तिरुचिरापल्ली अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा कावेरी नदी थी और इस नदी को 'पल्लवों की प्रिया' कहा गया है। कावेरी की घाटी का क्षेत्र पल्लवों ने चोलों से अपहृत किया था। परन्तु पुलकेशिन द्वारा पराजित होने के बाद उसका राज्य उत्तर में तिरुपति की पहाड़ियों तथा दक्षिण में तिरुचिरापल्ली तक ही सीमित रह गया था।

एक महान विजेता के अतिरिक्त महेन्द्रवर्मन प्रथम कला, साहित्य एवं संगीत का व्यसनी तथा संरक्षक था। वह स्वयं भी साहित्यकार था और उसने मत्तविलासप्रहसन की रचना की थी। इस ग्रन्थ में एक कापालिक एवं उसकी पत्नी बौद्ध-भिक्षुणी तथा एक पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयाई के माध्यम से तत्कालीन बौद्ध एवं शैव धर्मों में प्रविष्ट तन्त्रवाद तथा पंच-मकार के दोषों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस प्रमुख वर्ण्य-विषय के अतिरिक्त इसमें दक्षिण भारत के सांस्कृतिक जीवन के कुछ पहलुओं की झलक भी मिलती है। एन० सुब्रमण्यम, सी० आर० श्रीनिवासन तथा टी० के० रवीन्द्रन आदि के अनुसार, महेन्द्रवर्मन ने भगवदज्जुकीयम् नामक एक अन्य प्रहसन भी लिखा था। परन्तु यह मत असन्दिग्ध नहीं है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि उसने संगीत-शास्त्र पर एक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके अतिरिक्त उसे चित्रकला से सम्बन्धित दक्षिणचित्र नामक पुस्तक की रचना का भी श्रेय दिया गया है। यह मत भी व्यक्त किया गया है कि उसी की आज्ञा से कुडिमियामलय में संगीतशास्त्र से सम्बन्धित एक संस्कृत अभिलेख लिखा गया था।

वातापी के चालुक्य शासकों की भांति महेन्द्रवर्मन प्रथम ने भी स्थापत्य को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया। उसके राज्यकाल में शैलकृत-मन्दिर निर्माण शैली का बहुत अधिक विकास हुआ। मंडगपट्ट (दक्षिणी अर्काट जिले में स्थित) अभिलेख में बतलाया गया है कि विचित्रचित्त (महेन्द्रवर्मन प्रथम) ने ब्रह्मा, ईश्वर तथा विष्णु के लिए एकाश्मक मन्दिर बनवाए[1] जिनके निर्माण में ईंट, गारे, लकड़ी एवं धातु का प्रयोग नहीं किया गया था; और तिरुचिरापल्ली

1. एतदनिष्टकमद्रुम (मलो) हमसुधं विचित्रचित्तेन।
निर्मापितन्नृपेण ब्रह्मेश्वरविष्णुलिंगतायतनम्॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अभिलेख में गुणभर (महेन्द्रवर्मन प्रथम) को शिवलिंग का उपासक बतलाया गया है (गुणभरनामनि राजनयन-लिंगिनिज्ञानम्)। उसके राज्यकाल में निर्मित मन्दिर तिरुचिरापल्ली, महेन्द्रवाड़ी (अरकोनम के निकट) दलवणूर (दक्षिणी अर्काट ज़िले में) तथा वल्लम (चिंगलेपुट के निकट) में विद्यमान हैं। उसने महेन्द्रवाड़ी तथा चित्रमेघ नामक तड़ागों का भी निर्माण कराया था।

महेन्द्रवर्मन प्रारम्भ में जैन धर्म का अनुयाई था और उसने अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता प्रदर्शित की थी। बाद में वह शैव हो गया। पेरियपुराणम् के अनुसार सन्त अप्पर ने उसे शिव का उपासक बना दिया था। इस धर्म-परिवर्तन के उपरान्त उसने पाटलिपुत्र (दक्षिणी अर्काट ज़िले में कडुलोर) के जैन-विहारों का विध्वंस कराकर उनके अवशेषों से तिरुवडिगै में एक शिव के मन्दिर का निर्माण कराया। टी० वी० महालिंगम के अनुसार चूंकि पेरियपुराणम् में पल्लव राजा के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, इसलिए महेन्द्रवर्मन प्रथम के साथ उसका समीकरण असन्दिग्ध नहीं माना जा सकता। परन्तु अधिकांश विद्वानों ने पल्लवपति को महेन्द्रवर्मन प्रथम ही माना है। उसके राज्यकाल में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा और शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों का काफी प्रचार हुआ।

महेन्द्रवर्मन ने **मत्तविलास** (विलासिता में आसक्त), गुणभर (सद्गुणों से परिपूर्ण), विचित्रचित्त (अद्भुत अभिरुचियों वाला), महेन्द्रविक्रम, ललितांकुर, अवनिभाजन, अलुप्तकाम, कलहप्रिय, चेत्थकारी (मन्दिरों का निर्माण कराने वाला), चित्रकारप्पुलि (महान चित्रकार), शत्रुमल्ल तथा संकीर्णजाति आदि विरुद धारण किए : ये उपाधियां उसके बहुमुखी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का परिचय कराती हैं। महाबलीपुरम के मन्दिर में महेन्द्रवर्मन तथा उसकी रानियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दिनेशचन्द्र सरकार तथा आर० गोपालन के अनुसार उसने लगभग 600 से 630 ई० तक शासन किया। के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने उसका राज्यकाल 580 तथा 630 ई० के बीच रखा है। परन्तु उत्तरी अर्काट ज़िले के सात्तणूर नामक स्थान से हाल ही में प्राप्त अभिलेख उसके शासन के 39वें वर्ष का है[1]। इसके साक्ष्य के आधार पर उसके राज्य की अवधि 640 ई० के आसपास माननी चाहिए।

नरसिंहवर्मन प्रथम—महेन्द्रवर्मन प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन प्रथम अपने पिता से भी अधिक महान विजेता तथा कुशल प्रशासक था। उसके शासनकाल में पल्लव साम्राज्य सुदूर दक्षिण में सर्वाधिक शक्तिशाली हो

1. Kanchipuram through the Ages, p. 28.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गया था। उसने महामल्ल की उपाधि धारण की और अपनी सामरिक उपलब्धियों से इसे सार्थक सिद्ध कर दिया। महेन्द्रवर्मन प्रथम के समय में जो पल्लव-चालुक्य संघर्ष प्रारम्भ हुआ, वह लगभग सभी परवर्ती शासकों के राज्यकालों में चलता रहा।

टी० वी० महालिंगम के अनुसार 630 ई० के कुछ पहले पल्लवों ने चालुक्य साम्राज्य के महत्वपूर्ण प्रदेश कर्मराष्ट्र को अधिकृत करने का प्रयास किया था। सम्भवतः इसीलिए पुलकेशिन द्वितीय ने नरसिंहवर्मन के राज्यकाल में पल्लवों पर आक्रमण किया। पुलकेशिन द्वितीय के 631 ई० के कोप्परम् ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि उसने कर्मराष्ट्र में स्थित एक ग्राम को दान में दिया था। इससे प्रमाणित होता है कि इस तिथि तक चालुक्यों ने पुनः इस क्षेत्र को अधिकृत कर लिया था। तथ्य जो भी रहा हो, पुलकेशिन द्वितीय ने 634-35 ई० के पूर्व नरसिंहवर्मन के विरुद्ध अभियान किया। उसने पहले रायसलीम क्षेत्र में शासन करने वाले पल्लवों के सामन्त बाणों को पराजित किया। इसके उपरान्त चालुक्य सेना पल्लव राज्य में प्रविष्ट हुई। पुलकेशिन द्वितीय तथा नरसिंहवर्मन प्रथम के बीच हुए युद्धों के विवरण कई पल्लव अभिलेखों तथा कुछ अन्य साक्ष्यों में भी मिलते हैं। कूरम अभिलेख के अनुसार नरसिंहवर्मन ने सहस्त्रबाहु कार्तवीर्य के समान सैकड़ों युद्धों में अनुपम शौर्य प्रदर्शित किया और परियाल[1] शूरमार[2] तथा मणिमंगलम्[3] आदि स्थानों पर पुलकेशिन द्वितीय को लगातार पराजित कर उसकी पीठ पर **वि-ज-य** अक्षर अंकित कर दिए[4]। चालुक्य शासक जब पराजित होकर भाग रहा था तो यह **विजय** शब्द दिखाई दे रहा था। परन्तु नरसिंहवर्मन चालुक्यों को पराजित करने के उपरान्त उन्हें अपने राज्य में से केवल खदेड़कर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। कशाक्कुडि अभिलेख के अनुसार उसने पुलकेशिन की राजधानी वातापी को आक्रान्त कर उसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया

---

1. कुछ विद्वानों ने इसकी पहचान कडप्पा जिले के पैदेल (Paidela) नामक स्थान से तथा कुछ ने कृष्णा जिले के परतियाल (Partiyala) से की है।
2. शूरमार को चित्तूर जिले का शूरमार नामक स्थान माना गया है।
3. इसका समीकरण कांची से लगभग 32 कि० मीटर की दूरी पर स्थित एक ग्राम से किया गया है। परन्तु वास्तव में इनमें से किसी भी स्थान की पहचान सुनिश्चित नहीं है।
4. परियलमणिमंगलशूरमार-प्रभृतिरणविदर्शित (दर्शित) पुलकेशि-पृष्ठपट्ट-लिखित-विजयाक्षरस्य।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने वातापी नामक राक्षस की जीवन-लीला समाप्त कर दी थी[1]। उसने वहां पर स्थित एक विजय-स्तम्भपर भी अधिकार कर लिया था[2]। यहां यह उल्लेख करना कदाचित् अप्रासंगिक न होगा कि नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में जब चालुक्य शासक विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लवों को निर्णायक रूप से पराजित कर उनकी राजधानी पर अधिकार कर लिया था, तो उसने न केवल इस नगर को कोई क्षति नहीं पहुंचाई, बल्कि वहां के मन्दिरों को दान भी दिए। परन्तु नरसिंहवर्मन ने वातापी को तहस-नहस कर डाला था। चालुक्यों के विरुद्ध भेजी गई पल्लव सेना का नेतृत्व सम्भवत: शिरुतोंड नामक सेनानायक ने किया था। इस सेना ने 642 ई० में चालुक्यों को परास्त कर वातापी पर अधिकार कर लिया, पुलकेशिन द्वितीय युद्ध में मारा गया, और शिरुत्तोंड पराजित शत्रु की बहुत अधिक धन-सम्पत्ति लेकर वापस लौटा। उसने वातापी के मल्लिकार्जुन मन्दिर के पीछे एक प्रस्तर-खंड पर अपना अभिलेख भी अंकित कराया। यह घटना नरसिंहवर्मन के शासन के 13वें वर्ष की है। इस पराजय के परिणामस्वरूप चालुक्य साम्राज्य के दक्षिणी प्रदेशों पर कुछ समय के लिए पल्लवों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था।

पेरियपुराणम् काव्य तथा नन्दिवर्मन तृतीय के वेलूरपाल्यम् अभिलेख के अनुसार इस विजय की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के उद्देश्य से पल्लवों ने वातापी में एक कीर्ति-स्तम्भ भी स्थापित किया और नरसिंहवर्मन प्रथम ने वातापीकोंड (वातापी को अधिकृत करने वाला) नामक विरुद धारण किया। वह वातापी से गणेश की एक प्रतिमा भी ले गया था। पुलकेशिन द्वितीय के छोटे भाई वेंगी के शासक विष्णुवर्धन की अन्तिम ज्ञात तिथि भी 641-42 ई० है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वह भी पुलकेशिन द्वितीय के साथ पल्लवों से युद्ध करता हुआ मारा गया था। परन्तु वे उपर्युक्त संघर्ष के सन्दर्भ में किसी भी साक्ष्य में विष्णुवर्धन का उल्लेख नहीं मिलता। यह सम्भव है कि दोनों भाइयों की मृत्यु एक ही वर्ष में हुई हो, परन्तु एक साथ एक ही युद्ध में नहीं मारे गये थे। पुलकेशिन की मृत्यु के पश्चात् लगभग 13 वर्ष तक चालुक्य राज्य राजनैतिक संकट एवं अराजकता से ग्रसित रहा। इस अन्तराल

---

1. वातापि निर्ज्जयविल (डम्बित) कुम्भजन्मा–
वीरस्ततो विजयीनरसिंहवर्मा।
2. नरसिंहवर्मा वातापीमध्ये विजितारिवर्ग:-
स्थितंजयस्तम्भमलभयद्य: (S11, Vol. 2, P. 508).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के अधिकांश भाग में चालुक्य राज्य के दक्षिणी प्रदेश पल्लवों के अधिकार में रहे।

655 ई० के पहले पुलिकेशिन द्वितीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी विक्रमादित्य प्रथम ने सम्भवतः अपने नाना गंग शासक दुर्विनीत तथा कुछ अन्य समर्थकों की सहायता प्राप्त कर पल्लवों को पराजित कर उन्हें चालुक्य राज्य से खदेड़ दिया था। विक्रमादित्य के हैदराबाद अभिलेख में उसे नरसिंहवर्मन के यश को नष्ट करने वाला कहा गया है। गदवल अभिलेख[1] के अनुसार उसने नरसिंहवर्मन के यश एवं प्रताप को नष्ट कर दिया और महामल्ल के परिवार का विनाश करने के उपरान्त राजमल्ल की उपाधि धारण की। 658 ई० तक उसने करनूल जिले को अधिकृत कर लिया था। विक्रमादित्य प्रथम का 660ई० का तलमंचि अभिलेख कर्मराष्ट्र पर उसका प्रभुत्व प्रमाणित करता है।

नरसिंहवर्मन प्रथम के सिंहल के शासक मानवर्मन से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे। महावंश में बतलाया गया है कि कस्सप के पुत्र मानवर्मन को जब राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया गया तो उसने भारत के राजा नरसिंह (नरसिंहवर्मन प्रथम) के राज्य में 640 ई० के आस-पास शरण ली, और अपनी सेवाओं एवं निष्ठा द्वारा वह पल्लव शासक का प्रिय मित्र तथा कृपापात्र बन गया। कुछ समय के उपरान्त उसने अपनी पत्नी को भी श्रीलंका से बुला लिया और पल्लव राजधानी में ही उसके दो पुत्रों एवं दो पुत्रियों का जन्म हुआ। जब वल्लभ (पुलकेशिन द्वितीय) ने नरसिंहवर्मन के राज्य पर आक्रमण किया, तो मानवर्मन भी उसकी सहायता के लिए उसके साथ जाने को तैयार हुआ। नरसिंहवर्मन के मना करने पर पहले तो वह नहीं गया, किन्तु बाद में अपनी सेना सहित युद्ध-स्थल पर पहुंचा और युद्ध में सक्रिय भाग लेकर असाधारण पौरुष का प्रदर्शन किया। नरसिंहवर्मन की विजय हुई और और वह मानवर्मन से बहुत प्रसन्न हुआ। इसके पश्चात् उसने अपने इस मित्र को श्रीलंका का राजसिंहासन दिलाने का निश्चय किया और उसके साथ अपनी एक सेना भेजी। इस सेना के साथ जब मानवर्मन ने श्रीलंका पर आक्रमण किया तो उसका प्रतिद्वन्दी दत्थोपतिश भयभीत होकर भाग गया। मानवर्मन ने उसका पीछा किया। बाद में जब पल्लव सैनिकों को ज्ञात हुआ कि नरसिंहवर्मन गम्भीर रूप से बीमार है तो उन्होंने सिंहल से वापस आने का निश्चय किया। इसलिए मानवर्मन को पुनः नरसिंहवर्मन के यहां शरण लेनी पड़ी। उसे कुछ समय तक ठहराने के पश्चात्

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

1. मृदितनरसिंहयशसा.....योराजमल्लशब्दं विहितमहामल्ल-कुलनाशः।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नरसिंहवर्मन ने पहले से भी अधिक शक्तिशाली सेना सिंहल-विजय के लिए तैयार की और उसके साथ महाबलीपुरम् तक स्वयं गया। महाबलीपुरम् में इस सेना को श्रीलंका ले जाने के लिए जलयानों की विस्तृत कतार तैयार की गई थी, किन्तु पल्लव सेना ने सिंहल जाने से इंकार कर दिया। इस विषम स्थिति के उत्पन्न होने पर नरसिंहवर्मन ने कूटनीति का सहारा लिया और उसने अपने आभूषण, राजमुकुट तथा राजकीय-चिह्न आदि के अतिरिक्त शाहीकोट्ट नामक नगाड़ा भी मानवर्मन को दे दिया। इस वेशभूषा को धारण कर मानवर्मन ने शाहीकोट्ट को बजवाया और पल्लव सेना उसे नरसिंहवर्मन प्रथम समझकर उसके साथ चल पड़ी। इस वाहिनी के साथ जब मानवर्मन ने अपने शत्रुओं पर आक्रमण किया तो उसे निर्णायक सफलता प्राप्त हुई। उसका प्रतिद्वन्दी हत्थदत्थ पराजित हुआ और उसका सिर काट लिया गया। उसका दूसरा शत्रु पोत्थकुत्थ पहले भाग गया और बाद में विषाक्त भोजन खाकर उसने आत्म हत्या कर ली। इस शानदार विजय के कारण कशाक्कुडि अभिलेख में नरसिंहवर्मन की तुलना श्रीलंका विजयी राम से की गई है (लंकाजयाधरितरामपराक्रमश्री)।

उपर्युक्त सफलताओं के बाद नरसिंहवर्मन दक्षिण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट हो गया था। चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम की विजय का पल्लव राज्य में वस्तुतः कोई स्थाई प्रभाव नहीं रहा। नरसिंहवर्मन के पास शक्तिशाली नौ सेना भी थी जिसने श्रीलंका पर दो बार विजय प्राप्त की थी। उसके राज्यकाल में वास्तुकला का काफी विकास हुआ। उसने विशिष्ट प्रकार के सिंह-शीर्षक प्रस्तर-स्तम्भ बनाने की शैली का प्रारम्भ किया जो उसी के नाम पर मामल्ल-शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। नरसिंहवर्मन के बाद भी इस प्रकार के स्तम्भ दक्षिण भारत की वास्तुकला में लोकप्रिय रहे। वी०वेंकय्या के अनुसार महाबलीपुरम् के सप्तरथों तथा महाबलीपुरम् के पत्तन का निर्माण भी नरसिंहवर्मन प्रथम के राज्यकाल में ही हुआ था। परन्तु एन० सुब्रमण्यम आदि इस मत से सहमत नहीं है, क्योंकि यह पत्तन नरसिंहवर्मन के राज्यकाल के पहले भी विद्यमान था और प्रथम तीन **अलवारों** ने इसका उल्लेख कडलमल्लै के नाम से किया है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने नरसिंहवर्मन प्रथम के राज्यकाल में कांची तथा तोंडमंडलम् का भ्रमण किया और वहां वह काफी समय तक ठहरा था। उसने लिखा है कि कांचीपुर (Kan-chih-pu-lo) नगर का क्षेत्रफल 30 ली (लगभग 10 किलोमीटर) और तोंडमंडलम् (Ta-la-pi-tu) का क्षेत्रफल 6,000 ली था। वहां 100 से अधिक बौद्ध विहार थे जिनमें थेरवादी भिक्षुओं की

CC-0. U.P. State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संख्या 10,000 से भी अधिक थी। कांची में स्थित बौद्ध धर्मेतर 80 मन्दिरों में से अधिकांश दिगम्बर सम्प्रदाय के जैनियों के थे। दक्षिण भारत में यद्यपि बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था, किन्तु तोंडमंडलम् में वह उन्नत अवस्था में था। पल्लव राजधानी से थोड़ी ही दूर पर स्थित 30 मीटर ऊंचा महाविहार[1] था। ह्वेनसांग ने यह भी लिखा है कि नालन्दा विश्वविद्यालय का प्रसिद्ध विद्वान धर्मपाल कांची का निवासी था।

650 ई० के लगभग पल्लव राज्य में भयंकर अकाल पड़ा था, परन्तु सरकार द्वारा इस संकट काल में किए गए राहत कार्यों के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। नरसिंहवर्मन प्रथम के घटनापूर्ण राज्यकाल का अन्त 668 ई० में हुआ।

महेन्द्रवर्मन द्वितीय—नरसिंहवर्मन प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन द्वितीय राजा हुआ। उसे चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम ने पराजित किया था। उसके शासनकाल के विषय में कोई महत्वपूर्ण सूचना नहीं मिलती। कूरम अभिलेख के अनुसार उसके राज्य में शान्ति एवं समृद्धि थी। उसे वर्णाश्रम धर्म का रक्षक कहा गया है।

नन्दिवर्मन द्वितीय के कशाक्कुडि ताम्रपत्रों में बतलाया गया कि महेन्द्रवर्मन द्वितीय के राज्यकाल से ही मन्दिरों, ब्राह्मणों तथा घटिकाओं (वैदिक विद्यालयों) से सम्बन्धित पुण्य-कर्मों की उन्नति हुई। कुछ परवर्ती अभिलेखों में उसे अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त करने वाला तथा मध्यमलोकपाल भी कहा गया है। परन्तु इस प्रकार का विवरण कई अन्य पल्लव राजाओं के सन्दर्भ में भी मिलता है, इसलिए इसे अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

तिथि-रहित गेद्दमने अभिलेख के अनुसार शीलादित्य का सेनापति पेत्ताणि सत्यांक महेन्द्र की सेना से युद्ध करते हुए मारा गया था[2]। टी० वी० महालिंगम ने शीलादित्य का समीकरण लाट के चालुक्य शासक श्रयाश्रय तथा महेन्द्र का महेन्द्रवर्मन द्वितीय से किया है। परन्तु उक्त दोनों शासकों की पहचान काफी विवादास्पद है। शीलादित्य कन्नौज के शासक हर्षवर्धन की भी उपाधि थी, इसलिए कुछ विद्वानों ने उसकी पहचान हर्ष से की है। इसके अतिरिक्त वलभी के मैत्रक राजवंश के कई राजाओं ने भी शीलादित्य नाम या उपाधि धारण की

1. कुछ विद्वानों ने इस महाविहार का समीकरण मत्तविलासप्रहसन में वर्णित राजविहार से किया है।
2. Kanchipuram in Early South Indian History, p. 92.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थी। चूंकि गेद्दमने अभिलेख की सही तिथि ज्ञात नहीं है और इसमें वर्णित राजाओं के नाम भी अस्पष्ट है, इसलिए उपर्युक्त मतों में से किसी को भी असन्दिग्ध नहीं कहा जा सकता।

कुछ वर्ष पूर्व चेंगम तालुक के पेरियकोलप्पाडि नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर सी० आर० श्रीनिवासन ने उसकी शासनावधि 11 वर्ष मानी है[1]।

परमेश्वरवर्मन प्रथम—महेन्द्रवर्मन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र परमेश्वरवर्मन प्रथम 670 ई०[2] के लगभग राजा हुआ। हाल ही में चेंगम तालुक से उसके शासन के नवें वर्ष का एक भग्न अभिलेख प्राप्त हुआ है। उसने अत्यन्तकाम, विद्याविनीत, उग्रदंड, लोकादित्य, चित्रमाय, गुणभाजन, श्रीभर, एकमल्ल तथा रणंजय आदि विरुदों का प्रयोग किया। उसके राज्यकाल में भी पल्लवों का चालुक्यों से संघर्ष हुआ। विक्रमादित्य प्रथम के गदवल अभिलेख के अनुसार उसने ईश्वरपोतराज (परमेश्वरवर्मन प्रथम) के विरुद्ध विजय प्राप्त की; महामल्ल (नरसिंहवर्मन प्रथम) के परिवार को नष्ट कर दिया, प्राचीर एवं परिखा से सुरक्षित तथा दुर्लंघ्य कांची नगर को अधिकृत कर लिया और इस उपलब्धि के उपलक्ष में राजमल्ल का विरुद धारण किया[3]। यह युद्ध परमेश्वरवर्मन प्रथम के राज्यकाल के चौथे वर्ष में, कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर उरगपुर (उरैयूर) में हुआ था और इसी स्थान से विक्रमादित्य प्रथम ने अपने शासन के 20वें वर्ष में (शक सम्वत् 596) में गदवल दानपत्र जारी किए थे। टी०वी० महालिंगम का अनुमान है कि इस पराजय के उपरान्त परमेश्वरवर्मन प्रथम ने अपनी राजधानी छोड़कर किसी अन्य सुरक्षित स्थान में शरण ली होगी।

बाद में 674 तथा 678 ई० के बीच पल्लव शासक ने अपनी पराजय का बदला ले लिया। कूरम अभिलेख में बतलाया गया है कि परमेश्वरवर्मन ने उस विक्रमादित्य को पराजित कर युद्ध के मैदान से भगा दिया जिसकी सेना में लाखों सैनिक थे। महेन्द्रवर्मन के उदयेन्दिरम् अभिलेख के अनुसार यह युद्ध

---

1. Kanchipuram through the Ages, p. 32.
2. पुन्नगुरुवायपालेम ताम्रपत्रों के साक्ष्य के आधार पर महालिंगम ने उसका राज्यारोहण दिसम्बर 668 तथा दिसम्बर 669 ई० के मध्य में रखा है।
3. यो राजमल्लशब्द-विहित-महामल्ल-कुलनाशः।
दुर्लंघ्यदुष्कर-विभेद-विशालसाला।
दुर्गाधदुस्तर-बृहत्परिखा परीता।
अग्राह्यन जयतेश्वरपोतराजं कांचीव॥

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पेरुवलनल्लूर (तिरुचिरापल्ली जिले में लालगुडि के निकट स्थित) नामक स्थान पर हुआ था। परमेश्वरवर्मन ने रणरसिक (विक्रमादित्य प्रथम) की राजधानी को नष्ट करने का भी दावा किया है। वेलूरपाल्यम् अभिलेख में उसे अपने शत्रुओं के मद को नष्ट करने वाला कहा गया है।

गंग शासक भूविक्रम (655-679 ई०) के वेदिरुर अभिलेख के अनुसार, उसने विलन्द (कर्नाटक के तुम्कुरु जिले में स्थित) में किसी पल्लवनरेन्द्रपति से युद्ध किया था, जबकि हेल्लेगेरे तथा ब्रिटिश म्युजियम अभिलेखों में बतलाया गया है कि उसने एक पल्लव शासक का रत्नजटित हार अपहृत कर लिया था। उपर्युक्त साक्ष्यों में पल्लव राजा के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। असम्भव नहीं कि यह सफलता उसने परमेश्वरवर्मन प्रथम के विरुद्ध प्राप्त की हो।

वैष्णव सन्त तिरुमंगई आलवार ने लिखा है कि नांगूर के प्रमुखों ने पांड्यों तथा उत्तर के किसी शक्तिशाली राजा को पराजित किया था। नांगूर क्षेत्र उस समय पल्लवों के अधीन था, इसलिए कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ये शासक पल्लवों की ओर से ही लड़े होंगे।

रेयुरु अभिलेख में परमेश्वरवर्मन प्रथम को यथावदामृत-अश्वमेधाद्यनेक-क्रतुयाजिन कहा गया है। परन्तु अन्य किसी साक्ष्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। यदि उसने वास्तव में अश्वमेध यज्ञ किया होता तो उसके राज्य के अभिलेख अवश्य इस महत्वपूर्ण घटना का वर्णन करते। परमेश्वरवर्मन ने वास्तुकला को संरक्षण प्रदान किया। उसने परममाहेश्वर का विरुद धारण किया। उसकी तुलना शिव से भी की गई है। कूरम अभिलेख में सदाशिव की स्तुति की गई है। दक्षिण भारत के अभिलेखों में सदाशिव का यह कदाचित् प्राचीनतम उल्लेख है। परमेश्वरवर्मन का राज्यकाल ग्रेनाइट की प्रस्तर-शिलाओं द्वारा मन्दिरों के निर्माण के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। कांची के निकट कूरम में उसने एक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया और अपने ही नाम पर उसका नाम विद्याविनीतपल्लवपरमेश्वरगृहम रखा। कूरम अभिलेख में बतलाया गया है कि उक्त शिव-मन्दिर में महाभारत पर प्रवचन देने का प्राविधान भी किया गया था। मामल्लपुरम् का गणेश-मन्दिर तथा कुछ अन्य स्मारक भी सम्भवतः उसी के राज्यकाल में बने थे। उसने लगभग 695 ई० तक शासन किया।

नरसिंहवर्मन द्वितीय—परमेश्वरवर्मन प्रथम के पुत्र एवं उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन द्वितीय ने शासन की बागडोर सम्भाली। कैलाशनाथ मन्दिर पर उत्कीर्ण नरसिंह द्वितीय के एक अभिलेख के अनुसार उसने अनेक शत्रुओं का

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विनाश किया, अपनी शक्ति एवं नीतिनिपुणता द्वारा विद्रोहियों को मार दिया तथा अन्य राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। कशाक्कुडि अभिलेख में उसकी तुलना विष्णु के नृसिंहावतार से की गई है और वेलूरपाल्यम् अभिलेख में उसे महेन्द्र के समान बतलाया गया है। उसने रणंजय, रणविक्रम, अमित्र-मल्ल, अरिमर्दन, आहवकेशरि, परचक्रमर्दन, पार्थविक्रम तथा समरधनंजय नामक उपाधियां धारण कीं। ये विरुद उसके शौर्य एवं विजयों आदि के प्रतीक हैं। परन्तु उपर्युक्त साक्ष्यों में उसकी किसी सामरिक उपलब्धि का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। उसका राज्यकाल मुख्यतः शान्तिपूर्ण रहा।

नरसिंहवर्मन ने चीन से कूटनीतिक एवं मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए और सम्भवतः नागपट्टिनम में चीनी बौद्धों के ठहरने के लिए एक विहार का निर्माण कराया था। 1013 ई० में संकलित चीनी कोष Ts'o-fou-yuan-Kouei के अनुसार दक्षिण भारत के शासक श्रीनरसिंह (चे-लि-ना-लो-सेंग-किया) ने 720 ई० में अपना एक दूतमंडल चीन भेजा था जिसने चीन के सम्राट को सूचित किया कि नरसिंहवर्मन द्वितीय अरब तथा तिब्बत के लोगों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने के लिए तैयारियां कर रहा है। इससे चीनी सम्राट प्रसन्न हुआ और उसने (पल्लव राज्य में) अपना दूत भेजकर श्रीनरसिंहपोत-वर्मन (चे-लि-ना-लो-सेंग-किया-पाओ-तो-प-मो) को 'दक्षिण भारत के सम्राट' की उपाधि से विभूषित किया। यह विवरण निम्नलिखित समस्याएं प्रस्तुत करता है—

तिब्बत तथा अरब देशों से पल्लवों की शत्रुता का क्या कारण था, और चीन के सम्राट की इन दोनों देशों की पराजय में क्या अभिरुचि हो सकती थी? वस्तुतः अरब लोग उस समय सामुद्रिक व्यापार में पल्लवों तथा चीनियों के प्रबल प्रतिद्वन्दी थे, क्योंकि पूर्वी प्रायद्वीप तक उनकी शक्ति का विस्तार हो गया था और तिब्बत भी बहुत शक्तिशाली राज्य था। तिब्बत की चीन के साथ शत्रुता अस्वाभाविक नहीं थी, परन्तु पल्लवों से तिब्बत के शासकों के वैमनस्य का कारण बतलाना कठिन है।

कुछ वर्ष पूर्व चेंगम तालुक से नरसिंहवर्मन द्वितीय के छः अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये उसके शासन के 10वें वर्ष से लेकर 30वें वर्ष तक के हैं। इन अभिलेखों में पशुओं के[1] अपहरण के लिए किए गए आक्रमणों के उल्लेख हैं।

नरसिंहवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में वास्तुकला, साहित्य तथा शिक्षा

1. Kanchipuram through the Ages, p. 34.

CC-0. UP State Museum, Lucknow. Digitized by eGangotri

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आदि का अत्यधिक विकास हुआ। कांची में उसने कैलासनाथ तथा ऐरावतेश्वर नामक मन्दिरों का निर्माण कराया और महाबलीपुरम् में शोरटेम्पिल (Shore Temple) का। आर० नागस्वामी के अनुसार मामल्लपुरम् के समस्त स्मारक उसी के राज्यकाल में बने थे। परन्तु यह विचार पुष्ट साक्ष्यों पर आधारित नहीं है। उसने शैवधर्म को विशेष प्रश्रय प्रदान किया। उसे ईशानशरण, देव-देवभक्त, शंकरभक्त तथा ईश्वरभक्त कहा गया है। इन विरुदों से उसकी प्रबल शिवभक्ति प्रमाणित होती है। वेलूपाल्यम् अभिलेख के अनुसार उसने कैलास पर्वत के समान उत्तुंग एवं भव्य शिव के एक पाषाण मन्दिर का निर्माण कराया[1]। श्रीपतिबल्लभ की उपाधि धारण कर नरसिंहवर्मन ने विष्णु के प्रति भी अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की। उसकी संगीत विषयक प्रतिभा एव अभिरुचि की अभिव्यक्ति उसकी वाद्यविद्याधर, वीणानारद और अतोदय-तुम्बुरु नामक उपाधियों में हुई है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम ने नरसिंहवर्मन द्वितीय को पराजित करने के उपरान्त उसके वाद्ययन्त्र अपहृत कर लिए थे।

वह संस्कृत का उत्साही संरक्षक था। वेलूरपाल्यम् अभिलेख के अनुसार उसने कांची के घटिका-विद्यालयों को पुनर्जीवित किया और कशाक्कुडि अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने चार वेदों में पारंगत ब्राह्मणों को भूखंड दान में दिए। आर० गोपालन के अनुसार नरसिंहवर्मन द्वितीय के ही राज्यकाल में भास के नाटकों की रचना हुई थी, परन्तु यह विवादास्पद है। उसकी अग्रमहिषी रंगपताका द्वारा जारी किए गए एक अभिलेख में नरसिंह-वर्मन द्वितीय को रणरसिकपुर का विनाशक कहा गया है। रणरसिकपुर का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। रंगपताका प्रशासन-कार्य में नरसिंहवर्मन द्वितीय को सक्रिय सहयोग देती थी और उसने कैलासनाथ मन्दिर के निर्माण में योगदान दिया था। नरसिंहवर्मन द्वितीय ने 722 ई० तक शासन किया।

महेन्द्रवर्मन तृतीय तथा परमेश्वरवर्मन द्वितीय—नरसिंहवर्मन द्वितीय के सम्भवतः दो पुत्र थे—महेन्द्रवर्मन तृतीय और परमेश्वरवर्मन द्वितीय। महेन्द्रवर्मन ने कांची के कैलासनाथ मन्दिर के अहाते के अन्दर एक शिवमठ का निर्माण कराया था। के० आर० श्रीनिवासन के अनुसार वह गंग श्रीपुरुष से लड़ा था।

1. शिलामयं हेम इवाद्रिमौलेः
कैलास-कल्पंच-महेन्द्रकल्पः।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इस युद्ध में श्रीपुरुष ने पल्लवों का राजकीय छत्र अपहृत कर लिया और महेन्द्रवर्मन तृतीय सम्भवतः मारा गया[1]। कुछ विद्वानों के अनुसार श्रीपुरुष के 713-14 ई० के हेल्लेगेरे अभिलेख में वर्णित जय एवं वृद्ध पल्लवाधिराज नामक राजकुमार महेन्द्रवर्मन तृतीय के पुत्र थे[2]। सी० मीनाक्षी का अनुमान है कि वैकुंठपेरुमाल के मन्दिर के लेबुल (label) संख्या 17 तथा 18 में महेन्द्रवर्मन तृतीय की मृत्यु का चित्रण है। तथ्य जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि नरसिंहवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में ही महेन्द्रवर्मन तृतीय की मृत्यु हो गई और उसने शायद स्वतन्त्र रूप से कभी शासन नहीं किया। इसके उपरान्त परमेश्वरवर्मन द्वितीय को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

परमेश्वरवर्मन के राज्यकाल का केवल एक ही अभिलेख दक्षिणी अर्काट जिले से प्राप्त हुआ है जो उसके शासन के तीसरे वर्ष का है। इसमें उसके द्वारा दिए गए स्वर्ण-दान का विवरण है। कशाक्कुडि अभिलेख में उसे बृहस्पति की नीति का अनुगामी तथा 'संसार का रक्षक' बतलाया गया है। वेलूरपाल्यम् अभिलेख के अनुसार वह मनु द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार प्रशासन-व्यवस्था को सचालित करता था और राजागण उसका सम्मान करते थे।

चालुक्य शासक विजयादित्य के शासन के 35वें वर्ष (735 ई०) के उलचल अभिलेख के अनुसार, युवराज विक्रमादित्य द्वितीय ने कांची को आक्रान्त कर परमेश्वरवर्मन द्वितीय से कर एवं भेंटे प्राप्त कीं और वापस लौटते समय उसने पश्चिमी गंग दुर्विनीतएरेयप्प को कुछ क्षेत्र प्रदान किए। इस गंग शासक ने सम्भवतः उपर्युक्त युद्ध में चालुक्यों की ओर से भाग लिया होगा। कुछ विद्वनों के अनुसार परमेश्वरवर्मन द्वितीय चालुक्यों से युद्ध करता हुआ मारा गया और कुछ के अनुसार उसकी मृत्यु सम्भवतः पश्चिमी गंगों से हुए संघर्ष में हुई थी। डुब्रील महोदय की मान्यता है कि तिरुवडिग का वीरट्टानेश्वर मन्दिर परमेश्वरवर्मन के राज्यकाल में ही बना था। परन्तु टी० वी० महालिंगम के अनुसार उसने इस देवालय का केवल जीर्णोद्धार कराया था। महालिंगम का अनुमान है कि महाबलीपुरम के शैलकृत मन्दिर का निर्माण परमेश्वरवर्मन द्वितीय ने कराया। उसके राज्यकाल की किसी अन्य घटना का उल्लेख नहीं हुआ है।

नन्दिवर्मन द्वितीय पल्लव मल्ल—परमेश्वरवर्मन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् किन्हीं अज्ञात कारणों से पल्लव राज्य में राजनैतिक संकट एवं अव्यवस्था व्याप्त हो गई। परमेश्वरवर्मन द्वितीय का पुत्र चित्रमाय सम्भवतः उसकी मृत्यु के समय नाबालिग था, इसलिए उसके स्थान पर पल्लव राजसिंहासन पर

1. Cave Temples, p. 8.
2. KCC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हिरण्यवर्मन[1] प्रथम के पुत्र[2] नन्दिवर्मन द्वितीय को प्रतिष्ठित किया गया[3]। पल्लव अभिलेखों के अनुसार परमेश्वरवर्मन द्वितीय की मृत्यु के बाद पल्लव राज्य की अराजक स्थिति को दूर करने के उद्देश्य से अनेक सामन्तों, उच्च पदाधिकारियों, ब्राह्मणों एवं व्यापारियों के चुने प्रतिनिधि हिरण्यवर्मन से मिले और पल्लव राजसिंहासन पर एक योग्य शासक प्रतिष्ठित करने के लिए निवेदन किया। हिरण्यवर्मन ने इस प्रतिनिधिमंडल के अनुरोध पर अपने पुत्र नन्दिवर्मन द्वितीय को राज्याभिषेक के लिए कांची भेज दिया। उसका वहां भव्य स्वागत हुआ तथा राज्याभिषेक सम्पन्न कर दिया गया। इस प्रकार 730 ई० में उसने शासन की बागडोर सम्भाली[4]। नन्दिवर्मन के राज्याभिषेक विषयक विभिन्न अनुष्ठानों आदि के विशद चित्रण एवं विवरण कांची के बैकुंठपेरुमाल मन्दिर पर उत्कीर्ण मूर्तियों एवं अभिलेखों में मिलते हैं[5] जो अनुपम तथा अत्यधिक प्रभावी हैं।

कोरंगुडी अभिलेख में हिरण्यवर्मन प्रथम को कांची का स्वतन्त्र शासक बतलाया गया है[6]। किन्तु वेलूरपाल्यम् तथा बाहूर अभिलेखों में वर्णित कांची के शासकों में हिरण्यवर्मन का उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह

---

1. हिरण्यवर्मन सिंहविष्णु के छोटे भाई भीमवर्मन के वंश का छठा शासक था।
2. उदयेन्दिरम् अभिलेख के अनुसार नन्दिवर्मन द्वितीय परमेश्वरवर्मन द्वितीय का पुत्र था (तस्य परमेश्वरवर्म्मण: पुत्रो: नन्दिवर्मन)। किन्तु इस अभिलेख की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है और अन्य साक्ष्यों में उसे हिरण्यवर्मन का ही पुत्र बतलाया गया है। उसे उत्तराधिकार में कांची का राजसिंहासन नहीं मिला था, वल्कि वह प्रजा द्वारा राजा चुना गया था (वृत: प्रजाभि: कशाक्कुडि अभिलेख)।
3. आर० गोपालन के अनुसार परमेश्वरवर्मन द्वितीय का ही दूसरा नाम नन्दिवर्मन द्वितीय था। परन्तु यह मत अग्राह्य है।
4. आर० गोपालन ने नन्दिवर्मन द्वितीय का राज्यारोहण 710 ई० में, डुब्रील ने 717 ई० में, एन० वेंकटरमनय्या ने 725 ई० में, एम० एस० शर्मा ने 727 ई० में और टी० वी० महालिंगम ने 730-31 ई० के बाद माना है।
5. MASI, No. 63.
6. टी० वी० महालिंगम के अनुसार भीमवर्मन के वंशज हिन्द-चीन के एक भू-भाग पर शासन कर रहे थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

परमेश्वरवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में शक्तिशाली सामन्त अथवा पल्लव राज्य के किसी प्रदेश का स्वतन्त्र शासक रहा होगा। परमेश्वरवर्मन की मृत्यु के पश्चात् पल्लव राज्य में व्याप्त राजनैतिक संकट की स्थिति का लाभ उठाकर उसने शक्ति बढ़ा ली और अपने पुत्र नन्दिवर्मन द्वितीय को कांची के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करने में सफल हो गया।

चित्रमाय अपने वैध अधिकार से वंचित कर दिए जाने के कारण नन्दिवर्मन द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह एवं संघर्ष की तैयारी में प्रयत्नशील हो गया और पल्लवों के शत्रु राजवंशों से मिलकर अपनी शक्ति को संगठित कर लिया। सी० आर०श्रीनिवासन के अनुसार महेन्द्रवर्मन तृतीय के दो पुत्रों ने भी सम्भवतः उसका साथ दिया था। उसके सहायकों में पांड्य, पश्चिमी गंग तथा पूर्वी चालुक्य प्रमुख थे। नन्दिवर्मन द्वितीय के विरुद्ध बनाए गए इस संघ का नेतृत्व पांड्य शासक राजसिंह प्रथम ने किया था। पल्लवों की पांड्यों से शत्रुता सिंहविष्णु के राज्यकाल में ही प्रारम्भ हो गई थी जोकि परवर्ती शासकों के काल में न्यूनाधिक रूप में चलती रही। राजसिंह प्रथम ने सम्भवतः 740 ई० के कुछ पहले नन्दिवर्मन द्वितीय पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया और कुम्भकोनम् के निकट नन्दिपुर के दुर्ग में बन्दी बनाकर उस दुर्ग को अधिकृत कर लिया था। नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के 12वें वर्ष के उदयेन्दिरम् अभिलेख में बतलाया गया है कि उसके सामन्त एवं सेनानायक उदयचन्द्र ने, जो वेगवती नदी की घाटी एवं बिल्वपुरनगर का शासक और पूचन वंश का तिलक था, नन्दिवर्मन द्वितीय को कारागार से मुक्त कराकर पल्लव राजसिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठत कर दिया; द्रमिल (तमिल) शासकों के संघ को छिन्न-भिन्न कर इसमें शामिल राजाओं का परास्त कर दिया; चित्रमाय तथा कुछ अन्य शत्रु शासकों का वध कर दिया (चित्रमायपल्लवरामुखान्निहत्य) और शबर शासक उदयन, निषादराज पृथ्वीव्याघ्र एवं विष्णुराज (पूर्वी चालुक्य शासक विष्णुवर्धन तृतीय) को भी हरा दिया था। जिन स्थानों पर उसे पल्लवों से युद्ध करने पड़े थे, उनके नाम इस प्रकार है–शंकरग्राम, नेल्लूर, नेलवेलि, निम्बवन, चूतवन तथा मय्यकुडि[1]। इनमें से कुछ ही स्थानों की पहचान निश्चित रूप से की जा सकी है।

---

1. द्रमिलनरपतिभिरुपरुद्धम् पल्लवमल्लन्नंदिपुरे दृष्टवा ..... निशितेन कृपाणेन पल्लवमल्लशत्रु(ब्र)न्दस्यकृता(न्त)इव ..... निम्ब(वन)-चूतवनशंकरग्रामनेल्लूरनेल्वेलिप्रभृतिषु रणभुविषु पल्लवाय बहुशः परबलं विजेता (SII, Vol. 2, Part 3, p. 367)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शंकरग्राम को कुछ विद्वानों ने उत्तरी अर्काट ज़िले में स्थित माना है। नेलवेलि के युद्ध में उदयन पराजित हुआ था। हुल्ट्श ने नेलवेलि का समीकरण तिरुनेलवेलि से और आर० गोपालन ने नेलमलि से किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार उदयन दक्षिण कोशल का शासक था और कुछ ने उसे गंजाम एवं विशाखापटनम् ज़िलों के सौरों का राजा माना है। नेल्लूर का अभिज्ञान नेल्लोर से किया गया है। आर० सथियनथायर का अनुमान है कि उपर्युक्त सभी स्थान तंजोर के निकटवर्ती क्षेत्र में स्थित थे। यह भी सुझाव दिया गया है कि तमिल राजाओं ने नन्दिवर्मन द्वितीय के विरुद्ध युद्ध के दो मोर्चे बनाए थे—एक मोर्चा उत्तर में आन्ध्र के शासकों ने तैयार किया था और दूसरा दक्षिण में तमिल देश के राजाओं ने। युद्ध के दो मोर्चे रहे हों अथवा एक, इसमें सन्देह नहीं कि उदयचन्द्र ने सभी शत्रु शासकों को पराजित कर अपने अधिराट नन्दिवर्मन पल्लवमल्ल को पुनः राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया था। उपर्युक्त स्थानों पर पराजित शत्रु शासकों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। उदयचन्द्र अत्यधिक सक्षम एवं स्वामिभक्त सेनानायक था। उसने नन्दिवर्मन द्वितीय की विषम परिस्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठाया और न ही इससे उसकी महत्वाकांक्षा जाग्रत हुई। उसके पुत्र अवनिचन्द्र ने भी नन्दिवर्मन द्वितीय तथा उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी दन्तिवर्मन को काफी सहयोग दिया था।

नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में पल्लव साम्राज्य पर वातापी के चालुक्यों ने भी आक्रमण किया। विक्रमादित्य द्वितीय के केन्दूर अभिलेख के अनुसार उसने अपने स्वाभाविक शत्रु (प्रकृति-अमित्र) के विरुद्ध एक विशाल सेना भेजकर तुंडाक प्रदेश पर अधिकार कर लिया और नन्दिवर्मन द्वितीय को उसकी राजधानी कांची से भागने के लिए विवश किया। विक्रमादित्य के कांची के राजसिंहेश्वर के मन्दिर पर उत्कीर्ण अभिलेख में बतलाया गया है कि सत्याश्रय (विक्रमादित्य प्रथम) ने कांची को अधिकृत करने के पश्चात् न तो तोड़फोड़ की और न ही उस नगर के मन्दिरों की धन-सम्पत्ति को कोई क्षति पहुंचाई; वरन् स्वयं मन्दिरों को काफी धन-सम्पत्ति अर्पित की। इससे प्रमाणित होता है कि शत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के उपरान्त भी उसने बहुत संयम से काम लिया था। विक्रमादित्य ने 740 ई०[1] के आस-पास पल्लव राज्य पर यह आक्रमण किया होगा। इस विजय के पश्चात् वह कांची में कुछ समय तक रुका और वहां से उसने अपने दानपत्र भी जारी किए। टी०वी० महालिंगम का अनुमान है कि नन्दिवर्मन अपना राज्य एवं राज-

1. कुछ विद्वानों ने इस आक्रमण का तिथि 741-42 ई० मानी है (Cave-Temples, p. 10).

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धानी छोड़कर भाग गया था और उसने राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग के यहां शरण ली, क्योंकि दन्तिदुर्ग वातापी के चालुक्यों का विरोधी था। सम्भवत: उदयचन्द्र भी नन्दिवर्मन के साथ गया था। पल्लव शासक ने दन्तिदुर्ग के सामरिक अभियानों में भाग लिया और अपने इसी प्रवास के अन्तराल में उसने शायद शबर शासक उदयन, निषाद पृथ्वीव्याघ्र तथा सैन्धवों आदि पर विजयें प्राप्त की होंगी। बाद में दन्तिदुर्ग ने उसे 745-46 ई० में पल्लव राजसिंहासन पर प्रतिष्ठत कर दिया। महालिंगम की यह भी मान्यता है कि नन्दिवर्मन द्वितीय की अनुपस्थिति में चालुक्य विक्रमादित्य द्वितीय ने चित्रमाय अथवा परमेश्वरवर्मन द्वितीय के परिवार के किसी अन्य राजकुमार को कांची का राजा बना दिया था। परन्तु उपर्युक्त समस्त अनुमान मौलिक कल्पना पर ही आधारित हैं। नन्दिवर्मन द्वितीय द्वारा दन्तिदुर्ग के यहां शरण लेने का उल्लेख अथवा संकेत किसी साक्ष्य में नहीं मिलता। पल्लव अभिलेखों के अनुसार नन्दिवर्मन को उसके सेनानायक उदयचन्द्र ने पुन: उसका राज्य वापस दिलाया था। इस सन्दर्भ में दन्तिदुर्ग द्वारा दिए गए किसी प्रकार के सहयोग के विषय में भी कोई सूचना नहीं मिलती। चेंगम तालुक के दो स्थानों से प्राप्त उसके राज्यकाल के दो अभिलेखों में पशुओं की रक्षा करने में मारे गये योद्धाओं के विवरण हैं[1]।

तंडनतोट्टम् अभिलेख में बतलाया गया है कि पल्लवों ने गंगवाड़ी पर आक्रमण[2] कर गंग शासक शिवमार या श्रीपुरुष को पराजित कर दिया था और पल्लवों के सामन्त ने गंग राजा से वह बहुमूल्य हार अपहृत कर लिया जिसमें उग्रोदय नामक मणि जड़ा हुआ था। इसके विपरीत पश्चिमी गंगों के अभिलेखों के अनुसार श्रीपुरुष ने पल्लवों पर विजय प्राप्त की थी। इन परस्पर विरोधी विवरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों राजवंशों को बारी-बारी से एक दूसरे के विरुद्ध कुछ सफलता प्राप्त हुई होगी।

नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में पल्लव राज्य पर राष्ट्रकूटों ने आक्रमण किया। कडव अभिलेख के अनुसार दन्तिदुर्ग ने नन्दिवर्मन द्वितीय को पराजित कर दिया था। एलोरा एवं बेगुम्रा अभिलेखों के अतिरिक्त सन्त आलवार की उक्तियों द्वारा भी दन्तिदुर्ग की नन्दिवर्मन द्वितीय के विरुद्ध सफलता की पुष्टि हुई है। वेलूरपाल्यम् अभिलेख में दन्तिदुर्ग की पुत्री रेवा को नन्दिवर्मन द्वितीय की पत्नी कहा गया है। इससे प्रमाणित होता है कि युद्ध के पश्चात् इन शासकों में सन्धि हो गई जिसकी परिणति उपर्युक्त वैवाहिक सम्बन्ध में हुई। पांड्यों, चोलों, केरलों तथा कलभ्रों ने भी नन्दिवर्मन को सन्त्रस्त

1. Kanchipuram through the Ages, p. 38.
2. टी० वी० महालिंगम के अनुसार यह आक्रमण 734 ई० में हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया था। पांड्य अभिलेखों के अनुसार पांड्य शासक मारवर्मन राजसिंह ने नेडुवयल, कुरुमडै, तिरुमंगै, पूवालूर तथा कोडुम्बालूर आदि स्थानों पर पल्लवों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। दूसरी ओर नन्दिवर्मन द्वितीय के शासन के 33वें वर्ष के पुल्लूर ताम्रपत्रों के अनुसार केरल, चोल, पांड्य, मालव, कलभ्र, बाण, आन्ध्र, सिन्ध, गंग तथा कदम्ब राज्यों के नृप उसकी आज्ञा मानते थे; और 61वें वर्ष के पट्टतालमंगलम् अभिलेख में बतलाया गया है कि वल्लभ, कलभ्र, केरल, पांड्य, चोल, तुलु तथा गोंगण (कोंकण) राज्यों के शासक उसके दर्शन के लिए उसके (राजप्रासाद) के द्वार पर प्रतीक्षा करते थे। परन्तु इन अभिलेखों का साक्ष्य सन्दिग्ध है।

महाबलीपुरम् से प्राप्त एक अभिलेख नन्दिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के 65वें वर्ष का है। इस प्रकार उसने कम से कम 65 वर्ष तक शासन किया। उसमें महेन्द्रवर्मन प्रथम अथवा नरसिंहवर्मन प्रथम के समान युद्ध एवं सैन्य-संचालन की क्षमता नहीं थी। अपने दीर्घकालीन शासन में वह पश्चिमी गंग श्रीपुरुष के अतिरिक्त किसी अन्य शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध निर्णायक सफलता नहीं प्राप्त कर सका और अधिकांश शत्रुओं द्वारा स्वयं पराजित हुआ। तथापि उसे एक महान शासक होने का श्रेय दिया जाना चाहिए, क्योंकि उसकी इतनी लम्बी शासनावधि के दौरान कई पराजयों के बावजूद पल्लव साम्राज्य की अधिक क्षेत्रीय हानि नहीं हुई। इसका श्रेय मुख्यतः उसके सेना-नायक उदयचन्द्र को दिया जाना चाहिए। पूर्ववर्ती पल्लव शासकों की परम्परा का अनुशरण करते हुए नन्दिवर्मन द्वितीय ने भी वास्तुकला को संरक्षण दिया और कांची में मुक्तेश्वर तथा बैकुंठपेरूमाल नामक मन्दिरों का निर्माण कराया। वह वैष्णव धर्म का अनुयाई था और उसके राज्यकाल में तिरुमगई आलवार ने इस धर्म का काफी प्रचार किया। परन्तु उसके समय में जैन धर्म भी लोकप्रिय था। उदयेन्दिरम् अभिलेख के आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि नन्दिवर्मन द्वितीय ने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था, किन्तु इस अवधारणा के लिए और प्रमाण अपेक्षित है। नन्दिवर्मन के शासन के 20वें वर्ष के कशाक्कुडि अभिलेख में उसे पल्लवमल्ल, क्षत्रियमल्ल, राजाधिराज, परमेश्वर एवं महाराज की उपाधियां दी गई हैं, और वेदों तथा धर्म-शास्त्रों का विद्वान बतलाया गया है। इन विरुदों में वह कम से कम महामल्ल की सार्थकता अपनी सामरिक उपलब्धियों से नहीं सिद्ध कर सका। नन्दिवर्मन के राज्यकाल का अन्त 796 ई० के आस-पास अथवा इसके कुछ बाद में हुआ होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दन्तिवर्मन—नन्दिवर्मन द्वितीय के पश्चात् राष्ट्रकूट राजकुमारी शंखा से उत्पन्न उसका पुत्र दन्तिवर्मन 795-796 ई० में राजा हुआ। उसके शासनकाल में राष्ट्रकूटों, चोलों तथा पांड्यों की शक्ति में काफी वृद्धि हुई और पल्लवों का पतन प्रारम्भ हो गया था। उसके अभिलेख उसके शासन के दूसरे वर्ष से लेकर 51वें वर्ष तक के प्राप्त हुए हैं। 804 ई० के कुछ पहले राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने कांची पर आक्रमण किया और दन्तिवर्मन को पराजित कर, कर देने के लिए बाध्य कर दिया। यह युद्ध सम्भवतः दन्तिवर्मन द्वारा गोविन्द तृतीय के भाई स्तम्भ को दी गई सहायता के कारण हुआ था और इसके परिणामस्वरूप उसे कुछ समय के लिए राष्ट्रकूटों की अधिसत्ता स्वीकार करनी पड़ी[1]।

वर्गुण पांड्य ने भी दन्तिवर्मन पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर पल्लव साम्राज्य के दक्षिणी प्रदेशों को अधिकृत कर लिया जिनमें कावेरी की घाटी का बड़ा भू-भाग शामिल था। इससे पल्लव साम्राज्य की काफी क्षेत्रीय हानि हुई। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि दन्तिवर्मन के शासन के 16वें तथा 51वें वर्ष के बीच के अन्तराल में उसका कोई अभिलेख कावेरी नदी की घाटी में नहीं मिला है, जबकि इसी काल में पांड्य शासक मारंजडैयन के इस क्षेत्र में बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

दन्तिवर्मन के राज्यकाल के 21वें तथा 49वें वर्ष के बीच का कोई अभिलेख अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। इस आधार पर टी० वी० महालिंगम् ने अनुमान किया है कि इस अवधि में पल्लव राज्य पर किसी बाहरी शासक का प्रभुत्व रहा होगा। उनकी मान्यता है कि चोड श्रीकंठ ने दन्तिवर्मन को पराजित कर कदाचित् किसी नाबालिग पल्लव राजकुमार को कांची में अपने सामन्त के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। परन्तु बाद में दन्तिवर्मन ने अपने सुयोग्य पुत्र नन्दिवर्मन तृतीय की सहायता से पल्लव राजसिंहासन पुनः प्राप्त कर लिया। यह मत अनुमान पर ही आधारित है।

कदम्बों के अतिरिक्त बाण शासक विजयादित्यमावलिबाणरायर, दन्तिवर्मन का सामन्त था। दन्तिवर्मन ने कदम्ब वंशीय पृथ्वीपति की पुत्री अग्गलनिम्मटि के साथ विवाह किया। मद्रास के निकट त्रिपलीकेन नामक स्थान पर स्थित पार्थसारथि मन्दिर पर उत्कीर्ण अभिलेख में उसे पल्लवकुलभूषण के विरुद से विभूषित किया गया है और बतलाया गया है कि उसने इस देवालय का जीर्णो-

1. गोविन्द तृतीय के 810 ई० के मन्ने अभिलेख में दन्तिवर्मन को **समधिगत-पंचमहाशब्द** तथा **महासामन्ताधिपति** कहा गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्धार कराया था। उसने चिंगलेपुट जिले के आलम्बाक्कम् के कैलासनाथ मन्दिर का भी निर्माण कराया। उसके सामन्त मुत्तरैयर ने तिरुचिरापल्ली जिले के मलयडिपट्टि नामक स्थान पर एक गुफा-मन्दिर बनवाया था। दन्तिवर्मन के शासन के चौथे वर्ष में तिरुवेल्लरै में स्वस्तिक के आकार के एक कुंए का भी निर्माण कराया गया था। वेलूरपाल्यम् अभिलेख[1] में उसे तीनों लोकों का रक्षक, क्षमाशील, शौर्य, त्याग एवं कृतज्ञता आदि गुणों से युक्त तथा विष्णु का अवतार बतलाया गया है। दन्तिवर्मन ने कम से कम 51 वर्ष तक शासन किया और 846 ई० के आस-पास उसकी मृत्यु हुई।

नन्दिवर्मन तृतीय-दन्तिवर्मन का उत्तराधिकारी कदम्ब वंशीय रानी अग्गलनिम्मटि से उत्पन्न उसका पुत्र नन्दिवर्मन तृतीय पल्लव वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। तमिल काव्य नंदिक्कलम्बकम् का वही नायक है। इस ग्रन्थ में उसे तेल्लारु, वेल्लारु, कडम्बूर, वेन्नियलूर, तोंडी, पलैयारु तथा कुरुक्कोटै आदि के युद्धों का विजेता बतलाया गया है। वेलूरपाल्यम् अभिलेख के अनुसार उसने अपनी तलवार से शत्रुओं के अनेक हाथियों को मौत के घाट उतार दिया और उनके मस्तक से निकले मुक्ताओं से उसे सुशोभित किया था। इनमें तेल्लारु का युद्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। दन्तिवर्मन के राज्यकाल में पांड्यों ने पल्लव साम्राज्य के दक्षिणी प्रदेशों को अधिकृत कर लिया था। नन्दिवर्मन तृतीय ने तेल्लारु में सम्भवतः पांड्यों[2] से युद्ध किया था। नन्दिक्कलम्बकम् तथा कुछ पल्लव अभिलेखों के साक्ष्य के अनुसार उसने इस युद्ध में निर्णायक सफलता प्राप्त की और इसके उपलक्ष में तेल्लार्ररंडि का विरुद धारण किया[3]। नन्दिवर्मन ने पड्यारु, वेल्लारु, नेल्लारु तथा कुरुगोडु नामक स्थानों पर भी पांड्यों को पराजित किया और वैगई नदी तक उनका पीछा किया था। चूंकि इसका विवरण

---

1. त्रिलोकपरिर-(क्ष)तथः क्षमानन्दनः साक्षाद्यंकुरुहेक्षणस्स्वयमिह श्रीदन्तिवर्मा नृपः।
   शौर्यत्यागकृतज्ञ-तादिरमलो यस्मिन्गुणानांगणः॥
2. के० बी० सुब्रमण्यम के अनुसार, तेल्लारु में नन्दिवर्मन का राष्ट्रकूटों से युद्ध हुआ था और टी० वी० महालिंगम के अनुसार चोलों से, क्योंकि तोंडमंडलम् क्षेत्र उस समय चोलों के अधीन था।
3. के० आर० श्रीनिवासन के अनुसार तेल्लार्ररंडि नन्दिवर्मन चतुर्थ था और वही नन्दिक्कलम्बकम् काव्य का नायक था। परन्तु यह मत बहुमान्य नहीं है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके राज्यकाल के छठे वर्ष के वेल्लूरपाल्यम् अभिलेख में भी मिलता है, इसलिए यह संघर्ष इस तिथि के पहले किसी समय हुआ होगा।

पांड्यों के विरुद्ध विजय प्राप्त करने के परिणामस्वरूप न केवल कावेरी नदी की घाटी पर पल्लवों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया, वरन् सम्पूर्ण दक्षिण भारत में नन्दिवर्मन तृतीय की शक्ति की धाक जम गई थी। नन्दिक्कलम्बकम् में उसे कावेरी क्षेत्र, कोंगु प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों का अधिपति कहा गया है और कोंगन तथा शोणाडम् की उपाधियां दी गईं हैं। ये विरुद क्रमशः कोंगु एवं चोल राज्यों पर उसका प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं। उपर्युक्त साक्ष्यों में वर्णित अन्य युद्धों का ब्यौरा नहीं दिया गया है।

उसके राज्यकाल में ममलपुर (मद्रास) तथा मल्लै (महाबलीपुरम्) के नगर प्रसिद्ध हो गए थे। वह तमिल साहित्य का संरक्षक था और तमिल कवि पेरुन्देवनार को उसका संरक्षण प्राप्त था। पेरुन्देवनार ने भारतवेणवा नामक ग्रन्थ की रचना की थी। नन्दिक्कलम्बकम् में नन्दिवर्मन तृतीय को उग्रकोपन, वर्तुगन, आकुलकडर्पडै तथा अवनिनारणन (जिसके पास शक्तिशाली नौ सेना थी) आदि उपाधियां दी गईं हैं। उसने राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष प्रथम की पुत्री शंखा के साथ विवाह किया। थाइलैंड से प्राप्त एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उसके राज्यकाल में दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों से सामुद्रिक व्यापार बड़े पैमाने पर होता था। वह शिव का परम भक्त था। उसी के समय में उत्तरी अर्काट ज़िले में पल्लिकोंड में एक शिव-मन्दिर के मुखमंडप का निर्माण हुआ और दक्षिणी अर्काट ज़िले में किलियणूर नामक स्थान पर एक विष्णु-मन्दिर भी बनाया गया था। नन्दिवर्मन तृतीय ने 869 ई० के आस-पास तक राज्य किया।

नृपतुंग—नन्दिवर्मन तृतीय के तीन पुत्र थे—नृपतुंग, अपराजित तथा कम्पवर्मन। इनमें सबसे पहले राष्ट्रकूट राजकुमारी शंखा से उत्पन्न नृपतुंग राजा हुआ। बाहूर अभिलेख के अनुसार नृपतुंग ने पांड्य शासक (सम्भवतः श्रीमारपरचक्रकोलाहल) को अरिचित[1] नदी के तट पर कुम्भकोनम् के निकट पराजित किया था। डुब्रील महोदय के अनुसार यह युद्ध कुम्भकोनम् या कुडमुक्कु नामक स्थान पर हुआ था। परन्तु टी० वी० महालिंगम का अनुमान है

1. आर० सथियनथायर ने अरिचित का समीकरण कावेरी की सहायक नदी अरिशिन अथवा अरशलार से किया है। (Age of Imperial Kanauj, p. 15)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है कि अरिचित नदी के निकट नृपतुंग ने अपने मित्र पांड्य शासक वर्गुण द्वितीय की ओर से चोल विजयालय या आदित्य प्रथम को पराजित किया होगा। पांड्य अभिलेखों में भी बतलाया गया है कि परचक्रकोलाहल ने गंग, पल्लव, चोल तथा मगध राज्यों पर विजयें प्राप्त की थीं। असम्भव नहीं कि उसने नृपतुंग के विरुद्ध भी कुछ सफलता प्राप्त की हो।

तिरुचि एवं तंजावूर के मध्यवर्ती चोलों के शासित क्षेत्र में नृपतुंग के शासन के सातवें तथा 24 वर्ष के बीच के अन्तराल का कोई अभिलेख नहीं मिला है। इससे प्रतीत होता है कि इस दौरान में उदीयमान चोलों के कारण उपर्युक्त भू-भाग में पल्लवों का प्रभुत्व काफी शिथिल हो गया था और उनकी शक्ति मुख्यतः तोंडमंडलम् तक ही सीमित रह गई थी।

कालान्तर में नृपतुंग तथा उसके सौतेले भाई अपराजित के बीच वैमनस्य हो गया और वे आपस में शक्ति-संतुलन के लिए तैयारियां करने लगे। पाड्यों ने नृपतुंग का साथ दिया और चालों तथा पश्चिमी गंगों ने अपराजित का। श्रीपुरम्बियम नामक स्थान पर प्रतिद्वन्दी सेनाओं में मुठभेड़ हुई जिसमें गंग शासक पृथ्वीपति मारा गया, पांड्य पराजित हुए तथा अपराजित ने चोल आदित्य प्रथम की सहायता से नृपतुंग पर विजय प्राप्त कर पल्लव राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। कुछ विद्वानों के अनुसार यह युद्ध 880 ई० में और कुछ के अनुसार 895 ई० में हुआ था। इसकी तिथि जो भी रही हो, यह संघर्ष तत्कालीन दक्षिण भारत की राजनीति में दिशापरिवर्तक सिद्ध हुआ और इसके परिणामस्वरूप गंगों तथा पांड्यों को काफी क्षति पहुंची, पल्लवों की दुर्बल स्थिति सुस्पष्ट हो गई और चोलों की शक्ति में काफी वृद्धि हुई। इस पराजय के पश्चात् नृपतुंग के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। नृपतुंग के शासन के 26वें तथा 41वें वर्ष के बीच की अवधि का कोई अभिलेख तोंडमडलम् एवं चोलमंडलम् में नहीं मिला है। इस अन्तराल में सम्भवतः अपराजित ने राज्य किया होगा।

नृपतुंग साहित्य एवं कला का संरक्षक था। बाहूर अभिलेख के अनुसार अपने शासन के 8वें वर्ष में उसने बाहूर में एक वैदिक विद्यालय को तीन ग्राम **विद्याभोग** तथा **ब्रह्मदेय** के रूप में दान में दिए थे। इस अभिलेख में प्रयुक्त **चतुर्दशगण** शब्द का अर्थ 14 विद्याएं या 14 विषय माना गया है। इनमें चार वेद, छः वेदांग, मीमांशा,, धर्मशास्त्र, पुराण, तथा न्याय शामिल रहे होंगे। इन विषयों का उपर्युक्त विद्यालय में अध्ययन-अध्यापन होता था। उसकी रानी ने उक्कल के भुवननिमाणिक्क विष्णु-मन्दिर का निर्माण कराया। इसके अंत-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रिक्त **नार्तामलै** शिव-मन्दिर में उसके राज्यकाल में कुछ शैलकृत स्मारकों का भी निर्माण किया गया था। नृपतुंग ने कम से कम 41 वर्ष[1] तक राज्य किया।

अपराजित–895 ई० के लगभग सम्भवतः अपराजित पल्लव राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ और उसने कम से कम 18 वर्ष तक शासन किया। 890 ई० या इसके कुछ बाद तक आदित्य चोल अपराजित का सामन्त एवं सहायक बना रहा, किन्तु बाद में उसकी महत्वाकांक्षा का बढ़ना स्वाभाविक था। उसने तोंड-मंडलम् क्षेत्र को अधिकृत कर लिया। आदित्य के शासन के 21 वें वर्ष के बाद के कई अभिलेख तोंडमंडलम् में प्राप्त हुए हैं। परिणामस्वरूप पल्लव राज्य की सीमाएँ काफी संकुचित हो गईं। परन्तु बाण राजवंश के शासक पल्लवों का आधिपत्य मानते रहे। राजेन्द्र चोल के तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार आदित्य चोल ने अपराजित को पराजित कर दिया था और वीरराजेन्द्र के कन्या-कुमारी अभिलेख के अनुसार उसने अपराजित का युद्ध में वध कर दिया था। कुछ विद्वानों ने इस घटना को 893 ई० और कुछ ने 903 ई० के आस-पास रखा है।

अपराजित पल्लव वंश का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक था। उसके राज्य-काल में तिरुत्तनि नामक स्थान पर वीरट्टानेश्वर के मन्दिर का निर्माण हुआ। इस देवालय पर उत्कीर्ण अभिलेख में अपराजित को एक कविता का रचयिता भी बतलाया गया है।

नन्दिवर्मन चतुर्थ तथा कम्पवर्मन–इन राजाओं के विषय में बहुत कम सूचना मिलती है। वे महत्वहीन शासक थे। कुछ विद्वानों ने नन्दिवर्मन तृतीय के स्थान पर नन्दिवर्मन चतुर्थ को तेल्लारु के युद्ध का विजेता माना है, किन्तु यह मत सन्दिग्ध प्रमाणों पर आधारित होने के कारण बहुमान्य नहीं है। नन्दिवर्मन चतुर्थ ने 904 से 926 ई० तक शासन किया। करंडै अभिलेख के विवरण से प्रतीत होता है कि कम्पवर्मन के राज्यकाल का अधिकांश भाग चोलों से युद्ध करने में बीता और चोल परान्तक ने सम्पूर्ण पल्लव राज्य पर अधिकार कर लिया था। मेलपट्टि अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि कम्पवर्मन ने कुछ समय तक सम्भवतः अपने भाइयों के साथ संयुक्त रूप से शासन किया था और इन भाइयों में प्रायः परस्पर संघर्ष भी हुए। कम्पवर्मन के अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से प्रमाणित होता है कि तोंड-

---

1. मद्रवलम् अभिलेख इसके शासन के 41 वें वर्ष का है।

CC-0. UP State Museum, Prayagraj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मंडलम् के अतिरिक्त नेल्लोर, चित्तूर एवं उत्तरी अर्काट ज़िलों के कुछ भागों पर उसका प्रभुत्व था[1]। कम्पवर्मन ने सम्भवत: 980 ई० तक राज्य किया। वह पल्लव वंश का अन्तिम ज्ञात शासक है। इसके बाद भी पल्लवों की शक्ति का पूर्णतया विनाश नहीं हुआ और कई शताब्दियों तक वे काडव के नाम से शासन करते रहे। परन्तु उनका राजनैतिक महत्व काफी कम हो गया था और वे अधीनस्थ शासक हो गए थे।

साम्राज्यवादी पल्लवों का वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम

महेन्द्रवर्मन प्रथम (लगभग 600–630 ई०)
नरसिंहवर्मन प्रथम (630–668 ई०)
महेन्द्रवर्मन द्वितीय (668–670 ई०)
परमेश्वरवर्मन प्रथम (670–695 ई०)
नरसिंहवर्मन द्वितीय (695–722 ई०)
परमेश्वरवर्मन द्वितीय (722–730 ई०)
नन्दिवर्मन द्वितीय (730–796 ई०)
दन्तिवर्मन (796–846 ई०)
नन्दिवर्मन तृतीय (846–869 ई०)
नृपतुंगवर्मन
अपराजित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

1. Kanchipuram through the Ages, p. 53.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

20

चोल राजवंश

संगम युग में तमिल देश की राजनीति में चोलों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इसके बाद चौथी शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर लगभ 550 ई० तक सुदूर दक्षिण में कलभ्रों का प्रभुत्व रहा। तदुपरान्त पल्लवों एवं पांड्यों का अभ्युदय हुआ और वे दक्षिण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली राजवंश हो गए। लगभग 300 से 850 ई० तक के अन्तराल का चोलों का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नही है। इस दौरान में उदीयमान चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, पांड्यों एवं पल्लवों ने उन्हें अनेक बार पराजित किया था और चोल, सामन्त के रूप में उरैयूर तथा इसके निकटवर्ती कावेरी की घाटी के क्षेत्र में शासन करते रहे। अपने अधिपति पल्लवों के पतनोन्मुख होने पर विजयालय चोल को शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला।

विजयालय—नवीं शताब्दी के मध्य के लगभग उरैयूर (कावेरी नदी के तट पर स्थित) के निकटवर्ती क्षेत्र में विजयालय चोल का अभ्युदय हुआ। वह पल्लवों का सामन्त था। उसने पांड्यों के सामन्त मुत्तरैयर से तंजोर अपहृत कर लिया[1] और वहां दुर्गा के एक मन्दिर का निर्माण कराया। तिरुनेडुंगलम् (तिरुचिरापल्ली ज़िले में) के एक अभिलेख में विजयालय द्वारा दिए गए भूमिदान का उल्लेख है। हुल्ट्श महोदय के अनुसार कांची तथा शचीन्द्रम् से प्राप्त परकेसरि नामक शासक के अभिलेख वास्तव में विजयालय के ही हैं। पांड्यों तथा पल्लवों की पतनावस्था का लाभ उठाकर उसने उत्तरी एवं दक्षिणी वेल्लार नदियों के बीच के प्रदेश के अतिरिक्त कावेरी नदी की घाटी तथा कोलेरुन तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। विजयालय ने तंजोर को राजधानी

1. तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों में काव्यात्मक भाषा में वर्णित है कि विजयालय ने तंजोर नगरी को इस प्रकार अधिकृत कर लिया मानो वह उसकी नव-विवाहिता पत्नी हो।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बनाया[1] और लगभग 871 ई० तक शासन किया।

आदित्य प्रथम––विजयालय का पुत्र आदित्य प्रथम 871 ई० में राजा हुआ। वह भी पल्लवों का सामन्त था और अपराजित की ओर से श्रीपुरम्बियम् के युद्ध में पांड्य शासक वरगुण द्वितीय से लड़ा था। इस युद्ध में प्राप्त सफलता से प्रसन्न होकर अपराजित ने आदित्य को कुछ क्षेत्र प्रदान किए, परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् आदित्य प्रथम की महत्वाकांक्षा बढ़ी। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार उसने अपराजित को पराजित कर मार डाला तथा उसके राज्य को अधिकृत कर लिया था[2]। कन्याकुमारी अभिलेख में उसे कोदंडराम की उपाधि दी गई है। यह युद्ध 893 ई०[3] के आस-पास हुआ था। इस विजय के परिणामस्वरूप आदित्य तोंडमंडलम् का अधिपति हो गया था।

कोंगुदेशराजाक्कलचरितम् के अनुसार आदित्य ने तंजोर में अपना अभिषेक किया। इसके पश्चात् उसने कोंगु (सलेम तथा कोयम्बटूर ज़िले) को अधिकृत किया[4]। इस युद्ध में आदित्य के मित्र चेर शासक स्थाणुरवि ने भी सम्भवतः उसकी सहायता की थी। पश्चिमी गंगों को पराजित कर उसने तलकाड प्रदेश को अधिकृत किया और गंग पृथ्वीपति द्वितीय पर भी अपनी अधिसत्ता स्थापित की।

इन विजयों के परिणामस्वरूप आदित्य प्रथम का राज्य कालहस्ति तथा तिरुक्कलुक्कुनृम से लेकर पुदुकोट्टै तथा कोयम्बटूर तक विस्तृत हो गया था। इसमें तोंडमंडलम् और तलकाड प्रदेश भी शामिल थे। उसकी रानियों में से एक पल्लव राजकुमारी थी। उसकी अग्रमहिषी इलंगोनपिच्चि राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय की पुत्री थी।

आदित्य प्रथम शिव का भक्त था। अन्विल ताम्रपत्रों से हमें ज्ञात होता है कि उसने कावेरी नदी के दोनों तटों पर प्रस्तरों के विशाल शिव-मन्दिर बनवाए जिनसे सह्यपर्वत से लेकर समुद्रपर्यंत भू-भाग सुशोभित हो गया था। 907ई०

---

1. इसके पहले चोलों की राजधानी उरैयूर थी।
2. पराजितमप्यसौ रणे जितवान पल्लवमुल्लसत् बलम्।
   दयितामपि तस्य मेदिनीं स्ववशीकृत्य (त)थाप्य भूतकृती।
3. नीलकांत शास्त्री के अनुसार यह युद्ध 890 ई० में हुआ था।
4. कोंगु राज्य में आदित्य प्रथम के अभिलेख मिले हैं और उसके एक अधिकारी द्वारा इस प्रदेश के मन्दिरों का प्रबन्ध करने का भी उल्लेख हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में चित्तूर ज़िले में कालहस्ति के निकट तौंडैमानाड नामक स्थान पर आदित्य की मृत्यु हुई थी। वहां उसके पुत्र परान्तक प्रथम ने उसकी यादगार में कोदंडरामेश्वर तथा आदित्येश्वर नामक मन्दिरों का निर्माण कराया। आदित्य प्रथम के दो पुत्र थे-परान्तक प्रथम और कन्नरदेव।

परान्तक प्रथम--आदित्य प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी परान्तक प्रथम 907 ई० में चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। उसका छोटा भाई कन्नरदेव राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय की पुत्री का पुत्र था। अतः कृष्ण, परान्तक को अपदस्थ कर कन्नरदेव को राजा बनाना चाहता था। इसलिए कृष्ण तथा उसके सामन्त बाणों ने परान्तक से युद्ध किया। परन्तु 910-11 ई० के आस-पास चोल शासक ने तिरुवल्लम् नामक स्थान पर दोनों को परास्त कर दिया। वीरराजेन्द्र के कन्याकुमारी अभिलेख का कथन है कि अजेय कृष्णराज पर विजय प्राप्त कर परान्तक ने वीरचोल नाम धारण किया था।

परान्तक के प्रमुख प्रतिद्वन्दी पांड्य थे। राज्यारोहण के कुछ ही समय बाद उसने पांड्य शासक राजसिंह द्वितीय को पराजित कर मदुरा पर अधिकार कर लिया और मदुरान्तक की उपाधि धारण की। शासन के तीसरे वर्ष में उसने अपने को मदुरैकोंड के विरुद से विभूषित किया। गंग शासक पृथ्वीपति के 921-22 ई० के उदयेन्दिरम् ताम्रपत्रों के अनुसार परान्तक की विजय-वाहिनी ने पांड्यों की सेना के बहुत से पदातियों, अश्वों तथा हाथियों का विनाश कर दिया था।

महावंश के अनुसार, प्रथम युद्ध में चोलों द्वारा पराजित होने के पश्चात् राजसिंह द्वितीय ने सिंहल के राजा कस्सप पचम से सहायता मांगी जिसके उत्तर मे कस्सप ने सक्क के नेतृत्व में नावों द्वारा अपनी एक सेना भेज दी। 915 ई० के लगभग मदुरा के दक्षिण-पश्चिम में स्थित वेल्लूर नामक स्थान पर पाड्यों तथा चोलों में संघर्ष हुआ जिसमे परान्तक ने राजसिंह तथा कस्सप की सम्मिलित सेनाओं को पराजित कर सग्रामराघव की उपाधि धारण की। महावंश में वर्णित है कि महामारी के फैलने के कारण पांड्य सेना का काफी विनाश हुआ और कस्सप ने अपनी सेना वापस बुला ली।

इस पराजय के उपरान्त राजसिंह पुनः श्रीलंका गया। वहां उस समय दप्पुल चतुर्थ शासन कर रहा था। दप्पुल ने उसे सहायता देने का वादा किया, किन्तु बाद में किन्ही कारणों से वह उसकी मदद नहीं कर सका और राजसिंह को अपना राजमुकुट तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को छोड़कर श्रीलका से भागना पड़ा। इसके बाद उसने केरल के राजा के यहां शरण ली। महावंश का यह

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवरण अस्पष्ट एवं अपूर्ण है। इसमें न तो यह बतलाया गया है कि दप्पुल ने उसे क्यों सहायता नहीं दी और न ही राजसिंह के सिंहल से भागने का कारण।

920 ई० के आसपास परान्तक ने मदुरा पर तीसरा आक्रमण किया और राजसिंह को पराजित कर उसे उसके राज्य से बाहर निकाल दिया। 923 ई०के परान्तक के एक अभिलेख में उसे **मदुरैयुमइलमुम्कोंड** (मदुरा तथा श्रीलंका को जीतने वाला) की उपाधि दी गई है। परान्तक ने मदुरा में अपना अभिषेक कराने तथा उस अवसर पर पांड्यों के राजकीय चिह्न एवं राजसिंह का राज-मुकुट धारण करने का निश्चिय किया। पांड्य शासक का राजमुकुट आदि लाने के लिए उसने अपनी सेना सिंहल भेजी, परन्तु सिंहल के राजा उदय चतुर्थ ने चोल सेना को पराजित कर दिया। यह घटना परान्तक के शासन के अन्तिम भाग की है।

बाण[1] शासक ने परान्तक के विरुद्ध युद्ध में राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय का साथ दिया था, इसलिए उसने 915 ई० के लगभग इस सामन्त राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस अभियान में परान्तक के मित्र एवं सामन्त गंग पृथ्वीपति द्वितीय ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। बाण राजा बुरी तरह पराजित हुआ और पृथ्वीपति से प्रसन्न होकर चोल शासक ने उसे बाणाधिराज, हस्तिमल्ल तथा शेम्बियनमावलिबाणरायन की उपाधियों से विभूषित किया। परान्तक ने बाणों के मित्र रेणांड के वैदुम्बों के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की और पल्लवों की शेष शक्ति को समाप्त कर दिया।

उपर्युक्त विजयों के परिणामस्वरूप परान्तक का राज्य उत्तर में पेण्णार से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत हो गया था। परन्तु उसके शासन के अन्तिम वर्षों में राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने चोलों पर आक्रमण कर तोंडमंडलम् पर अधिकार कर लिया। 949 ई० में उसने पश्चिमी गंग शासक बूतुग द्वितीय की सहायता से तक्कोलम् में परान्तक को परास्त कर दिया। इस युद्ध में बूतुग ने चोल राजकुमार राजादित्य को मार दिया था। इस निर्णायक पराजय से चोलों की बढ़ती हुई शक्ति को भारी धक्का पहुंचा और तोंडमंडलम् तथा मदुरा को राष्ट्रकूटों ने अधिकृत कर लिया।

पश्चिमी गंग, केरल तथा कोडुम्बालूर के शासक, परान्तक के मित्र थे।

---

1. बाण, पेरुम्बाणप्पाडि (पालार के उत्तर में पुंगनूर तथा कालहस्ति के बीच का क्षेत्र) के शासक थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके अभिलेखों में उसकी 11 रानियों के नाम वर्णित हैं। उसके 5 पुत्र थे– राजादित्य, गंडरादित्य, अरिकुलकेशरि, उत्तमशीलि तथा अरिंजय। युद्धों में व्यस्त रहने के बावजूद परान्तक ने प्रशासन-व्यवस्था की ओर काफी ध्यान दिया और कृषि की पैदावार बढ़ाने के लिए नहरों आदि का निर्माण कराया।

परान्तक शिव का उपासक था। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों में उसे 'शिव के चरण-कमलों का भ्रमर' कहा गया है और बतलाया गया है कि उसने पुरारि (शिव) के लिए दभ्रसभा का निर्माण कराया था[1]। लीडन (Lyden) ताम्र-पत्रों के अनुसार उसने चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर को सोने से मढ़वाकर आकर्षक बना दिया था। उसने परकेशरिवर्मन्, शूरशूलामणि, वीरनारायण, कुंजरमल्ल, देवेन्द्रचक्रवर्ति तथा पंडितवत्सल आदि विरुद धारण किए। ये उपाधियां उसके शौर्य एवं विद्यानुराग की सूचक हैं। परान्तक का अन्तिम ज्ञात अभिलेख उसके राज्यकाल के 48 वें वर्ष का है। उसके शासन का अन्त 953 तथा 956 ई० के बीच किसी समय हुआ।

गंडरादित्य––परान्तक प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र गंडरादित्य 953 तथा 956 ई० के मध्य राजा हुआ। उसके शासन के दूसरे वर्ष के एक अभिलेख में दक्षिणी अर्काट जिले के पहाड़ी क्षेत्र के उसके एक सामन्त ने वीरचोलम् में अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। इन शत्रुओं के नाम वर्णित नहीं है। के०ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का सामन्त मिलाड शासक नरसिंहवर्मन रहा होगा। गंडरादित्य की रानी शेम्बियनमहादेवी दानशील महिला थी और मन्दिर निर्माण में उसकी अभिरुचि थी।

अरिंजै–गंडरादित्य के बाद उसके भाई अरिंजै ने शासन की बागडोर सम्भाली। परन्तु अल्पकाल के शासन के बाद ही आर्रूर नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। राजराज प्रथम के एक शिलालेख में वर्णित है कि उसने आर्रूर में मृत्यु को प्राप्त हुए राजा की यादगार में मेलपाडि नामक स्थान पर एक मन्दिर का निर्माण कराया था। इस आधार पर आर्रूर को मेलपाडि के निकट स्थित माना जा सकता है। अरिंजै की मृत्यु के बाद उसकी दो रानियां—कुम्बोमन कुन्दवैयार तथा कोदईपेरात्तियार जीवित रहीं।

सुन्दर चोल (परान्तक द्वितीय)––अरिंजै की मृत्यु के पश्चात् वैदुम्ब राज-कुमारी कल्याणी से उत्पन्न उसका पुत्र सुन्दर चोल (परान्तक द्वितीय) 957 ई०

1. पुरारेरकृत स दभ्रसभाभिधानमोकः (श्लोक 53)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में राजा हुआ। उसके राज्यकाल में वीरपांड्य के नेतृत्व में पांड्यों ने विद्रोह कर दिया। श्रीलंका के राजा ने भी वीरपांड्य की सहायता की। किन्तु सुन्दर-चोल ने दोनों की सम्मिलित सेनाओं को चेवूर नामक स्थान पर पराजित कर दिया और वीरपांड्य ने भागकर सह्य की पहाड़ियों में शरण ली। पांड्यों पर विजय प्राप्त करने के बाद परान्तक ने श्रीलंका पर आक्रमण किया। इस अभियान का ब्योरा नहीं दिया गया है।

परान्तक ने राष्ट्रकूटों से तोंडमंडलम् प्रदेश वापस ले लिया और वर्तमान दक्षिणी अर्काट, उत्तरी अर्काट एवं चिंगलेपुट ज़िलों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन क्षेत्रों में कृष्ण तृतीय के अभिलेखों की अपेक्षा चोल अभिलेख अधिक संख्या में मिले हैं। परान्तक के सामरिक अभियानों में कोडुम्बालूर के उसके मित्र शासक ने बहुत सक्रिय सहयोग दिया था। सुन्दरचोल ने तमिल तथा संस्कृत भाषाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया। प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ वीरशोलियम् की टीका उसी के राज्यकाल में लिखी गई। इसमें सुन्दरचोल को नन्दिपुर का राजा कहा गया है।

सुन्दरचोल की रानी वानवनमहादेवी, उसकी मृत्यु के पश्चात् कांची में सती हो गई थी और उसकी पुत्री कुन्दबै ने सम्भवतः अपनी जननी की एक प्रतिमा स्थापित की। सुन्दरचोल ने 973 ई० तक शासन किया। उसकी मृत्यु के कुछ ही समय पहले उसके पुत्र आदित्य द्वितीय का उत्तमचोल ने वध कर दिया था।

राजराज प्रथम—सुन्दरचोल परान्तक द्वितीय के पश्चात् वानवनमहादेवी से उत्पन्न उसका पुत्र राजराज प्रथम 985 ई०में चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। अपने पिता के राज्यकाल में ही वह युवराज नियुक्त कर दिया गया था, इसलिए उसे सैन्य-संचालन तथा प्रशासन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो गया था। वह इस वंश का प्रथम महान शासक एवं महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने उत्तराधिकार में प्राप्त एक छोटे राज्य को विशाल साम्राज्य बना दिया था। अधिकृत प्रदेशों में अपनी सत्ता एवं प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के पश्चात् उसने साम्राज्यवादी नीति का क्रियान्वन प्रारम्भ किया।

विजयें—राजराज के शासन के 29 वें वर्ष के तंजोर अभिलेख की **प्रस्तावना** में उसके सामरिक अभियानों का वर्णन इस प्रकार है—'वह कान्दलूर (त्रिवेन्द्रम) में जहाजों को नष्ट करके प्रसन्न हुआ और उसने वेंगनाडु, तडिगैपाडि, गंगापाडि, नोलंबापाडि, कुडमलै, ऐरत्तपाडि, कलिंग तथा ईलमंडलम्

CC-0. UP State Museum Collection, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(श्रीलंका) के ऐश्वर्य को नष्ट किया[1]। इन विजयों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया गया है--

1. **केरल तथा पांड्य राज्यों पर आक्रमण**--राजराज ने सर्वप्रथम केरल राज्य पर आक्रमण किया और वहां के शासक भास्कररविवर्मन को त्रिवेन्द्रम (कांडलूर) में पराजित कर कांडलूरशालैककलमरुत्त[2] की उपाधि धारण की। यह युद्ध 989 ई० के बाद और 992 ई० के पूर्व किसी समय हुआ था[3]।

इसके पश्चात् उसने पांड्य राज्य को आक्रान्त किया। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार उसने पांड्यों की राजधानी मदुरा को जीता, पांड्य शासक अमरभुजंग को पराजित कर बन्दी बना लिया और ऊंची प्राचीर एवं समुद्र की दुर्लंघ्य परिखा से रक्षित विलिन्द के दुर्ग को अधिकृत कर लिया था। राजराज के शासन के आठवें वर्ष के बाद के अभिलेख पांड्य राज्य में प्राप्त हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि उसने 992 ई० के पूर्व किसी समय पांड्यों पर विजय प्राप्त की होगी। राजराज के शासन के 20 वें वर्ष के एक अभिलेख की प्रस्तावना के अनुसार उसने मदुरा नगर को नष्ट किया और कोल्लम् तथा कोंडुगोलूर के राजाओं को पराजित किया था। कुछ विद्वानों के अनुसार राजराज ने एक ही अभियान में उपर्युक्त दोनों राज्यों पर विजय प्राप्त की थी और कुछ के अनुसार दो पृथक आक्रमणों में। नीलकान्त शास्त्री की धारणा है कि जिस युद्ध में राजराज ने चेरों तथा पांड्यों को मलयनाडु (कुर्ग) में पराजित करने का दावा किया है, वह उस युद्ध से भिन्न तथा बाद का है जिसमें उसने कान्दलूर तथा विलिन्द के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। इसके पश्चात् राजराज के कुडमलैनाडु को आक्रान्त कर उदगै के दुर्ग को अधिकृत कर लिया। कोल्लम् (कुइलन) को उसने पृथक आक्रमण में जीता था।

सिंहल पर आक्रमण--सिंहल के शासक महेन्द्र पंचम ने राजराज के विरुद्ध

---

1. एक अभिलेख में बतलाया गया है कि कांडलूर की विजय के पूर्व राजराज ने विलिनम् को नष्ट किया था।
2. यह उपाधि उसके शासन के चौथे वर्ष तथा इसके बाद के अभिलेखों में वर्णित है। परन्तु केरल राज्य में राजराज के राजत्व के आठवें वर्ष के पहले का कोई शिलालेख नहीं मिला है।
3. इस विजय का विवरण राजराज के शासन के चौथे वर्ष के बाद के अभिलेखों में मिलता है और केरल में उसके शासन के आठवें वर्ष के बाद के अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

केरल के राजा भास्कररविवर्मन का साथ दिया था, इसलिए वह चोल सम्राट का शत्रु बन गया। 981 ई० के आस-पास महेन्द्र पंचम को राजसिंहासन से अपदस्थ कर दिया गया था और उसे रोहण प्रदेश में शरण लेनी पड़ी। इसी राजनैतिक संकट के दौरान में राजराज ने श्रीलंका पर आक्रमण कर दिया। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार उसकी बलशाली नौ सेना ने जहाजों द्वारा समुद्र को पार किया और श्रीलंका के शासक की शक्ति को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। इस अभियान में चोलों को पूर्ण सफलता मिली और उत्तरी सिंहल उनके साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया। उत्तरी सिंहल के इस विजित प्रदेश का नाम मामुंडीशोलमंडलम् रखा गया। राजराज ने पोलोन्नरुवा को राजधानी बनाया और बाद में उसका नाम जननाथमंगलम्[1] रखा। इस नगर को चोलों ने मन्दिरों तथा अन्य स्मारकों द्वारा वैभवशाली बनाया था। राजराज के कुछ अभिलेख श्रीलंका में प्राप्त हुए हैं। 993 ई० के तिरुमगल अभिलेख की **प्रस्तावना** में ईलम् (श्रीलंका) की गणना राजराज द्वारा पराजित राज्यों में की गई है। तालिकुमारम नामक एक चोल पदाधिकारी ने महातित्थ (मन्तोत) में राजराजेश्वर नाम के मन्दिर का निर्माण कराया और उस स्थान का नाम राजराजपुर रखा। राजराज ने अपने शासन के 19 वें वर्ष में तंजोर के शिव-मन्दिर को श्रीलंका के अनेक ग्राम दान में दिए थे। परन्तु महावंश में राजराज के सिंहल अभियान का उल्लेख नहीं है।

पश्चिमी गंगों से युद्ध--990 ई० के लगभग राजराज ने गंगवाड़ी, नोलम्बवाड़ी तथा तडिगैपाडि के शासकों पर विजय प्राप्त की। ये पश्चिमी गंग राज्य के प्रान्त थे। शक संवत् 913 (990-91 ई०) का चोलनारायण (राजराज प्रथम) के शासन के छठे वर्ष का एक अभिलेख कर्नाटक से प्राप्त हुआ है और उसकी नोलम्बों तथा गंगों के विरुद्ध विजय का सबसे पहले उल्लेख उसके शासन के आठवें तथा नवें वर्षों के अभिलेखों में मिलता है। 1117 ई० तक इन प्रदेशों पर चोलों का प्रभुत्व सुरक्षित रहा।

पश्चिमी चालुक्यों से युद्ध--कल्याणी के चालुक्यों से चोलों का संघर्ष तैलप द्वितीय के राज्यकाल में प्रारम्भ हो गया था। 992 ई० के एक अभिलेख में तैलप

---

1. राजराज प्रथम की अनेक उपाधियों में से एक उपाधि **जननाथ** भी थी।
2. राजेन्द्र चोल के राज्यकाल के एक अभिलेख में यह भी वर्णित है कि राजराज ने मान्यखेट नगर को अधिकृत करने का निश्चय किया था जिसे वास्तव में उसने ही पूरा किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने दावा किया है कि उसने चोल सम्राट पर विजय प्राप्त कर उसकी सेना के 150 हाथी अपहृत कर लिए थे। उसके उत्तराधिकारी सत्याश्रय के राज्यकाल में चोल-चालुक्य संघर्ष अधिक उग्र हो गया था। 1003 ई० तथा इसके बाद के राजराज के अभिलेखों में बतलाया गया है कि उसने रट्टपाडि साढ़ेसात लाख को अधिकृत कर लिया था। इस कथन में अतिशयोक्ति है, क्योंकि सम्पूर्ण रट्टपाडि प्रदेश में उसकी अधिसत्ता का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार राजराज की सागर के समान अजेय सेना से भयभीत होकर चालुक्य सम्राट युद्ध-स्थल से भाग गया और सत्याश्रय के स्थान पर वह कष्टाश्रय बन गया था। करंडै ताम्रपत्रों का कथन है कि चोल सेना के हाथियों ने तुंगभद्रा नदी के तट पर विनाशलीला का दृश्य उपस्थित कर दिया और राजराज ने चालुक्य सेनापति केशव को बन्दी बना लिया था। 1007 ई० के सत्याश्रय के राज्यकाल के होट्टूर (धारवाड़ ज़िले में) के एक अभिलेख में भी बतलाया गया है कि राजराज का सुयोग्य पुत्र राजेन्द्र नौ लाख की विशाल सेना के साथ वर्तमान बीजापुर ज़िले के दोनूर नामक स्थान तक पहुंच गया था। उसने उस समस्त प्रदेश को लूटा; बच्चों, ब्राह्मणों तथा स्त्रियों आदि की निर्मम हत्या की और लड़कियों के साथ बलात्कार किया। परन्तु बाद में सत्याश्रय ने अपनी शक्ति को पुनः संगठित कर चोल सेना को पीछे खदेड़ दिया था। चालुक्य सम्राट को चोलों के विरुद्ध किस सीमा तक सफलता प्राप्त हुई, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। परन्तु चोलों का प्रभुत्व उत्तर में तुंगभद्रा नदी तक के भू-भाग में स्थापित हो गया था और गंगों तथा नोलम्बों द्वारा शासित कर्नाटक के प्रदेश चोल साम्राज्य के अंग बन गए थे।

पूर्वी चालुक्यों से सम्बन्ध—राजराज ने वेंगी के चालुक्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए। उस समय गृह-युद्ध, पश्चिमी चालुक्यों से शत्रुता तथा राष्ट्रकूटों की पतनावस्था के कारण वेंगी के चालुक्यों की स्थिति दुर्बल हो गई थी। इस विषम परिस्थिति में राजराज ने उन्हें अपना मित्र बनाकर सक्रिय सहायता प्रदान की। 999 ई० के कुछ समय पहले उसने शक्तिवर्मन को वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। शक्तिवर्मन के भाई भीम प्रथम ने कल्याणी के चालुक्य शासक सत्याश्रय से मित्रता की और उसकी सहायता से शक्तिवर्मन को अपदस्थ कर दिया। राजराज ने पुनः शक्तिवर्मन को राजा बना दिया, परन्तु भीम ने उसे पराजित कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। राजराज ने इस बार भी शक्तिवर्मन की सहायता की और उसे वेंगी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। किन्तु भीम प्रथम शान्त नहीं बैठा और उसने वेंगी पर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तीसरा आक्रमण किया जिसमें उसे कुछ अस्थाई सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार पूर्वी चालुक्यों के गृह-युद्धों के कारण वेंगी, चोलों का अधीनस्थ एवं संरक्षित राज्य बन गया था। वेंगी के चालुक्यों से अपने सम्बन्धों को स्थाई एवं सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से राजराज ने शक्तिवर्मन प्रथम के भाई विमलादित्य के साथ अपनी पुत्री कुन्दवा का विवाह कर दिया। वेंगी की विजय के पश्चात् इस चोल सम्राट ने कलिंग राज्य को जीता।

मालदिव द्वीप पर आक्रमण—उपर्युक्त विजयों के परिणामस्वरूप राजराज लगभग सम्पूर्ण दक्षिण भारत पर अधिपति हो गया था। इसके उपरान्त उसकी शक्तिशाली नौ सेना ने मालदिव पर आक्रमण कर उसे भी जीत लिया। इस अभियान का विस्तृत ब्योरा नहीं दिया गया है।

अन्य उपलब्धियां—राजराज का राज्यकाल सामरिक उपलब्धियों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा। उसके पास बहुत शक्तिशाली जल-सेना थी जिसकी सहायता से उसने उत्तरी सिंहल तथा मालदिव को जीतकर वहां अपनी प्रभुसत्ता तथा भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठित किया। युद्धों में निरन्तर व्यस्त रहने के बावजूद उसने प्रशासन तथा जन-कल्याण के कार्यों की ओर काफी ध्यान दिया। 1000 ई० के आस-पास उसने समस्त कृषि-योग्य भूमि का सर्वेक्षण कराया और सिंचाई के लिए समुचित व्यवस्था की। 1012 ई० में उसने अपने सुयोग्य पुत्र राजेन्द्र को युवराज नियुक्त कर उसे प्रशासन का उत्तरदयित्व दे दिया। उसने कला को भी पर्याप्त प्रश्रय एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। वह शिव का भक्त था। उसने तंजोर में अत्यधिक वैभवशाली शिव-मन्दिर का निर्माण कराया और उसका नाम अपने नाम पर राजराजेश्वर रखा। यह देवालय द्रविड़ मन्दिर वास्तु शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। उसने शिवपादशेखर का विरुद भी धारण किया था। राजराज में धार्मिक सहिष्णुता थी। उसके शिलालेखों में विष्णु के मन्दिरों के निर्माण का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उसके कुछ सिक्कों पर विष्णुपद चिह्न एवं कृष्ण-मुरलीधर की आकृति अंकित है[1]। उसने शैलेन्द्र-सम्राट मारविजयोत्तुंगवर्मन को नेगपटिनम में चूड़ामणि नामक बौद्ध-विहार का निर्माण कराने में भी सहयोग दिया था। लीडन ताम्रपत्रों के अनुसार राजराज ने अपने शासन के 21 वें वर्ष में इस विहार को आनेमंगलम् का ग्राम दान में दिया था। गंडरादित्य की रानी तथा उत्तमचोल की जननी शेम्बियनमहादेवी के नाम पर उसने तिरुमुक्कूडल में एक मंडप का निर्माण कराया तथा मेलपाडि में चोलेश्वर (अरिंज-

1. JNSI, Vol. XIV, 1952, p. 169.

CC-0. JEV State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गैश्वर) के मन्दिर की नींव डाली थी। शासन के अन्तिम दिनों में उसने गंग तथा वेंगी राज्यों में अपना एक महादंडनायक पंचवनमहाराय नियुक्त कर दिया था। राजराज के अभिलेखों में उसकी 15 रानियों के नाम मिलते हैं। इनमें से दन्तशक्तिविन्टकि (लोकमहादेवी) राजराज के शासन के 29 वें वर्ष में तिरुविषलूर में हिरण्यगर्भदान सम्पन्न किया था। वानवनमहादेवी (त्रिभुवनमहादेवी) राजेन्द्र चोल की जननी थी।

राजराज प्रथम ने कई प्रकार के सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के चलाए। इनके मुख भाग पर प्रायः खड़े हुए राजा का चित्र है और पृष्ठ भाग पर वह बैठा हुआ दिखलाया गया है। उसका नाम श्रीराजराज लिखा है। श्रीलंका में राजराज के सोने एवं तांबे के सिक्के मिले हैं। तांबे के सिक्कों पर **राजराज लंकेश्वर** देवनागरी लिपि से अंकित है।

राजराज ने रविकुलमाणिक्य, केरलान्तक, तेलिंगकुलकाल, पांड्यकुलाशनि, मुम्मडिचोलदेव, सिंगलान्तक, जयनगोंड एवं चोलनित्यविनोद आदि उपाधियां धारण कीं। उसने 1014 ई० तक शासन किया।

राजेन्द्र चोल–राजराज प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका सुयोग्य पुत्र राजेन्द्र प्रथम 1014 ई० में चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। वह 1012 ई० में ही औपचारिक रूप से युवराज नियुक्त कर दिया गया था और शासन की बागडोर सम्भालने के पूर्व उसने सैन्य-संचालन तथा प्रशासन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। पश्चिमी चालुक्यों, पांड्यों तथा श्रीलंका के विरुद्ध भेजी गई चोल सेनाओं का युवराज राजेन्द्र ने ही नेतृत्व किया था। राजराज ने जिस महान चोल साम्राज्य का निर्माण किया था, राजेन्द्र ने उसे और अधिक विवर्धित कर तत्कालीन भारतीय राजनीति में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं वैभवशाली बना दिया था। राजनैतिक प्रभुसत्ता के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति एवं कला को भी उसने सिंहल तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रतिष्ठित किया। 1018 ई० में उसने अपने पुत्र राजाधिराज को युवराज नियुक्त कर दिया था।

शासन के प्रारम्भिक वर्षों में राजेन्द्र ने रायचूर दोआब, बनवासी, हैदराबाद के दक्षिण का क्षेत्र तथा मान्यखेट एवं रट्टपाडि पर अधिकार कर लिया था। ये समस्त प्रदेश कल्याणी के चालुक्य शासक सत्याश्रय के राज्य में शामिल थे। राजेन्द्र ने युवराज की हैसियत से भी इन्हें जीता था। सम्भव है कि उसी समय की उनकी इन विजयों की पुनरावृत्ति बाद के चोल अभिलेखों में की गई हो, अथवा राजा होने के बाद उसने इन राज्यों पर पुनः विजय प्राप्त की होगी। 1018 ई० में उसने केरल राज्य पर आक्रमण किया और वहां के राजा को

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

परास्त कर उसका राजमुकुट तथा सम्पत्ति आदि अपहृत कर ली।

इसी वर्ष अथवा इसके आस-पास राजेन्द्र ने पांड्य राज्य के विरुद्ध दंडनाथ नामक सेनापति के नेतृत्व में एक सेना भेजी थी। पांड्य शासक भयभीत होकर भाग गया और उसने मलय पर्वत पर अगस्त्य ऋषि के आश्रम में शरण ली। 1018-19 ई० में राजेन्द्र ने अपने पुत्र को मदुरा का गवर्नर नियुक्त किया और बाद में केरल राज्य को भी उसी के अधीन कर दिया। इस चोल सम्राट ने मदुरा में एक राजप्रासाद का भी निर्माण कराया था। केरल तथा पांड्य राज्यों पर राजराज प्रथम ने भी विजय प्राप्त की थी। राजेन्द्र चोल के राज्यकाल में इन राज्यों ने या तो स्वतन्त्रता घोषित करने का प्रयास किया होगा, अथवा राजेन्द्र ने उनकी शक्ति को नष्ट करने के उद्देश्य से उन पर दूसरा आक्रमण किया।

1018 ई० में राजेन्द्र ने श्रीलंका पर आक्रमण किया[1]। महावंश के अनुसार यह हमला महिन्द्र पंचम के शासन के 36वें वर्ष में हुआ था। इस अभियान में चोलों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। राजेन्द्र ने दावा किया है कि उसने सिंहल के राजाओं तथा उनकी रानियों के राजमुकुट अपहृत करने के अतिरिक्त पांड्य शासक (राजसिंह द्वितीय) द्वारा सिंहल में छोड़े गए राजमुकुट आदि को भी छीन लिया और सम्पूर्ण ईलमंडल (श्रीलंका) चोल साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया था और श्रीलंका के राजा ने पराजित होने के बाद अपनी पत्नी, पुत्र एवं सम्पत्ति आदि खोकर राजेन्द्र चोल के यहां शरण ली। महिन्द 12 वर्ष तक चोल राज्य में रहा। इसके पश्चात् 1029 ई० के लगभग उसकी मृत्यु हो गई।

चोल सेना ने श्रीलंका के बौद्ध-विहारों को भी ध्वस्त किया और पुलत्थिनगर को आधार बनाकर रक्खपाषाणकंठ नामक स्थान तक राजरट्ठ पर शासन किया। करंडै तथा अन्य चोल अभिलेखों में भी इस आक्रमण का विस्तृत विवरण है। इन साक्ष्यों से हमें ज्ञात होता है कि श्रीलंका चोल साम्राज्य का प्रान्त बन गया था और वहां चोलों ने शिव तथा विष्णु के अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। पोलोन्नरुवा के निकट चोल-शैली में निर्मित शिव तथा विष्णु के कई पाषाण मन्दिर हैं जिनका निर्माण राजराज तथा राजेन्द्र चोल के शासन काल में हुआ होगा।

महावंश में यह भी वर्णित है कि राजेन्द्र चोल के आक्रमण के 12 वर्ष के बाद श्रीलंका के राजा महेन्द्र पंचम के पुत्र कस्सप ने छः महीने तक तमिलों

1. राजेन्द्र चोल के शासन के पांचवें वर्ष के कुछ अभिलेखों में उसकी श्रीलंका विजय का उल्लेख हुआ है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से संघर्ष किया और रोहण क्षेत्र को चोल अधिसत्ता से मुक्त कर दिया। रोहण में विक्रमबाहु प्रथम ने 12 वर्ष (1029-1041 ई०) तक राज्य किया।

पूर्वी भारत की विजय—तमिल **प्रशस्ति** के अनुसार राजेन्द्र चोल ने विक्रम चोल के नेतृत्व में पूर्वी भारत की विजय के लिए अपनी सेना भेजी। मार्ग में आने वाली अनेक नदियों आदि को हाथियों द्वारा पार कर विक्रम चोल ने पहले उड़ीसा, बस्तर, इन्द्ररथ तथा दक्षिणी कोशल को जीता। इसके पश्चात् उसने क्रमशः दंडभुक्ति के धर्मपाल, दक्षिणी राढ के रणशूर और बंगाल के गोविन्दचन्द्र को पराजित किया। तदुपरान्त उत्तरी राढ के महीपाल पर विजय प्राप्त कर चोल सेना गंगा नदी तक पहुंच गई थी। परन्तु तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार गंगा को पृथ्वी पर अवतरित करने वाले भगीरथ का उपहास करते हुए राजेन्द्र चोल ने अपने साम्राज्य को गंगाजल से पवित्र करने का निश्चय किया[1] और इस नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में शासन करने वाले राजाओं को पराजित कर गंगाजल लाने के लिए विक्रम चोल को भेजा था। इन ताम्रपत्रों में पहले रणशूर की पराजय का उल्लेख है और बाद में महीपाल की। नीलकान्त शास्त्री ने तमिल **प्रशस्ति** के विवरण को अधिक प्रामाणिक माना है। दंडभुक्ति सम्भवतः उड़ीसा एवं बंगाल के मध्य में स्थित था। धर्मपाल और गोविन्दचन्द्र स्थानीय शासक प्रतीत होते हैं। नीलकान्त शास्त्री का अनुमान है कि धर्मपाल बंगाल के पाल नृपति महीपाल का सम्बन्धी रहा होगा।

राजेन्द्र चोल की पूर्वी भारत की विजय के उद्देश्य के विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। वी० वेंकैय्या की अवधारणा है कि यह अभियान एक तीर्थयात्रा के समान था, जो गंगाजल लाने के लिए भेजा गया था। परन्तु यह अत्यधिक असम्भावित है। केवल गंगाजल लाने के लिए इतनी विशाल वाहिनी भेजने का कोई औचित्य नहीं था। आर० डी० बनर्जी के अनुसार चोलों की इस विजय के कुछ स्थाई परिणाम भी हुए। उनका अनुमान है कि कोई अल्पज्ञात कर्नाट प्रमुख पश्चिमी बंगाल में बस गया था और उसी का वंशज सामन्तसेन कालान्तर में बंगाल के सेन राजवंश का संस्थापक हुआ। त्रिलोचनशिवाचार्य की सिद्धान्त-सारावली की एक टीका में बतलाया गया है कि राजेन्द्र चोल गंगा के तट से अपने साथ कुछ शैव-ब्राह्मणों को लाया था और उन्हें उसने कांचीपुर में बसा दिया था।

---

1. तपः प्रभावादवतीर्ण-गंग भगीरथ (म्)ब (ा)हुबलाद्हसन् सः।
गंगाजलैः पारयितुं स्वकीयांयेष पृथ्वीं रविवंश दीपः। श्लोक 109

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इन मतों में से कोई भी ग्राह्य नहीं है क्योंकि उपर्युक्त अभिलेखों में स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि राजेन्द्र चोल ने पूर्वी भारत में अपने प्रभुत्व की धाक जमाने तथा वहां से गंगाजल लाने के उद्देश्य से अपनी विशाल सेना भेजी थी। इस अभियान की सफल परिसमाप्ति पर उसने गंगैकोंड की उपाधि धारण की, चोलगंग नामक तालाब में गंगाजल से एक द्रव-स्तम्भ बनवाया[1] और गंगैकोंडचोलपुरम् नगर का निर्माण कराकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यह नवनिर्मित नगर चिरुचिरापल्ली जिले में चिदम्बरम् के निकट स्थित था। इन तथ्यों से प्रमाणित होता है कि राजेन्द्र चोल ने इस आक्रमण की सफलता को काफी महत्व दिया था।

वेंगी राज्य में हस्तक्षेप—चोल तथा कल्याणी के चालुक्य, दोनों ही वेंगी की राजनीति में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप कर रहे थे और उस पर अपनी अधिसत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। वेंगी के शासक विमलादित्य के चोल राजकुमारी कुंदवै[2] से उत्पन्न पुत्र राजराजनरेन्द्र के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने के उद्देश्य से कल्याणी के चालुक्य जयसिंह ने उसके सौतेले भाई विष्णुवर्धन विजयादित्य सप्तम् को समर्थन एवं सहायता दी। राजराजनरेन्द्र ने इस विषम परिस्थिति में अपने मामा राजेन्द्र चोल से सहायता मांगी और चोल सम्राट ने विक्रम चोल के नेतृत्व में अपनी सेना भेज दी। एक तिथि रहित शिलालेख के अनुसार विक्रम चोल के आने का समाचार सुनकर विष्णुवर्धन भाग गया था। जयसिंह तथा उसके द्वारा समर्थित विजयादित्य को पराजित करने के पश्चात् चोल सेनापति ने नालमडिभीम, चोलनचक्र, सामन्ताभरण, वीरभूषण, जयसिंहकुलकाल एवं एदिर्त्तवर्कालिन (तमिल के विरोधियों के लिए काल) आदि उपाधियां धारण कीं। राजेन्द्र चोल ने राजराजनरेन्द्र का अभिषेक कराया और उसके साथ अपनी पुत्री अमंगादेवी का विवाह कर दिया।

पश्चिमी चालुक्यों से युद्ध—चालुक्य जयसिंह द्वितीय अपने खोए हुए प्रदेशों को चोलों से वापस लेने के लिए सक्रिय रूप से प्रयत्नशील था। 1019 ई० के बेलगांवे अभिलेख में उसे चोलों तथा चेरों का विजेता बतलाया

---

1. चोलगंगमिति ख्याता प्रथितन्निजमंडले।
गंगाजलमयन्देवो जयस्तम्भं व्यधत्त सः (तिरुवालंगाडु ताम्रपत्र, श्लोक 124)।
2. जी० कुप्पुरम् के अनुसार उसने गंगों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में यह विरुद धारण किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गया है। इसकी पुष्टि बेल्लारी तथा मैसूर के उत्तर-पश्चिम में लगभग इसी तिथि के जयसिंह के शिलालेखों की उपस्थिति से भी हो जाती है। 1021 तथा 1022 ई० में राजेन्द्र चोल का कल्याणी के चालुक्यों से पुनः संघर्ष प्रारम्भ हुआ। 1021 ई० के एक अभिलेख के अनुसार उसने मुशंगि (सम्भवतः रायचूर दोआब में स्थित मास्की) के युद्ध में जयसिंह द्वितीय को पराजित कर उसके साढ़े सात लाख के कोष को हस्तगत कर लिया और रट्टपाडि पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। तिरुवालंगाडु अभिलेख में इस चोल सम्राट को 'तैलवंश का एक मात्र उन्मूलक' कहा गया है। परन्तु बाद में जयसिंह ने चोलों को पराजित कर गंगवाडी तथा चेर राज्य तक उनका पीछा किया। तुंगभद्रा के क्षेत्र में चालुक्यों का आधिपत्य बना रहा और यह नदी चोल तथा पश्चिमी चालुक्य राज्यों की विभाजक रेखा बन गई थी।

जयसिंह द्वितीय के उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम के राज्यकाल में भी चोलों और चालुक्यों में भयंकर युद्ध हुए। चालुक्य सेना का मुकाबला करने के लिए राजेन्द्र चोल ने अपने पुत्र युवराज राजाधिराज को वेंगी भेजा। राजाधिराज ने कृष्णा नदी के तट पर स्थित पुंडि नामक स्थान पर हुए युद्ध में सोमेश्वर को पराजित कर दिया। इसके पश्चात् उसने चालुक्य राजधानी कल्याणी को ध्वस्त किया और वहां से एक द्वारपालक की मूर्ति को अपने साथ लाया। यह प्रतिमा तन्जोर जिले के दारापुरम् नामक स्थान पर विद्यमान है।

राजेन्द्र चोल के शासन के अन्तिम वर्षों में (1042 ई० के बाद) उसका सोमेश्वर से पुनः शक्ति-संतुलन हुआ। चोल सेना का नेतृत्व राजाधिराज ने किया था। चोल अभिलेखों के अनुसार धन्नाड (धान्यकटक) के युद्ध में चोलों की विजय हुई, गंगाधर तथा गंडप्प आदि चालुक्य सेनापति मारे गए और विक्कि (विक्रमादित्य चतुर्थ) एवं विजयादित्य सप्तम् को कायरों की भांति पीछे हटना पड़ा। चोलों ने पराजित चालुक्य सेना के बहुत से हाथियों, घोड़ों तथा सम्पत्ति को अपहृत कर लिया और कोल्लिप्पाक्कै (कुलपक) नगर को भस्मसात कर दिया। परन्तु वेंगी तथा तुंगभद्रा क्षेत्र में पश्चिमी चालुक्यों का आधिपत्य स्थापित हो गया था, क्योंकि इन क्षेत्रों से सोमेश्वर प्रथम के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। 1044 ई० में सोमेश्वर के सामन्त शोभनरस ने वेंगीपुरवरेश्वर की उपाधि धारण की थी।

किन्हीं कारणों से वेंगी का शासक राजराज, राजेन्द्र चोल से अपनी मित्रता समाप्त कर सोमेश्वर प्रथम से मिल गया था। पश्चिमी तथा पूर्वी चालुक्यों की मित्रता ने चोल, वेंगी की राजनीति को अधिक प्रभावित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करने की स्थिति में नहीं रह गए थे।

कडारम आदि पर आक्रमण—राजेन्द्र चोल के कडारम के विरुद्ध अभियान का सर्वप्रथम विवरण उसके शासन के 14वें वर्ष के शिलालेखों में मिलता है। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार उसने अपनी शक्तिशाली (नौ) सेना द्वारा समुद्र को पार कर कटाह को जीता था[1]। तमिल **प्रशस्ति** में इस आक्रमण के विषय में बतलाया गया है कि राजेन्द्र चोल ने अपनी नौसेना के बहुसंख्यक जलपोतों द्वारा कडारम के शासक संग्रामविजयोत्तुंगवर्मन की सेना के हाथियों को अपहृत कर उसके राजकोष को भी छीन लिया था। उसे श्रीविजय (सुमात्रा में स्थित प्लेमबंग), पण्णै (सुमात्रा के पूर्वी तट पर स्थित पनि या पनेड्), मलययूर (सम्भवतः श्रीविजय और पण्णै के बीच का क्षेत्र), मायुरुडिगम् (मलय प्रायद्वीप में लिंगोर के निकट), इलंगाशोकम् (केडह राज्य के दक्षिण में स्थित), मेविलिवंगम् (इसकी पहचान निश्चितरूप से नहीं की जा सकी है), वलैप्पन्दूरु (इसका भी समीकरण नहीं किया जा सका है), तलैत्तक्कोलम् (तक्कोल), मादमालिंगम् (मलय प्रायद्वीप में सम्भवतः बन्दन की खाड़ी के निकट अथवा क्वांटन नदी के मुहाने पर स्थित तेमिलिंग), इलामुरिदेशम् (उत्तरी सुमात्रा में लमरी, जिसे अरब लेखकों ने लमुरी तथा मार्कोपोलो ने लम्बरी कहा है), माणक्कवारम् (निकोवार द्वीपसमूह) तथा कडारम (पेनगं के निकट स्थित केडह जो कलिंगत्तुपराणि के अनुसार समुद्र की लहरों से प्रक्षालित रहता था) की विजयों का श्रेय दिया गया है। राजेन्द्र के शासन के आठवें वर्ष के करंडै ताम्रपत्रों के अनुसार कम्बोज (कम्बोडिया) के राजा ने अपनी राजलक्ष्मी की रक्षा के लिए रथ भेजकर राजेन्द्र चोल से मित्रता की याचना की थी।

के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार राजेन्द्र चोल ने कडारम तथा उपर्युक्त अन्य राज्यों पर एक ही अभियान में विजयें प्राप्त की होंगी। कोयेडस (Coedes) का अनुमान है कि उक्त आक्रमण के सन्दर्भ में वर्णित विभिन्न देश एवं राज्य या तो कडारम के शासक के अधीन थे अथवा कडारम राज्य के ही विभिन्न नगर या प्रान्त थे। कडारम भारत तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के सामुद्रिक मार्ग पर स्थित बहुत महत्वपूर्ण पत्तन तथा व्यापारिक केन्द्र था।

इस आक्रमण के कारण के सम्बन्ध में रमेशचन्द्र मजुमदार तथा नीलकान्त

1. अवजित्य कटाहमुन्नतैर्निजदंडैरभिलंघितार्णवः (तिरुवालंगाडु ताम्रपत्र, श्लोक 123)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शास्त्री का अनुमान है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ चोलों के व्यापार में श्रीविजय के राजा ने या तो विघ्न उपस्थित किया होगा अथवा राजेन्द्र ने अपने प्रभुत्व को इन देशों में स्थापित करने के उद्देश्य से यह अभियान किया होगा। के० आर० हाल के अनुसार, चोलों के चीन के साथ व्यापार में श्रीविजय साम्राज्य बहुत महत्वपूर्ण कड़ी था, अतएव राजेन्द्र चोल ने उस पर विजय प्राप्त की[1] के० जी० कृष्णन के अनुसार कम्बुज के शासक ने भेंट आदि भेजकर चोल सम्राट को अपना मित्र बना लिया था और जब श्रीविजय के राजा की साम्राज्यवादी नीति ने कम्बुज के लिए खतरा उत्पन्न किया, तो उसकी सुरक्षा के लिए ही राजेन्द्र ने सम्भवतः अपनी सेना भेजी होगी। परन्तु इस प्रकार की परिस्थिति की कम सम्भावना प्रतीत होती है।

केरल, मदुरा तथा सिंहल में विद्रोह–राजेन्द्र चोल की सामरिक सफलताओं के परिणामस्वरुप चोल साम्राज्य अत्यधिक विशाल हो गया था और सभी विजित राज्यों पर कड़ा नियंत्रण रखना बहुत कठिन था। इसलिए उसके शासन के अन्तिम वर्षों में कई राज्यों में विद्रोह हुए। केरल तथा पांड्य राज्यों के विद्रोहों एवं उनके दमन का विवरण संक्षेप मे इस प्रकार है।

तीन मित्र राजाओं (पांड्यो) मे से मानाभरण का युद्ध में सिर काट लिया गया; वीरकेरलन् को पकड़ लिया गया; सुन्दर पांड्य को मल्लैयूर की ओर खदेड़ दिया गया; वेणाड़ के राजा को मौत के घाट उतार दिया गया; विल्लवन (चेर) भयभीत होकर जंगल में छिप गया और चोलों ने कान्दलूरशालै में उसके अनेक जहाजों को समुद्र में नष्ट कर दिया। विद्रोही पांड्य तथा केरल राज्यों पर हुए उक्त चोल आक्रमण की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। सम्भवतः दोनों राज्यों के शासकों ने मिलकर सुन्दर पांड्य के नेतृत्व में चोलों से असफल युद्ध किया होगा।

राजाधिराज के शासन के प्रारम्भिक वर्षों के कुछ शिलालेखों में बतलाया गया है कि कान्दलूरशालै पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चोलों ने सिंहल को आक्रान्त किया और वहां के राजा को परास्त कर उसका सिर काट लिया। वास्तव में 1029 ई० में ही चोलों द्वारा शासित श्रीलका के क्षेत्र में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया था जो कि निरन्तर तीव्र होता गया और राजेन्द्र चोल को इसे दबाने में केवल अस्थाई एवं आंशिक सफलता मिली।

1. Trade and Stratecraft in the Age of the Colas (1980) p. 170.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सामरिक अभियानों के साथ-साथ राजेन्द्र चोल ने प्रशासन-व्यवस्था, सैन्य-संगठन तथा आर्थिक सुधारों पर भी ध्यान दिया। अपनी नवीन राजधानी गंगैकोंडचोलपुरम् को उसने भव्य भवनों एवं मन्दिरों आदि के अलंकृत कराया और सिंचाई के लिए लगभग 25 कि०मी० लम्बाई वाले एक तालाब का निर्माण कराया। वैदिक साहित्य एवं शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करने के उद्देश्य से उसने एक वैदिक विद्यालय स्थापित किया। दक्षिणी अर्काट जिले से प्राप्त 1025 ई० के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि इस विद्यालय में 340 छात्र तथा 14 अध्यापक थे। इसमें वेद, व्याकरण तथा न्याय का अध्ययन-अध्यापन होता था। अध्यापकों के जीवन-निर्वाह के लिए नकद धनराशि के अतिरिक्त उन्हें प्रतिदिन चावल भी दिए जाते थे और एक निश्चित समय पर नियमित वेतन मिलता था। यह उल्लेखनीय है कि वेदान्त का आचार्य निःशुल्क शिक्षा देता था। विद्यालय के खर्चे के लिए 45 वेलि् भूमि दी गई थी।

राजेन्द्र चोल ने कई प्रकार के सिक्के जारी किए। उसके चांदी के कुछ सिक्कों के मुख भाग पर चोलों के राजकीय चिह्न सिंह के साथ पांड्यों तथा चेरों के राजकीय चिह्न क्रमशः मत्स्य तथा धनुष चित्रित हैं। राजेन्द्र के फनम् नामक सिक्कों पर उसे **युद्धमल्ल** की उपाधि दी गई है। अन्य कई सोने तथा चांदी के सिक्कों पर उसका प्रिय विरुद **गंगैकोंडचोल** अंकित है। ये सिक्के उसने पूर्वी भारत के सफल अभियान के उपलक्ष में चलाए थे।

राजेन्द्र चोल ने मुडिगोंडचोल, पंडितचोल, गंगैकोंडचोल, वीरराजेन्द, परकेशरिवर्मन तथा कडारकोंड आदि नाम एवं उपाधियां धारण कीं। उसकी रानियों में बानवनमहादेवियार, पंचवनमादेवियार, वीरमादेवी तथा मुक्कोक्किलन् आदि के नाम वर्णित हैं। उसकी पुत्री अरुमोलिनंगैयार ने राजाधिराज के शासन के प्रारम्भ में तिरुमलवाडि के मन्दिर को मोतियों का एक छत्र भेंट किया था। राजेन्द्रचोल का अन्तिम तिथि युक्त अभिलेख उसके राज्यकाल के 33 वें वर्ष का है। उसने 1044 ई० तक शासन किया।

राजाधिराज–राजेन्द्र चोल की मृत्यु के पश्चात् उसका सबसे ज्येष्ठ पुत्र[1] राजाधिराज 1044 ई० में राजा हुआ। वह 1018 ई० में ही युवराज नियुक्त कर दिया गया था, इसलिए उसे अपने पिता के शासनकाल में लगभग 25-26 वर्ष तक सैन्य-संचालन एवं प्रशासन का अनुभव प्राप्त करने के लिए पर्याप्त

1. वीरराजेन्द्र के कन्याकुमारी अभिलेख के अनुसार राजेन्द्र चोल के तीन पुत्रों में राजाधिराज सबसे ज्येष्ठ था।

CC-0. State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

समय मिला था। राजाधिराज एक कुशल सेनानायक तथा उत्साही लड़ाकू था और उसने कई सामरिक अभियानों का युवराज तथा स्वतन्त्र शासक की हैसियत से सफल नेतृत्व किया था।

राजाधिराज के राज्यकाल में भी चोलों एवं चालुक्यों में संघर्ष जारी रहा। शासन के प्रारम्भिक भाग में ही (1044 तथा 1046 ई० के बीच) उसका कल्याणी के शासक सोमेश्वर प्रथम से युद्ध हुआ। 1046 ई० के मणिमंगलम् अभिलेख के अनुसार राजाधिराज ने अनेक चालुक्य सेनायकों को युद्ध में परास्त किया तथा कम्पिलि नगर में स्थित चालुक्य राजप्रासाद को ध्वस्त कर दिया था। राजाधिराज के शासन के 13वें वर्ष तथा इसके बाद के अभिलेखों में कम्पिलि के राजप्रासाद के विनाश के बाद की घटनाओं का विवरण इस प्रकार है–पूंडूर के युद्ध में चोलों ने बड़ी संख्या में स्त्रियों तथा तेलिगबिच्चय के भाई, उसकी माता तथा सोमेश्वर के अधीनस्थ अनेक तेलुगू शासकों को बन्दी बना लिया और पूंडूर नगर का भूमिसात कर उसे गधों द्वारा जुतवाया था। इसके पश्चात् मण्णादयै के चालुक्य राजप्रासाद को भस्मसात कर वहां चोलों ने एक विजय-स्तम्भ का निर्माण कराया और उस पर सिंह का चिह्न अंकित कराया। उपर्युक्त समस्त घटनाए 1048 ई० के पहले घटी थीं।

चोल अभिलेखों में यह भी वर्णित है कि जब सोमेश्वर प्रथम ने सन्धि के लिए राजाधिराज के पास अपने दूत भेजे, तो चोल शासक ने उनके साथ बहुत अपमानजनक व्यवहार किया और उनके शरीर पर लिखवा दिया कि 'आहवमल्ल भयभीत होकर युद्ध के मैदान से भाग गया।' एक दूत को स्त्रियों के वस्त्र पहना दिए गए, दूसरे का शीश मुंडित किया गया और उनके नाम दयनीय 'आहव-मल्लि' एवं 'आहवमल्ल' रख दिए गए। चालुक्य राजधानी कल्याणी को लूटकर राजाधिराज ने वहा अपना वीराभिषेक कराया और विजयराजेन्द्र का विरुद धारण किया। चोल सम्राट कल्याणी से एक द्वारपालक की मूर्ति भी अपने साथ ले गया था। यह मूर्ति अब तंजोर जिले में दारासुरम् नामक स्थान पर विद्यमान है और इस पर अंकित लेख इस प्रकार है–

स्वस्तिश्रीउडैयार श्रीविजयराजेन्द्र-देवर-
कल्याणपुरम्···कोडुंवदतुबारपालकर।
(उडैयार श्रीविजयराजेन्द्रदेव के द्वारा कल्याणपुर को जलाने के बाद लाया गया द्वारपाल)।

परन्तु चोलों की इन विजयों का चालुक्य राज्य में कोई स्थाई प्रभाव नहीं रहा। सोमेश्वर प्रथम के शिला लेखों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तुंगभद्रा तक के क्षेत्र पर उसका प्रभुत्व बना रहा। सोमेश्वर के राज्यकाल का 1047 ई० का एक अभिलेख बेल्लारी ज़िले से प्राप्त हुआ है और 1053 ई० के मूलगुंड अभिलेख के अनुसार बेलवोल तथा पुलिगेरे में शासन करने वाले सोमेश्वर के एक पुत्र ने वेंगीपुरवरेश्वर की उपाधि धारण की थी। सोमेश्वर का 1055 ई० का एक अभिलेख द्राक्षारामम् से भी प्राप्त हुआ है।

1055 ई० के मणिमंगलम् अभिलेख के अनुसार राजाधिराज ने रट्टमंडल पर अधिकार कर इसे तहस-नहस कर दिया था। चोल सेना का मुकाबला करने के लिए सोमेश्वर भी आगे बढ़ा और कोप्पम्[1] नामक स्थान पर उसका चोलों से तुमुल युद्ध हुआ। हाथी पर सवार राजाधिराज अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। चालुक्यों ने उसे ही अपना लक्ष्य बनाया और उसके हाथी को चारो ओर से घेरकर उस पर प्रहार किए। राजाधिराज युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु से चोल सेना में भगदड़ मच गई। परन्तु राजाधिराज के छोटे भाई राजेन्द्रदेव ने (जो कि इस युद्ध में भाग ले रहा था) लौटती हुई चोल सेना को रोका और उसका नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। 'हाथी पर सवार होकर उसने यमराम की भांति भयकर युद्ध किया और चालुक्यों को परास्त कर पीछे खदेड़ दिया।' सोमेश्वर की सेना द्वारा युद्ध-स्थल पर छोड़े गए बहुत से हाथी, घोड़े, ऊट तथा राजकीय-चिह्न चोलों को प्राप्त हुए। राजेन्द्र ने युद्ध-भूमि में अपना अभिषेक कराया और इसके बाद वहां से वापस चला गया।

श्रीलंका में, विशेषरूप से रोहण क्षेत्र में, 1029 ई० में ही चोल प्रभुसत्ता के के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ हो गया था जो परवर्ती काल में तीव्र होता गया। राजाधिराज ने युवराज की हैसियत से सिंहल के विद्रोह का दमन किया था और राजा होने के बाद भी उसे सिंहल के राजाओं से काफी संघर्ष करना पड़ा। चोल अभिलेखों के अनुसार विशाल चोल सेना ने श्रीलंका के शासक विक्रमबाहु का राजमुकुट उतार लिया; विक्रम पांड्य राजाधिराज से भयभीत होकर दक्षिणी तमिल देश को खोकर ईलम (श्रीलंका) चला गया; वीरशलामेघन रणभूमि में पराजित होकर अपना हाथी छोड़कर भाग गया; चोल शासक ने उसकी पत्नी तथा बहिन को पकड़ लिया और उसकी जननी की नाक काट ली। वीरशलामेघन के

---

1. फ्लीट् ने कोप्पम् की पहचान कोल्हापुर से लगभग 50 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित खिद्रपुर नामक स्थान से की है। नीलकान्त शास्त्री इसे रायचूर जिले में मास्की के निकट स्थित कोपबाल मानते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिए यह अपमानजनक घटनाएं असहनीय हो गईं थीं। वह चोलों से लड़ने के लिए पुनः रण-भूमि में पहुंचा और युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके बाद श्रीवल्लवन् श्रीलंका का राजा हुआ।

महावंश में भी वर्णित है कि सिंहल के शासक कस्सप तथा उसके मित्रों ने 95,000 सैनिकों की शक्तिशाली सेना के साथ चोलों से छः महीने तक संघर्ष किया। उन्होंने बहुत से दमिलों (तमिलों) को मार दिया तथा शेष को वापस लौटने अथवा पुलत्थि नगर में बस जाने के लिए बाध्य कर दिया था। इसके पश्चात् विक्रमबाहु की उपाधि धारण कर कस्सप श्रीलंका द्वीप के रोहण प्रदेश में शासन करने लगा।

राजाधिराज के शिलालेखों में श्रीलंका के निम्नलिखित चार राजाओं की पराजय का वर्णन है—विक्रमबाहु, विक्रमपांड्य, वीरशलामेघन तथा श्रीवल्लभ। परन्तु महावंश में केवल प्रथम दो के ही नाम वर्णित हैं। रोहण में चोल अधिसत्ता के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व राजकुमार कित्ति ने किया था। कित्ति ने 1050 ई० में विजयबाहु की उपाधि धारण की। इन संघर्षों के बावजूद राजाधिराज का श्रीलंका पर प्रभुत्व बना रहा और उसके अभिलेख एवं मुद्राएं सिंहल में प्राप्त हुई हैं।

राजाधिराज के राज्यकाल में चोल अधिसत्ता तुंगभद्रा से लेकर सिंहल तक और केरल से गंगा तक के विस्तृत भू-भाग में कायम रही। उसके चांदी के सिक्कों का एक ढेर उत्तरी कनारा ज़िले के समुद्रतटवर्ती क्षेत्र में प्राप्त हुआ है। इनके आधार पर जी० कुप्पुरम का अनुमान है कि राजाधिराज ने इस भू-भाग पर आक्रमण किया होगा[1]। उसने अश्वमेध यज्ञ भी किया और वीरराजेन्द्रवर्मन, आहवमल्लकुलान्तक, कल्याणपुरमगोंडशोलम् तथा आनैमेरुंजिन् (हाथी की पीठ पर मृत्यु को प्राप्त होने वाला राजा) आदि नाम एवं उपाधियां धारण कीं। उसका अन्तिम ज्ञात अभिलेख उसके शासन के 36वें वर्ष का है। 1054 ई० में उसके शासन का अन्त हुआ।

राजेन्द्र द्वितीय—राजाधिराज के बाद 1054-55 ई० में उसका छोटा भाई राजेन्द्र द्वितीय चोल राजसिंहासन पर बैठा। राजेन्द्र द्वितीय के अभिलेखों के अनुसार उसका राज्याभिषेक 28 मई, 1052 ई० में ही हो गया था। इस प्रकार वह राजाधिराज के राज्य के अन्तिम वर्षों में प्रशासन से सम्बन्ध कर लिया गया था।

---

1. JNSI, Vol. XLV, pp. 169 ff.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासन के प्रारम्भिक वर्षों में राजेन्द्र ने अपने अनेक निकट सम्बन्धियों[1] को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर उनका सहयोग प्राप्त किया। उसके राज्यकाल में भी चोलों का पश्चिमी चालुक्यों से संघर्ष चलता रहा। सेनानायक बालादेव के नेतृत्व में सोमेश्वर प्रथम की सेना ने चोल साम्राज्य को आक्रान्त किया, परन्तु कृष्णा तथा तुंगभद्रा के संगम के निकट चालुक्य पराजित हुए।

राजेन्द्र द्वितीय की किलानडिगल नामक एक रानी का उल्लेख मिलता है। उसने अपनी पुत्री मधुरान्तकी का विवाह वेंगी के चालुक्य शासक राजेन्द्र द्वितीय (कुलोत्तुंग प्रथम) के साथ किया था। उसके सामन्तों में मिलाड नरसिंहवर्मन महत्वपूर्ण था और सेनापतियों में अरैयन, कडक्कन, गोंडशोलन एवं जयमूरिनाडाल्वान के नाम ज्ञात हुए हैं। राजेन्द्र द्वितीय का अन्तिम तिथि युक्त अभिलेख उसके शासन के 12वें वर्ष (लगभग 1063 ई०) का है। इस प्रकार उसने कम से कम 12 वर्ष तक राज्य किया।

वीरराजेन्द्र—राजेन्द्र द्वितीय के जीवनकाल में ही उसके पुत्र युवराज राजमहेन्द्र की मृत्यु हो गई थी। इसलिए राजेन्द्र के बाद उसका छोटा भाई वीरराजेन्द्र प्रथम 1062-63 ई० में राजा हुआ। उसके समक्ष दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याएं थीं—पश्चिमी चालुक्यों के बढ़ाव को रोकना तथा वेंगी की राजनीति में हस्तक्षेप कर इसे अपने प्रभुत्व में रखना। वह महत्वाकांक्षी शासक था और उसने न केवल इन दोनों कार्यों में सफलता प्राप्त की, वरन् कई अन्य राज्यों पर भी अधिसत्ता कायम रखी।

पश्चिमी चालुक्यों से युद्ध—वीरराजेन्द्र के अभिलेखों के अनुसार उसने पांच बार पश्चिमी चालुक्यों पर विजय प्राप्त की और तीन युद्धों में सोमेश्वर आहवमल्ल की पीठ देखी थी, अर्थात् उसे पराजित किया था। इनमें से एक भयंकर संग्राम में चोलों ने सात चालुक्य सेनानायकों के अतिरिक्त, गंगों, नोलम्बों, काडवों तथा वैदुम्बों के राजाओं के सिर काट लिए और उन्हें वीरराजेन्द्र ने अपनी राजधानी गंगैकोंडचोलपुरम् के दरवाजों पर टांगने का आदेश दिया। आहवमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) युद्ध के मैदान से भाग गया और चोलों ने उसकी

1. राजेन्द्र द्वितीय के शासन के चौथे वर्ष के मणिमंगलम् शिलालेख में इस प्रकार के पद पाने वाले उसके चार भाइयों, छः पुत्रों, दो पौत्रों तथा एक चाचा वर्णित हैं। परन्तु इस तिथि के बाद के अभिलेखों में केवल छः सम्बन्धियों का ही उल्लेख है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पत्नियां, छत्र, वराहध्वज, युद्धवाद्य, बहुत से हाथी, घोड़े तथा सम्पत्ति आदि अपहृत कर ली। पश्चिमी चालुक्य अभिलेखों में इस युद्ध का पूरा ब्योरा नहीं दिया गया है और न ही वीरराजेन्द्र का उल्लेख हुआ है।

इस शानदार विजय के उपरान्त वीरराजेन्द्र वापस चला गया। परन्तु सोमेश्वर ने इस अपमानपूर्ण जीवन से मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हुए चोल शासक को पत्र लिखा कि कूडलसंगम में ही वह उससे पुनःशक्ति-संतुलन करेगा। इस सन्देश को प्राप्त कर वीरराजेन्द्र अपनी सेना सहित निर्दिष्ट स्थान कान्दै पर पहुंच गया और चालुक्य शासक द्वारा निर्धारित तिथि के एक महीने बाद तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। चोल अभिलेखों के अनुसार सोमेश्वर भयभीत होकर पश्चिमी समुद्र (तटवर्ती क्षेत्र) में कहीं पर छिप गया था। परन्तु वास्तव में वह उस समय एक असाध्य ज्वर का शिकार हो गया था जिसके कारण 29 मार्च, 1068 ई० में उसने तुंगभद्रा नदी में जल-समाधि लेकर अपने प्राण त्याग दिए। इसीलिए वह कूडलसंगम के युद्ध-स्थल पर नहीं पहुंच सका था। वीरराजेन्द्र ने देवनाथ, शित्ति तथा केशि आदि चालुक्य सेनापतियों को पराजित कर खदेड़ दिया और चालुक्यों के नगरों को भस्मसात किया। तदुपरान्त चोलों ने तुंगभद्रा नदी के तट पर अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया और उस पर रट्टपाडि साढ़े सात लाख की विजय का विवरण अंकित कराया। इन पराजयों के बावजूद सोमेश्वर ने अपने राज्य के अधिकांश भाग में वेंगी में अपना प्रभुत्व कायम रखा और तुंगभद्रा नदी वस्तुतः चोलों तथा पश्चिमी चालुक्यों के राज्यों के बीच सीमा-रेखा बन गई।

सोमेश्वर प्रथम का उत्तराधिकारी सोमेश्वर द्वितीय अपेक्षाकृत दुर्बल शासक था। उसके राज्यारोहण के शीघ्र ही बाद चोलों ने चालुक्य राज्य को आक्रान्त किया। वीरराजेन्द्र के शासन के छठे तथा सातवें वर्ष के अभिलेखों के अनुसार, सोमेश्वर द्वितीय द्वारा अपनी कंठिका को खोलने के पहले ही चोल शासक (वीरराजेन्द्र) ने चालुक्य राज्य के कम्पिलि नगर को भस्मसात कर रायचूर जिले के करडिगल ग्राम में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया; सोमेश्वर को कन्नड़ देश छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया और रट्टपाडि प्रदेश को जीतकर उसे विक्रमादित्य षष्ठ को दे दिया। विक्रमांकदेवचरित में भी वर्णित है कि राज्यारोहण के तुरन्त बाद सोमेश्वर द्वितीय को चोल आक्रमण का सामना करना पड़ा था। परन्तु पश्चिमी चालुक्य अभिलेखों के अनुसार चोलों को पराजित होकर भागना पड़ा था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वीरराजेन्द्र के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में जब सोमेश्वर द्वितीय तथा उसके अनुज विक्रमादित्य षष्ठ के बीच शत्रुता होगई, तो विक्रमादित्य ने चोलों से मित्रता करने का प्रयास किया। बिल्हण के अनुसार उसने अपने मित्र गोवा के कदम्ब शासक जयकेशि को वीराजेन्द्र के पास उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा। चोल शासक इसके लिए सहमत हो गया। उसकी सहायता मिल जाने के कारण ही विक्रमादित्य को सोमेश्वर द्वितीय के विरुद्ध सफलता मिली। बाद में अपनी मैत्री को स्थाई बनाने के उद्देश्य से वीरराजेन्द्र ने विक्रमादित्य षष्ठ के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

वेंगी में हस्तक्षेप—वेंगी के चालुक्य शासक राजराज का पुत्र राजेन्द्र द्वितीय अपरनाम कुलोत्तुंग प्रथम, उसका वैध उत्तराधिकारी था। परन्तु राजेन्द्र द्वितीय के चाचा विजयादित्य सप्तम् ने उससे युद्ध छेड़ दिया। इस संघर्ष में विक्रमादित्य षष्ठ ने राजेन्द्र द्वितीय की सहायता की और परमार जयसिंह के साथ वेंगी को आक्रान्त कर विजयादित्य को अपदस्थ कर दिया। इस प्रकार वह वेंगी में अपनी अप्रत्यक्ष अधिसत्ता स्थापित करने में सफल हो गया। किन्तु उसकी यह सफलता तात्कालिक एवं अस्थाई रही। वीरराजेन्द्र ने विजयादित्य सप्तम् की सहायता की। उसके शासन के चौथे वर्ष के करुवूर अभिलेख में बतलाया गया है कि वीरराजेन्द्र ने विक्रमादित्य षष्ठ की विशाल वाहिनी का वेंगीनाडु में विनाश कर दिया, चालुक्य महादंडनायक चामुंडराज का सिर काट लिया और चामुंडराज की पुत्री नागलै की नाक काट ली। वीरराजेन्द्र के पांचवें वर्ष के मणिमंगलम् अभिलेख के अनुसार उसने चालुक्य शासक को चुनौती देते हुए प्रतिज्ञा की थी कि मै वेंगीनाडु को अधिकृत किए बिना वापस नहीं जाऊंगा[1]। इसके पाश्चात् बेजवाड़ा के निकट हुए भयंकर युद्ध में अपने प्रतिद्वन्दियों को पूर्णरुप से पराजित कर चोल शासक ने विजयादित्य सप्तम् को पुनः वेंगी के राजसिंहासन पर बैठा दिया। तदुपरान्त विजयिनी चोल सेना क्रमशः गोदावरी, कलिंग एवं महेन्द्रपर्वत को पारकर शक्करकोट्टम् (बस्तर राज्य में चक्रकोट) तक पहुंच गई थी।

महावंश के अनुसार श्रीलंका के रोहण प्रदेश में चोलों की अधिसत्ता समाप्त करने के लिए विजयबाहु प्रथम प्रयत्नशील था। जब वीरराजेन्द्र को

---

1. इस विवरण से प्रतीत होता है कि वेंगी पर कुछ समय के लिए विक्रमादित्य षष्ठ अपना आधिपत्य जमाने तथा अपने संरक्षित शासक को वहां प्रतिष्ठित करने में सफल हो गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्रीलंका के शासक की इन गतिविधियों की सूचना मिली तो उसने उसके विरुद्ध अपनी सेना भेजी। रोहण में पहुंचकर चोल वाहिनी ने कजरग्राम में लूटपाट की और विजयबाहु के विरुद्ध विजय प्राप्त कर वापस आ गई। इस पराजय के पश्चात्, विजयबाहु ने रामंज (बर्मा) के राजा के पास बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं भेजीं और (चोलों के विरुद्ध) उसकी सहायता प्राप्त की। श्रीलंका के विद्रोह को दबाने के लिए वीरराजेन्द्र को पुनः एक विशाल सेना भेजनी पड़ी थी। उसके शासन के पांचवें वर्ष के एक शिलालेख में वर्णित है कि जहाजों द्वारा समुद्र को पारकर चोल सेना श्रीलंका के रोहण प्रदेश में पहुंची और वहां भीषण मार-काट की। सिंहल की सेनाएं पराजित हुईं, विजयबाहु युद्ध के मैदान से भाग गया, उसकी रानी को पकड़ लिया गया और चोलों ने सम्पूर्ण श्रीलंका पर अधिकार कर लिया। इस विवरण में कुछ अतिशयोक्ति है और इस तिथि (1067 ई० के आस-पास) के तीन-चार वर्ष बाद तक भी रोहण प्रदेश विजयबाहु प्रथम के अधीन बना रहा। वीरराजेन्द्र के एक अन्य अभिलेख में बतलाया गया है कि उसकी सेना ने महातित्थ में विनाशलीला दिखाने के पश्चात्, राजरट्ठ (उत्तरी सिंहल) के निवासियों को त्रस्त किया। परन्तु विजयबाहु ने अपना संघर्ष जारी रखा और बाद में उसे चोलों के विरुद्ध कुछ सफलता प्राप्त हुई।

वीरराजेन्द्र के शासन के चौथे वर्ष के करुवूर अभिलेख के अनुसार उसने धारा के परमार शासक जननाथ के भाई, केरल के राजा तथा पांड्य वीरकेसरी का वध कर दिया था। पांचवें वर्ष के मणिमंगलम् अभिलेख के अनुसार उदगै में केरल के राजा को आक्रान्त कर वह बहुत से हाथियों को भेंट में प्राप्त कर वापस आया था। उसने गंग, नोलम्ब तथा अन्य कई राज्यों पर भी विजय प्राप्त की। उसके शासन के सातवें वर्ष के एक अभिलेख का कथन है कि वीरराजेन्द्र ने कडारम् को जीतकर इसे अपने एक मित्र राजा को दे दिया था। डी० सी० गांगुली ने जननाथ का पहचान परमार जयसिंह से की है, परन्तु के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने उसे बस्तर का नाग राजा धारावर्ष माना है। पांड्य राज्य को जीतने के पश्चात् उसने गंगैकोंडशोल को वहां का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया और मधुरान्तक को तोंडमंडलम का।

वीरराजेन्द्र ने राजमहेन्द्र, महाराजाधिराज, वल्लभ-वल्लभ, आहवमल्ल-कुलकाल, पांड्यकुलान्तक तथा राजाश्रय आदि नाम एवं उपाधियां धारण कीं। उसने चिदम्बरम् के नटराज के मुकुट में जड़ने के लिए एक बहुमूल्य मणि भेंट किया था। उसने चोल, पांड्य, चेर तथा [illegible] ब्राह्मणों को दान दिए और

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वेदों के विद्वान 40,000 ब्राह्मणों[1] को भूमि दान में दी। वीरराजेन्द्र की अरुमोलिनंगै नामक रानी उसकी मृत्यु के बाद काफी समय तक जीवित रही और उसका तंजोर में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। 1067 ई० एक अभिलेख में उसके राज्यकाल में चिंगलेपुट ज़िले के तिरुमुक्कूडल नामक स्थान पर स्थित एक वैदिक पाठशाला के लिए किए गए प्रबन्धों का विवरण है। इस विद्यालय का एक छात्रावास तथा एक चिकित्सालय भी था। चिकित्सालय में दो चिकित्सक, दो दाइयां तथा 15 रोगियों के लिए पलंग उपलब्ध थे। बुधमित्र के वीरशोलियम् नामक व्याकरण ग्रन्थ मे प्रमाणित होता है कि वीरराजेन्द्र के राज्यकाल में बौद्ध धर्म भी पनप रहा था। उसने 1070 ई० तक शासन किया।

अधिराजेन्द्र परकेशरि—वीरराजेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अधिराजेन्द्र 1070 ई० के प्रारम्भिक भाग में चोल राजसिंहासन पर बैठा। उसने 1068 ई० में ही युवराज के रूप में प्रशासन कार्य में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। उसका अत्यधिक अल्पकालीन राज्यकाल कठिनाइयों एवं विप्लवों से परिपूर्ण रहा और 1070 ई० में ही उसके जीवन का अस्वाभाविक अन्त हो गया।

डी० सी० गांगुली के अनुसार वीरराजेन्द्र की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र अधिराजेन्द्र तथा वेंगी के शासक राजेन्द्र चोल द्वितीय (कुलोत्तुंग प्रथम) के बीच चोल राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए युद्ध हुआ। विक्रमांकदेवचरित में वर्णित है कि वीरराजेन्द्र की मृत्यु के बाद चोल राज्य में अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी जिसे दूर करने के लिए विक्रमादित्य षष्ठ वहां पहुंचा। उसने विद्रोहियों का दमन कर अधिराजेन्द्र को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु उसके वापस लौटने के कुछ ही समय के पश्चात् वेंगी के शासक राजिग (राजेन्द्र चोल द्वितीय) ने अधिराजेन्द्र को मार डाला। कलिंगत्तुपराणि में काव्यात्मक शैली में बतलाया गया है कि अभय (राजेन्द्र चोल द्वितीय) ने चोल राज्य की अराजकता को समाप्त कर इसकी सुरक्षा की और इसका उद्धार किया। कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल के कई अभिलेखों ने कलिंगत्तुपराणि के उपर्युक्त विवरण की पुष्टि की है। इन अभिलेखों में यह भी दावा किया गया है कि उसने अपने अधिकार से दक्षिण में (चोल राज्य में) राजमुकुट धारण किया। परन्तु कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल के साक्ष्यों का विवरण निष्पक्ष नहीं प्रतीत होता। अधिराजेन्द्र दुर्बल तथा अक्षम शासक था। उसने वैष्णव सन्त रामानुज को दंड

1. यह संख्या अतिरंजित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

देकर अपनी धार्मिक असहिष्णुता का परिचय दिया। अपनी दुर्बलताओं के कारण उसने सम्भवतः प्रजा एवं पदाधिकारियों आदि की स्वामिभक्ति खो दी थी और वह एक जनक्रान्ति में मारा गया, जिसे कुलोत्तुंग प्रथम का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष समर्थन अवश्य प्राप्त रहा होगा। अधिराजेन्द्र, विजयालय चोल के वंश का अन्तिम शासक था। 1070ई०में उसकी मृत्यु के साथ इस चोल राजवंश का शासन समाप्त हो गया और इसके बाद के लगभग 200 वर्षों का चोल राज्य का इतिहास वस्तुतः वहां वेंगी के चालुक्यों के प्रभुत्व का विवरण है।

कुलोत्तुंग प्रथम-कलिंगत्तुपराणि से हमें ज्ञात होता है कि अधिराजेन्द्र चोल अत्यन्त अल्पकालीन[1] तथा संकटपूर्ण शासन के बाद एक जनक्रान्ति में मारा गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् वेंगी के चालुक्य शासक राजराज के पुत्र राजेन्द्र द्वितीय अपरनाम कुलोत्तुंग प्रथम ने 1070 ई० में चोल राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया[2]। मातृक्ष से वह राजराज चोल का प्रपौत्र था। कुलोत्तुंग प्रथम के अभिलेखों में वर्णित है कि उसने दक्षिण में (चोल राज्य में) अपने अधिकार से राजमुकुट धारण किया और चोल राज्य की अराजकता को समाप्त कर उसे विघटित होने से बचाया था। इस विवरण का पुष्टिकरण कलिंगत्तुपराणि[3] ने भी किया है। परन्तु इन साक्ष्यों का विवरण स्पष्टतः अतिरंजित एवं पक्षपातपूर्ण है। कुछ विद्वानों के अनुसार कुलोत्तुंग एवं अधिराजेन्द्र के बीच युद्ध हुआ और चार-पांच वर्ष के संघर्ष के बाद ही कुलोत्तुंग सम्पूर्ण चोल राज्य को अधिकृत करने में सफल हुआ होगा। के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा आर० सथियनथायर इस मत से सहमत नहीं हैं। सम्पूर्ण घटनाक्रम की समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चोल शासक के विरुद्ध हुई क्रान्ति को कुलोत्तुंग

1. अधिराजेन्द्र केवल कुछ महीने अथवा कुछ सप्ताह तक ही शासन कर सका था।
2. इसका विवरण विक्रमांकदेवचरित में मिलता है।
3. कलिंगत्तुपराणि में बतलाया गया है कि कुलोत्तुंग प्रथम द्वारा चोल राजसिंहासन को अधिकृत करने के पूर्व वहां यज्ञों का सम्पन्न होना समाप्त हो गया था; मनु द्वारा निर्धारित मार्ग का परित्याग कर दिया गया था; छः शास्त्र लुप्त हो गए; वर्णसंकरता में वृद्धि हो गई और प्रत्येक व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार के लिए प्रयत्नशील था। मन्दिरों की उपेक्षा हो रही थी और दुर्गों ने खंडहरों का रूप धारण कर लिया था। जब कलि-अंधकार इस प्रकार (चोल राज्य में) व्याप्त था, उसी समय संसार की सुरक्षा के लिए कुलोत्तुंग प्रकट हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त था और इसके परिणामस्वरूप चोल राज्य में व्याप्त अव्यवस्था का उसने पूरा लाभ उठाया।

कुलोत्तुंग के पिता राजराज की मृत्यु 1060 ई० में हुई थी और 1070 ई० में वह चोल राज्य का अधिपति बना। इन दस वर्षों के अन्तराल की कुलोत्तुंग की राजनैतिक गतिविधियों एवं उपलब्धियों का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। आर० सथियनथायर तथा के० ए० नीलकान्त शास्त्री का अनुमान है कि इस दौरान में कुलोत्तंग ने नाग शासक धारावर्ष से उपहार आदि प्राप्त किए, और बस्तर के कुछ छोटे शासकों तथा चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ से युद्ध किए थे।

1076 ई० के लगभग कुलोत्तुंग का कल्याणी के चालुक्यों से संघर्ष छिड़ गया। बिल्हण के अनुसार उसे विक्रमादित्य षष्ठ से खतरे की आशंका थी, इसलिए उसने उसके विद्रोही भाई सोमेश्वर द्वितीय के साथ गठबन्धन कर लिया। दोनों की सम्मिलित सेनाओं से विक्रमादित्य का भीषण युद्ध हुआ जिसमें द्रविण राजा (कुलोत्तुंग प्रथम) युद्ध के मैदान से पलायन कर गया और सोमदेव (सोमेश्वर द्वितीय) को जेल में डाल दिया गया[1]। परन्तु चोल अभिलेखों का कथन है कि इस संघर्ष के प्रारम्भ में चालुक्य शासक चोल राज्य में बढ़ता हुआ वर्तमान कोलार जिले तक पहुंच गया था और वहां पर उसकी चोलों से मुठभेड़ हुई। चोल सेना ने विक्रमादित्य को तुंगभद्रा नदी के तट तक खदेड़ा था। इसके पश्चात् दोनों में पुनः भयंकर युद्ध हुआ जिममें प्राप्त विजय के परिणामस्वरूप कुलोत्तुंग का गंगमंडलम् तथा शिंगणम्[2] पर अधिकार स्थापित हो गया और लूट में उसे बहुत से हाथी तथा धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई। कलिंगत्तुपराणि में भी इस युद्ध का विवरण है।

जब कुलोत्तुंग दक्षिण की राजनीति में उलझा हुआ था, उसी दौरान में त्रिपुरी के कलचुरि शासक यशःकर्णदेव ने वेंगी पर आक्रमण कर दिया। कर्णदेव के 1072-73 ई० के अभिलेखों में दावा किया गया हैं कि उसने आन्ध्र के शक्तिशाली राजा को आसानी से पराजित कर दिया और द्राक्षारामम् में भगवान भीमेश्वर को बहुमूल्य हीरे दान में दिए थे। यहां आन्ध्र राजा का तात्पर्य विजयादित्य सप्तम् से है। परन्तु 1076 ई० के लगभग कुलोत्तुंग प्रथम ने आन्ध्र को पुनः अपने अधीन कर लिया था।

1. विक्रमांकदेवचरित, 6. 90।
2. शिंगणम् का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। हुल्ट्श के अनुसार इसका अभिप्राय जयसिंह द्वितीय के सम्बन्ध है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विक्रमादित्य षष्ठ वेंगी में कुलोत्तुंग की अधिसत्ता को उखाड़ने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा। चोल तथा पश्चिमी चालुक्य, दोनों ही वेंगी को अपना सरक्षित राज्य रखना चाहते थे। सम्भवतः कुलोत्तुंग के शासन के अन्तिम वर्षों में वेंगी राज्य के लगभग आधे भाग पर विक्रमादित्य षष्ठ का अधिकार स्थापित हो गया था। इस चालुक्य शासक के कई अभिलेख द्राक्षारामम् में प्राप्त हुए हैं। 1118 ई० में कुलोत्तुंग ने विक्रमचोल को युवराज नियुक्त करने के लिए वेंगी से बुला लिया जिसके परिणामस्वरूप वहां पूर्ण अराजकता व्याप्त हो गई (वेंगीभूमिनायकर हिताजाता)। कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल के 49 वें वर्ष तक के शिलालेख द्राक्षारामम् में पाए गए हैं और उसके उत्तराधिकारी विक्रमचोल के 1127 ई० के पहले का कोई अभिलेख इस क्षेत्र मे नहीं मिला हैं। इस अन्तराल में वेंगी में कल्याणी के चालुक्यों का आधिपत्य स्थापित हो गया था।

कुलोत्तुंग प्रथम ने कलिंग पर दो आक्रमण किए थे। प्रथम आक्रमण उसने सम्भवतः 1096 ई० लगभग किया होगा। कलिंग के राजा ने वेंगी पर आक्रमण कर दिया था, कदाचित् इसीलिए कुलोत्तुंग ने कलिंग पर प्रथम आक्रमण किया। इस अभियान के विषय में अधिक सूचना नहीं मिलती, परन्तु चोल शासक ने निश्चय ही विजय प्राप्त की और दक्षिण कलिंग[1] उसके साम्राज्य का अंग बन गया था। 1098-99 ई० का कुलोत्तुंग का एक शिलालेख सिंघाचलम् में और कुछ शिलालेख द्राक्षारामम् एवं इसके निकटवर्ती क्षेत्रों में प्राप्त हए हैं।

कुलोत्तुंग द्वारा कलिंग पर किए गए दूसरे आक्रमण का विवरण उसके राज्यकाल के 1110 ई० के आस-पास के अभिलेखों में तथा कलिंगत्तुपराणि में मिलता है। कलिंगत्तुपराणि के अनुसार कलिंग के राजा ने चोलों को वार्षिक-कर देना बन्द कर दिया था, इसलिए कुलोत्तुंग को इस राज्य पर दूसरा आक्रमण करना पड़ा। चोल अभिलेखों के अनुसार कुलोत्तुंग की सेना ने अपने शत्रुओं के हाथियों के कुमुक को नष्ट कर वेंगी को पार किया और कलिंग में चारों ओर से आग लगा दी। इसके बाद प्रतिद्वन्दी सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें कलिंग के कई सेनानायक मारे गए और चोलों ने **सप्तकलिंगों** को पराजित कर दिया। कलिंगत्तुपराणि में बतलाया गया है कि पल्लव वंशीय करुणाकर तोंडैमान के नेतृत्व में कुलोत्तुंग ने अपनी सेना भेजी थी। इस अभियान का प्रारम्भ कांची से हुआ। करुणाकर ने कलिंग के शासक अनन्तवर्मन चोडगंग को परास्त कर युद्ध के मैदान से भागने के लिए बाध्य कर दिया और लूट में बहुत सी सम्पत्ति

1. गोदावरी तथा महेन्द्र पर्वत के बीच के क्षेत्र को दक्षिण कलिंग कहा गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राप्त कर चोल सेना वापस आगई।

कुलोत्तुंग के शासन के पांचवें वर्ष के अभिलेखों में अस्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि पांड्य शासक का सिर पृथ्वी पर पड़ा हुआ था और चीलें उसमें चोंचें मार रहीं थीं। इस तिथि के बाद के चोल अभिलेखों के अनुसार यह घटना कुलोत्तुंग प्रथम के नगर (राजधानी) के बाहर घटी थी। चिदम्बरम् से प्राप्त एक तिथि-रहित शिलालेख में वर्णित है कि इस चोल शासक ने पांच पांड्य शासकों को पराजित किया, कोट्टारु के दुर्ग को भस्मसात किया, केरल की सेनाओं को हराया और समुद्रतट पर अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया था।

विक्रमशोलन् उला का कथन है कि कुलोत्तुंग ने पांड्य शासक के (राजकीय चिह्न मछली) को पराजित कर दिया; चेरों के (राजकीय चिह्न) धनुष को नष्ट कर दिया और शालै में उसकी नौ सेना का दो बार विनाश किया। जयनगोंडार ने भी इस विवरण की पुष्टि की है। इन राज्यों को जीतकर कुलोत्तुंग ने वहां अपने सैनिक कुमुक (निलैपडै) तैनात कर दिए थे। चोल शासक द्वारा पराजित पांच पांड्य राजाओं का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है।

कुलोत्तुंग के शासन के अन्तिम भाग में होयसल विष्णुवर्धन ने चोल राज्य को आक्रान्त कर गंगवाड़ी तथा नोलम्बवाड़ी पर अधिकार कर लिया था। तलकाड को जीतकर उसने तलकाडुगोंड का विरद धारण किया और विजय प्राप्त करता हुआ धुर दक्षिण में वह रामेश्वरम् तक पहुंच गया था। 1117 ई० में काकतीय प्रोल ने चोलों के स्थान पर कल्याणी के चालुक्यों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और 1118 ई० के बाद वेंगी में भी पश्चिमी चालुक्यों की अधिसत्ता स्थापित हो गई थी।

कुलोत्तुंग के चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के समय तक श्रीलंका में चोल प्रभुत्व समाप्त हो गया था। श्रीलंका के राजकुमार कित्ति ने रोहण क्षेत्र को चोलों के आधिपत्य से मुक्त कर दिया। 1070 ई० के लगभग विजय-बाहु ने पोलोन्नरुवा पर अधिकार कर लिया और 1073 ई० में उसने सिंहल के स्वतन्त्र शासक के रूप में अपना अभिषेक कराया। महावंश के अनुसार विजय-बाहु ने अपने शासन के 15वें वर्ष में अनुराधापुर में प्रवेश किया, अर्थात् इसे अपने अधीन कर लिया था। विजयबाहु के दूतों का चोलों द्वारा अपमान और इसके प्रतिशोध में कुलोत्तुंग के दूतों के साथ श्रीलंका के शासक के दुर्व्यहार के परिणामस्वरूप दोनों राज्यों के बीच हुए युद्ध आदि से सम्बन्धित

CC-0. Uttar Pradesh State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महावंश का विवरण काफी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। चूंकि कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल का कोई अभिलेख श्रीलंका में नहीं मिला है, इससे महावंश के उपर्युक्त विवरण की पुष्टि होती है। 1088 ई० में कुलोत्तुंग ने अपनी पुत्री सुत्तमल्लियार का विवाह सिंहल के राजकुमार वीरप्पेरुमाल के साथ कर दिया। इस प्रकार दोनों के बीच शत्रुता समाप्त हो गई।

कुलोत्तुंग प्रथम ने अनेक राजवंशों के शासकों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए थे। सुदूरस्थ कन्नौज के गहड़वाल राज्य के शासक सम्भवतः मदनपाल अथवा गोविन्दचन्द्र का एक तिथि-रहित अभिलेख गंगैकोंडचोलपुरम् के मन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण है। यह अभिलेख इन दोनों राजवंशों के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का प्रतीक है, यद्यपि इस मित्रता का कोई ब्योरा नहीं दिया गया है।

चीन के **सांग** इतिवृत्तों में वर्णित है कि 1077 ई० में ति-हुआ-किया-लो के राज्यकाल में चोलों का 72 सदस्यों वाला एक दूतमंडल चीन के सम्राट के राजदरबार में पहुंचा था। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार, ति-हुआ-किया-लो देवकुलोत्तुंग का चीनी रूपान्तर प्रतीत होता है। यह दूतमंडल व्यापार के सम्बन्ध में गया होगा। इसके सदस्य अपने साथ शीशे के उपकरण, गैंडे के सींग, हाथी-दांत, हींग, सुहागा तथा लवंग आदि वस्तुएं भेंट के लिए ले गए थे, जिनके बदले में उन्हें चीनी सम्राट की ओर से 81,881 तांबे के सिक्कों की लड़ियां दी गई थीं। 1079 ई० के एक चीनी अभिलेख के अनुसार कुलोत्तुंग प्रथम ने कैंटन के बौद्ध-विहार को 6,00000 स्वर्ण-मुद्रायें भेंट की थीं[1]।

1090 ई० के आस-पास कडारम् (श्रीविजय) के शासक ने कुलोत्तुंग के पास अपना दूतमंडल भेजा और कुलवल्लिपट्टिनम् (नेगपट्टिनम्) के दो बौद्ध-विहारों को चोलों द्वारा दिए गए ग्रामों के विवरण सहित एक शासनादेश जारी करने के लिए प्रार्थना की। उक्त विहारों का निर्माण श्रीविजय के शासक ने ही कराया था। बर्मा के इतिवृत्तों से हमें ज्ञात होता है कि पगन के राजा क्यंजित्थ (1084-1112 ई०) ने चोल राजा से भेंट की और उसे बौद्ध बनाकर उसकी लड़की के साथ विवाह कर लिया था। चोल राजा के नाम का उल्लेख नहीं है, परन्तु उस समय कुलोत्तुंग प्रथम ही शासन कर रहा था। यह विवरण कहां तक तथ्य पर आधारित है, कहना कठिन है।

कुलोत्तुंग ने प्रशासन-व्यवस्था की ओर काफी ध्यान दिया और व्यापार

1. Trade and Statecraft in the age of the Colas, p. 175.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की उन्नति के लिए कारगर कदम उठाये। उसने व्यापारिक वस्तुओं पर लगने वाली चुंगी (सुंगम्) समाप्त कर दी थी[1]। शासन के 16वें तथा 40वें वर्ष में समस्त कृषि-योग्य भूमि का सर्वेक्षण कराया। उसके पुत्रों चोडगंगमुम्मडिचोल, वीरचोल तथा विक्रमचोल ने वेंगी में गवर्नर के रूप में बारी-बारी से शासन किया। मधुरान्तकी तथा त्यागवल्लि नामक कुलोत्तुंग की रानियों के उल्लेख मिलते हैं। गंगैकोंडचोलपुरम् उसकी राजधानी थी और कांची भी महत्वपूर्ण नगर अथवा उपराजधानी थी। कुलोत्तुंग ने राजकेसरि, त्रिभुवनचक्रवर्तिन, सर्वलोकाश्रय, विष्णुवर्धन, परान्तक, विक्रमचोल, कुलशेखरपांड्यकुलान्तक, विरुदराजभयंकर (विक्रमादित्य षष्ठ के लिए आतंक), अकलंक, जयधर तथा शुंगनदवित्तुउलगाड (जिसने चुंगीकर समाप्त कर दिया था और अंधकार को नष्ट कर संसार पर शासन किया) नामक उपाधियां धारण कीं। उसके द्वारा चलाए गए सोने के सिक्के उसके पिता पूर्वी चालुक्य शासक राजराज प्रथम के सिक्कों से पूर्णतया मिलते हैं। इन सिक्कों पर कुलोत्तुंग प्रथम को कटैकोंडचोलन् तथा मलैनडुकोंड्-चोलन् की उपाधियां दी गई हैं जो उसकी कडारम (केडह) तथा केरल की विजयों को प्रमाणित करती हैं[2]। कुलोत्तुंग का अन्तिम तिथियुक्त अभिलेख उसके शासन के 52वें वर्ष का है। उसने 1120 ई० के आसपास तक राज्य किया।

विक्रमचोल–कुलोत्तुंग प्रथम का पुत्र विक्रमचोल पहले वेंगी का गवर्नर नियुक्त किया गया था। 1118 ई० के आस-पास वह चोल राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। लगभग दो वर्ष तक उसने अपने पिता के साथ सम्भवतः संयुक्त रूप से राज्य किया और 1120 ई० में उसके स्वतन्त्र शासन का प्रारम्भ हुआ। उसे कोलनु के शासक तेलंगभीम पर विजय प्राप्त करने तथा कलिंग राज्य को जला देने का श्रेय दिया गया है। उसने ये सफलताएं वेंगी के गवर्नर की हैसियत से प्राप्त कीं होंगी। 1118 ई० में वेलनांटि के शासक गोंक प्रथम के पुत्र राजेन्द्र चोड को वेंगी का शासक नियुक्त कर विक्रमचोल को वहां से बुला लिया गया था। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर विक्रमादित्य षष्ठ ने चोड गवर्नर को पराजित कर वेंगी में अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। परन्तु 1126 ई० में विक्रमादित्य की मृत्यु के परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए पश्चिमी चालुक्य राज्य में अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। उसी दौरान में विक्रमचोल ने वेंगी के दक्षिणी भाग को पुनः अधिकृत कर लिया।

---

1. Trade and Statecraft in the age of the Colas, p. 172.
2. Coinage of South India, p. 87.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विक्रमचोल ने कोलार तथा गंगवाड़ी के कुछ अन्य क्षेत्रों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। 1127 ई० में कोल्लिपाक (कुलपक) तथा षडसहस्र का महामंडलेश्वर दुर्जयवंशीय नम्बय भी उसका सामन्त था। विक्रमचोल के शासन के 15वें वर्ष के तिरुमलवड़ु अभिलेख का कथन है कि उसके पहुंचते ही शेलियों (पांड्यों) ने जंगलों में शरण ली; शेरल (चेर) समुद्र में प्रविष्ट हो गए; शिंगल (सिंहल के लोग) भयभीत हो गए; कर्नाट, कोंगु तथा कोंकण के लोग भाग गए; गंग उसे कर एवं भेटें देते थे और अन्य सभी राज्यों के शासक उसकी चरण वन्दना करते थे। यह विवरण अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण है और विक्रमचोल को इतना बड़ा विजेता मानना कठिन है।

विक्रमचोल के शासन काल में बाढ़ के प्रकोप के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी अर्काट ज़िलों में प्रजा को काफी कष्ट पहुंचा था। उत्तरी अर्काट ज़िले के तिरुवोत्तूर नामक स्थान से प्राप्त 1125 ई० के एक शिलालेख में बाढ़ तथा इसके परिणामस्वरूप फसलों आदि के विनाश का विवरण है। इस विपत्ति के अवसर पर चोल शासक ने प्रजा को राहत पहुंचाने के लिए कई कार्य किए थे।

विक्रमचोल अपने साम्राज्य में दौरा किया करता था। 1122 ई० में उसने कुम्भकोनम् के निकट स्थित मुडिकोंडचोलपुरम् से एक शासनादेश जारी किया था। 1123 ई० में उसने चिंगलेपुट ज़िले के एक मंडप में कुछ समय तक निवास किया था। 1124 ई० में वह दक्षिणी अर्काट ज़िले के वीरनारायण चतुर्वेदिमंगलम् के राजप्रासाद में और 1130 ई० में चिदम्बरम् के महल में ठहरा था। उसके राज्यकाल के अभिलेख वर्तमान तंजोर, चिंगलेपुट, कोयम्बटूर, मद्रास, सलेम (तमिलनाडु में) कोलार, कडप्पा, नेल्लोर, गुंटूर, तथा करनूल (आन्ध्र राज्य में) ज़िलों में प्राप्त हुए हैं।

1128 ई० में विक्रमचोल ने अपने कुलदेवता चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर के विस्तार के लिए काफी बड़ी धनराशि व्यय की और इस देवालय को बहुत से दान दिए जिनका विवरण उसके शासन के 11वें वर्ष के शिलालेखों में हुआ है। जयनगोंडार ने उसे अपना कलिंगत्तुपराणि नामक ग्रंथ समर्पित किया था। उसने तंजोर ज़िले के एक चिकित्सा-विद्यालय को भी सरक्षता प्रदान की। 1121 ई० के एक अभिलेख के अनुसार इस विद्यालय में चरकसंहिता तथा अष्टांगहृदय जैसे प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन होता था। विक्रमचोल ने त्यागसमुद्र, त्यागावतार तथा अकलंक नामक उपाधियां धारण कीं। उसकी रानियों में त्यागपताका, मुक्कोकिलनंगै तथा [illegible] के नाम

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वर्णित हैं। वह सम्भवतः वैष्णव धर्म का अनुयाई था; और एस०के० आयंगर के अनुसार उसी के राज्यकाल में वैष्णव संत रामानुज अपने दीर्घ प्रवास के पश्चात् वापस आया था। उसके शासन का अन्त 1135 ई० के लगभग हुआ।

कुलोत्तुंग द्वितीय–विक्रमचोल ने अपने पुत्र कुलोत्तुंग द्वितीय को 1133 ई० में युवराज नियुक्त कर दिया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् कुलोत्तुंग ने 1135 ई० में स्वतन्त्र शासक के रुप में शासन की बागडोर सम्भाली। उसके अभिलेखों में किसी विजय अथवा अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि का विवरण नहीं है। इससे अनुमान किया जा सकता कि उसका राज्यकाल मुख्यतः शान्तिपूर्ण रहा। डी० सी० गांगुली के अनुसार उसके शासन के अन्तिम भाग में सम्भवतः चोलों को कल्याणी के चालुक्य जगदेकमल्ल द्वितीय से युद्ध करना पड़ा जिसमें कुलोत्तुंग को कुछ सफलता प्राप्त हुई। कुलोत्तुंग के अधीनस्थ शासकों में कुलोत्तुंगशोलकाड-वरायन 1136 ई० के आस-पास दक्षिणी अर्काट ज़िले में शासन कर रहा था और त्रिभुवनमल्लदेवपोत्तपति चोड महाराज गुँटूर ज़िले का शासक था। इनके अतिरिक्त दुर्जय वंशीय मंड द्वितीय तथा मधुरान्तकपोत्तप्पिच्चोलसिद्धरस भी उसके सामन्त थे। उसके अभिलेख दक्षिणी अर्काट, चिंगलेपुट, तंजोर, तिरुचिरा-पल्ली (तमिलनाडु में) कडप्पा, कृष्णा तथा गोदावरी (आन्ध्र राज्य में) ज़िलों में प्राप्त हुए हैं।

कुलोत्तुंग द्वितीय ने तमिल साहित्य को काफी प्रोत्साहन प्रदान किया और उसके राज्यकाल में कई उत्कृष्ट तमिल ग्रन्थों की रचना हुई। पेरिय-पुराणम् के लेखक शेक्किलार तथा कुलोत्तुंग-शोलन-उला के लेखक ओट्टक्कूत्तन को उसका संरक्षण प्राप्त हुआ। ओट्टक्कूतन ने कुलोतुंग-शोलन-उला एवं तक्कयागप्पणि में उसका यशोगान किया है। इन काव्यों में यह भी बतलाया गया है कि कुलोत्तुंग द्वितीय ने चिदम्बरम् के मन्दिर में स्थापित गोविन्दराजविष्णु की प्रतिमा को उसके पूजास्थान से उठवाकर समुद्र में फिकवा दिया था[1]। वह शिव का भक्त था और वैष्णव धर्म के प्रति उसने असहिष्णुता दिखलाई।

कुलोत्तुंग के शासन के एक अभिलेख में बतलाया गया है उसके द्वारा राज-मुकुट धारण करने पर तिल्लैनगर (चिदम्बरम्) की शोभा बढ़ गई थी। नील-कान्त शास्त्री ने इस काव्यात्मक कथन के दो सम्भावित अर्थ माने हैं–कुलोत्तुंग द्वितीय ने चिदम्बरम् नगर में अपना अभिषेक कराया था, अथवा उसके राज्य-

1. इसी प्रतिमा के विषय में बतलाया गया है कि इसे रामानुज ने उठाकर तिरुपति में स्थापित किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

काल में इस नगर को काफी भव्य बना दिया गया था। चिदम्बरम् नगर और इसके देवालय का नवीनीकरण एवं अलंकरण कुलोत्तुग के राज्यकाल की महत्व-पूर्ण उपलब्धि थी। इन निर्माण-कार्यों का उल्लेख सर्वप्रथम उसके शासन के सातवें वर्ष के एक अभिलेख में हुआ है और कुलोत्तुंग-शोलन-उला में इसका विस्तृत विवरण है।

कुलोत्तुंग द्वितीय ने अनपायचोल तथा तिरुनीरुच्चोल के विरुद धारण किए। अनपायचोल उसकी प्रिय उपाधि थी। इसलिए उसके द्वारा दान में दी गई कई भूमियों को **अनपायनल्लूर** कहा गया है। उसकी रानियों में त्यागवलि अपरनाम भुवनमुलुदुडैयाल तथा मुक्कोक्किलान के नाम वर्णित हैं। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार उसने 1150 ई० तक शासन किया और डी० सी० गांगुली के अनुसार 1152 ई० तक।

राजराज द्वितीय परकेशरिवर्मन—अपने पूर्ववर्ती शासकों की भांति कुलोत्तुंग द्वितीय ने भी अपने पुत्र राजराज द्वितीय को 1146 ई० के लगभग युवराज नियुक्त कर प्रशासन के उत्तरदायित्व से सम्बद्ध कर लिया था। 1150 ई० में उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली।

राजराज द्वितीय के मणिमंगलम् अभिलेख के अनुसार, वल्लवर (चेर), तेलुंगर (काकतीय), मीनवर (पांड्य), सिंगलर (सिंहल) तथा पल्लवर के शासक उसके समक्ष साष्टांग दंडवत करते थे। परन्तु यह कथन मात्र अति-शयोक्ति है। वस्तुतः उसकी किसी महान सामरिक उपलब्धि का स्पष्ट ब्योरा नहीं मिलता। उसके अभिलेख वर्तमान चिरुचिरापल्ली, तंजोर, चिंगलेपुट, दक्षिणी अर्काट (तमिलनाडु में), गुटूर, कृष्णा तथा गोदावरी (आन्ध्र राज्य में) जिलों में प्राप्त हुए हैं।

गोंकराज द्वितीय, राजेन्द्र चोड द्वितीय, करिकाल वंशीय चोड महाराज तथा राजेन्द्रकोन-लोकराज राजराज द्वितीय के आन्ध्र राज्य में सामन्त थे। दुर्जय वंश का बुद्धराज भी उसका अधीनस्थ था। उसके राज्यकाल में गंग राज्य के पूर्वी भाग में तथा कोंगु प्रदेश में चोल प्रभुत्व कायम रहा। तेलुगू क्षेत्र में द्राक्षारामम् तक के सम्पूर्ण वेंगी राज्य से प्राप्त उसके कई शिलालेख इस भू-भाग पर उसकी अधिसत्ता प्रमाणित करते हैं। परन्तु वेलनाडु के शासक धीरे-धीरे शक्तिशाली तथा स्वतन्त्र होते जा रहे थे। होयसलों ने चोलों से कालार जिला अपहृत कर लिया और कोंगु के चालों ने कोयम्बटूर जिले में अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

1163 ई० में राजराज ने राजाधिराज द्वितीय को प्रशासन से सम्बद्ध कर लिया। राजराज को मुत्तमिलकुत्ततिलैवन अर्थात् 'तमिल का संरक्षक' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि उसने तमिल साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। उसने चोलेन्द्रसिंह, वीरधर, वीरोदय, राजगम्भीर, तथा एदिरिसोर की उपाधियां धारण कीं। राजराज के एक अभिलेख में उसकी रानी अवनिमुलुदुडैयाल का उल्लेख है और बतलाया गया है कि वह राजा के साथ राजसिंहासन पर बैठती थी। के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा आर० सथियनथायर के अनुसार राजराज द्वितीय के शासन का अन्त 1173 ई० में, और डी० सी० गांगुली के अनुसार 1178 ई० में हुआ[1]।

राजाधिराज द्वितीय राजकेशरिवर्मन–अपने शासन के अन्तिम भाग में राजराज द्वितीय ने राजाधिराज द्वितीय को युवराज चुन लिया था। कुछ वर्ष तक उसने राजराज के साथ राज्य किया और उसकी मृत्यु के उपरान्त 1163 ई० में स्वतन्त्र शासक के रूप में राजाधिराज के शासन का प्रारम्भ हुआ। पांड्य राज्य में उस समय पराक्रम पांड्य एवं कुलशेखर के बीच उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चल रहा था। पराक्रम पांड्य को श्रीलंका के राजा पराक्रमबाहु की सहायता प्राप्त थी और राजाधिराज, कुलशेखर का समर्थक था। इसलिए चोलों की श्रीलंका के शासक से भी शत्रुता हो गई।

महावंश के अनुसार पराक्रम पांड्य ने 1169 ई० में पराक्रमबाहु (1153-1186 ई०) से अपने प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध सहायता की याचना की। परन्तु दंडनायक लंकापुरी के नेतृत्व में पांड्य शासक की सहायता के लिए भेजी गई पराक्रमबाहु की सेना के पहुंचने के पहले ही कुलशेखर ने मदुरा को अधिकृत कर लिया और पराक्रम पांड्य तथा उसकी पत्नी का वध कर दिया। बाद में लंकापुरी द्वारा कई युद्धों में पराजित होने पर कुलशेखर ने चोल राज्य में शरण ली और लंकापुरी ने वीरपांड्य को मदुरा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

राजाधिराज के शासन के पांचवे वर्ष के चिंगलेपुट जिले से प्राप्त एक अभिलेख में वर्णित है कि पराक्रमबाहु की सेना ने पांड्य राज्य पर अधिकार कर कुलशेखर को मदुरा से बाहर निकाल दिया; तोंडि एवं पाशि प्रदेशों को

1. कोनिदेन से प्राप्त एक अभिलेख में उसके शासन के 29वें वर्ष का उल्लेख हैं। इस आधार पर 1178-79 ई० तक उसका राज्यकाल प्रमाणित होता है। परन्तु नीलकान्त शास्त्री इससे सहमत नहीं हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जीता; रामेश्वरम् में लूट-पाट की और चोल राज्य की प्रजा को सन्त्रस्त किया। राजाधिराज के सामन्त शम्बुरायन ने सुरक्षा के लिए भगवान शिव की स्तुति की जिसके परिणामस्वरूप दंडनायक लंकापुरि एवं जयद्रथ भाग गए। कुलशेखर ने राजाधिराज के यहां शरण ली और राजसिंहासन प्राप्त करने के लिए उससे सहायता मांगी, जिसके उत्तर में चोल शासक ने कुलशेखर को मदुरा के राजपीठ पर बैठाने के लिए अपनी सेना भेजी और श्रीलंका के दंडनायकों आदि को मरवाकर उनके सिर मदुरा नगर के दरवाजों पर टंगवा दिए। इस प्रकार चोलों की सहायता से कुलशेखर को मदुरा का राजसिंहासन प्राप्त हो गया। राजाधिराज के शासन के 11वें वर्ष के एक अभिलेख में उसे मदुरा तथा ईलम (श्रीलंका) पर अधिकार करने वाला (मदुरैयुम्-ईलमुम-कोंडरुलिन) कहा गया है। परन्तु वास्तव में वह श्रीलंका पर अधिकार नहीं कर सका, उसने केवल पराक्रमबाहु की सेना को पराजित किया था।

राजाधिराज द्वितीय के राज्यकाल में चोलों ने आन्ध्र प्रदेश को खो दिया जिसे 1169 ई० के कुछ ही समय के बाद कलचुरि शासक सोमेश्वर सोविदेव ने अधिकृत कर लिया था। राजाधिराज के अभिलेख तंजोर, तिरुनेलवेलि, तिरुचिरापल्ली, पुटुकोट्टै, चित्तूर तथा नेल्लोर तथा ज़िलों से प्राप्त हुए हैं। उसने सम्भवतः करिकाल का विरुद धारण किया था। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार उसने 1179 या 1182 ई० तक राज्य किया था, आर० सथियनथायर के अनुसार 1179 ई० तक और डी० सी० गांगुली के अनुसार 1190 ई० तक।

कुलोत्तुंग तृतीय परकेशरिवर्मन—राजाधिराज द्वितीय ने कुलोत्तुंग तृतीय को अपना उत्तराधिकारी चुना था, परन्तु दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। 1178 ई० में कुलोत्तुंग ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। उसके राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में कोंगुदेश में विद्रोह हुआ था। कुलोत्तुंग ने विद्रोहियों का दमन कर इस राज्य को पुनः अपने अधीन कर लिया[1]।

राजाधिराज द्वितीय की भांति कुलोत्तुंग तृतीय ने भी पांड्यों की राजनीति में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप किया। उसके राज्यकाल में वीरपांड्य एवं विक्रमपांड्य के बीच गृह-युद्ध हुआ जिसमें सिंहल के शासक ने वीरपांड्य की सहायता की और कुलोत्तुंग ने उसके प्रतिद्वन्दी की। चोल शासक को पांड्यों से तीन बार युद्ध करने पड़े। कुलोत्तुंग के शासन के नवें वर्ष के चिदम्बरम् के एक अभिलेख

1. कुलोत्तुंग तृतीय के अभिलेख 1190 तथा 1194 ई० के मध्य उसका कोंगु-राज्य पर प्रभुत्व प्रमाणित करते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में बतलाया गया है कि विक्रमपांड्य द्वारा सहायता मांगने पर उसने अपनी एक सेना भेज दी। मदुरा के निकट तिरुवेदगम् नामक स्थान पर हुए युद्ध में वीरपांड्य पराजित हुआ[1]। मरवों (सम्भवतः मदुरा एवं तिरुनेलवेलि ज़िले की मरव नामक जनजाति[2]) की सेना परास्त हुई; शिंगल (केरल) के सैनिकों की नाक काट ली गई और वे समुद्र में प्रविष्ट हो गए; वीरपांड्य को पीछे हटना पड़ा और (कुलोत्तुंग ने) विक्रमपांड्य को मदुरा नगर एव पांड्य राजसिंहासन दे दिया। इस विजय के उपरान्त चोलों ने मदुरा में एक विजय-स्तम्भ स्थापित किया। कुलोत्तुंग के शासन के 11वें वर्ष के एक अभिलेख के अनुसार चोल सेना ने वीरपांड्य के पुत्र की नाक काट ली; कूडलनगर (मदुरा) विक्रमपांड्य को दे दिया; वीरपांड्य का राजमुकुट सहित सिर काट लिया और युद्ध की सफल परिसमाप्ति पर मदुरा में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया। इसके पश्चात् 16वें वर्ष के तिरुविडैनरुकूर अभिलेख में वर्णित है कि कुलोत्तुंग ने उत्तर के कई राजाओं को पराभूत किया कच्चि (सम्भवतः कांची) मे प्रवेश किया और उत्तर के सम्पूर्ण क्षेत्र से कर एवं भेटें आदि प्राप्त कीं। उसने वलुदि (पांड्य शासक) के पुत्र की नाक काट ली; मदुरा को जीत कर विक्रमपांड्य को दे दिया; वीरपांड्य को नेट्टूर के युद्ध में पराजित कर खदेड़ दिया और उसकी रानी को अपने वेलम् में भेज दिया। तदुपरान्त जब पांड्य राजा (तेन्नवन) तथा चेर राजा (शेरलन) चोल सम्राट के समक्ष नतमस्तक हुए, तो उसने पांड्य शासक के राजमुकुट पर अपना पैर रख दिया और उसे जाने की इजाजत दे दी। चेर शासक को कुलोत्तुंग ने वह धन-सम्पत्ति आदि दी जो अन्य किसी को नहीं दी थी। यह विवरण स्पष्ट नहीं है।

उपर्युक्त अभिलेखों में वर्णित घटनाक्रम सम्भवतः इस प्रकार था—1182 ई० के लगभग कुलोत्तुंग ने विक्रमपांड्य को मदुरा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया था, परन्तु चोल सेना के वापस आने के पश्चात् वीरपांड्य ने अपने प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध पुनः युद्ध छेड़ दिया। 1189 ई० के पहले किसी समय चोल शासक ने वीरपांड्य को नेट्टूर नामक स्थान पर पराजित कर दिया। इस युद्ध में केरल के राजा ने भी वीरपांड्य का साथ दिया था। पराजित होने के

1. हुल्ट्श द्वारा किए गए अनुवाद के अनुसार वीरपांड्य का पुत्र मारा गया था।
2. यह समीकरण हुल्ट्श ने सुझाया है। नीलकान्त शास्त्री ने इसे मरप्पडै माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पश्चात् वीरपांड्य ने कोल्लम् (क्वीलन) में केरल के शासक वीरकेरल के यहां शरण ली। परन्तु वह (केरल का राजा) चोलों से अधिक समय तक शत्रुता बनाए रखने की स्थिति में नहीं था। अतएव वीरपांड्य के साथ वीरकेरल ने भी कुलोत्तुंग के समक्ष समर्पण कर दिया और उसने दोनों को क्षमा कर दिया।

वीरपांड्य का सिंहल के राजा ने साथ दिया था, इसलिए चोलों की सिंहल के शासक से भी शत्रुता हो गई। कुलोत्तुंग ने सिंहल पर विजय प्राप्त करने का दावा किया है। दूसरी ओर श्रीलंका के राजा निःशंकमल्ल के विषय में कहा गया है कि उसने तीन बार पांड्य राज्य को आक्रान्त किया और रामेश्वरम् पर अधिकार कर लिया था।

कुलोत्तुंग तथा पांड्यों के बीच हुए तीसरे युद्ध का विवरण चोल शासक के शासन के 34वें वर्ष के पुदुकोट्टै अभिलेख में मिलता है। इस अभिलेख के अनुसार करुवूर में विजयाभिषेक का आयोजन करने के उपरान्त कुलोत्तुंग ने मदुरा में अपना वीराभिषेक करने के लिए प्रस्थान किया। इस वीराभिषेक का उल्लेख सबसे पहले कुलोत्तुंग के शासन के 29वें वर्ष के अभिलेख में हुआ है और इस आधार पर इसकी तिथि 1205 ई० के लगभग मानी जा सकती है।

विक्रमपांड्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी जटावर्मनकुलशेखर कुलोत्तुंग का शत्रु बन गया और उसने चोल शासक से युद्ध छेड़ दिया। कुलशेखर की एक प्रशस्ति में दावा किया गया है कि पांड्य (राजवंश के राजकीय चिह्न) मछली के सम्मुख चोलों का (राजकीय चिह्न) सिंह तथा चेरों का (राजकीय चिह्न) धनुष भयभीत होकर छिप गए थे। दूसरी ओर चोल अभिलेखों का कथन है कि कुलोत्तंग से पराभूत होकर पांड्य शासक तथा उसके सम्बन्धियों ने भागकर जंगलों में शरण ली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि जटावर्मनकुलशेखर को पराजित करने के पश्चात् चोल शासक ने उसका राज्य वापस दे दिया था।

उत्तरी अर्काट तथा नेल्लोर जिलों के मध्यवर्ती क्षेत्रों के शासक तेलुगूचोड कुलोत्तुंग के सामन्त थे। उन्होंने स्वतन्त्रता घोषित करने का प्रयास किया होगा। इसलिए 1196 ई० में उसने तेलुगूचोडों से कांची नगर अपहृत कर लिया[1]। 1208 ई० में कुलोत्तुंग ने आन्ध्र राज्य को आक्रान्त किया और वेंगीमंडलम् को

1. कुलोत्तुंग तृतीय के शासन के 19वें वर्ष के श्रीरंगम् अभिलेख में वर्णित है कि उत्तर के राजाओं को उसके समक्ष नतमस्तक होना पड़ा और कच्चि (कांची) में प्रवेश कर उसने वहां के शासकों से कर एवं भेंटें प्राप्त कीं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अधिकृत कर वहां स्वर्ण की वर्षा की[1]। परन्तु इन अभियानों का पूरा ब्योरा नहीं दिया गया है।

कुलोत्तुंग के राज्यकाल के अभिलेख चिंगलेपुट, चित्तूर, कोयम्बटूर, मद्रास, सलेम, तिरुचिरापल्ली, कडप्पा तथा नेल्लोर जिलों में पाए गए हैं। होयसल, अदिगैमान, बाण, गंग, काडव तथा मलैमान उसके सामन्त थे। इनमें होयसल सर्वाधिक शक्तिशाली थे। कुलोत्तुंग के शासन के 23वें तथा 24वें वर्ष (1201 तथा 1202 ई०) में भयंकर अकाल पड़ा था जिससे प्रजा को अत्यधिक विपत्ति का सामना करना पड़ा। 1201 ई० के तंजोर के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि इस संकटकाल में मंहगाई की अधिकता के कारण एक बेल्लाल तथा उसकी दो पुत्रियों ने भोजनाभाव के कारण प्राण-रक्षा के लिए अपने को 110 काशु में दास-दासियों के रूप में बेंच दिया था। इस अवसर पर स्थानीय संस्थाओं द्वारा जनता को दी गई सहायता का विवरण तो मिलता है। कुलोत्तुंग ने भी प्रजा को राहत पहुंचाने के लिए कुछ कदम उठाए होंगे, यद्यपि इस प्रकार के किसी कार्य का उल्लेख उसके राज्यकाल के अभिलेखों में नहीं हुआ है।

कुलोत्तुंग का शासन निर्माण-कार्यों तथा कलात्मक गतिविधियों के लिए विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उसके द्वारा निर्मित सर्वाधिक भव्य स्मारक तंजोर ज़िले के त्रिभुवनम् नामक स्थान पर कम्पट्टरेश्वर (त्रिभुवनवीरेश्वर) का मन्दिर था। इस देवालय में रामायण की घटनाएं भी उत्तीर्ण की गई थीं। उसने चिदम्बरम् के मन्दिर का मुखमंडप तथा गिरेन्द्रजादेवी के मन्दिर के गोपुर एवं अहाते के चारों तरफ प्राकार का निर्माण कराया। तिरुवारुर में उसने सभा-मंडप तथा वल्मीकेश्वर देवालय के विशाल गोपुर बनवाए और कांची के एकमेश्वर और मदुरा के हालाहलस्य के मन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं नवीनीकरण कराया। 1213 ई० के एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि मद्रास के निकट तिरुवोरियूर में व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन के लिए एक विद्यालय था।

कुलोत्तुंग तृतीय के राज्यकाल में चोल साम्राज्य की गरिमा काफी हद तक कायम रही, यद्यपि काकतीय, यादव तथा होयसल शक्तिशाली हो गए थे। गंगैकोंडचोलपुरम् प्रमुख राजधानी और तंजोर एवं उरैयूर उपराजधानियां थीं। उसने मदुरैयुमपांडियनमुडित्तलैकोंडरुलिय (जो मदुरा तथा पांड्य शासक का सिर काटकर प्रसन्न हुआ), मुडिवलगुशोल, त्रिभुवनचक्रवर्ति, शोलकेरलदेव तथा त्रिभुवनवीर नामक विरुद धारण किए। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार, राजा-

1. उपर्युक्त विवरण कुलोत्तुंग के पुडुकोट्टै अभिलेख में मिलता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

क्कलतम्बिरानतिरुवोदि भी सम्भवतः उसका एक उपनाम था। उसी के राज्यकाल में जैन लेखक भवनन्दि ने तमिल व्याकरण ग्रन्थ नन्नूल की रचना की थी। प्रतिद्वन्दी पांड्य राजाओं के समर्थक होने के कारण चोलों तथा श्रीलंका के राजाओं में शत्रुता स्वाभाविक थी। कुलोत्तुंग ने श्रीलंका के विरुद्ध विजय प्राप्त करने का दावा किया है। दूसरी ओर निःशंकमल्ल के विषय में बतलाया गया है कि उसने तीन बार पांड्य राज्य को आक्रान्त किया और रामेश्वरम् पर अधिकार कर लिया था। राज्यकाल के अन्तिम भाग में 1215-16 ई० में कुलोत्तुंग का जटावर्मन के भाई मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम से भीषण युद्ध हुआ। सुन्दरपांड्य की एक प्रशस्ति में काव्यात्मक भाषा में वर्णित है कि उसने व्याघ्र (चिह्न वाले राजा) का अधिकार क्षेत्र पोन्नि (चोल) देश तक सीमित कर दिया और पांड्य देश में मछली (पांड्यों का राजकीय चिह्न) की प्रभुसत्ता स्थापित कर दी। कुलोत्तुंग इस शक्तिशाली पांड्य शासक के सम्मुख नहीं टिक सका और पराजित होकर उसे सुन्दरपांड्य की अधिसत्ता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु बाद में होयसलों ने पांड्यों को हराकर अपने चोल अधिपति को उनके प्रभुत्व से मुक्त कराया। होयसल बल्लाल को चोलराज्यप्रतिष्ठाचार्य तथा पांड्यगजकेशरि (पांड्य रूपी हाथी के लिए शेर) और उसके पुत्र नरसिंह द्वितीय को चोलकुलैकरक्षक (चोलवंश का एकमात्र रक्षक) कहा गया है। शक संवत् 1184 (1261-62 ई०) के वेल्र के एक अभिलेख के अनुसार उसने शत्रुओं के पीछे छिपे हुए चोल शासक (कुलोत्तुंग तृतीय) की रक्षा की और चोलस्थापन एवं पांड्यखंडन की उपाधियां धारण कीं। परन्तु इस अपमानजनक पराजय के कुछ ही समय बाद कुलोत्तुंग की मृत्यु हो गई। उसका अन्तिम तिथियुक्त अभिलेख उसके शासन के 40वें वर्ष (1217-18 ई०) का है।

राजराज तृतीय कुलोत्तुंग तृतीय के पश्चात् राजराज तृतीय राजा हुआ। युवराज के रूप में उसका अभिषेक 1216 ई० में हुआ था। कुलोत्तुंग तृतीय से उसका सम्बन्ध निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। आर० सथियनथायर के अनुसार वह सम्भवतः कुलोत्तुंग का पुत्र था। यह उल्लेखनीय है कि राजराज तृतीय तथा उसके उत्तराधिकारी राजेन्द्र तृतीय के अभिलेखों में कुलोत्तुंग तृतीय को **पेरियदेवर** (महान या बड़ा राजा) कहा गया है। क्या वह कुलोत्तुंग का छोटा भाई तथा अधीनस्थ था ?

राजराज तृतीय के राज्यकाल में चोलों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा का पतन हुआ और पांड्य, होयसल, काकतीय, तेलुगूचोड, यादव तथा काडव काफी शक्तिशाली हो गए थे। तंजोर से प्राप्त [illegible] अभिलेखों में उसके शासन

CC-0. UP State Museum, Prayagraj. Digitized by eGangotri

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के पांचवें वर्ष में हुए विद्रोहों का विवरण है जिनके परिणामस्वरूप चोल राज्य असुरक्षित हो गया था धन-सम्पत्ति की भारी हानि हुई; एक मन्दिर उजाड़ दिया गया था, और इसमें स्थापित प्रतिमाओं एवं चल-सम्पत्ति को दूसरे सुरक्षित स्थान तक पहुंचाया गया था। इसके अतिरिक्त दो ग्रामों के दानपत्रों आदि को भी नष्ट कर दिया गया था। इन विद्रोहियों के नाम वर्णित नहीं हैं। सम्भवतः ये स्थानीय विप्लव रहे होंगे। वस्तुतः राजराज के शासनकाल में विप्लव एवं राजद्रोह एक आम बात हो गई थी।

राजराज में राजनैतिक दूरदर्शिता का अभाव था। उसने जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम से हुई सन्धि की शर्तों को तोड़कर उससे शत्रुता ठान ली, उसे कर देना बन्द कर दिया और उसकी अधिसत्ता को चुनौती देने के लिए एक विशाल वाहिनी भेजी जिसने पांड्यों से भयंकर युद्ध किया। जटावर्मन के राज्यकाल के कई अभिलेखों में इस तुमुल युद्ध का विवरण है जो संक्षेप में इस प्रकार है–

चोल सेना पांड्यों द्वारा पराजित हुई; उनके बहुत से सैनिकों, हाथियों घोड़ों एवं सम्पत्ति का विनाश हुआ, उरैयूर तथा तंजोर को जला दिया गया; राजराज और उसके सामन्त कोप्परुंजिंग को खदेड़ दिया गया; चोल शासक की रानी एवं अन्त.पुर की अन्य स्त्रियों को बन्दी बना लिया गया और जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने चोल राजधानी मुडिकोंडशोलपुरम् में अपना अभिषेक कराया।

होयसलों ने राजराज तृतीय की कई बार रक्षा की थी। इसलिए वह उनके अधिपति के स्थान पर संरक्षित शासक बन गया था और वास्तविक सत्ता होयसलों के हाथों में ही थी। नरसिंह द्वितीय के पुत्र सोमेश्वर ने 1239-40 ई० में तिरुचिरापल्ली जिले में श्रीरंगम् के निकट कण्णनूर को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया और वहां से वह चोलों की अधिक सक्रिय रुप से सहायता करने लगा।

राजराज के अभिलेख तिरुचिरापल्ली, तंजोर, सलेम, चित्तूर, चिंगलेपुट, उत्तरी एवं दक्षिणी अर्काट, कडप्पा तथा नेल्लोर जिलों में पाए गए हैं। तेलुगू चोड, बाण, वैदुम्ब, नोलम्ब एवं गंग राजवंश उसकी अधीनता स्वीकार करते रहे। परन्तु राजराज के राज्यकाल में चोल साम्राज्य के पतन एवं विघटन की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। उसके शासन का अन्त 1246 ई०[1] में हुआ।

1. के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा आर० सथियनथायर के अनुसार राजराज के शासन का अन्त 1246 ई० में हुआ। परन्तु डी० सी० गांगुली के अनुसार उसने 1252 ई० तक शासन किया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राजेन्द्र तृतीय–राजराज तृतीय का उत्तराधिकारी राजेन्द्र तृतीय 1246 ई० में युवराज चुन लिया गया था। इन दोनों शासकों का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित रुप से ज्ञात नहीं। आर० सथियनथायर का अनुमान है कि राजेन्द्र राजराज तृतीय का पुत्र रहा होगा। राजेन्द्र सुयोग्य एवं महत्वाकांक्षी शासक था और उसने चोल राजवंश की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए सक्रिय प्रयास किए। युवराज नियुक्त होने के बाद ही उसकी शक्ति एवं प्रभाव में पर्याप्त अभिवृद्धि हो गई थी। राजराज तृतीय के शिलालेख उसके 34वें वर्ष के बाद अल्प संख्या में मिले हैं और वे मुख्यतः उत्तरी अकार्ट एवं नेल्लोर जिलों तक ही सीमित रहे। इसके विपरीत इसी काल में न केवल युवराज राजेन्द्र तृतीय के अभिलेखों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, वरन् वे चोल साम्राज्य के अधिकांश प्रदेशों से प्राप्त हुए है। ये तथ्य राजराज तृतीय की दुर्बलता एवं राजेन्द्र की वर्धमान शक्ति तथा प्रभाव को स्पष्टतः प्रमाणित करते हैं।

वी० वेंकैय्या के अनुसार राजराज तृतीय तथा राजेन्द्र तृतीय के बीच गृह-युद्ध हुआ था जिसके परिणामस्वरूप चोल साम्राज्य का विभाजन हो गया। कृष्ण शास्त्री की मान्यता है कि राजेन्द्र तृतीय ने राजराज तृतीय का वध कर दिया था[1]। परन्तु इनमें से कोई भी सुझाव किसी स्पष्ट साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है।

राजेन्द्र तृतीय की प्रशस्ति में कहा गया है कि उसने चोलों के अपमान का प्रतिशोध ले लिया और अपनी शक्ति से राजराज तृतीय को तीन वर्ष तक दो राजमुकुट धारण करने के योग्य बना दिया था[2]। इनमें से एक राजमुकुट चोलों का और दूसरा सम्भवतः पांड्यों का रहा होगा।

राजेन्द्र तृतीय महत्वाकांक्षी शासक था और उसने होयसलों, काकतीयों तथा पांड्यों के विरुद्ध विजयें प्राप्त करने का दावा किया है। उसके राज्यकाल तक होयसल चोलों के स्वामिभक्त सामन्त बने रहे और उन्होंने कई बार उनकी रक्षा की। किन्तु राजेन्द्र तृतीय के शासनकाल में राजनैतिक आवश्यकताओं के अनुरूप होयसलों ने अपनी कूटनीति एवं रणनीति को बदल दिया और पतनोन्मुख चोलों के विरुद्ध वे उदीयमान पांड्यों से मिल गए। होयसलों की सहायता

---

1. नीलकान्त शास्त्री के अनुसार राजेन्द्र तृतीय की प्रशस्ति में प्रयुक्त एक शब्द को धूर्त पढ़कर कृष्ण शास्त्री ने उक्त मत प्रतिपादित किया है, किन्तु वास्तव में दृप्त पाठ सही है, धूर्त नहीं।
2. चोलकुलपरिभवनिराकरण-विक्रम-विजयाभिषिक्त-मुकुटद्वयराज।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

खो देने के बाद राजेन्द्र ने नेल्लोर, कडप्पा तथा चिंगलेपुट जिलों के शक्तिशाली शासक तेलुगूचोडों को अपना मित्र बना लिया। कवि टिक्कनसोमयाजि का कथन है कि तेलुगूचोड गंडगोपाल ने कर्नाट के राजा सोमेश्वर को पराजित कर चोल शासक को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया और **चोलस्थापनाचार्य** की उपाधि धारण की। तिरुचिरापल्ली से प्राप्त राजेन्द्र तृतीय के शासन के 7वें वर्ष के अभिलेखों में भी उसे (राजेन्द्र तृतीय को) अपने मामा होयसल सोमेश्वर के विरुद्ध विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है।

राजेन्द्र तृतीय का पांड्यों से भी संघर्ष हुआ। एक अभिलेख में उसे पांड्य शासक का सिर काटने में दक्ष (पांड्यमणिमुकुटशिरखंडनपंडित) और दूसरे में इरुवरपांड्यरमुडित्तलैकोंडरुलिन कहा गया है। इस प्रकार उसने दो पांड्य शासकों को पराभूत करने का दावा किया है। इनमें से एक मारवर्मनसुन्दर पांड्य द्वितीय रहा होगा, किन्तु दूसरे पांड्य राजा का समीकरण निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। राजेन्द्र के शासन के 15वें वर्ष के एक अभिलेख में उसकी काकतीयों के विरुद्ध सफलता का संकेत है।

परन्तु चोलों की इन सामरिक सफलताओं के प्रभाव स्थाई नहीं रह सके। होयसलों ने श्रीरंगम् को पुनः अधिकृत कर लिया और चोल साम्राज्य के उत्तरी भाग के नेल्लोर, कडप्पा तथा करनूल जिलों पर काकतीयों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। गणपति एवं रुद्राम्बा के राज्यकाल के अभिलेख उपर्युक्त जिलों में प्राप्त हुए है। शेन्दमंगलम् (तंजोर जिले में) में कोप्पेरुंजिग स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था। बाद में पांड्यों की वर्धमान शक्ति ने कुछ समय के लिए दक्षिण भारत के अधिकांश राजवंशों को ग्रसित कर लिया। जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने होयसल सोमेश्वर प्रथम को पराजित कर मार डाला, काकतीयों को कांची से निकाल दिया, नेल्लोर पर अधिकार कर लिया और राजेन्द्र तृतीय को अपनी अधिसत्ता मानने के लिए बाध्य कर दिया था। श्रीरंगम् से प्राप्त पांड्य शासक के एक अभिलेख में उसे 'चोल प्रजातिरूपी पर्वत के लिए वज्र' कहा गया हैं। वस्तुतः 1258 ई० के बाद राजेन्द्र ने पांड्यों के सामन्त के रूप में राज्य किया। उसका अन्तिम ज्ञात अभिलेख उसके शासन के 28वें वर्ष का है। उसने 1271 ई० के आस-पास तक शासन किया और उसकी मृत्यु के साथ ही चोल-चालुक्य शासन का अन्त हो गया।

प्रशासन व्यवस्था

केन्द्रीय शासन—सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था में राजा का स्थान सर्वोपरि था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

साम्राज्यवादी चोल चक्रवर्तिगल, त्रिलोकसम्राट तथा उदैयर जैसी सार्वभौमिक सत्ता की सूचक उपाधियां धारण करते थे। शासकों के नाम पर मन्दिरों एवं देव-प्रतिमाओं का नामकरण तथा राजाओं और रानियों की मूर्तियों की देवालयों में स्थापना भी राजा के पद की अत्यधिक गरिमा एवं प्रतिष्ठा प्रमाणित करती हैं।

चाऊ-जु-कुआ का कथन है कि राजभोजों के अवसर पर चोल राजकुमार तथा मन्त्री राजा के चरणों में प्रणाम करते थे और सभी संगीत एवं नृत्य में लीन हो जाते थे। अपने कर्मचारियों आदि के मनोविनोद के लिए राजा बड़ी संख्या में नर्तकियां रखते थे और प्रतिदिन बारी-बारी से तीन हजार[1] नर्तकियां उसकी सेवा में रहती थीं।

प्रारम्भिक चोलों की राजधानी उरैयूर थी। नवीं शताब्दी में विजयालय ने तंजवुर (वर्तमान तंजोर) को राजधानी बनाया और राजेन्द्र चोल के राज्यकाल में यह गौरव नवनिर्मित गंगैकोंडचोलपुरम् नगर को प्राप्त हुआ। कांची चोलों की उपराजधानी थी।

राजकुमारों को युवराज तथा महत्वपूर्ण प्रान्तों का शासक नियुक्त किया जाता था। सामान्यतया राजा का सबसे ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी होता था। किन्ही विशिष्ट एवं असाधारण परिस्थितियों में ही इस नियम का उल्लंघन किया जाता था। राजकुमार युद्ध एवं प्रशासन में अपने पिता को सक्रिय सहयोग देते थे और स्वयं इन कार्यों का अनुभव प्राप्त करते थे।

राजा की व्यक्तिगत सेवा एवं उसे परामर्श देने के लिए, राजप्रासाद की व्यवस्था के लिए तथा प्रशासन के विभिन्न विभागों के कार्यों के लिए बड़ी संख्या में विभिन्न वर्ग के पदाधिकारी एवं कर्मचारी होते थे। सम्राट के महत्वपूर्ण आदेशों का पालन कराने का उत्तरदायित्व **ओलै** (विशिष्ट अधिकारी) को दिया जाता था। ओलै उसके आदेशों का कच्चा मसौदा तैयार करते थे और **ओलैनायगम्** उसकी जांच करते थे। उच्च सरकारी पदाधिकारियों को **पेरुन्दरम्** तथा उनसे निम्न कोटि के अधिकारियों को **शेरुतरम्** कहा जाता था। नौकरों के **वेलम्**[2] भी होते थे। धार्मिक व्यवस्थाओं के मसलों में राजा राजगुरु से ही मुख्यतः परामर्श लेते थे और उसकी राय को काफी महत्व दिया था।

स्थानीय कार्यालय, केन्द्रीय कार्यालय के अधीन होते थे। प्रशासन-व्यवस्था

1. यह सख्या सही नहीं हो सकती।
2. वेलम् में युद्ध में बन्दी बनाए हुए लोग भी होते थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को चुस्त रखने के लिए तथा स्थानीय संस्थाओं के कार्यों एवं हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल के लिए सम्राट स्वयं अपने साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों का समय-समय पर दौरा करते थे। चोल अभिलेखों में **ककाणियों** (पर्यवेक्षकों) के भी उल्लेख मिलते हैं। ये अधिकारी स्थानीय पदाधिकारियों के लेखा-परीक्षण के लिए केन्द्र की ओर से नियुक्त किए जाते थे। प्रशासन एवं कार्यालय की प्रक्रिया के विषय में कई चोल अभिलेखों में महत्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। इनमें से कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं--

आदित्य प्रथम ने अपने शासन के 21वें वर्ष में शिरियारूर का गांव **देवदान** एवं **ब्रह्मदेय** के रूप में दिया था। इसके सम्बन्ध में अगले वर्ष शासन-लेख लिखा गया और 12 वर्ष के बाद इसे लेखा-पुस्तक में दर्ज किया गया। इतना अधिक विलम्ब सम्भवत: किसी असाधारण परिस्थिति में ही किया जाता होगा।

सुन्दर चोल के अन्विल ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि ब्राह्मण सचिव अनिरुद्ध को राजा ने ब्रह्माधिराज की उपाधि से सम्मानित किया था और उसके नाम दस वेलि भूमि का स्थाई पट्टा कर दिया था। राजा के इस आदेश को **आणत्ति** ने **श्रीमुखम्** के रूप में भेज दिया। इसकी शेष कार्यवाही स्थानीय निगमों ने की और उसकी जांच कई लोगों ने की जिन्हें **नाट्टुकोन**, तथा **उरुडैयान्** कहा गया है। ये सम्भवत: राजकीय पदाधिकारी अथवा महत्वपूर्ण स्थानीय लोग रहे होंगे।

वीरराजेन्द्र के तिरुमुक्कूडल अभिलेख में वर्णित है कि राजा के एक आदेश को सबसे पहले **तिरुमन्दिर-ओलय** ने लिखा। इसके बाद तीन अधिकारियों ने उसकी जांच की और उसे दर्ज कर लिया। तदुपरान्त उडंगकूट्टम के छ: अधिकारियों, विडैयिल के 28 अधिकारियों तथा नडुविरुक्कम के चार अधिकारियों ने इसका पालन कराया। फिर नौ अधीक्षकों (कणकाणि), एक वरिपोत्तगम, 11 मुगवेट्टि, तीन वरिइलीडु, दो वरित्पोत्तगककणकु तथा एक पट्टोलै को उपस्थिति में उसे पढ़ा गया और वेरि में दर्ज कर लिया गया। यह उदाहरण बहुत जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया का प्रमाण प्रस्तुत करता है, जो कि राजा के बहुत महत्वपूर्ण आदेशों को क्रियान्वित करने में लिए ही अपनाई जाती होगी, प्रत्येक आदेश में नहीं।

कुलोत्तुंग प्रथम ने अपने राज्यकाल के 12वें वर्ष में 108 ब्राह्मणों को एक **चतुर्वेदिमंगलम्** (करमुक्त ब्रह्मदेय) दिया था। इस सङ्गम में [illegible] की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पंजी) में दर्ज किया गया। तदुपरान्त मुडिगोंडशोलमंडलम् के मंडलमुदलियार को इसके विषय में सूचित किया गया, जहां पर यह भूमि स्थित थी।

प्रशासन की इकाइयां–प्रशासन व्यवस्था की लघुतम इकाई ग्राम थी। कई ग्रामों से मिलकर **कूर्रम** या **नाडु** बनता था[1], कई **कूर्रम्** से **वलनाडु** या **नाडु** और कई **वलनाडुओं** से **मंडल** बनता था। मंडल प्रान्त के समकक्ष था। राजराज प्रथम के राज्यकाल में उसके साम्राज्य में कुल आठ या नौ मंडल थे। सम्भवतः अन्य महान चोल शासकों के समय में भी इस संख्या में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ होगा।

स्थानीय प्रशासन–चोलों के शासनकाल में स्थानीय प्रशासन को सर्वाधिक महत्व दिया गया। आठवीं तथा नवीं शताब्दियों में ही ग्राम-प्रशासन काफी विकसित हो गया था और साम्राज्यवादी चोल सम्राटों ने इसे अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। स्थानीय प्रशासन मुख्यतः ग्राम-सभाओं, नगर-सभाओं तथा मंडल-सभाओं के माध्यम से संचालित होता था। ग्रामों एवं नगरों की सभाएं प्रजा की वास्तविक संस्थाएं थीं जबकि **नाडुओं** की सभाएं प्रतिनिधि संस्थाएं थीं।

ग्राम-प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु सभाएं थीं। गांव का प्रत्येक वयस्क व्यक्ति इनका सदस्य होता था। सभाओं के अपने अध्यक्ष, समुदाय तथा निगम होते थे। इनमें से प्रत्येक संगठन किसी विशिष्ट संस्था या कार्य की देखभाल करता था। सभाओं की अपेक्षा समुदाय का कार्यक्षेत्र काफी सीमित होता था[2]। चोल साक्ष्यों में तीन प्रकार की ग्राम-सभाओं के विवरण मिलते हैं—**ऊर, सभा तथा नगरम्**।

ऊर–ऊर का शाब्दिक अर्थ 'पुर' है। यह शब्द ग्राम तथा नगर, दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। ऊर एक सामान्य प्रकार की सभा थी। इसके संगठन तथा कार्यपद्धति के विषय में अधिक सूचना नहीं मिलती। इसकी कार्यसमिति को **आलुंगणम्** कहते थे। ऊर अपने प्रतिनिधियों से दस्तावेजों के मसौदे तैयार करा-कर उन्हें लेखबद्ध करती थी। इसके सदस्यों को नकद धन दिया जाता था जिसे वे किसी भी व्यवसाय में लगाने के लिए स्वतन्त्र थे।

कभी-कभी ऊर तथा सभा संयुक्त रुप में कार्य करती थीं। किसी-किसी

1. इसे **कोट्टम्** तथा **तनियूर** भी कहते थे।
2. समुदाय किसी विशिष्ट कार्य को करते थे–यथा किसी मन्दिर की सुरक्षा अथवा उसकी अर्थ-व्यवस्था को देखना।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गांव में दो ऊर भी होते थे। 1227 ई० में शात्तमंगलम् में इस प्रकार के दो ऊर थे। उन्होंने मिलकर एक तालाब एवं पुष्पवाटिका के लिए कुछ जमीन लेकर उसे कर-मुक्त कर दिया था और उस भूमि के लगान की वसूली का उत्तरदायित्व भी स्वयं ले लिया था। 1245 ई० के लगभग कुमारमंगलम् तथा अमणकुंडि नामक ग्रामों में से प्रत्येक में दो ऊर विद्यमान थे।

सभा या महासभा—सभा या महासभा को **पेरुगुरि** तथा इसके सदस्यों को **पेरुमक्कल** कहते थे। यह ब्राह्मण वस्तियों (अग्रहारों) की संस्था थी। चोल अभिलेखों में इसके बहुत अधिक उल्लेख मिलते हैं और इसके कार्यों का विवरण देने वाले अभिलेख मुख्यतः तोंडमंडलम् तथा चोलमंडलम् से प्राप्त हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनका प्रमुख केन्द्र कांची के आसपास का भू-भाग था।

सभा का संगठन बहुत महत्वपूर्ण तथा जटिल था। यह मुख्य रुप से अपनी समितियों (वारियम्) के माध्यम से कार्य करती थी। विभिन्न सभाओं के वारियमों की संख्या तथा उनके कार्य स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार पृथक्-पृथक् होते थे। सभा की कार्यसमिति के सदस्यों को वारियप्पेरुमक्कल कहते थे।

उत्तरमेरुर से प्राप्त परान्तक प्रथम के राज्यकाल के 919 तथा 921 ई० के दो अभिलेखों में स्थानीय महासभा द्वारा वारियमों (executive committees) के सम्बन्ध में पारित किए गए प्रस्तावों के विवरण हैं। 919 ई०के एक अभिलेख में सभा द्वारा पांच समितियों के गठन-सम्बन्धी एक प्रस्ताव का उल्लेख है जो राजा द्वारा नियुक्त एक पदाधिकारी की उपस्थिति में पारित किया गया था। द्वितीय प्रस्ताव ने प्रथम प्रस्ताव को रद्द कर दिया था। 921 ई० में पास किए गए प्रस्ताव के नियमों के अनुसार गांव के 30 वार्डों में से प्रत्येक को ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करना था जिनके पास $\frac{1}{4}$ वेलि (लगभग 1 डेढ़ एकड़) भूमि तथा अपनी जमीन पर बना मकान हो; जिनकी आयु 35 से 70 वर्ष के बीच हो; जो वैदिक मन्त्रों के ज्ञाता हो; अथवा जिनके पास $\frac{1}{8}$ वेलि (लगभग $\frac{3}{4}$ एकड़) भूमि हो; और जो वेद के ज्ञाता हों। किसी कमेटी में तीन वर्ष से अधिक समय तक कार्य करने वाले, कमेटी के खर्चे का ब्योरा प्रस्तुत न करने वाले और व्यभिचारी अथवा चोरी आदि अपराधों के दोषी व्यक्तियों को उपर्युक्त चुनाव के लिए अयोग्य समझा जाता था।

नियमानुसार मनोनीत व्यक्तियों में से 30 सदस्य कुडुम्बुओं (wards) के लिए चुने जाते थे। अर्हता प्राप्त व्यक्तियों के नाम ताड़पत्रों पर लिखकर उन्हें एक बर्तन में [illegible] इसके पश्चात् किसी अल्पायु के बालक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्वारा केवल उतने ताड़पत्रों को निकलवा लिया जाता था जितने सदस्य मनोनीत किये जाते थे। 30 सदस्यों में से 12 जो कि वयोवृद्ध, विद्वान तथा उद्यान एवं तड़ाग समितियों के कार्यों में अनुभवी होते थे, **सम्वत्सरवारियम्** (वार्षिक समिति) के लिए, 12 व्यक्तियों को उद्यान-समिति (**तोट्टवारियम्**) के लिए तथा छः को तड़ाग समिति (**येरिवारियम्**) के लिए चुना जाता था। इन सदस्यों की संख्या आवश्यकतानुसार विभिन्न ग्रामों में पृथक्-पृथक् होती थी और उनकी सेवा के लिए उन्हें कोई नियमित वेतन नहीं दिया जाता था।

922 ई० में परान्तक के शासनकाल में एक ग्राम सभा ने गांव के लोगों के लिए ग्राम में ही स्वर्ण परीक्षण करने वाली एक समिति का गठन किया था। इसमें स्वर्ण परीक्षण में ख्यातिलब्ध आठ सदस्य थे। यह समिति सम्भवतः सभा की स्वर्ण समिति (**पोनवारियम्**) की सहायता के लिए बनाई गई थी। परान्तक प्रथम के 933 ई० के एक अभिलेख में वर्णित है कि दो पड़ोसी ग्रामों की सभाओं ने मिलकर तय किया था कि वे दोनों गांव एक समझे जांए।

गांव की अक्षय-निधियां जिनमें से अधिकांश मन्दिरों के लिए दी जाती थीं, वहां की सभा के अधीन होती थीं। वे मन्दिरों से सम्बन्धित समस्त कार्यों को देखती थीं। देवालयों, धर्मशालाओं, चिकित्सालयों तथा वैद्यों के लिए अक्षय-निधियां देने वाले व्यक्तियों को सभा पूर्ण सहयोग देकर प्रोत्साहित करती थी। सभाएं भूमि स्वामित्व तथा सिंचाई के कार्यों में विशेष अभिरुचि लेती थीं। तालाबों आदि के द्वारा कावेरी तथा अन्य नदियों के पानी का सिंचाई के लिए भरपूर उपयोग किया जाता था। इन तड़ागों के रख-रखाव के लिए भी सभाएं प्रयत्नशील रहतीं थीं और उन्हें वनों तथा बेकार जमीनों को अधिकृत करने का अधिकार प्राप्त था। राजा की अनुमति प्राप्त किए विना ही सभा कर लगा सकती थी तथा करों को माफ भी कर सकती थी। राजकेशरि के शासन के दूसरे वर्ष में नालूर की सभा ने दूकानों से मिलने वाला कर (अंगाडिक-कूलि) हमेशा के लिए एक मन्दिर के नाम कर दिया था। श्रीकंठचतुर्वेदिमंगलम् की सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा निश्चित कर दिया था कि मन्दिर की किसी सम्पत्ति पर उस दिन से कोई कर या शुल्क नहीं लिया जायेगा। उत्तरमेरुर की सभा ने एक गणिका को विशेषाधिकार दिये थे जिसने स्थानीय विष्णु-मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था।

कृषि योग्य भूमि की उपज का मूल्यांकन करने में तथा कर-निर्धारण में सभा सरकारी अधिकारियों को सहयोग देती थी। भूमि के वर्गीकरण से सम्ब-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

न्धित किसी परिवर्तन के लिए उस गांव की महासभा की स्वीकृति आवश्यक थी।

सभा की बैठक आमतौर पर सम्बन्धित ग्राम के मन्दिर में, तालाब के किनारे अथवा पेड़ के नीचे होती थी। इसके लिए निर्धारित दिन तथा समय की सूचना ढोल पीटकर दी जाती थी और सभी सदस्यों के उपस्थित होजाने पर ही कार्यवाही प्रारम्भ की जाती थी। सभा में चर्चित विषयों पर प्रस्ताव पास किए जाते थे तथा उन्हें लिख लिया जाता था।

प्रशासन सम्बन्धी तथा अन्य विभिन्न कार्यों के लिए सभा, समितियों का गठन करती थी। समितियों के सदस्यों की संख्या विभिन्न ग्रामों में आवश्यकतानुसार पृथक-पृथक होती थी। इनके सदस्य स्थानीय प्रशासन से सम्बन्धी ब्योरे रखते थे। इन सदस्यों को उनकी सेवा के लिए कोई वेतन नहीं दिया जाता था। परन्तु कार्य-समितियों को सहायता देने के लिए प्रत्येक ग्राम में कुछ वैतनिक कर्मचारी (मध्यस्थ) भी नियुक्त किए जाते थे। वे सभा के हिसाब-किताब का ब्योरा तथा अन्य दस्तावेज रखते थे। सभा इन कर्मचारियों को हटा भी सकती थी। 1235 ई० में एक सभा ने एक लेखाधिकारी की सेवा समाप्त कर दी थी।

इस प्रकार ये सभाएं एक प्रकार से लघु गणतन्त्र एवं प्रशासन-व्यवस्था की आधारशिला थीं। राज्य कर्मचारी सभाओं पर निगरानी रखते थे और समय-समय पर उनके हिसाब-किताब की जांच कर लेते थे। अन्यथा वे अपने व्यापक अधिकार क्षेत्र में विविध कार्यों को सम्पन्न करने लिए स्वतन्त्र थीं। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कभी-कभी राजा भी ध्यान देता था। उदाहरण के लिए त्रिभुवन से प्राप्त कुलोत्तुंग प्रथम के शासन के दो अभिलेखों में राजा द्वारा त्रिभुवन में सुपारी के पेड़ लगाने के विषय में निर्धारित किए गए नियमों का वर्णन है।

नगरम्—अधिकांश चोल अभिलेखों में नगरम् का प्रयोग व्यापारिक क्षेत्र के लिए हुआ है जिसमें मुख्यतः व्यापारी रहते थे। चिदम्बरम् के एक अभिलेख में नगरम्, चिदम्बरम् नगर के एक पृथक क्षेत्र के रूप में वर्णित है। राजराज प्रथम के शासनकाल के राजराजेश्वर मन्दिर पर अंकित एक अभिलेख में चार नगरम् उल्लिखित हैं जो तंजोर नगर की दीवारों के बाहर (तंजावूरप्पुरम्बडि) स्थित थे। इनमें से प्रत्येक नगरम् एक पृथक सड़क से सम्बद्ध था[1]। मामल्लपुरम् के एक अभिलेख में नगरम् के चार भागों का उल्लेख है और बतलाया गया है कि इनमें से प्रत्येक में 100 मणै (house-sites) थे।

नगरम् की प्रशासन व्यवस्था के संचालन में व्यापारियों के वर्ग सर्वाधिक

1. Trade and Statecraft in the Age of the Colas, p, 53;

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महत्वपूर्ण थे। तक्कोलम् (उत्तरी अर्काट जिले में) के अभिलेखों में नगरम् के प्रशासन से सम्बन्धित सदस्यों के दो वर्ग वर्णित हैं—नगरत्तर एवं व्यापारिनगरोत्तम। इसके लिपिक को नगरकरणत्तार और लेखाधिकारी को नगरक्कण्णक्कु कहा गया है।

राजराजेश्वर मन्दिर पर उत्कीर्ण एक अभिलेख में बाजार में बेंची जाने वाली निम्नलिखित वस्तुओं पर नगरम् द्वारा वसूल किए गए करों का विवरण है—फल, पान, सुपारी, केसर, गन्ना एवं आदि। इनके अतिरिक्त नगरम् करघों, कोल्हुओं (चेक्किरै), स्वर्णकारों (तट्टोपाट्टम्), दूकानों (अंगाडिपट्टम्), बाटों (इडैवरि), नमक (उप्पायम्), हाथियों और घोड़ों के अस्तबलों से भी कर वसूल करते थे। विभिन्न करों से प्राप्त धनराशि का उपयोग करने से सम्बन्धित उन्हें विस्तृत अधिकार प्राप्त थे[1]।

नाडु—नाडु की भी अपनी सभाएं होतीं थीं जो राजस्व सम्बन्धी कार्य करतीं थीं। नाडु अपने नाम से दान देते थे तथा अक्षय-निधियां ग्रहण करते थे। परन्तु उनकी सभाओं या समितियों आदि के विषय में स्पष्ट विवरण नहीं मिलते। सम्भव है कि नाडु की सभा में प्रत्येक ग्राम के प्रतिनिधि शामिल रहते हों। नगरम् तथा नाडु की तुलना प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित **पौर** एवं **जानपद** से की जा सकती है।

सैन्य संगठन एवं प्रशासन—चोलों की स्थल-सेना के तीन प्रमुख अंग थे—पैदल, हाथी तथा अश्व (मूनरुकैमहासनै)। वे बड़े पैमाने पर अरब देशों से कीमती घोड़े मंगवाते थे, किन्तु दक्षिण भारत की जलवायु उनके लिए अनुकूल नहीं थी। इसलिए ये घोड़े अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाते थे। चोल शासकों, विशेषरुप से राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र चोल के शासन काल में उनकी नौ सेना बहुत शक्तिशाली थी। उसने सिंहल तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक राज्यों एवं द्वीपों पर विजय प्राप्त की थीं और चेरों के समुद्री बेड़े को कंडलूरशालै में नष्ट कर दिया था। अपनी जल सेना के द्वारा वे मलाबार तथा कोरोमंडल के समुद्रतटीय क्षेत्रों पर नियन्त्रण रखते थे और बंगाल की खाड़ी चोल साम्राज्य की एक प्रकार से झील बन गई थी। नौ सेना में विभिन्न प्रकार के जहाज तथा नावें रहीं होंगी। जल सेना की युद्ध प्रणाली के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिली है। कुछ विद्वानों के अनुसार जहाजी बेड़ों पर सेना को ले जाया जाता था और नौ सेना के युद्ध वस्तुतः स्थल-युद्ध ही थे जो जहाजों की छतों (decks) से लड़े जाते होंगे।

---

1. Trade and Statecraft in the Age of the Colas, pp. 54-58.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्थल सेना में कैक्कोलस (शक्तिशाली भुजाओं वाले व्यक्ति) तथा शेगुन्दर (भाला चलाने वाले) प्रमुख थे। राजा के अंगरक्षकों को वेलैक्कार कहा जाता था। वे सेना के स्थाई तथा विश्वसनीय सैनिक होते थे।

चोल शासक सेना के प्रशिक्षण तथा अनुशासन पर काफी ध्यान देते थे। चोल अभिलेखों में कडगम् (छावनी) के भी उल्लेख मिलते हैं। 1178 ई० में एक चीनी यात्री ने चोल सेना के विषय में लिखा है कि 'इस देश का (दक्षिण भारत का) एक पश्चिमी देश से युद्ध चल रहा है। सरकार के पास सात-आठ फुट की ऊंचाई वाले साठ हजार युद्ध के हाथी हैं। इनकी पीठ पर हौदे रखे जाते हैं, जिनमें बैठे हुए सैनिक काफी दूर तक बाणों से मार कर सकते हैं। समीप के (शत्रुओं से) वे भालों से लड़ते हैं। विजय प्राप्त करने पर उन्हें सम्मान-सूचक नाम दिए जाते हैं'। आर० सथियनथायर के अनुसार सम्पूर्ण स्थाई सेना की संख्या अनुमानतः डेढ़ लाख रही होगी।

सेना सम्भवतः छोटे-छोटे गुल्मों तथा छावनियों में रहती थी। दक्षिणी अभियान के पश्चात् कुलोत्तुंग प्रथम ने कोट्टार में अपनी एक सेना तैनात कर दी थी। उसके शासन के 46वें वर्ष में सेना की एक पल्टन दक्षिण में भी स्थित थी।

राजा समस्त सेनाओं का प्रधान होता था। राजा तथा राजकुमार युद्धों में सक्रिय भाग लेते थे और सेना का नेतृत्व करते थे। चोल शासकों में राजादित्य की तक्कोलम् के युद्ध में और राजाधिराज की कोप्पम् के युद्ध में मृत्यु हुई थी। विभिन्न वर्ग के सैन्य-अधिकारियों को **नायक**, **सेनापति** तथा **महादंडनायक** कहा जाता था। युद्ध में अनुपम शौर्य प्रदर्शित करने वाले सैनिकों एवं सेनानायकों को **क्षत्रियशिखामणि** जैसी उपाधियां देकर उनका मनोबल एवं उत्साह बढ़ाया जाता था। ये उपाधियां आजकल के **वीरचक्र** तथा **परमवीरचक्र** जैसे सैनिक-सम्मानों के समतुल्य हैं।

न्याय व्यवस्था : अपराध एवं दंड—न्याय व्यवस्था मुख्यरूप से सभा तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित होती थी। छोटे-छोटे विवादों के फैसले स्थानीय निगमों द्वारा कर दिए जाते थे। जो मामले निगम या अन्य स्थानीय संगठनों के अधिकार-क्षेत्र के बाहर होते थे, उनका फैसला ग्राम-सभाएं करतीं थीं। न्याय-समितियों को **न्यायत्तार** कहते थे। कई चोल अभिलेखों में **धर्मासन** (न्याय के लिए राजा का दरबार) शब्द का उल्लेख हुआ है। धर्मासन के सामने आने वाले मसलों का निर्णय करते समय स्मृतियों के विद्वानों (**धर्मासनभट्ट**) की सहायता ली जाती थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सामान्यतया सभी अपराधों पर पहले गांव की पंचायत में ही विचार होता था और अधिकांश मसले उन्हीं के द्वारा तय कर दिए जाते थे। ग्राम-पंचायत के निर्णय से असन्तुष्ट होने पर मामले को, राजा द्वारा नाडु के प्रशासन के लिए नियुक्त अधिकारियों के पास भेजा जाता था। उनके फैसलों को अन्ततः राजा के यहां ले जाने वाले लोग अधिक नहीं होते थे।

आजकल की भांति उस युग में भी दीवानी के मुकदमें कभी-कभी बहुत लम्बे समय तक चलते थे और उनका निर्णय स्वयं समय ही कर देता था। श्रीकंठचतुर्वेदिकमंगलम् की सभा तथा तिरुवेरमवियूर के ऊर के बीच काफी समय से चले आने वाले सीमा सम्बन्धी विवाद को समाप्त करने के लिए राजा ने विवादग्रस्त भूमि में दोनों पक्षों के अधिकार खरीद लिए थे।

चोलों की दंड-व्यवस्था काफी नरम एवं उदार थी। अधिकांश अपराधों के लिए प्रायः केवल जुर्माने की सजा दी जाती थी। मनुष्य की हत्या जैसे अघन्य अपराधों में भी अभियुक्तों को सामान्यता या तो अर्थदंड दिया जाता था, अथवा मन्दिर आदि में निरन्तर दीपक जलाने की व्यवस्था करने का आदेश दिया जाता था। किसी भी अपराध के लिए मृत्युदंड लगभग अज्ञात या अप्रचलित था। चोल साक्ष्यों में मृत्युदंड का एक ही उदाहरण मिलता है। हुलिमुद्द (कर्नाटक में) में चोट पहुंचाने वाले तथा हत्या करने वाले एक अभियुक्त को प्राणदंड दिया गया था। चोल साक्ष्यों में वर्णित कुछ अपराधों एवं दंडों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. एक नोडालवान ने धनुर्धरों की एक पल्टन को छुरे भोंककर मार डाला था। इसके लिए अपराधी को निकटवर्ती एक मन्दिर में प्रतिदिन एक दीपक जलाने लिए 96 भेंड़े दान में देने का आदेश दिया गया था।

2. एक स्त्री की आत्महत्या के लिए जो व्यक्ति उत्तरदाई था, उसे केवल 32 काशु नामक सिक्कों का जुर्माना लेकर छोड़ दिया गया।

3. कुलोत्तुंग तृतीय के शासनकाल में दो व्यक्तियों ने अपने खेत में चरने वाली भैंस को मार डाला था। इस अपराध के लिए उन्हें भट्टों ने पड़ोस के एक मन्दिर में दीपक जलाने के लिए धन देने का आदेश दिया था।

4. कुलोत्तुंग तृतीय के ही राज्यकाल में ब्राह्मणों तथा देवालयों के निवासियों को त्रस्त करने वालों और झगड़ा एवं आगजनी करने वाले अपराधियों को एक हज़ार काशु का जुर्माना देना पड़ा था। इन्हीं अपराधों के सन्दर्भ में 20,000 तक के अर्थदंड का उल्लेख है। अर्थदंड की धनराशि की अदायगी न

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करने पर दंड के रुप में अतिरिक्त 70 काशु देने का भी उल्लेख हुआ है।

5. 1225 ई० के राजराज तृतीय के राज्यकाल के तंजोर ज़िले से प्राप्त दो अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि दो भाइयों तथा एक अन्य पुरुष को कई मन्दिरों का हिसाब-किताब रखने का उत्तरदायित्व दिया गया था, परन्तु उन्होंने मन्दिरों की काफी सम्पत्ति हड़प ली। मसले की जांच के पश्चात् तीनों की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उससे प्राप्त 40,000 काशुओं को सम्बन्धित देवालयों के कोष में जमा कर दिया गया था।

6. जैसा की ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, हुलिमुद् के **नाट्टराज** ने चोट पहुंचाने वाले तथा हत्या करने वाले अभियुक्त को मृत्युदंड दिया था।

राजराज तृतीय के शासनकाल में पशुओं की चोरी की घटनायें तथा राजद्रोहों की संख्या काफी बढ़ गई थी। चाऊ-जु-कुआ ने चोलों की न्याय-व्यवस्था के विषय में लिखा है 'कि जब कोई व्यक्ति किसी अपराध का दोषी पाया जाता है, तो राजा का एक मजिस्ट्रेट उसे सजा देता है। छोटे अपराध के लिए अभियुक्त को लकड़ी के चौखटे से बान्धकर उसके 50, 70 अथवा 100 डंडे तक लगाए जाते हैं। गम्भीर अपराधों के लिए अंग-भंग की सजा दी जाती है, अथवा अपराधी को हाथी के पैरों के नीचे कुचल दिया जाता है'। यह विवरण कठोर दंड-व्यवस्था की ओर संकेत करता है जिसका समर्थन अन्य समकालीन साक्ष्य नहीं करते। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि चोल शासकों की दंड-नीति अत्यधिक उदार थी जिसने कानून-व्यवस्था पर निश्चय सी बुरा प्रभाव डाला होगा।

कर व्यवस्था—राज्य की आय के प्रमुख साधन भू-राजस्व, भवन-कर, सीमा शुल्क, चुंगी, विभिन्न व्यवसायों पर लगाए गए कर, खानों की उपज एवं वन-सम्पदा थे। नियमित करों एवं उगाहियों के अतिरिक्त स्थानीय संस्थाएं चन्दे भी वसूल करतीं थी। उदाहरण के लिए 922 ई०के एरोडे के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि एक नाडु के लोगों ने एरोडे के विष्णु-मन्दिर में कृष्ण की पूजा के लिए प्रत्येक घर से $\frac{1}{8}$ पणम्, प्रत्येक विवाह में वर एवं वधू में से प्रत्येक से $\frac{1}{8}$ पणम्, हर श्मसान से एक **मजाडि** और एक कुंरि सोना उपकर के रुप में देना स्वीकार किया था। इसी वर्ष के आस-पास बाहूर नाडु के गड़रियों (मंराडियों) ने अपनी जाति के लोगों के प्रत्येक विवाह (**काट्टिलेरप्पापोड्ड**) के अवसर पर बाहूर के श्रीमूलट्टानम् के पेरुमाल (विष्णु) के लिए एक भेंड़ देने का निश्चय किया था। राजराज प्रथम के राज्यकाल में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तंजोर के तलैच्चंगाडु नामक स्थान पर एक स्थानीय देवालय में कुछ कार्यों के लिए व्यापारियों तथा धार्मिक सम्प्रदायों से चन्दा लेकर 100 काशु की एक अक्षय-निधि बनाई गई थी। 1174 ई० में कांचीपुर में तेलियों की एक श्रेणी ने तय किया था कि मन्दिर के प्रांगण में लगे प्रत्येक कोल्हू मिल के मालिक से उस मन्दिर में दीपक जलाने के लिए चन्दे के रुप में **कडमय** तथा एक **काशु** प्रतिवर्ष लिया जायेगा।

भूमि-कर वस्तुतः सरकारी अर्थ-व्यवस्था का सर्वप्रमुख स्त्रोत था। इसलिए चोल शासक कृषि की पैदावार बढ़ाने एवं लगान वसूल करने पर काफी ध्यान देते थे। भूमि-कर निर्धारित करने तथा उसके पुनर्मूल्यांकन के लिए समय-समय पर भू-सर्वेक्षण और जमीनों के वर्गीकरण आदि होते रहते थे। राजराज प्रथम ने भूमि का सर्वेक्षण कराया था। कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल में दो वार भू-सर्वेक्षण किए गए थे। इसके बाद जमीन के ब्योरे को पंजियों में दर्ज कर लिया जाता था। तिरुमंगलम् (तंजोर ज़िले में) के एक अभिलेख में वर्णित है कि इस गांव की सरकारी पंजी में दर्ज भू-स्वामित्व का ब्योरा वास्तविक स्वामित्व से भिन्न था, इसलिए दोनों में सामंजस्य बैठाने एवं भूल को सुधारने के लिए पुनः भू-सर्वेक्षण किया गया। भूमि की किस्म, उर्वरता एवं फसलों के परिवर्तनों के अनुसार कर की दर कम या अधिक होती थी। चोल अभिलेखों में भूमि की 12 किस्मों से भी अधिक के उल्लेख मिलते हैं। उपज का कितना भाग आमतौर पर राजस्व के रूप में लिया जाता था, निश्चितरूप से ज्ञात नहीं। राजराज प्रथम के शासनकाल में यह कर पैदावार का $\frac{1}{3}$ भाग था जो स्पष्टतः अधिक था।

लगभग प्रत्येक गांव में कुछ जमीनें करों एवं उपकरों से पूर्णतया मुक्त होतीं थीं। इस प्रकार की भूमियों में मन्दिर, तालाब, गांव से होकर गुजरने वाली नहर, चांडाल लोगों की बस्तियां (**परैच्चेरि**), कारीगरों एवं शिल्पियों के आवास (**कम्माणच्चेरि**) तथा श्मसान भूमि उल्लेखनीय हैं। पिडारि के लिए बकरों की बलि का स्थान, अम्बट्टर, नाविदर, कुम्हार, लौहकार, बढ़ई, स्वर्णकार तथा रजक आदि के घरों की **काणि** माफ थी।

राजस्व विभाग के रजिस्टर को **वरित्पोत्तगककणक्क** कहते थे। गांव की भूमि का लगान ग्राम-सभाएं वसूल कर केन्द्रीय सरकार को देती थीं। चोल अभिलेखों में विभिन्न प्रकार के करों की लम्बी सूचियां मिलती हैं जिनमें से प्रमुख कर इस प्रकार हैं–

आयम (राजस्व)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुडिमै (लगान)
मरमज्जाडि (सम्भवत: प्रत्येक उपयोगी वृक्ष पर लिया जाने वाला कर)
किडाककाशु (प्रत्येक नर-पशु पर लगने वाला कर)
पाडिकावल (गांव की चौकीदारी का कर)
वाशल्तिरमम् (द्वारकर)
कडमै (सुपारी के वृक्षों पर लगने वाला कर)
मनैइरै (गृह-कर)
मगन्मै (बढ़इयों, सुनारों, कुम्हारों तथा लोहकारों पर लगने वाला कर)
पेवरि (तेलियों पर लगने वाला कर)
कडैइरै (दूकान कर)
आजीवकक्काशु (आजीविकों पर लगने वाला कर)

बहुत से कर एवं महसूल स्थानीय थे। चोल अभिलेखों में वर्णित करों में से अनेक के अर्थ स्पष्ट नहीं है।

कर मुख्यत: स्थानीय संस्थाओं द्वारा वसूल किए जाते थे, परन्तु उनके कार्यों की जांच-पड़ताल एवं निगरानी के लिए केन्द्र की ओर से अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। कर वसूली में सख्ती तथा उत्पीड़क तरीके भी अपनाए जाते थे। तंजोर ज़िले से प्राप्त 1274 ई० के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि एक व्यक्ति अपना गांव छोड़कर पांड्य राज्य में जाकर बस गया था। उस पर 10 वर्ष का लगान बाकी था जिसे वसूल करने के लिए वहां की ग्राम-सभा ने उस पुरुष की भूमि को बेंच दिया था। चोल अभिलेखों में ऐसे व्यक्तियों के भी उल्लेख हैं जिन्हें अतिरिक्त करों की अदायगी के लिए कर्ज लेना पड़ा था। 1001 ई० में ब्रह्मदेयम्-महेन्द्रमंगलम् की सभा ने कर अदा न करने वाले व्यक्तियों को पानी में डालने तथा धूप में खड़ा करने की सजा का प्राविधान किया था। इस अत्याचारी रवैये के विरुद्ध उन कर-दाताओं ने राजाधिराज के समक्ष फरियाद भी की थी। राजेन्द्र द्वितीय के शासन के तीसरे वर्ष में जम्बैगांव की एक महिला को कर अदा करने के लिए इतना अधिक तंग किया गया था कि उसने आत्महत्या कर ली। करों के बाकी रहने पर सम्पत्ति की कुर्की तथा भूमि को नीलाम कर दिया जाता था[1]। कभी-कभी मन्दिरों को भी अपनी जमीनों के

1. विक्रमचोल के शासन के 5वें वर्ष में करिकालचोलचतुर्वेदिमंगलम् की महासभा ने तय किया था कि लगान अदा करने में असमर्थ लोगों तथा गांव छोड़कर अन्यत्र चले जाने वाले व्यक्तियों की जमीन को सभा के आदेश से समैक्कलै (सार्वजनिक विक्रय) द्वारा बेंच दिया जाय।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर आदि अदा करने के लिए भूमि बेंच देनी पड़ती थी। इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख 1215 ई० के एक अभिलेख में मिलता है।

चोल साक्ष्यों के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उस काल की कर-व्यवस्था काफी जटिल थी और परवर्ती चोल शासकों के काल में यह अव्यवस्थित एवं उत्पीड़क भी हो गई थी।

राज्य की आमदनी मुख्यतः राजा, अन्तःपुर, राजदरबार की शान-शौकत, राजा के व्यक्तिगत अधिकारियों एवं कर्मचारियों, सेना तथा सरकारी पदाधिकारियों आदि पर खर्च की जाती थी। इनके अतिरिक्त सरकारी आय का काफी बड़ा भाग नगरों, राजप्रासादों, दुर्गों, सड़कों तथा तालाबों के निर्माण एवं सिंचाई आदि कार्यों पर खर्च किया जाता था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

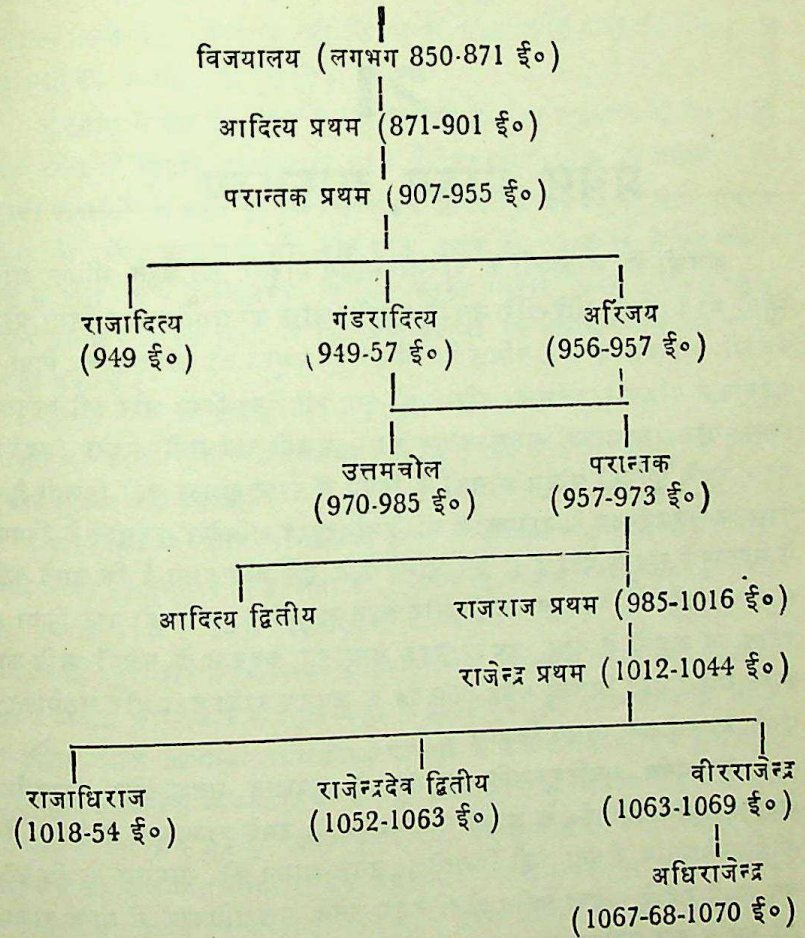

1. K.A.N. Sastri, History of South India, p. 209.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

21

प्रथम पांड्य साम्राज्य

कलभ्रों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप पांड्यों को बहुत अधिक क्षति पहुंची थी। परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित कर लिया और कलभ्रों को परास्त कर तमिल देश में उनके प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। कडुंगोन ने पांड्य राजवंश की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित किया और वही वस्तुतः प्रथम पांड्य साम्राज्य का संस्थापक था। उसकी राजधानी मदुरा (मदुरै) थी। उसके पूर्ववर्ती पांड्य शासकों के विषय में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। परान्तक नेडुंजडैय्यन के राज्यकाल का वेलविक्कुडि अभिलेख कडुंगोन के विषय में महत्वपूर्ण सूचना देता है। इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उसने कई छोटे शासकों पर विजय प्राप्त की और अपने शत्रुओं के नगरों को नष्ट किया। परन्तु इन शत्रुओं के नाम अथवा उनके साथ हुए कडुंगोन के संघर्षों आदि का स्पष्ट ब्योरा नहीं मिलता। वह 580 ई० के लगभग राजा हुआ और अनुमानतः उसने 25 वर्ष तक शासन किया।

मारवर्मन अवनिशूलमणि–कडुंगोन के उपरान्त उसका पुत्र मारवर्मन अवनिशूलमणि 620 ई० के आसपास राजा हुआ। उसके राज्यकाल के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती। उसके शासन की सामान्य अवधि 25 वर्ष मानी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य को कम से कम सुरक्षित रखा।

शेन्दन (जयन्तवर्मन)–मारवर्मन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी शेन्दन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि चेरों के विरुद्ध विजय थी। इसके उपलक्ष में उसने वानवन् का विरुद धारण किया जिसका प्रयोग चेर शासक करते थे। उसकी शक्ति एवं न्यायप्रियता की प्रशंसा की गई है।

640 ई० में ह्वेनसांग पल्लव राजधानी कांची में विद्यमान था। वह पांड्य राज्य में भी गया था अथवा नहीं, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। उसने लिखा है कि जब वह कांची से प्रस्थान करने वाला था, तभी वहां [illegible] शासक की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मृत्यु हुई थी। ह्वेनसांग ने मृत पांड्य शासक के नाम का उल्लेख नहीं किया है। पांड्य राज्य में वस्तुतः एक ही समय में कई राजकुमार इसके भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शासन करते थे। असम्भव नहीं कि इन्हीं राजकुमारों में से किसी एक की मृत्यु 640 ई० के आसपास हुई हो।

ह्वेनसांग ने यह भी लिखा है कि उसकी उपर्युक्त यात्रा के दौरान में ही पांड्य राज्य में भीषण अकाल पड़ा था। पेरियपुराणम् काव्य में वर्णित है कि सातवीं शताब्दी के मध्य के लगभग पांड्य राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र भयंकर दुर्भिक्ष से ग्रसित हो गए थे और शैव सन्त अप्पर तथा सम्बन्दर ने इस संकट-काल में प्रजा के कष्ट निवारण के लिए काफी प्रभावी कदम उठाये। परन्तु शासन की ओर से इस दिशा में किए गए प्रयत्नों का उल्लेख किसी भी साक्ष्य में नहीं हुआ है।

शेन्दन ने तिरुनेलवेलि ज़िले में कलैयडिक्कुरिचि नामक स्थान पर एक शैलकृत मन्दिर का निर्माण कराया था। किन्तु उसकी अन्य उपलब्धियों के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

अरिकेशरि मारवर्मन—पन्दिक्कोवे काव्य में सम्भवतः अरिकेशरि की उपलब्धियों का ही गुणगान किया गया है[1]। उसने हिरण्यगर्भ तथा तुलाभार नामक यज्ञ सम्पन्न किए। उसके राज्यकाल में पांड्य राजवंश की प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हुई और उत्तर तथा दक्षिण-पश्चिम में उसके राज्य का विस्तार हुआ। वस्तुतः अरिकेशरि के शासनकाल में ही पांड्यों की साम्राज्यवादी नीति का सक्रिय रुप से क्रियान्वन तथा उनका पल्लवों के साथ संघर्ष प्रारम्भ हुआ था।

कुछ विद्वानों ने अरिकेशरि मारवर्मन का समीकरण कूण पांड्य नामक शासक से किया है जो पहले जैन धर्म का अनुयाई था, परन्तु बाद में सन्त सम्बन्दर ने उसे शिव का भक्त बना लिया। कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार इस धर्म-परिवर्तन के पश्चात् वह काफी असहिष्णु हो गया था। उसने जैनियों पर बहुत अत्याचार किए और जैन धर्म के आठ हज़ार अनुयाइयों का वध करा दिया। यह विवरण स्पष्टतः अतिरंजित है। प्राचीन हिन्दू राजाओं में धार्मिक असहिष्णुता के उदाहरण अपवाद के रुप में ही मिलते हैं। तथापि यह सम्भव है कि शैव धर्म स्वीकार करने के पश्चात् उसने किन्हीं कारणों से जैनियों के प्रति असहिष्णुता दिखलाई हो। अरिकेशरि मारवर्मन ने एक चोल राजकुमारी के साथ विवाह किया

1. नीलकान्त शास्त्री आदि विद्वान अरिकेशरि मारवर्मन को इस काव्य का नायक नहीं मानते हैं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था। उसकी इसी रानी ने सन्त सम्बन्दर को मदुरा आने के लिए आमन्त्रित किया था।

कोच्चडैय्यन रणधीर–अरिकेशरि मारवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र कोच्चडैय्यन रणधीर राजा हुआ। उसने चेरों तथा चोलों पर अपना प्रभुत्व कायम रखा। वेलविक्कुडि दानपत्र में उसे मंगलापुरम् के मराठों का विजेता बताया गया है। कुछ विद्वानों ने इन मराठों की पहचान वातापी के चालुक्यों से की है और पुलकेशिन् द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम को कोच्चडैय्यन द्वारा पराजित मराठों का शासक माना है। परन्तु के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा आर० सथियनथायर ने मंगलापुरम् का समीकरण मंगलौर से किया है।

कोच्चडैय्यन ने आय या आयवेल नामक राजा को मरुटूर (तिरुनेलवेलि जिले में अम्बासमुद्रम् के निकट स्थित) नामक स्थान पर पराजित करने का दावा किया है। इस विद्रोही शासक ने तिरुनेलवेलि तथा ट्रावनकोर के मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। कोच्चडैय्यन को शेंगयू तथा उदकोदु नामक स्थानों पर भी विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। इन स्थानों की पहचान नहीं की जा सकी है।

कोच्चडैय्यन ने मधुरकरनाटकन् तथा कोंगकोर्मान् की उपाधियां धारण कीं जो क्रमशः उसकी कर्नाटक तथा कोंगु राज्यों पर प्रभुसत्ता प्रमाणित करती हैं। रणधीर[1] का विरुद उसके युद्ध-प्रेम का प्रतीक है।

मारवर्मन राजसिंह प्रथम–कोच्चडैय्यन रणधीर के उपरान्त उसका पुत्र मारवर्मन राजसिंह प्रथम राजा हुआ। वह काफी शक्तिशाली था। उसके राज्यकाल में पल्लव नन्दिवर्मन द्वितीय तथा उसके चचेरे भाई चित्रमाय के बीच गृह-युद्ध हुआ जिसमें राजसिंह ने चित्रमाय की सहायता की और उसकी ओर से उसने नन्दिवर्मन को नेडुवयल, कुरुमडै, मण्णिकुरूच्चि, कोडुम्बलूर तथा तिरुमंगई आदि स्थानों पर पराजित किया। अन्त में राजसिंह ने उसे कुम्भकोनम् के निकट नन्दिग्राम (नन्दिपुर) में बन्दी बना लिया और उसकी सेना के बहुत से हाथी

1. चूंकि वातापी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम ने रणरसिक का विरुद धारण किया था, इसलिए कुछ विद्वानों का सुझाव है कि उसने इसी चालुक्य शासक को पराजित करने के उपलक्ष में रणधीर की उपाधि धारण की होगी। परन्तु इन दोनों उपाधियों के अन्तर के अतिरिक्त यह भी सन्दिग्ध है कि कोच्चडैय्यन का विक्रमादित्य प्रथम से युद्ध हुआ था अथवा नहीं।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा अश्व अपहृत कर लिए। इस महान उपलब्धि के उपलक्ष में उसने पल्लव-भंजन का विरुद धारण किया। परन्तु बाद में नन्दिवर्मन द्वितीय के सुयोग्य सेनानायक उदयचन्द्र ने कुम्भकोनम् के घेरे को तोड़ दिया, तंजोर जिले में कई विजयें प्राप्त कीं, चित्रमाय का वध कर दिया, राजसिंह को पराजित किया और नन्दिवर्मन को बन्धन-मुक्त कर पुनः राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

अपनी स्थिति सुधारने के उपरान्त मारवर्मन राजसिंह ने पेरियलूर नामक स्थान पर अपने शत्रुओं को पराजित किया और कावेरी नदी को पारकर मल-कोंगम (तिरुचिरापल्ली तथा तंजोर जिलों की सीमा पर स्थित) पर अधिकार कर लिया। राजसिंह द्वारा पराजित होने के बाद मालवराज ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। उपर्युक्त सामरिक सफलताओं के पश्चात् उसके राज्य का विस्तार पांडिवकोड्मुडि तक हो गया था। इस स्थान पर मारवर्मन राजसिंह ने शिव-पशुपति की पूजा की और उन्हें बहुत सा सोना तथा रत्न आदि अर्पित किए। मारवर्मन राजसिंह ने कोंगु प्रदेश तथा इसके आगे भी अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। इसलिए उसका पश्चिमी गंग श्री-पुरुष तथा उसके अधिपति एवं सम्बन्धी वातापी के चालुक्य कीर्तिवर्मन द्वितीय से शक्ति-संतुलन आवश्यक हो गया। पांड्य शासक ने वेणवै के युद्ध में चालुक्यों तथा गंगों की सम्मिलित सेनाओं को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया था। बाद में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और मारवर्मन राजसिंह ने पश्चिमी गंग वंशीय राजकुमारी के साथ अपने पुत्र का विवाह कर दिया[1]।

वेलिविक्कुडि दानपत्रों के अनुसार उसने कूडल (मदुरा) वंजि तथा उरै-यूर के राजप्रासादों एवं दुर्गों का जीर्णोद्धार कराया और गोसहस्त्र, हिरण्यगर्भ तथा तुलाभार नामक दान सम्पन्न किए। उसके शासन का अन्त 765 ई० के आस-पास हुआ।

नेडुंजडैय्यन—मारवर्मन राजसिंह प्रथम के पुत्र एवं उत्तराधिकारी को नेडुंजडैय्यन, परान्तक, जटिल या वरगुणमहाराज तथा मारंजडैय्यन आदि कहा गया है। उसके अभिलेख उसके शासन के तीसरे वर्ष से लेकर 43वें वर्ष तक के प्राप्त हुए हैं। वेलविक्कुडि अभिलेख में उसकी उपलब्धियों तथा महानता का विस्तृत विवरण है। इस अभिलेख के अनुसार नेडुंजडैय्यन ने पेण्णागडम् (तंजोर

1. आर० सथियनथायर के अनुसार राजसिंह द्वितीय ने स्वयं पश्चिमी गंग राजकुमारी के साथ विवाह किया था। परन्तु के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह विवाह उसके पुत्र के साथ हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के निकट कावेरी नदी के तट पर स्थित) में पल्लव नन्दिवर्मन द्वितीय तथा उसके मित्र नाट्टक्कुरुम्बु के विद्रोही शासक आयवेल पर विजय प्राप्त की थी। एच० के० शास्त्री तथा के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने नाट्टक्कुरुम्बु का समीकरण कुरुम्बनाड से किया है।

नेडुंजडैय्यन के राज्यकाल के 17वें वर्ष के मद्रास म्यूजियम ताम्रपत्रों के अनुसार उसने तगडूर (सलेम जिले में धर्मपुरी) के शासक अडिगैमान को कावेरी नदी के मुहाने पर स्थित आयिरवेलिअमिरूर तथा पुगलियूर नामक स्थानों पर पराजित करने के उपरान्त बन्दी बनाकर अपनी राजधानी मदुरा भेज दिया, उसकी सेना के बहुत से अश्व तथा हाथी अपहृत कर लिए और उसे अपना अधीनस्थ बना लिया था। वेलूर, विलियम् तथा पुलिगेरे[1] को जीतने के पश्चात् नेडुंजडैय्यन ने वेड़ाद (दक्षिणी ट्रावन्कोर) पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वस्तुतः पल्लव नन्दिवर्मन द्वितीय ने कोंगु, केरल तथा अडिगैमान[2] से मिलकर नेडुंजडैय्यन के विरुद्ध एक सम्मिलित मोर्चा बनाया था। परन्तु पांड्य शासक ने उन सभी को पराजित कर दिया और विजय प्राप्त करता हुआ पल्लव राज्य में वह इडिवै (तंजोर जिले में) तक पहुंच गया था। तिरुचिरापल्ली अभिलेख के अनुसार नेडुंजडैय्यन तोंडैनाडु में पेन्नै नदी के तट पर अपना शिविर लगाए हुए था। पांड्यों की इस सफलता का कोई स्थाई प्रभाव नहीं हुआ और दस वर्ष के उपरान्त नेडुंजडैय्यन को उपर्युक्त शत्रुओं से पुनः युद्ध करना पड़ा था। नेडुंजडैय्यन ने मलयनाडु के शासक करुनन्दन पर भी विजय प्राप्त की और अरियूरकोलै को नष्ट दिया था। के० ए० नीलकान्त शास्त्री, पी० एन० चोपड़ा तथा एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार, करुनन्दन सम्भवतः अय जनजाति से सम्बन्धित था।

वेलविक्कुडि अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि नेडुंजडैय्यन ने उस गांव के दान का पुनः नवीनीकरण किया जिसे सर्वप्रथम संगमयुग के एक पांड्य शासक ने एक ब्राह्मण को दान में दिया था। उसने करवंडपुरम् (तिरुनेलवेलि जिले में स्थिति कलक्काड) में दुर्गीकरण कराया, कांजीवायप्पेरूर[3] नामक स्थान पर पहाड़ी के आकार में विष्णु के एक मन्दिर का निर्माण कराया और परम-वैष्णव का विरुद धारण किया। इस प्रकार नेडुंजडैय्यन के शासनकाल में पांड्य

---

1. इन स्थानों पर उसके द्वारा पराजित किये गये शत्रुओं का उल्लेख नहीं हुआ है।
2. कुछ विद्वानों ने अडिगैमान को ही कोंगु का शासक माना है।
3. नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह कोंगु राज्य में स्थित रहा होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्य का विस्तार कावेरी नदी के दक्षिण में एक समुद्रतट से लेकर दूसरे समुद्र-तट तक हो गया था और वह उस समय तमिलदेश में सबसे अधिक शक्तिशाली शासक था। उसके राज्य में वर्तमान तंजोर, तिरुचिरापल्ली, सलेम तथा कोयम्बटूर जिलों के अतिरिक्त दक्षिणी ट्रावनकोर क्षेत्र भी शामिल था। उसने विष्णु तथा शिव के मन्दिरों का निर्माण कराया। वह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसे पंडितवत्सल (विद्या एवं विद्वानों का स्नेही या संरक्षक) तथा परान्तक (शत्रुओं का विनाशक) कहा गया है।

श्रीमारश्रीवल्लभ—आर० सथियनथायर के अनुसार नेडुंजडैय्यन की मृत्यु के के पश्चात् उसके पुत्र श्रीमारश्रीवल्लभ ने 815 ई० के लगभग शासन की बागडोर सम्भाली। के० ए० नीलकान्त शास्त्री, एन० सुब्रमण्यम, पी० एन० चोपड़ा एवं टी० के० रवीन्द्रन, श्रीमार को वर्गुण प्रथम का पुत्र मानते हैं। अन्तिम तीन विद्वानों के अनुसार उसके शासन का प्रारम्भ 835 ई० में हुआ। उसने एकवीर, परचक्रकोलाहल तथा अवनिपशेखर नामक उपाधियां धारण कीं। उसे अपनी प्रजा का स्नेह-भाजन (प्रेमपात्रप्रजानां) कहा गया है। उसके राज्यकाल की घटनाओं के विषय में हमें मुख्यतः दलवयपुरम् तथा वृहद्शिन्नमनूर ताम्रपत्रों से सूचना प्राप्त होती है।

श्रीमारश्रीवल्लभ ने कुन्नूर, विलिनम् तथा सिगलम् पर विजयें प्राप्त कीं। उसने सेन प्रथम (831-51 ई०) के राज्यकाल में श्रीलंका पर आक्रमण किया। महावंश के अनुसार उसने श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्रों तथा इसकी राजधानी में भयंकर विनाशलीला की थी। सेन प्रथम ने महातलित नामक स्थान पर युद्ध में पराजित होने के उपरान्त मलय प्रदेश में शरण ली और विजयी पांड्य-सेना बहुत अधिक धन-सम्पत्ति लेकर वापस आई थी। बाद में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और श्रीमारश्रीवल्लभ ने सेन प्रथम का राज्य वापस लौटा दिया।

पल्लव शासक दन्तिवर्मन के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उसके पुत्र युवराज नन्दिवर्मन तृतीय ने गंगों, चोलों तथा राष्ट्रकूटों आदि से मिलकर श्रीमार के विरुद्ध एक शक्तिशाली संघ बनाया था। तेल्लारु (उत्तरी अर्काट जिले में) में विपक्षी सेनाओं में तुमुल युद्ध हुआ जिसमें पल्लवों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और इस विजय के उपलक्ष में नन्दिवर्मन तृतीय ने तेल्लारेरिंद का विरुद धारण किया। वह बढ़ता हुआ पांड्य राज्य के भीतर वैगई नदी के तट तक पहुंच गया था।

859 ई० के आसपास श्रीमारश्रीवल्लभ ने पांड्य शक्ति को पुनः संगठित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किया और पल्लवों से अपनी पराजय का बदला लेने का निश्चय किया। उसने नन्दिवर्मन तृतीय के विरुद्ध अभियान किया और कुम्भकोनम् में उसे उसके मित्रों एवं सहायक शासकों सहित निर्णायक रूप से पराजित कर दिया। यह श्रीमारश्रीवल्लभ की सबसे महान सामरिक उपलब्धि थी। तेल्लारु के युद्ध की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह संघर्ष कुम्भकोनम् के युद्ध के पहले हुआ था और कुछ के अनुसार कुम्भकोनम् की लड़ाई के बाद में। तथ्य कुछ भी हो, पांड्यों की पल्लवों के विरुद्ध विजय का कोई स्थाई प्रभाव नहीं हुआ और नन्दिवर्मन तृतीय के पुत्र एवं उत्तराधिकारी नृपतुंग के राज्यकाल में दोनों राजवंशों में पुनः शक्ति-संतुलन हुआ। बाहूर दानपत्रों में बतलाया गया है कि उस पल्लववाहिनी ने, जो पहले कुम्भकोनम् के युद्ध में पांड्यों द्वारा पराजित हो चुकी थी, नृपतुंग के नेतृत्व में पांड्यों को अरिशिल नदी के तट पर हराकर अपने पिता की पराजय का प्रतिशोध ले लिया। परन्तु इसके उपरान्त भी तंजोर क्षेत्र में श्रीमारश्रीवल्लभ का प्रभुत्व कायम रहा और इस भू-भाग में उसके कई अभिलेख मिले हैं।

सेन प्रथम के पश्चात् उसका भतीजा सेन द्वितीय (851-885 ई०) सिंहल का राजा हुआ। महावंश में बतलाया गया है कि माया पांड्य[1] नामक एक विद्रोही पांड्य राजकुमार ने श्रीमार के विरुद्ध सेन द्वितीय से सैनिक सहायता की याचना की। श्रीलंका के शासक ने इसका स्वागत किया और अपने पूर्ववर्ती राजा की पराजय का बदला लेने के लिए स्वर्णिम अवसर प्राप्त किया। उसने पांड्यों के शत्रु पल्लवों तथा मायापांड्य से मिलकर श्रीमार के राज्य को आक्रान्त किया और उसकी राजधानी मदुरा को घेर लिया। नीलकान्त शास्त्री का अनुमान है यह आक्रमण सम्भवतः उसी समय के लगभग हुआ होगा जब श्रीमार अरिचित के युद्ध में व्यस्त था। महावंश में बतलाया गया है कि श्रीमारश्रीवल्लभ हाथी पर सवार होकर युद्ध के मैदान से भाग गया और उसने और उसकी पत्नी ने आत्म हत्या कर ली। इस प्रकार इस अभियान में श्रीलंका के शासक को पूर्ण सफलता मिली। उसकी सेना ने मदुरा को तहस-नहस किया, श्रीमार युद्ध में मारा गया और सेन द्वितीय के प्रधान सेनानायक ने वर्गुण द्वितीय को पांड्य राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु इसके विपरीत पांड्य अभिलेखों

1. के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार मायापांड्य सम्भवतः श्रीमारश्रीवल्लभ का पुत्र था। श्रीमार ने उसके स्थान पर उसके सौतेले भाई परान्तक वीरनारायण को युवराज नियुक्त कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में श्रीमार को श्रीलंका पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। कुछ विद्वान महावंश के उपर्युक्त विवरण को प्रामाणिक मानते हैं और उनका अनुमान है कि श्रीमार की युद्ध में मृत्यु हो जाने के उपरान्त मायापांड्य राजा हुआ। परन्तु पांड्य अभिलेखों के साक्ष्य से इस मत का खंडन हो जाता है। के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा एन० सुब्रमण्यम आदि ने महावंश के उपर्युक्त विवरण को पूर्णतया सही माना है। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार घटनाक्रम जो भी रहा हो, परन्तु श्रीमारश्रीवल्लभ के शासनकाल में पांड्य राज्य पर इस प्रकार की विनाशकारी विपत्ति नितान्त असम्भावित प्रतीत होती है और श्रीमार ने सम्भवतः मायापांड्य तथा उसके सहायक सेन द्वितीय आदि के आक्रमण को विफल कर दिया था।

वर्गुण द्वितीय– श्रीमारश्रीवल्लभ के दो पुत्र थे–वर्गुण द्वितीय और परान्तक-वीरनारायण। श्रीमार की मृत्यु के उपरान्त पहले वर्गुण द्वितीय 862 ई० में राजा हुआ। महावंश के अनुसार उसे श्रीलंका के शासक सेन द्वितीय के प्रधान सेनापति ने श्रीमार के स्थान पर पांड्य राजपीठ पर बैठाया था। 850 ई० के लगभग विजयालय चोल ने पांड्यों के अधीनस्थ मुत्तरैयर से तंजोर अपहृत कर लिया था। इससे उत्तेजित होकर और पल्लव शासक नृपतुंग की सहायता एवं समर्थन प्राप्त कर, वर्गुण ने चोल राज्य पर आक्रमण कर दिया और तंजोर जिले में कावेरी नदी के तट पर स्थित इडवै नामक स्थान तक पहुंच गया था। उसने पेन्नार नदी के किनारे भी अपना सैनिक शिविर लगाया था।

पल्लव शासक नन्दिवर्मन तृतीय की मृत्यु के उपरान्त नृपतुंग तथा उसके सौतेले भाई अपराजित के बीच उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ, जिसमें वर्गुण द्वितीय नृपतुंग की ओर से लड़ा और श्रीलंका का राजा, चोल आदित्य प्रथम तथा पश्चिमी गंग पृथ्वीपति अपराजित की ओर से। वर्गुण ने चोल राज्य के अलवै नामक स्थान को आक्रान्त किया और आगे बढ़ता हुआ वह पल्लव राज्य की सीमा पर पहुंच गया था। 885 ई० के लगभग प्रतिद्वन्दी सेनाओं में कुम्भकोनम् के निकट श्रीपुरम्बियम् (वर्तमान तिरुपुरम्बियम्) नामक स्थान पर भीषण संघर्ष हुआ जिसमें अपराजित की विजय हुई, पांड्य पराजित हुए और उनकी शक्ति को भारी क्षति पहुंची तथा पृथ्वीपति मारा गया[1]। दक्षिण भारत की

1. यः श्रीपुरम्बिमहाहवमूर्धिधीरः पांडेश्वरं वरगुणं सहसा विजित्य।
कृत्वा युक्तमपराजित-शब्दमात्मप्राणाव्ययेन सुहृदस्त्रिदिव जगाम ॥
(उदयेन्दिरम् ताम्रपत्र)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तत्कालीन राजनीति में यह युद्ध दिशापरिवर्तक सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरुप चोलों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में सर्वाधिक वृद्धि हुई, वर्गुणवर्मन को कावेरी नदी के दक्षिण में खदेड़ दिया गया और आदित्य प्रथम ने उसके राज्य के कुछ क्षेत्र अधिकृत कर लिए।

वर्गुणवर्मन शिव का परम उपासक था। उसका कोई पुत्र नहीं था। उसके शासन के अन्तिम भाग में गृह-युद्ध तथा अन्य उपद्रव हुए। वर्गुणवर्मन के छोटे भाई परान्तक ने उसे अपदस्थ कर मदुरा के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया था[1]।

परान्तकवीरनारायण—वर्गुणवर्मन द्वितीय के पश्चात् उसके छोटे भाई परान्तक वीरनारायण ने 880 ई०[2] के लगभग शासन की बागडोर सम्भाली। उसी के राज्यकाल में दलवयपुरम् के ताम्रपत्र प्रकाशित हुए थे। परान्तक के अभिलेखों में उसे कोंगु प्रदेश तथा पांड्य राज्य के दक्षिण में स्थित अन्य क्षेत्रों का विजेता बतलाया गया है। बृहत् शिन्नमनूर ताम्रपत्रों के अनुसार उसने खरगिरि पर आक्रमण कर पेन्नागडम् को तहस-नहस किया, कोंगु देश में हुए युद्ध में सफलता प्राप्त की और उग्र नामक शासक को पराजित किया। इन युद्धों का स्पष्ट ब्यौरा नहीं दिया गया है।

परान्तक वीरनारायण ने कई मन्दिरों तथा तालाबों का निर्माण कराया और ब्राह्मणों को बहुत से अग्रहार दान में दिए। उसने चेर वंशीय राजकुमारी वानवनमहादेवी के साथ विवाह किया और उसी के नाम पर तिरुनेलवेलि जिले में स्थित एक ग्राम का नाम शेरमादेवी रखा था। इस रानी को लक्ष्मी तथा इन्द्राणी के समतुल्य बतलाया गया है। परान्तक के शासन का अन्त 900 ई० के आस-पास हुआ।

मारवर्मन राजसिंह द्वितीय—परान्तक वीरनारायण के उपरान्त उसका पुत्र मारवर्मनराजसिंह द्वितीय 900 ई० के लगभग राजा हुआ। उसी के राज्यकाल के 16वें वर्ष में बृहत् शिन्नमनूर ताम्रपत्र जारी किए गए थे। उसे उलप्पिलिमंगलम्

1. नीलकान्त शास्त्री के अनुसार श्रीपुरम्बियम् में पराजित होने के पश्चात् वर्गुण द्वितीय राजकीय कार्यों से उदासीन होकर माणिक्कवाशगर के साथ एक सन्त का जीवन बिताने लगा था, इसलिए परान्तक को उत्तराधिकार सरलता से प्राप्त हो गया।
2. के० ए० नीलकान्त शास्त्री ने उसके शासन का प्रारम्भ 860 ई० में माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा वंजी के युद्ध का विजेता और तंजोर एवं कोडम्बलूर के शासकों को पराजित करने वाला कहा गया है।

राजसिंह द्वितीय के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में पांड्यों की अपेक्षा चोल बहुत अधिक शक्तिशाली हो गए थे और चोल परान्तक प्रथम ने 907ई० के आस-पास राजसिंह को पराजित करने के उपलक्ष में मदुरैकोंड की उपाधि धारण की। इस पराजय का बदला लेने के लिए राजसिंह ने अपने मित्र श्रीलंका के राजा कस्सप पंचम से भी सहायता प्राप्त की और दोनों की सम्मिलित सेनायें चोलों से शक्ति-संतुलन के लिए तैयार हुईं। परन्तु परान्तक ने मदुरा के दक्षिण-पश्चिम में स्थित वेल्लूर के युद्ध में दोनों पर विजय प्राप्त कर अपने को **मदुरैयुमइलुममकोंड** (मदुरा तथा श्रीलंका का विजेता) के विरुद से विभूषित किया। यह निर्णायक युद्ध 915 ई० के लगभग हुआ था। गंग शासक पृथ्वीपति के राज्यकाल के 921-22 ई० के उदयेन्दिरम् ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि चोलों ने मदुरा नगर तथा पांड्य सेना के सैनिकों, हाथियों तथा घोड़ों का भारी संख्या में विनाश किया था। इसके बाद राजसिंह द्वितीय ने सिंहल के शासक दप्पुल चतुर्थ के यहां शरण ली। यद्यपि दप्पुल ने उसे सैनिक सहायता देने का आश्वासन दिया था, परन्तु न केवल पांड्य शासक को उसकी मदद नहीं मिल सकी, अपितु उसे अपना राजमुकुट तथा सम्पत्ति आदि (थापेत्वामुकुटादीनि) भी श्रीलंका में ही छोड़कर वहां से वापस आना पड़ा। महावंश का यह विवरण स्पष्ट नहीं है, और नहीं इसमें उन कठिनाइयों एवं परिस्थितियों का उल्लेख है जिनका सामना राजसिंह द्वितीय को सिंहल में करना पड़ा था। इसके बाद राजसिंह अपने नाना केरल के शासक के यहां गया और वहीं रहने लगा।

920 ई० के आसपास परान्तक ने राजसिंह द्वितीय पर तीसरा आक्रमण किया और उसे पराजित कर उसके राज्य से खदेड़ दिया। इसके बाद विजेता चोल शासक ने मदुरा में अपना अभिषेक करने के लिए तैयारियां कीं और इस अभिषेक के अवसर पर उसने राजसिंह द्वितीय का वह राजमुकुट धारण करने का निश्चय किया जिसे वह श्रीलंका में छोड़ आया था। इसलिए उसे लाने के लिए एक चोल सेना श्रीलंका भेजी गई। परन्तु सिंहल के शासक उदय चतुर्थ ने चोलों को पराजित कर दिया। राजसिंह द्वितीय ने विकटपाटव, श्रीकान्त, राजशिखामणि तथा मन्दरगौरव आदि विरुदों से अपने को विभूषित किया, अनेक जैन पल्लियों का निर्माण कराया और उन्हें दान दिए।

वीरपांड्य—राजसिंह द्वितीय के उत्तराधिकारी वीरपांड्य के शासनकाल

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में पांड्यों की प्रतिष्ठा में सुधार हुआ। यद्यपि चोलों ने पांड्य राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था, परन्तु वे पांड्यों की शक्ति को पूर्णरूप से नष्ट नहीं कर सके। वीरपांड्य ने सम्भवतः दुर्बल चोल शासक गंडरादित्य के विरुद्ध विजय प्राप्त कर स्वतन्त्रता घोषित कर दी और चेरन्तलैकोंडकोविरपांडन (चोल शासक का सिर काटने वाला) की उपाधि धारण की।

बाद में सुन्दरचोल परान्तक द्वितीय ने वीरपांड्य के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस शक्तिशाली चोल शासक के विरुद्ध श्रीलंका के राजा महिन्द चतुर्थ ने अपने मित्र पांड्यों की इस बार भी सहायता की। विपक्षी सेनाओं में दो युद्ध हुए, परन्तु पांड्य दोनों बार पराजित हुए। चेबूर के युद्ध में सुन्दरचोल ने वीरपांड्य को हराकर उसे सह्य की पहाड़ियों में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया था। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार सुन्दरचोल के पुत्र आदित्य द्वितीय ने वीरपांड्य का सिर काट लिया और वीरपांड्यंतलैकोंड का विरुद धारण किया था। परन्तु लीडन ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि आदित्य द्वितीय ने युद्धस्थल में पांड्य शासक के साथ उसी प्रकार खिलवाड़ किया जिस प्रकार सिंह का बच्चा मदमत्त हाथी के साथ करता है। आर० सथियनथायर[1] का यह अनुमान समीचीन प्रतीत होता है कि न तो वीरपांड्य ने गंडरादित्य का शिरोच्छेदन किया होगा और न ही आदित्य द्वितीय ने वीरपांड्य का सिर काटा होगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चोलों ने वीरपांड्य को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया था। 966 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

वीरपांड्य की मृत्यु के पश्चात् पांड्यों की न केवल केन्द्रीय शक्ति विघटित हो गई, वरन् उनकी स्वतन्त्रता भी काफी समय के लिए समाप्त हो गई। वीरपांड्य के बाद शासन करने वाले पांड्य राजा अधिक प्रभावी नहीं सिद्ध हुए और उदीयमान चोलों की राजनैतिक गतिविधियों के कारण वे अपनी शक्ति अधिक नहीं बढ़ा सके। तथापि पांड्य, राजराज प्रथम के राज्यकाल तक

---

1. आर० सथियनथायर के अनुसार तलैकोंड का अर्थ इस सन्दर्भ में यही सही प्रतीत होता है कि चोल शासक पराजित हुआ और विजेता के चरणों में उसने अपना सिर रख दिया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सुदूर दक्षिण में एक महत्वपूर्ण शक्ति बने रहे[1]। इस अन्तराल में शासन करने वाले पांड्य राजाओं का इतिहास काफी धूमिल है और उनका वंशानुक्रम, तिथियां तथा उपलब्धियां आदि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं।

तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों से हमें ज्ञात होता है कि चोल राजराज प्रथम ने मदुरा पर आक्रमण किया और पांड्य शासक अमरभुजंग को पराजित करने के उपरान्त बन्दी बना लिया था। चोलों ने विलिन्द के दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया था। 994 ई० के पश्चात् राजराज प्रथम ने तिरुमगट्पाल के विरुद का प्रयोग किया। इससे प्रमाणित होता है कि इस तिथि के पहले ही वह पांड्यों पर विजय प्राप्त कर चुका था। वी० वेंकैय्या के अनुसार राजराज को पांड्यों से एक से अधिक युद्ध करने पड़े थे और अन्ततोगत्वा उसने पांड्य राज्य पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर दिया, जैसाकि निम्नलिखित तथ्यों से प्रमाणित होता है–

1. राजराज प्रथम के कई अभिलेख पांड्यों द्वारा शासित क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं।

2. उसके नाम पर पांड्य राज्य की कुछ प्रशासनिक इकाइयों को **राजराजमंडलम्** तथा **राजराजपांडिनाडु** जैसे नाम दिए गए।

3. श्रीलंका के विरुद्ध अभियान में राजराज ने पांड्य राज्य के बन्दरगाहों का निःसंकोच प्रयोग किया था।

राजराज प्रथम के पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल ने 1018 ई० के लगभग पांड्य राज्य को आक्रान्त किया। सेनानायक दंडनाथ के नेतृत्व में जब चोल सेना मदुरा पहुंची, तो पांड्य राजा (बिना युद्ध किए ही) भाग गया और उसने मलय पर्वत में शरण ली। इस पांड्य शासक के नाम का उल्लेख नहीं हुआ हैं, इसलिए उसका समीकरण अनिश्चित है। राजेन्द्र चोल ने पांड्य राज्य को अपने वर्धमान साम्राज्य में शामिल कर लिया और मदुरा में एक राजभवन का भी निर्माण कराया। उसने अपने पुत्र जटावर्मनसुन्दरचोल को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। पांड्य राज्य में चोल राजकुमारों को गवर्नर नियुक्त

1. राजराज प्रथम के शासन के 29वें वर्ष के तंजोर अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने पांड्यों (शेलियों) की शक्ति एवं गरिमा को उस समय समाप्त कर दिया जब उन्हें सर्वत्र सम्मान प्राप्त हो रहा था। यद्यपि इस विवरण में कुछ अतिशयोक्ति है, तथापि इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि पांड्य उस समय भी काफी शक्तिशाली थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करने की प्रथा का सूत्रपात वस्तुतः राजेन्द्र चोल ने ही किया और यह परम्परा कुलोत्तुंग प्रथम के राज्यकाल के पहले तक चलती रही। राजेन्द्र चोल के शासन के अन्तिम भाग में पांड्य तथा केरल राज्यों के शासकों ने सम्भवतः सुन्दरपांड्य के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया, किन्तु वे निर्णायक रूप से परास्त हुए।

परन्तु यह उल्लेखनीय है कि राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र चोल जैसे महान शासकों के लिए भी पांड्य सदैव एक राजनैतिक समस्या बने रहे और उपयुक्त अवसर पाते ही वे विद्रोह कर देते थे। इसलिए चोलों को उनके राज्य पर बार-बार आक्रमण करने पड़ते थे।

राजेन्द्र चोल के पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजाधिराज (1044-54 ई०) के शासनकाल में मानाभरण, वीरकेरलन तथा सुन्दरपांड्य नामक राजकुमारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, किन्तु चोलों ने उनका दमन कर दिया। वीरराजेन्द्र (1062-63-1067 ई०) को भी पांड्यों से युद्ध करना पड़ा। उसे पांड्य शासक वीरकेसरी का वध करने का श्रेय दिया गया है। पांड्य राज्य को पुनः अधिकृत करने के उपरान्त उसने गंगैकोंडशोल को वहां का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया। अधिराजेन्द्र के दुर्बल शासनकाल में जब चोल राज्य में पूर्ण अव्यवस्था तथा अराजकता व्याप्त थी, उस समय पांड्यों ने भी सिर उठाया। परन्तु शीघ्र ही चालुक्य-चोल कुलोत्तुंग प्रथम ने चोल राजसिंहासन पर अधिकार कर वहां व्यवस्था स्थापित कर दी। कुलोत्तुंग प्रथम (1070-1120 ई०) को पांड्यों से काफी संघर्ष करना पड़ा। उसने अपने किसी पुत्र को पांड्य राज्य का गवर्नर तो नियुक्त नहीं किया, किन्तु पांड्य राज्य को जाने वाले महत्वपूर्ण राजमार्गों पर सैनिक कुमुक अवश्य स्थापित कर दिए थे। जटावर्मन श्रीवल्लभ ने तिरुनेलवेलि तथा मदुरा को पुनः अपने अधीन कर लिया था। इन क्षेत्रों में वह दो दशक से भी अधिक समय तक चोलों के आधिपत्य से मुक्त, स्वतन्त्र रूप से शासन करता रहा। विक्रमशोलनउला के अनुसार कुलोत्तुंग प्रथम ने पांड्यों की मछली[1] को पराजित कर दिया था। कुलोत्तुंग के शासन के पांचवें वर्ष के एक अभिलेख में वर्णित है कि पांड्य राजा का सिर भूमि पर पड़ा हुआ था और चीलें उसमें चोचें मार रहीं थीं। उसके चिदम्बरम् के अभिलेख में उसे पांच पांड्य शासकों को पराजित करने का श्रेय दिया गया है। कुलोत्तुंग प्रथम ने पांड्यकुलान्तक का विरुद भी धारण किया। विक्रमचोल (1118-1135 ई०) का भी पांड्यों से शक्ति-संतुलन हुआ। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों के अनुसार इस

1. मछली पांड्य राजवंश का राजकीय चिह्न था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चोल शासक के पहुंचते ही शेलियों (पांड्यों) ने भागकर जंगलों में शरण ली थी। राजाधिराज द्वितीय (1163-1179-82 ई०) के शासनकाल में पांड्य राज्य में पराक्रम पांड्य एवं कुलशेखर के बीच गृह-युद्ध चल रहा था जिसमें श्रीलंका के शासक पराक्रमबाहु (1153-1186 ई०) ने पराक्रम पांड्य की सहायता की और राजाधिराज द्वितीय ने कुलशेखर की। महावंश के अनुसार 1169 ई० में पराक्रमपांड्य ने अपने प्रतिद्वन्दी कुलशेखर के विरुद्ध सहायता की याचना की और श्रीलंका के शासक ने दंडनायक लंकापुरी के नेतृत्व में एक सेना भेज दी। परन्तु इस सेना के पहुंचने के पहले ही कुलशेखर ने पराक्रमपांड्य को पराजित करने के उपरान्त उसका वध कर दिया और मदुरा पर अधिकार कर लिया था। तथापि लंकापुरी ने कुलशेखर को कई युद्धों में पराजित कर वहां से खदेड़ दिया ओर चोल राज्य में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। इसके पश्चात् लंकापुरी ने कुलशेखर के स्थान पर वीरपांड्य को मदुरा के राजसिंहासन पर बैठा दिया। परन्तु बाद में राजाधिराज द्वितीय ने भी अपने मित्र कुलशेखर की ओर से लंकापुरी से युद्ध किया और उसे परास्त कर कुलशेखर को पुनः मदुरा का राजा बना दिया। राजाधिराज के शासन के 11वें वर्ष के एक अभिलेख में उसे मदुरा को अधिकृत करने तथा सिंहल का विजेता या अधिपति (मदुरैयुमईलमुम-कोंडरुलिन) कहा गया है।

कुलोत्तुंग तृतीय के राज्यकाल में वीरपांड्य एवं विक्रमपांड्य के बीच गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस संघर्ष में भी पहले की भांति श्रीलंका के राजा ने वीर-पांड्य का समर्थन किया और कुलोत्तुंग ने विक्रमपांड्य[1] की सहायता की। इस चोल शासक का पांड्यों से तीन बार शक्ति-संतुलन हुआ। उसके शासन के नवें वर्ष के चिदम्बरम् के अभिलेख के अनुसार तिरुवेन्दगम् (मदुरा के निकट) हुई लड़ाई में वीरपांड्य पराजित हुआ और कुलोत्तुंग ने 1182 ई० के लगभग विक्रम-पांड्य को मदुरा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। कुलोत्तुंग तृतीय के शासन के 11वें वर्ष के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि चोलों ने वीरपांड्य के पुत्र की नाक काट ली; कूडलनगर (मदुरा) विक्रमपांड्य को दे दिया; वीर-पांड्य का उसके राजमुकुट सहित सिर काट लिया और इस संघर्ष की सफल परिसमाप्ति होने पर मदुरा में कुलोत्तुंग ने अपना विजय-स्तम्भ स्थापित किया। बाद में जब पराजित पांड्य शासक कुलोत्तुंग के समक्ष नतमस्तक हुआ, तो उसने

1. आर० सथियनथायर के अनुसार विक्रमपांड्य सम्भवतः कुलशेखर का सम्बन्धी था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसके राजमुकुट पर अपना पैर रख दिया। परन्तु चोल सेना के वापस चले जाने के उपरान्त वीरपांड्य ने विद्रोह कर दिया। इसलिए 1189 ई० के कुछ पहले चोल शासक को अपने संरक्षित की ओर से पुनः हस्तक्षेप करना पड़ा और उसने नेट्टूर के युद्ध में वीरपांड्य को पराजित कर दिया। इस युद्ध में केरल के शासक ने भी चोलों के विरुद्ध वीरपांड्य की सहायता की थी और पराजय का भागी बना था। इसके उपरान्त वीरपांड्य ने क्वीलन में शरण ली। बाद में उसे तथा केरल के शासक को कुलोत्तुंग तृतीय के समक्ष झुकना पड़ा। एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार उसने विजित प्रदेश का कुछ भाग वीरपांड्य को देकर उसे पूर्णरूप से अपने अधीन कर लिया। कुलोत्तुंग के शासन के 34वें वर्ष के पुटुकोट्टै अभिलेख में यह भी बतलाया गया है कि उसने मदुरा में अपना विजयाभिषेक किया था। पांड्यों के विरुद्ध इन सफलताओं के उपलक्ष में उसने मर्दयिम्पांडिन्मुडितलैयम्कोंडरुलिन (जो मदुरा तथा पांड्य शासक का राजमुकुट सहित सिर लेकर प्रसन्न हुआ था) का विरुद धारण किया। कुलोत्तुंग की सहायता से पुनः मदुरा का राजसिंहासन प्राप्त करने के उपरान्त विक्रम पांड्य अन्त तक चोलों का मित्र बना रहा। उसने 1190 ई० तक शासन किया।

12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होयसलों ने भी पांड्यों को काफी क्षति पहुंचाई। 1173 ई० के एक अभिलेख में होयसल शासक वीरबल्लाल द्वितीय को 'पांड्यकुल के लिए वज्र के समान' बतलाया गया है। 1177 ई० में उसने उच्छंगि के पांड्य शासक कामदेव के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और उसे राजकोष सहित बन्दी बना लिया। बाद में कामदेव ने बल्लाल के समक्ष समर्पण कर अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया और उसके सामन्त के रूप में शासन करने लगा। बल्लाल द्वितीय ने पांड्यगजकेसरि (पांड्य रूपी हाथी के लिए सिंह के समान) की उपाधि धारण की और उसके पुत्र नरसिंह द्वितीय को पांड्यकुलखंडन कहा गया है। गद्यकर्णामृत के अनुसार नरसिंह द्वितीय ने पांड्यों को पराजित करने के पश्चात् उनकी काफी धन-सम्पत्ति अपहृत की थी।

विक्रमपांड्य का उत्तराधिकारी जटावर्मनकुलशेखर 1190 ई० में राजा हुआ। उसने कुलोत्तुंग तृतीय की अधिसत्ता मानने से इंकार कर दिया और चोलों के विरुद्ध कुछ सफलता भी प्राप्त की। उसके राज्यकाल के एक अभिलेख के अनुसार 'पांड्य-मछली के समक्ष चोल-सिंह तथा चेर-धनुष आदि भयभीत होकर छिप गए थे'। परन्तु चोल अभिलेखों में बतलाया गया है कि कुलोत्तुंग तृतीय द्वारा पराजित होकर पांड्य शासक को अपने सम्बन्धियों सहित जंगल में

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शरण लेनी पड़ी थी। कुलोत्तुंग ने पांड्य राज्य को तहस-नहस किया और मदुरा के अभिषेक-कक्ष को ध्वस्त कर दिया। यह युद्ध 1205 ई० के आस-पास हुआ था।

बाद में जटावर्मनकुलशेखर प्रथम ने अपनी स्थिति में सुधार किया और कई महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उसने कलिंगरायन, मलयवरायन तथा राजगम्भीर के विरुद धारण किए। यदि प्रथम दो उपाधियां सार्थक हैं, तो वे उसकी कलिंग तथा मलय प्रदेशों पर विजय प्रमाणित करती हैं।

जटावर्मन कुलशेखर प्रथम के राज्य में मदुरा, रामनाथपुरम्, तिरुनेलवेलि तथा कन्याकुमारी क्षेत्र शामिल थे। अपने शासन के 25वें वर्ष में उसने राजगम्भीरचतुर्वेदिमंगलम् की स्थापना की जिसके अन्तर्गत 1030 ब्रह्मदेय थे। वह नाममात्रेण चोलों का प्रभुत्व मानता रहा। उसके शासन का अन्त 1215-16 ई० में हुआ। राज्यकाल के अन्तिम दिनों में कुलशेखर ने अपने भाई (या पुत्र) मारवर्मनसुन्दरपांड्य प्रथम को युवराज नियुक्त कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

कडुंगोन (590-620 ई०)
|
मारवर्मन अवनिशूलमणि (620 645 ई०)
|
शेन्दन (645-670 ई०)
|
अरिकेशरि मारवर्मन (670-700 ई०)
|
कोच्चडैय्यन रणधीर (700-730 ई०)
|
मारवर्मन राजसिंह प्रथम (730-765 ई०)
|
जटिलपरान्तक नेडुंजडैय्यन (765 815 ई०)
|
राजसिंह द्वितीय (815-817 ई०)
|
वरगुण प्रथम (817-835 ई०)
|
श्रीमारश्रीवल्लभ (835-862 ई०)
|
वरगुण द्वितीय (862-882 ई०)

परान्तक वीरनारायण (880-900 ई०)
|
मारवर्मन राजसिंह (900-920 ई०)

1. History of South India, Vol. I (1979), p. 107.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

22

द्वितीय पांड्य साम्राज्य

1000 तथा 1700 ई० के बीच के काल में बहुत से पांड्य राजाओं ने शासन किया। कीलहॉर्न, एस०पिल्ले तथा आर०सेवेल के अनुसार 1162 से लेकर 1357 ई० तक 18 पांड्य नृपतियों ने राज्य किया। परन्तु एन० सेतुरमन (Sethuraman) ने 1000 तथा 1400 ई० के बीच के अन्तराल में शासन करने वाले पांड्य राजाओं की संख्या लगभग 40 मानी है[1]। इन शासकों का वंशानुक्रम निर्धारित करना बहुत कठिन है और कई राजाओं की तिथियां एवं शासित क्षेत्र भी निश्चितरूप से ज्ञात नहीं हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार द्वितीय पांड्य साम्राज्य के निर्माता मारवर्मन सुन्दरपांड्य तथा उसके उत्तराधिकारियों का वंशानुक्रम इस प्रकार है—

मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम—जटावर्मनकुलशेखर प्रथम की मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाई[2] मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम 1216 ई० के लगभग राजा हुआ। वह द्वितीय पांड्य साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। उसके प्रमुख शत्रु एवं प्रतिद्वन्दी चोल थे। कुलोत्तुंग तृतीय ने उसके पूर्वज वीरपांड्य का सिर काटने तथा उसके राजमुकुट युक्त शीर्ष पर पैर रखने का दावा किया है। मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने शासन की बागडोर सम्भालने के पश्चात् सर्वप्रथम चोलों से ही शक्ति-संतुलन करने का निश्चय किया और 1219 ई० में चोल राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसके राज्यकाल के सातवें वर्ष के तिरुप्परंकुलम् अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने धनुष तथा सिंह को नीचा कर दिया; कुलोत्तुंग तृतीय को पराजित किया; उसके पुत्र युवराज राजराज तृतीय को जंगल में शरण लेने के लिए बाध्य किया; उरैयूर तथा तंजोर को जला दिया; चोल साम्राज्य के

1. Journal of the Epigraphical Society, Vol, X,
2. एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार, वह जटावर्मन कुलशेखर का पुत्र अथवा छोटा भाई रहा होगा। नीलकान्त शास्त्री ने उसे कुलशेखर का भाई माना है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ प्रदेशों को अधिकृत कर लिया और राजराज तृतीय को कर एवं भेंटें आदि देने के लिए विवश किया। इसके उपरान्त उसने मुडिकोंडशोलपुरम् में स्थित चोलों के सहस्रस्तम्भीय भवन में अपना वीराभिषेक किया। विजय प्राप्त करता हुआ वह चिदम्बरम् पहुंचा और शिव-नटराज की पूजा की। वहां पर पराजित चोल शासक अपनी रानियों एवं बच्चों सहित उसके समक्ष उपस्थित हुआ और अपनी सुरक्षा की याचना की। सुन्दरपांड्य ने एक धार्मिक भेंट के रूप में उसका राज्य वापस कर शोणाडुलबलगिय-रुलीय (जिसने प्रसन्न होकर चोल राज्य वापस कर दिया) का विरुद धारण किया[1] और चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर में शिव की पूजा की।

पांड्य शासक से पराजित होने के पश्चात् कुलोत्तुंग तृतीय ने होयसल बल्लाल तृतीय से सहायता मांगी। बल्लाल ने अपने पुत्र नरसिंह द्वितीय के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम को पराजित कर कुलोत्तुंग का राज्य वापस दिला दिया और चोल शासक पांड्यों के सामन्त के रूप में शासन करने लगा।

वापसी यात्रा में मारवर्मन ने पुटुकोट्टै में अपना सैनिक-शिविर लगाया था। इसी सन्दर्भ में यह भी वर्णित है कि उत्तरी तथा दक्षिणी कोंगु प्रदेश के शासक अपने सीमा सम्बन्धी विवाद के समाधान के लिए उसके पास आए। वे सुन्दरपांड्य के साथ मदुरा गए जहां पर उसने उन्हें कुछ समय तक मेहमान के रूप में ठहराया और इसके बाद उनका मसला तय कर दिया तथा उनके राज्यों के कुछ भू-भाग स्वयं अधिकृत कर लिए।

मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथय के राज्यकाल के अभिलेखों के अनुसार कुलोत्तुंग तृतीय के उत्तराधिकारी राजराज तृतीय ने पांड्यों के साथ की गई सन्धि की शर्तों को तोड़ दिया और न केवल उन्हें नियमित कर आदि देना बन्द कर दिया, वरन् पांड्य राज्य पर आक्रमण भी कर दिया। परन्तु मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने उसे पुनः पराजित कर उसकी अग्रमहिषी को बन्दी बना लिया। पांड्य सेना ने लूट में चोलों की काफी धन-सम्पत्ति प्राप्त की और मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने मुडिकोंडशोलपुरम् में अपना विजयाभिषेक किया। चोल राज्य पर यह आक्रमण 1223 तथा 1235-36 ई० के मध्य किसी समय हुआ था। सुन्दरपांड्य

1. नीलकान्त शास्त्री की धारणा है कि मारवर्मन ने चोल शासक का राज्य वापस लौटाने का वचन देकर उसे बुलाया होगा, जिसके उत्तर में वह मारवर्मन के समक्ष उपस्थित हुआ था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के सामन्त कोप्पेरुंजिग ने राजराज को बन्दी बना लिया था, परन्तु होयसल शासक नरसिंह द्वितीय ने चोलों की ओर से पुनः हस्तक्षेप किया और कावेरी नदी के तट पर स्थित महेन्द्रमंगलम् नामक स्थान पर उसने पांड्यों को पराजित करने के बाद चोल शासक का राज्य वापस दिला दिया। इस प्रकार चोलों पर प्राप्त विजयों के परिणामस्वरूप मारवर्मन को कोई स्थाई क्षेत्रीय लाभ नहीं हुआ। के० ए० नीलकान्त शास्त्री के अनुसार अन्त में होयसलों, पांड्यों तथा चोलों में सन्धि हो गई जिसे वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा सुदृढ़ बनाया गया। एन० सुब्रमण्यम तथा पी० एन० चोपड़ा आदि का अनुमान है कि मारवर्मन सुन्दर-पांड्य ने सम्भवतः होयसल शासक सोमेश्वर की भगिनी के साथ विवाह किया था। मारवर्मन सुन्दरपांड्य द्वितीय ने अपने एक अभिलेख में सोमेश्वर को मामडी कहकर सम्बोधित किया है। इसका अर्थ चाचा या श्वसुर हो सकता है।

1223 ई० के लगभग उड़ीसा (उसेड्डिय) की एक सेना ने चोल राज्य को आक्रान्त कर श्रीरंगम् में कुछ समय तक उपद्रव किया। परन्तु 1225 ई० में मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने इन आक्रमणकारियों को वहां से खदेड़ दिया। इस अभियान का पूरा तथा स्पष्ट विवरण नहीं दिया गया है।

मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के अभिलेख तिरुचिरापल्ली, तंजोर, पुदुकोट्टै, मदुरा तथा तिरुनेलवेलि जिलों में प्राप्त हुए हैं। ये क्षेत्र उसके साम्राज्य के अंग थे। उसने अतिशयपांड्यदेव, कलियुगराम तथा शोणाडुकोंडन् की उपाधियां धारण कीं। उसका मन्त्री गुरुकुलत्तयन बहुत प्रभावशाली था और उसने तिरुत्तंगाल के विष्णु-पेरुमाल मन्दिर के गर्भगृह, अर्धमंडप तथा महामंडप का निर्माण कराया। उसके शासन का अन्त 1238 ई० के आस-पास हुआ।

कुछ तांबे के सिक्के जिन पर कलियुगरमन तथा कच्चिवलंगुम्पेरुमाल (जिसने कांची को पुनः प्राप्त किया) नामक विरुद अंकित हैं, इसी राजा के माने गए हैं[1]।

मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के उपरान्त जटावर्मनकुलशेखर द्वितीय ने बहुत कम समय तक शासन किया। उपर्युक्त दोनों शासकों में परस्पर क्या सम्बन्ध था, निश्चितरुप से ज्ञात नहीं, और न ही कुलशेखर द्वितीय के अल्पकालीन शासन की घटनाओं आदि के विषय में स्पष्ट सूचना उपलब्ध है। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार कुलशेखर की मृत्यु सम्भवतः मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के राज्यकाल में ही हो गई थी और उसकी मृत्यु के पूर्व उसने सुन्दरपांड्य द्वितीय

1. Vidya Prakash, Coinage of South India, p. 63.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया होगा।

जटावर्मन कुलशेखर द्वितीय के पश्चात् 1238 ई०[1] में ही मारवर्मन सुन्दर-पांड्य द्वितीय मदुरा के राजसिंहासन पर बैठा। वह शक्तिशाली शासक नहीं सिद्ध हुआ। उसके राज्यकाल में चोल राजेन्द्र तृतीय ने पांड्य राज्य पर आक्रमण कर सुन्दरपांड्य द्वितीय को पराजित कर दिया, उससे भेंटे आदि प्राप्त कीं तथा पांड्य राज्य में काफी लूट-पाट की थी।

राजेन्द्र तृतीय के राज्यकाल में चोलों की होयसलों से मित्रता समाप्त हो गई और होयसल पतनोन्मुख चोलों के विरुद्ध उदीयमान पांड्यों के समर्थक हो गए थे। राजेन्द्र तृतीय के एक अभिलेख में उसे पांड्य शासक का सिर काटने में दक्ष (पांड्यमणिमुकुटसिरमंडनपंडित) और दूसरे में इरुवरपांड्यमुडित्तलैकोंडरुलिन (जो मदुरा तथा पांड्य शासक का सिर लेने में प्रसन्न हुआ था) कहा गया है। उसने दो पांड्य शासकों को पराजित करने का दावा किया है। इनमें से एक मारवर्मन सुन्दरपांड्य द्वितीय रहा होगा और दूसरे की पहचान अनिश्चित है। इस चोल-पांड्य युद्ध में होयसल शासक सोमेश्वर ने राजेन्द्र तृतीय के विरुद्ध पांड्यों की सहायता की थी। 1250 ई० के लगभग होयसलों ने पांड्य राज्य के तिरुनेलवेलि क्षेत्र में अपना एक उच्च सैन्य-अधिकारी नियुक्त कर दिया था।

जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम (1251-1268ई०)—मारवर्मन सुन्दरपांड्य द्वितीय का उत्तराधिकारी जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम पांड्य शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं महान था। उसके राज्यकाल के बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो उसकी विविध उपलब्धियों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। राज्यारोहण के कुछ ही समय के पश्चात् उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति का सक्रिय रूप से क्रियान्वन प्रारम्भ कर दिया और शासन के प्रथम छः वर्षों में चेर, होयसल, चोल, काडव तथा श्रीलंका के राजाओं के विरुद्ध विजयें प्राप्त कीं।

जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने सबसे पहले चेर राज्य पर आक्रमण किया। मलय क्षेत्र (मलाबार) में घुसकर उसने चेर सेना को पराजित किया और चेर शासक उदयमार्तण्ड को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद उसने उदयमार्तण्ड के किसी प्रतिद्वन्दी को सम्भवतः चेर राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित

1. एन० सुब्रमण्यम् तथा पी० एन० चोपड़ा आदि ने सुन्दरपांड्य द्वितीय के शासन का प्रारम्भ 1251 ई० में माना है, परन्तु नीलकान्त शास्त्री तथा कृष्णस्वामी ने इसे 1238 ई० में।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर दिया। जटावर्मन ने तिरुचिरापल्ली के निकट कण्णनूर में होयसल सोमेश्वर को हराया और शिंगणदंडनायक तथा कुछ अन्य होयसल सेनापतियों को मार डाला। सोमेश्वर युद्ध के मैदान से भाग गया और उसे कावेरी नदी की घाटी छोड़नी पड़ी। इस विजय के परिणामस्वरुप पांड्य शासक को होयसलों से बहुत से हाथी भेंट में प्राप्त हुए। कुछ समय के बाद जटावर्मन का होयसलों से पुनः शक्ति-सन्तुलन हुआ जिसमें सोमेश्वर श्रीरंगम् के निकट युद्ध में मारा गया। जटावर्मन सुन्दरपांड्य के एक अभिलेख में काव्यात्मक शैली में बतलाया गया है कि पोन्नि (कावेरी नदी का क्षेत्र) जोकि चोलों के राज्य का अंग था, अब कन्नि क्षेत्र अर्थात् पांड्यों के अधीन हो गया था। इस प्रकार उसने चोल राज्य में होयसलों की उपराजधानी कण्णनूर पर विजय प्राप्त कर चोलों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। श्रीरंगम् से प्राप्त जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के एक अभिलेख में उसे 'चोल प्रजातिरुपी पर्वत के लिए वज्र' कहा गया है। 1258 ई० से लेकर अपने शेष सम्पूर्ण शासनकाल में चोल राजेन्द्र तृतीय ने पांड्यों के सामन्त के रुप में शासन किया।

शेन्दमंगलम् के काडव शासक कोप्पेरुंजिग द्वारा भेजे गए उपहारों को अस्वीकार करते हुए जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने शेन्दमंगलम् के दुर्ग में घेरा डाला और उस पर अधिकार कर लिया। बाद में उसने कोप्पेरुंजिग को उसका दुर्ग वापस दे दिया और उसे अपना सामन्त बना लिया। इसके उपरान्त जटावर्मन सुन्दरपांड्य चिदम्बरम् पहुंचा और वहां के नटराज मन्दिर में शिव की पूजा की। इस मन्दिर में उसने एक स्वर्णिम मंडप बनवाया और इसके शिखर को सोने की चद्दरों से मढ़वा दिया। श्रीरंगम् में ही उसने पांड्य तथा चोल राज्यों के शासक के रुप में तुलाभार दान सम्पन्न किया और इसके बाद अपना अभिषेक किया। श्रीरंगम् के विष्णु-मन्दिर को उसने मरकतमणि का वह बहुमूल्य हार अर्पित किया जिसे उसने कोप्पेरुंजिग से अपहृत किया था। उसने श्रीरंगम् में नगरोदय के राजमुकुट को स्वयं धारण किया; वहां के मन्दिर के शिखर को सोने की चद्दरें जड़वाकर सुशोभित किया और इस देवालय को 18 लाख[1] सोने के सिक्के भी भेंट किए। वह अपनी रानी सहित स्वर्ण मुकुट धारण कर श्रीरंगम् के मन्दिर में एक भव्य राजसिंहासन पर विराजमान हुआ। उस समय वह उदीयमान सूर्य की भांति सुशोभित था। उसने जैन पल्लियों को भी दान देकर अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया।

1. यह संख्या अतिरंजित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

1252 तथा 1254 ई० के मध्य जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने श्रीलंका पर आक्रमण किया और वहां के शासक को पराजित कर उसे अपना अधीनस्थ बनाया।

उत्तर में जटावर्मन ने बाणों पर विजय प्राप्त कर उनके राजा को वन्य प्रदेश की ओर खदेड़ दिया। उसने तेलुगू चोड शासक गंडगोपाल को मार दिया और कांची पर अधिकार कर लिया। बाद में गंडगोपाल के भाइयों ने उसके समक्ष समर्पण किया और जटावर्मन ने उसका राज्य वापस लौटा दिया। आगे बढ़ते हुए जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने काकतीय शासक गणपति तथा उसके मित्र आर्यों को 1263 ई० में मुडुगूर नामक स्थान पर पराजित करने के बाद कृष्णा नदी तक खदेड़ा। एस० के० आयंगर के अनुसार यहां पर आर्यों का तात्पर्य देवगिरि के यादवों से है। विजय प्राप्त करती हुई पांड्य सेना पूर्वी गोदावरी जिले में द्राक्षारामम् तक पहुंच गई थी। नेल्लोर को जीतने के पश्चात् सुन्दर-पांड्य ने वहां अपना वीराभिषेक किया। उसे गणपति रुपी हिरण के लिए सिंह, काठकरुपी हाथी (कोप्पेरुंजिग) के लिए कूटपाकलज्वर तथा गंडगोपाल का वध करने वाला बतलाया गया है। बाद में गणपति ने द्राक्षारामम् पर पुनः अधिकार कर लिया। उपर्युक्त सभी विजयें जटावर्मन ने एक ही अभियान में प्राप्त कीं होंगी और यह अभियान उत्तर के शत्रुओं के विरुद्ध किया गया था। नीलकान्त शास्त्री के अनुसार बाण शासक तथा गणपति गंडगोपाल के सम्भवतः मित्र थे। इस प्रकार जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने तमिल प्रदेश में चोलों की शक्ति को बहुत अधिक क्षति पहुंचाई; होयसलों को कण्णनूर से अपदस्थ कर कर्नाटक की ओर जाने के लिए बाध्य किया; कोंगु प्रदेश को अपने अधीन किया; केरल के शासक को करदीकृत सामन्त बनाया और श्रीलंका पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसके साम्राज्य का विस्तार उत्तर में पेन्नार नदी अथवा नेल्लोर तथा कडप्पा से लेकर (कर्नाटक के अतिरिक्त) दक्षिण में श्रीलंका तक के समस्त भू-भाग तक हो गया था और तिरुचिरापल्ली, तंजोर, दक्षिणी अर्काट तथा ट्रावन्कोर उसके साम्राज्य के प्रमुख क्षेत्र थे। कांची उपराजधानी थी और सिंहल भी पांड्यों का अधीनस्थ देश हो गया था।

जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने कई स्मारकों का निर्माण कराया और वैदिक यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए यज्ञशाला बनवाई। महाराजाधिराज तथा परमेश्वर के अतिरिक्त उसने समस्तजगदाधार, कांचीपुरमकोंडान, हेमाच्छादन-राज (जिसने मन्दिरों को स्वर्ण से आच्छादित कर दिया था), एलानडलैयानान

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(सभी का अधिपति), इम्मंडलमुम्कोडरुलिय (सभी राज्यों का विजेता), वालाल्वलितिरन्दान (जिसने तलवार के द्वारा मार्ग खोल दिया था), मर्कतपृथ्वी-भृत, राजपतन (सूर्य की भांति तपने वाला) तथा कोदंडराम की उपाधियां धारण कीं। उसके सिक्कों पर एलानडलैयानान का विरुद अंकित है। उसने मन्दिरों में कुछ उत्सवों या मेलों का आयोजन प्रारम्भ किया था। जटा-वर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने अपने पुत्र मारवर्मन कुलशेखर प्रथम को युवराज नियुक्त कर दिया था। इस राजकुमार के अतिरिक्त विक्रमपांड्य तथा वीर-पांड्य नामक राजाओं के अभिलेख भी जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के अभि-लेखों के साथ में प्राप्त हुए हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि वीरपांड्य एवं विक्रमपांड्य ने उन्हीं शत्रुओं को जीतने का दावा किया है जिनके विरुद्ध जटा-वर्मन सुन्दरपांड्य ने विजयें प्राप्त की थीं। वीरपांड्य के 1253 ई० एक अभि-लेख के अनुसार उसने ईलम् (श्रीलंका), कोंगु तथा शोलमंडलम् (चोल राज्य) पर अधिकार किया और चोल शासक को पराजित करने के उपरान्त चिदम्बरम् में अपना अभिषेक किया। उपर्युक्त दोनों शासकों का पांड्य राज्य के कुछ भू-भागों में संयुक्त रुप से शासन करने का भी उल्लेख हुआ है और उन्हें राजकीय उपाधियां भी प्रदान की गईं हैं। वस्सफ ने तीन भाइयों के शासन का उल्लेख किया है और मार्कोपोलो ने पांच पांड्य राजकुमारों के संयुक्त शासन का। परन्तु विभिन्न पांड्य राजाओं के अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों तथा उनमें वर्णित उनकी उपलब्धियों आदि से प्रमाणित होता है कि पांड्य राज्य का तीन या पांच शासकों के बीच विभाजन नहीं हुआ था। उपर्युक्त पांच राजकुमार सम्भवतः स्वतन्त्र शासक नहीं थे, वरन् जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम के शासनकाल में उसके सह-साहक, गवर्नर अथवा सेनापति आदि रहे होंगे।

मारवर्मन कुलशेखर प्रथम–जटावर्मन सुन्दरपांड्य के शासनकाल में ही उसका पुत्र मारवर्मन कुलशेखर प्रथम युवराज नियुक्त कर दिया गया था और प्रशासन के उत्तरदायित्व से सक्रियरुप से सम्बद्ध था। उसने अपने नाम से शासन-पत्र भी जारी किए थे। जटावर्मन सुन्दरपांड्य की मृत्यु के उपरान्त कुलशेखर प्रथम ने 1268 ई० में स्वतन्त्र शासक के रुप में शासन की बागडोर सम्भाली। उसके अभिलेख उसके शासनकाल के तीसरे वर्ष से लेकर 44वें वर्ष तक के हैं जिनमें से अधिकांश पूर्वी तमिल प्रदेश में पाये गये हैं। कुलशेखर के शासन के 12वें वर्ष के शेरमादेवी अभिलेख के अनुसार कुलशेखर प्रथम ने मलयनाडु, कोंगु, शोणाडु, तोंडमंडलम् तथा श्रीलंका पर विजयें प्राप्त की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थीं। उसके शासन के 34वें वर्ष के तंजोर जिले से प्राप्त एक अभिलेख से प्रतीत होता है कि उस समय उसके साम्राज्य में कुछ आन्तरिक अशांति थी और उसके राज्य के कुछ क्षेत्रों पर उसके भाइयों ने अधिकार कर लिया था। परन्तु बाद में कुलशेखर ने स्थिति को सुधार लिया और खोए हुए प्रदेशों को पुनः अपने अधीन कर लिया।

मारवर्मन कुलशेखर प्रथम ने चोल शासक राजेन्द्र तृतीय के मित्र होयसल रामनाथ पर 1279 ई० में आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। इस विजय के परिणामस्वरुप उसका प्रभुत्व चोल राज्य के अतिरिक्त रामनाथ के दक्षिणी जिलों पर भी स्थापित हो गया था। कुलशेखर ने 1284 ई० के आस-पास श्रीलंका को भी आक्रान्त किया। इस अभियान का विवरण महावंश में मिलता है जो संक्षेप में इस प्रकार है–

भुवनैकबाहु प्रथम[1] के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में कुलशेखर प्रथम ने अपने मन्त्री एवं सेनानायक आर्यचक्रवर्ती के नेतृत्व में एक सेना श्रीलंका पर आक्रमण करने के लिए भेजी। उस समय वहां के लोग दुर्भिक्ष से पीड़ित थे। यह अभियान पूर्णतया सफल रहा; श्रीलंका का शासक पराजित हुआ; पांड्य सेना ने काफी धन-सम्पत्ति लूटी और आर्यचक्रवर्ती ने शुभगिरि के नगर को तहस-नहस किया तथा इसके दुर्ग में घुसकर महात्मा बुद्ध का एक दांत प्राप्त कर लिया। इसके बाद विजयिनी पाड्य वाहिनी वापस आ गई, आर्यचक्रवर्ती ने बुद्ध का दांत कुलशेखर प्रथम को भेंट किया और श्रीलंका पर उसकी अधिसत्ता स्थापित हो गई।

भुवनैकबाहु प्रथम के उत्तराधिकारी पराक्रमबाहु तृतीय (1303 ई०) ने कूटनीति से काम लिया और कुलशेखर के प्रति सम्मान प्रदर्शित कर महात्मा बुद्ध का दांत उससे पुनः प्राप्त कर लिया।

कुलशेखर प्रथम ने तिरुनेलवेलि के मन्दिर के प्राकार का निर्माण कराया। इस निर्माण-कार्य में उसने वह धन-सम्पत्ति व्यय की जो केरल, चोल तथा होयसल राज्यों के शासकों को पराजित करने के उपरान्त प्राप्त की थी। उसके शासन के 15वें वर्ष में उसका एक सैनिक-शिविर कण्णनूर में लगा हुआ था। कुलशेखर ने कोनेरिमयकोंडम् (अद्वितीय शासक) और कोल्लमकोंड (क्वीलन को अधिकृत करने वाला) के विरुद धारण किए। उसे पाड्य तथा चोल राज्यों का

1. नीलकान्त शास्त्री के अनुसार यह आक्रमण 1284 ई० के लगभग पराक्रमबाहु तृतीय के शासनकाल में हुआ होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासक भी कहा गया है। उसके राज्यकाल के एक अभिलेख में वर्णित है कि वह जलगोंडगोलपुरम् में कलिंगरायन नामक अपने राजप्रासाद में निवास करता था और उसके शासन 31वें वर्ष के एक अन्य अभिलेख में उसकी रोगमुक्ति की कामना के लिए किए गए भूमि-दान का विवरण है। कुछ सिक्कों के अग्रभाग पर राजा की आकृति तथा पृष्ठभाग पर मत्स्य-युगल एवं राजा की उपाधि कुलशेखर (वंश की गरिमा का पुनरुद्धारक) अंकित हैं। ये सिक्के इसी कुलशेखर ने जारी किए होंगे। वेनिस के प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने 1293 ई० में पांड्य राज्य का भ्रमण किया था। वह वहां की समृद्धि तथा प्रशासन-व्यवस्था आदि से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उसने लिखा है कि मावर भारत के सभी राज्यों में सर्वश्रेष्ठ था और वहां पांच पांड्य राजकुमारों में से सबसे ज्येष्ठ सोन्दरबन्दी देवर (सुन्दर पांड्य देवर) शासन कर रहा था। उसके राज्य में बहुत आकर्षक तथा उत्कृष्ट मुक्ता पाये जाते थे। कैल (ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर स्थित कायल) अत्यन्त भव्य नगर था। इस नगर में किस (फारस की खाड़ी में स्थित एक द्वीप), आदेन, अरबिया तथा अन्य देशों से आने वाले घोड़ों एवं दूसरी वस्तुओं से लदे सभी जहाज रुकते थे। वहां के राजा के पास एक विशाल कोष था और वह बहुमूल्य रत्न तथा जवाहरात आदि धारण करता था। वह एक बड़े राज्य का अधिपति था और न्यायपूर्ण ढंग से प्रशासन-व्यवस्था चलाता था। वह व्यापारियों तथा विदेशियों के साथ सद्व्यवहार करता था और उन्हें काफी रियायतें एवं सुविधायें प्रदान करता था। इसलिए वे खुशी से वहां जाते थे। मार्कोपोलो ने यह भी लिखा है कि इस राजा के (अन्तःपुर में) पांच सौ रानियां थीं। उसके राज्य में सती-प्रथा का प्रचलन था और मन्दिरों में देव-दासियां रहती थीं। उसके विवरण में एक महत्वपूर्ण सूचना यह भी मिलती है कि बाहर से आए हुए कीमती घोड़े, अश्वचिकित्सकों के अभाव तथा लापरवाही के कारण बड़ी संख्या में मर जाते थे जिससे राज्य को अत्यधिक आर्थिक हानि होती थी। इस राज्य के सैनिक समुचित अस्त्र-शस्त्रों से लैस नहीं थे।

मुस्लिम इतिहासकार वस्सफ के अनुसार फारस की खाड़ी के द्वीपों की सम्पत्ति तथा ईराक, खुरासान, रुम (टर्की) एवं यूरोप की साज-सज्जा के उपकरणों का स्रोत मावर ही था। मावर का शासक कलेसदेवर (Kales Dewar =कुलशेखर) अत्यधिक शान-शौकत का जीवन व्यतीत करता था। उसने 40 वर्ष से भी अधिक समय तक शासन किया। इस दीर्घकाल में उसके राज्य पर न तो किसी विदेशी शत्रु का आक्रमण हुआ और न ही वह किसी बड़ी बीमारी का शिकार हुआ। उसकी तिजोरियां सोने से परिपूर्ण थीं और मावर के कोष

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में 12,00 करोड़ स्वर्ण-सिक्कों के अतिरिक्त प्रभूत मात्रा में बहुमूल्य मुक्ता, रत्न एवं जवाहरात थे।

मार्कोपोलो का उपर्युक्त विवरण उसकी व्यक्तिगत जानकारी पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। पांड्य राज्य उत्कृष्ट मोतियों के उत्पादन एवं व्यापार के लिए सदैव प्रसिद्ध रहा। पांच पांड्य राजकुमारों के संयुक्त-शासन अथवा कुलशेखर एवं उसको प्रशासन में सहयोग देने वाले चार अन्य पांड्य राजकुमारों के विषय में हमें अन्य साक्ष्यों में भी सूचना प्राप्त होती है। भारतीय शासक अपनी सेना के लिए कीमती घोड़े अफगानिस्तान तथा पश्चिमी देशों से मंगवाते थे और जलवायु की प्रतिकूलता तथा कुछ अन्य कारणों से वे दक्षिण भारत में अधिक समय तक प्रायः जीवित नहीं रह पाते थे। मार्कोपोलो के विवरण से प्रमाणित होता है कि मारवर्मन कुलशेखर ने विदेशी व्यापारियों को अनेक सुविधायें देकर प्रोत्साहित किया जिससे विदेशी व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई, जैसाकि वस्सफ के विवरण से भी हमें ज्ञात होता है। वस्सफ ने सामान्यतया मार्कोपोलो के विवरण की पुष्टि की है। परन्तु उसका यह कथन कि मारवर्मन कुलशेखर के शासनकाल में कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ और न ही वह रोगग्रस्त हुआ, असत्य एवं अग्राह्य है।

चीनी साक्ष्यों में भी पांच भाइयों द्वारा चीन को भेजे गए राजदूतों का उल्लेख हुआ है। यह विवरण मारवर्मन कुलशेखर के शासनकाल के सन्दर्भ में ही है।

कुलशेखर प्रथम को प्रशासन-कार्य में कम से कम चार पांड्य राजकुमारों ने सहयोग दिया था जिनके नाम इस प्रकार हैं–

जटावर्मन सुन्दरपांड्य द्वितीय (1276 ई०)
मारवर्मन विक्रमपांड्य (1283 ई०)
जटावर्मन वीरपांड्य द्वितीय (1296 ई०)
जटावर्मन सुन्दरपांड्य तृतीय (1303 ई०)

उपर्युक्त पांड्य राजकुमारों में जटावर्मन वीरपांड्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उसने सम्भवतः उपराजा के रूप में शासन किया और उसके प्रभुत्व के अन्तर्गत तिरुनेलवेलि, मदुरा, रामनाड, पुदुकोट्टै, कांची तथा कोयम्बटूर क्षेत्र थे। उसने श्रीलंका, कोंगु तथा शेन्दमंगलम् के काडव शासक कोप्पेरुंजिंग के विरुद्ध अभियानों में सक्रिय सहयोग दिया था। मार्कोपोलो ने सम्भवतः इसी राजा को सोन्दरबन्दीदेवर और वस्सफ ने सुन्दरपंड्य कहा है। उसके अभिलेख कडप्पा,

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सलेम, तंजोर, दक्षिणी अर्काट तथा चिंगलेपुट जिलों से प्राप्त हुए हैं।

मारवर्मन विक्रमपांड्य 1283 ई० के लगभग उपराजा हुआ। चिदम्बरम् के अभिलेख के अनुसार उसने वेड़ाद (दक्षिणी ट्रावनकोर) को जीता और चोलों को पराजित किया। परन्तु इस अभिलेख की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। विक्रम-पांड्य ने 1295-96 ई० तक शासन किया। जटावर्मन वीरपांड्य, कुलशेखर प्रथम का पुत्र था। वह 1296-97 ई० में उपराजा हुआ था। जटावर्मन सुन्दर-पांड्य तृतीय भी कुलशेखर का पुत्र था। उसे 1303 ई० के लगभग सहशासक के रूप में प्रशासन से सम्बद्ध किया गया था।

वस्सफ ने लिखा है कि सुन्दरपडी (जटावर्मन सुन्दरपांड्य तृतीय) कुलशेखर प्रथम का ज्येष्ठ तथा औरस पुत्र था और तिरापडी (वीरपांड्य) उसकी रखैल स्त्री से उत्पन्न था। कुलशेखर ने वीरपांड्य को प्रशासन कार्य से 1295-96 ई० में ही सम्बद्ध कर लिया था जबकि जटावर्मन सुन्दरपांड्य तृतीय को 1303 ई० में यह उत्तरदायित्व प्रदान किया। उसका झुकाव वस्तुतः वीरपांड्य की ओर अधिक था और वह उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। कुलशेखर के इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण सुन्दरपांड्य तृतीय तथा वीरपांड्य के बीच वैमनस्य हो गया। सुन्दरपांड्य ने उत्तेजित होकर 1310 ई० में अपने पिता का वध कर दिया और राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। कुलशेखर प्रथम का वध करने के कारण पांड्य राज्य की प्रजा तथा कुछ सामन्त शासकों एवं उच्च पदाधिकारियों ने वीरपांड्य की सहायता की। इन दोनों सौतेले भाइयों का प्रथम युद्ध तलची नामक स्थान पर हुआ जो अनिर्णायक रहा। इसके बाद 1310 ई० में ही वीरपांड्य ने सुन्दरपांड्य पर पुनः आक्रमण किया और उसे पराजित करने के उपरान्त मदुरा के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। अपदस्थ तथा पराजित होने के पश्चात् जटावर्मन सुन्दरपांड्य तृतीय ने अलाउद्दीन खिलजी से सहायता मांगी। खिलजी सुल्तान वैसे भी पांड्य राज्य पर आक्रमण करता और इस परिस्थिति ने उसे अपनी योजना को साकार करने के लिए अनुकूल अवसर प्रदान किया। उसने सुन्दरपांड्य तृतीय की सहा-यता के लिए मलिककाफूर के नेतृत्व में 1310 ई० मे (कुछ विद्वानों के अनुसार 1311 ई० में) अपनी सेना भेज दी। परन्तु मुस्लिम सेना के मदुरा पहुंचने के पूर्व ही वीरपांड्य वहां से भाग गया। मलिककाफूर ने मदुरा को तहस-नहस किया। इसके उपरान्त कण्णनूर तथा चिदम्बरम् पहुंच कर उसने वहां तोड़-फोड़ की और मन्दिरो की अतुल सम्पत्ति लूटी। फिरिश्ता के अनुसार मलिककाफूर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सेतबन्दरामेसर (सेतुबन्धरामेश्वरम्) तक गया था और वहां के एक मन्दिर को तुड़वाकर उसके स्थान पर उसने मस्जिद का निर्माण कराया तथा अलाउद्दीन के नाम पर इस नवनिर्मित मस्जिद का नाम रखा। परन्तु अमीरखुसरो तथा दूसरे मुस्लिम इतिहासकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया है। इसलिए एस० के० आयंगर आदि विद्वान फिरिश्ता के सेतुबन्धरामेश्वरम् विषयक उपर्युक्त विवरण को प्रामाणिक नहीं मानते हैं। अमीरखुसरो के अनुसार मावर विजय के परिणामस्वरुप मलिककाफूर को 512 हाथी, 5,000 घोड़े और 5,00 मन बहुमूल्य रत्न आदि प्राप्त हुए थे।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि मलिककाफ़ूर ने वस्तुतः सुन्दरपांड्य तृतीय की सहायता करने के लिए ही पांड्य राज्य पर आक्रमण किया था। परन्तु खिलजी सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान अग्राह्य है। ए० के० मजूमदार तथा नीलकान्त शास्त्री के अनुसार सुन्दरपांड्य अलाउद्दीन से अपने प्रतिद्वन्दी वीरपांड्य के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए दिल्ली नहीं गया, वल्कि वह मलिककाफूर से इस सन्दर्भ में उस दौरान में मिला था जब काफूर दक्षिण में ही विद्यमान था। किस सीमा तक सुन्दरपांड्य को मुस्लिम सहायता प्राप्त हुई, निश्चितरुप से ज्ञात नहीं। इस मान्यता के लिए भी कोई प्रमाण नहीं है कि मलिककाफूर ने सुन्दरपांड्य को मदुरा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया था और उसकी सुरक्षा के लिए वहां एक सेना भी तैनात कर दी थी। तथ्य कुछ भी हो, मलिककाफूर के वापस जाने के पश्चात् वीरपांड्य पुनः सक्रिय हो गया तथा उसने सुन्दरपांड्य के राज्य के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र एवं उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारक ने भी पांड्यों से युद्ध किया। उसने खुसरो खां के नेतृत्व में अपनी एक सेना मावर पर आक्रमण करने के लिए भेजी थी। परन्तु खुसरो खां के पहुंचने के पहले ही पांड्य शासक (सुन्दरपांड्य एवं वीरपांड्य) अपनी सम्पत्ति एवं परिवार सहित वहां से भाग गए थे। वर्षा आदि के कारण भी आक्रान्ता को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा और यह अभियान विफल रहा।

इस गृह-युद्ध तथा मलिककाफूर के आक्रमण का पांड्यों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा पर बुरा प्रभाव हुआ और इससे निकटवर्ती शासकों को विद्रोह तथा पांड्य राज्य पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया। केरल के शासक रविवर्मन कुलशेखर ने पांड्य राज्य पर आक्रमण कर दिया और वीरपांड्य एवं

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सुन्दरपांड्य, दोनों को पराजित कर उन्हें अपनी अधिसत्ता मानने के लिए बाध्य कर दिया। वीरपांड्य को भाग कर कोंकण में शरण लेनी पड़ी थी। रविवर्मन-कुलशेखर ने चोलों पर भी विजय प्राप्त की और इसके पश्चात् 1312-13 ई० के आस-पास उसने वेगवती[1] नदी के तट पर अपना अभिषेक किया। सुन्दरपांड्य तृतीय ने पराजित होने के उपरान्त काकतीय शासक गणपति से सहायता मांगी। गणपति ने उसकी मदद के लिए नेल्लोर के गवर्नर के नेतृत्व में अपनी एक सेना भेजी जिसने वीरपांड्य तथा रविवर्मनकुलशेखर को पराजित कर दिया और रविवर्मन को पीछे खदेड़ कर वापस जाने के लिए बाध्य कर दिया। तदनन्तर काकतीय सेनापति ने वीरधवलपतनम (बीरधोल) में सुन्दरपांड्य तृतीय को पांड्य राजपीठ पर प्रतिष्ठित कर दिया। इस पांड्य शासक की अन्य गतिविधियों का उल्लेख नहीं हुआ है और 1319 ई० के बाद उसके विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

वीरपांड्य ने बाद में वीर उदयमार्तण्डवर्मन तथा सम्भवतः होयसल वीर-बल्लाल तृतीय के साथ गठबन्धन कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया और रविवर्मन कुलशेखर को पराजित कर उसे अपने राज्य के उत्तरी भाग से निकालने में सफलता प्राप्त की। परन्तु पांड्य राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में इसके बाद भी कुछ समय तक रविवर्मन अपना अधिकार बनाए रहा।

खिलजियों के पतन के पश्चात् तुगलक वंश ने शासन किया। तुगलकों ने भी पांड्यों की शक्ति को नष्ट करने के उद्देश्य से उन पर कई आक्रमण किए। गियासुद्दीन तुगलक ने 1323 ई० में अपने पुत्र उलुग खां (जो बाद में मुहम्मद बिन तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ) के नेतृत्व में मावर पर विजय प्राप्त करने के लिए एक सेना भेजी। यह अभियान पूर्णतया सफल रहा। तुगलक सेना ने मावर को जीतने के उपरान्त पांड्य शासक पराक्रमदेव को बन्दी बना लिया और मावर को दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया। बरनी ने लिखा है कि 1327 ई० में मदुरा की गणना दिल्ली सल्तनत के प्रान्तों में की जाती थी।

काकतीय शासक प्रतापरुद्र ने भी पांड्यों को अपनी साम्राज्यवादी नीति का लक्ष बनाया और पांड्य राज्य को आक्रान्त करने के लिए एक सेना भेजी। इस आक्रमण का सामना पांचो पांड्य राजकुमारों (वीरपांड्य, सुन्दरपांड्य, विक्रमपांड्य, कुलशेखर तथा पराक्रमपांड्य) ने मिलकर किया और सम्भवतः

1. कुछ विद्वानों के अनुसार यह नदी कांची के निकट बहती थी और कुछ ने इसे [illegible] जिले में प्रवाहित होने वाली नदी माना है।

CC-0. Uttar Pradesh State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कांची नगर के निकट विपक्षी दलों में संघर्ष हुआ जिसमें पांड्य पराजित हुए तथा काकतीयों ने कांची पर अधिकार कर लिया। प्रतापरुद्र ने कांची में अपना एक प्रान्तीय शासक भी नियुक्त कर दिया था। यद्यपि इसके बाद भी वीर-पांड्य तथा सुन्दरपांड्य ने कांची को अधिकृत करने के लिए काकतीयों से युद्ध किया, परन्तु वे दूसरी बार भी पराजित हुए। वीरपांड्य के 1341 ई० तक के अभिलेख रामनाड ज़िले में प्राप्त हुए हैं। उसी के राज्यकाल में मदुरा तुगलक सल्तनत का अग तथा उसके दक्षिणी प्रान्तों का केन्द्र बन गया था।

तुगलक सुल्तान मावर पर अधिक समय तक अपना प्रभुत्व कायम नहीं रख सके। 1333-34 ई०में मुहम्मद तुगलक के सूबेदार[1] जलालुद्दीन अहसनशाह ने तुगलकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मदुरा में अपनी स्वतन्त्र सल्तनत स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। परन्तु स्वतन्त्र शासक के रूप में वह भी वहां टिक नहीं सका। शाम्बुरायन वंशीय एकाम्बरनाथ ने होयसल वीरबल्लाल तृतीय की सहायता प्राप्त कर अहसनशाह को चुनौती दी और कापयनायक ने मदुरा सल्तनत के उत्तरी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इब्नबतूता ने अहसन-शाह के राज्यकाल की घटनाओं का कोई ब्योरा नहीं दिया है और केवल यही लिखा है कि पांच वर्ष के शासन के पश्चात् उसकी हत्या कर दी गई थी। इसके बाद अलाउद्दीन उदौजी, कुतुबुद्दीन तथा गियासुद्दीन मुहम्मदशाहदामधानी क्रमशः मदुरा के सुल्तान हुए, किन्तु इनमें से कोई भी वहां अधिक समय तक शासन नहीं कर सका। इसका प्रमुख कारण उनके विरुद्ध हिन्दू शासकों द्वारा किए गए विद्रोह थे जिनमें पांड्यों ने भी सक्रिय भाग लिया था।

मदुरा खो देने के उपरान्त भी पाड्यों के शासन का अन्त नहीं हुआ और वे इसके निकटवर्ती क्षेत्रों में ही 17वीं शती के मध्य तक राज्य करते रहे। इस काल के साक्ष्यों में अनेक पांड्य राजाओं के उल्लेख मिलते हैं जिनमें से कुछ के शासनकाल तथा शासन क्षेत्र परस्पर अतिव्यापी (overlapping) भी हैं।

जटावर्मन पराक्रमपांड्य ने 1315 ई० से 1347 ई० तक शासन किया। उसके अभिलेख तिरुनेलवेलि, मदुरा, रामनाड तथा तजोर जिलों के अतिरिक्त पुदुकोट्टै क्षेत्र में भी प्राप्त हुए हैं। इसी दौरान में मारवर्मन कुलशेखर (1315-1345 46 ई०) ने शासन किया। वह सम्भवतः सुन्दरपांड्य तृतीय का छोटा भाई था। उसके अधिकार क्षेत्र में तिरुनेलवेलि से लेकर तंजोर तक का भू-भाग

1. इब्नबतूता के अनुसार अहसनशाह मदुरा का गवर्नर था। परन्तु एन० वेंकटनाथा के अनुसार वह मावर का कोतवाल रहा होगा।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शामिल था। मारवर्मन पराक्रमपांड्य (1335-1352 ई०) के अभिलेख रामनाड, तंजोर, दक्षिणी अर्काट एवं चिंगलेपुट जिलों में मिले हैं। मारवर्मन वीरपांड्य ने 1334 से 1380 ई० तक राज्य किया। शासन के 31वें वर्ष (1364-65 ई०) में उसने रामनाड जिले में अपना एक शासनादेश जारी किया था। उसका पतन मुख्यत: विजयनगर साम्राज्य के अभ्युदय के कारण हुआ। जटावर्मन पराक्रम-पांड्य नाम के एक अन्य पांड्य राजकुमार ने भी 1357 से 1380 ई० तक शासन किया और उसके अभिलेख रामनाड जिले तथा पुटुकोट्टै क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। पराक्रमपांड्य नाम के ही एक अन्य राजकुमार ने अपने शासन के 20वें वर्ष (लगभग 1387 ई०) में तेनकसि (तिरुनेलवेलि जिले के निकट) के विश्व-नाथ मन्दिर के गर्भगृह एवं मंडप का जीर्णोद्धार कराया था। इसी नाम के दूसरे शासक ने 1384 से 1415 ई० तक, और जटावर्मनकुलशेखर ने 1395 से 1411 ई० (कुछ के अनुसार 1384-1396 ई० तक) तक शासन किया। इन राजाओं के अभिलेख मुख्यत: तिरुनेलवेलि जिले में ही पाये गये हैं। इससे प्रमा-णित होता है कि उनका प्रभुत्व इसी क्षेत्र तक सीमित था। अरिकेसरि पराक्रम ने 15वीं शताब्दी के मध्य के लगभग शासन किया। केरल राज्य के विरुद्ध विजय उसकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसके अतिरिक्त उसने कुछ अन्य निकटवर्ती छोटे शासकों को भी पराजित किया था।

के० ए० नीलकान्त शास्त्री तथा टी० वी० महालिंगम के अनुसार कम्पन ने 1361 एवं 1363-64 ई० के बीच मावर के विरुद्ध अभियान किया था। एन० वेंकटरमनैय्या ने इस घटना को 1370 ई० में रखा है। 1371 ई० के एक अभि-लेख में कम्पन के सेनानायक गोप्पन ने तुरुष्कों का संहार करने का दावा किया है। कम्पन के 1371 तथा 1374 ई० के दो अभिलेख रामनाड जिले में प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख इस भू-भाग पर कम से कम उपर्युक्त तिथियों में उसके प्रभुत्व का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु एक अभिलेख में बुक्का के पिता संगम को तुरुष्कों तथा मदुरा के पांड्यों को पराजित करने का श्रेय दिया गया है।

मारवर्मन वीरपांड्य ने 1497 ई० तक और मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने 1531 से 1555 ई० तक राज्य किया। 1534 ई० के आस-पास श्रीवल्लभ का शासन प्रारम्भ हुआ। उसकी ट्रावन्कोर के शासक से शत्रुता थी और विजय-नगर के राजा अच्युतराय ने श्रीवल्लभ की ओर से ट्रावनकोर के शासक को पराजित किया था। इसके बाद भी लगभग एक शताब्दी तक पांड्य किसी न किसी रूप में अपने पैतृक क्षेत्र में शासन करते रहे। परन्तु उनके

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विषय में बहुत कम सूचना मिलती है और वे महत्वहीन शासक थे। 1649 ई० तक मदुरा विजयनगर साम्राज्य के अधीन रहा। इसके पश्चात् पांड्यों के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि खिलजियों, तुगलकों, मदुरा के स्थानीय सुल्तानों, होयसलों, काकतीयों एवं विजयनगर के शासकों की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा के अनेक बार शिकार होने के बावजूद, पांड्य 17वीं शताब्दी के मध्य तक अपनी प्राचीन राजनगरी मदुरा के निकटवर्ती क्षेत्रों में ही अपना अस्तित्व बनाए रहे।

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

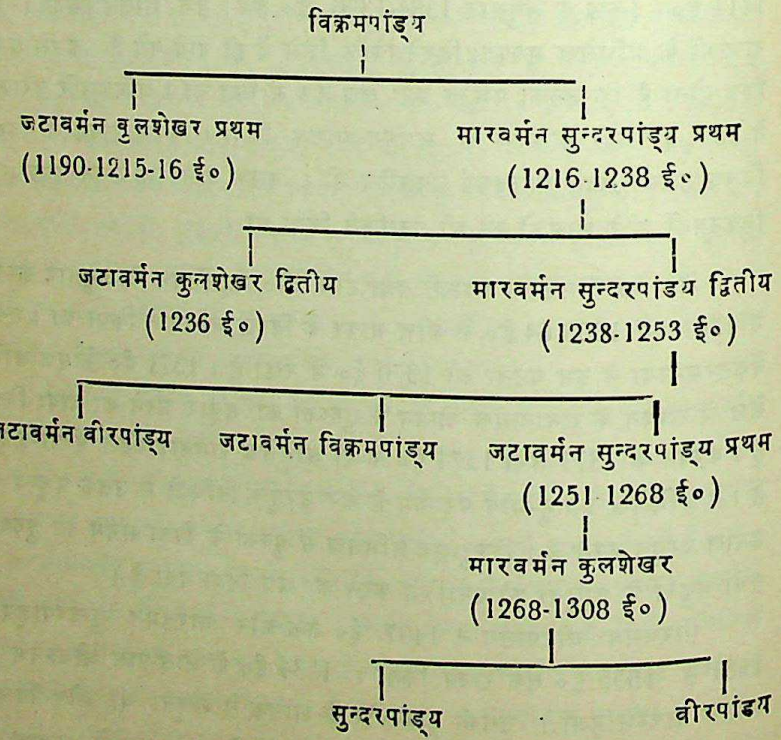

1. History of South India, Vol. 1, p. 182.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

23

बनवासी का कदम्ब राजवंश

उत्पत्ति एवं प्रारम्भिक इतिहास—आन्ध्र-सातवाहनों के पतन के पश्चात् कुन्तल[1] प्रदेश में क्रमशः चुटुओं तथा पल्लवों ने शासन किया। तदुपरान्त चतुर्थ शताब्दी के मध्य के लगभग कुन्तल में कदम्ब राजवंश का उदय हुआ। कदम्ब शासकों की राजधानी बनवासी[2] थी जिसका दूसरा नाम वैजयन्ती था। इस राजवंश के प्रारम्भिक अभिलेखों में कदम्बों को कुन्तल का मूलनिवासी तथा कदम्ब वृक्ष से सम्बन्धित बतलाया गया है। शान्तिवर्मन के तालगुंड अभिलेख के अनुसार पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र में मानव्य गोत्रीय ब्राह्मणों का एक परिवार काफी समय से रह रहा था। ये ब्राह्मण अपने को हारीतिपुत्र कहते थे। उनके निवास के निकट एक कदम्ब वृक्ष था। कदम्ब वृक्ष ललितादेवी की पूजा से सम्बन्धित था जिसे कदम्ब-वनवासिनी कहते थे।

परन्तु दसवीं शताब्दी तथा इसके बाद शासन करने वाले कदम्बों की

---

1. प्राचीन कुन्तल राज्य में वर्तमान कर्नाटक राज्य का अधिकांश भाग शामिल था।
2. बनवासी नगर मैसूर के पश्चिमी सीमान्त पर सोरब तालुक में स्थित था। यह नगर काफी प्राचीन प्रतीत होता है। महाभारत में इसे बनवास कहा गया है। नागार्जुनकोंड से प्राप्त इक्ष्वाकु शासकों के अभिलेखों में बतलाया गया है कि बनवास के तीर्थयात्री नागार्जुनकोंड के बौद्ध-विहारों के दर्शन करने के लिए जाते थे। महावंश से हमें ज्ञात होता है कि मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध विद्वान रक्खित (रक्षित) को बनवास तथा अपरान्त भेजा था। टालमी (लगभग 150 ई०) ने वैजयन्ती (Byzantion) का उल्लेख किया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसे कोंकणपुर कहा है। (Kon-ki-na-pulo) कहा है। पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति में वरदा नदी को वैजयन्ती की मेखला बतलाया गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विभिन्न शाखाओं के राजाओं के अभिलेखों में उनकी उत्पत्ति से सम्बन्धित काल्पनिक विवरण प्राप्त होते हैं। हंगल, हलसी तथा देगम्बे के कदम्ब शासकों के कुछ अभिलेखों में वर्णित एक कथानक के अनुसार शिव के मस्तक से कदम्ब वृक्ष के नीचे गिरी पसीने की एक बूंद से तीन नेत्र तथा चार भुजाओं वाला कदम्ब नामक एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ। उसी के वंशज कदम्ब कहलाए। कदम्ब के पुत्र का नाम मयूरवर्मन था। दूसरी अनुश्रुति के अनुसार मयूरवर्मन स्वयं कदम्ब वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था और उसके मस्तक पर तीसरा नेत्र भी था। अतएव राजमुकुट मस्तक के स्थान पर उसके घुटनों पर बान्धा गया। उसका पालन-पोषण दकम्ब वृक्ष के नीचे हुआ, इसलिए उसका परिवार कदम्ब कहलाया। कन्नड़ ग्रन्थ ग्रामपद्धति में बतलाया गया है कि मयूरवर्मन शिव एवं पार्वती का पुत्र था औरपवित्र कदम्ब वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था। चूंकि कदम्ब वृक्ष की छाया में ही उसका पालन- पोषण हुआ, इसलिए उसका परिवार कदम्ब नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसे पश्चिमीघाटों के क्षेत्र का राजा बना दिया गया। इसी कदम्ब परिवार में मयूरवर्मन उत्पन्न हुआ।

एक अन्य परम्परा के अनुसार अश्वत्थामा ने शिव से प्रार्थना की जिसके परिणामस्वरूप कदम्ब-पुष्पों की वर्षा हुई। इन्हीं कदम्ब-पुष्पों से मुकण्ण कदम्ब (त्रिनेत्र कदम्ब) उत्पन्न हुआ। उसने अहिछत्र (बरेली ज़िले में रामनगर) के 32 ब्राह्मण परिवारों को तालगुंडूर में रहने के लिए प्रेरित किया और उन्हें स्थाणुगूढ़ के अग्रहार में बसा दिया। मोरेस महोदय मुकण्ण कदम्ब को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते।

1077 ई० के एक जैन अभिलेख के अनुसार मयूरवर्मन जैन तीर्थंकर आनन्द-जिनवृतीन्द्र की बहिन का पुत्र था और वह कदम्ब वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था। जैन आचार्य ने शासनदेवी से उसके लिए एक राज्य की व्यवस्था कराई; जंगलों को कटवाकर भूमि को साफकराया और मयूर के पंखों का एक राजमुकुट उसे प्रदान किया। मयूरपंखों से निर्मित राजमुकुट को धारण करने के पश्चात् वह मयूरवर्मन कहलाया।

नागरखंड के कदम्बों के एक अभिलेख में उनकी उत्पत्ति मगध के नन्दों से बतलाई गई है। इस अभिलेख के अनुसार नन्द सम्राट निःसन्तान था और पुत्र-प्राप्ति के लिए उसने कैलास पर्वत पर बहुत दिनों तक शिव की उपासना की। एक दिन जब वह निराश होकर लौट रहा था तो अचानक उसके समक्ष कुछ कदम्ब पुष्प गिरे और आकाशवाणी द्वारा उसे आश्वासन दिया गया

CC-0. UP State Museum, Lucknow. Digitized by eGangotri

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कि कदम्बकुल नाम के उसके दो प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न होंगे। कदम्ब शासक कृष्णवर्मन प्रथम के एक अभिलेख में उसे नाग वंश से सम्बन्धित बतलाया गया है।

सगम साहित्य में कदम्बुओं का उल्लेख हुआ है जो तमिल राज्य के उत्तर-पश्चिमी भागों में निवास करने वाले सामुद्रिक दस्युओं का एक कबीला था। इन कदम्बुओं को चेर शासक इमैबरम्बन तथा उसके पुत्र शेंगुट्टुवर्मन ने कई बार पराजित किया और कदम्ब वृक्ष को कटवाकर उसके तने से युद्ध-वाद्य बनवाये। कदम्बु लोग भी कदम्ब वृक्ष के पुजारी थे। पी० एन० चोपड़ा, एन० सुब्रमण्यम तथा टी० के० रवीन्द्रन के अनुसार परवर्ती काल के कदम्ब इन्हीं कदम्बुओं के वंशज रहे होंगे। कुछ विद्वानों ने कदम्बों को कुरुम्बों अथवा कलभ्रों से भी सम्बन्धित माना है, परन्तु इस मान्यता के लिए कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

उपर्युक्त विवरणों की समीक्षा करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि कदम्ब कुन्तल के मूलनिवासी तथा मानव्य गोत्र के ब्राह्मण थे। बाद में जब वे शासक हो गए, तो अपने को क्षत्रिय मानने लगे। उनके मूलनिवास के निकट स्थित कदम्ब वृक्ष से उनका घनिष्ट सम्बन्ध था और इसी आधार पर उनके राजवंश का नामकरण हुआ। बहुत बाद के अभिलेखों में इस वंश के आदिपुरुष का नाम कदम्ब बतलाया गया है जोकि काल्पनिक प्रतीत होता है। बनवासी के मधुकेश्वर कदम्बों के परिवार-देवता थे। प्रारम्भिक अभिलेखों में कदम्बों को महासेन (कार्तिकेय) का उपासक भी बतलाया गया है।

कावेरीपुराणम् में प्रारम्भिक कदम्ब शासकों में त्रिनेत्र, मधुकेश्वर, मल्लिनाथ तथा चन्द्रवर्मन के नाम वर्णित हैं। चन्द्रवर्मन इस वंश का आदिपूर्वज बतलाया गया है और मयूरशर्मन उसका पौत्र था।

मयूरशर्मन (मयूरवर्मन)—कदम्ब राजवंश का संस्थापक एवं प्रथम ऐतिहासिक शासक मयूरशर्मन था जिसका जन्म कर्नाटक राज्य के शिमोगा जिले में तालगुंड नामक स्थान पर हुआ था। तालगुंड प्रशस्ति के अनुसार मयूरशर्मन श्रेष्ठ ब्राह्मण (द्विजोत्तम) था और ब्राह्मणोचित कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करता था। समस्त वेदों (प्रवचन् निखिल) का अध्ययन करने के लिए वह अपने गुरु वीरशर्मन के साथ पल्लवों की राजधानी कांची (पल्लवेन्द्रपुरी) गया और वहां की एक घटिका (वैदिक विद्यालय) में उसने प्रवेश लिया। कांची में एक पल्लव घुड़सवार से उसका झगड़ा हो गया जिसमें उसे अपमानित होना पड़ा। जब मयूरशर्मन पल्लव शासक से इस सन्दर्भ में न्याय नहीं प्राप्त कर सका तो क्रोधित होकर वहां से चला आया और समस्त पृथ्वी पर विजय

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राप्त करने का निश्चय कर उसने अपने उन हाथों में तलवार धारण की जो कुश ग्रास, समिधा तथा यज्ञ की अन्य सामग्री को धारण करने में दक्ष एवं अभ्यस्त थे[1]। इसके पश्चात् उसका पल्लवों के अन्तपालों (सीमान्त प्रदेश के रक्षकों) से संघर्ष हुआ। मयूरशर्मन ने उन्हें पराजित कर दिया और श्रीपर्वत (आन्ध्र राज्य के करनूल जिले में स्थित श्रीशैलम्) के दुर्गम वन्य-क्षेत्र पर अधिकार कर वहां रहने लगा[2]। इस भू-भाग में उसने एक छोटी सेना तैयार की और धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने पल्लवों के सामन्त बाणों तथा कुछ अन्य निकटवर्ती शासकों को पराजित कर उनसे कर एवं भेंटे प्राप्त कीं। जब पल्लव शासक मयूरशर्मन के विरुद्ध युद्ध में सफलता नहीं प्राप्त कर सका, तो उसने सन्धि का प्रस्ताव रखा जिसे मयूरशर्मन ने स्वीकार कर लिया और पल्लवों के स्वामिभक्त सामन्त के रुप में शासन करने लगा। कीलहार्न महोदय के अनुसार वह पल्लव शासक का दडनायक हो गया था। मयूरशर्मन ने अपनी सेवाओं से पल्लव राजा को प्रसन्न कर लिया और उसने मयूरशर्मन को एक राजमुकुट भेंट कर पश्चिमी समुद्रतट से लेकर प्रेहरा[3] (मलप्रभा या घटप्रभा) तक के क्षेत्र का शासक मान लिया। इस प्रकार उसे राजत्व पद प्राप्त हो गया।

एम० एच० कृष्ण के अनुसार मयूरशर्मन के चन्द्रवल्लि अभिलेख[4] में उसे शकस्थान, पारियात्र[5], मौखरि राज्य, सेन्द्रकों[6], पल्लवों, पुण्णाटों[7], त्रैकूटकों एवं

---

1. तत्र पल्लावश्वस्थेन कलहेण तीव्रेणरोषितः।
   कुशसमिधदृषत्स्त्रगाज्य चरुगृहणादि दक्षने पाणिना॥
   उद्धवर्हदीप्तिमच्छस्त्रं विजिगीषमाणो वसुन्धराम्।
2. योऽन्तपालान्पल्लवेन्द्राणां सहसा विनिर्जित्य संयुगे।
   अध्युवास दुर्गमामटवी-श्रीपर्वतद्वारसंश्रिताम्॥ (तालगुंड प्रशस्ति)।
3. मोरेस महोदय ने इसे प्रेमार (परमार) पढ़ा है और इसका समीकरण मालव से किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रेहरा नदी अपरान्त के निकट बहती थी।
4. तटाकं (कुट या दुम) तेकूट-अभिर-पल्लवपुरि योतिक (पुरियोतिक = पारियात्र) सकस्थसयिन्दक-पुणडमोकरि।
5. पारियात्र पश्चिमीघाटों में विन्ध्य तथा अरावली की पहाड़ियों के बीच का क्षेत्र था।
6. सेन्द्रक शिमोगा जिले के शासक थे।
7. पुण्णाट कावेरी तथा कपिनिनदियों के मध्यवर्ती भू-भाग में राज्य कर रहे थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आभीरों के विरुद्ध विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। एच० वी० श्रीनिवासमूर्ति एवं आर० रामकृष्णन के अनुसार चन्द्रवल्लि अभिलेख के उपर्युक्त विवरण को कम से कम तब तक सही मानना चाहिए जब तक किसी विश्वसनीय प्रमाण द्वारा इसका खंडन न कर दिया जाय। परन्तु कुछ विद्वान इस अभिलेख की प्रामाणिकता में सन्देह करते हैं और उक्त अंश के पाठ के विषय में भी मत-भिन्नता है। के० पी० जायसवाल ने भिन्न पाठों के आधार पर सुझाव दिया है कि मयूरशर्मन का राज्य एवं विजयें कर्नाटक तक ही सीमित थीं।

चन्द्रवल्लि अभिलेख में अतिशयोक्ति स्पष्ट है। मयूरशर्मन की उपर्युक्त विजयों का वर्णन न तो तालगुंड प्रशस्ति में मिलता है और न ही बाद के अन्य किसी कदम्ब अभिलेख में वस्तुतः सुदूरस्थ शकस्थान, पारियात्र तथा मौखरि राज्यों के विरुद्ध उसकी सफलता अत्यधिक असम्भावित प्रतीत होती है। मयूर-शर्मन के राज्य की सीमायें निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। परन्तु वह निःसन्देह शक्तिशाली तथा महान शासक था।

परवर्ती कदम्ब शासकों के अभिलेखों में मयूरशर्मन को 18 अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने का श्रेय दिया गया है और बतलाया गया है कि इन यज्ञों के अवसर पर उसने तालगुंडूर के ब्राह्मणों को 144 ग्राम दान में दिए थे। परन्तु तालगुंड प्रशस्ति में उसके द्वारा किए गए किसी अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए बाद के साक्ष्यों की उक्त सूचना सन्दिग्ध प्रतीत होती है।

समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ अभियान के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था का लाभ उठाकर ही सम्भवतः मयूरशर्मन ने पश्चिमी दक्षिणापथ के कुन्तल प्रदेश में एक छोटे राज्य की स्थापना की और बनवासी को राजधानी बनाया। पी० बी० देसाई के अनुसार उसने 325 से 345 ई० तक, पी० एन० चोपड़ा, एन० सुब्रमण्यम तथा टी० के० रवीन्द्रन के अनुसार 345 से 360 ई० तक और आर० सथियनथायर के अनुसार 340 से 370 ई० तक शासन किया।

कंगवर्मन—मयूरशर्मन के पश्चात् उसका पुत्र कंगवर्मन राजा हुआ। तालगुंड प्रशस्ति के अनुसार, उसे भयंकर युद्ध करने पड़े। जी० जे० डुब्रील तथा मोरेस का अनुमान है कि उसे वाकाटक शासक पृथ्वीषेण प्रथम ने पराजित किया था। परन्तु आर०सथियनथायर के अनुसार वह सम्भवतः विन्ध्यसेन द्वारा पराजित हुआ होगा जिसे हरिषेण के अजन्ता अभिलेख में कुन्तल प्रदेश का विजेता बतलाया गया है। परन्तु इस पराजय के बावजूद कंगवर्मन अपनी स्वतन्त्रता

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बनाए रखने में सफल रहा। तालगुंड अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उसके समक्ष अनेक शासक नतमस्तक होते थे तथा चामरों द्वारा उस पर हवा करते थे जिससे उसका राजमुकुट दोलायमान होता रहता था। इस विवरण से प्रतीत होता है कि उसने सामन्त शासकों पर अपनी अधिसत्ता कायम रखी[1]। कंगवर्मन ने धर्ममहाराजाधिराज की उपाधि धारण की और अपने नाम के अन्त में शर्मा के स्थान पर वर्मा का प्रयोग किया। न केवल कंगवर्मन तथा उसके बाद के अन्य सभी कदम्ब शासकों के नाम के अन्त में वर्मा (वर्मन) शब्द आता है, वरन् परवर्ती कदम्ब अभिलेखों में मयूरशर्मा (शर्मन) को भी मयूरवर्मा (वर्मन) कहा गया है। इससे प्रमाणित होता कि कदम्ब शासक अपने को ब्राह्मण के स्थान पर क्षत्रिय मानने लगे थे। आर० सथियनथायर के अनुसार कगवर्मन ने 370 से 395 ई० तक शासन किया।

भगीरथ—कंगवर्मन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी भगीरथ को सम्पूर्ण कदम्ब राज्य का एक मात्र अधिपति तथा महाराज सगर के समान महान बतलाया गया है। इस विवरण से प्रतीत होता है कि उसने अपने राजवंश की प्रतिष्ठा एवं शक्ति का पुनरुद्धार किया था जिसके लिए उसे प्रारम्भ में काफी संघर्ष करना पड़ा। परन्तु कुछ विद्वानों अनुसार भगीरथ के राज्यकाल में भी कदम्ब राज्य के विजित क्षेत्रों पर वाकाटकों का अधिकार बना रहा। मोरेस तथा सथियनथायर का अनुमान है कि भगीरथ के शासनकाल में ही सम्भवतः गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कालिदास के नेतृत्व में अपना एक दूतमंडल कदम्ब राजधानी में भेजा था जिसका उल्लेख भोज के शृंगारप्रकाश तथा कुछ अन्य साक्ष्यों में मिलता है। यदि यह अवधारणा सही है, तो इससे प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में कदम्ब एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति थे। उपर्युक्त दूतमंडल किस उद्देश्य से भेजा गया था, निश्चितरूप से ज्ञात नहीं। सथियनथायर के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कदम्ब राजवंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से सम्भवतः इसे भेजा होगा।

भगि नामधारी कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं। एस० श्रीकान्तशास्त्री के अनुसार ये भगीरथ के सिक्के हैं। आर० सथियनथायर ने भगीरथ का राज्यकाल

1. कुछ विद्वानों के अनुसार वाकाटकों का आक्रमण कंगवर्मन के शासन के अन्तिम भाग में हुआ था। इस पराजय का कदम्ब राज्य पर काफी बुरा प्रभाव हुआ तथा इसके पश्चात् कंगवर्मन अधिक समय तक जीवित नहीं रह सका।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

395 तथा 420 ई० के मध्य रखा है।

रघु–भगीरथ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र रघु राजा हुआ। उसने रघु-पार्थिव का विरुद धारण किया। तालगंड प्रशस्ति में उसे अपने शत्रुओं का दमन करने वाला, पृथु के समान महान और प्रजा का प्रियभाजन कहा गया है।

रघु का सम्भवतः कोई पुत्र नहीं था। इसलिए उसने अपने छोटे भाई काकुस्थवर्मन को युवराज नियुक्त किया और दोनों ने मिलकर पल्लवों से युद्ध किया। काकुस्थवर्मन के राज्यकाल के हलसी अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि श्रुतकीर्ति नामक सेनानायक ने एक भयंकर युद्ध में युवराज काकुस्थवर्मन की जान बचाई थी। अनेक कठिनाइयों के बावजूद रघु अपने राज्य को सुरक्षित रखने में सफल रहा। आर० सथियनथायर के अनुसार उसने लगभग 420 से 430 ई० तक शासन किया।

काकुस्थवर्मन–रघु के छोटे भाई तथा उत्तराधिकारी काकुस्थवर्मन के शासन-काल में कदम्ब राजवंश की महानता एवं गरिमा पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी। तालगुंड प्रशस्ति में उसे कदम्बकुल का अलंकार, राजाओं में सूर्य, महान विजेता, यशस्वी एवं उदार शासक तथा प्रजा का रक्षक कहा गया है। रघु के राज्यकाल में ही युवमहाराज की हैसियत से उसने प्रशासन-कार्य तथा युद्धों में सक्रिय भाग लेकर काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी।

काकुस्थवर्मन बहुत शक्तिशाली तथा प्रभावी शासक सिद्ध हुआ। उसने कुछ महत्वपूर्ण विजयें अवश्य प्राप्त की होंगी। परन्तु उसकी सामरिक उपलब्धियों का स्पष्टतः उल्लेख नहीं हुआ है। तालगुंड प्रशस्ति के अनुसार उसके शासन-काल में पूर्ण शान्ति एवं व्यवस्था थी और यात्री सुरक्षित रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान को आते-जाते थे।

काकुस्थवर्मन की कई पुत्रियां थीं। उसने अज्झितभट्टारिका नामक पुत्री का विवाह वाकाटक शासक नरेन्द्रसेन के साथ, दूसरी पुत्री का आलूप वंश के शासक पशुपति के साथ और तीसरी का गंग राजा माधव द्वितीय[1] के साथ किया। उसकी एक पुत्री का विवाह गुप्त शासक के साथ भी हुआ था जिसके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। फ़ादर हेरास के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 390 ई० के लगभग अपना एक दूतमंडल कदम्ब राज्य में भेजा था और इस तिथि के

1. कुछ विद्वानों के अनुसार यह विवाह काकुस्थवर्मन के पुत्र कृष्णवर्मन के शासन-काल में हुआ था (History of Karnataka, p. 47)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कुछ ही समय के पश्चात् उसने काकुस्थवर्मन की पुत्री के साथ विवाह किया होगा। परन्तु मोरेस ने इसका खंडन किया है। उनकी अवधारणा है कि उपर्युक्त विवाह स्कन्दगुप्त अथवा उसके किसी भाई के साथ हुआ होगा। इन वैवाहिक सम्बन्धों से काकुस्थवर्मन की राजनैतिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई थी।

तालगुंड प्रशस्ति में काकुस्थवर्मम को एक महान योद्धा तथा कवि बतलाया गया है। उसने धर्मराज एवं धर्ममहाराज के विरुद धारण किए और अपनी प्रजा को अधिक करों के भार से पीड़ित नहीं किया। तालगुंड नामक स्थान पर उसने प्रनवेश्वर-महादेव के मन्दिर के लिए विशाल तालाब का निर्माण कराया था।

डी० सी० सरकार ने काकुस्थवर्मन का राज्यकाल 405 से 435 ई० तक, एन० सुब्रमण्यम ने 425 से 450 ई० तक और आर० सथियनथायर ने 430 से 450 ई० तक माना है।

काकुस्थवर्मन के कम से कम तीन पुत्र थे—शान्तिवर्मन, कुमारवर्मन तथा कृष्णवर्मन प्रथम। उसने शान्तिवर्मन को युवराज चुना और कृष्णवर्मन को उच्छंगिका प्रान्तीय शासक नियुक्त किया। शान्तिवर्मन की मृत्यु काकुस्थवर्मन के जीवनकाल में ही हो गई थी। इसलिए उसे शान्तिवर्मन के पुत्र मृगेशवर्मन के वयस्क होने तक प्रशासन का उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा।)

शान्तिवर्मन—शान्तिवर्मन को यशस्वी शासक तथा 'कदम्बकुल का द्वितीय सूर्य' कहा गया है। तालगुंड प्रशस्ति के अनुसार उसने तीन राजमुकुटों को अपहृत कर उनसे अपने को सुशोभित किया था। इस विवरण से प्रतीत होता है कि शान्तिवर्मन ने सम्भवतः अपने राज्य के निकटवर्ती तीन राजाओं पर विजय प्राप्त कर उनके राज्यों पर अधिकार कर लिया होगा। उसका पल्लवों से भी शक्ति-संतुलन हुआ। विष्णुवर्मन के राज्यकाल के बीरूर ताम्रपत्रों के अनुसार शान्तिवर्मन उस सम्पूर्ण कर्नाटक क्षेत्र का अधिपति था जिसकी शोभा वैजन्ती नगर थी और इसकी गरिमा में 18 (अधीनस्थ) शासकों ने वृद्धि कर दी थी। उसने युद्धों में काफी धन-सम्पत्ति प्राप्त की। मृगेशवर्मन के राज्यकाल के एक अभिलेख में काव्यात्मक शैली में वर्णित है कि शान्तिवर्मन ने अपने शत्रुओं की राजलक्ष्मी को उसके मूलनिवासों से अपदस्थ कर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था।

उपर्युक्त सभी विवरण अस्पष्ट शब्दों में शान्तिवर्मन की महानता को प्रमाणित करते हैं। उसने वास्तव में किन राज्यों अथवा राजाओं पर विजय

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राप्त की और उसके राज्य की सीमाओं का विभिन्न दिशाओं में कितना विस्तार हुआ, निश्चित रुप से ज्ञात नहीं। शान्तिवर्मन ने धर्ममहाराज का विरुद धारण किया। वह उदार शासक था और गुणवान व्यक्तियों को पुरस्कृत करता था। उसने ब्राह्मण पुरोहित दामकीर्ति को खेटक का ग्राम दान में दिया और कन्नय द्वारा निर्मित दो मन्दिरों के उद्घाटन समारोह के अवसर पर धान की खेती के लिए कुछ भूमि दान में दी।

शान्तिवर्मन के राज्यकाल में उसका छोटा भाई कृष्णवर्मन कदम्ब राज्य के दक्षिणी प्रदेशों का शासक नियुक्त किया गया था। आर० सथियनथायर के अनुसार काकुस्थवर्मन की मृत्यु के बाद ही कदम्ब राज्य का विभाजन हो गया था। परन्तु पी०एन० चोपड़ा, एन० सुब्रमण्यम तथा टी० के० रवीन्द्रन के अनुसार यह विभाजन शान्तिवर्मन के शासनकाल में हुआ। आर० सथियनथायर ने शान्तिवर्मन का राज्यकाल 450 तथा 475 ई० के मध्य में रखा है।

मृगेशवर्मन—शान्तिवर्मन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी को मृगेशवर्मन के अतिरिक्त श्रीमृगेश तथा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मन भी कहा है। हलसी ताम्रपत्रों के अनुसार वह शान्तिवर्मन का सबसे ज्येष्ठ पुत्र था। उसके शासनकाल में कदम्ब राज्य के विभाजन की प्रक्रिया पूर्ण हो गई और उसका छोटा भाई कृष्णवर्मन कदम्ब राज्य के दक्षिणी भाग का स्वतन्त्र शासक हो गया था। फ्लीट के अनुसार कृष्णवर्मन ने त्रिपर्वत को राजधानी बनाया। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उसने मृगेश से युद्ध करने के लिए पल्लवों से मित्रता की और एक कैकेय राजकुमारी के साथ विवाह कर इस राजवंश की सहायता प्राप्त की। तथ्य कुछ भी हो, कृष्णवर्मन मृगेशवर्मन के विरुद्ध कोई सफलता नहीं प्राप्त कर सका था।

मृगेशवर्मन के विषय में कदम्ब अभिलेखों में बतलाया गया है कि उसके शासनकाल में काकुस्थवर्मन का परिवार विश्व के द्वीप के समान हो गया था। उसने अपने बाहुबल से अनेक भयंकर युद्धों में विजयें प्राप्त कीं तथा बहुत सी धन-सम्पत्ति एकत्रित की। हलसी ताम्रपत्रों के अनुसार उसने अपने शत्रुओं को अत्यधिक भयभीत किया; तुंगगग के परिवार को उन्मूलित किया और पल्लवों का विनाश कर दिया था। यह विवरण मृगेशवर्मन की पश्चिमी गंगों एवं

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पल्लवों[1] के विरुद्ध सामरिक सफलताओं को प्रमाणित करता है। परन्तु इन राजवंशों के पराजित राजाओं के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए उनकी पहचान निश्चितरुप से नहीं की जा सकी है।

मृगेशवर्मन एक कुशल एवं उदार शासक था। वह ब्राह्मणों, विद्वानों तथा साधु-सन्तों आदि को उदारतापूर्वक दान देता था। हिट्णहेब्बागिलु ताम्रपत्रों में उसे युधिष्ठिर के समान न्यायप्रिय शासक बतलाया गया है। वह हाथियों एवं घोड़ों के संचालन तथा विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में दक्ष था और शास्त्रों आदि का ज्ञान प्राप्त करने में व्यस्त रहता था। वह धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था और ब्राह्मण एवं जैन धर्मों का उपासक एवं संरक्षक था। उसने कूर्चकों (नग्न रहने वाले सन्यासियों) को 33 निवर्तन भूमि दान में दी थी। उसने धर्ममहाराज का विरुद धारण किया। तालगुंड से प्राप्त एक अभिलेख में मृगेशवर्मन की प्रिय रानी प्रभावती का उल्लेख है जो कैकय वंश की राजकुमारी थी। आर० सथियनथायर के अनुसार मृगेशवर्मन ने 475 से 490 ई० तक शासन किया।

मानधाताराज (मानधातृवर्मन)—मानधाता कुमारवर्मन प्रथम का पुत्र तथा उच्छंगि का शासक था। वह मृगेशवर्मन का समकालीन रहा होगा। मोरेस के अनुसार कदम्ब राज्य कई छोटे-छोटे भागों में विभाजित हो गया था और एक ही समय में मृगेशवर्मन, विष्णुवर्मन तथा कुमारवर्मन क्रमशः इसके उत्तरी, दक्षिणी एवं पूर्वी भागों में शासन कर रहे थे। मृगेशवर्मन की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी और उसकी मृत्यु के समय उसका पुत्र रविवर्मन बहुत कम उम्र का राजकुमार रहा होगा। रविवर्मन द्वारा शासन की बागडोर सम्भालने पर उसकी अपरिपक्व आयु का लाभ उठाकर मानधातृवर्मन ने वैजयन्ती पर अधिकार कर लिया होगा।

शिमोगा से प्राप्त ताम्रपत्र मान्धातृवर्मन के राज्यकाल के पांचवें वर्ष के हैं। इससे प्रमाणित होता है कि उसने कम से कम पांच वर्ष तक अवश्य शासन किया। इन ताम्रपत्रों में उसे यशस्वी शासक तथा अनेक युद्धों का विजेता बतलाया गया है। वह या तो निःसन्तान था अथवा रविवर्मन से युद्ध करता हुआ मारा गया और उसकी मृत्यु के उपरान्त रविवर्मन वैजयन्ती का शासक हो गया।

रविवर्मन—मान्धातृवर्मन की मृत्यु के पश्चात् मुख्य कदम्ब राजवंश के

1. मोरेस के अनुसार वह पल्लवों के विरुद्ध सफलता नहीं प्राप्त कर सका था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासक मृगेशवर्मन के पुत्र रविवर्मन ने वैजयन्ती पर पुनः अधिकार कर लिया। हरिवर्मन के हलसी ताम्रपत्रों के अनुसार रविवर्मन ने अपने बाहुबल से राजत्व प्राप्त किया था। राज्यारोहण के समय उसकी आयु कम थी। उसके शासनकाल में पल्लवों तथा पश्चिमी गंगों ने कदम्ब राज्य पर आक्रमण किया था। सम्भवतः विष्णुवर्मन ने भी उनका साथ दिया था। परन्तु रविवर्मन ने इस शत्रुसंघ को पराजित कर दिया, विष्णुवमन को मारकर उच्छंगि की कदम्ब शाखा का अन्त कर दिया और विभाजित कदम्ब राज्य को पुनः एक कर वह उसका अधिपति हो गया।

रविवर्मन महान शासक था। उसे कदम्ब कुल का सूर्य, विष्णुवर्मन तथा अन्य शत्रु शासकों का वध करने वाला, कांची के पल्लव शासक चडदड का उन्मूलनकर्ता तथा समस्त पृथ्वी का विजेता बतलाया गया है। उसने गंगों को भी पराजित किया था। पश्चिमी गंग शासक हरिवर्मन ने कोलार के स्थान पर तलकाड को राजधनी बनाया था। मोरेस के अनुसार गंगों के विरुद्ध अभियान करने के उद्देश्य से सम्भवतः रविवर्मन ने यह परिवर्तन किया होगा। श्रीनिवासमूर्ति एवं आर० रामकृष्णन के अनुसार उसने गंग शासक अविनीत को पराजित किया था। परन्तु उसकी सबसे महान सामरिक उपलब्धि वाकाटकों पर विजय थी जिसके परिणामस्वरूप उसके साम्राज्य का विस्तार उत्तर में नर्मदा नदी तक हो गया था। उसने कुमारवर्मन द्वारा स्थापित उच्छंगि के कदम्ब राज्य का भी अन्त कर दिया[1]। प्रशासन की सुविधा के लिए रविवर्मन ने हलसी पलाशिका) को राजधानी बनाया और इस नगर के निवासियों को आदेश दिया कि वे वर्षा ऋतु के चार महीनों में सन्यासियों के भरण-पोषण का भार वहन करें। वह राजशास्त्र में दक्ष तथा विद्वानों का पारखी था और अपनी संचित धन-सम्पत्ति से लोगों की सहायता करता था। निलम्बूर अभिलेख में उसके द्वारा ब्राह्मण गोविन्दस्वामी को दान में दिए गए दो ग्रामों का विवरण है और सिरसि ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि उसने देशामात्यनीलकंठ के मन्दिर को भी दान दिया था। कुमारदत्त नामक एक विद्वान को भी उसका संरक्षण प्राप्त था। रविवर्मन की जैनधर्म में भी श्रद्धा थी। हलसी अभिलेख में बतलाया गया है उसके राज्यकाल में भगवान जिनेन्द्र के सम्मान में प्रतिवर्ष कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन से अष्ट दिवसीय एक मेला प्रारम्भ होता था।

रविवर्मन ने लम्बी अवधि तक शासन किया। सिरसि ताम्रपत्र उसके

1. Karnataka through the Ages, pp. 113-114.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासन के 35वें वर्ष के हैं। मोरेस तथा एच० वी० श्रीनिवासमूर्ति के अनुसार उसने लगभग 40 वर्ष तक, या 500-538 ई० तक शासन किया। सोरब तालुक से प्राप्त एक अभिलेख के विवरण के आधार पर मोरेस ने निष्कर्ष निकाला है कि उसकी मृत्यु के समय उसकी एक रानी सम्भवतः सती हो गई थी।

हरिवर्मन–रविवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र हरिवर्मन राजा हुआ। वह शक्तिशाली शासक नहीं था। चालुक्य जयसिंह तथा उसका पुत्र रणराग कदम्ब राज्य के उत्तरी भाग में सामन्त के रूप में शासन कर रहे थे। रणराग के पुत्र पुलकेशिन प्रथम ने हरिवर्मन की दुर्बलता का लाभ उठाकर स्वतन्त्रता घोषित कर दी और वातापी को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। सम्भवतः वाकाटक शासक हरिषेण ने भी उसे पराजित किया और कर्नाटक के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया था। परन्तु सेन्द्रक वंशीय शासक, हरिवर्मन के स्वामिभक्त सामन्त बने रहे।

हरिवर्मन बनवासी के कदम्ब राजवंश का अन्तिम शासक था। उसकी मृत्यु के तुरन्त बाद त्रिपर्वत के कदम्बों के शाखा-राजवंश के कृष्णवर्मन द्वितीय ने वैजयन्ती के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया था। कृष्णवर्मन के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उसने हरिवर्मन को पराजित कर सम्भवतः मार डाला था। मोरेस का अनुमान है कि हरिवर्मन के विरुद्ध संघर्ष में कृष्णवर्मन को पश्चिमी गंगों तथा वातापी के चालुक्य शासक पुलकेशिन प्रथम ने सहायता प्रदान की होगी।

हरिवर्मन को प्रजापालक तथा उदार प्रवृत्ति का शासक बतलाया गया है। पी० एन० चोपड़ा, एन० सुब्रमण्यम तथा टी०के० रवीन्द्रन ने उसका राज्यकाल 538 से 550 ई० तक माना है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने केवल आठ या नौ वर्ष तक शासन किया।

कृष्णवर्मन प्रथम–पहले उल्लेख किया जा चुका है कि शान्तिवर्मन का छोटा भाई कृष्णवर्मन प्रथम मृगेशवर्मन के शासनकाल में कदम्ब राज्य के दक्षिणी भाग का स्वतन्त्र शासक हो गया था और उसने सम्भवतः त्रिपर्वत को राजधानी बनाया। डुब्रील, मोरेस तथा सथियनथायर का अनुमान है कि त्रिपर्वत बेल्लूर तालुक में स्थित हालेविद का ही दूसरा नाम था जो बाद में होयसलों की राजधानी बनी।

कृष्णवर्मन के विषय में मुख्यतः उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों से सूचना प्राप्त होती है। उसे एक महान शासक, राजाओं में अग्रगण्य, अनेक युद्धों का विजेता तथा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने वाला बतलाया गया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

परन्तु कृष्णवर्मन की उपलब्धियों का स्पष्ट ब्योरा नहीं दिया गया है। उसके शासनकाल की दो घटनायें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं–उसका पल्लवों से युद्ध और उसकी नागों पर विजय।

अपने शासन के अन्तिम भाग में वह पल्लवों द्वारा पराजित हुआ था। देवनगेरे से प्राप्त उसके राज्यकाल के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि उसकी सेना एक भीषण युद्ध में पल्लव राजा नणक्कास द्वारा नष्ट कर दी गई थी और शिवनन्दवर्मन के राज्य का विनाश हो गया था। इस पराजय के परिणामस्वरूप कृष्णवर्मन को अपने समस्त शेष जीवन में पल्लवों के अधीनस्थ के रूप में शासन करना पड़ा। एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार वह पल्लवों से युद्ध करता हुआ मारा गया था[1]। परन्तु देवनगेरे अभिलेख में कृष्णवर्मन की युद्ध में मृत्यु होने का उल्लेख अथवा संकेत नहीं है।

नणक्कास तथा शिवनन्दवर्मन का समीकरण निश्चितरूप से नहीं किया जा सका है। बी० एल० राइस के अनुसार शिवनन्दवर्मन सम्भवतः कृष्णवर्मन प्रथम का पुत्र था। परन्तु मोरेस ने उसे कृष्णवर्मन का कोई अन्य निकट सम्बन्धी माना है। पी० बी० देसाई के अनुसार वह कैकेय वंश का शासक तथा कृष्णवर्मन का सम्बन्धी था और वह इस युद्ध में मारा गया था। परन्तु पल्लव साक्ष्यों में नणक्कास नाम के किसी शासक का उल्लेख नहीं हुआ है। मोरेस का अनुमान है कि कृष्णवर्मन को पराजित करने वाला पल्लव शासक या तो मुख्य राजवंश का स्कन्दवर्मन था अथवा वह पल्लवों के किसी शाखा राजवंश से सम्बन्धित रहा होगा।

कृष्णवर्मन ने कैकेय राजकुमारी के साथ विवाह किया। आर०सथियनथायर के अनुसार उसने 475 से 485 ई०तक शासन किया। उसके दो पुत्र थे विष्णुवर्मन और देववर्मन। विष्णुवर्मन ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वैध उत्तराधिकारी था। किन्तु कृष्णवर्मन ने देववर्मन को युवराज चुना, अतः विष्णुवर्मन ने उसे अपदस्थ कर बनवासी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया।

विष्णुवर्मन–बीरूर ताम्रपत्रों में विष्णुवर्मन को कृष्णवर्मन का सबसे ज्येष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी बतलाया गया है। हेब्बट अभिलेख के अनुसार पल्लव शासक शान्तिवर्मन[2] ने विष्णुवर्मन को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। इस विवरण के आधार पर मोरेस ने अनुमान किया है कि कृष्णवर्मन की मृत्यु

1. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि कृष्णवर्मन ने शान्तिवर्मन तथा उसके पुत्र मृगेशवर्मन के विरुद्ध पल्लवों से मित्रता की थी।
2. शान्तिवर्मन का समीकरण निश्चितरूप से नहीं किया जा सका है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के पश्चात् मुख्य कदम्ब शाखा के मृगेशवर्मन अथवा किसी अन्य राजा ने सम्भवतः विष्णुवर्मन को उसके पैतृक राज्य से वंचित करने का प्रयास किया था और उस स्थिति में उसने अपने अधिपति पल्लव शासक शान्तिवर्मन की सहायता प्राप्त की होगी। पी० बी० देसाई के अनुसार विष्णुवर्मन को उत्तराधिकार के लिए अपने छोटे भाई देववर्मन से युद्ध करना पड़ा था।

बेन्नहल्लि ताम्रपत्रों में रविवर्मन को कुशल धनुर्धर तथा हाथियों एवं घोड़ों के संचालन में दक्ष बतलाया गया है और उसकी तुलना वत्सराज, इन्द्र तथा अर्जुन से की गई है। वह व्याकरण एवं तर्कशास्त्र में भी पारंगत था। उसे एक शत पुण्यकर्म करने वाला, ब्राह्मण धर्म का अनुयाई एवं संरक्षक, अनेक युद्धों का विजेता, शास्त्रों एवं कलाओं का ज्ञाता, कुशल प्रशासक, सत्यनिष्ठ और श्रेष्ठ ब्राह्मण कहा गया है।

मोरेस के अनुसार उपर्युक्त प्रशंसात्मक विवरण को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। विष्णुवर्मन साधारण शासक था और अपने सम्पूर्ण राज्य-काल में वह सम्भवतः पल्लवों का अधीनस्थ बना रहा। यह उल्लेखनीय है कि अन्य कदम्ब शासकों की भांति उसे महाराज की उपाधि नहीं दी गई है।

आर० सथियनथायर के अनुसार वह पल्लवों की सहायता प्राप्त करने के बावजूद बनवासी का राजसिंहासन प्राप्त करने में असफल रहा और रविवर्मन ने उसे मार डाला। एन० सुब्रमण्यम आदि ने उसका शासनकाल 485 से 497 ई० तक माना है।

सिंहवर्मन–विष्णुवर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र सिंहवर्मन राजा हुआ। बेन्नहल्लि ताम्रपत्रों में सिंहवर्मन को एक वीर शासक तथा कई विषयों का विद्वान बतलाया गया है। उसके लिए प्रयुक्त महाराज की उपाधि से प्रतीत होता है कि उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में एक छोटे राज्य पर शासन किया होगा[1]। परन्तु उसका राज्यकाल बहुत अल्पकालिक रहा और उसकी उपलब्धियों आदि के विषय में कोई महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध नहीं है। आर० सथियनथायर के अनुसार वह प्रमुख कदम्ब राजवंश के अधीन रहा होगा और उसने लगभग 497 से 540 ई० तक शासन किया।

कृष्णवर्मन द्वितीय–कृष्णवर्मन द्वितीय सिंहवर्मन का पुत्र था। उसके राज्य-काल के बेन्नहल्लि ताम्रपत्रों में बतलाया गया है कि उसने अपने ही पराक्रम से राज्य प्राप्त किया था। सिरसि ताम्रपत्रों के अनुसार उसने अनेक सफल युद्धों

1. सिंहवर्मन के पिता विष्णुवर्मन को महाराज की उपाधि नहीं दी गई है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के परिणामस्वरूप यश एवं राज्य प्राप्त किया था। उसने एक अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया जिसके अवसर पर वैजयन्ती में उसका अभिषेक किया गया था। उपर्युक्त अभिलेखों के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि कृष्णवर्मन द्वितीय का हरिवर्मन से युद्ध हुआ जिसमें हरिवर्मन सम्भवतः मारा गया और कृष्णवर्मन ने वैजयन्ती के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया।

कृष्णवर्मन को कदम्बकुल का सूर्य, प्रजापालक तथा शत्रुओं का विनाशक कहा गया है। कृष्णवर्मन तथा हरिवर्मन के बीच हुए संघर्ष का लाभ उठाकर सेन्द्रकों ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। परन्तु कृष्णवर्मन ने सम्भवतः उन्हें पराजित कर दिया। बेण्णूर अभिलेख में वर्णित है कि युधिष्ठिर के राजदरबार के समान उसके यहां भी प्रतिदिन सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता था। मोरेस के अनुसार उसने अपनी बहिन का विवाह पश्चिमी गंग शासक माधव द्वितीय के साथ किया था[1]। उसने 550 से 565 ई० तक शासन किया[2]।

अजवर्मन—कृष्णवर्मन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अजवर्मन राजा हुआ। उसके राज्यकाल में चालुक्य काफी शक्तिशाली हो गए थे और कीर्तिवर्मन प्रथम ने कदम्बों को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया था। पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति में कीर्तिवर्मन प्रथम को नलों, मौर्यों तथा कदम्बों के लिए कालरात्रि कहा गया है। पुलकेशिन द्वितीय के पुत्र आदित्यवर्मन के एक अभिलेख के अनुसार कीर्तिवर्मन ने बनवासी में अपने यश को प्रतिष्ठित किया था और एवूर अभिलेख में उसे 'कदम्बों के लिए कुठार' कहा गया है। चालुक्यों द्वारा पराजित कदम्ब शासक अजवर्मन रहा होगा, यद्यपि कुछ विद्वानों ने उसे कृष्णवर्मन द्वितीय माना है। वह सम्भवतः अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में चालुक्यों के अधीन महामडलेश्वर बना रहा और कुछ विद्वानों के अनुसार उसने राजा के रूप में सम्भवतः कभी शासन नहीं किया। मोरेस ने अजवर्मन का राज्यकाल बहुत अल्पकालिक माना हैं। परन्तु आर० सथियनथायर के अनुसार उसने कीर्तिवर्मन प्रथम के अधीनस्थ के रूप में 565 से 606 ई० तक शासन किया।

भोगिवर्मन—अजवर्मन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी भोगिवर्मन के राज्यारोहण के समय कदम्ब राजवंश की प्रतिष्ठा एवं शक्ति काफी पतनावस्था को

1. बी० एल० राइस के अनुसार यह विवाह कृष्णवर्मन प्रथम की बहिन के साथ हुआ था।
2. Karnataka through the Ages, pp. 113-114.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्राप्त हो चुकी थी। अपने शत्रुओं को पराजित कर उसने कदम्ब राजवंश की गरिमा को प्रतिष्ठित कर दिया था।

चालुक्य शासक मंगलेश तथा उसके भतीजे पुलकेशिन द्वितीय के बीच गृह युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप चालुक्य राज्य लगभग सभी ओर से शत्रुओं से घिर गया था। इसी राजनैतिक अव्यवस्था के अन्तराल में भोगिवर्मन ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी। परन्तु उसकी यह सफलता स्थाई नहीं रही।

शासन की बागडोर सम्भालने के उपरान्त पुलकेशिन द्वितीय ने अपने सभी शत्रुओं का दमन करने में सफलता प्राप्त की। ऐहोल प्रशस्ति में बतलाया गया है कि उसकी सेना ने वरदा नदी से परिक्षिप्त वैजयन्ती नगर को घेर कर उसे तहस-नहस कर डाला था। कदम्बों ने चालुक्य सेना से भीषण युद्ध किया परन्तु वे पराजित हुए और सम्भवतः भोगिवर्मन अपने पुत्र विष्णुवर्मन के साथ युद्ध में मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ प्रथम कदम्ब राजवंश का अन्त हो गया। आर० सथियनथायर के अनुसार भोगिवर्मन ने 606 से 610 ई० तक शासन किया।

पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त लगभग 13 वर्ष (642 655 ई०) तक चालुक्य राज्य में अराजकता व्याप्त रही। इस अन्तराल में चालुक्यों के अन्य शत्रुओं के अतिरिक्त सम्भवतः बनवासी के कदम्ब राजवंश के अन्तिम शासक मधुवर्मन[1] ने भी विद्रोह कर दिया था। परन्तु बाद में पुलकेशिन द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने अपने सभी शत्रुओं का दमन कर दिया।

अजवर्मन, भोगिवर्मन तथा मधुवर्मन अपने राजवंश की प्राचीन गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने में सफल नहीं हो सके और मुख्यतः उदीयमान चालुक्यों ने उनके शासन का अन्त कर दिया। इसके बाद भी कदम्ब 14वीं शताब्दी तक कर्नाटक में अपना अस्तित्व बनाये रहे, यद्यपि उनका राजनैतिक महत्व लगभग नगण्य हो गया था।

चीनी यात्री ह्वेनसांग कोंकणपुर (Kon-ki-na-pulo = वैजयन्ती) गया था। उसने लिखा है कि कदम्ब राज्य का कुल क्षेत्रफल पांच हजार ली (li) तथा इसकी राजधानी का 30 ली था। कोकणपुर में 100 संघाराम थे जिनमें महायान तथा हीनयान सम्प्रदायों के कुल दस हजार भिक्षु निवास करते थे। कदम्ब राजधानी में स्थित एक विशाल बौद्ध-विहार में 300 भिक्षु रहते थे।

1. मधुवर्मन के अन्य कदम्ब शासकों से सम्बन्ध के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ह्वेनसांग ने कदम्ब राज्य की सम्पन्नता पर भी प्रकाश डाला है।

चौथी शताब्दी के मध्य से लेकर छठी शताब्दी के मध्य तक कर्नाटक के इतिहास में कदम्बों ने एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति के रूप में शासन किया। कन्नड संस्कृति के विकास में उनका पर्याप्त योगदान रहा। कदम्ब शासक वैदिक धर्म के पोषक थे और उन्होंने शैव तथा वैष्णव धर्मों को काफी संरक्षण दिया। साथ ही बौद्ध तथा जैन धर्मों को भी प्रोत्साहन मिला। कदम्बों के शासनकाल में बनवासी तथा अजन्ता बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। प्राकृत, संस्कृत तथा कन्नड़ भाषाओं को संरक्षण प्राप्त हुआ और **वेसर** नामक वास्तु शैली की विशिष्टताओं का प्रादुर्भाव हुआ। गंग शासकों ने पद्मटंक नामक सोने के सिक्के चलाए जिनके मध्य में कमल-पुष्प की आकृति अंकित है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

24

पश्चिमी गंग राजवंश (तलकाड के गंग)

उत्पत्ति–चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कर्नाटक के दक्षिणी भाग में पश्चिमी गंग राजवंश का अभ्युदय हुआ। गंगों के उल्लेख कुछ प्राचीन साक्ष्यों में भी मिलते हैं। टालमी ने गगरिदै (Gangaridai) का वर्णन करते हुए उनका निवास गंगा की घाटी के उत्तरी क्षेत्र में बतलाया है। प्लिनी ने भी गंगरिदे-कलिंगे (Gangaridae Calingae) अर्थात् कलिंग के गंगों का उल्लेख किया है। गंगों की उत्पत्ति-विषयक विवरण बहुत बाद के अभिलेखों में मिलते हैं जो मुख्यतः काल्पनिक एवं अप्रामाणिक प्रतीत होते हैं। इन अभिलेखों में वर्णित एक अनुश्रुति के अनुसार इक्ष्वाकु वंशीय हरिश्चन्द्र गंगों का पूर्वज तथा आदिपुरुष था। हरिश्चन्द्र के पुत्र भरत की पत्नी विजयमहादेवी ने गंगा नदी में स्नान करने के उपरान्त गंगदत्त (गंगा द्वारा प्रदान किया गया) नामक पुत्र प्राप्त किया। इसी वंश में भगदत्त तथा श्रीदत्त हुए। भगदत्त कलिंग का शासक हुआ और दाडिग तथा माधव प्रथम ने पश्चिमी गंग वंश (तलकाड के गंग वंश) की स्थापना की। कुछ अभिलेखों में इन राजकुमारों को पद्मनाभ का पुत्र बतलाया गया है।

दूसरी अनुश्रुति के अनुसार इक्ष्वाकु राज्य के पतन के पश्चात् इक्ष्वाकु राजकुमार दाडिग तथा माधव प्रथम दक्षिण भारत में गंगपेरुर[1] नामक स्थान पर पहुंचे। वहां जैन आचार्य सिंहनन्दि से उनकी भेंट हुई। सिंहनन्दि ने उन्हें एक तलवार प्रदान की। माधव ने इस तलवार से पत्थर के एक स्तम्भ के दो खंड कर दिए। इससे प्रभावित होकर (और उसमें राजत्व के लक्षणों को देख-कर) सिंहनन्दि ने पद्मावतीदेवी के वरदान से उन राजकुमारों के लिए एक राज्य की व्यवस्था की और एक सेना भी संगठित कर दी। यह राज्य गंगवाड़ी 96,000

---

1 गगपेरुर आन्ध्र राज्य के कडप्पा ज़िले में स्थित इसी नाम का एक ग्राम है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कहलाया। क्या इस कथानक के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पश्चिमी गंग राजवंश की स्थापना में जैनियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

कलिंग के गंग (पूर्वी गंग) शासकों के अभिलेखों में बतलाया गया है कि राजा ययाति के पुत्र पुरुवसु को गंगा नदी के आशीर्वाद से गंगेय नामक एक पुत्र प्राप्त हुआ और गंगेय के वंशज गंग कहलाये। गंगेय के परिवार के एक शासक विष्णुगुप्त या विष्णुवर्मन ने अहिच्छत्र में राज्य किया। उसके दो पुत्र थे—भगदत्त तथा श्रीदत्त। भगदत्त ने कलिंग के गंग राजवंश की स्थापना की। परन्तु गुम्मरेद्दिपुर ताम्रपत्रों में गंग शासक दुर्विनीत को श्रीकृष्ण का वंशज कहा गया है।

गंगों की उत्पत्ति-विषयक उपर्युक्त परम्पराओं में एकरूपता नहीं है। कुछ में उन्हें इक्ष्वाकु क्षत्रियों का वंशज बतलाया गया है और इस राजवंश के नाम को गंगा नदी अथवा गंगपेरुर नामक स्थान से सम्बन्धित किया गया है। एक अनुश्रुति के अनुसार गंग श्रीकृष्ण के वंशज अर्थात् यादव थे। अभिलेखों में गंग शासकों ने अपने को जाह्नव्य (जाह्नवी या गंगा का पुत्र) तथा काण्वायन गोत्रीय ब्राह्मण भी कहा है। इन विवरणों पर विश्वास करना कठिन है। दक्षिण भारत के अन्य अनेक राजवंशों की भांति गंगों ने भी कल्पना के आधार पर अपने को उत्तर भारत के इक्ष्वाकुओं से सम्बन्धित तथा अहिच्छत्र एवं अयोध्यापुरी का शासक मान लिया था। परन्तु वास्तव में वे दक्षिण भारत के ही मूलनिवासी थे।

प्रारम्भिक गंग शासक प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के पोषक तथा जैन एव ब्राह्मण धर्मों के अनुयाई थे। उनके शासनकाल में जैन, वैष्णव तथा शैव धर्म काफी लोकप्रिय हुए। परवर्ती राजाओं ने कन्नड़ भाषा एवं जैन धर्म को अपेक्षाकृत अधिक सरक्षण प्रदान किया। परन्तु उनके सहिष्णु धार्मिक दृष्टिकोण के कारण ब्राह्मण धर्म भी महत्वपूर्ण बना रहा। गंगों की प्रारम्भिक राजधानी कुलुवल (कोलार) थी। बाद में उन्होंने तलवनपुर (तलकाड) को राजधानी बनाया।

प्रारम्भिक शासक—गंग शासकों के वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम के विषय में काफी मत-भिन्नता है। कोंगनिवर्मन अपरनाम माधव प्रथम[1] गंग वंश का संस्थापक था। उसने कोलार को राजधानी बनाया; बाणों को पराजित किया

1. पी० बी० देसाई आदि ने माधव प्रथम को कोंगनिवर्मन का पुत्र माना है। (History of Karnataka, p. 66)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और कोंकण के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। बाण राज्य की पश्चिमी सीमा पलार नदी थी। कोंकण की विजय के उपलक्ष में ही माधव प्रथम ने सम्भवत: कोंगनिवर्मन का विरुद धारण किया था। अपनी इन उपलब्धियों से उसने गंग राज्य को सुदृढ़ आधारशिला पर खड़ा कर दिया। माधव प्रथम ने 350 से 400 ई० तक शासन किया।

माधव प्रथम के पश्चात् उसका भतीजा माधव द्वितीय राजा हुआ। उसका राज्याभिषेक पल्लव शासक स्कन्दवर्मन ने किया था। माधव द्वितीय में एक योग्य शासक के गुणों का अभाव था और वह मुख्यत: विद्याव्यसनी था। उसे नीतिशास्त्र एवं उपनिषदों का विद्वान तथा दत्तकसूत्रवृत्ति का लेखक बतलाया गया है। दत्तक, वात्स्यायन का पूर्ववर्ती था। माधव द्वितीय[1] ने कदम्ब शासक काकुस्थवर्मन की पुत्री के साथ विवाह किया और 400 से 435 ई० तक शासन किया।

माधव द्वितीय के उत्तराधिकारी हरिवर्मन ने तलकाड को राजधानी बनाया जिसका समीकरण कावेरी नदी तथा शिवसमुद्रम् के निकट स्थित तलवनपुर नामक स्थान से किया है। हरिवर्मन पल्लवों का सामन्त था और पल्लव शासक सिंहवर्मन ने उसका राज्याभिषेक किया था। उसके शासन का का अन्त 460 ई० के लगभग हुआ।

हरिवर्मन का उत्तराधिकारी उसका पौत्र[2] माधव तृतीय था। दोड्डबलपुर अभिलेख के अनुसार वह 32 प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में दक्ष था और उसने अपनी शक्ति और एवं शौर्य के द्वारा राज्य प्राप्त किया था। माधव तृतीय भी पल्लवों का सामन्त था और उसका अभिषेक भी पल्लव शासक द्वारा किया गया था। इस प्रकार गंगवाड़ी वस्तुत: पल्लवों का एक संरक्षित राज्य हो गया था। माधव तृतीय शिव का भक्त था, परन्तु उसने ब्राह्मणों, जैनियों तथा बौद्धों को भी दान दिए और लगभग 500 से 540 ई० तक शासन किया।

---

1. कुछ विद्वानों के अनुसार माधव तृतीय के साथ कदम्ब राजकुमारी का विवाह हुआ था (History of Karnataka p 67)।
2. पेनुकोंडा, कोंडनजेरुव तथा चुकुत्तूर ताम्रपत्रों में माधव तृतीय को विष्णुगोप का पुत्र और शिमोगा अभिलेख में हरिवर्मन का पौत्र बतलाया गया है (Outlines of South Indian History, p. 41)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अविनीत–माधव तृतीय का उत्तराधिकारी अविनीत, राज्यारोहण के समय अल्पायु का बालक[1] था। उसकी अपरिपक्व अवस्था का लाभ उठाकर कई सामन्तों तथा शत्रुओं ने विद्रोह कर दिया। परन्तु उसने इन विद्रोहियों का दमन करने में सफलता प्राप्त की। उसके अभिलेख उसके शासन के प्रथम वर्ष से लेकर 36वें वर्ष तक के मिले हैं। उसे कोंगनिवर्मन तथा कोंगनि-अविनीत भी कहा गया है। नरसिंहराजपुरम् अभिलेख में अविनीत का अर्थ 'दुर्व्यवहार करने वाले शासकों के प्रति दुर्व्यवहार करने वाला' बतलाया गया है।

अविनीत के शासन के 12वें वर्ष के होसकोटे ताम्रपत्रों में उसके द्वारा उस जैन मन्दिर को दान देने का विवरण है जिसे पल्लव शासक सिंहविष्णु की माता ने बनवाया था। सिंहविष्णु की जननी कदाचित् गंग वंशीय राजकुमारी थी। अविनीत का सिंहविष्णु के साथ क्या सम्बन्ध था, निश्चितरुप से ज्ञात नहीं। अविनीत जैन आचार्य विजयकीर्ति का शिष्य था। उसने जैन तथा ब्राह्मण मन्दिरों को दान दिए। शृंगेरी अभिलेख में उसकी अग्रमहिषी बृहद्देवी द्वारा दिए गए दान का वर्णन है। अविनीत को इन्द्र के समान यशस्वी, महान धनुर्धर तथा हाथियों एवं घोड़ों के संचालन में अद्वितीय बतलाया गया है। सत्य और न्यायप्रियता में उसकी तुलना युधिष्ठिर से की गई है। उसने छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शासन किया।

दुर्विनीत–दुर्विनीत अविनीत की पुण्णाट वंशीय रानी जेष्ठादेवी से उत्पन्न उसका सबसे ज्येष्ठ पुत्र था। परन्तु अविनीत ने उसके स्थान पर अपने कनिष्ठ पुत्र को (जिसके नाम का उल्लेख नहीं हुआ है) उत्तराधिकारी चुना। इसलिए दुर्विनीत ने अपने उस सौतेले भाई से युद्ध किया जिसमें वातापी के चालुक्य शासक विजयादित्य ने उसकी सहायता की थी[2]। पल्लवों ने दुर्विनीत के प्रतिद्वन्दी की सहायता की थी। किन्तु दुर्विनीत ने अपने सभी विरोधियों को पराजित कर 540 ई० के लगभग गंगवाड़ी के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। गुम्मेदिपुरम् ताम्रपत्रों के अनुसार राजलक्ष्मी ने स्वयं उसका वरण किया था।

दुर्विनीत ने पुन्नाट (दक्षिणी कर्नाटक), कोंगु तथा पल्लवों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। वह वातापी के चालुक्यों का मित्र था और उसने विजयादित्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। उसकी विजयों के परिणामस्वरूप

1. बंगलौर रेजीडेंसी ताम्रपत्रों के अनुसार राज्याभिषेक के समय अविनीत अपनी मां की गोद में खेलने वाला शिशु था।
2. दुर्विनीत ने विजयादित्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कोयम्बटूर जिले के अन्देरी एवं आलत्तूर क्षेत्र, चिंगलेपुट जिले का पोरुलेर क्षेत्र और सलेम जिले में स्थित पेरनगर के अतिरिक्त कुछ अन्य भूभाग भी गंग राज्य में शामिल हो गए थे। दुर्विनीत नें पल्लवों तथा बनवासी के कदम्बों के विरुद्ध निर्णायक सफलता प्राप्त की और अपनी पुत्री के पुत्र जयसिंहवल्लभ (विक्रमादित्य प्रथम) को वातापी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर उसने चालुक्यों की गरिमा का पुनरुत्थान किया।

दुर्विनीत विष्णु तथा शिव का भक्त था और इन दोनों सम्प्रदायों को उसने पर्याप्त सरक्षण प्रदान किया। दुद्दबल्लपुरम् अभिलेख में उसे हरचरणारविन्द-प्रणिपात कहा गया है। ब्राह्मणों के अतिरिक्त उसने जैनियों को भी दान दिए और कई यज्ञ सम्पन्न किए। वह संस्कृत तथा कन्नड़ भाषाओं का विद्वान था। राष्ट्रकूट अमोघवर्ष प्रथम के कन्नड़ ग्रन्थ कविराजमार्ग में उसे कन्नड़ का श्रेष्ठ कवि बतलाया गया है। अवन्तिसुन्दरीकथासार के अनुसार संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भारवि उसके दरबार में रहे थे। दुर्विनीत को भारवि के किरातार्जुनीयम् काव्य के 15वें सर्ग की टीका लिखने का भी श्रेय दिया गया है। इसके अतिरिक्त उसने गुणाढ्य के पैशाची ग्रन्थ बृहत्कथा का संस्कृत भाषा में अनुवाद किया। वह जैन विद्वान पूज्यपाद का शिष्य था। पूज्यपाद ने जैनाभिषेक, सर्वार्थसिद्धि तथा जिनेन्द्रव्याकरण आदि ग्रन्थों की रचना की। दुर्विनीत ने जिनेन्द्रव्याकरण पर शब्दावतार नामक टीका लिखी थी।

दुर्विनीत की तुलना कृष्ण तथा युधिष्ठिर से की गई है और उसे शक्ति, यश विद्वता तथा उदारता मे अद्वितीय बतलाया गया है। उत्तनूर ताम्रपत्रों के अनुसार वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा करने में वह मनु के समान था। उसने अविनीत-स्थिरप्रज्वल, अनीत, विनीत तथा अरिनृपनिविनीत आदि उपाधियां धारण कीं। इस प्रकार दुर्विनीत गंग वंश के महानतम शासकों में से एक था। उसने कम से कम 40 वर्ष तक राज्य किया।

दुर्विनीत के उत्तराधिकारी—दुर्विनीत के पुत्रों में मुश्कर या मोक्कर तथा पोलवीर का उल्लेख हुआ है। दुर्विनीत की मृत्यु के उपरान्त पहले मुश्कर राजा हुआ। उसने सिन्धुराज की पुत्री के साथ विवाह किया और वर्तमान धारवाड़ जिले के लक्ष्मेश्वर नामक स्थान पर एक जैन-मन्दिर का निर्माण कराया। मुश्कर के पश्चात् उसका भाई पोलवीर राजा हुआ। उसका राज्याभिषेक काडुवेट्टि तथा वल्लवरस ने किया था। ये क्रमशः पल्लव तथा चालुक्य शासक रहे होंगे। उनके बारे में निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता है। कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विद्वानों का अनुमान है कि दुर्विनीत के एक सौतेले भाई ने पोलवीर के राज्यारोहण में विघ्न उपस्थित किया था। पोलवीर के बाद उसके भतीजे श्रीविक्रम को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उपर्युक्त तीनों शासकों के विषय में कोई अन्य उल्लेखनीय सूचना नहीं प्राप्त हुई है।

भूविक्रम–श्रीविक्रम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी भूविक्रम शक्तिशाली शासक था। वह श्रीविक्रम की चोल वंशीय रानी से उत्पन्न सबसे ज्येष्ठ पुत्र था। उसे कुशल घुड़सवार, महान योद्धा तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाला शासक बतलाया गया है। युद्धस्थलों में शत्रु-सेनाओं के हाथियों के दांतों से लगी चोटों से उसका वक्षस्थल सुशोभित था। उसने पल्लव शासक सिंहपोतवर्मन को पराजित कर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। शासन के अन्तिम दिनों में भूविक्रम को राष्ट्रकूटों एवं कदम्बों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा था।

शिवमार प्रथम–भूविक्रम के पश्चात् उसका छोटा भाई शिवमार प्रथम अपरनाम नवकाम 670 ई० के आसपास राजा हुआ। उसने अवनिमहेन्द्र, स्थिरविनीत तथा शिष्यप्रिय की उपाधियां धारण कीं। उसके राज्यकाल में भी पल्लवों ने गंग राज्य पर आक्रमण किया था। परन्तु शिवमार ने उन्हें पीछे खदेड़ दिया। उसने 713 ई० तक राज्य किया। अपने शासन के 34 वें वर्ष में उसने हल्लिगेरि ताम्रपत्र प्रकाशित किए थे। शिवमार के सामन्तों में एरेगंग, पल्लवेलरस तथा तुप्पुरालरस प्रमुख थे। शिवमार के पुत्र की मृत्यु उसके जीवनकाल में ही हो गई थी। इसलिए शिवमार के बाद उसके पौत्र श्रीपुरुष को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

श्रीपुरुष–श्रीपुरुष अपरनाम मुत्तरस गंग वंश के महानतम शासकों में से एक था। उसके शासनकाल में गंगों की गरिमा एवं प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। युवराज की हैसियत से वह केरेकुन्द, अवनिनाड, एलेंगरनाड तथा पोंकुडा आदि क्षेत्रों का शासक रह चुका था और उसने जगदेकमल्ल को पराजित किया था। श्रीपुरुष के शासनकाल में वातापी के चालुक्य राज्य की सीमा गंग राज्य के निकट पहुंच गई थी। परन्तु इन दोनों राज्यों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे।

श्रीपुरुष के प्रमुख प्रतिद्वन्दी पल्लव तथा राष्ट्रकूट थे और इन दोनों से उसे काफी संघर्ष करना पड़ा। कोंगु प्रदेश को अधिकृत करने के लिए उसका पल्लव शासक नन्दिवर्मन द्वितीय से विलिन्द नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें श्रीपुरुष ने शानदार विजय प्राप्त की। यह उसकी सबसे महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थी। उसने कांची के शासक काडुवेट्टि का वध कर दिया, उसका राजकीय-छत्र अपहृत कर लिया तथा पेरमनडि की उपाधि धारण की। काडुवेट्टि का समीकरण अनिश्चित है। नरसिंहराजपुर ताम्रपत्रों में उसे भीमकोप कहा गया है और बतलाया गया है कि युद्धों में उसकी तीव्र तलवार द्वारा काटे गए हाथियों के रक्त से विजयलक्ष्मी ने स्नान किया था।

परन्तु बाद में नन्दिवर्मन द्वितीय ने कुवलाल (कोलार) पर आक्रमण कर श्रीपुरुष को पराजित कर दिया और उससे एक बहुमूल्य हार अपहृत कर लिया जिसमें उग्रोदय नामक मणि जड़ा हुआ था। चूंकि कोलार तथा तुंकुरु ज़िलों पर श्रीपुरुष का अधिकार बना रहा, इससे प्रतीत होता है कि उसने बाद में पल्लवों को खदेड़ दिया था। पी०बी० देसाई के अनुसार चालुक्य शासक विक्रमादित्य द्वितीय ने तुंडाक प्रदेश को आक्रान्त करने के बाद पल्लवों पर विजय प्राप्त की थी। इस युद्ध में श्रीपुरुष ने पल्लवों के विरुद्ध अपने चालुक्य अधिपति का साथ दिया होगा। सम्भवतः इसीलिए 754 ई० के कुछ पहले नन्दिवर्मन द्वितीय से श्रीपुरुष का संघर्ष हुआ था।

श्रीपुरुष के राज्यकाल में राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम के आक्रमण का निरन्तर खतरा बना रहा। उसने बंगलोर के निकट मान्यपुर (मण्णे) को राजधानी बनाया और कोंगणिराजाधिराज की उपाधि धारण की। 768 ई० में कृष्ण प्रथम मण्णे में अपने सैनिक-शिविर में विद्यमान था। श्रीपुरुष के शासनकाल के हीरेयुंडबाल (तुंकुर जिले में) नामक स्थान पर तीन वीरगलों (hero stones) पर अंकित अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि सियगल्ल तथा अन्य कई गंग सेनापति कृष्ण प्रथम से वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। गंगों ने राष्ट्रकूटों का डटकर मुकाबला किया जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रकूटों को वापस जाना पड़ा और मण्णे के उत्तर में स्थित क्षेत्र पर श्रीपुरुष का प्रभुत्व बना रहा। परन्तु गंग राज्य के कुछ क्षेत्रों पर राष्ट्रकूटों ने अधिकार कर लिया था। श्रीपुरुष के सामन्त नोलम्बों ने राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु बाद में गंगों ने उन्हें पुनः अपनी अधिसत्ता मानने के लिए बाध्य कर दिया।

श्रीपुरुष के राज्यकाल में गंग वंश की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। इसलिए उसका राज्य श्रीराज्य कहलाने लगा था। श्रीपुरुष की एक पुत्री का विवाह पांडय शासक राजसिंह प्रथम के साथ हुआ था। उसकी रानियों में चालुक्य वंशीय विजयमहादेवी तथा नोलम्ब राजकुमारी नोलम्बमादव का उल्लेख हुआ है। श्रीपुरुष ने गजशास्त्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की और

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

725-26 से 788 ई० तक शासन किया।

शिवमार द्वितीय–श्रीपुरुष के चार पुत्र थे–शिवमार द्वितीय[1], विजयादित्य रणविक्रम[2], दुग्गमार तथा सियगल्ल। सियगल्ल की मृत्यु श्रीपुरुष के जीवनकाल में ही हो गई थी। यद्यपि शिवमार सबसे ज्येष्ठ पुत्र था, तथापि उसे अपने अनुज दुग्गमार से उत्तराधिकार के लिए युद्ध करना पड़ा। इस संघर्ष में शिवमार ने अपने सामन्त नोलम्ब शासक सिंहपोत की सहायता से दुग्गमार को पराजित कर 780ई० में राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। शिवमार द्वितीय के राज्यकाल में गंगो को भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा और राष्ट्रकूटों की साम्राज्यवादी नीति ने उनके लिए सबसे अधिक खतरा उत्पन्न कर दिया था।

राष्ट्रकूट गोविन्द द्वितीय तथा उसके भाई ध्रुव के बीच हुए गृह-युद्ध में शिवमार ने गाविन्द द्वितीय का साथ दिया था। ध्रुव ने गोविन्द को पराजित कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। बाद में उसने शिवमार द्वितीय के विरुद्ध अभियान किया और मुंगुंडूर नामक स्थान पर उसे पराजित करने के उपरान्त जेल में ड़ाल दिया तथा उसके स्थान पर अपने ज्येष्ठ पुत्र स्तम्भ को गंगवाड़ी का शासक नियुक्त कर दिया।

कालान्तर में राष्ट्रकूट ध्रुव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गोविन्द तृतीय तथा स्तम्भ के बीच युद्ध छिड़ा। स्तम्भ के विरुद्ध शिवमार द्वितीय की सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से गोविन्द ने उसे जेल से मुक्त कर दिया। परन्तु शिवमार स्तम्भ से ही मिल गया और उसने गोविन्द तृतीय का प्रभुत्व मानने से इंकार कर दिया। गोविन्द ने अपने प्रतिद्वन्दी भाई को फिर भी पराजित कर दिया। परन्तु विजय प्राप्त करने के उपरान्त उसने स्तम्भ के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया और उसे गंगवाड़ी का पुनः शासक बना दिया। इस प्रकार दोनों भाइयों में मित्रता हो गई और गोविन्द ने 798 ई० में शिवमार द्वितीय को फिर जेल में डाल दिया। स्तम्भ की मृत्यु के पश्चात् गोविन्द ने शिवमार को गंगवाड़ी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। 808 ई०तक वह गोविन्द तृतीय की ओर से पूर्वी चालुक्य विजयादित्य द्वितीय से निरन्तर संघर्ष करता रहा। गोविन्द की मृत्यु के उपरान्त वह उसके पुत्र अमोघवर्ष प्रथम का भी आधिपत्य मानता रहा।

शिवमार द्वितीय विद्याव्यसनी शासक था। उसने कन्नड़ भाषा में गजशतक

---

1. शिवमार कदम्बूर तथा कुनिगलनाड का प्रान्तीय शासक था।
2. विजयादित्य पहले केरेगोडनाड का गवर्नर था और बाद में आसन्दीनाड का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया गया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नामक ग्रन्थ की रचना की[1]। इसमें हाथियों के प्रबन्ध आदि पर प्रकाश डाला गया है। वह तर्कशास्त्र, दर्शन, व्याकरण तथा नाटक आदि विषयों का विद्वान था। 800 ई० के लगभग शिवमार ने श्रवणबेलगोला में चन्द्रप्रभावसदि का निर्माण कराया था।

विजयादित्य–शिवमार द्वितीय की मृत्यु के समय उसका पुत्र पृथ्वीपति प्रथम अल्प आयु का बालक था। इसलिए शिवमार के छोटे भाई विजयादित्य ने उसके संरक्षक के रूप में शासन की बागडोर सम्भाली। परन्तु पृथ्वीपति के वयस्क हो जाने पर भी विजयादित्य ने उसे उसके वैध उत्तराधिकार से वंचित रखा और अपने पुत्र राचमल्ल प्रथम को 817 ई० में मुख्य गंग राज्य का शासक बना दिया।

राचमल्ल प्रथम ने अपनी पुत्री जायव्वे का विवाह नोलम्ब शासक पोलचेर के साथ कर दिया और वह राष्ट्रकूटों के विरुद्ध स्वतन्त्रता घोषित करने के लिए प्रयत्नशील हो गया। अमोघवर्ष प्रथम की विषम राजनैतिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर उसने राष्ट्रकूटों को गंगवाड़ी से खदेड़ दिया और विभाजित गंग राज्य को पुनः एक कर दिया। राचमल्ल के राज्यकाल के अभिलेखों में उसे वराह रूपधारी विष्णु के समान गंग राज्य का रक्षक बतलाया गया है। उसके शासन का अन्त 853 ई० में हुआ।

नीतिमार्ग एरेगंग–राचमल्ल प्रथम के पश्चात् उसकी राष्ट्रकूट वंशीय रानी अव्वलव्वे से उत्पन्न उसका पुत्र नीतिमार्ग एरेगंग 853 ई०में राजा हुआ। उसने गंग राजवंश की प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार करने का प्रयास किया। उसने वाणों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और राष्ट्रकूटों से संघर्ष जारी रखा। राज-रामडु नामक स्थान पर उसका अमोघवर्ष प्रथम के प्रसिद्ध सेनानायक बंकेस से युद्ध हुआ जो अनिर्णीत रहा। गंगों के विरुद्ध निर्णायक एवं स्थाई सफलता प्राप्त करना कठिन समझकर अमोघवर्ष ने उनसे मित्रता करने का निश्चय किया और अपनी पुत्री चन्द्रवल्लभा का विवाह एरेगंग के पुत्र युवराज बूतुग प्रथम के के साथ कर दिया। एरेगंग ने 870 ई० तक राज्य किया।

राचमल्ल द्वितीय–एरेगंग के कनिष्ठ पुत्र युवराज बूतुग की मृत्यु पहले ही हो गई थी। अतएव एरेगंग के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र राचमल्ल द्वितीय को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके राज्यकाल में गंगों को बाणों, नोलम्बों तथा

1. कुछ विद्वानों ने शिवमार द्वितीय को सेतुबन्ध काव्य की रचना का भी श्रेय दिया है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वैदुम्बों से निरन्तर संघर्ष करने पड़े। इन शत्रुओं के अतिरिक्त पृथ्वीपति के पुत्र नन्नियगंग ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया क्योंकि उसे उसके वैध उत्तराधिकार से वंचित किया गया था। पृथ्वीपति तथा उसके उत्तराधिकारियों ने बाण वंशीय शासकों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए और पृथ्वीपति प्रथम की पुत्री कुन्दव्वे का विवाह बाण शासक बाणविद्याधर के साथ कर दिया। नन्नियगंग ने वैदुम्बों की भी सहायता प्राप्त की और अपने मित्र शासकों से मिलकर उसने राचमल्ल पर आक्रमण कर दिया। बाणों ने राचमल्ल के सामन्त नोलम्बों को पराजित करने के उपरान्त पुलिनाडु, मण्णे तथा गंग राज्य के कुछ अन्य क्षेत्रों को जीत लिया और तलकाड पर अधिकार कर लिया।

नन्निय के पुत्र पृथ्वीपति द्वितीय के विषय में बतलाया गया है कि चोल शासक परान्तक ने उसे शेम्बियमहावलीबाणरस के विरुद से विभूषित किया और बाणों द्वारा शासित प्रदेश भी प्रदान किया। पृथ्वीपति द्वितीय मुख्य गंग शाखा का अन्तिम शासक था।

नोलम्ब नृप महेन्द्र ने सामन्त की हैसियत से राचमल्ल द्वितीय को उसके सामरिक अभियानों में सक्रिय सहयोग दिया था। बाद में उसने स्वतन्त्रता घोषित कर दी। परन्तु राचमल्ल द्वितीय के भाई बूतुग प्रथम ने महेन्द्र को हिरियूर, सुलूर तथा सामियूर आदि स्थानों पर हुए युद्धों में पराजित किया, यद्यपि इन पराजयों के उपरान्त भी वह कुछ समय तक गंगमंडल पर अपना अधिकार बनाए रहा और 891 ई० के पहले उसने राचेयगंग नामक शासक को युद्ध में मार डाला था। राचेयगंग, गंगों की ओर से लड़ा था। अन्त में बूतुग के पुत्र एरेगंग ने 895 ई० के आस-पास महेन्द्र का वध कर दिया, सुलूर, नडुगणि, तिप्पेरु तथा हेंजेरु के दुर्गों को अधिकृत कर **महेन्द्रान्तक** की उपाधि धारण की और नोलम्बों को पुनः अपनी अधिसत्ता मनाने के लिए बाध्य कर दिया।

एरेगंग (एरेयप्प)—राचमल्ल द्वितीय का कोई पुत्र नहीं था। इसलिए उसने अपने भतीजे (बूतुग के पुत्र) एरेगंग को उत्तराधिकारी चुना और दोनों ने संयुक्त रूप से 886 से 919 ई० तक शासन किया। एरेगंग के तीन पुत्र थे—नरसिंह, राचमल्ल तृतीय तथा बूतुग द्वितीय। एरेगंग की मृत्यु के उपरान्त सबसे पहले नरसिंह राजा हुआ। उसके शासन का अन्त 933 ई० के पहले किसी समय हुआ। नरसिंह के उपरान्त उसके भाई राचमल्ल तृतीय को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके शासनकाल में गंगों को नोलम्बों तथा राष्ट्रकूटों से संघर्ष करना पड़ा। उसके भाई बूतुग द्वितीय ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बूतुग ने राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय की बहिन रेबका के साथ विवाह किया और दहेज में वेलवोला, पुरिगेरे तथा बागेनाडु क्षेत्र प्राप्त किए। कृष्ण तृतीय की सहायता से वह गंग राजसिंहासन पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील हो गया। अन्त में कृष्ण ने राचमल्ल तृतीय को अपदस्थ कर दिया और 936-37 ई० में बूतुग द्वितीय को उसके स्थान पर राजा बना दिया।

बूतुग द्वितीय—बूतुग राष्ट्रकूटों का निष्ठावान सामन्त एवं समर्थक था। 947-48 ई० में तक्कोलम् में हुए युद्ध में वह कृष्ण तृतीय की ओर से चोलों से लड़ा और उसने चोल राजकुमार राजादित्य का वध कर दिया था। बूतुग की इन सेवाओं से प्रसन्न होकर कृष्ण ने उसे बनवासी का राज्य भी दे दिया। बूतुग ने लगभग 961 ई० तक शासन किया।

बूतुग द्वितीय के उपरान्त राष्ट्रकूट वंशीय रानी से उत्पन्न उसका पुत्र मरुल राजा हुआ। परन्तु लगभग दो वर्ष के शासन के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। मरुल का उत्तराधिकारी उसका सौतेला भाई मारसिंह तृतीय भी राष्ट्रकूटों का सामन्त एवं सम्बन्धी था। उसने कृष्ण तृतीय की पुत्री के साथ विवाह किया। कृष्ण के मालवा तथा गुजरात के सामरिक अभियानों में मारसिंह ने उसे सक्रिय सहयोग दिया था।

972-73 ई० में कल्याणी के चालुक्य तैलप द्वितीय ने अपने अधिपति राष्ट्रकूट शासक को पराजित कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। किन्तु मारसिंह तृतीय ने चालुक्यों की अधिसत्ता नहीं स्वीकार की और उसने कृष्ण तृतीय के पौत्र इन्द्र चतुर्थ का बंकापुर में राज्याभिषेक कर दिया। उसने गोणूर के युद्ध में नोलम्बों पर भी विजय प्राप्त कर उनकी शक्ति को तहस-नहस कर डाला और नोलम्बान्तक का विरुद धारण किया। मारसिंह तृतीय ने राजादित्य नाम के एक अन्य शासक का भी युद्ध में वध कर दिया था। राजादित्य सम्भवतः तैलप द्वितीय का समर्थक रहा होगा। परन्तु मारसिंह अपने सम्बन्धी एवं समर्थित राष्ट्रकूट शासक को उसका पैतृक राज्य दिलाने में सफल नहीं हो सका।

मारसिंह जैन मतावलम्बी था। जीवन के अन्तिम दिनों में वह श्रवणबेलगोला में रहा और सल्लेखन विधि द्वारा उसने अपना शरीर त्याग दिया।

मारसिंह तृतीय की मृत्यु के उपरान्त गंग राज्य के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई। उसके पुत्र राचमल्ल चतुर्थ तथा नरसिंह के छोटे भाई नीतिमार्ग गोविन्दरस के बीच सिंहासन के लिए युद्ध हुआ जिसमें मारसिंह के प्रसिद्ध

CC-0. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मन्त्री एवं सेनापति चावुंडराय ने राचमल्ल का साथ दिया और 799 ई० में उसे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय तक तैल द्वितीय के नेतृत्व में कल्याणी के चालुक्य बहुत शक्तिशाली हो गये थे और तैल ने राचमल्ल चतुर्थ तथा गोविन्दरस को पराजित कर गंगवाड़ी के उत्तरी भाग को अपने राज्य में शामिल कर लिया। इसके पश्चात् राचमल्ल का प्रभुत्व अपने पैतृक राज्य के दक्षिणी क्षेत्रों में ही सीमित रह गया था।

राचमल्ल चतुर्थ के ही शासनकाल में चावुंडराय ने ने नोलम्ब पल्लवों को पराजित किया और पांड्यों के विरुद्ध सफलता प्राप्त कर उच्छंगि के दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। उसका राज्यकाल कलात्मक गतिविधियों के लिए विशेष-रूप से प्रसिद्ध है। चावुंडराय की जैन धर्म में अटूट श्रद्धा थी। उसने चावुंडराय-पुराण की रचना की जिसमें 24 जैन तीर्थंकरों के जीवनवृत्त वर्णित हैं। श्रवण-वेलगोला में उसने अनेक जैन-स्मारक बनवाये। इन स्मारकों में दो विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं: 982 ई० में निर्मित चावुंडराय वसदि, और चट्टान से काटकर बनाई गई 57 फुट ऊंची गोमटेश्वर की विशाल प्रतिमा जिसका निर्माण 983 ई० में हुआ था।

राचमल्ल चतुर्थ ने जगदैकमल्ल, कोंगनिवर्मन तथा धर्ममहाराजाधिराज के विरुद धारण किए। उसे कोल्हापुर तथा नंदगिरि का अधिपति भी कहा गया है। उसका छोटा भाई रक्कस लक्ष्मणतीर्थ का शासक था।

राचमल्ल चतुर्थ के पश्चात् उसका भाई रक्कस गंग 985 ई० में राजा हुआ। 990 ई० के बाद गंगों को साम्राज्यवादी चोलों तथा चालुक्यों से भयंकर युद्ध करने पड़े। रक्कस के राज्यकाल में राजेन्द्र चोल ने 1004 ई० में तलकाड पर अधिकार कर लिया था। रक्कस ने 1024 ई० तक शासन किया। इसके बाद भी हमें कंचनरस, उदयादित्य तथा अन्य गंग शासकों के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु वे राजनैतिक दृष्टि से महत्वहीन थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

25

होयसल राजवंश

उत्पत्ति–संगम युग के तमिल साहित्य में तथा प्राचीनतम कन्नड साक्ष्यों में होयसलों का उल्लेख नहीं हुआ है। उनका क्रमबद्ध इतिहास दसवीं शताब्दी के मध्य के आसपास से प्राप्त होता है। होयसलों की उत्पत्ति के विषय में प्रमाणिक सूचना का अभाव है। उनके अभिलेखों में साल (शाल) को इस वंश का संस्थापक बतलाया गया है। वह जैन धर्म का अनुयाई था। एक दिन वह अपने कुलदेवता वासन्तिका देवी के मन्दिर में पूजा करने के लिए शशकपुर या सोसावीर (कर्नाटक राज्य के चिकमगलूर ज़िले की मुडिगेरे तालुक में स्थित अगडि नामक स्थान) गया। पूजा के उपरान्त वह अपने गुरु जैन आचार्य सुदत्त के समीप गया और उससे दीक्षा ग्रहण करने लगा। उसी दौरान में निकटवर्ती जंगल से एक शेर निकला और जैन आचार्य की ओर क्रोध मुद्रा में आगे बढ़ा। उसे देखकर सुदत्त ने कहा कि 'साल, इस बाघ को मारो' (पोय साल)। साल ने अपनी कटार से उसे मार दिया। बसरालु अभिलेख में बतलाया गया है कि साल के इस साहसिक कार्य से प्रसन्न होकर सुदत्त ने उसे राजत्व पद प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया[1]।

होयसल अभिलेखों में इस राजवंश के लिए **पोयसल** शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। तमिल **प** कन्नड़ के ह अक्षर में परिवर्तित हो सकता है और प्राचीन कन्नड़ भाषा में **पोयस्** तथा **होयस्**, दोनों का अर्थ 'प्रहार करना' है। उपर्युक्त घटना के आधार पर ही इस राजवंश का नाम **पोयसल** या **होयसल** पड़ा। जे० डी० एम० डैरेट के अनुसार यह विचित्र अनुश्रुति विष्णुवर्धन के राज्यकाल में गढ़ी गई थी और इसका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है।

एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार साल द्वारा सिंह को मारने से सम्बन्धित

---

1. Karnataka through the Ages, p. 392.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उपर्युक्त कथानक में होयसलों की चोलों पर विजय प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा छद्म रुप में निहित प्रतीत होती है, क्योंकि चोलों का राजकीय चिन्ह सिंह था। न केवल होयसलों के राजकीय ध्वज में साल को बाघ से युद्ध करते हुए दिखाया गया है, वरन् अधिकांश होयसल मन्दिरों पर भी इस घटना का अंकन मिलता है। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि चोलों ने गंगवाड़ी पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त वहां जैन-स्मारकों को ध्वस्त किया होगा। इससे असन्तुष्ट होकर जैनियों ने साल के नेतृत्व में अपने को संगठित कर चोलों के विरुद्ध युद्ध की तैयारियां कीं और जैन आचार्य सुदत्त ने गंगवाड़ी की ओर इशारा करते हुए साल को बाघ अर्थात चोलों को मारने एवं उन्हें अपने क्षेत्र से खदेड़ने के लिए आदेश दिया होगा।

साल द्वारा सिंह की हत्या विषयक कथानक में ऐतिहासिक सत्यांश कुछ भी रहा हो, होयसलों से चोलों की शत्रुता का कारण धार्मिक की अपेक्षा राजनैतिक अधिक था।

बी० एल० राइस ने होयसलों को पश्चिमी घाटों के पहाड़ी क्षेत्र का मूलनिवासी माना है। इस मत का समर्थन करते हुए जोशी ने होयसलों का समीकरण उत्तरी कनारा ज़िले की होसेलरु (या होयसलेरु) नामक जनजाति से किया है। सेवेल के अनुसार प्रारम्भ में होयसल पश्चिमी कर्नाटक में पश्चिमी घाटों के निकट मुद्गेरे तालुक में अंगडि नामक स्थान पर निवास करते थे। एन० सुब्रमण्यम ने होयसलों को तमिल देश के वेलीर (Velir) सामन्तों से सम्बन्धित माना है। डैरेट के अनुसार यह भी असम्भव नहीं है कि होयसलों का मूल कबीला उनके बाद के वंशजों के कबीले से कुछ भिन्न रहा हो और वे महाशमीय संस्कृतियों के निर्माताओं के वंशज रहे हों। परन्तु यह विचार मुख्यतः कल्पना पर आधारित है। होयसल पश्चिमी घाटों के पहाड़ी क्षेत्र के ही मूलनिवासी थे। देवगिरि के यादवों की भांति होयसलों ने भी अपने को यदुवंशी माना और यादवकुलतिलक, द्वारावतीपुरवराधीश्वर तथा यादवकुलाम्बरद्युमणि आदि उपाधियां धारण कीं। प्रारम्भ में उन्होंने निकटवर्ती पहाड़ी जनजातियों को पराजित कर अपनी शक्ति बढ़ाई। इन जनजातियों में मेलप सर्वप्रमुख थे। मेलपों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में होयसल शासकों ने मेलपरोलगंड (मेलपों का स्वामी) का विरुद धारण किया। होयसलों ने कल्याणी के चालुक्यों के सामन्त के रुप में अपना राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया था। उनका राज्य कल्याणी के चालुक्यों तथा चोलों के साम्राज्यों के मध्य में स्थित था। इन

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दोनों राजवंशों में अत्यधिक प्रतिद्वन्दता एवं शत्रुता थी और उनके दीर्घकालीन पारस्परिक संघर्षों ने ही होयसलों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्रदान किया। होयसलों की राजनैतिक गतिविधियां उनके अभ्युदय के लगभग एक शताब्दी बाद तक कर्नाटक राज्य के वर्तमान हसन, मैसूर, कडूर तथा तुंकुरु जिलों तक मुख्यत: सीमित रहीं।

साल–इस वंश का संस्थापक तथा प्रथम ज्ञात शासक साल है, जिसका दूसरा नाम नृपकाम भी था।[1] उसे यदुवंशोज्जवलतिलक कहा गया है। उसने राजमल्ल तथा पेरुमाडि[2] की उपाधियां धारण कीं और सोसावीर गांव तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्र के निवासियों को सुरक्षा प्रदान की। इसलिए वह इस भू-भाग का मुखिया चुन लिया गया। मरले (वेलूर के उत्तर में स्थित एक गांव) से प्राप्त एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि अरकेल्ल नामक एक सामन्त के पौत्र पोयसलमारुग ने सिरिवूर में अणिंग से युद्ध किया था। अणिग नोलम्ब वंशीय शासक था और राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय का सामन्त था। अरकेल्ल के पुत्र को भी सामन्त कहा गया है। डेरेट के अनुसार अरकेल्ल का पुत्र राष्ट्रकूटों के अधीन एक सैन्य-अधिकारी रहा होगा।

1006 ई० में साल अपरनाम नृपकाम ने कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित कलवर में अपरमेय नाम के राजा से युद्ध किया। अपरमेय चोलों का सामन्त था। उसने होयसल शासक को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। परन्तु वह भी सम्भवत: इसी युद्ध में मारा गया, अथवा इसके कुछ ही समय के बाद उसकी मृत्यु हो गई। होयसल अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि साल (पोयसल) के पास शक्तिशाली हस्ति तथा अश्व सेनायें थीं। उसे **अन्यसाधन** (जिसे बाहरी सहायता प्राप्त हो) कहा गया है। सम्भवत: उसे अपने निकटवर्ती गग एवं कदम्ब शासकों की भी सहायता प्राप्त थी। 1006 ई० में साल ने गंगवाड़ी के कुछ क्षेत्र को भी अपने अधीन कर लिया था। नृपकाम (साल) की जैन धर्म में

1. एस० कृष्णस्वामी आयंगर ने साल का समीकरण नृपकाम से किया है। नृपकाम सोसावीर के आसपास के क्षेत्र में शेर आदि जंगली जानवर मारा करता था, जिसके लिए स्थानीय लोग उसे प्रतिवर्ष एक **पण** दिया करते थे। परन्तु पी० बी०-देसाई आदि इस समीकरण से सहमत नहीं हैं।
2. इस उपाधि का प्रयोग पश्चिमी गंग शासक करते थे। इस आधार पर नन्दिमथ ने सुझाव दिया है कि होयसल तथा गंग राजवंशों में मित्रता रही होगी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्रृद्धा थी। उसने लगभग 1047 ई० तक शासन किया।

विनयादित्य—साल के पश्चात् 1047 ई०[1] के कुछ पहले विनयादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ। वह विक्रमादित्य षष्ठ का सामन्त था।[2] विनयादित्य के राज्यकाल मे गंगवाड़ी को अधिकृत करने के लिए चोलों तथा पश्चिमी चालुक्यों मे दीर्घ काल तक संघर्ष चला जिसमें विनयादित्य तथा उसका पुत्र एरेयंग चालुक्यों की ओर से लड़े थे। विनयादित्य विक्रमादित्य षष्ठ के भाई सोमेश्वर द्वितीय का प्रबल समर्थक था और उसकी सहायता के लिए उसने एरेयंग के नेतृत्व में एक सेना भेजी थी। एरेयंग द्वारा चालुक्यों को दिए गए सहयोग के कारण उसे विक्रमादित्य की **दक्षिणभुजा** कहा गया है। 1055 ई० के कुछ समय पूर्व विनयादित्य ने अपनी पुत्री अथवा बहिन का विवाह विक्रमादित्य के साथ कर दिया था[3]। सान्तर शासक अम्मणदेव ने होयसलदेवी के साथ विवाह किया था। वह सम्भवतः विनयादित्य की पुत्री थी। हेरमाडिगंग ने 1067 ई० के पहले विनयादित्य की पौत्री के साथ विवाह किया। इन वैवाहिक सम्बन्धों से विनयादित्य की स्थिति काफी सुदृढ़ हुई होगी।

शासन के प्रारम्भ में उसने छंगालवों तथ कोंगालवों को कुर्ग निकट पराजित किया। उसने मेलपों पर भी विजय प्राप्त की थी। कुछ परवर्ती होयसल अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि विनयादित्य ने कोंकण के निवासियों को आतंकित किया था। सान्तरों के निकटवर्ती असन्दिगंग नामक एक छोटे राजवंश के शासक वैजरस ने 1079 ई० तक होयसलों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। बाद में गंग राज्य भी होयसलों का अधीनस्थ हो गया।

विनयादित्य के ही राज्काल में सोसावीर (सोसवूर) होयसलों की राजधानी बनी। परन्तु 1062 ई० में उसने द्वारसमुद्र[4] को राजधानी बनाया और

---

1. एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि 1047-48ई० में विनयादित्य सोसावूर में अपनी पत्नी केलेयब्बे के साथ शासन कर रहा था।
2. विनयादित्य के विषय में बतलाया गया है कि उसने कुन्तल के सम्राट् की अधीनता स्वीकार की थी। यहां सम्भवतः विक्रमादित्य षष्ठ की ओर संकेत है।
3. नरसिंहमूर्ति के अनुसार होयसलदेवी विनयादित्य की पुत्री थी जिसका विवाह उसने पश्चिमी चालुक्य शासक सोमेश्वर के साथ किया था।
4. राष्ट्रकूटों के शासनकाल में दोर नामक एक शासक ने इस स्थान पर एक तालाब बनवाया था, इसीलिए इसका नाम दोरसमुद्र (द्वारसमुद्र) हो गया। (Derrett, Hoyasalas, pp. 34,221)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसका नाम विक्रमपुर रखा। द्वारसमुद्र से लगभग 13 किलोमीटर की दूरी पर स्थित वेलूर नगर का भी राजनैतिक महत्व बढ़ गया था। वेलूर के राजप्रासाद में रहकर विनयादित्य समय-समय पर प्रशासन का कार्य देखता था। इससे प्रतीत होता है कि यह होयसलों की सम्भवतः उपराजधानी थी।

विनयादित्य के पोचिमय्यदण्णायक नामक मन्त्री ने भूमि विकास में सक्रिय भूमिका अदा की। उसके राज्यकाल में एक **अग्रहार** तथा एक शिव-मन्दिर को भूमिदान दिया गया और जैन मतावलम्बियों को विशेष संरक्षण प्राप्त हुआ। विनयादित्य को कई जैन मन्दिरों का निर्माण कराने का भी श्रेय दिया गया है।

1074 ई० के आस-पास विनयादित्य को समधिगतपंचमहाशब्दमहामंडलेश्वर कहा गया है। यह विरुद उसकी सर्वोच्च सामन्तीय स्थिति का सूचक है। पश्चिमी चालुक्यों का आधिपत्य मानते हुए वह बड़ी सावधानी से अपनी शक्ति बढ़ाता रहा। उसने पोयसलदेव, विक्रमगंग तथा त्रिभुवनमल्ल की उपाधियां धारण कीं। 1184 ई० तक वह कोंकण, वायलनाडु, तलकाड तथा सावीमले से घिरे क्षेत्र पर शासन कर रहा था। इस प्रकार उसके राज्य में कर्नाटक के वर्तमान कडूर, हसन, शिमोगा तथा तुंकुरु जिलों के अतिरिक्त मैसूर जिले का भी कुछ भाग शामिल था। ये गंगवाड़ी राज्य की सीमाएं थीं, इसीलिए विनयादित्य को गंगवाड़ी 96,000 का अधिपति भी कहा गया है। उसके दीर्घ शासनकाल में एरेयंग ने उसे बहुत सक्रिय सहयोग दिया था। उसके शासन का अन्त 1100 ई० या इसके कुछ पहले हुआ।

एरेयंग–विनयादित्य का पुत्र एरेयंग 1097-98 ई० अथवा इसके कुछ समय बाद राजा हुआ। वह अपने पिता के राज्यकाल में ही युवराज नियुक्त कर दिया गया था। इसलिए उसे सैन्य-संचालन एवं प्रशासन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो गया था।

1069 तथा 1076 ई० के मध्य एरेयंग ने मालवा के परमार शासक की राजधानी धारा को आक्रान्त कर भस्मसात कर दिया। उसे वलेयपट्टन को जलाने, चक्रगोट्ट को अधिकृत करने, कलिंग के शासक को पराजित करने तथा अपने अधिपति पश्चिमी चालुक्य सम्राट को महत्वपूर्ण सहयोग देने का श्रेय दिया गया है और चालुक्य राजा की दक्षिणभुजा कहा गया है। चक्रगोट्ट का अभिप्राय मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में स्थित चक्रकोट्ट से है। कलिंग में उस समय सम्भवतः कुलोत्तुंग प्रथम का गवर्नर शासन कर रहा था। एक अभिलेख के अनुसार एरेयंग ने अपने अधिपति विक्रमादित्य षष्ठ का आदेश पाकर चोल

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शासक को पत्रों के वस्त्र पहनने के लिए बाध्य कर दिया था ।

एरेयंग की दो रानियों के नाम ज्ञात हैं—महादेवी तथा एचलादेवी । एचलादेवी अग्रमहिषी थी तथा बल्लाल प्रथम, विष्णुवर्धन और उदयादित्य की जननी थी । एरेयंग ने 1101-1102 ई० तक शासन किया ।

बल्लाल प्रथम—एरेयंग के ज्येष्ठ पुत्र बल्लाल प्रथम को 1101 ई० में उत्तराधिकार प्राप्त हुआ । उसके राज्यकाल के अभिलेखों में चालुक्य विक्रम सवत्[1] का प्रयोग हुआ है । इससे प्रमाणित होता है कि वह भी कल्याणी के चालुक्यों का अधीनस्थ था । बल्लाल ने सोसावीर के स्थान पर वेलपुर (बेलूर) को राजधानी बनाया और द्वारसमुद्र (आधुनिक हालेविद) उपराजधानी थी ।

मालवा के परमार शासक उदयादित्य के पुत्र जगद्देव ने चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ से मिलकर द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर दिया और होयसलों के विरुद्ध सफलता प्राप्त कर उन्हें काफी क्षति पहुंचाई । परन्तु बाद में बल्लाल तथा उसके भाई विष्णुवर्धन ने उन्हें खदेड़ दिया । 1104 ई० में उसने छंगालवों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया । उसने नोलम्बवाड़ी के पांड्य शासक पर भी विजय प्राप्त की । इसके पश्चात् बल्लाल ने तुंगभद्रा को पार किया । इन सभी अभियानों में विष्णुवर्धन ने भी उसे सहयोग दिया था । जब दोनों भाई उपर्युक्त सफलताओं के उपरान्त सम्भवत: वापस लौट रहे थे, उसी दौरान में विक्रमादित्य षष्ठ के सिन्द वंशीय सामन्त आचुगि द्वितीय[2] ने उन पर आक्रमण कर दिया । नरेगल से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार विक्रमादित्य के आदेश से आचुगि ने होयसलों को हराया, पर्वतीय शासकों को खदेड़ा और कोंकण को अधिकृत किया था । 1179 ई० के एक अभिलेख के अनुसार आचुगि द्वितीय के पुत्र पेरमाडि ने होयसल शासक (बल्लाल प्रथम) के हाथियों तथा कोष पर अधिकार कर लिया और उसे बन्दी बनाकर विक्रमादित्य के समक्ष प्रस्तुत किया था ।

1125 ई० के एक अभिलेख में दावा किया गया है कि चेर, पांड्य, आन्ध्र, ओड्र (उड़ीसा), मालव तथा निगुल (चोल) राज्यों ने बल्लाल प्रथम का समुचित सम्मान किया और उससे मित्रता स्थापित की थी । परन्तु यह विवरण

---

1. विक्रमादित्य षष्ठ ने 1076 ई० में राज्यारोहण के समय अपने नाम पर विक्रम संवत् चलाया था ।
2. आचुगि, एरम्बर्गे (भूतपूर्व हैदराबाद राज्य में स्थित आधुनिक एलवर्ग) का शासक था ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथ्य की अपेक्षा कल्पना पर अधिक आधारित प्रतीत होता है[1] और इसका समुचित पुष्टिकरण नहीं हुआ है।

बल्लाल पहले जैन धर्म में आस्था रखता था, परन्तु बाद में वह शिव का उपासक हो गया। उसे शिव के भक्तों में अग्रगण्य कहा गया है। बल्लाल प्रथम का अन्तिम ज्ञात अभिलेख 1108 ई० का है और इसी तिथि के आस-पास उसके शासन का अन्त हुआ होगा। उसका कोई पुत्र नहीं था। अतएव उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाई विष्णुवर्धन राजा हुआ।

बिट्टिग विष्णुवर्धन–बिट्टिग अपरनाम विष्णुवर्धन 1106-8 ई० में राजा हुआ। बल्लाल के राज्यकाल में ही उसने कई सामरिक अभियानों में भाग लेकर एक महान सेनानायक होने का प्रमाण दे दिया था और स्वतन्त्र शासक के रुप में अपनी महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धियों से उसने होयसल राज्य को एक शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया।

बिट्टिग ने सर्वप्रथम सेनानायक गंगराज के साथ नोलम्बवाड़ी तथा गंगवाड़ी पर आक्रमण किए। नोलम्बवाड़ी को उसने दो बार आक्रान्त किया और दोनों युद्धों में सफलता प्राप्त की। 1117 ई० तक सम्पूर्ण गंगवाड़ी, तलकाड तथा नोलम्बवाड़ी के कई क्षेत्रों को अधिकृत करने के उपरान्त, विष्णुवर्धन ने वीरगंग एवं तलकाडुगोंड की उपाधियां धारण कीं। उसके सोने के सिक्कों पर भी कन्नड़ भाषा में श्रीतलकाडुगोंड का विरुद अंकित है। तलकाड में उसने कीर्तिनारायण के एक मन्दिर का निर्माण कराया था। इन विजयों के पश्चात् उसने अपनी महत्वाकांक्षी दिग्विजय योजना को क्रियान्वित किया। विष्णुवर्धन ने नंगलिकों को आक्रान्त किया और कोलार के पश्चिमी भू-भाग पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त पश्चिमी चालुक्यों के सामन्त उच्छंगि के पांड्य शासक को पराजित कर उसने उच्छंगि को अपने अधीन कर लिया। इन विजयों के पश्चात् उसने तुंगभद्रा नदी को पार किया और कदम्ब राज्य में हानुंगल तक बढ़ गया। डैरेट के अनुसार विष्णुवर्धन ने 1111 तथा 1113 ई० के मध्य उच्छंगि पर विजय प्राप्त की होगी और 1113-14 ई० में हानुंगल, बनवासी तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्रों पर। 1113 ई० के एक अभिलेख में उसे तलकाड कोंगु नंगलि, बनवासी, बेलवोल, हलसिगे, हानुंगल, नोलम्बवाड़ी तथा उच्छंगि का विजेता बतलाया गया है।

1117 ई० के एक अभिलेख के अनुसार उसने तोडस (चोलों) को भय-

1. Derrett, Hoyasalas, pp. 17, 41

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भीत किया और कोंगु पर विजय प्राप्त कर वह नीलपर्वत (नीलगिरि) तक पहुंच गया था। विष्णुवर्धन के मन्त्री एवं दंडनायक ने नीलगिरि पर अधिकार कर लिया और मलय क्षेत्र को जीतकर वह केरल का भी अधिपति हो गया था। चोलों तथा चेरों को पराजित करने के पश्चात् वापसी यात्रा के दौरान में वह मरवलतीर्थ में रुका और चामुंडी की पहाड़ी पर स्थित एक शिव-मन्दिर को दान दिया। 1120 ई० के एक अभिलेख के अनुसार विष्णुवर्धन ने नीलपर्वत पर एक नगर का भी निर्माण कराया था। उसे 'कोंगालव शासक के लिए दावाग्नि' और 'छगालव तथा तुलुव वंशीय नृपतियों के लिए बड़वाग्नि' कहा गया है।

विष्णुवर्धन ने चोल कुलोत्तुंग प्रथम से भी युद्ध किया और उसे काफी क्षति पहुंचाई। होयसल सेना कांची तक बढ़ गई थी और इस नगर को जीतकर विष्णुवर्धन ने कांचीगोंड का विरुद धारण किया। डैरेट के अनुसार कांची से ही वह रामेश्वरम् तक गया होगा और वहां उसका मदुरा के पांड्यों से युद्ध हुआ। 1125 ई० के एक अभिलेख में विष्णुवर्धन को दक्षिण समुद्र के तटवर्ती समस्त क्षेत्रों का अधिपति कहा गया है। परन्तु इस कथन में अतिशयोक्ति है। उपर्युक्त विजयों के बाद वापस आते समय उसने हेंन्जेरु तथा निडुगल के चोल शासक इरुंगोल पर विजय प्राप्त की थी।

1128 ई० में विष्णुवर्धन को कदम्ब राज्य पर पुनः आक्रमण करना पड़ा। उसके सेनानायक मसणय के नेतृत्व में होयसल सेना ने हानुंगल के दुर्ग में कदम्बों से भीषण युद्ध किया और सान्तरों तथा गंगों की सहायता से उनके विरुद्ध शानदार विजय प्राप्त की। उसने आलुपों को पराजित कर उन्हें अपना सामन्त बना लिया था। 1131 ई० के श्रवणबेलगोला के एक अभिलेख में उसे तोंड (कांची के आसपास का क्षेत्र) के मांडलिकों के लिए बड़वाग्नि, हानुंगल का अपहर्ता, हूंच का विनाशक और साविमलय को विचलित करने वाला कहा गया है।

विष्णुवर्धन की वर्धमान शक्ति ने उसके अधिपति पश्चिमी चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ का ध्यान आकर्षित किया। यद्यपि विक्रमादित्य काफी वृद्ध हो चुका था, तथापि अपने सेनानायक जगद्देव के साथ कण्णेगल (हसन ज़िले में) नामक स्थान पर उसने होयसल सेना का विरोध किया। होयसल अभिलेखों के अनुसार विष्णुवर्धन तथा उसके सेनापति गंगेय ने रात में विक्रमादित्य की सेना पर आक्रमण कर उसे पीछे खदेड़ दिया। इसके विपरीत चालुक्य अभिलेखों में दावा किया गया है कि विक्रमादित्य ने होयसल शासक को पहाड़ी दर्रों में शरण

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लेने के लिए बाध्य कर दिया और उसके विरुद्ध प्राप्त सफलता के उपलक्ष में **विष्णुवर्धन** का विरुद धारण किया।

उपर्युक्त परस्पर विरोधी विवरणों की समीक्षा करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्ततोगत्वा होयसलों को कम से कम नाममात्रेण पश्चिमी चालुक्यों का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा, यद्यपि उन्हें इस पराजय से कोई क्षेत्रीय हानि नहीं हुई। सिन्दिगेर से प्राप्त 1135 ई० के एक अभिलेख में विष्णुवर्धन को 'चालुक्य सामन्तों में अग्रगण्य' कहा गया है। सोमेश्वर तृतीय के राज्यकाल में उसने चालुक्यों से पुनः युद्ध छेड़ दिया और 1137 ई० में हगल पर अधिकार कर लिया। जगदेकमल्ल द्वितीय के शासनकाल में विष्णुवर्धन गंगवाड़ी, नोलम्बवाड़ी, बनवासी, हगल तथा हुलिगेरे पर शासन कर रहा था।

विष्णुवर्धन ने नीलगिरि की पहाड़ियों से लेकर कृष्णा नदी तक के समस्त भू-भाग को अपने अधीन कर लिया था और उसके साम्राज्य में कोंगु (सलेम ज़िला), कोलार ज़िले का पूर्वी भाग तलकाड (मैसूर ज़िला), गंगवाड़ी, नोलम्बवाड़ी, हनंगल, बनवासी, हुलिगेरे, हलसिगे तथा बेलवोला आदि प्रदेश शामिल थे। 1136 ई० में उसका राज्य एक ओर बंकापुर तक तथा दूसरी ओर तलकाड तक विस्तृत था। अपनी विजयों की स्मृति में उसने बेलूर, गदग, तलकाड, बंकापुर तथा मेलकोटे में से प्रत्येक स्थान पर विजयनारायण के एक मन्दिर का निर्माण कराया। उसी के शासनकाल में तोन्नूर में तिरुमलसागर नामक एक तालाब भी बनाया गया था। उसने बेलूर के स्थान पर हालेविद (द्वारसमुद्र) को राजधानी बनाया। विक्रमादित्य षष्ठ की मृत्यु के उपरान्त इसने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था।

होयसल शासकों में सर्वप्रथम विष्णुवर्धन ने ही सिक्के चलाये। उसके सोने के सिक्कों के अग्रभाग पर शार्दूल (सिंह) की आकृति अंकित है और पृष्ठ भाग पर उसकी तीन उपाधियां उत्कीर्ण हैं—मेलपरोलगंड, श्रीनोलम्बवाडिगोंड तथा तलकाड़गोंड। इनके अतिरिक्त उसे गंडगिरिनाथ, सत्यरत्नाकर, साहसभीम तथा विवेकनारायण के विरुदों से भी विभूषित किया गया है।

उसके राज्यकाल में जैन तथा वैष्णव धर्मों को काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसकी प्रिय रानी सान्तलादेवी की जैन धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा थी और प्रभाचन्द्र उसका गुरु था। विष्णुवर्धन का सेनानायक गगराज तथा उसके कुछ अन्य उच्च पदाधिकारी भी जैनधर्मावलम्बी थे। उसके मन्त्री बोप्प ने श्रवणबेलगोला में एक जैन-मन्दिर, हालेविद मे केशव का मन्दिर और मरले मे सिद्धेश्वर-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के मन्दिर का निर्माण कराया। इन अधिकारियों ने जैन-स्मारकों को काफी दान भी दिए थे। विष्णुवर्धन ने स्वयं भी अनेक जैन-मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। उसके संरक्षित तथा समकालीन जैन आचार्यों में मल्लिसेन एवं प्रभाचन्द्र सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उसी के राज्यकाल में राजेन्द्र नामक एक जैन विद्वान ने कन्नड़ भाषा में क्षेत्रगणित तथा लीलावती नामक ग्रन्थ लिखे थे।

1128 ई० के पश्चात् विष्णुवर्धन सम्भवतः वैष्णव सन्त रामानुज के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म का अनुयाई हो गया था और उसी के शासनकाल में श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का कन्नड़ देश में अभ्युदय हुआ। शैव धर्म का कालामुख सम्प्रदाय भी उसके समय में महत्वपूर्ण हो गया था। 1121 ई० के एक अभिलेख में बतलाया गया है कि विष्णुवर्धन ने चोल राजा द्वारा निर्मित एक शिव-मन्दिर को सान्तलादेवी के नाम से एक ग्राम दान में दिया और उसका नाम सान्तला-ग्राम रखा था। यह ग्राम हसन के निकट स्थित था। विष्णुवर्धन के शासन का अन्त 1142 ई० में हुआ।

नरसिंह प्रथम-विष्णुवर्धन की मृत्यु के समय उसके पुत्र नरसिंह प्रथम की आयु केवल आठ वर्ष थी। विष्णुवर्धन ने अपने शासन के अन्तिम भाग में उसे युवराज नियुक्त कर दिया और उसकी सहायता के लिए एक मन्त्रिपरिषद बना दी थी। नरसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में उसके शत्रुओं के आक्रमणों आदि के कारण होयसल राज्य में अव्यवस्था फैल गई थी। देवगिरि के यादवों ने कर्नाटक के उत्तरी भागों पर अधिकार कर लिया और नोलम्बवाड़ी भी होयसलों के हाथ से निकल गया था।

नरसिंह प्रथम ने श्रवणबेलगोला में गोम्मटेश्वर के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की। 1162 ई० में उसने बेलूर में वीरनारायण के दर्शन किए और पवित्ररोपन नामक धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न किया। उसके समकालीन एवं संरक्षित विद्वानों में केरेययवमरस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने कन्नड़ भाषा में दीक्षाबोध तथा संस्कृत में सानन्दचरित्र नामक ग्रन्थ लिखे। कन्नड़ कवि हरिहर को भी उसका संरक्षण प्राप्त था।

नरसिंह प्रथम विलासी प्रकृति का शासक था। उसका राज्यकाल घटना-पूर्ण नहीं रहा और होयसल वंश की प्रतिष्ठा को काफी क्षति पहुंची। उसने 1152 से 1173 ई० तक शासन किया।

बल्लाल द्वितीय—नरसिंह प्रथम का पुत्र बल्लाल द्वितीय 1173 ई० में राजा हुआ। वह होयसल साम्राज्य का वास्तविक प्रणेता था। उसने कुछ समय तक

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपने पिता के साथ संयुक्त रूप से शासन किया। परन्तु नरसिंह प्रथम के विलासितापूर्ण जीवन से असन्तुष्ट होकर बाद में उसने होयसल राजधानी छोड़ दी। एक सेना संगठित कर उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे अपदस्थ कर 1173 ई० में राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भ में बल्लाल द्वितीय को छंगालवों तथा कोंगालवों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। परन्तु उसने विद्रोहियों का दमन कर राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित कर दी।

1173 ई० के एक अभिलेख में बल्लाल द्वितीय को तुलुव सेना के लिए बड़वाग्नि, पांड्य कुल के लिए वज्र के समान, चोलों की शक्ति को तहस-नहस करने वाला तथा युद्ध में पांडव भीम के समान शक्तिशाली बतलाया गया है। 1175 ई० में उसने कोलतूर को नष्ट किया और 1177 ई०में उच्छंगि पर आक्रमण कर वहां के पांड्य शासक कामदेव को उसके राजकोष आदि के साथ बन्दी बना लिया। उच्छंगि के दुर्भेद्य दुर्ग को अपहृत कर उसने गिरिदुर्गमल्ल का विरुद धारण किया था। बाद में पांड्य शासक ने उसके समक्ष समर्पण कर अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया और बल्लाल द्वितीय का सामन्त बन गया। होयसल शासक ने यह सफलता शनिवार के दिन प्राप्त की थी, इसलिए इसके उपलक्ष मे उसने शनिवारसिद्धि का विरुद धारण किया। 1178 ई० के एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि मल्लिदेव चोल द्वारा शासित क्षेत्र पर होयसलों की प्रभुसत्ता स्थापित हो गई थी।

बल्लाल द्वितीय को नोलम्बों तथा कलचुरियों से काफी संघर्ष करना पड़ा। ये दोनों राजवंश उस समय पश्चिमी चालुक्यों के सामन्त थे। 1179 ई० के एक अभिलेख में कलचुरि शासक शंकरगण (शंकम) ने होयसल सेना को कई बार पराजित करने का दावा किया है। इस पराजय के परिणामस्वरूप बल्लाल को कलचुरियों से सन्धि करनी पड़ी, जिसकी शर्तों के अनुसार उसने कलचुरियों को कल्याणी के चालुक्यों के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया और शंकरगण ने तुंगभद्रा नदी के पूर्वी एवं पश्चिमी प्रदेशों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया। इस पराजय का बल्लाल के राजनैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव हुआ और इसके बाद लगभग दस वर्ष तक (1179-1189 ई०) उसकी सामरिक गतिविधियां काफी सीमित रहीं।

बनवासी, नोलम्बवाड़ी, बीजापुर तथा धारवाड़ जिलों को अधिकृत करने के उपरान्त बल्लाल ने देवगिरि के यादवों पर आक्रमण किया। यह आक्रमण

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यादव शासक भिल्लम पंचम के शासन के अन्तिम वर्षों में हुआ था। हंगल, गुत्ति, रट्टपल्ल एवं एरमवर्ग के दुर्गों को जीतता हुआ बल्लाल कृष्णा नदी तक पहुंच गया था। 1192 ई० के गदग अभिलेख के अनुसार उसने सोरटूर (तुंगभद्रा नदी के निकट गदग से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर स्थित) नामक स्थान पर भिल्लम को पराजित किया था। 1198 ई० के बेलूर अभिलेख में बतलाया गया है कि उसने भिल्लम पंचम के सिर के रक्त से अपनी करवाल को रंजित किया था। परन्तु यादव शासक सम्भवतः युद्ध में मारा नहीं गया। 1212 ई० के अण्णिगेरे के अभिलेख के अनुसार बल्लाल भिल्लम की सेना के लिए बड़वाग्नि के समान था। इस अभिलेख में यह भी वर्णित है कि होयसल शासक ने सेउण सेना का सोरटूर से लेकर लोक्किगुंडि (धारवाड़ ज़िले में) नामक स्थान तक पीछा किया था। 1224 ई० के नरसिंह द्वितीय के राज्यकाल के हरिहर अभिलेख के अनुसार बल्लाल ने भिल्लम की दो लाख पैदल सैनिकों तथा 12 हज़ार घुड़सवारों वाली विशाल सेना का कृष्णा नदी के तट तक पीछा करते हुए उसे तहस-नहस कर डाला था। सोरटूर का संघर्ष बल्लाल तृतीय के राजनैतिक जीवन में दिशापरिवर्तक सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरूप मलप्रभा नदी होयसल तथा यादव राज्यों के बीच सीमा-रेखा बन गई और बल्लाल का बेलवोला प्रदेश पर अधिकार स्थापित हो गया। परन्तु 1215 ई० के आस-पास यादव शासक सिंहण द्वितीय ने इसे पुनः अधिकृत कर लिया और इस प्रकार होयसल राज्य की उत्तरी सीमा शिमोगा ज़िले के दक्षिणी भाग तक ही सीमित रह गई थी।

वीरबल्लाल द्वितीय ने गदग के वीरनारायण एवं त्रिपटेश्वर के मन्दिरों को उदारतापूर्वक दान दिए। 1202 तथा 1204 ई० के बीच उसने कदम्ब शासक कामदेव को पराजित किया और तमिल राज्य के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। एरमबर्ग के सिन्द वंशीय शासक कल्याणी के चालुक्यों के सामन्त थे। बल्लाल को सिन्दों से कई बार युद्ध करना पड़ा और 1199 ई० के लगभग उसने उन्हें अपना अधीनस्थ बना लिया। सिन्द शासकों से हुए संघर्षों में बल्लाल की रानी उमावती ने भी सक्रिय भाग लिया था। परन्तु बाद में उन्होंने पुनः विद्रोह कर दिया और होयसलों के प्रतिद्वन्दी देवगिरि के यादवों की सहायता प्राप्त कर सिन्द शासक ईश्वरदेव तृतीय ने 1215 तथा 1218 ई० के बीच बल्लाल के कई आक्रमणों को विफल कर दिया था। इसके उपरान्त सिन्द सिंहण के सामन्त बन गये थे। उस समय सोमेश्वर चतुर्थ के दुर्बल शासनकाल में कल्याणी के

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चालुक्य पतनावस्था में थे। इसलिए बल्लाल ने चालुक्य राज्य पर आक्रमण कर सोरटूर में सोमेश्वर को पराजित कर दिया और बेलवा क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। 1192-93 ई० मे उसने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और महाराजाधिराज, परमभट्टारक, राजपरमेश्वर, दक्षिणदेशाधीश्वर, यादवचक्रवर्ती तथा प्रतापचक्रवर्ती की उपाधियां धारण कीं। अपने स्वतन्त्र राज्य के प्रारम्भ होने के उपलक्ष में 1193 ई० में बल्लाल ने एक नया संवत् भी चलाया और उसी वर्ष लोक्किगुंडि को अस्थाई राजधानी बना दिया।

1207 ई० में बल्लाल ने चोलों से मित्रता की। उसने कुलोत्तुंग तृतीय के साथ अपनी पुत्री सोमला का विवाह कर दिया और स्वयं चोलमहादेवी नामक चोल राजकुमारी से विवाह किया। अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के पश्चात् बल्लाल ने चोल राजनीति में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय शम्बुरायनों तथा कडुम्बों ने चोलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और मारवर्मन सुन्दरपांड्य ने कुलोत्तुंग तृतीय को पराजित कर उसे अपना अधीनस्थ बना लिया था। परन्तु बल्लाल ने पांड्यों पर विजय प्राप्त कर अपने चोल अधिपति को उनके प्रभुत्व से मुक्त कर दिया। इस सफलता के उपलक्ष में उसने चोलराज्यप्रतिष्ठाचार्य तथा पांड्यगजकेशरि के विरुद्ध धारण किए। उसके पुत्र नरसिंह द्वितीय को चोलकुलैकरक्षक तथा पांड्यकुलखंडन कहा गया है।

बल्लाल द्वितीय को हिमालय से लेकर रामेश्वरम् तक के चक्रवर्ती क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का श्रेय दिया गया है जो स्पष्टतः अतिशयोक्ति है। वास्तव में वह होयसलनाडु तथा कृष्णा नदी के मध्यवर्ती भू-भाग का अधिपति हो गया था। उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी और उसने साहित्यिक गतिविधियों को उदार संरक्षण प्रदान किया। उसी के राज्यकाल में जोन्न ने यशोधरचरित, रुद्रभट्ट ने जगन्नाथविजय और नेमिनाथ ने लीलावतीप्रबन्ध एवं नेमिनाथपुराण की रचना की थी। बल्लाल द्वितीय के शासन का अन्त 1220 तथा 1223 ई० के बीच किसी समय हुआ।

नरसिंह द्वितीय—बल्लाल द्वितीय ने अपने राज्यकाल में ही अपने पुत्र नरसिंह द्वितीय को युवराज नियुक्त कर किया था और युवराज की हैसियत से उसने 1217-18 ई० में चोलों की ओर से पांड्यों पर विजय प्राप्त की थी। बल्लाल की मृत्यु के पश्चात् वह 1220 ई० के लगभग राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। नरसिंह द्वितीय के राज्यकाल में होयसलों, चोलों की राजनीति में बहुत सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करने लगे थे।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होयसलों के प्रमुख प्रतिद्वन्दी देवगिरि के यादव थे। इसलिए राज्यारोहण के उपरान्त नरसिंहदेव द्वितीय ने सर्वप्रथम यादवों पर ही आक्रमण किया। इस अभियान के परिणाम के विषय में हेमाद्रि के व्रतखंड एवं होयसल अभिलेखों के विवरण परस्पर विरोधी हैं। हेमाद्रि के अनुसार यादव शासक रामचन्द्र ने नरसिंह द्वितीय को पराजित कर दिया था। इसके विपरीत होयसल अभिलेखों में बतलाया गया है कि यादव महादेव हाथी पर सवार होकर नरसिंह से युद्ध करने के लिए युद्धस्थल पर पहुंचा। परन्तु वह होयसल सेना के समक्ष टिक न सका और घोड़े पर सवार होकर रात्रि के अन्धकार में युद्ध के मैदान से भाग गया। ए० एस० अल्तेकर ने होयसल अभिलेखों के इस विवरण को प्रमाणिक माना है। उनके अनुसार नरसिंह द्वितीय ने महादेव के विरुद्ध निर्णायक सफलता प्राप्त की और वर्तमान धारवाड़ जिले पर उसकी अधिसत्ता स्थापित हो गई थी। परन्तु टी०के० रवीन्द्रन तथा एन० सुब्रमण्यम आदि के अनुसार यादवों से हुए संघर्ष के फलस्वरुप नरसिंह द्वितीय ने कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के बीच का क्षेत्र 1224 ई० के लगभग खो दिया था।

चोलों एवं पांड्यों के पारस्परिक संघर्षों ने नरसिंह द्वितीय को चोल राजनीति में हस्तक्षेप करने के लिए सुअवसर प्रदान किया। बल्लाल द्वितीय ने एक चोल राजकुमारी के साथ विवाह किया और सम्भवतः अपनी एक पुत्री का विवाह चोल कुलोत्तुंग तृतीय के साथ किया था। कुलोत्तुंग की होयसल वंशीय रानी अपने पिता के परिवार से विशेष लगाव रखती थी और कुलोत्तुंग की मृत्यु के बाद उसने अपने भाई नरसिंह द्वितीय को सक्रिय सहायता प्रदान की। नरसिंह ने भी अपनी एक पुत्री का विवाह कुलोत्तुंग तृतीय के पुत्र राजराज तृतीय के साथ कर दिया था। इस प्रकार होयसल चोलों के निकट सम्बन्धी हो गए और उन्होंने संकटकाल में चोलों की हर प्रकार से सहायता की।

मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम ने चोल राजराज तृतीय को पराजित कर तंजोर तथा उरैयूर को भस्मसात कर दिया था। इसी दौरान में राजराज के विद्रोही सामन्त कोप्पेरुंजिंग ने कांची तथा कडुलोर के आस-पास के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और राजराज को पराजित कर बन्दी बना लिया था। इस विषम परिस्थिति में नरसिंह द्वितीय ने चोलों की ओर से मारवर्मन सुन्दरपांड्य प्रथम को कावेरी के तट पर महेन्द्रमंगलम् नामक स्थान पर पराजित कर दिया। गद्यकर्णामृत के अनुसार पांड्यों को पराजित करने के उपरान्त नरसिंह ने उनकी काफी-सम्पत्ति अपहृत की और चोल साम्राज्य के महत्वपूर्ण प्रान्त कण्णनूर को

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अधिकृत कर अपने पुत्र सोमेश्वर को वहां का शासक नियुक्त कर दिया।

चोलों के उपर्युक्त शत्रुओं का दमन करने के लिए नरसिंह द्वितीय द्वारसमुद्र से रवाना हुआ और कोलार के निकट पहुंचा। उसने मू (Mu) नामक एक शासक को हराया और वर्तमान सलेम जिले में शम्बुरायन को पराजित करने के बाद शेन्दमंगलम् को घेर लिया। नरसिंह ने अमृतैय्या और समुद्रगोपय्या नामक सेनानायकों को कोप्पेरुंजिग का दमन करने के लिए भेजा। इन सेनापतियों ने कोप्पेरुंजिग को हराकर उसके सम्पूर्ण राजकोष पर अधिकार कर लिया।

1231 ई० में नरसिंह ने राजराज तृतीय को चोल-राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। जर्जरित चोल साम्राज्य के विघटन को रोकने एवं वहां व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से उसने कावेरी नदी के तट पर स्थित कण्णनूर को अपनी उपराजधानी बनाया।

नरसिंह ने कलचुरि शासक बिज्जण को पराजित किया और सौन्दत्ति के रट्टों से भी युद्ध किया। 1220-21 ई० के लगभग उसने बाणों तथा कदम्बों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की और तमिल देश पर भी आक्रमण किया।

एक महान विजेता के अतिरिक्त नरसिंहदेव द्वितीय स्वयं साहित्यकार और विद्वानों का संरक्षक था। उसने सर्वज्ञ तथा साहित्यरत्नाकर के विरुद धारण किए और संस्कृत एवं कन्नड़ भाषाओं को संरक्षण प्रदान किया। उसके संरक्षित विद्वानों में विद्याचक्रवर्ति सर्वाधिक प्रसिद्ध था। दंडी के काव्यादर्श की टीका का लेखक तरुणवाचस्पति भी उसका समकालीन था। उसके राज्यकाल के कन्नड़ विद्वानों में पोलव, दंडनाथ, कविनागदेव, श्रीविजय एवं दशकीर्तिदेव उल्लेखनीय हैं।

नरसिंह द्वितीय ने कला को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। उसी के राज्यकाल में बेलूर में हरिहर मन्दिर, हेग्गेरे में मूलसंगमेश्वर का मन्दिर, बेसराल (Besral) में कल्लेश्वर एवं गलेश्वर के मन्दिर, भद्रवती में मल्लिकार्जुन मन्दिर तथा कुछ अन्य स्मारकों का भी निर्माण हुआ। नरसिंह ने लगभग 1235 ई० तक शासन किया।

सोमेश्वर (सोविदेव)—नरसिंह द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर 1234-35 ई० में राजा हुआ। वह मुख्यतः चोल राजनीति में ही उलझा रहा। चोलों को सक्रिय सहायता देने के उद्देश्य से 1239 ई० में उसने कण्णनूर (श्रीरंगम् से लगभग 7 किलोमीटर दूर) को राजधानी बनाया और इसका नाम विक्रमपुर रखा। वह अपनी राजधानी हालेविद में बहुत कम समय दे पाता

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था। उसने प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने पुत्र नरसिंह तृतीय एवं रामनाथ को दे दिया था। इस उपेक्षा के परिणामस्वरूप होयसल राज्य की उत्तरी सीमा की समुचित सुरक्षा नहीं हो सकी और होयसलों के शत्रुओं ने, विशेषरूप से यादवों ने, होयसल राज्य को भारी क्षति पहुंचाई थी। यादव शासक कृष्ण ने तुंगभद्रा नदी को पारकर होयसल राज्य पर आक्रमण कर वर्तमान चित्तलदुर्ग जिले के कुछ भू-भाग पर अधिकार कर लिया। सोमेश्वर के राज्यकाल में ही काकतीय गणपति तथा उसकी पुत्री रुद्राम्बा ने तेलुगू प्रदेश को अधिकृत कर लिया था।

चोलों की सुरक्षा के लिए सोमेश्वर ने उनके शत्रु तेलुगूचोड तिक्क, मारवर्मन सुन्दरपांड्य एवं जटावर्मन सुन्दरपांड्य के विरुद्ध कई सफल अभियान किए, परन्तु चोल राजेन्द्र तृतीय के राज्यकाल में चोलों एवं होयसलों के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध टूट गए। कण्णनूर में होयसलों की उपस्थिति एवं प्रभुत्व के दुष्परिणामों को समझते हुए राजेन्द्र तृतीय ने उनसे अपनी मित्रता समाप्त करना ही हितकर समझा और अन्य मित्र राजाओं तथा सामन्तों आदि की सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। इस नवीन राजनैतिक परिस्थिति के उपस्थित होने पर सोमेश्वर ने भी होयसलों के प्रति अपना रुख बदल दिया और जब राजेन्द्र तृतीय ने पांड्यों पर आक्रमण किया, तो होयसल शासक ने उनकी सहायता की। कर्नाटक से प्राप्त कुछ अभिलेखों में सोमेश्वर को पांड्यकुलसंरक्षणदक्षदक्षिणभुजा की उपाधि दी गई है। इस प्रकार सोमेश्वर के सहयोग के कारण राजेन्द्र तृतीय का पांड्य राज्य पर आक्रमण विफल हो गया।

परन्तु सोमेश्वर की पांड्यों से मित्रता स्थाई नहीं रह सकी। 1251 ई० में पांड्य राजसिंहासन पर जटावर्मन सुन्दरपांड्य प्रतिष्ठित हुआ। वह महत्वाकांक्षी शासक था और उसकी साम्राज्यवादी नीति ने होयसलों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर दिया था। 1254 ई० में जटावर्मन सुन्दरपांड्य ने सोमेश्वर को पराजित कर मार डाला और कण्णनूर, श्रीरंगम् तथा कावेरी की घाटी के अन्य कई दुर्गों एवं क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उसने होयसल सेना के बहुत से हाथी, घोड़े एवं सम्पत्ति भी अपहृत कर ली थी। देवगिरि के यादवों ने भी सोमेश्वर को पराजित किया था।

सोमेश्वर की दो रानियों से दो पुत्र उत्पन्न हुऐ थे—नरसिंह तृतीय और रामनाथ। इन दोनों के बीच उत्तराधिकार के लिए संघर्ष की सम्भावना को समाप्त करने के उद्देश्य से उसने अपने जीवनकाल में ही होयसल राज्य का विभाजन कर कर्नाटक प्रदेश ज्येष्ठ पुत्र नरसिंह तृतीय को दे दिया और रामनाथ

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को तमिलनाडु का शासक नियुक्त कर दिया। द्वारसमुद्र नरसिंह की राजधानी थी और कण्णनूर रामनाथ की[1]। 1254 ई०[2] में सोमेश्वर की मृत्यु हो गई।

नरसिंह तृतीय और रामनाथ—नरसिंह तृतीय 1254 ई० में राजा हुआ। उसका सौतेला भाई रामनाथ होयसल राज्य के उपर्युक्त विभाजन से सन्तुष्ठ नहीं था। इसलिए वह कर्नाटक पर निरन्तर आक्रमण करता रहा। 1279 ई० के आस-पास मारवर्मन कुलशेखरपांड्य ने कण्णनूर पर अधिकार कर रामनाथ को वहां से खदेड़ दिया था और उसे पांड्यों का करदीकृत सामन्त बनना पड़ा। इसी रूप में उसने 1264 से 1274 ई० तक शासन किया। कण्णनूर से अपदस्थ होने के उपरान्त रामनाथ ने होयसलनाडु के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उसके अभिलेख तंजोर तथा तिरुचिरापल्ली जिलों में प्राप्त हुए हैं। इस गृह-युद्ध से होयसलों की शक्ति काफी क्षीर्ण हो गई थी। यद्यपि नरसिंह तृतीय विभाजित होयसल राज्य को पुनः एकता के सूत्र में बांधने का निरन्तर प्रयास करता रहा, परन्तु उसे इस प्रयत्न में कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली।

अलाउद्दीन का अधीनस्थ मित्र बनने के बाद यादव रामचन्द्र ने बल्लाल से संघर्ष छेड़ दिया। 1301 ई० में उसके सेनानायक येचरनायक ने होयसलों के सान्तर वंशीय सामन्त शासक से नेलगेरि में युद्ध किया और 1302 ई० में बल्लाल के सेनापति सोडलदेव पर आक्रमण किया। 1303 ई० में होल्लकेरे में रामचन्द्र के मित्र कम्पिलदेव ने होयसल सेनापति सोमेयदडनायक को मार दिया।

होयसलों के प्रमुख शत्रु देवगिरि के यादव थे और यादव शासक महादेव तथा रामचन्द्र ने नरसिंह तृतीय के राज्य पर कई आक्रमण किए, किन्तु उनका होयसल राज्य पर कोई स्थाई प्रभाव नहीं हुआ। नरसिंह ने 1291 ई० तक शासन किया।

बल्लाल तृतीय—नरसिंह तृतीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बल्लाल तृतीय 1291 ई० में राजा हुआ। उसके राज्यकाल में द्वारसमुद्र तथा हालेविद के अतिरिक्त कण्णनूर एवं बंकापुर भी होयसलों की राजधानियां थीं। 1292 ई० में नरसिंह के छोटे भाई रामनाथ ने वर्तमान बंगलोर जिले के दक्षिणी भाग पर तथा 1295 ई० में कुणिगल पर आक्रमण किए। किन्तु बल्लाल ने उसे पराजित

1. नन्दिमथ के अनुसार यह विभाजन केवल प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से किया गया था (Karnataka through the Ages, p. 398)।
2. कुछ विद्वानों ने सोमेश्वर की मृत्यु की तिथि 1263 ई० मानी है। (Struggle for Empire, p. 231)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर दिया। इस घटना के कुछ ही समय बाद रामनाथ की मृत्यु हो गई। रामनाथ का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विश्वनाथ बहुत थोड़े समय तक शासन कर सका और 1297-98 ई० में वह सम्भवतः मारा गया। 1301 ई० में बल्लाल ने विभाजित होयसल राज्य का पुनःएकीकरण कर दिया। बल्लाल तृतीय के शासनकाल में सम्पूर्ण दक्षिण भारत बहुत बड़े राजनैतिक संकट से गुजर रहा था।

1303 ई० में बल्लाल ने तुलुव पर विजय प्राप्त की। इसी वर्ष उसने सेनापति गंगेयसाहणि के नेतृत्व में देवगिरि के यादवों पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजी। सिरिसि नामक स्थान पर प्रतिद्वन्दी सेनाओं की मुठभेड़ हुई जिसमें यादव रामचन्द्र पराजित हुआ। इस विजय के परिणामस्वरूप 1305 ई० तक होयसलों का प्रभुत्व शिमोगा, बनवासी, सान्तलिगे तथा कोगलि क्षेत्रों पर बना रहा। 1305 ई० में ही अथवा इसके कुछ पहले बल्लाल ने नक्किगुंडि पर भी अधिकार कर लिया था। इस स्थान का समीकरण नहीं किया जा सका है। इसी समय के लगभग उसने नेल्लोर के तेलुगू चोडों तथा काडव वंशीय शासक को भी सन्त्रस्त किया था।

कुलशेखरपांड्य की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र वीरपांड्य तथा सुन्दरपांड्य में गृह-युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप पांड्यों की शक्ति जर्जरित हो गई थी। इस विषम राजनैतिक स्थिति में बल्लाल ने पांड्यों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पराजित कर किंग, मुग्दय तथा होंडयनाड पर अधिकार कर लिया। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त कांची एवं तिरुवनमलय को भी जीत कर उसने कांची को उपराजधानी बनाया। परन्तु इन नगरों को वह अन्त तक अपने अधीन नहीं रख सका। उपर्युक्त विजयों के उपरान्त बल्लाल सुदूर दक्षिण में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हो गया था।

1310 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने सेनानायक मलिककाफूर के नेतृत्व में द्वारसमुद्र तथा मावर पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजी। मलिककाफूर पहले खिलजी सम्राट के अधीनस्थ मित्र यादव शासक रामचन्द्र की राजधानी देवगिरि पहुंचा। रामचन्द्र ने उसे अपने प्रतिद्वन्दी बल्लाल तृतीय के विरुद्ध हर प्रकार की सहायता प्रदान की। मलिककाफूर को सैनिक सहायता देने के अतिरिक्त उसने खिलजी सेना के साथ अपने पुत्र परशुराम को मार्गदर्शन आदि के लिए भेजा था। अत्यधिक तीव्रगति से बढ़ती हुई मुस्लिम सेना 12 फरवरी 1311 ई० में द्वारसमुद्र पहुंच गई। अमीर खुसरो के अनुसार उस समय बल्लाल तृतीय सुन्दरपांड्य, को उसके भाई वीरपांड्य के विरुद्ध सहायता देने के लिए जा रहा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

था। जब वह कण्णनूर की ओर बढ़ रहा था, तभी उसे ज्ञात हुआ कि मुस्लिम सेना ने द्वारसमुद्र को घेर लिया है। खुसरो के अनुसार उसने (बिना युद्ध किए ही) अपना समस्त राजकोष आदि समर्पित कर मलिककाफ़ूर के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। दूसरी ओर खुसरो ने यह भी लिखा है कि 15 दिन तक आक्रामक सेना का सामना करने के पश्चात् बल्लाल को बिना किसी शर्त के समर्पण करना पड़ा। इस प्रकार खुसरो के उपर्युक्त दोनों कथनों में सामन्जस्य नहीं है। अधिक सम्भावना यही है कि बल्लाल ने पराजित होने के बाद समर्पण किया होगा। 12 दिन तक द्वारसमुद्र एवं कण्णनूर आदि नगरों में लूट-पाट कर तथा वहां के स्मारकों का विध्वंश करने के उपरान्त, खिलजी सेना वापस चली गई और बल्लाल को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। इसामी के अनुसार होयसल शासक ने मलिककाफूर से एक समझौता किया और काफूर ने उसे पांड्यों के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया था। बल्लाल खिलजी सेना के साथ मावर गया, परन्तु पांड्य शासक पहले ही अपनी राजधानी छोड़कर भाग गए थे। अतएव यह संयुक्त अभियान विफल रहा। मुस्लिम इतिहासकारों ने वास्तव में उपर्युक्त अभियान का स्पष्ट ब्योरा नहीं दिया है और उनके विवरण परस्पर विरोधी भी हैं।

इसामी ने यह भी लिखा है कि दिल्ली पहुंचने पर अलाउद्दीन ने बल्लाल को शाही वस्त्र आदि देकर सम्मानित किया और एक शाही छत्र के अतिरिक्त दस लाख टंक देकर उसे वापस भेज दिया। डैरेट ने इसामी का उपर्युक्त विवरण पूर्णतया प्रमाणिक नहीं माना है। तथ्य कुछ भी हो, मार्च 1313 ई० के उपरान्त बल्लाल को अपने राज्य में वापस भेज दिया गया था। बल्लाल के राज्यकाल के 1311 ई० के तीन अभिलेखों में तुर्कों द्वारा द्वारसमुद्र पर किए गए आक्रमण का वर्णन है। यह भी उल्लेखनीय कि 1311 तथा 1313 ई०के बीच के अन्तराल के बल्लाल के अभिलेखों में उसे कोई राजकीय उपाधि नहीं दी गई है और इन तिथियों के आस-पास उसके सामन्तों एवं दंडनायकों के अभिलेख उसके अभिलेखों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं। ये सामन्त नाममात्र के लिए ही उसकी अधीनता स्वीकार कर रहे थे। इस प्रकार उपर्युक्त अन्तराल में होयसलों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को काफी क्षति पहुंची थी। परन्तु जब अलाउद्दीन की मृत्यु के समय दिल्ली में राजनैतिक अस्थिरता एवं उथल-पुथल होने लगी, सम्भवतः उसी दौरान में बल्लाल ने भी अपनी स्थिति में सुधार किया। उसने

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपनी राजधानी का जीर्णोद्धार कराया[1] और 1315 ई० में वह पुनः विष्णुवर्धन के विरुद का प्रयोग करने लगा। 1316 ई० में वह शान्तिपूर्वक राज्य कर रहा था। 1313 ई० के लगभग उसने तुलुव क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और इसे अपने शासन के अन्त तक अपने अधीन रखा।

मुहम्मद तुगलक के भतीजे बहाउद्दीनगुरुशास्प ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। उसका दमन करने के लिए जब सुल्तान ने दिल्ली से सेना भेजी, तो बहाउद्दीन ने कम्पिलि के यादव शासक के यहां शरण ली। परन्तु अपनी कठिनाइयों के कारण कम्पिलि के राजा ने उसे वीर बल्लाल के पास भेज दिया। होयसल शासक ने भी उसे शरण देना उचित नहीं समझा और गुरुशास्प को मुहम्मद तुगलक के हवाले कर दिया। तुगलक सुल्तान ने गुरुशास्प को जिन्दा जलवाकर उसकी खाल में भूसा भरवा दिया। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार बल्लाल ने मुहम्मद तुगलक की अधिसत्ता मानने का भी आश्वासन दिया था जिससे सन्तुष्ट होकर मलिकज़ादा होयसल राज्य पर बिना आक्रमण किए ही वापस चला गया। 1320 ई० में बल्लाल तृतीय ने अपने सान्तर वंशीय सामन्त के साथ कम्पिलिदेव के विरुद्ध अभियान किया, और दोरवाड़ी (बेल्लारी तालुक में स्थित) नामक स्थान पर उसे पराजित कर पेनुगोंडा पर अधिकार कर लिया।

कुछ साक्ष्यों के अनुसार मुस्लिम सेना ने 1327 ई० में होयसल राजधानी को तहस-नहस कर डाला था, और बरनी ने लिखा है कि 1327 ई०के आसपास द्वारसमुद्र को दिल्ली सल्तनत के 23 प्रान्तों में शामिल किया जाने लगा था। परन्तु बरनी के इस कथन की पुष्टि इब्नबतूता अथवा अन्य किसी मुस्लिम इतिहासकार ने नहीं की है। इसके अतिरिक्त 1328 ई० के एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उस समय बल्लाल स्वतन्त्र रुप से शासन कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम आक्रमण के समय उसने या तो बिना युद्ध किए ही, अथवा पराजित होकर समर्पण कर दिया होगा और आक्रमणकारी के चले जाने के उपरान्त पुनः स्वतन्त्रता घोषित कर दी।

14 वीं शताब्दी के चतुर्थ दशक के प्रारम्भ में तुगलक साम्राज्य संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रहा था और उसकी एकता खतरे में पड़ गई थी। मावर के गवर्नर जलालुद्दीन अहसनशाह ने अपने अधिपति तुगलक सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसके कुछ सेनानायकों आदि को परास्त करने के उपरान्त स्वतन्त्रता

1. डैरेट के अनुसार द्वारसमुद्र को मुस्लिम सेना ने तहस-नहस नहीं किया था।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

घोषित कर दी। 1333-34 ई० में उसने मदुरा में अपने नाम से सोने तथा चांदी के सिक्के भी जारी किए। मुहम्मद-बिन तुगलक ने इस विद्रोह को दबाने का प्रयास किया, किन्तु उस समय महामारी फैली हुई थी जिससे उसकी सेना को काफी क्षति पहुंची और वह स्वयं भी इसकी लपेट में आ गया। अतः उसे वापस लौटना पड़ा। उसी दौरान में उसकी मृत्यु की झूठी अफवाह भी उड़ा दी गई जिससे विद्रोहियों का मनोबल ऊंचा हो गया। बल्लाल तृतीय इस स्थिति से काफी लाभान्वित हुआ और वह पुनः दक्षिण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हो गया।

बल्लाल तृतीय ने प्रोलनायक के चचेरे भाई कम्पय से सन्धि की और अपने साम्राज्य की उत्तरी सीमा को यादवों के आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए काफी तैयारियां कीं। उसने कापयनायक को तेलगान में मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष में सहायता प्रदान की। वारंगल का गवर्नर मलिक मकबूल पराजित हुआ और वहां से भागकर देवगिरि होता हुआ दिल्ली पहुंचा। इस प्रकार 1336 ई० में तेलंगान मुस्लिम प्रभुत्व से मुक्त हो गया।

1331 ई० के आस-पास जब हिन्दू शासक मुस्लिम सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे, उसी बीच बल्लाल तृतीय ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी और कम्पिलि पर आक्रमण कर दिया। परन्तु मलिक मुहम्मद उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका। इतिहासकार नूनिज ने लिखा है कि बल्लाल ने सुल्तान को स्पष्ट शब्दों में बतला दिया था कि अब कोई भी हिन्दू शासक उसका प्रभुत्व मानने के लिए तैयार नहीं है।

कापय तथा बल्लाल ने मिलकर तोंडमंडलम् पर भी आक्रमण किया और वहां के दुर्गों में तैनात मुस्लिम सेना को पराजित कर खदेड़ दिया। इसके उपरान्त शाम्बुरायन वंशीय शासक को तोंडमंडलम् के प्रशासन का उत्तरदायित्व दे दिया।

गुत्ती तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्र में विजयनगर राज्य के संस्थापक हरिहर ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। बल्लाल तृतीय के साम्राज्य की पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमायें हरिहर के राज्य को स्पर्श करने लगी थीं, इसलिए दोनों में उनके राज्यों के सीमावर्ती क्षेत्रों में कई बार छुट-पुट युद्ध हुए। बल्लाल वस्तुतः तमिल देश की राजनीति में अधिक उलझा रहा। तोंडमंडलम् तथा कांची में अपना अप्रत्यक्ष प्रभुत्व स्थापित करने के उपरान्त उसने मदुरा के सुल्तान से संघर्ष छेड़ दिया जिसमें उसकी सारी शक्ति लगी रही। अतएव वह हरिहर की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गतिविधियों को रोकने के लिए बहुत कारगर कदम नहीं उठा सका जिसके परिणामस्वरूप उसे अपने राज्य के पूर्वी सीमान्त के कुछ क्षेत्र खो देने पड़े। हरिहर को पहले होयसलों के विरुद्ध कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली। बाद में उसने अपने भाई बुक्का के साथ सन्त विद्यारण्य के प्रभाव में आकर इस्लाम धर्म त्याग दिया और पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। इस धर्म-परिवर्तन से उसकी स्थिति एवं प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हुई और उसने बल्लाल तृतीय को पराजित कर दिया।

1340 ई० में जलालुद्दीन अहसनशाह की हत्या के उपरान्त अलाउद्दीन उदैजी मावर का सुल्तान बना। उसने बल्लाल तृतीय के राज्य पर आक्रमण करने की योजना बनाई। होयसल शासक ने 1340 ई० में तिरुवनमलय को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। 1341 ई० में उदैजी ने उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुस्लिम सेना विजय प्राप्त कर रही थी, परन्तु उदैजी ने पानी पीने के लिए जैसे ही अपने सिर का कवच (helmet) उतारा, उसी समय अचानक उसके एक तीर लगा और युद्धस्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। इसका परिणाम बल्लाल के पक्ष में हुआ और उसकी पराजय विजय में बदल गई। इसके पश्चात् मृत सुल्तान का दामाद गियासुद्दीन दामधानि मदुरा का शासक बना।

1342 ई० में बल्लाल तृतीय ने उर्यूर पर अधिकार कर लिया। इब्न-बतूता लिखता है कि कण्णनूर में मुस्लिम आधिपत्य को समाप्त करने के लिए उसने काफी तैयारियां कीं और एक लाख सैनिकों वाली हिन्दू सेना तथा 20 हज़ार वेतनभोगी मुस्लिम सैनिकों को संगठित किया। इसके बाद उसने कण्णनूर पर आक्रमण कर उसके दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। यह घेरा दस महीने तक (कुछ के अनुसार 6 महीने तक) चलता रहा। मुस्लिम सेना की रसद आदि समाप्त होने के करीब आ गई। तदुपरान्त मुस्लिम सेनानायकों ने सन्धि-वार्ता प्रारम्भ की। उन्होंने समपर्ण की शर्तों के विषय में मदुरा के सुल्तान से बात-चीत करने का बहाना बनाकर बल्लाल तृतीय से वहां से जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। चंगुल में फंसे हुए शत्रुओं को निकल जाने का अवसर देकर होयसल शासक ने बहुत बड़ी अदूरदर्शिता दिखलाई जिसका परिणाम उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। गियासुद्दीन चार हजार चुने हुए सैनिकों के साथ मावर से शीघ्र ही वापस आ गया और उसने बल्लाल तृतीय पर अचानक आक्रमण कर दिया। वह उस समय लड़ने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था और उसकी सेना में भग-दड़ मच गई। वह स्वयं भी तिरुचिरापल्ली के निकट बन्दी बना लिया गया और

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सुल्तान के सामने प्रस्तुत किया गया। पहले तो सुल्तान ने उसे छोड़ देने के बहाने उसकी समस्त सम्पत्ति, हाथी तथा घोड़े आदि ले लिए। बाद में उसे जिन्दा जलवाकर उसकी खाल में भूसा भरवा दिया और मदुरा की बाहरी नगर-दीवार पर टांग दिया गया। इब्नबतूता ने बल्लाल को इसी स्थिति में लटका हुआ स्वयं देखा था। यह दुखद घटना 1342 ई०[1] की है।

बल्लाल तृतीय होयसल वंश का अन्तिम महान शासक था। उसने आलुप वंशीय सोविदेव की पुत्री के साथ विवाह किया। आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार उसी ने सम्भवतः विजयनगर तथा अनेगुंडी नगरों का निर्माण कराया था। बल्लाल ने कई अवसरों पर एक महान सेनानायक तथा देशभक्त शासक होने का प्रमाण दिया और वृद्धावस्था तक वह मातृभूमि की सुरक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करता रहा। मुस्लिम अधिसत्ता समाप्त करने के लिए उसने कई हिन्दू राजाओं को सक्रिय सहयोग दिया और स्वयं संघर्ष करते हुए अपने जीवन का बलिदान कर दिया। इस प्रकार वह न केवल होयसल वंश में, वरन् सम्पूर्ण दक्षिण भारत के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। वह जिस कार्य को अधूरा छोड़ गया था, बाद में उसे विजयनगर के शासकों ने पूरा किया।

बल्लाल चतुर्थ–बल्लाल तृतीय का पुत्र बल्लाल चतुर्थ 1342 43 ई०[2] में राजा हुआ। वह उस समय की विषम राजनैतिक परिस्थितियों का सामना करने के लिए अक्षम सिद्ध हुआ। 1340 ई० में ही विजयनगर का शासक हरिहर होयसलनाड को जीतने के लिए प्रयत्नशील हो गया था, और मार्च 1344 ई० तक उसने कर्नाटक के काफी बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था। बल्लाल चतुर्थ के दंडनायक बल्लप्प तथा अन्य कई उच्च पदाधिकारियों ने भी उदीयमान विजयनगर साम्राज्य की अधिसत्ता स्वीकार कर ली। इसलिए जब हरिहर ने बल्लाल चतुर्थ पर आक्रमण किया, तो वह उसके समक्ष टिक न सका और अपना राज्य छोड़कर भाग गया। यह घटना बल्लाल के राजा होने के तीन महीने बाद

---

1. सी० एच० राव के अनुसार बल्लाल तृतीय 8 सितम्बर, 1342 ई० में बेरिली (Berili) नामक स्थान पर मारा गया था। डैरेट के अनुसार उसकी मृत्यु 1343 ई० में मई तथा अगस्त माह के बीच किसी समय हुई थी।
2. एन० वेंकटरमनैय्या के अनुसार उसका राज्याभिषेक जून, 1343 ई० में हुआ था (Delhi Sultanat p. 275)।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की बतलाई गई है। इसामी ने लिखा है कि 1348 ई० में अलाउद्दीन हसनगंगू के आक्रमण के समय बल्लाल पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित एक बन्दरगाह में ठहरा हुआ था। यह क्षेत्र सम्भवतः कदम्बों के अधीन था। एन० वेंकटरमनैय्या ने इस बल्लाल का समीकरण बल्लाल चतुर्थ से किया है, जो सही प्रतीत होता है। वह कदाचित् मुस्लिम सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया। उसका अन्तिम अभिलेख 1346 ई० का है। बल्लाल चतुर्थ की मृत्यु के साथ ही होयसल राजवंश का अन्त हो गया।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वंशानुक्रम एवं तिथिक्रम[1]

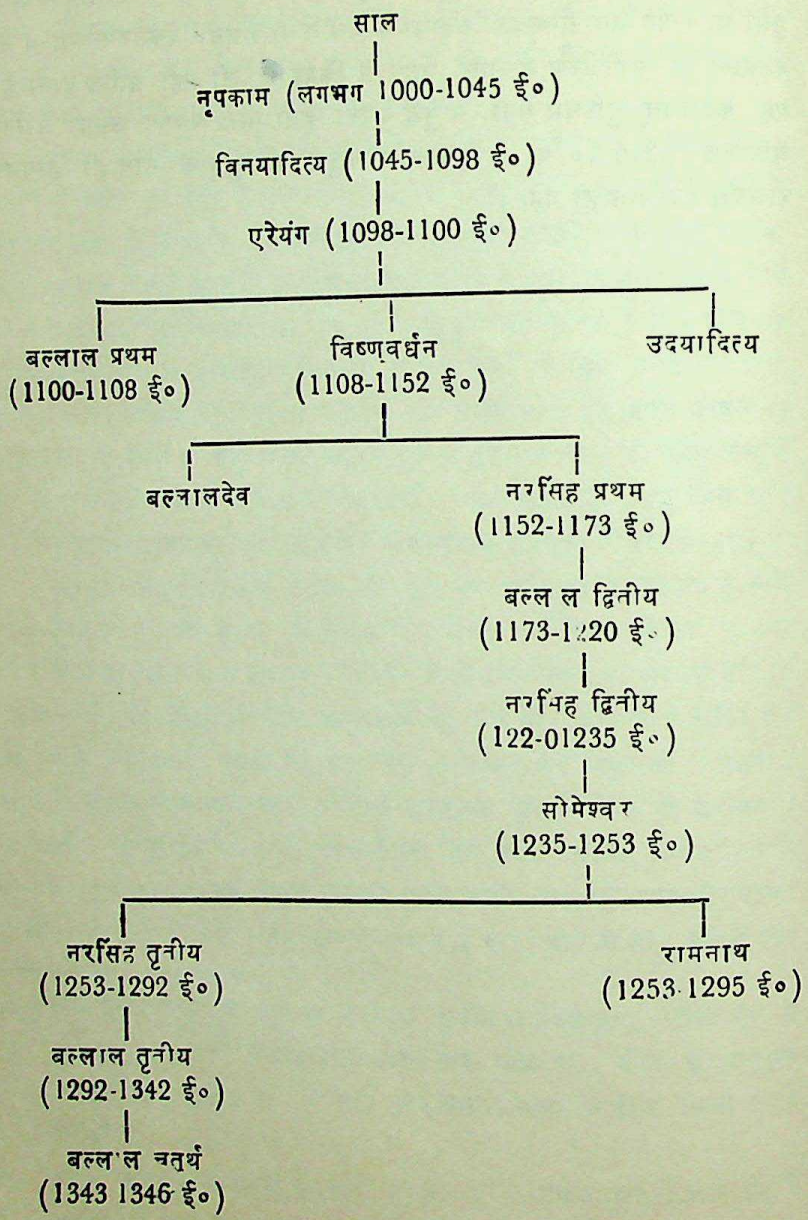

1. History of Karnataka, p 303

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

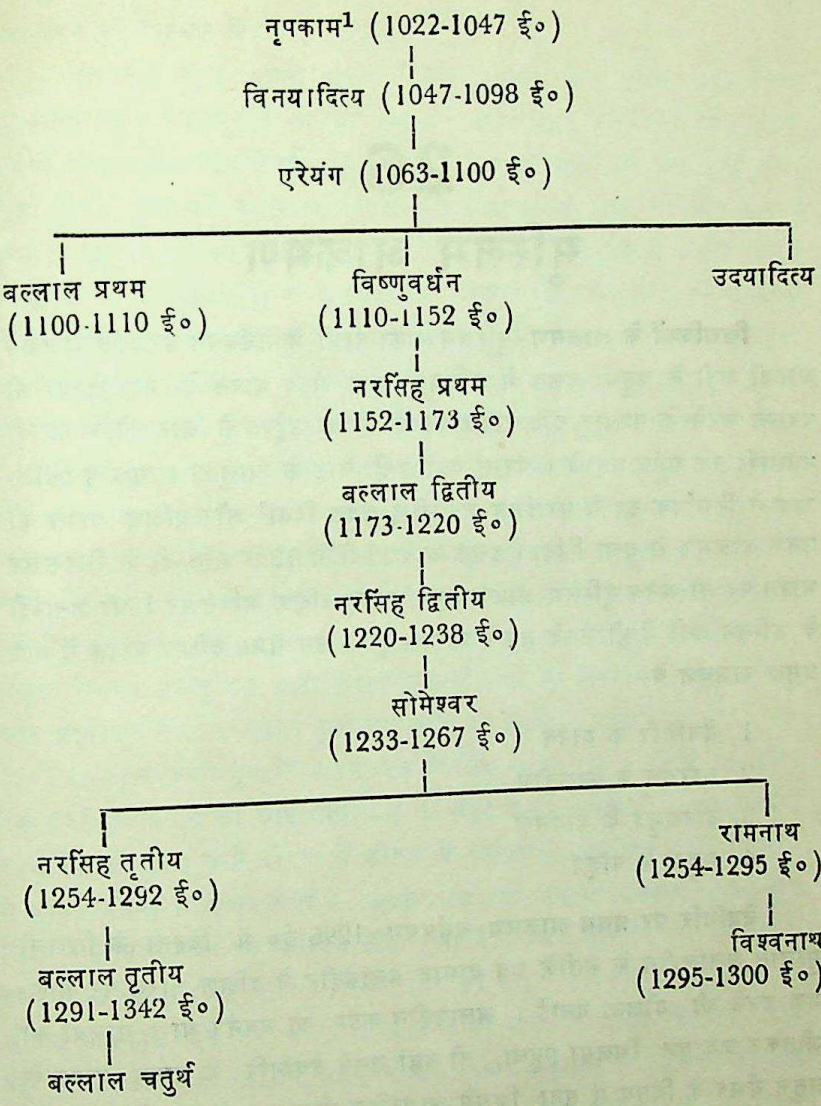

1. Karnataka through the Ages, p. 400.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

26

मुस्लिम आक्रमण

खिलजियों के आक्रमण-मुस्लिम आक्रान्ताओं में सर्वप्रथम अरब (ताज्जिक) आठवीं शती के चतुर्थ दशक में पश्चिमी तथा मध्य भारत के कई राज्यों को परास्त करने के पश्चात् दक्षिणापथ को जीतने के उद्देश्य से लाट की राजधानी नवसारी तक पहुंच गए थे। परन्तु वहां उन्हें लाट के चालुक्य शासक पुलकेशिराज ने निर्णायक रुप से पराजित कर पीछे खदेड़ दिया[1] और दक्षिण भारत को उनके आक्रमण से बचा लिया। इसके बाद 11वीं से 13वीं शताब्दी के बीच उत्तर भारत पर तो अनेक मुस्लिम आक्रमण हुए, परन्तु दक्षिण भारत पर 13वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में ही उनके हमले प्रारम्भ हुए। उस समय दक्षिण भारत में चार प्रमुख राजवंश थे–

1. देवगिरि के यादव
2. वारगल के काकतीय
3. द्वारसमुद्र के होयसल
4. मदुरा के पांड्य

देवगिरि पर प्रथम आक्रमण-सर्वप्रथम 1296 ई० मे दिल्ली के खिलजी सुल्तान जलालुद्दीन के भतीजे एवं दामाद अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अलाउद्दीन कड़ा का गवर्नर था। मालवा को जीतकर जब वह भिलसा पहुंचा, तो वहां उसने देवगिरि के यादव राज्य के अतुल वैभव के विषय में सुना जिससे लालायित होकर उसने यादवों पर आक्र-

---

1 सैन्धवकच्छेलसौराष्ट्र (चावोटकमौर्यगुर्जरा)(दि)रा(जे)निःशेष-दाक्षिणात्य-क्षितिपजिगीषया (दक्षिणापथ-प्रवेशाभिलाषिणि). CII, Vol IV, Part I, pp 140-141.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मण करने का निश्चय किया।

अलाउद्दीन बहुत महत्वाकांक्षी विजेता, सुयोग्य सेनानायक तथा महान कूटनीतज्ञ था। जलालुद्दीन की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना ही, तथा उससे अपनी योजना को छिपाते हुए वह देवगिरि पर आक्रमण की तैयारियां करने लगा और 8 000 चुने घुड़सवारों की सेना के साथ यादव राज्य की ओर रवाना हुआ। वह यह अफवाह फैलाते हुए आगे बढ़ता गया कि दिल्ली के सुल्तान के व्यवहार से असन्तुष्ट होने के कारण वह नौकरी तथा शरण प्राप्त करने के लिए राजमहेन्द्री (काकतीय राज्य में) जा रहा है। उसकी योजना पूर्णतया सफल रही और किसी को उसके वास्तविक मन्तव्य का आभास नहीं हो सका। इसलिए वह आसानी से लसूड़ा तक पहुंच गया। लसूड़ा से देवगिरि केवल 20 किलोमीटर दूर था। उसी समय देवगिरि के यादव शासक रामचन्द्र (रामदेव) को अलाउद्दीन के आगमन की सूचना मिली। उसके लिए यह खतरा असम्भावित एवं आकस्मिक था। उस समय उसका पुत्र शंकरदेव प्रमुख यादव सेना के साथ तीर्थयात्रा के लिए दक्षिण भारत गया हुआ था। रामदेव ने शीघ्रातिशीघ्र दो तीन हजार की सेना एकत्र कर उसे अलाउद्दीन के बढ़ाव को रोकने के लिए लसूड़ा भेजा। परन्तु इस छोटी सेना को अलाउद्दीन ने आसानी से कुचल दिया और अत्यधिक तेजी से बढ़ता हुआ वह शीघ्र ही देवगिरि पहुंच गया।

रामचन्द्र अपने दुर्ग में शरण लेने के लिए बाध्य हुआ, परन्तु उस समय तक देवगिरि के दुर्ग की खाई नहीं बनी थी और न ही रामचन्द्र के पास पर्याप्त खाद्य सामग्री थी। उसी दौरान में कोंकण के व्यापारियों का एक सार्थ देवगिरि से होकर गुजरा। यादव सेना ने उसके भांड को अनाज समझकर उसे लूट लिया। इससे रामदेव का मनोबल ऊंचा हुआ और उसने मुस्लिम सेना का मुकाबला करने का निश्चय किया। अलाउद्दीन की सेना ने देवगिरि में प्रवेश कर भीषण मारकाट एवं लूटपाट की। यादवों को आतंकित करने के लिए उसने यह भी अफवाह उड़ा दी कि उसके पीछे 20,000 घुड़सवारों की सेना आ रही है। यह सुनकर रामचन्द्र ने उससे सन्धि करने के लिए अपने दूत भेजे। अलाउद्दीन ने उससे सन्धि करना स्वीकार कर लिया और सन्धि की शर्तों के अनुसार यादव शासक ने सात मन बहुमूल्य रत्न, 50 मन सोना, 40 हाथी, कई हजार घोड़े तथा अन्य धन-सम्पत्ति देने का बचन दिया। यह अतुल सम्पत्ति लेकर जब अलाउद्दीन देवगिरि से प्रस्थान करने के लिए तैयारियां कर रहा था, उसी बीच रामदेव का पुत्र शंकरदेव अपनी प्रमुख सेना के साथ तीर्थयात्रा से वापस लौट

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आया।

मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार रामदेव ने अपने पुत्र को अलाउद्दीन से युद्ध न करने की राय दी, परन्तु शंकरदेव ने अपनी सेना को अलाउद्दीन की सेना से बहुत अधिक शक्तिशाली समझते हुए रामदेव की सलाह की अवहेलना की और आक्रान्ता को धमकी दी कि यदि वह लूट की सारी सम्पत्ति वापस देकर वहां से तुरन्त नहीं चला जाता है, तो वह उसका विनाश कर देगा। परन्तु महत्वाकांक्षी एवं वीर लड़ाकू अलाउद्दीन ने शंकरदेव के सन्देश-वाहकों का अपमान कराया और उससे युद्ध करने का निश्चय किया। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। एक हजार सैनिकों के साथ उसने मलिकनसरत को देवगिरि के दुर्ग पर नियन्त्रण रखने के लिए छोड़ दिया और शेष शक्ति के साथ यादव सेना से युद्ध किया। यादवों की जबरदस्त मार ने अलाउद्दीन को पीछे हटने के लिए बाध्य कर दिया और जब मुस्लिम सेना की पराजय बहुत निकट थी, उसी दौरान में मलिकनसरत अपनी 9,000 की सेना के साथ अलाउद्दीन की सहायता के लिए पहुंच गया। शंकरदेव को यह भ्रम हुआ कि अलाउद्दीन द्वारा पूर्व घोषित 20,000 घुड़सवारों वाली सेना आगई है। इससे विजयिनी यादव सेना का मनोबल सहसा गिर गया और उसमें अव्यवस्था एवं आतंक की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस स्थिति का लाभ उठाकर अलाउद्दीन ने देवगिरि के दुर्ग के घेरे को अधिक सुदृढ़ कर दिया और बन्दियों की भीषण मारकाट की। रामदेव ने उससे युद्ध करने का निश्चय किया, परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि व्यापारियों के काफिले से छीने गए बोरों में अनाज के स्थान पर नमक है, तो रसद के अभाव में वह घेरे के समक्ष टिकने में अक्षम था। इसलिए उसे अलाउद्दीन से पुनः सन्धि-वार्ता प्रारम्भ करनी पड़ी। स्थिति को पूर्णरूप से अपने अनुकूल देखकर अलाउद्दीन ने मनमानी तथा पहले से भी कठोर सन्धि की शर्तें रखीं। फिरिश्ता के अनुसार रामदेव ने 6,00 मन सोना, सात मन मोती, 1,000 मन चांदी, दो मन जवाहरात एवं रत्न तथा 1,000 रेशम के थान विजेता को दिए। इसके अतिरिक्त उसने एलिचपुर प्रान्त का राजस्व भी वार्षिक कर के रुप में देना स्वीकार किया। इस सम्पत्ति को लेकर अलाउद्दीन कड़ा वापस चला गया।

देवगिरि पर दूसरा आक्रमण—जलालुद्दीन का वध कराने के पश्चात् जब अलाउद्दीन ने दिल्ली के सुल्तान के रुप में शासन की बागडोर सम्भाली, तो प्रारम्भ में उसके विरुद्ध कुछ विद्रोह हुए। इस स्थिति का लाभ उठाकर रामदेव

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने उसे वार्षिक कर देना बन्द कर दिया और इसे तीन वर्ष तक रोके रहा। इसामी के अनुसार रामदेव ने अलाउद्दीन के पास गुप्त रुप से अपना दूत भेजकर उसे सूचित किया कि वह कर अदा करने में असमर्थ है क्योंकि उसका पुत्र तथा अन्य कई प्रमुख, सुल्तान के विरोधी हैं। सुल्तान को अपनी निष्ठा का आश्वासन देते हुए उसने कहा कि 'जब मृत्यु मेरे शरीर की राख हवा में बिखेर चुकी होगी, उस समय भी मेरा मन उन शपथों को स्मरण रखेगा जो मैने (सुल्तान के समक्ष) ग्रहण की हैं'।

1306-7 ई० में अलाउद्दीन ने 30,000 सैनिकों को अपने ख्यातिलब्ध सेनापति मलिककाफूर के नेतृत्व में देवगिरि पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अमीरखुसरो के अनुसार उसने मलिककाफूर को इस आदेश के साथ रवाना किया था कि राय रामदेव या उसके परिवार के किसी सदस्य को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाई जाय। मलिककाफूर की सहायता के लिए ख्वाजा हादी तथा मालवा एवं गुजरात के मुस्लिम गवर्नर भी अपनी सेनाओं के साथ गये। इस अभियान का उद्देश्य देवगिरि को अधिकृत करना था। खुसरो का कथन है कि यादवों ने मुस्लिम सेना से भीषण संघर्ष नहीं किया और उनकी सेना दो भागों में बंट गई। रामदेव ने आत्मसमर्पण कर दिया और शंकरदेव भाग गया।

फिरिश्ता के अनुसार रामदेव ने युद्ध करना व्यर्थ समझ कर अपने पुत्र को देवगिरि में छोड़ दिया और स्वयं मलिककाफूर से मिलने गया। मलिककाफूर उसे अपने साथ दिल्ली ले गया। जब रामदेव ने अलाउद्दीन के समक्ष उसके दरबार में प्रवेश किया तो सुल्तान ने उसका अत्यधिक स्वागत किया, उसके सिर पर मोती तथा रत्न आदि बिखेरे और उसे अपने अतिथि के रुप में छः महीने तक रखा। इसके पश्चात् उसे एक लाख स्वर्ण टंक, श्वेत छत्र तथा रायरायन की उपाधि देकर देवगिरि वापस जाने की अनुमति दे दी। अलाउद्दीन ने रामदेव को उपहार स्वरुप गुजरात राज्य का नवसारी जिला भी दे दिया। फिरिश्ता के अनुसार यह घटना 1306 ई० में, अमीरखुसरो के अनुसार 1307ई० में और बरनी के अनुसार 1308 ई० में घटी थी। इसके उपरान्त अपने शेष जीवनकाल में रामदेव अलाउद्दीन के निष्ठावान सामन्त के रुप में शासन करता रहा और उसे नियमित रुप से कर देता रहा। रामदेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी शंकरदेव ने अलाउद्दीन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जिसका दमन करने के लिए मलिककाफूर को ही भेजा गया। जब काफूर की

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सेना ने घाटी सागौन को पार कर लिया, तो शंकरदेव भाग गया और मुस्लिम सेना ने बिना संघर्ष के ही देवगिरि पर अधिकार कर लिया। तदुपरान्त देवगिरि दिल्ली सल्तनत का एक प्रान्त बन गया और मलिककाफूर को इसका शासक नियुक्त किया गया। इसामी ने उसके प्रशासन की बहुत प्रशंसा की है।

देवगिरि पर तीसरा आक्रमण–रामदेव आजीवन अलाउद्दीन का स्वामिभक्त सामन्त बना रहा। उसमें स्वाभिमान, देशभक्ति तथा शौर्य का कुछ अभाव था। परन्तु उसका पुत्र शंकरदेव मुस्लिम सत्ता का कड़ा विरोधी और स्वतन्त्रता प्रेमी था। मलिककाफूर के दिल्ली वापस चले जाने पर उसने विद्रोह कर दिया और वार्षिक कर देना बन्द कर दिया। इसलिए 1313 ई० में अलाउद्दीन ने देवगिरि को जीतने के लिए पुनः मलिककाफूर को भेजा। शंकरदेव काफूर की सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया।

अलाउद्दीन भलीभांति समझता था कि दिल्ली से सुदूरस्थ दक्षिण के राज्यों पर कारगर नियन्त्रण रखना बहुत कठिन था, इसलिए वह दक्षिण भारत के विजित राज्यों को सल्तनत का अभिन्न अंग बनाने के पक्ष में नहीं था। उसने मलिककाफूर को देवगिरि का स्थाई अधिकारी बना दिया था, और काफूर ने पराजित भारतीय शासकों को पत्र लिख कर उन्हें सामन्त के रुप में शासन करने की अनुमति दे दी। बाद में अलाउद्दीन ने काफूर को दिल्ली बुला लिया और आइनुलमुल्क ने देवगिरि के शासन का उत्तरदायित्व सम्भाला। कुछ समय के उपरान्त आइनुलमुल्क को भी सेना सहित दिल्ली जाना पड़ा, क्योंकि अलाउद्दीन की मृत्यु निकट थी। रामदेव के दामाद हरपालदेव को सम्भवतः किसी मुस्लिम अमीर के अधीन देवगिरि राज्य के कुछ प्रदेशों का शासक नियुक्त कर दिया गया था।

देवगिरि पर चौथा आक्रमण–अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक के शासनकाल में हरपालदेव ने विद्रोह कर दिया जिसका दमन करने के लिए मुबारक स्वयं, सेना सहित 1317 ई० में देवगिरि के लिए रवाना हुआ। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार मुबारक के देवगिरि पहुंचते ही हरपालदेव अपनी राजधानी को अरक्षित छोड़कर भाग गया। मुस्लिम सेना ने उसका पीछा किया और दो-तीन छोटे-मोटे संघर्षों के बाद हरपालदेव घायल हो गया तथा बन्दी बनाकर सुल्तान के समक्ष उपस्थित किया गया। मुबारक ने उसकी खाल खिंचवा ली और उसके सिर को देवगिरि के एक द्वार पर लटका दिया गया। देवगिरि के देवालयों का विध्वंश किया गया और उनके अव-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शेषों से एक मसजिद का निर्माण हुआ। मलिक यकलाकी को देवगिरि का सूबेदार नियुक्त किया गया और यादव राज्य को ज़िलों में विभाजित कर उन्हें मुस्लिम अधिकारियों के अधीन कर दिया गया। इस प्रकार देवगिरि दिल्ली सल्तनत का अभिन्न अंग बन गया और यादव राजवंश के शासन का अन्त हो गया।

वारंगल के काकतीय राज्य पर आक्रमण—वारंगल के काकतीय राज्य पर पहला मुस्लिम आक्रमण अलाउद्दीन के राज्यकाल में 1303 ई० में हुआ। मलिकजौना तथा नसरतखां के भतीजे छज्जू के नेतृत्व में मुस्लिम सेना बंगाल तथा उड़ीसा होती हुई वारंगल पहुंची। परन्तु काकतीय शासक प्रतापरुद्र ने इसे पराजित कर पीछे खदेड़ दिया। इस प्रकार यह अभियान पूर्णतया असफल रहा।

1308 ई० में अलाउद्दीन ने काकतीय राज्य को पुनःआक्रान्त करने के लिए मलिककाफूर के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी। जियाउद्दीन बरनी के अनुसार सुल्तान ने काफूर को इस आदेश के साथ भेजा था कि वह वारंगल को जीतने का यथा सम्भव प्रयत्न करे और यदि लद्दरदेव (रुद्रदेव या प्रतापरुद्र) अपना कोष, हाथी तथा घोड़े आदि समर्पित कर भविष्य में एक निश्चित कर देने का वचन दे, तो वह इसे स्वीकार कर ले। मलिककुतलुग तथा खुसरो आदि सेनानायक भी मलिककाफूर के साथ गए थे। 1310 ई० में काफूर देवगिरि के लिए रवाना हुआ। पहले वह देवगिरि के सीमान्त पर स्थित नीलकंठ (नलद्रुग) पहुंचा। वहां अलाउद्दीन के निष्ठावान सामन्त यादव शासक रामदेव का मन्त्री उससे मिला और उसे तेलंगान के विरुद्ध अभियान के लिए पूरा सहयोग दिया। 16 दिन की यात्रा के पश्चात् मुस्लिम सेना काकतीय राज्य के सरबर नामक स्थान पर पहुंची। सरबर के दुर्ग में आग लगा दी गई तथा वहां के निवासियों को मौत के घाट उतार दिया गया। काफूर ने वारंगल के समीपवर्ती हनुमकोंड पर अधिकार कर लिया। वहीं से खुसरो खां ने वारंगल के दुर्ग का सर्वेक्षण किया। इसके पश्चात् तेजी से बढ़ती हुई मुस्लिम सेना वारंगल पहुंच गई।

वारंगल के दुर्ग में दो परकोटे थे और इसके चारो ओर दुर्लंघ्य खाईं थीं। इस दुर्भेद्य दुर्ग के आन्तरिक भाग की दीवारें पत्थर से निर्मित तथा चिकनी थी। इसकी सुरक्षा के लिए इसके चारों ओर मिट्टी की एक प्राचीर बनाई गई थी। मिट्टी की यह दीवार भी इतनी अधिक सख्त तथा सुदृढ़ थी कि 'इस्पात का कोई अस्त्र भी इसे वेध नहीं सकता था और मंजनीक के पत्थर इससे टकराकर नारियल की भांति वापस लौट आते थे।' 19 जनवरी, 1310 ई० में मलिक-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

काफूर ने हनुमकोंड की पहाड़ी पर घेरा डाल दिया और इस पर अधिकार करने एवं प्रतापरुद्र को पराजित करने के लिए इस प्रकार तैयारियां कीं—

दुर्ग के द्वार पर एक मडप तैयार किया गया और इसके चारों ओर तम्बू लगा दिए गए जिनकी कुल परिधि 12,546 गज थी। तम्बुओं की सुरक्षा के लिए उनके चतुर्दिक लकड़ी की एक सुदृढ़ दीवार बनाई गई और प्रत्येक तूमान अर्थात् दस हजार सैनिकों को 1200 गज भूमि में तैनात कर दिया गया। किले की ऊचाई के बराबर की सावातें बनाई गईं और उनके सामने की खाईं पाट दी गई। इसके पश्चात् दुर्ग की 100 हाथ चौड़ी दीवार को पत्थरों के प्रहार से एक ओर तोड़कर नीचा कर दिया गया और दूसरी ओर मंजनीक के पत्थरों से उसमें कई प्रवेशद्वार बना दिए गए। 13 फरवरी की चांदनी रात में ही सैनिकों को लम्बी सीढ़ियां तथा अन्य आवश्यक उपकरण तैयार करने का आदेश दे दिया गया और दूसरे दिन प्रातःकाल वारंगल के दुर्ग पर मुस्लिम सेना ने आक्रमण कर दिया। दुर्ग के द्वार के निकट भारतीय सेना ने केवल साधारण संघर्ष किया और वह पराजित होकर भीतर की ओर भाग गई। तीन दिन तक युद्ध करने के बाद मलिककाफूर ने बाहरी दुर्ग पर अधिकार कर लिया। आन्तरिक किले में पहुंचने के लिए आक्रान्ताओं को दूसरी खाईं पार करनी थी जिसके लिए वे 5 गज की पाशेब बनाने पर विचार कर रहे थे। उसी दौरान में रुद्रदेव ने आत्म-समर्पण कर दिया। वह अपना सम्पूर्ण कोष, 300 हाथी, 7,000 घोड़े तथा बहुत सी सम्पत्ति देकर सन्धि करने के लिए तैयार हो गया और उसने सुल्तान को वार्षिक कर देना भी स्वीकार कर लिया। खुसरो खां के अनुसार प्रतापरुद्र ने 100 से अधिक हाथी, एक हजार घोड़े तथा सम्पूर्ण कोष समर्पित कर दिया था। खुसरो खां ने उससे काकतीय राज्य के अनेक जिलों के अतिरिक्त, वार्षिक कर के रुप में 60 सोने की ईटों की भी मांग की। परन्तु बाद में दोनों पक्षों में शर्तों के सम्बन्ध में वार्ता हुई जिसके परिणामस्वरूप वह केवल बदरकोट जिला तथा 40 सोने की ईटें, वार्षिक कर के रुप में लेने के लिए सहमत हो गया। इस सन्धि से सम्बन्धित दस्तावेज पर प्रतापरुद्र से हस्ताक्षर भी कराए गए। बरनी ने खुसरो खां के वारंगल अभियान का वर्णन नहीं किया है।

द्वारसमुद्र पर आक्रमण—दक्षिणापथ के राज्यों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के उपरान्त अलाउद्दीन ने सुदूर दक्षिण के राज्यों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। 17 नवम्बर, 1310 ई० में उसने मलिककाफूर के नेतृत्व में द्वारसमुद्र

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के होयसलों के विरुद्ध सेना भेजी। यह सेना 3 फरवरी, 1311 ई० में देवगिरि पहुंची जहां रामदेव ने उसका स्वागत किया। देवगिरि में ही द्वारसमुद्र पर आक्रमण करने के लिए तैयारियां की गईं। रामदेव ने अपने शत्रु होयसल बल्लाल तृतीय तथा धुरसमुन्दर (द्वारसमुद्र) को नष्ट करने के लिए मुस्लिम सेना की हर प्रकार से सहायता की, और अपने प्रधान सेनापति को द्वारसमुद्र जानेवाले मार्गों को अधिकृत करने के लिए पहले ही भेज दिया।

होयसल राज्य पर आक्रमण करने के पूर्व मलिककाफूर ने अपने सेनापतियों आदि की एक बैठक बुलाकर रणनीति पर विचार किया था। इसके उपरान्त 7 फरवरी को मुस्लिम सेना देवगिरि से द्वारसमुद्र की ओर रवाना हुई। खुसरो के अनुसार, मलिककाफूर की सेना में 10 हज़ार सैनिक थे। बहुत तीव्र गति से बढ़ती हुई यह सेना 26 फरवरी को द्वारसमुद्र पहुंच गई। प्रमुख सैन्य-अधिकारियों के साथ मलिककाफूर ने द्वारसमुद्र के मुख्य द्वार के सामने पड़ाव डाल दिया। आक्रान्ता की सैन्य-शक्ति का अनुमान लगाने के उपरान्त, बल्लाल तृतीय ने देवनायक तथा अन्य दूतों को सन्धि के लिए काफूर के पास भेजा। खुसरो के अनुसार इन सन्देशवाहकों ने यादव रामदेव तथा काकतीय प्रतापरुद्र द्वारा पहले से स्वीकार की गई शर्तों के आधार पर ही बल्लादेव की सुरक्षा हेतु प्रार्थना की। इसके लिए होयसल शासक को यज्ञोपवीत के अतिरिक्त अपना सम्पूर्ण कोष, अश्व एवं हाथी आदि समर्पित करने के लिए बाध्य किया गया। मुस्लिम सेना ने द्वारसमुद्र में भारी लूटपाट की और मन्दिरों आदि को नष्ट किया। 12 दिन तक द्वारसमुद्र में ठहरने के उपरान्त मलिककाफूर ने वहां से प्रस्थान किया और बल्लाल को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। 1313 ई० में बल्लाल को अपने राज्य में वापस जाने की अनुमति दे दी गई और वह खिलजी सुल्तान के अधीनस्थ के रूप में शासन करने लगा। उसके राज्यकाल के 1316 ई० के एक अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि उस समय वह शान्तिपूर्वक शासन कर रहा था और उसने अपनी राजधानी का जीर्णोद्धार करा दिया था। दिल्ली में सम्भवतः उस समय संकटपूर्ण स्थिति चल रही थी, इसीलिए दक्षिण भारत के राजाओं को राहत मिल गई थी।

मावर (मदुरा) पर आक्रमण—इसके पश्चात् सुदूर दक्षिण के अन्तिम महत्वपूर्ण राज्य मदुरा की बारी आई। 10 मार्च, 1311 ई० में मलिककाफूर द्वारसमुद्र से मावर की ओर रवाना हुआ। मुस्लिम इतिहासकार वस्सफ के अनुसार वीरपांड्य द्वारा पराजित किए जाने पर सुन्दरपांड्य ने दिल्ली जाकर अला-

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उद्दीन से अपने भाई के विरुद्ध सहायता मांगी। खिलजी सुल्तान वैसे भी मदुरा पर आक्रमण करता। किन्तु इस अनुकूल परिस्थिति ने उसका कार्य बहुत आसान कर दिया और उसने शीघ्र ही वीरपांड्य को पराजित करने का आदेश दिया।

मलिककाफूर के पहुंचने पर वीरपांड्य अपनी रानियों सहित राजधानी छोड़कर भाग गया। इसलिए बिना युद्ध किए ही मुस्लिम सेना ने मदुरा को अधिकृत कर उस भव्य नगर तथा वहां के सम्पन्न मन्दिरों को लूटा एवं ध्वस्त किया। पांड्य शासक का पीछा करती हुई मुस्लिम सेना कण्णनूर तथा चिदम्बरम् पहुंची और उन नगरों एव मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया गया। फिरिश्ता के अनुसार मलिककाफूर सेतबन्दरामेसर (सेतुबन्ध रामेश्वरम्) तक गया था। वहां के विशाल मन्दिर को तुड़वाकर उसके स्थान पर उसने एक मस्जिद का निर्माण कराया और अलाउद्दीन के नाम पर ही उसका नामकरण कर दिया। एस० के० आयंगर के अनुसार यह विवरण मनगढ़न्त प्रतीत होता है। भारतीय साक्ष्यों के अनुसार वीरपांड्य ने मुस्लिम सेना को पीछे खदेड़ दिया था।

खुसरो ने लिखा है कि मावर विजय के फलस्वरूप मलिककाफूर को 512 हाथी, 5 हज़ार घोड़े तथा 500 मन बहुमूल्य रत्न आदि प्राप्त हुए। 15 अप्रैल, 1311 ई० में वह दिल्ली के लिए रवाना हुआ। फिरिश्ता के इस कथन में काफी सत्यांश प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन को दक्षिण के राज्यों से प्राप्त सम्पत्ति महमूद गज़नवी की लूट-पाट की धनराशि से भी अधिक थी। बरनी के अनुसार अलाउद्दीन के पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक ने भी मावर पर आक्रमण करने के लिए खुसरो खां के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी थी जिसे अधिक सफलता नहीं मिल सकी। मदुरा के दोनों राय (पांड्य शासक) खुसरो खां के लिए केवल कुछ हाथी छोड़कर अपनी राजधानी से भाग गये थे।

तुगलकों के आक्रमण—खिलजियों के पतन के पश्चात् दिल्ली में तुगलक वंश की स्थापना हुई। तुगलक सुल्तानों ने दक्षिण भारत के हिन्दू राजवंशों की अवशिष्ट सम्पत्ति को अपहृत करने एवं उनकी शक्ति को नष्ट करने का निश्चय किया। दिल्ली में सत्ता-परिवर्तन का लाभ उठाकर कुछ हिन्दू राजाओं ने विद्रोह कर दिये और वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था।

तुगलकों ने दक्षिण भारत की विजय योजना में सर्वप्रथम वारंगल को लक्ष बनाया। काकतीय शासक प्रतापरुद्र ने स्वतन्त्रता घोषित कर, कर देना बन्द कर दिया था और अपनी शक्ति में काफी वृद्धि कर ली थी। अतएव गियासुद्दीन

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तुगलक ने अपने पुत्र जूनाखां अपरनाम उलुगखां को 1321 ई० में वारंगल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उलुगखां देवगिरि होता हुआ वारंगल पहुंचा और उसने इसके दुर्भेद्य दुर्ग की घेरे बन्दी कर दी। वारंगल के दुर्ग में 70 बुर्ज थे जिनमें से प्रत्येक की सुरक्षा का उत्तरदायित्व एक नायक को दिया गया था। प्रतापरुद्र की सेना ने आक्रान्ताओं का डटकर मुकाबला किया और उनकी हिम्मत पस्त कर दी।

इसामी के अनुसार उलुगखां ने प्रतापरुद्र की सेना को घेर लिया था, परन्तु छः माह की घेरेबन्दी के बाद भी उसे कोई सफलता नहीं मिल सकी। इससे गियासुद्दीन का धैर्य टूटने लगा और उसने उलुगखां को पत्र लिखकर मुस्लिम सेना की सफलता में विलम्ब के लिए अपना असन्तोष व्यक्त किया। काकतीय सेना बड़ी बहादुरी से दुर्ग की रक्षा करती रही, किन्तु जब रसद का अभाव हो गया, तो उसका मनोबल गिरने लगा। मुस्लिम सेना ने वारंगल के दुर्ग को खाद्य-सामग्री पहुंचाने वाले समस्त साधनों एवं संचार-व्यवस्था को अवरुद्ध कर दिया था। इस गम्भीर संकट में पड़ जाने पर रुद्रदेव ने विवश होकर सन्धि-वार्ता प्रारम्भ की। उसने इस शर्त पर अपना कोष, हाथी तथा वार्षिक कर आदि देने का प्रस्ताव रखा कि मुस्लिम सेना उसके राज्य से वापस चली जाय। किन्तु उलुगखां को काकतीय राज्य पर अधिकार करने का आदेश दिया गया था। अतः उसने रुद्र-देव की शर्त को अस्वीकार कर दिया। इससे उत्तेजित होकर काकतीय सेना ने आक्रान्ताओं की संचार-व्यवस्था को काट दिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें दिल्ली से समाचार मिलना बन्द हो गया। उलुगखां की सेना में अव्यवस्था फैल गई और अनेक सैन्य-अधिकारियों आदि ने उनका साथ छोड़ दिया। इस गड़बड़ी के कारण के विषय में सभी साक्ष्य एकमत नहीं हैं।

इसामी ने लिखा है कि उलुगखां ने उबैद नामक एक ज्योतिषी की गणना के आधार पर वारंगल को एक निर्धारित तिथि तक जीत लेने की भविष्यवाणी कर दी थी। साथ ही यह भी घोषणा की कि यदि उस ज्योतिषी की गणना गलत सिद्ध हुई तो उसे प्राणदंड दिया जायेगा। उक्त ज्योतिषी द्वारा बतलाई गई तिथि तक उलुगखाँ असफल रहा। इसलिए अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उबैद ने सुल्तान गियासुद्दीन की मौत की झूठी अफवाह उड़ा दी। चूंकि दिल्ली से सम्पर्क टूट चुका था, अतएव वारंगल में इस खबर की पुष्टि नहीं की जा सकी और मुस्लिम सेना में अव्यवस्था व्याप्त हो गई।

इब्नबतूता के अनुसार उलुगखां अपने पिता गियासुद्दीन के विरुद्ध विद्रोह

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करना चाहता था और उसी ने सुल्तान की मृत्यु की झूठी खबर उड़ाने के लिए उबैद से कहा था। उलुगखां का अनुमान था कि ऐसा करने पर उसे सेना का समर्थन प्राप्त हो जायेगा। परन्तु इस खबर का विपरीत प्रभाव हुआ और मुस्लिम सैनिकों तथा सेनानायकों ने उलुगखां का ही साथ छोड़ दिया। इसका लाभ उठाकर प्रतापरुद्र ने तुगलक सेना को अत्यधिक क्षति पहुंचाई।

बरनी ने लिखा है कि उबैद ने सुल्तान की मृत्यु की अफवाह फैलाने के साथ-साथ यह भी प्रचार किया था कि दिल्ली के राजसिंहासन पर एक राज-कुमार (उलुगखां के भाई) ने अधिकार कर लिया है। इसके अतिरिक्त उसने सैनिकों को यह कहकर भी भड़काया था कि उलुगखां उन्हें मरवा देना चाहता है। ईश्वरी प्रसाद तथा एम० हुसैन ने बरनी का विवरण सही माना है और गुलज़लेहेग ने इब्नबतूता का। आगे के घटनाक्रम को देखते हुए इब्नबतूता का कथन सही प्रतीत होता है। तथ्य कुछ भी हो, प्रतापरुद्र ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और आक्रान्ताओं को भारी क्षति पहुंचाई। उलुगखां के कुछ उच्च सैन्य-अधिकारियों ने काकतीय शासक से सन्धि कर ली और प्रतापरुद्र ने गंगा एवं सोमनाथ की शपथ लेकर कहा कि वह मुस्लिम सेना की वापसी के दौरान उस पर आक्रमण नहीं करेगा। उलुगखां अपनी असन्तुष्ट एवं विद्रोही सेना के साथ देवगिरि पहुंचा जहां उसका छोटा भाई महमूदखां गवर्नर था। महमूद ने उसे सूचित किया कि सुल्तान गियासुद्दीन जीवित है। यह सूचना मिलने पर षडयन्त्रकारी सैन्य-अधिकारियों आदि को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया और वहां उन्हें मृत्यु दंड दिया गया।

अपनी सेना के प्रति गियासुद्दीन का विश्वास समाप्त हो गया था। इस-लिए दूसरी सेना भर्ती की गई और 1323 ई० में उसे उलुगखां के ही नेतृत्व में वारंगल पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए भेजा गया। इस अभियान में मुस्लिम सेना ने बहुत सतर्कता से काम लिया और यातायात के मार्गों की सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था की। बीदर पर अधिकार करने के उपरान्त उलुगखां ने वारंगल के लिए प्रस्थान किया और वहां पहुंच कर बड़ी शीघ्रता एवं सुदृढ़ता से दुर्ग को पूर्ण रुप से घेर लिया। प्रतापरुद्र अपने सम्बन्धियों, परिवार के सदस्यों, राज-कोष तथा हाथियों सहित दुर्ग के अन्दर था और इस अप्रत्याशित आक्रमण का सामना करने लिए वह तैयार नहीं था। तथापि उसने धैर्य से काम लिया और किले के घेरे को अधिक से अधिक समय तक चलाकर मुस्लिम सेना को थका कर पीछे खदेड़ देने का निश्चय किया। यह घेरेबन्दी पांच महीने

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तक चलती रही। इसके उपरान्त काकतीय सेना बीमारी तथा रसद के अभाव आदि से पीड़ित हो गई। अत: विवश होकर प्रतापरुद्र को आत्मसमर्पण के लिए उलुगखां के पास अपने दूत भेजने पड़े। इन दूतों ने प्रतापरुद्र की सुरक्षा एवं दुर्ग का घेरा उठाने का प्रस्ताव रखा। परन्तु मुस्लिम सेना ने किले को अधिकृत कर लिया और काकतीय राजधानी को भारी छति पहुंचाई। प्रतापरुद्र अपने सम्बन्धियों तथा कोष के साथ बन्दी बनाकर कद्रखां के संरक्षण में दिल्ली भेज दिया गया। किन्तु गियासुद्दीन के समक्ष इस अपमानपूर्ण स्थिति में उपस्थित किए जाने के पहले ही उसने आत्महत्या कर ली।

तथ्य कुछ भी रहा हो, इस विजय के उपरान्त काकतीय राज्य दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया गया और इसे कई जिलों में विभाजित कर उन्हें तुर्की अमीरों तथा पदाधिकारियों के अधीन कर दिया गया। बरनी के अनुसार वारंगल का नाम बदल कर सुल्तानपुर कर दिया गया। उलुगखां सम्पूर्ण काकतीय राज्य का गवर्नर था। उसने प्रतापरुद्र के मन्त्रियों तथा अन्य अधिकारियों को पद-च्युत नहीं किया, और उनके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया। तथापि काकतीय राज्य में मुस्लिम सत्ता सुदृढ़ रुप से प्रतिष्ठित नहीं रह सकी।

उलुगखां सम्भवत: वारंगल से ही पांड्य राज्य की ओर बढ़ा होगा। स्थानीय इतिवृत्तों के अनुसार मदुरा (मावर) पर तुगलकों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। इसका पुष्टिकरण बरनी ने भी किया है। उसने 1327 ई० में मदुरा की गणना दिल्ली सल्तनत के प्रान्तों में की है। परन्तु इस तिथि के पूर्व उलुगखां द्वारा मावर के विरुद्ध किए गए अभियान तथा इसकी विजय आदि का विवरण मुस्लिम इतिहासकारों ने नहीं दिया है।

1334-35 ई० में मोहम्मद बिन तुगलक के सूबेदार अहशनशाह ने मदुरा में मुस्लिम शासन स्थापित कर दिया। गंगादेवी के मदुराविजय काव्य में मुस्लिम सत्ता के दौरान हिन्दू धर्म एवं संस्कृति पर किए गए अत्याचारों का विवरण है। इस ग्रन्थ में बतलाया गया है कि मदुरा के मन्दिर उजाड़ हो गए थे; यज्ञशालाओं में यज्ञ के धूम्र के स्थान पर भुने हुए मांस की दुर्गन्ध व्याप्त थी; मदुरा के निवासियों का भीषण संहार किया गया, उनके सिर काटकर बांसों पर लटका दिए गए थे और ताम्रपर्णी नदी का पानी गायों के खून से लाल हो गया था।

मदुराविजय के उपरान्त होयसलों की बारी आई। होयसल बल्लाल तृतीय उस समय अपनी आन्तरिक कठिनाइयों के कारण युद्ध करने की स्थिति

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में नहीं था। इसलिए उसने तुगलकों से सन्धि कर ली। परन्तु मुस्लिम सेना के वापस चले जाने पर उसने पुनः स्वतन्त्रता घोषित कर दी। 1328 ई० के एक अभिलेख से प्रमाणित होता है कि उस समय वह स्वतन्त्र शासक के रुप में राज्य कर रहा था। यह तथ्य फिरिश्ता के उस कथन का खंडन करता है जिसके अनुसार इस तिथि के पहले ही बल्लाल ने दिल्ली के सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

1342 ई० में बल्लाल ने उरैयूर को अधिकृत कर लिया। इब्नबतूता के अनुसार उसने कण्णनूर को मुस्लिम प्रभुत्व से मुक्त करने के लिए एक लाख सैनिकों की हिन्दू सेना और 20 हजार सैनिकों की, वेतनभोगी मुस्लिम सेना संगठित की। परन्तु अपनी योजना को क्रियान्वित करने के पहले ही वह तुगलक सेना से संघर्ष करता हुआ तिरुचिरापल्ली के समीप वीरगति को प्राप्त हुआ।

कम्पिली के शासकों का तुगलकों से संघर्ष–कम्पिली राज्य[1] के शासक मुस्लिम सत्ता के कड़े विरोधी थे। प्रारम्भ में वे देवगिरि के यादवों के अधीन थे। जब यादव राज्य खिलजी सल्तनत का अंग बन गया, तो कम्पिली के शासक ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी और मलिककाफूर (1313–15 ई०) के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया।

कम्पिली के शासक कम्पिलदेव ने गियासुद्दीन तुगलक के विद्रोही भांजे बहाउद्दीन गुरशास्प को शरण दी थी[2]। गियासुद्दीन ने उसका दमन करने के लिए एक शक्तिशाली सेना भेजी जिसे कम्पिलदेव ने दो बार पराजित किया। परन्तु बाद में देवगिरि से नई सेना के पहुंचने पर कम्पिलदेव अधिक समय तक नहीं टिक सका और उसने होसदुर्ग (अनगोंडि) के किले में अपने को बन्द कर लिया। एक माह तक आक्रान्ता का सामना करने के पश्चात् रसद के अभाव आदि के कारण उसे झुकना पड़ा। जब वह मुसलमानों से संघर्ष करने की स्थिति में नहीं रहा, तो उसने गुरशास्प को होयसल बल्लाल तृतीय के यहां भेज दिया। बल्लाल तृतीय स्थिति की गम्भीरता को भली भांति समझता था।

---

1. कम्पिली राज्य में कर्नाटक के आधुनिक बेल्लारी, रायचूर तथा धारवाड़ जिले शामिल थे।
2. नीलकान्त शास्त्री के अनुसार कम्पिलदेव ने तुगलक सुल्तान के पदाधिकारियों द्वारा भेंटों एवं कर की मांग करने पर उत्तेजित होकर बहाउद्दीन से सन्धि कर ली थी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

फिरिश्ता के अनुसार वल्लाल ने गुरशास्प को मुस्लिम सेनानायक के हवाले कर दिया और स्वयं तुगलक सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। आर० सी० मजूमदार फिरिश्ता के उपर्युक्त विवरण को पूर्णतया सही नहीं मानते। उनके अनुसार बल्लाल तृतीय ने पहले मुस्लिम सेना से युद्ध किया होगा और पराजित होने के बाद सम्भवतः गुरशास्प को समर्पित कर दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार की।

अलाउद्दीन यातायात की कठिनाइयों से भली भांति अवगत था। इसलिए उसने दक्षिण भारत के राज्यों की संपत्ति का अपहरण कर अपनी आर्थिक स्थिति को तो अत्यधिक सुदृढ़ बना लिया, किन्तु पराजित राज्यों पर केवल नाममात्रेण प्रभुत्व कायम रखने का प्रयास किया। विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उसने केवल देवगिरि को सल्तनत का अंग बनाया था। परन्तु तुगलकों ने दक्षिण भारत के शासकों को पूर्णतया परास्त कर न केवल उनकी सम्पत्ति का अपहरण किया, वरन् उन्हें सल्तनत का अंग बनाने की नीति भी अपनाई।

हिन्दू राज्यों के पतन के कारण एवं प्रभाव-उत्तर भारत के राजवंशों की भांति दक्षिण के राज्य भी एक एक करके मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा पराजित होने के बाद उनकी वर्धमान सल्तनत में विलीन हो गए और लगभग सम्पूर्ण देश पर मुस्लिम सत्ता स्थापित हो गई।

दक्षिण भारत के राजाओं के पास अपार धन-सम्पत्ति, शक्तिशाली सेनायें तथा दुर्भेद्य दुर्ग थे। उनमें देश प्रेम तथा शौर्य का भी अभाव नहीं था। तथापि एक भी हिन्दू राज्य मुस्लिम आक्रान्ताओं के विरुद्ध स्थाई अथवा निर्णायक सफलता नहीं प्राप्त कर सका। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–भारतीय सैन्य-संगठन तथा रणनीति में कुछ मूलभूत दोष, राजाओं में सतर्कता एवं दूरदर्शिता का अभाव तथा पारस्परिक प्रतिद्वन्दता को देश के हित के ऊपर रखने की प्रवृत्ति।

उत्तर भारत के राजवंशों की पराजय तथा पतन से दक्षिण के शासकों को सबक लेकर सजग हो जाना चाहिए था। जब खिलजी सेना का कड़ा के गवर्नर अलाउद्दीन के नेतृत्व में पहला सफल आक्रमण हुआ, तभी से देवगिरि के यादवों को खिलजियों के सम्भावित हमले के विरुद्ध तैयार हो जाना चाहिए था।

यादव शासक रामदेव ने अलाउद्दीन के प्रति अनावश्यक निष्ठा दिखलाई। जब उसका पुत्र शंकरदेव प्रमुख यादव सेना के साथ वापस आ गया था, उस समय भी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रामदेव ने उसे अलाउद्दीन की सेना से युद्ध न करने की राय दी और उसका मनोबल गिराया। केवल यही नहीं, शंकरदेव की सेना यद्यपि आक्रमणकारी की सेना से अधिक शक्तिशाली थी, फिर भी उसने झूठी अफवाह के आधार पर एक हजार सैनिकों को 20 हजार समझ लिया और इस से आतंकित होकर अपनी विजय को पराजय में परिणित कर दिया। इसके प्रमुख कारण थे शंकर-देव में कूटनीति, सूझ-बूझ तथा परिस्थिति को भली-भांति समझने की क्षमता का अभाव।

जब अलाउद्दीन ने काकतीय राज्य को आक्रान्त करने के लिए सेना भेजी तो रामदेव ने अपने प्रतिद्वन्दी प्रतापरुद्र के विरुद्ध उसे हर प्रकार की सहायता देकर अपनी अदूरदर्शिता तथा देशभक्ति के अभाव का ही प्रमाण प्रस्तुत किया। काकतीय यद्यपि वीरता से लड़े और वे प्रथम मुस्लिम आक्रमण को विफल करने में भी सफल हुए, किन्तु विजय प्राप्त करने के उपरान्त वे यह भूल गए कि मुसलमान आक्रमणकारी पराजित होने के बाद खामोश नहीं बैठते, और उनके दूसरे हमले का मुकाबला करने के लिए काकतीयों ने अपने को तैयार नहीं रखा। इसलिए कई बार काकतीय तथा होयसल शासक मुख्यत: रसद के अभाव के कारण ही पराजित हुए।

मुस्लिम सेना का संगठन तथा युद्ध-प्रणाली हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं चुस्त थी। वे दृढ़ निश्चय के साथ अपने शत्रु के विरुद्ध बहुत तेजी से बढ़ते थे और उसे तैयार होने का मौका ही नहीं देते थे। परन्तु दक्षिण भारत के शासकों ने अपनी पराजयों से कोई महत्वपूर्ण सबक नहीं सीखा और अधि-कांश अवसरों पर उन्हें बिना समुचित तैयारी के ही आक्रान्ताओं का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरुप वे कई बार पराजित हुए।

सामान्यतया भारतीय राजाओं में रक्त-पिपासा तथा तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति नहीं थी और वे अपने विजित शत्रुओं को समूल नष्ट नहीं करते थे। यह नीति भी उनके लिए घातक सिद्ध हुई।

दक्षिण भारत के राजवंशों ने संगठित होकर सम्मिलित शक्ति से कभी भी मुस्लिम आक्रमणों का सामना नहीं किया और उन्हें देश का शत्रु समझने के बजाय अपना निजी शत्रु माना।

इस प्रकार खिलजियों तथा तुगलकों के आक्रमणों ने दक्षिण भारत को अनेक प्रकार से क्षति पहुंचाई। अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने के अतिरिक्त उन्होंने यहां की अपार सम्पत्ति का अपहरण कर अर्थ-व्यवस्था की कमर तोड़ दी और धर्म एवं संस्कृति पर घातक प्रहार किए।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

अथर्ववेद — बर्लिन, 1856
अर्थशास्त्र–कौटिल्य कृत (संपादक आर० रामशास्त्री) — मैसूर, 1929
अष्टाध्यायी–पाणिनि कृत
आपस्तम्ब धर्मसूत्र — वाराणसी, 1969
उत्तररामचरित–भवभूति कृत — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
ऐतरेय आरण्यक — पूना, 1940
ऐतरेय ब्राह्मण — कैम्ब्रिज, 1920
ऋग्वेद — कलकत्ता, 1906
कथासरित्सागर–सोमदेव कृत — लन्दन, 1924
कामसूत्र–वात्स्यायन कृत — बम्बई, 1900
काव्यमीमांसा–राजशेखर कृत — बड़ौदा, 1934
गौतम धर्मसूत्र — वाराणसी, 1966
चतुर्वर्गचिन्तामणि–हेमाद्रि कृत
जैनहरिवंशपुराण–जिनसेन कृत — भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1978
प्रबन्धचिन्तामणि–मेरुतुंग कृत — आक्सफोर्ड, 1893
बुद्धचरित–अश्वघोष कृत — वाराणसी, 1972
बौधायन धर्मसूत्र — बम्बई, 1906
ब्रह्मांडपुराण — कलकत्ता, 1880
बृहत्संहिता–वराहमिहिर कृत — मद्रास, 1928
मणिमेखलै — बरेली, 1970
मत्स्यपुराण — वाराणसी, 1965
मनुस्मृति — दिल्ली, 1963
महाभारत इन्डैक्स–(एस० सोरेंसन) — वाराणसी, वि० सं० 2012
महावीरचरित–भवभूति कृत

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रघुवंश–कालिदास कृत — वाराणसी, 1961
वायुपुराण — बरेली, 1967
वाल्मीकि रामायण — वाराणसी, वि० सं० 2008
विक्रमांकदेवचरित–विल्हण कृत
विक्रमांकाभ्युदय–सोमेश्वर कृत
विष्णुपुराण
शिलप्पदिकारम् — आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1939
हर्षचरित–बाणभट्ट कृत — वाराणसी, 1964

सहायक ग्रन्थ

(क) हिन्दी ग्रन्थ

अग्रवाल, ध० पा० तथा धर्मनारायण — पुरैतिहासिक पुरातत्व, लखनऊ, 1975
पांडेय, चन्द्रभानु — आन्ध्र-सातवाहन राजवंश का इतिहास, दिल्ली, 1963
मजूमदार, डी०एन०तथा गोपाल शरण — प्रागितिहास, 1964
मिराशी, वासुदेव विष्णु — सातवाहनों तथा पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, लखनऊ, 1982
वाकाटक नरेश और उनका काल, वाराणसी, 1965
ला, विमल चरण — प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, (हिन्दी अनुवाद), लखनऊ 1972
वर्मा, राधाकान्त — भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियां, इलाहाबाद, 1977
शालिगराम, व० क० — पुरातत्व शब्दावली, दिल्ली, 1980
श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल — दिल्ली सल्तनत
श्रीवास्तव, बलराम — दक्षिण भारत, वाराणसी, 1982
हबीब तथा निजामी (सम्पादक) — दिल्ली सल्तनत, भाग 1

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

(ख) अंग्रेजी ग्रन्थ

Agrawal, D.P. and A. Ghosh (Editors).	Radio-carbon and Indian Archaeology, Bombay, 1973.
Agrawal, D. P.	Archaeology of India, London, 1982.
Altekar, A. S.	Rashtrakutas and their Times, Poona, 1934.
Allchin Bridget and Raymond.	Rise of Civilization in India and Pakistan, Cambridge, 1982.
Ali, M.	Geography of the Puranas, Delhi, 1966.
Aravamuthan, T. G.	The Kaveri, the Maukharis and the Sangam Age, Madras, 1925.
Aiyar, K. G. S.	Chera kings of the Sangam Age, 1937.
Aiyar, K. V. S.	Historical Sketches of Ancient Deccan, Coimbatore, 1967.
Aiyangar, S. K.	Beginnings of South Indian History, Madras, 1918.
	Ancient India and South Indian History and Culture, Vol. I, Poona, 1941.
	South India and her Mohammadan Invaders, Madras, 1921.
Aiyangar, S. K. (Editor).	Historical Inscriptions of South India and outlines of Political History, Madras, 1932.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Aiyangar, Srinivas	Tamil Studies, Madras 1914.
Banerji, N. R.	Iron Age in India, Delhi, 1965.
Banerji, R. D.	History of Orissa, Vol. I, Calcutta, 1930.
	Palas of Bengal, Varanasi, 1973.
Beal, S.	Buddhist Records of the Western World, Vols. 1-2.
Bhandarkar, R. G.	Early History of the Deccan, Bombay, 1894.
Chanda, R. P.	Indo-Aryan Races.
Chattopadhyaya, S.	Some early dynasties of South India, Delhi, 1974.
Chhabra, B. C.	Expansion of Indo-Aryan Culture, Delhi, 1965.
Chopra, P. N., Ravindran, T. K. and Subrahmanyam, N. (Editors).	History of South India, Vol. I, New Delhi, 1979.
Coedes, G.	Hoysalavamsha, Bombay, 1950.
Das, D. N.	Early History of Kalinga, 1977.
Dave, J. H.	Immortal India, Parts 1-4, Bombay.
Derrett, J. D.M.	Hoysalas, Oxford, 1957.
De Terra and T. T. Paterson.	Studies of Ice Age in Indian and Associated Human Cultures, 1939.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Desai, P. B. (Editor). History of Karnataka, Dharwar, 1970.

Dikshit, D. P. Chalukyas of Badami, New Delhi, 1980.

Dikshitar, R. Studies in Tamil Literature and History, Madras, 1936.

Diwakar, R. R. (Editor). Karnataka through the Ages, Bangalore, 1968.

Dubreuil, G. J. Ancient History of the Deccan, 1920.

Elliot and Dowson. History of India as told by its own Historians, Vol. I.

Elliot, W. Coins of Southern India. London, 1886.

Fleet, J. F. Dynasties of the Kanarese Districts, Bombay, 1896.

Ganguly, D. C. Eastern Chalukyas, Varanasi, 1937.

Gopalachari, K. Early History of the Andhra Country, Madras, 1941.

Gopalan, R. History of the Pallavas of Kanchi, Madras, 1928.

Gupta, P. L. Coins, New Delhi, 1969.

Jayaswal, K. P. History of India, Lahore, 1933.

Keith, A. B., Macdonell, A. A. Vedic Index. Vols 1-2, Varanasi, 1958.

Krishna Murari. Chalukyas of Kalyani, Delhi, 1977.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Krishnaswamy, V. D. — Megalith-types of South India.

Law, B. C. — Historical Geography of Ancient India, Paris, 1954.

Mahalingam, T. V. — Kanchipuram in Early South Indian History, Madras, 1969.

Banas in South Indian History, Madras, 1952.

Majumdar, R. C. — Ancient Indian Colonies in South-East Asia, 1963.

Classical Account of India, Calcutta, 1960.

Majumdar, R. C. (Editor). — History of Bengal, vol, I, reprint, 1971.

Majumdar, R.C. & Altekar A. S. — Vakataka-Gupta Age, Varanasi, 1954.

Majumdar, R. C. and Pusalker, A. D. (Editors). — Vedic Age, Bombay, 1965.
Age of Imperial Unity, Bombay, 1968.

Classical Age, Bombay, 1962.

Age of Imperial Kanauj, Bombay, 1968 1955.

Struggle for Empire, Bombay, 1964.

Delhi Sultanet, Bombay, 1960.

Mc. Crindle, J. W. — Ancient India as described by Megasthenese and Arrian.

Minakshi, C. — Administration and Social life under the Pallavas, Madras, 1938.

Moraes, G. M. — Kadambakula, Bombay, 1931.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Mukerji, B. N. — Kushanas and the Deccan, Calcutta, 1968.

Pillai, K. — Tamils 1800 years Ago, Madras, 1952.

Ramachandran, K. S. — Archaeology of South India-Tamilnadu, Delhi, 1980.

Raman, K. V. — New light on Pandyan History.

Ramesh, K. V. — Chalukyas of Vatapi, Delhi, 1984.

Rao, B. V. Krishna. — History of early Dynasties of Andhradesha, Madras, 1942.

Rao, M. R. — Post-Andhra dynasties in tha Puranas, Calcutta, 1969.

Vishnukundin Coins.

Rao, M. V. K. — Gangas of Talakad, Madras, 1936.

Rapson, E. J. — Catalogue of Coins of the Andhra Dynasties, 1908.

Rice, B. L. — Mysore and Coorg from Inscriptions, London, 1909.

Saletore, B. A. — Ancient Karnataka, Vol. I, Poona, 1936.

Sankalia, H. D. — Indian Pre-history. 1978.

Pre-history and Proto-history in India and Pakistan, Second, Edition.

Sankaranarayanan, S. — Vishnukundis and their Times, Delhi, 1977.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Sastri, K. A. N.	History of South India, Oxford, 1966.
	Cholas, Madras, 1935.
	Pandyan Kingdoms (Reprint).
	Sources of Indian History, Bombay, 1964.
	Foreign Notices of South India, Madras, 1939.
Sathianathaier, R.	Studies in the Ancient history of Tondamandalam, Madras, 1934.
Sheikh Ali, B. (Editor).	Hoysala Dynasty.
Sircar, D. C.	Successors of the gatavahanas in Lower Deccan, Calcutta, 1939.
	Early Pallavas, Lahore, 1935.
	Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, Delhi, 1960.
Vaidya, C. V.	History of medieval Hindu India, Vols.I-3.
Venkataraman, K. R.	Hoyasala in the Tamil Country.
Venkataramanayya, N.	Early Muslim expansion in South India, Madras, 1942.
Verma, O. P.	Yadavas of Devagiri, Nagpur, 1970.
Vidya Prakash	Coinage of South India, Varanasi, 1968.
Virji, J.	Ancient history of Saurashtra, Bombay, 1952.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Warmington, E. H. Commerce between the Roman Empire and India, Delhi, 1974.

Watters, T. On Yuang Chwang's Travels in India, Vols. 1-2.

Yazdani, G. (Editor). Early history of the Deccan, Vol. I, London, 1960.

(ग) शोध पत्रिकाएं

Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute.

Adyar Library Bulletin.

Archaeological Survey of India.

Bombay Gazetteer.

Bulletin of the Deccan College, Poona.

Bulletin of the School of Oriental and African Studies.

Corpus Inscriptionum Indicarum.

Epigraphia Indica.

Indian Archaeology-A Revlew.

Indian Culture.

Indian Historical Quarterly.

Epigraphia Carnatica.

Journal of Andhra Historical Research Society.

Journal of Bihar and Orissa Research Society.

Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society.

Journal of Bombay University.

Journal of the Epigraphical Society.

Journal of Indian History.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Journal of Karnataka University.

Journal of Literature and Science.

Journal of the Oriental Research, Madras.

Journal of the Oriental Institute, Baroda.

Journal of the Department of Letters.

Journal of Nagpur University.

Journal of the Numismatic Society.

Mysore Archaeological Reports.

Quarterly Journal of Mythological Society.

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Foundation Trust, Delhi and eGangotri